मी. ग्रा. 30

❀ मिथिला-ग्रन्थमालायाः विंशतितमं (२०) प्रसूनम् ❀

अथ

वर्षकृत्य-प्रथमभागः

'इन्दुमती' टिप्पणीभिर्विभूषितः

(परिवर्द्धितं पञ्चमं संस्करणम्)

सम्पादकः

पण्डित श्रीरामचन्द्रझा व्याकरणाचार्यः

विद्या भवन

मूल्य १२-०० 20/-

(पुनर्मुद्रणादिकाः सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकाधीनाः)

कर्मका. 30

क॰का॰ ३०

मीकि विद्यापीठ
पुस्तकालय

॥ श्रीः ॥

* मिथिला-ग्रन्थमालायाः विंशतितमं (२०) प्रसूनम् *

श्रीरुद्रधरकृतवर्षकृत्य-प्रतिसंस्कृतः

वर्षकृत्य-प्रथमभागः

'इन्दुमती' टिप्पणीभिर्विभूषितः

सम्पादकः—

पण्डित श्रीरामचन्द्रझा व्याकरणाचार्यः

(तिथिनिर्णयादि-परिवर्धितं पञ्चमं संस्करणम्)

चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी

(पुनर्मुद्रणादिकाः सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकाधीनाः)

सन् १९७८]

...म्बा विद्या भवन ... वा रा ण सी

[मूल्यं ~~...~~ २०/-

आशिषाऽभिनन्दनम्

चञ्चच्चन्द्रमरीचिचारुवदनी बिम्बोष्ठकान्तामणि-
भक्तिज्ञानप्रसादिताशुगिरिजा संराजमानावनीम् ।
तुच्छां स्वच्छमना निधाय हृदये पत्युः समक्षं मुदा
तीर्थद्वार-'प्रयाग'-देवसरितस्तीरे वपुर्या जहौ ॥
सेयं स्वर्गसुधागलन्मधुरतां मन्दं पिबन्तीत्यहो !
स्वीयोत्पत्तिसुकीर्तिपूतमिथिला सीतासमा धीमती ।
नाम्ना 'चेन्दुमती' प्रसन्नवदना दिव्यप्रभावा चिरं
लोकानामनुरञ्जनी विलसतु स्वर्गे सुधावर्षिणी ॥

व्यथित-रामचन्द्रः

294.544
RUD

दर्तानं. १०६४५

विद्यापीठ (कम्पाउण्ड) पुस्तकालय

[redacted]

कर्मकाण्ड–३०

काशी-मिथिला-ग्रन्थमाला-सम्पादकः

पं० रामचन्द्र झा

आत्म-निवेदन

'तरुवनी' नगराधिनिवासिना सुकुलसारस-सन्ततिभानुना।
सुहृदनन्तकनिष्ठप्रसूनुना धरणिजापदयोरयमर्प्यते ॥

द्वादशमासीय कृत्य में शा० दुर्गापूजा तथा श्यामा (काली) पूजाक विशेष महत्त्व देखि चतुर्थ संस्करण में यथास्थान ई दुहू पद्धति तथा द्वितीय भाग में एकरा स्थान पर सर्वदेवीप्रतिष्ठा आदि छापल गेल अछि।

'तप्तमुद्रांकन-समीक्षा' स्वनामधन्य रामानुजी विद्वान् श्री प० रामदेव जी शुक्ल, एक पुस्तक में हमर समीक्षाक आर्षवचनक उटपटांग अर्थ करैत तथा किछु वचन (जतय हुनक विद्वत्ताक वश नहि चललैन्ह, ओहि वचन) कें हमर कपोल-कल्पित नवीनतम रचना कहि आत्मसन्तोष व्यक्त कयलैन्ह अछि। तदर्थ हुनक प्रत्युत्पन्न मतिक हम आभारी छी।

चतुर्थ संस्करणक 'इन्दुमती' टिप्पणी में प्रतिहारषष्ठी (छठि), जीमूतवाहन (जितिया) आदि व्रतनिर्णय पर विशेष विचार प्रस्तुत करबाक इच्छा छल, मुदा' मैथिल-संस्कृतिक अखण्डोपासक एक मिथिला-महीमान्य मनीषी अपन आत्मीयता प्रकट करैत हमरा लिखलैन्ह जे—'यदि व्रतनिर्णय पर महाँ, जे छपल अछि ओहि सँ वेसो लिखव तँ अनिष्ट भय जाएत।" ई पत्र पढ़ि हम अवाक् रहि गेलहुँ। अस्तु।

गप-शपक प्रसंग में हम विद्वान् कें अपन सुझाव दैत छियैन्ह जे—तिथिनिर्णय आ' व्रतनिर्णय भिन्न-भिन्न विषय थीक—तिथिनिर्णयक आधार पर व्रतनिर्णय नहि करू ?—व्रतनिर्णय में तत्तत् पौराणिक वचने मापक थीक। मैथिल-विद्वच्छिरोमणि म० म० रजे मिश्र जी अपना 'तिथिनिर्णय'क अन्तमें स्पष्ट लिखलैन्ह अछि जे—"व्रतनिर्णयः, शुद्धिनिर्णयः, तीर्थनिर्णयश्च यथावकाशं प्रकाशमेष्यन्तीति।" (देखू, पृ० ५३६)

काशी-मिथिला ग्रन्थमालाक निकटतम सहयोगी विद्वद्गण

१. श्री बाबू भक्तिधारी सिंह : मधुवनी ड्योढ़ी, मधुवनी
२. श्री पं० रामकरण शर्मा, कुलपति : कामेश्वर सिंह दरभंगा सं. विश्वविद्यालय
३. श्री पं० कुलानन्द झा विद्यावाचस्पति : ,, ,, ,,
४. श्री पं० उन्पेन्द्र झा, विद्यावाचस्पति : ,, ,, ,,
५. श्री पं० शोभाकान्त झा जयदेव झा सर्वतन्त्रस्वतन्त्र : प्राग् निदेशक : मिथिला इन्सीच्यूट, दरभंगा
६. श्री पं० कृष्णमोहन ठाकुर : श्रीरामचन्द्र नि० वि० संस्थापक, बरौनी, मुंगेर
७. श्री पं० केदार नाथ झा : कन्हवार, नौढ़िया, रीवाँ
८. श्री पं० देवकीनन्दन मिश्र : धनश्यामपुरी, अलीगढ़
९. श्री पं० सरस्वतीरमण झा : भटौली, वाराणसी
१०. श्री पं० प्रभाकर झा : भद्रेश्वर, पुर्नियाँ
११. श्री पं० जगदीश पाठक : करियन, दरभंगा
१२. श्री पं० रामकृष्ण झा : अध्यापक-श्यामा विद्यालय, वाराणसी
१३. श्री पं० बालादत्त झा : श्यामामन्दिर, वाराणसी
१४. श्री पं० अनिरुद्ध ठाकुर : करियन, दरभंगा
१५. श्री पं० वैद्य जयकान्त झा : माणिकपुर, मुजफ्फरपुर
१६. श्री पं० सच्चिदानन्द गोस्वामी 'किसलय' : जगेली, पूर्नियाँ
१७. श्री पं० सदानन्द झा : डोरिया, पूर्नियाँ
१८. श्री पं० रतिकान्त झा : वरदाहा, पूर्नियाँ

तप्तमुद्राङ्कन-समीक्षा

श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥ (महाभारत)

अनेकेषु पुराणेतिहास-स्मृति-निबन्धग्रन्थेषु तप्तमुद्राङ्कनप्रसङ्गे विविधानि मतानि समुपलभ्यन्ते । सर्वानेतान् समीक्ष्येत्थं निर्णीयते यद्—व्यक्तिविशेषाणाम् आचारिसम्प्रदायानां वीतरागाणां च कृते एव तप्तमुद्राङ्कनस्य प्राशस्त्यमुक्तं तज्ज्ञैः, इति । अतप्तशंखचक्रमुद्राद्यङ्कने तु प्रायः सर्वेषां मतैक्यं दरीदृश्यते ।

आर्यावर्तैकदेशे भरतखण्डेऽस्मिन् भारते (१) रामानुजाचारिसम्प्रदायव्यतिरिक्ताः श्रीमन्तो (२) माध्व-वल्लभ-चैतन्य-गुसाईं-विट्ठल-सन्तकवीर-तुलसीप्रभृतिवैष्णवाचार्यसम्प्रदायानुयायिनो महास्तिका वैष्णवास्तु तप्तमुद्राङ्कनप्रसङ्गे मौनमालम्बन्ते एतेषामाचार्यवर्यैस्तैः सर्वैः स्वकीयसम्प्रदायमहाग्रन्थेषु तत्तत्स्मृतिवचनान्युल्लिख्य तप्तमुद्राङ्कनं महद्गर्हितमिति समुद्घोषितम् । तथाहि निर्णयसिन्धु-(पृ० १४३८) प्रभृतिमहानिबन्धोद्धृतवचनानि—

आश्वलायने—शिवकेशवयोरङ्कान् शूलचक्रादिकान् द्विजः । न धारयेन्मतिमान् वैदिके वर्त्मनि स्थितः ॥ १ ॥

---

(१) भाति सर्वेषु वेदेषु रतिः सर्वेषु जन्तुषु । तरणं सर्वतीर्थानां तेन भारतमुच्यते ॥

(२) काशीस्थमाध्वसम्प्रदायाचार्याः सर्वतन्त्रस्वतन्त्राः श्रीमन्तो दामोदरलालगोस्वामिमहाभागा नासन् तप्तमुद्राङ्किता इति के न जानन्ति ?

वृहन्नारदीये—शंखचक्रं मृदा यस्तु कुर्यात् तप्तायसेन (१) वा । स शूद्रवद् बहिः कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ २ ॥
पुनश्च तत्रैव—शङ्खचक्राद्यङ्कनं च गीतनृत्यादिकं(२) तथा । (३)एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद् द्विजन्मनः ॥ ३ ॥
यथा श्मशानजं काष्ठमनर्हं सर्वकर्मसु । तथा चक्राङ्कितो विप्र. सर्वकर्मसु गर्हितः ॥ ४ ॥
शातातपः—अङ्गेषु नाङ्कयेद् विप्रो देवतायुधलाञ्छनैः । अङ्कयेद् यदि वा मोहात् पतत्येव न संशयः ॥ ५ ॥
पृथिवीचन्द्रोदये—यस्तु सन्तप्तशंखादि-लिङ्गाकिततनुर्नरः । स सर्वयातनाभोगी चाण्डालो जन्मकोटिषु ॥ ६ ॥

---

(१) यत्त्वत्र 'अयस्' पदेन लौहस्य ग्रहणात् तप्तसुवर्णमुद्राङ्कने न दोष इति तन्न, शास्त्रे अयस्पदेन सुवर्णस्यापि ग्रहणात् । तथाहि—'रक्षोहा विचर्षणिरभियोनिमयोहतम्, अभ्यनूषतायोहतम् ।' (ऋ० ९, १, २, ८०) ।

अत्र 'अयः' इति हिरण्यनामेति सायणभाष्यम् । हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमास्थात् अयोहनुर्यजते ।' (ऋ० ६,७१,१)
अयोहनुः=हिरण्मयहनुः, इति सायणभाष्यम् (द्र० वाचस्पत्यम्, पृ० ३४२)

वैदिकनिघण्टुः—हेम, चन्द्रम्, रुक्मम्, अयः, हिरण्यम्, पेशः, कृशनम्, लौहम्, कनकम्, काञ्चनम्, भर्म, अमृतम्, मरुत्, दत्रम्, जातरूपम्, इति पञ्चदश हिरण्यनामानि । (द्र० यास्कनिरुक्तम्, चौखम्बा-प्रकाशनम्)

(२) उदरपूर्त्यर्थं गीतनृत्यादिकं निषिद्धमिति भावः ।

(३) एकजातेः = वैदिकवर्णाश्रमविमुखस्य वैष्णवनामकस्य जातेः । तथाहि तत्प्रसंगे उक्तं पाद्मे—

"हरेः पूजाधिकारार्थं चक्रं धार्यं विधानतः । वैष्णवत्वस्य सिद्ध्यर्थं भक्तिसिद्ध्यै विशेषतः ।"

एतज्जात्यनुसारिब्राह्मणकृते तु विशिष्टवचनमुक्तं तत्रैव—

'अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं यथा । ब्राह्मणस्य तथैवेदं तप्तमुद्रादिधारणम् ॥

पाद्मे—शृणु राम महाबाहो लिङ्गचक्रादिधारणम् । शूद्रधर्मरतानां हि तेषां नास्ति पुनर्भवः ।
विप्रस्य नैतद्गृह्यत्वात् प्रायश्चित्तमुदीरयेत् ॥ ७ ॥

इत्यलं पल्लवितेन । उपर्युक्तवचनान्यनुसृत्यैव कदाचिद् वैदिकवर्णाश्रमविमुखसम्प्रदायवादिवैष्णवैः प्रतारिततप्तमुद्राङ्किताय विप्राय महामहोपाध्यायचित्रधरमिश्र-मनोहरठक्कुरप्रभृतिमैथिलविद्वच्छिरोमणिभिरित्थं प्रायश्चित्तव्यवस्था सम्प्रदत्ता—

"केनचिद् वैष्णवेन प्रतारितस्य ब्राह्मणब्रुवस्य वह्नितप्तशङ्खचक्रमुद्राधृतवतः स्मार्तैर्बन्धुभिः भोजनादौ बहिष्कृतस्य प्रायश्चित्तानुष्ठानेन बन्धुसहभोजनादौ प्रवेष्टुमिच्छतः गर्भाधानादिसंस्कारपूर्वकं तदनुकल्पतया चान्द्रायणव्रतानुकल्पानुष्ठानपूर्वकं वा षष्टिप्राजापत्यव्रतानुकल्पतावद्धेनुदानानुकल्पदरिद्रकल्पीयप्रतिधेन्वेकैककार्षापणमूल्यलभ्यहिरण्यदानं सदक्षिणं प्रायश्चित्तं भवितुमर्हति । हेमाद्रौ प्रायश्चित्तकाण्डे तत्त्वकौस्तुभे च धृताभ्याम्—

तस्य निष्कृतिरुत्पन्ना पाराशर्येण भाषिता । केशान् संवापयित्वाऽथ पुनः कर्म समाचरेत् ॥
गर्भगोलात् समुद्धृत्य गर्भाधानादिपूर्वकम् । षष्ट्यावृत्त्यैव कृच्छ्राणां प्रायश्चित्तमुदीरितम् ॥

इति वचनाभ्यां प्राजापत्यव्रताशक्तावित्यादिवचनात् 'कार्षापणैकमूल्या हि' इत्यादिवचनाच्च तथा पर्यवसितमिति व्यवस्थापयतः—श्रीचित्रधरशर्म-मनोहरशर्माणौ ।" इति । (एवं प्रायश्चित्तव्यवस्था दरभंगाराजपुस्तकालये सुरक्षिता)

सदस्य
विद्वज्जनसमिति, काशी

जनसेवकः
—रामचन्द्रझा

धर्मस्य निर्णयः कार्यो मिथिलाव्यवहारतः (बृ० याज्ञवल्क्यः)

श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त वचनमात्रकें यदि धर्म-विधायक मानल जाय तँ मिथिलाक पारम्पर्यक्रमागत आचार-व्यवहार अधिक संशयापन्न भय जाएत, अतः मिथिलाचारानुकूल वचनक गवेषण करब आवश्यक । मिथिला में १४ सै कर्मठ मीमांसक द्वारा निर्णीत प्राचीन सदाचार (१) क खुल्लम-खुल्ला समालोचना या तद्विरुद्ध आचारीक नवीन आचारक सर्जन करब नवोदित वामपन्थी धर्मशास्त्री विद्वान्क अदूरदर्शिता थीक ।

तपःपूत मिथिलाक प्राङ्गण में वर्णाश्रमी वैदिक, शाक्त; शैव तथा वैष्णव एहि तीनूक प्रधानता अनादिकाल सँ आविरहल अछि । प्रथम तिरहुत-नरेश राजर्षि निमि, मिथि, विदेह (जनक), योगिराज याज्ञवल्क्य, ब्रह्मर्षि कपिल, तर्कशास्त्र-प्रणेता महर्षि गौतम, नव्यन्याय स्रष्टा उपाध्याय गङ्गेश, बौद्धधर्म-विजेता आचार्य उदयन, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र मण्डन, वाचस्पति आदिक तँ कथे कि, हमरा गाम (तरौनी) क सन्तत्रय, १—श्री रोहिणदत्त गुसाइं, १—श्री रघुवर गुसाइं तथा वनगाम–महिसीक निवासी श्री लक्ष्मीनाथ गुसाईं आदि ब्रह्मर्षि वैष्णव तँ हमरा लोकनिक समकालिके भेल छथि । हिनका लोकनिक पुत्र, पौत्र, दौहित्रादि एखनहुँ धरि परम्परागत वैदिक वर्णाश्रम वैष्णव मर्यादाक संरक्षण में प्राणपण सँ लागल छथि । तत्तत् गुसाइंक कुटी में प्रत्यह भजन, कीर्तन, तर्पण तथा 'सर्वदेवमयोऽतिथिः' क यथायोग्य पूजन सत्कार होइछ ।

उपर्युक्त गुसाईंक सदुपदेश गोष्ठी में तप्तमुद्रांक अथवा पशु-याग-बलि आदिक विषय पर विवाद उपस्थित होइते नहि छल । किन्तु आई काल्हि एक नवोदित वैष्णव-मण्डली, जगज्जननी जानकीक जन्मभूमि पर-घूमि-घूमि ग्रामीण अपढ़ जनताक

---

(१) तस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः । वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥
धर्मसदाचारयोरभेदः । तथाहि मनुः—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

समक्ष वैदिक धर्मजात सर्वोच्च वैष्णवधर्म-विरुद्ध आर्येतर अभिनव वामपन्थी अवैदिक धर्मक प्रचार कय रहल छथि । सुनवामें आएल अछि जे प्रस्तुत वर्षकृत्य में 'छागवलिदानविधि' देखि एहि संस्करण के अग्राह्य बुझैत छथि । अस्तु, 'क्रिया केवलमुत्तरम्' । तखन तँ बुझना जाइछ जे—'देवान् पितृंश्चार्चयित्वा खदन् मांसं न दुष्यति' (मनु० ५,३२) इत्यादि मन्वादि स्मृतिवचन कें देखि स्मृतियो कें नहि मानैत हेताह । किं च "यज्ञार्थे पशवः सृष्टा यज्ञार्थे प्रशुघातनम्" इत्यादि प्रतिपादक स्मृति, पुराणक कोन कथा, वेदहु में अश्वमेधादि पशुयागविधान देखि ओ लोकनि आर्यधर्मेतर धर्म कें माननिहार नास्तिक हेताह । यतः—'नास्तिको वेद-निन्दकः' ।

निवन्धकार तँ '····इति वैष्णवानाम्' कहि-कहि व्रतादिक विधान कयने छथि । स्कन्दपुराण में वैष्णवक लक्षण अछि—'····यस्य दीक्षाऽस्ति वैष्णवी' । मिथिला में वैष्णवी दीक्षाक प्रचलन प्रायः नहिएँ जेकां अछि । केवल तुलसी-माला-धारण अथवा तुलसी-दल-सेवन मात्र सँ यदि वैष्णव कहावी तँ मिथिला सन वैष्णवधर्मोपासक भारत में कोनो प्रान्त नहि अछि ।

मिथिलावासीक प्रत्येक आङन में नूतन गृह-वास्तुपुजन-समकालहि तुलसी-वृक्षारोपण होइछ । यतः—'न गृहं गृहमित्याहुः तुलसीगृहमुच्यते' । मिथिला में एखनहुं विना तुलसी-पत्र छोड़ने कोनो वस्तु देव या ब्राह्मण देय नहि बुझल जाइछ भोज-भात तथा विशिष्ट देवपूजनोपसामग्री—दही, चूड़ा आदि में सर्वप्रथम तुलसीदल छोड़वाक प्रथो देखना जाइत अछि । किं वहुना, आवाल वृद्ध राजा रंक मुमुर्षु कें तुलसी वृक्षक निकट दिवंगत करयवाक प्रथा केवल मिथिलेटा में अछि । मिथिला में प्रातः सर्वप्रथम तुलसी-पूजन तथा संध्या में तुलसी-दीप-दानोत्तरे घर तथा देवमन्दिर मे दीपदान होइछ ।

आब कहूँ, वैष्णव के ?—ओ (आचारी) कि हम ? आ' कि '····यस्य दीक्षाऽस्ति वैष्णवी' ?

वर्णाश्रमी गृहस्थ वैष्णव सन्तक चमत्कार

हमरा गाँम (तरौनी) क गृहस्थ वैष्णव सन्त श्री रोहिणदत्त गुसाईंक तपोवल प्रसंग में ई कथा रोचक अछि जे—एक राति चोर सव गुसाईंक घर में सँध मारि प्रवेश कयलक। ओहि समय में गुसाईं जी दुहू आँखि मुनने समाधिस्थ छलाह। चोर सवकें भेलैक जे गुसाईं जी हमरा सभक डर से आँखि मुनि लेलैन्ह अछि, ताँय सव घरक गोट-गोट वस्तु उठाकें बाहर वारी में लय गेल। आपस में बटवारा कय कें जखन चोर सव चलय लागल तखन सवके सब आन्हर भयकें यथास्थान थकथका कें ठाढ़क-ठाढ़े रहि गेल। भोरगरे मंगला आर्तिक समय मन्दिर में जखन चोरीक हो-हल्ला मचल तखन समस्त गोआँ लाठी-सोंटा लय दौड़ि-दौड़ि कें उपस्थित भेलाह। ओहि समय गुसाईं जी मुस्कुराईत छलाह। एतवहि में वारी-झारी सँ चोर सबहक आर्तनाद सुनाई पड़ल—'दुहाई गुसाईं जी! हमरा सवकें बचाऊ, नहि तँ गोआँ सव मिलिकें जानसँ मारि देताह'। ई सुनितहिं ओकरा सवकें पकड़ैक हेतु सव सतर्क भेलाह। किन्तु गुसाईंजीक संकेत पर सब रुकि गेलाह। बाद में गुसाईं जी स्वयं चोरक निकट प्रस्थान कयलैन्ह। हुनका पहुँचतहिं सव चोर अन्धपन सँ मुक्त भय दौड़ि-दौड़ि गुसाईंजीक चरण पर खसय लागल। लोक सव चाहलक जे चोर कें वान्हि-वान्हि जहल पठाबी, किन्तु गुसाईं जी कहलथिन्ह जे—"अहा! ई सव रातिभरि बहुत श्रम कयलैन्ह अछि—भूख-प्यास लागल हेतैन्ह, अहाँ सभक डर सँ थरथर कपैत छथि। हिनका सबकें चूड़ा, दही खुआकें विदा कय दियौन्ह। हिनका लोकनिक दण्ड इयाह जे ई सव कहथु जे शेष जीवन में पुनः ई कुकृत्य नहि करव।" सव चोर श्री गुसाईंजीक चरण छू-छू कें आदेश स्वीकार कयलक।

हमरा गाँम में एखन तक उपनयनादि शुभ मुहूर्त में एही गुसाईं-पोखरिक माँटि सँ माँटिमांगर (मण्डपस्थापन) होइछ—गोआँ सप्तमृत्तिकाक स्थान पर प्रायः एही माँटिक प्रयोग करैत छथि। ई ध्रुव सत्य वुझू 'जे—एतादृश चमत्कृत गुसाईं पञ्चमुद्रांकित वैष्णव नहि छलाह ?"

मैथिल-मैथिली

मिथिलायां भवः मैथिलः—मिथिला में उत्पन्न मैथिल कहवैत छथि। 'मैथिल'क अर्थ 'मैथिल ब्राह्मण' रौढ़िक थीक। एकर निदान ई जे मिथिलाक भूमिहार, क्षत्रिय, वैश्य, धानुक, केओट, दुसाध, चमार आदि अपना के 'मैथिल' विशेषण विशिष्ट कहब या लिखब छोड़ि देलैन्ह। किन्तु मैथिल ब्राह्मण अपन पंजी तथा स्व-स्व रचित ग्रन्थहुँ में—'इति अमुकमैथिलब्राह्मणविरचितः' लिखैत छथि। ताँय प्रतिद्वन्द्वी 'मैथिल' शब्दप्रयोगाभाव में मिथिलाक हरिसिंह देव पंजीकृत ब्राह्मण 'मैथिल' नाम सँ प्रसिद्ध भय गेलाह—'नामैकदेशेन नाममात्रग्रहणम्।'

भगवान् राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, नानक आदि अवतारी महापुरुष भारत में मनुष्य भय काँ प्रकट भेलाह, किन्तु जगज्जननी भगवती मैथलीक प्राकट्य तपःपूत मिथिलाक धरती माता सँ सदेह भेलैन्ह। अत एव भगवती सीता (मिथिलायां भवा) 'मैथिली' नाम सँ विख्यात छथि।

महाशक्ति भगवती मैथिली स्वतः मानुष्य रूप में प्रकट भेलीह ताँय अपन (पाति = रक्षति =) पिता नाममात्र देहधारी (विगत देह =) विदेह काँ चुनलैन्ह। राजर्षि विदेहक हलकर्षण सँ भगवती सीता(१)क प्रादुर्भाव भेलैन्ह ताँय राजर्षि विदेह भगवती सीताक जनक आ' हुनक पोष्य पुत्री भगवती सीता जानकी नाम सँ प्रसिद्ध भेलीह।

(किनको कहब छैन्ह जे मिथिलेश राजर्षि विदेह भगवती सीताक जनक छलाह तांय पूज्यतमत्वेन विदेह लोक में 'जनक' नाम सँ प्रख्यात छथि(२)। जेना कि लोक-माता लक्ष्मीक भाई भेला सँ चन्द्रमा लोक में 'चन्दामामा' कहवैत छथि)।

---

(१) 'सीता लाङ्गलपद्धतिः' (अमर)—हरक चलला सँ पड़ल रेखा (सिरौर) क नाम संस्कृत में 'सीता' थीक।

(२) किनको एहि तरहक अनुसंधान—पुराणेतिहासविमुखत्वात् 'रभस' थीक। (देखू, 'मिथिला' पृ० २१)

महाशक्तिक अनन्य उपासक शाक्त मैथिल ब्राह्मण मैथिली कें—काली, दुर्गा, तारा, भैरवी, भुवनेश्वरी आदि नामान्तर से अपन इष्टदेवता मानैत छथि (१)।

महाशक्ति मैथिली मिथिलाक माँटि सँ प्रादुर्भूत भेलीह, ताँय मिथिलावासी पार्थिव देवपूजा कें सर्वोपरि मानैत छथि। प्रायः मिथिलाक प्रत्येक घर में प्रातः-सायं अनावरित माँटिक पिण्डरूप भगवतीक पीड़ीक पूजा होइछ। गहवर में भगवतो विषहराक पीड़ी माँटिएक देखना जाइछ। छोट लोको सब सलहेसक पीड़ी माँटिएक वनवैत छथि। अकाल या महामारी आदि दैवी प्रकोपक शान्त्यर्थ गाम-गाम में नार्मद शिवलिंग रहितहुँ लाखक लाख पार्थिव शिवलिंगेक पूजन होइछ। नदी-धारक कातहु में मृत व्यक्तिक चिताक पीड़ी (सारा) वनेवाक प्रथा केवल मिथिले टा में अछि। किं बहुना, अन्तकाल में आबाल वृद्ध मुमुर्षु कें प्राणवियोगो माँटिये पर कराओला जाइछ।

सीता-पति भगवान् राम मर्यादापुरुषोत्तम छलाह तँ हुनक धर्मपत्नी मैथिली मर्यादाक प्राण छलीह। राम-मर्यादाक संरक्षण में महामाया मैथिली सदत सतर्क रहैत छलीह राम-वनगमनक समय विना केकरो आज्ञाक वे-रोक-टोक पतिक अनुगमन करैत महारण्यों में मैथिली पतिक 'छायेवाऽनुगच्छति' जेकाँ देखल गेलीह।

अयोध्याक महाराज्ञी वनलाक पश्चाते अयोध्याधिपति भगवान् राम लोक-मर्यादाक दुहाई दैत जखन अग्निपरीक्षित, सुरगणपूजित, आसन्नप्रसवा मैथिलीक प्रति अपलाप प्रदर्शित करैत अनजान मैथिलीकें आजीवनक हेतु वनवास पठा देलथिन्ह तखनहुं महामाया मैथिली राम-मर्यादा-विमुख नहि भेलीह--महर्षि वाल्मीकिजीक कहलो पर पतित्यक्तरूप में मिथिलाक

---

(१) मैथिल ब्राह्मणक दीक्षा-मन्त्र प्रायः महाशक्तिएक 'क्रीं, ह्लीं' आदि बीजमन्त्र होइछ। क्वचित् वैष्णव समाज में महाविष्णुक बीजमन्त्र सेहो प्रचलित अछि। मिथिलावासी अनादि देवी-देवक बीजमन्त्रक उपासक होइत छथि। मानुष्य (मनुष्य से उत्पन्न) भगवान् राम, कृष्ण क कोन कथा, महामाया मैथिलियों काँ नामान्तरेण इष्टदेवता मानैत छथि।

सदाचार मर्यादा गौरवकें लांछनरहित करवाक हेतु स्वकीय पितृचरण महाराज जनकक अभिन्न मित्र ब्रह्मर्षि बाल्मीकिजीक आश्रम में उत्पन्न औरस युगल पुत्र––कुमार लव तथा कुश—कें स्वयं प्रचण्ड महाशक्ति रूप में धनुर्विद्याक विश्वविजयी शिक्षा प्रदान कय अयोध्याधिपति भगवान् राम-सञ्चालित अश्वमेध यज्ञसम्बन्धो विश्वविजयी घोड़ाक प्रसंगलय कें स्वात्मज उभय धनुर्धारी वीर बालकक धनुष्टङ्कार सँ अयोध्याक अविवेकी लोक मते टा कें नहि, प्रत्युत लोक-मर्यादापालक भगवान् रामोंके संकोच में डालि समस्त नतमस्तक कृतापराधी महामहारथी हनूमान्, लक्ष्मण आदि सहित वन्दी अयोध्यावासीकें कुमार लव-कुश उभय द्वारा बन्धन-मुक्त कराय स्वयं माता धरतीक कोर में समा गेलीह।

गंगा, यमुना, सरयू या कोन एहेन वढ़वानल क सामर्थ्य छलैन्ह जे अवतारान्त में महामाया मैथिलीक पार्थिव शरीर कें जलमग्न या भस्मसात् करि सकितथि तांय भगवती मैथिली स्वयं धरती में समागेलीह।

मिथिलाक प्रति मैथिलीक उद्गार

मिथिला में आवाल वृद्ध मुमुर्षु कें अन्त समय में भूमियोग करयवाक निदान महामाया मैथिलीक उद्गार थीक। एहि प्रसंग में वृ० वि० पुराणक कथाक सारांश एहि प्रकारक अछि––धनुष-यज्ञक पश्चात् भगवान्-रामक सहधर्मिणी भगवती सीताक अयोध्याप्रस्थान (दुरागमन) क दिन समस्त मिथिलाक चारू वर्णक नर-नारी अपन-अपन विभवानुसार मनोरथ साधि-साधि नाना प्रकारक भारक भार पकमान (ठकुआ), चूड़ा, दही, केरा, मॉछ, मखान, लाई, मुरही, टिकुली, सौभाग्य सिन्दूर, फूल-माला आदि बेटीक विदाईक उपकरण–सामग्री सँ जनक-राजधानी कें सजा देने छल। बिदाईक समय मैथिलीक विच्छोह में जनक-राजपरिवारक संग-संग समस्त मिथिलाक नर-नारी ओही तरहे विलखि-विलखि कें धाना करैत छल, जाहि तरहें लोक अपना बेटीक दुरागमनक समय करैत अछि। मिथिलावासीक एहि तरहक आत्मीयता देखि मैथिली अत्यधिक प्रभावित भय उठलीह, आ' मनहि मन सोचय लगलीह–"आई हम जन्मभूमि मथिला सँ जा रहलि छी तांय मिथि-

सिसकि-सिसकि रुदन कय रहल अछि, किन्तु हमरा महा-
लोक समस्त जीव-जन्तु—पशु-पक्षी, नर-नारी हमरा विछोह में
माया जनितहुँ वेटी वुझि हमरा सँ किछु मङवाक साहस नहि करैछ" ई सोचैत भागवती धरती माताक पीड़ी कें प्रणाम कय
शनैः शनैः खरखरिया में जा कँ वैसि गेलीह। मिथिलेश महाराज जनकक आज्ञा पावि अयोध्याक कहरिया सव जखन
खरखरिया उठाव लागल तँ खरखरिया टस सँ मस नहि भेलैक। धनुष-यज्ञक उपरान्त मैथिलीक पुनः ई दोसर चमत्कार
देखि मिथिलावासी खिलखिला उठलाह—'भूप सहस दस एकहिं बारा ' वाला जनुष कें जे एक आङुर पर उठा लैत
छलीह, ओही हमरा वेटी कें अयोध्याक कहरिया कोना उठालेत, इएह विषय हास्य में उद्घोषित भेल। समस्त नर-
नारी गर्व-विभोर भय थपरी पीटय लागल। ई देखि अयोध्याधिपति महाराज दशरथ आवेश में आवि महामहा मल्ल कें
सीताक सवारी उठेवाक हेतु आज्ञा देल। किन्तु मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम स्वयं मुस्कुराइत तावत् खरखरियाक निकट
पहुँचि सीता कें पुछलथिन्ह—'ई पुनः दोसर चमत्कार किमर्थ!' ई सूनि, जनकनन्दिनो मैथिली मिथिलावासीक दिश अङ्गुल्या
निर्देश करैत गद्गद कंठ सँ वजलीह—"प्रभो, आई हम अपना मिथिलाक समस्त जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, नर-नारीक
स्नेहाश्रु में वहि रहल छी। अहाँ एकर उद्धारक वनू। विदाईक समय आई हम मिथिलाक वेटी वनि धनुषयज्ञ-विजेता अहां
सँ इनाम में वरदान मङैत छी जे—"हमरा मिथिलाक धरती पर जेकर प्राणवियोग होइक से वे-रोक-टोक जीवन-
मुक्त भय जाय—सीधे विष्णुलोक में पहुँच जाय।" ई सुनतँहि भगवान्क वरदहस्त तथा तत् संगहि महामाया मैथिलीक
खरखरिया उठिगेल।

उपर्युक्त कथाप्रसंग सँ ई सिद्ध होइछ जे मिथिलाक प्रत्येक आचार-व्यवहार शास्त्र-पुराण सम्मत अछि। बिना ननु-नच कें ओहि पर आस्था रखवाक चाही। सुधारक आचारी वैष्णव मण्डली तप्तमुद्रांकनक उन्माद सँ रहित भय समझि-बूझ कें अदूरदर्शिताक परिचय देथु।

सेव्य-सेवक-भाव

'उगना हे मोर कतय गेला' (महाकवि विद्यापति)

तपस्वो सन्त तथा विद्वान्क तुलना में आचारी वैष्णवक आचार अन्यथासिद्ध—नगण्य थीक। ईश्वर-प्राप्ति में धर्मान्ध आचारीक आचार साधक नहि, प्रत्युत बाधक होइछ। अतः तप्तमुद्रांकित आचारी वैष्णव वृन्द कें सर्वप्रथम शास्त्र-द्रष्टा मनस्वी मनीषी बनब आवश्यक।

चमार सन्त रैदास, यवनपरिपालित विधवाक पुत्र सन्त कबीरदास तथा सूर, तुलसी प्रभृति सन्तक जीवनी सर्वविदिते अछि। हिनका लोकनि कां आचारीक तप्तमुद्रांकन सँ अथवा सदुपदेश या सत्संग सँ ब्रह्मसाक्षात्कार भेलैन्ह इहो सब जनिते छी। ईश्वर-प्राप्ति में तप्तमुद्रांकन कतेक पिछड़ल अछि, एहि प्रसंग में अक्षरसः सत्य सन्तवचन देखू—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का, कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किं तत् सुदाम्नो धनम्।
को वंशो विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषं, भक्त्या तुष्यति केवलं नतु गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥

अथ च—

वात्सल्यादभयप्रदानसमयादार्तार्तिनिर्वापणादौदार्यादघशोषणादगणितश्रेयःपदप्रापणात्।
सेव्यः श्रीपतिरेव सर्वजगतामेते हि तत्साक्षिणः प्रह्लादश्च विभीषणश्च कपिराट् पाञ्चाल्यहल्या ध्रुवः॥

महर्षि जनक, याज्ञवल्क्य, कपिल आदिक विकट तपश्चर्या सँ ततःपूत मिथिलाक धरती जगज्जननीक जननी बनि गेलि छथि। सगर्व कहि सकैत छी जे ई सौभाग्य विश्व भरि में कोनो देश वा प्रान्तक धरती कें नहि भेलैन्ह।

एही धरती पर विद्वच्चूडामणि आचार्य उदयनक हुंकार मात्र सँ 'अहिंसा परमो धर्मः' एहि सर्वसम्प्रदायसिद्धान्त मूलमन्त्रक मूर्खतापूर्ण ढोल पिटनिहार वेदनिन्दक नास्तिक बौद्धाचार्यक मत-खण्डनक कोन कथा, आचार्यक मन्त्रप्रभाव सँ 'वेदा अप्रमाणम्' कहनिहार पाखण्ड बौद्धाचार्यक देहाध्यासो छुटि गेलैक। एतवेटा नहि—एक समय जगन्नाथपुरी में आचार्यक ललकार पर जगन्नाथ-मन्दिरक वन्द पट असमय में स्वतः खुजि गेल छल। एहि प्रसंग में भगवान् जगन्नाथक प्रति आचार्यक सुप्रसिद्ध गर्वोक्ति देखू—

ऐश्वर्यमदमत्तोऽसि मामवज्ञाय तिष्ठसि ?
पुनर्बौद्धे समायाते मदधीना तव स्थितिः ॥

इत्यलमतिविस्तरेण। (सीताक विवाह कें भाई-वहिनिक विवाह कहनिहार बौद्धमतक खण्डन लेखकक रघुवंश तृ० सर्गक 'पर्यालोचन' में पढ़ू) प्रकृतमनुसरामः—

तपःपूत मिथिलाक देव, मनुष्य में सेव्य-सेवकभाव विपरीत रूप में देखल गेल अछि। महत्तम तपःप्रभाव सँ महाशक्ति सीता सदेह प्रकट भय राजर्षि जनकक वेटी रूप में सेविका वनि गेलि छलीह—राजर्षि जनक सेव्य, महाशक्ति बेटी रूपा सीता सेविका।

कि वहुना, महाशक्ति मैथिलीक स्वयंवर में मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामो काँ भगवान् रूप में नहि, प्रत्युत परीक्ष्य रूप में अवसर या आसन देल गेल रहैन। जाहि धनुष कें मैथिली वामा हाथ सँ उठा लैत छलीह ओकरा भगवान् राम उठा या तोड़ि कें दश हजार भूपक समक्ष भले ही विजयी कहा गेलाह, परन्तु मिथिला-मैथिलीक समक्ष नहि। ताँय वस्तुतः बुझो तँ भगवान् रामो राजर्षि जनकक प्रतिज्ञा-पालक रूप सेवके वनि गेलाह।

अथ हलषष्ठीपूजा

पुत्रार्थिभिरत्र व्रतं कर्तव्यम् । तद्यथा—भाद्रकृष्णषष्ठ्यां पञ्चदेवतां गौरीं च सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽद्य भाद्रे मासि कृष्णे पक्षे षष्ठ्यां तिथौ अमुकगोत्राया मम श्री अमुकीदेव्याः सकलपापक्षयपूर्वकपूर्वजन्मदौर्भाग्यवैधव्यरहितसकलसुखनिमित्तकपुत्रचिरजीवित्वप्राप्त्यर्थं शम्भुगौरीषण्मुखविनायकानां व्रतपूजनं कथाश्रवणं चाहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य शिव-पार्वती-कार्तिकेय-गणपतिदेवान् यथोपचारैः सम्पूज्य (१९ पृष्ठस्थकथोक्त ३९ श्लोकक्रमेण) पुष्पाञ्जलिं समर्प्य कथां शृणुयात् ।

अथ हलषष्ठीव्रतकथा

युधिष्ठिर उवाच—भगवन् देवकीसूनो लोकानां हितकाम्यया । जातोऽसि भूतले देव तस्मान्मेऽनुग्रहं कुरु ॥ १ ॥ अभिमन्युर्हतो बालः सुभद्राऽपि सुदुःखिनी । जीवितुं नापि शक्नोति शोकेन परिपीडिता ॥ २ ॥ तथेयं रुदती नित्यं द्रौपदी योषितां वरा । प्रत्यक्षोऽहर्निशं देव पञ्चपुत्रविनाशनात् ॥ ३ ॥ अभिमन्योश्च भार्याया गर्भवासो यदूत्तम ! तस्मिन्नपि च सन्तानः सोऽपि दग्धोऽस्त्रतेजसा ॥ ४ ॥ अश्वत्थाम्नाऽतिदुष्टेन भृशं निश्चलतां गतः । महादुःखमिदं घोरं संसारेऽपत्यलोकजम् ॥ ५ ॥ पितुस्तत्सफलं जन्म पुत्राणां चिरजीवितम् । यदि दीर्घायुरारोग्यं सन्ततेः स्यात्तदुत्तमम् ॥ ६ ॥ तथा कथय देवेश दानं वा व्रतमेव च । येन तेऽपत्यशोकेन दुःखैर्न परिपीडिताः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच—उत्तरा व्रतमेकं तु करोतु खल्वपूर्वकम् । मृतोऽपि लभतां गर्भो जीवितं नात्र संशयः ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर उवाच—को विधिर्देवता का वा कस्मिन् काले विधीयते । कथमाख्यातिमायातं कया कृतमिदं व्रतम् ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—सुभद्रो नाम राजासीत् सुवर्णा तस्य च प्रिया। तस्य सञ्जनयामास पुत्रो हस्तीति विश्रुतः ॥ १० ॥ स्वनाम्ना निर्मिता येन पुरा वै हस्तिनापुरी। स बालः प्रययौ गङ्गां किल धात्रीसहायवान् ॥ ११ ॥ जलक्रीडात्मको बालो बालत्वाज्जलमाविशत्। गृहीत्वा तत्र तं बालं ग्राहोऽगाधजलं गतः ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा क्रोधवेगेन पुत्रदुःखेन भामिनी। धात्रीसुतं सुवर्णाऽपि ज्वालाज्वलन् आक्षिपत् ॥ १३ ॥ अग्नौ क्षिप्त्वा प्रशोचन्ती स्वपुत्रं रुदती भृशम्। राजापि दुःखसंविग्नो जीवन्त्यक्तुमना अभूत् ॥ १४ ॥ धात्री दुःखसमभ्यासाज्जगाम गहनं वनम्। वने कुशपलाशस्य मध्याह्ने देवमर्चयत् ॥१५॥ शम्भुं षण्मुखपार्वत्या विघ्नराजेन संयुतम्। निवृत्य शीर्णप्रासादे सर्वजन्तुविर्वाजते ॥ १६ ॥ धात्र्या च वीक्षिता देवाः पूजिताश्च दिनं प्रति। तृणधान्यमधूकाभ्यामाहारं साऽकरोत्तथा ॥ १७ ॥ एवं तस्याः स्थितायास्तु नगरेऽद्भुतदर्शनम्। बभूव भाद्रमासस्य कृष्णषष्ठ्यां युधिष्ठिर ॥ १८ ॥ निर्ययौ भ्राष्ट्रमध्याद्वै धात्रीपुत्रोऽतिसुन्दरः। आश्चर्यपूर्वमेतद्धि राज्ञी दृष्ट्वा जनैः सह ॥ १९ ॥ चिन्तयाऽकुलितदृष्टो धात्रीपुत्रो हि जीवितः। अपृच्छत् कारणं तत्त्वाद् ब्रह्मज्ञात् ज्ञानिनस्तदा ॥ २० ॥ अत्रान्तरे शिवस्यांशो दुर्वासा मुनिसत्तमः। आजगाम तदादेशान्नृपं बोधयितुं हितम् ॥ २१ ॥ मनोरथं शिवं प्राप्तं दुर्वाससमकल्मषम्। अर्घ्येण पूजयामास चागतं स च भूपतिः ॥ २२ ॥ तमेवार्थं च पप्रच्छ नमस्कृत्य पुनः पुनः। दुर्वासा उवाच—राजंस्तव भयात्तत्र धात्री च या वनं गता ॥ २३ ॥ तया च पूजितः शम्भुः पार्वत्या षण्मुखेन च। गणेशः पूजितश्चैव तस्य तत्फलमीदृशम् ॥ २४ ॥ अद्यैव तत्र गन्तव्यं युवाभ्यां चापि भूपते। गृहाण त्वं महीपाल व्रतमेतन्महाफलम् ॥ २५ ॥ उभाभ्यां च महाराज सन्तोष्य प्रेषितो ध्रुवम्। श्रुत्वा राजा च राज्ञी च जग्मतुस्तद् वनं महत् ॥ २६ ॥ गतैर्हर्षेण सहितैर्दुर्वासादिद्विजैः सह। दृष्ट्वा धात्री पूजयन्ती कुशब्रह्मतरोरधः ॥ २७ ॥ श्रद्धया परया युक्ता देवमूर्तिचतुष्टयम्। राजा धात्रीं समाश्वास्य पुत्रेण समयोजयत् ॥ २८ ॥ धात्री हर्षेण संयुक्ता व्रतं सर्वं न्यवेदयत्। धात्र्युवाच—राजंस्तव भयादत्र यतः प्रभृति चागता ॥ २९ ॥

पूजयामि शिवं देवीं ससुतां वायुभोजना । अर्धरात्रे मया दृष्टः स्वप्नो हर्षविवर्धनः ॥ ३० ॥ शङ्करो वृषमारूढो गौरीपुत्रद्वयान्वितः । अधः पलाशकुशयोस्ततो जीवतु ते सुतः ॥ ३१ ॥ यन्नो व्रतं कृतं तस्मात्तव पुत्रोऽस्ति जीवितः । राज्ञी चैवं व्रतवरं करोतु विधिपूर्वकम् ॥३२॥ सापि जीवत्सुपुत्रेण वहुपुत्रा भविष्यति । व्रतस्यास्य विधानं च दुर्वासा कथयिष्यति ॥३३॥ दुर्वासा उवाच—सम्प्राप्ता भाद्रमासस्य कृष्णा षष्ठी युधिष्ठिर । तत्राहनि व्रतं कुर्वन् प्रातः स्नात्वा तु संयतः ॥ ३४ ॥ व्रतस्य नियमं कृत्वा क्रोधलोभविवर्जितः । यावद् व्रतं करोतीह न हिंस्याज्जीवमात्रकम् ॥ ३५ ॥ न लंघेज्जीवपद्धतिं व्रतसम्पूर्णहेतवे । सखिभिः सह मध्याह्ने पुत्रयुक्तेन चेतसा ॥ ३६ ॥ अधः पलाशकुशयोः कृत्वा मूर्तिचतुष्टम् । सशिवास्कन्दविघ्नेशं मन्त्रैरेभिः प्रपूजयेत् ॥ ३७ ॥ धूपैर्नानाविधैः पुष्पैः कालोद्भूतमनोरमैः । सर्वेषां पूजनं कुर्याद् भावयुक्तेन चेतसा ॥ ३८ ॥ नमः शिवाय सौम्याय पञ्चवक्त्राय शूलिने । नन्दिभृङ्गिमहाकायगणयुक्ताय शंभवे ॥ ३९ ॥ शिवायै हरकान्तायै प्रकृत्यै श्रेष्ठहेतवे । सुखसौभाग्यदायिन्यै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ॥ ४० ॥ नमः शिखिवाहनाय नमः क्रौञ्चविदारिणे ! कुमाराय विशाखाय स्कन्दाय च नमो नमः ॥ ४१ ॥ नम आखुवाहनाय नमो लम्वोदराय च । स्वर्णदन्तैकदन्ताय विघ्नेशाय नमो नमः ॥ ४२ ॥ दीपचन्दनधूपैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा । सम्पूज्य गृहमागच्छेत् सतूर्यद्विजसत्तमैः ॥ ४३ ॥ नीवारौदनमश्नीयान्मधूककुसुमैः सह । महिष्या दधिदुग्धं च घृतं तक्रं विशेषतः ॥ ४४ ॥ विधिमेवं व्रतस्यास्य जनो राजन् करोति यः । सद्यो वै लभते सौख्यं पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ४५ ॥ दुर्वासोवचनं श्रुत्वा राजा चक्रे तु तद्व्रतम् । निःसृत्य राजपुत्रस्तु तद्विलादाह सत्वरम् ॥४६॥ ववन्दे चरणौ मातुः पितुर्दुर्वाससस्तदा । अपरे वहवः पुत्रा जाता राज्ञश्च तत्फलात् ॥ ४७ ॥ दीर्घायुषो महावीर्यवलसत्त्वगुणान्विताः । ईतयः प्रशमं याता मारी दुर्भिक्षमेव च ॥४८॥ चक्रे राज्यं च निर्विघ्नं प्राप्य वर्षगणान् वहून् । श्रीकृष्ण उवाच—एतद्व्रत करोत्वेषा उत्तरा वरवर्णिनी ॥ ४९ ॥ केशवस्य वचः श्रुत्वा कृतार्थोऽभूद् युधिष्ठिरः ।

श्रीकृष्ण उवाच—सुभद्रो नाम राजासीत् सुवर्णा तस्य च प्रिया। तस्य सन्जनयामास पुत्रो हस्तीति विश्रुतः ॥ १० ॥ स्वनाम्ना निर्मिता येन पुरा वै हस्तिनापुरी। स बालः प्रययौ गङ्गां किल धात्रीसहायवान् ॥ ११ ॥ जलक्रीडात्मको बालो बालत्वाज्जलमाविशत्। गृहीत्वा तत्र तं बालं ग्राहोऽगाधजलं गतः ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा क्रोधवेगेन पुत्रदुःखेन भामिनी। धात्रीसुतं सुवर्णाऽपि ज्वालाज्वलन् आक्षिपत् ॥ १३ ॥ अग्नौ क्षिप्त्वा प्रशोचन्ती स्वपुत्रं रुदती भृशम्। राजापि दुःखसंविग्नो जीवन्त्यक्तुमना अभूत् ॥ १४ ॥ धात्री दुःखसमभ्यासाज्जगाम गहनं वनम्। वने कुशपलाशस्य मध्याह्ल देवमर्चयत् ॥१५॥ शम्भुं षण्मुखपार्वत्या विघ्नराजेन संयुतम्। निवृत्य शीर्णप्रासादे सर्वजन्तुविवर्जिते ॥ १६ ॥ धात्र्या च वीक्षिता देवाः पूजिताश्च दिनं प्रति। तृणधान्यमधूकाभ्यामाहारं साऽकरोत्तथा ॥ १७ ॥ एवं तस्याः स्थितायास्तु नगरेऽद्भुतदर्शनम्। बभूव भाद्रमासस्य कृष्णषष्ठ्यां युधिष्ठिर ॥ १८ ॥ निर्ययौ भ्राष्ट्रमध्याद्वै धात्रीपुऽत्रोतिसुन्दरः। आश्चर्यपूर्वमेतद्धि राज्ञी दृष्ट्वा जनैः सह ॥ १९ ॥ चिन्तयाऽकुलितदृष्टो धात्रीपुत्रो हि जीवितः। अपृच्छत् कारणं तत्त्वाद् ब्रह्मज्ञात् ज्ञानिनस्तदा ॥ २० ॥ अत्रान्तरे शिवस्यांशो दुर्वासा मुनिसत्तमः। आजगाम तदादेशान्नृपं बोधयितुं हितम् ॥ २१ ॥ मनोरथं शिवं प्राप्तं दुर्वाससमकल्मषम्। अर्घ्येण पूजयामास चागतं स च भूपतिः ॥ २२ ॥ तमेवार्थं च पप्रच्छ नमस्कृत्य पुनः पुनः। दुर्वासा उवाच—राजंस्तव भयात्तत्र धात्री च या वनं गता ॥ २३ ॥ तया च पूजितः शम्भुः पार्वत्या षण्मुखेन च। गणेशः पूजितश्चैव तस्य तत्फलमीदृशम् ॥ २४ ॥ अद्यैव तत्र गन्तव्यं युवाभ्यां चापि भूपते। गृहाण त्वं महीपाल व्रतमेतन्महाफलम् ॥ २५ ॥ उभाभ्यां च महाराज सन्तोष्य प्रेषितो ध्रुवम्। श्रुत्वा राजा च राज्ञी च जग्मतुस्तद् वनं महत् ॥ २६ ॥ गतैर्हर्षेण सहितैर्दुर्वासादिद्विजैः सह। दृष्ट्वा धात्री पूजयन्ती कुशब्रह्मतरोरधः ॥ २७ ॥ श्रद्धया परया युक्ता देवमूर्तिचतुष्टयम्। राजा धात्रीं समाश्वास्य पुत्रेण समयोजयत् ॥ २८ ॥ धात्री हर्षेण संयुक्ता व्रतं सर्वं न्यवेदयत्। धात्र्युवाच—राजंस्तव भयादत्र यतः प्रभृति चागता ॥ २९ ॥

पूजयामि शिवं देवीं ससुतां वायुभोजना । अर्धरात्रे मया दृष्टः स्वप्नो हर्षविवर्धनः ॥ ३० ॥ शङ्करो वृषमारूढो गौरीपुत्रद्वयान्वितः । अधः पलाशकुशयोस्ततो जीवतु ते सुतः ॥ ३१ ॥ यन्नो व्रतं कृतं तस्मात्तव पुत्रोऽस्ति जीवितः । राज्ञी चैवं व्रतवरं करोतु विविपूर्वकम् ॥३२॥ सापि जीवत्सुपुत्रेण बहुपुत्रा भविष्यति । व्रतस्यास्य विधानं च दुर्वासा कथयिष्यति ॥३३॥ दुर्वासा उवाच—सम्प्राप्ता भाद्रमासस्य कृष्णा षष्ठी युधिष्ठिर । तत्राहनि व्रतं कुर्वन् प्रातः स्नात्वा तु संयतः ॥ ३४ ॥ व्रतस्य नियमं कृत्वा क्रोधलोभविवर्जितः । यावद् व्रतं करोतीह न हिंस्याज्जीवमात्रकम् ॥ ३५ ॥ न लंवेज्जीवपद्धतिं व्रतसम्पूर्णहेतवे । सखिभिः सह मध्याह्ने पुत्रयुक्तेन चेतसा ॥ ३६ ॥ अधः पलाशकुशयोः कृत्वा मूर्तिचतुष्टम् । सशिवास्कन्दविघ्नेशं मन्त्रैरेभिः प्रपूजयेत् ॥ ३७ ॥ धूपैर्नानाविधैः पुष्पैः कालोद्भूतमनोरमैः । सर्वेषां पूजनं कुर्याद् भावयुक्तेन चेतसा ॥ ३८ ॥ नमः शिवाय सौम्याय पञ्चवक्त्राय शूलिने । नन्दिभृङ्गिमहाकायगणयुक्ताय शंभवे ॥ ३९ ॥ शिवायै हरकान्तायै प्रकृत्यै श्रेष्ठहेतवे । सुखसौभाग्यदायिन्यै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ॥ ४० ॥ नमः शिखिवाहनाय नमः क्रौञ्चविदारिणे ! कुमाराय विशाखाय स्कन्दाय च नमो नमः ॥ ४१ ॥ नम आखुवाहनाय नमो लम्वोदराय च । स्वर्णदन्तैकदन्ताय विघ्नेशाय नमो नमः ॥ ४२ ॥ दीपचन्दनधूपैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा । सम्पूज्य गृहमागच्छेत् सतूर्यद्विजसत्तमैः ॥ ४३ ॥ नीवारौदनमश्नीयान्मधूककुसुमैः सह । महिष्या दधिदुग्धं च घृतं तक्रं विशेषतः ॥ ४४ ॥ विविमेवं व्रतस्यास्य जनो राजन् करोति यः । सद्यो वै लभते सौख्यं पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ४५ ॥ दुर्वासोवचनं श्रुत्वा राजा चक्रे तु तद्व्रतम् । निःसृत्य राजपुत्रस्तु तद्विलादाह सत्वरम् ॥४६॥ ववन्दे चरणौ मातुः पितुर्दुर्वाससस्तदा । अपरे वहवः पुत्रा जाता राज्ञश्च तत्फलात् ॥ ४७ ॥ दीर्घायुषो महावीर्यवलसत्त्वगुणान्विताः । ईतयः प्रशमं याता मारी दुर्भिक्षमेव च ॥४८॥ चक्रे राज्यं च निर्विघ्नं प्राप्य वर्षगणान् वहून् । श्रीकृष्ण उवाच—एतद्व्रत करोत्वेषा उत्तरा वरवर्णिनी ॥ ४९ ॥ केशवस्य वचः श्रुत्वा कृतार्थोऽभूद् युधिष्ठिरः ।

अश्वत्थाम्ना हतो गर्भो जीवितस्तत्र वाऽचिरम् ॥ ५० ॥ व्रतास्यास्य प्रभावेण स्थिरा भवति सन्ततिः । अथ चोद्यापनं कुर्याद्यथोक्तं विधिपूर्वकम् ॥ ५१ ॥ सुवर्णमहिषी गावो देयं वासांसि ब्रह्मणे । सुवर्णप्रतिमां कुर्यात्तथा रौप्यीं सुशोभनाम् ॥ ५२ ॥ पूजा चैव तु कर्तव्या वेदवेदांगवित्तमैः । उत्तरां कारयामास व्रतं विधिविदांवरः ॥ ५३ ॥ अश्वत्थाम्ना हतो गर्भो व्रतेनाऽनेन रक्षितः । चलितोऽस्य प्रभावेण स गर्भश्चोत्तरोदरे ॥ ५४ ॥ तत्क्षणं जीवमापन्नः प्रसादं समपद्यत । जनमेजयस्य जनिता परीक्षिद् भुवि भूपते ॥ ५५ ॥ एवंविधं यः कुरुते व्रतं राजन्ननुत्तमम् । स पापं सकलं त्यक्त्वा सूर्यलोके महीयते[1] ॥ ५६ ॥

इति श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे कुशपलाशाख्यहलषष्ठीव्रतकथा समाप्ता ।

---

[1] ततः आरार्तिकं विधाय—

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥

इति पूजितदेवताः पूजिताःस्थ क्षमध्वम्, स्वस्थानं गच्छत । इति विसृज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—

नमोऽद्य कृतैतद्-हलषष्ठीव्रतपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे । इति ब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात् ।

अथ श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीपूजा[१]

तत्र कृतनित्यक्रियो व्रती मृन्मयीं कृष्णादिप्रतिमां प्रकल्प्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय[२]—ओं अद्य भाद्रे मासि कृष्णे पक्षेऽष्टम्यां तिथौ अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणः सप्तजन्मावच्छिन्नबाल्य-कौमार-यौवन-वार्धक्यपापक्षयमानसेप्सित-लाभमहापातकनाशकामः श्रीकृष्णपूजनोपवासव्रतमहं करिष्ये। (ग्रामपूज -सङ्कल्पस्तु २२ पृष्ठे टिप्पण्यां द्रष्टव्यः) इति संकल्प्य (सति सम्भवे पृ० ३९७ परिशिष्टोक्तविधिना कलशस्थापनं कृत्वा) पुष्पहस्तेन—

---

१. ब्रह्मपुराणे—अथ भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे। अष्टाविंशे तु संजातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः ॥ भारावतारणार्थाय क्षत्रियाणां वधाय च। तस्मात् स तत्र सम्पूज्यो यशोदा देवकी तथा ॥ गन्धमाल्यैस्तथा धूपैर्यवगोधूमसम्भवैः। गोरसैर्भक्ष्यभोज्यैश्च विविधैरपि ॥ रात्रौ प्रजागरः कार्यो नृत्यगीतसमाकुलः ॥ इदं व्रतं यस्मिन् दिने उदयगामिनी कृष्णाष्टमी प्राप्यते तद्दिने कर्तव्यम्। अत्र मानन्तु म० म० वाचस्पतिमिश्रकृतद्वैतनिर्णये पद्मपुराणोद्धृतवचनम्। तथा हि—पूर्वविद्धाऽष्टमी या तु उदये नवमीदिने। मुहूर्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साऽष्टमी भवेत्। कला काष्ठा मुहूर्ताऽपि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः। नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात् सप्तमीसंयुता नहि। पुनश्च तथैव—पञ्चगव्यं यथा शुद्धं न ग्राह्यं मद्यदूषितम्। रवि (सप्तमी) विद्धा तथा त्याज्या रोहिण्यापि युताऽष्टमी। इदं च व्रतं स्त्रीपुरुषसामान्याधिकारम् तथाहि भविष्यपुराणे—नरो वा यदि वा नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। न करोति तदा घोरा व्याली भवति कानने। इति। (जयन्तीव्रतनिर्णयः ३७ पृष्ठे टिप्पण्यां द्रष्टव्यः)

२. एतच्च व्रतं नित्यम्, नित्यतया चाऽत्र सङ्कल्पो नेति व्रतपद्धतिः। कृत्यमहार्णवे तु—अकुर्वन्निरयं याति"……"इत्यादि यथेष्टम् फलमाप्नुयात्' इति भविष्यपुराणोक्तवचनाभ्यां नित्यं काम्यं चेदमिति प्राहुस्तन्मतमनुसृत्यैवात्र मूले सङ्कल्पः संयोजितः।

वैष्णवानां जयन्तीव्रतन्तु अग्रे (३७ पृष्ठे) वक्ष्यामः तिथिचिन्तामणौ महेशठक्कुरास्तु—नवमीयुक्तायामेवाऽष्टम्यां जयंतीव्रतमित्यूचुस्तन्मैथिला न समाद्रियन्ते। वस्तुस्ततु तन्मन्दम्, ब्रह्मपुराणोक्त–कृष्णजन्माष्टमीव्रतकथायामप्यस्य तन्नाम्नैवोपादानात्।

ॐ भगवान् श्रीकृष्णोऽसि। ॐ बलभद्रोऽसि। ॐ वसुदेवोऽसि। ॐ नन्दोऽसि। ॐ यशोदाऽसि। ॐ देवक्यसि। ॐ रोहिण्यसि। ॐ सुभद्राऽसि। ॐ दुर्गाऽसि। ॐ रुक्मिण्यसि। ॐ सत्यभामासि। इति प्रतिमूर्ति स्पृशन् नामकरणं कुर्यात्।

ततः अञ्जलिं बद्ध्वा ध्यायेत्—ॐ नीलोत्पलदलश्यामं सर्वाऽलङ्कारभूषितम्। देवक्यङ्कस्थितं बालं स्तनपायिनमीश्वरम्॥ चतुर्भुजं शङ्खचक्र-गदापद्मान्वितं प्रभुम्। ध्यायेत्तं पद्मपत्राक्षं श्रीवत्सं दधतं हरिम्॥

ततः तिलानादाय—ॐ यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ ॐ भूर्भुवः स्वः भगवन् श्रीकृष्ण इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञँ स मिमन्दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामोम् प्रतिष्ठ॥ ॐ भगवन् श्रीकृष्ण इह सुप्रतिष्ठितो भवेति संस्थाप्य शंखेन पाद्यमादाय ॐ योगाय योगेश्वराय योगपतये योगसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ इदं स्नानीयम् ॐ भगवते श्रीकृष्णाय नमः। ततः सचन्दनपुष्पदूर्वातुलसीपत्रयुतजलमादाय—ॐ ज्ञानाय ज्ञानेश्वराय ज्ञानपतये ज्ञानसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ इति स्नपनं कुर्यात् (सहस्रशीर्षेति षोडशर्चेनाऽपि स्नापयेत्) ततोऽर्घपात्रमादाय—ॐ विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वपतये विश्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ एषोऽर्घः ॐ भगवते श्रीकृष्णाय नमः। ततः चन्दनमादाय—ॐ सर्वाय सर्वेश्वराय सर्वपतये सर्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ इदं चन्दनं ॐ भगवते श्रीकृष्णाय नमः। एते यवतिलाः ॐ भगवते श्रीकृष्णाय नमः। ततः यज्ञोपवीतमादाय–ॐ सत्याय

ग्रामपूजासङ्कल्पस्तु—ओमद्येत्यादि–एतद्ग्रामवासिनां नानागोत्राणां सकलजनानाम् (एतत्पूजोपकारकाणामन्यद्ग्रामवासिनां च) सप्तजन्मावच्छिन्नबाल्य-कौमार-यौवनवार्धक्यपापक्षयमानसेप्सितलाभमहापातकनाशकामः श्रीकृष्णपूजनमहं करिष्यामि।

सत्येश्वराय सत्यपतये सत्यसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ इमे यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते भगवते श्रीकृष्णाय नमः। ततः पीतवस्त्रमादाय—ओं नारायण नमस्तेऽस्तु नमो गरुड़वाहन। त्रैलोक्यव्यापकं देव वस्त्रं मे प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं पीतवस्त्रं वृहस्पतिदेवतं भगवते श्रीकृष्णाय नमः। आचमनीयम्—ओं सुरासुराणामीशाय क्षीराब्धिशयनाय च। दद्यादाचमनं तस्मै कृष्णाय च नमो नमः ॥ इदमाचमनीयं भगवते श्रीकृष्णाय नमः। आभूषणं, तदभावे भूषणार्थं द्रव्यम्—ओं सर्वेश्वराय सर्वाय विश्वरूपधराय च। दद्यात् सर्वमलङ्कारं कृष्णाय च नमो नमः ॥ इदं (भूषणम्) भूषणार्थं द्रव्यं भगवते श्रीकृष्णाय नमः। पुष्पम्—ओं योगेश्वराय देवाय योगानां पतये नमः। योगोद्भवाय नित्याय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ओं सुगन्धीनि सुपुष्पाणि मालत्यादीनि वै प्रभो। मयानीतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ॥ एतानि पुष्पाणि०। माल्यम्—ओं नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम्। वासुदेव जगन्नाथ प्रीत्यर्थं स्वीकुरु प्रभो ॥ इदं पुष्पामाल्यम्०। तुलसीपत्राणि—ओं तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम्। भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥ एतानि तुलसीपत्राणि०। एतानि दूर्वादलानि०। इदमाचमनीयं भगवते श्रीष्णाय नमः।

अथ अङ्गपूजा—ओं गोविन्दाय नमः, पादयोः। ओं माधवाय नमः, जंघयोः। ओं मधुसूदनाय नमः, कट्याम्। ओं पद्मनाभाय नमः, नाभौ। ओं हृषीकेशाय नमः, हृदये। ओं सङ्कर्षणाय नमः, स्तनयोः। ओं वामनाय नमः, वाह्वोः। ओं दैत्यसूदनाय नमः, हस्तयोः। ओं श्रीकृष्णाय नमः, कण्ठे। ओं सुमुखाय नमः, मुखे। ओं त्रिविक्रमाय नमः, नासिकायाम्। ओं पुण्डरीकाक्षाय नमः, नेत्रयोः। ओं नृसिंहाय नमः, श्रोत्रयोः। ओं उपेन्द्राय नमः, ललाटे। ओं हरये नमः, शिरसि। ओं श्रीकृष्णाय नमः सर्वाङ्गे।

ततो धूपः—ओं यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च। विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमो नमः ॥ एष धूपः०। दीपः—आज्यं सद्वर्तिसंयुक्तं वह्निना दीपितं मया। दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह ॥ एष दीपः०।

विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च । विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमो नमः॥ एतानि नाना-
नैवेद्यम्—ओं विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च । विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमो नमः॥ एतानि नाना-
विधिनैवेद्यानि० । ततः मूलमन्त्रेण ('ओं श्रीकृष्णाय नमः' इत्यनेन) अष्टोत्तरशतं दशवारं वा जपं कृत्वा—ओम् गुह्याति-
गुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भुवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ततः ताम्बूलम्—ओं पूगीफलं महद्दिव्यं
नागवल्लीदलैर्युतम् । कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् । इदं ताम्बूलम्० । द्रव्यम्—ओं हिरण्यगर्भगर्भस्थं
हेमबीजं विभावसोः अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ इदं दक्षिणाद्रव्यम्० । ततः पुष्पाञ्जलिः—ओं
योगाय योगेश्वराय योगपतये योगसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ इति मन्त्रेण वारत्रयं पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ।
ततः तिलेन ओं बलभद्र इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ॐ
बलभद्राय नमः । इदमनुलेपनम्० । एते यवतिलाः० । एतानि पुष्पाणि० । इदं पीतवस्त्रं बृहस्पतिदैवतम्० । इमे
यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते० । इदं माल्यम्० । इदं दूर्वादलम्० । इदं तुलसीपत्रम्० । एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बुल-
नानाविधिनैवेद्यानि । इदमाचमनीयम्० । एष पुष्पाञ्जलिः ओं बलभद्राय नमः ॥
ततः ओं वसुदेव इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं वसु-
देवाय: नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः सम्पूजयेत् । ततः ओं नन्द इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्या-
र्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं नन्दाय नमः । इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः सम्पूजयेत् । ततः ओं यशोदे
इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं यशोदायै नमः, इति गन्धा-
दिभिरुक्तोपचारैः सम्पूजयेत् । ततः ओं देवकि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयस्नानीयपुनरा-
चमनीयानि ओं देवक्यै नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत् । ततः ओं रोहिणि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य
एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं रोहिण्यै नमः । इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत् । ततः

ओं सुभद्रे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ॐ सुभद्रायै नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत् । ततः ओं दुर्गे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं दुर्गायै नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत् । ततः ओं रुक्मिणि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पृनराचमनीयानि ओं रुक्मिण्यै नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत् । ततः ओं सत्यभामे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं सत्यभामायै नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत् । ततः पुष्पाञ्जलिमादाय—

ॐ अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् । वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम् ॥ १ ॥
दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् । गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम् ॥ २ ॥
अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारकम् । अनादिनिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम् ॥ ३ ॥
नारायणं चतुर्बाहुं शंखचक्र-गदाधरम् । पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम् ॥ ४ ॥
श्रीवत्साङ्कं जगत्सेतुं श्रीपतिं श्रीधरं हरिम् । प्रणतोऽस्मि सदा देवं देवदेवं जगत्पतिम् ॥ ५ ॥
नामान्येतानि सङ्कीर्त्य ईप्सितं प्राप्नुयान्नरः । त्राहि मां देव देवेश हरे संसारसागरात् ॥ ५ ॥
त्राहि मां दुःखशोकघ्न रोगशोकार्णवाद्धरे । दुर्गतांस्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत् सकृत् ॥ ७ ॥
सोऽहं देवातिदुर्वृत्तस्त्राहि मां शोकसागरात् । पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं महत्यज्ञानसागरे ॥ ८ ॥
त्राहि मां देव देवेश त्वदृतेऽन्यो न रक्षकः ॥ ८ ॥

एष पुष्पाञ्जलिः ओं सपरिवाराय श्रीकृष्णाय नमः । इत्येतैर्वारत्रयं पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । ततो दण्डवत् प्रणम्य यथाशक्ति स्तोत्रादिकं पठेत् । ततः कथां श्रुत्वा जन्मरहस्यं च शृणुयाद ।

अथ श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतकथा

नारद उवाच—भगवन् श्रोतुमिच्छामि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । को विधिः किं फलं चास्य तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ब्रह्मोवाच—शृणु नारद वक्ष्यामि विष्णोर्जन्मव्रतं शुभम् । कर्त्तव्यं च सदा विप्र त्रिदशैरपि मानवैः ॥२॥ कृष्णपक्षे नभोमासि अष्टमीरोहिणीयुता । विना विष्णुप्रसादेन कर्तुं विप्र न शक्यते ॥३॥ देवकीसहितं कृष्णमर्चयन्ति सुभक्तितः । मन्वन्तरसहस्रन्तु प्रीतास्तेषां पितामहाः ॥४॥ जयन्ती[1] न कृता यैस्तु जागरेण समन्विता । श्वपचैस्ते समा ज्ञेया जयन्तीवर्जिता नराः ॥५॥ योषितश्च न सन्देहस्तथोक्तं तव सुव्रत । धिग् माता धिक् पिता विप्र जयन्ती येन वर्जिता ॥६॥ तेन कार्यं न पितृणां परं दुःखाय केवलम् । सन्ति व्रतान्यनेकानि पुण्यकोटिप्रदानि च ॥७॥ जयन्तीव्रततुल्यानि न दृष्टानि मुनीश्वर । प्रेतयोनिगतायां न प्रेतत्वं नाशितं च तैः ॥८॥ यैः कृता भाद्रकृष्णा वै अष्टमी रोहिणीयुता । किं पुनर्बुधवारेण सोमेन च विशेषतः ॥९॥ किं पुनर्नवमीयुक्ता कल्पकोटिस्तु मुक्तिदा । नृणां विना व्रतेनापि तपसा वा तथार्जितम् ॥१०॥ कृतेनैकोपवासेन प्रीतो भवति माधवः । भक्त्या विनोपवासेन रात्रौ जागरणेन च ॥११॥ फलं यच्छति दैत्यारिर्जयन्तीव्रतसंभवम् । पुराणे गीयते विप्र स्वयं कृष्णेन कीर्त्तिता ॥१२॥ जयन्ती दुर्लभा कृष्णे पापिनां न च वैष्णवे । एकेनैवोपवासेन पापं जन्मार्जितं हरेत् ॥१३॥ किं किं छिद्रं न सञ्जातं संसारे वसतां नृणाम् । येषां देहस्थितैः प्राणैर्जयन्ती विफलीकृता ॥१४॥ उपवासासमर्थेन जयन्तीवासरे द्विज । मृत्युरङ्गीकृतस्तेन यावदाभूतसंप्लवम् ॥१५॥ न स्नातं न हुतं दत्तं नार्च्चितो देवकीसुतः । जयन्तीवासरे प्राप्ते

---

[1] नवमीयुक्ताऽष्टमीव्रतमेव 'जयन्तीव्रतम्' इति म. म. महेशठक्कुरादयः । वस्तुतस्तु कृष्णाष्टमीव्रतस्यैव नामान्तरं जयन्तीव्रतमिति न वैष्णवानां मते वैमत्यमिति तत्त्वविदः ।

उपवासो न जागरम् ॥१६॥ लिखित्वा चित्रगुप्तेन दत्तं गुप्तपटं मुखे । यमेन यावच्चन्द्रार्कौ दत्ता नरकयातना ॥१७॥ मन्वादिदिवसे जातो देवकीनन्दनो हरिः । तेनासावष्टमी पुण्या पुण्यकोटिफलप्रदा ॥१८॥ अस्यां तिथौ वारिमात्रं पितॄणां यः प्रयच्छति । गयाश्राद्धं कृतं तेन शताब्दं नात्र संशयः ॥१९॥ जयन्तीवासरे प्राप्ते यः कुर्याद् देवकीव्रतम् । कपिलागोयुगं दत्तं यामे यामे तु तद्दिने ॥२०॥ नष्टो धर्मो हता कीर्त्तिर्जयन्ती विफलीकृता । पितरः पातिताः स्वर्गाज्जयन्त्यां भोजने कृते ॥२१॥ सन्ततिर्नैव तस्यास्ते स्वदारेण च शाश्वतम् । न च वृद्धिर्भवेदेव जयन्त्यां भोजने कृते ॥२२॥ युगादिवासरे पुण्यं यत्पुण्यं कल्पवासरे । तत्पुण्यं कोटिगुणितं जयन्त्यां समुपोषणे ॥ २३ ॥ कोटिव्रतकृतं पुण्यं यच्छते देवकीसुतः । जयन्त्यां पूजितो भक्त्या रात्रौ जागरणे कृते ॥२४॥ हरिहरीति कृतोच्चारे प्राणादपि विमुच्यते । तथापि प्राप्यते मोक्षः कृते कृष्णाष्टमीव्रते ॥२५॥ यत्फलं मथुरां गत्वा दृष्टे विश्वान्तसंज्ञके । तत्फलं प्राप्यते विप्र जयन्त्यां समुपोषणे ॥२६॥ रटन्तीह पुराणानि भूयो भूयो हि नारद । न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं जयन्त्यां समुपोषणे ॥२७॥ अम्बरीषेण शूरेण धुन्धुमारेण धीमता । काकुत्स्थेन दीलीपेन शुकेन च महात्मना ॥२८॥ वसुना धर्मपुत्रेण नहुषेण ययातिना । गाधिना बिन्दुना चैव नृगेणापि च धीमता ॥२९॥ इन्द्रद्युम्नेन वीरेण हरिश्चन्द्रेण धीमता । नकुलेन काशिराजेन गांगेयेन महात्मना ॥३०॥ धनञ्जयेन बलिना प्रह्लादेन कलिप्रिय । मनुना मानवेन्द्रेण अलर्केण शतायुषा ॥३१॥ मन्त्रिणा च सुमन्त्रेण जनकेन यशस्विना । शतधन्वना जयन्तेन उत्तरेण सुमन्युना ॥३२॥ सागरेण मरुत्तेन कुशलाभेन धीमता । भगीरथेन रघुणा जह्नुना भरतेन च ॥ ३३ ॥ कार्त्तवीर्यार्जुनेनैव गयेन च महात्मना । एतै राजभिरन्यैश्च धर्मज्ञैश्च सुरादिभिः ॥३४॥ तुष्ट्यार्थं देवकीसूनोर्जयन्ती समुपोषिता । व्रतं कृत्वा महीं भुक्त्वा प्राप्य कीर्तिं च शाश्वतीम् ॥३५॥ जयन्त्यां तूपवासेन विष्णोर्देहेन संस्थिताः । कृष्णजन्माष्टमी प्राप्य येन भुक्तं द्विजोत्तम ॥ ३६ ॥ त्रैलोक्यसंभवं पापं तेन भुक्तं न संशयः ॥ ३७ ॥ करोति न च या नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।

सा मृता जायते व्याली राक्षसी च विशेषत: ॥३८॥ कपिलागोसहस्रं च यो ददाति दिने दिने। तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥३९॥ रत्नकोटिसहस्राणि यो ददाति द्विजोत्तम । तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥४०॥ मातङ्गानां सहस्रं च यो ददाति द्विजातये। तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥४१॥ हेमभारसहस्रं च यो ददाति दिने दिने। कुरुक्षेत्रे प्रयच्छन्ति जयन्त्यां समुपोषणे ॥४२॥ वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च । तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥४३॥ कोटिजन्मकृतं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा। प्रसादाद् देवकीसूनो: पापं हरति वै मुने ॥४४॥ न कुर्वन्ति न जानन्ति कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। धर्मवाह्यास्तु ते ज्ञेया दैतेयास्ते नराधमा: ॥४५॥ धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च मुनिपुङ्गव । ददाति वाञ्छितान् कामान् कृता भाद्रेऽसिताष्टमी ॥४६॥ एकेनैवोपवासेन जयन्त्यां च प्रजायते। जन्मनोपार्जितं पापं प्रहरार्द्धेन नश्यति। रात्रौ जागरणे विप्र कृते नश्यन्ति देहिनाम् ॥४७॥ यत्फलं द्वारकायां तु दृष्टे कृष्णमुखे फलम् । प्रत्यहं पठतां पुंसां यच्छते विजयाष्टमी ॥४८॥ कृष्णाष्टमी महापुण्य माहात्म्यं पठते तु य:। सर्वतीर्थफलप्राप्तिं लभते शृणुयादपि ॥४९॥ न व्याधिर्न च रोगो वा न दारिद्र्यं न संक्षयम्। जयन्ती यच्छते पुण्यं पुस्तके लिखिते गृहे ॥५०॥ यत्र तिष्ठति माहात्म्यं जयन्तीव्रतसंभवम्। लिखितं तस्य विप्रेन्द्र जयन्तीव्रतजं फलम् ॥५१॥ न सर्पादिभयं तस्य न चौराग्निभयं तथा। न दैवं राक्षसं चैव माहात्म्यं पठते हि य: ॥५२॥ इह लोके भयं नैव पश्यतां धर्ममुत्तमम्। य: शृणोति नरो भक्त्या कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ॥ जन्माष्टम्यां हरेर्विप्र कृष्णस्तुष्ट: सदा भवेत् ॥५३॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोक्ता श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतकथा समाप्ता ।

* * *

अथ विष्णुपुराणोक्तं श्रीकृष्णजन्मरहस्यम्

(पराशर उवाच) एवं संस्तूयमाना सा देवैर्देवमधारयत् । गर्भेण पुण्डरीकाक्षं जगतां त्राणकारकम् ॥ १ ॥
ततोऽखिलजगत्पद्मबोधायाच्युतभावना । देवकीपूर्वसन्ध्यायामाविर्भूतं महात्मना ॥ २ ॥ तज्जन्मदिनमत्यन्तमाह्लाद्यमलदिङ्मुखम् ।
बभूव सर्वलोकस्य कौमुदी शशिनो यथा ॥ ३ ॥ सन्तस्सन्तोषमधिकं प्रशमं चण्डमारुताः । प्रसादं
निम्नगा जाता जायमाने जनार्दने ॥ ४ ॥ सिन्धवो निजशब्देन वाद्यं चक्रुर्मनोहरम् । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ५ ॥
सस्रृजुः पुष्पवर्षाणि देवा भुव्यन्तरिक्षगाः । जज्ज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जायमाने जनार्दने ॥ ६ ॥ मध्यरात्रेऽखिलाधारे
जायमाने जनार्दने । मन्दं जगर्जुर्जलदाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ ७ ॥ फुल्लेन्दीवरपत्राक्षं चतुर्बाहुमवेक्ष्य च ।
श्रीवत्सवक्षसञ्जातं तुष्टावानकदुन्दुभिः ॥ ८ ॥ अभिस्तूय च तं वाग्भिः प्रसन्नाभिर्महामतिः । विज्ञापयामास
तदा कंसाद् भीतो द्विजोत्तम ॥९॥ (वसुदेव उवाच) ज्ञातोऽसि देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । दिव्यरूपमिदं देव
प्रसादेनोपसंहर॥ ०॥अद्यैव देव कंसोऽयं कुरुते मम यातनाम् । अवतीर्णमिति ज्ञात्वा भवन्तं मंदिरे मम॥११॥(देवक्युवाच)
योऽनन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो गर्भेपि लोकान् वपुषा बिभर्ति । प्रसीदतामेष स देवदेवो यो माययाविष्कृतवान्स्वरूपम्
॥१२॥ उपसंहर सर्वात्मन् रूपमेतच्चतुर्भुजम् । जानति माऽवतारन्ते कंसोऽयं दितिजान्तक ॥ १३ ॥ (श्रीभगवानुवाच)
स्तुतोऽहं यत्त्वया पूर्वं पुत्रार्थिन्या तदद्य ते । सफलं देवि सञ्जातं जातोऽहं यत्तवोदरात्॥ १४ ॥ (पराशर उवाच) इत्युक्त्वा
भगवांस्तूष्णीं बभूव मुनिसत्तम । वसुदेवोऽपि तं रात्रावादाय प्रययौ बहिः ॥ १५ ॥ मोहिताश्चाभवंस्तत्र रक्षिणो
योगनिद्रया । मथुराद्वारपालाश्च व्रजत्यानकदुन्दुभौ ॥१६॥ वर्षतां जलदानां च तोयमत्युल्बणं निशि । सञ्छाद्य प्रययो
शेषः फणैरानकदुन्दुभिम् ॥ १७ ॥ यमुनां चाऽतिगम्भीरां नानावर्त्तशताकुलाम् । वसुदेवो वहन् विष्णुं जानुमात्रवहां
ययौ ॥ १८ ॥ कंसस्य करमादाय तत्रैवाभ्यागतांस्तटे । नन्दादीन् गोपवृद्धांश्च यमुनायां ददर्श सः ॥ १९ ॥ तस्मिन्

काले यशोदाऽपि मोहिता योगनिद्रया। तामेव कन्यां मैत्रेय प्रसूता मोहिते जने ॥ २० ॥ वसुदेवोऽपि विन्यस्य
वालमादाय दारिकाम्। यशोदाशयने तूर्णमाजगामामितद्युतिः ॥ २१ ॥ ददृशे च विबुद्धा सा यशोदा जातमात्मजम्।
नीलोत्पलदलश्यामं ततोऽत्यन्तं मुदं ययौ ॥ २२ ॥ आदाय वसुदेवोऽपि दारिकां निजमन्दिरम्। देवकीशयने न्यस्य
यथापूर्वमवस्थितः ॥ २३ ॥ ततो बालध्वनिं श्रुत्वा रक्षिणः सहसोत्थिताः। कंसाय वेदयामासुर्देवकीप्रसवं
द्विज ॥ २४ ॥ कंसस्तूर्णमुपेत्यैनां ततो जग्राह दारिकाम्। मुंच मुञ्चेति देवक्या सन्नकण्ठन्निवारितः ॥ २५ ॥ चिक्षेप
च शिलापृष्ठे सा क्षिप्ता वियति स्थिता। अवाप रूपं सुमहत्सायुधाष्टमहाभुजम् ॥ २६ ॥ प्रजहास तथैवोच्चैः कंसं च
रुषिताऽब्रवीत्। किं मया क्षिप्तया कंस जातो यस्त्वां वधिष्यति ॥ २७ ॥ सर्वस्वभूतो देवानामासीन्मृत्युः पुरा स ते।
तदेतत्संप्रधार्य्याथ क्रियतां हितमात्मनः ॥ २८ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ देवी दिव्यस्रग्गन्धभूषणा। पश्यतो भोजराजस्य
स्तुता सिद्धैर्विहायसि ॥ २९ ॥ (पराशर उवाच) कंसस्तदोद्विग्नमनाः प्राह सर्वान् महासुरान्। प्रलम्बकेशिप्रमुखानाहुयासुरपुंगवान्
॥ ३० ॥ (कंस उवाच) हे प्रलम्ब महावाहो केशिन् धेनुक पूतने। अरिष्टाद्यैस्तथाऽन्यैश्च श्रूयतां वचनं
मम ॥ ३१ ॥ मां हन्तुममरैर्यत्नः कृतः किल दुरात्मभिः। मद्वीर्यतापितैर्वीरान्न त्वेतान् गणयाम्यहम् ॥ ३२ ॥ किमिन्द्रेणाऽल्पवीर्येण
किंकरेणैकचारिणा। हरिणा वापि किं साध्यं छिद्रेष्वसुरघातिना ॥ ३३ ॥ किमादित्यैस्सवसुभिरल्पवीर्यैः
किमग्निभिः। किं चान्यैरसुरैस्सर्वैर्मद्वाहुवलनिर्जितैः ॥३४॥ किन्न दृष्टोऽमरपतिर्मया संघं समेत्य सः। पृष्ठेनैव
वहून् वाणान्नपागच्छन्नरक्षसा ॥ ३५ ॥ मद्राष्ट्रे वारिता वृष्टिर्यदा शक्रेण किन्तदा। मद्वाणभिन्नैर्जलदैरापो मुक्ता
ययेप्सिताः ॥ ३६ ॥ किमुर्व्यामवनीपाला मद्वाहुबलभीरवः। न सर्वे सन्नर्ति जाता जरासन्धमृते गुरुम् ॥ ३७ ॥
अमरेषु ममावज्ञा जायते दैत्यपुङ्गवाः। हास्यं च जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्वपि ॥ ३८ ॥तथापि खलु दुष्टानां तेषामप्यधिकं
मया। अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीयं दुरात्मनाम् ॥ ३९ ॥ तद्ये तपस्विनः केचित् पृथिव्यां ये च यज्वनः।

कार्यो दैवापकाराय तेषां सर्वात्मना वधः ॥४०॥ उत्पन्नश्चापि मृत्युर्मे भूतपूर्वश्च यः किल । इत्येतद्दारिका प्राह देवकीगर्भसम्भवा
॥ ४१ ॥ तस्माद्बालेषु परमो यत्नः कार्यो महीतले । तत्रोद्रिक्तबला बाला हन्तव्याः सुप्रयत्नतः ॥ ४२ ॥
इत्याज्ञाप्याऽसुरान् कंसः प्रविश्यात्मगृहन्ततः । मुमोच वसुदेवं च देवकीं च निरोधतः ॥ ४३ ॥ (कंस उवाच) युवयोर्घातिताः
पुत्रा वृथैवेते मयाऽधुना । कोप्यन्य एव नाशाय बालो मम समुद्गतः ॥ ४४ ॥ तदलं परितापेन नूनं यद्
भावि नो हिते । अर्भका युवयोः कोपादायुषोऽन्ते विहिंसिताः ॥ ४५ ॥ इत्याश्वास्य विमुक्तौ च कंसस्तौ परिशङ्कितः ।
अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठ प्रविवेश स्वकन्ततः ॥ ४६ ॥

(इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे चतुर्थोऽध्यायः)

(पराशर उवाच) विमुक्तो वसुदेवोऽपि नन्दस्य शिविरं गतः । प्रहृष्टं दृष्टवान्नन्दं पुत्रो जातो ममेति वै ॥ १ ॥
वसुदेवोऽपि तं प्राह दिष्ट्या दिष्ट्येति सादरम् । वार्द्धकेऽपि समुत्पन्नस्तनयोऽयं तवाधुना ॥ २ ॥ दत्तो हि वार्षिकः
सर्वो भवद्भिर्नृपतेः करः । तदर्थमागतास्तस्मान्नात्र स्थेयं महात्मना ॥ ३ ॥ यदर्थमागताः कार्यं तन्निष्पन्नं किमास्यते ।
भवद्भिर्गम्यतान्नन्द तच्छीघ्रं निजगोकुलम् ॥४॥ ममापि बालकस्तत्र रोहिणीप्रसवो हि यः । संरक्षीयो भवता यथायं
तनयो निजः ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा प्रययुर्गोपा नन्दगोपपुरोगमाः । शकटारोपितैर्भाण्डैः करं दत्त्वा महाबलाः ॥ ६ ॥
वसतां गोकुले तेषां पूतना बालघातिनी । सुप्तं कृष्णमुपादाय रात्रौ तस्मै स्तनन्ददौ ॥ ७ ॥ यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ
पूतना सम्प्रयच्छति । तस्य तस्य क्षणेनाङ्गो बालकस्योपहन्यते ॥८॥ कृष्णस्तस्यास्स्तनं गाढं कराभ्यामतिपीडितम् ।
गृहीत्वा प्राणसहितं पपौ कोपसमन्वितः ॥ ९ ॥ सा विमुक्तमहारावा विच्छिन्नस्नायुबन्धना । पपात पूतना भूमौ
म्रियमाणातिभीषणा ॥ १० ॥ तन्नादश्रुतिसन्त्रस्ता विबुद्धास्ते व्रजौकसः । ददृशुः पूतनोत्सङ्गे कृष्णं तां च निपातिताम्
॥ ११ ॥ आदाय कृष्णं सन्त्रस्ता यशोदापि ततो द्विज । गोपुच्छभ्रामणापास्तबालदोषमपाकरोत् ॥ १२ ॥

गोपुरीषमुपादाय नन्दगोपोपि मस्तके। कृष्णस्य प्रददौ रक्षां कुर्वन्निदमुदेरयत् ॥ १३ ॥ (नन्द उवाचे) रक्षतु त्वाम-
शेषाणां भूतानां प्रभवो हरिः । यस्य नाभिसमुद्भूतपङ्कजादभवज्जगत् ॥१४॥ येन दंष्ट्राग्रविधृता धारयत्यवनी जगत् ।
वराहरूपधृद्देवः स त्वां रक्षतु केशवः ॥ १५ ॥ नखाङ्करविनिर्भिन्नवैरिवक्षःस्थलो विभुः । नृसिहरूपी सर्वत्र रक्षतु त्वां
जनार्दनः ॥ १६ ॥ वामनो रक्षतु सदा भवन्तं यः क्षणादभूत् । त्रिविक्रमक्रमाक्रान्तत्रैलोक्यस्फुरदायुधः ॥ १७ ॥
शिरस्ते पातु गोविन्दः कण्ठं रक्षतु केशवः । गुह्यं सजठरं विष्णुर्जंघापादौ जनार्दनः ॥ १८ ॥ मुखं बाहू प्रबाहू च
मनः सर्वेन्द्रियाणि च। रक्षत्वव्याहतैश्वर्यस्तव नारायणोऽव्ययः ॥ १९ ॥ शार्ङ्गचक्रगदापद्मशङ्खनादाहताः क्षयम्।
गच्छन्तु प्रेतकूष्माण्डा राक्षसा ये तवाहिताः ॥ २० ॥ त्वां पातु दिक्षु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदनः। हृषीकेशोऽम्बरे
भूमौ रक्षतु त्वां महीधरः ॥ २१ ॥ एवं कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन बालकः। शायितः शकटस्याधो बालपर्यंकि-
कातटे ॥ २२ ॥ ते च गोपा महद् दृष्ट्वा पूतनायाः कलेवरम् । मृतायाः परमं त्रासं विस्मयं च तदा ययुः ॥ २३ ॥

(इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे पञ्चमोऽध्यायः)

(पराशर उवाच) कदाचिच्छकटस्याधः शयानो मधुसूदनः। चिक्षेप चरणावूर्ध्वं स्तन्यार्थी प्ररुरोद च ॥
तस्य पादप्रहारेण शकटं परिवर्तितम् । विध्वस्तकुम्भभाण्डन्तद्विपरीतं पपात वै ॥ २ ॥ ततो हाहाकृतो लोको गोप-
गोपीजनो द्विज। आजगामाथ ददृशे बालमुत्तानशायिनम् ॥ ३ ॥ गोपाः केनेति केनेति शकटं परिवर्त्तितम्। तत्रैव
बालकाः प्रोचुर्बालेनाऽनेन पातितम् ॥ ४ ॥ शकटं परिवृत्तं वो नैतदन्यस्य चेष्टितम् । ततः पुनरतीवासन् गोपा
विस्मितमानसाः ॥ ५ ॥ नन्दगोपोऽपि जग्राह बालमत्यन्तविस्मितः। यशोदा शकटारूढभग्नभाण्डकपालिकम् ॥ ६ ॥
शकटं चार्चयामास दधिदुग्धफलाक्षतैः। गर्गश्च गोकुले तत्र वसुदेवप्रचोदितः ॥ ७ ॥ प्रच्छन्न एव गोपानां संस्कार-
मकरोत्तयोः । ज्येष्ठं च राम इत्याह कृष्णं चैव तथाऽपरम् ॥८॥ गर्गो मतिमतां श्रेष्ठो नामाकुर्वन् महामतिः। अल्पेनैव

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

वर्षकृत्य-प्रथमभागः

'इन्दुमती' टिप्पण्या विभूषितः

अथ भाद्रमासकृत्यम्[1]

तत्र बहुलापूजा

तत्रादौ भाद्रकृष्णचतुर्थ्यां[2] बहुलां पूजयेत्। तद्यथा—पूर्वदिने एकभुक्तादिसंयमं कृत्वा पूजादिने प्रातरेव कृतनित्यक्रियो व्रती जलाशये सूर्यायार्घं दत्त्वा पूर्वाभिमुखः कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ॐ भगवन्सूर्यभगवत्योदेवता अद्यादि-चतुर्दशवर्षं यावत् प्रतिभाद्रकृष्णचतुर्थ्यां साङ्गसपरिवारबहुलापूजनमहमाचरिष्ये, इति व्रतं निवेद्य स्थानमागत्य कुशादिकमादाय, ॐ अद्य भाद्रे मासि कृष्णे पक्षे चतुर्थ्यां तिथौ अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणः (अमुकगोत्राया अमुकी-

---

[1] भाद्रे गोप्रसवदोषमाह नारदः—भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः सम्प्रसूयते। मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः॥ (शान्तिविधिः द्वितीयभागे द्रष्टव्यः)

[2] इयं चतुर्थी तृतीयायुता ग्राह्या, परयुताया दोषश्रवणात्। तथाहि दिवोदासः—'गौरी चतुर्थी वटधेनुपूजा दुर्गार्चनं

देव्या वा) मम ऐहिकचिरजीविपुत्रपौत्रादिसकलसौभाग्यधनधान्यादिसमृद्धिसकलसुखभोगावाप्तिपूर्वकस्वर्गाधिकरणकाकल्पान्तिकसकलदिव्यसुखसम्भोगावाप्तिकामोऽद्यादिचतुर्दशवर्षं यावत् प्रतिभाद्रकृष्णचतुर्थ्यां साङ्गसपरिवारश्रीवहुलापूजनव्रतमहङ्करिष्ये । इति सङ्कल्प्य, प्रतिमायां स्वशाखोक्त (ॐ मनोजूतिर्जुषतेत्यादि पृ० २२) मन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां विधाय, अक्षतमादाय, ॐ सवत्सवहुले इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ॐ सवत्सवहुलायै नमः । एवम् (सति सम्भवे १५१ पृष्ठोक्त 'दुर्गापूजा' क्रमेण पूज्यः) इदमनुलेपनम् । इदं सिन्दूरम् । इदमक्षतम् । एतानि पुष्पाणि । इदं माल्यम् । इदं वस्त्रम् वृहस्पतिदैवतम् । एतानि बिल्वपत्राणि । एतानि दूर्वादलानि । एतानि गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूल-नानाविध-नैवेद्यानि । इदमाचमनीयम् । एष पुष्पाञ्जलिः । ॐ सवत्सवहुलायै नमः । इति सम्पूज्य एवं गोभिलगोपकामरूपव्याघ्ररोहितपर्वतादीनावाह्य पाद्याद्युक्तोपचारैः सम्पूज्य कथां श्रृणुयात् ।

अथ बहुला-व्रतकथा

(वैशम्पायन उवाच) शरतल्पगतं भीष्मं वृद्धं कुरुपितामहम् । मूर्ध्ना प्रणम्य धर्मात्मा पप्रच्छेदं युधिष्ठिरः ॥१॥
(युधिष्ठिर उवाच) भगवन् श्रोतुमिच्छामि सत्यवाक्यस्य यत्फलम् । यत् प्राग् वहुलया प्रोक्तं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२॥

दुर्भरहोलिका च । गोवत्सपूजा शिवरात्रिरेता परान्विता घ्नन्ति नृपं सराज्यम् ॥' इति । ब्रह्मवैवर्ते—'गणेश–गौरी = वहुलाव्यतिरिक्ताः प्रकीर्तिताः । चतुर्थ्यः पञ्चमीविद्धा देवतान्तरयोगतः ॥' इति । अत्रेदमवधेयम्—मध्याह्नव्यापिन्येव चतुर्थी तृतीयायुता ग्राह्या । तथाहि वृहस्पतिः–'चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते । मध्याह्नव्यापिनी चेत् स्यात्, परतश्च परेऽहनि ॥' इति । (मातृविद्धा = तृतीयाविद्धा) । पुराणसमुच्चये—मातृविद्धा प्रशस्ता स्याच्चतुर्थी गणनायके । मध्याह्नात् परतश्चेत् स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते ॥' (नागविद्धा = पञ्चमीविद्धा) ।

(भीष्म उवाच) सौम्य ! धर्मं प्रवक्ष्यामि सत्यावर्जगुणान्वितम् । कामरूपस्य व्याघ्रस्य धेन्वाः संवादमुत्तमम् ॥ ३ ॥
माथुरे विषये रम्ये धनधान्यसमाकुले । नानाजनसमाकीर्णे यज्ञोत्सवविभूषिते ॥ ४ ॥ तत्र सा नगरी रम्या यमुनातीरमाश्रिता ।
अर्धचन्द्रप्रतीकाशा विद्वज्जननिषेविता ॥ ५ ॥ इन्द्रयष्टिसमाकीर्णा वापीभिरुपशोभिता । बहुद्विजसमाकीर्णा
वहुभाण्डा सुविक्रया ॥६॥ सुप्रमाणा सुरम्या च स्वातीनक्षत्रनिर्मिता । प्राकाराद्यप्रतोलीभिर्दुर्जया
परिखादिभिः ॥ ७ ॥ देवतायतनैर्दिव्यैः कदलीखण्डमण्डिता । हंसमालाप्रतीकाशैः शोभिता धवलैर्गृहैः ॥ ८ ॥
पनसैर्बकुलैस्तालैः प्रियालैर्नारिकेलकैः । आम्रातकैः कपित्थाद्यै रसवृक्षैश्च शोभिता ॥ ९ ॥ मल्लिकाकुन्दजातीभिः
पद्मोत्पलकुरुण्टकैः । सुवर्णश्वेतयूथीभिः किङ्किरातैः सकुब्जकैः ॥ १० ॥ करवीरैः कर्णिकारैः पाटलाशोकचम्पकैः ।
पुन्नागनागवकुलैरुद्यानैरुपशोभिता ॥ ११ ॥ सम्पूर्णधनधान्येन गोधनैरुपशोभिता । वेदाध्ययननिर्घोषैः पवित्री
कृतमण्डपा ॥ १२ ॥ वेदिशृङ्गाटकैं रम्यैस्तृणचत्वरभूषिता । आरामखण्डसङ्कीर्णा तडागोद्यानसंकुला ॥ १३ ॥
धनदस्य हि रत्नाढ्या अलकेव महापुरी । चन्द्रसेनो नृपो यस्यां ऋषिव्रतसमन्वितः । ॥ १४ ॥ धर्मे ह्यभिरतो नित्यं
देवतातिथिपूजकः । क्षत्रधर्मरतः श्रीमान् प्रजापतिसमः क्षितौ ॥१५॥ तेन सा नगरी रम्या राजसिंहेन पालिता ।
नित्योत्सवप्रमुदिता शङ्खवादित्रनिस्वना ॥ १६ ॥ सङ्गीतकविदग्धैश्च प्रेक्षणीयैः समाकुला । सुरूपैश्च सुवेशैश्च नरनारीजनैर्वृता
॥१७॥ पुरी चन्द्रावतीनाम दृष्टा वा यदि वा श्रुता । तस्यां पुर्यां यथा वृत्तं तच्छृणुष्व युधिष्ठिर ! ॥ १८ ॥
कस्यचित् द्विजमुख्यस्य कल्याणी धेनुरुत्तमा । हृष्टा पुष्टा सपुत्रा च वहुला नाम नामतः ॥ १९ ॥ गोमण्डलस्य मुख्या
सा हंसवर्णा घटस्रवा । दीर्घत्राणा विभक्ताङ्गी वन्धुरा सुतनुत्वचा ॥२०॥ विस्तीर्णजघना दिव्या पीनोन्नतपयोधरा ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वावयवसुन्दरी ॥२१॥ नीलकण्ठा शुभग्रीवा घण्टाली मधुरस्वना । सा तु यूथस्य सर्वस्य
चचाराग्रेष्वनिर्भया ॥२२॥ वनान्तादचिरोद्भूतं गत्वैकैव यथासुखम् । सान्द्रं सकामं सुरभिमच्छिन्नं चरते

तृणम् ॥ २३ ॥ रोहितो नाम तत्रास्ति पर्वतो यमुनातटे । अनेक-कन्दर-दरी-गुहानिर्झर-सेविते ॥ २४ ॥ तस्य
पूर्वोत्तरे भागे घोरे तृणसमाकुले । सङ्कटे विषमे दुर्गे भैरवे रोमहर्षणे ॥ २५ ॥ मृगसिंहसमाकीर्णे बहुश्वापदसेविते ।
वल्मीवृक्षादिगहने शिवाशतनिनादिते ॥ २६ ॥ दुर्गेऽस्मिन् वसते रौद्रः कामरूपीति नामतः । व्याघ्रः शोणितमांसाशी
महादंष्ट्रो महावलः ॥२७॥ महापर्वतसङ्काशो मेघगर्जित–निस्वनः । महागुहादरीवक्त्रः तीक्ष्णदंष्ट्रो नखायुधः ॥ २८ ॥
गोभिलो नाम धर्मात्मा स गोपो गोहिते रतः । अच्छिन्नाग्रैस्तृणैर्यत्र गोधनं परिरक्षति ॥ २९ ॥ तस्य यूथात् परिभ्रष्टा
वहुला तृण-तृष्णया । चरन्ती व्याघ्रपुरतः सा धेनुः समुमस्थिता ॥३०॥ आशु द्रवंश्च तां व्याघ्रस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ।
(व्याघ्र उवाच) मयाद्य विहिता भक्ष्या स्वयं प्राप्तासि धेनुके ॥ ३१ ॥ अद्य त्वां भक्षयिष्यामि दुर्ल्लभं तव जीवितम् ।
निःस्नेहश्च क्षुधार्त्तश्च षष्ठे काले बुभुक्षितः ॥ ३२ ॥ अद्य तृप्तिं करिष्यामि मांसेन रुधिरेण ते । (भीष्म उवाच) व्याघ्रस्य
वचनं श्रुत्वा निष्ठुरं रोमहर्षणम् ॥ ३३ ॥ भद्ररूपान्वितं बालं चन्द्रबिम्ब–समप्रभम् । द्रष्टुकामा सुविभ्रान्तं तृष्णया
परिपीडितम् ॥ ३४ ॥ वत्सं स्मरन्ती सा धेनुः स्नेहार्ता गद्गदोन्मुखी । दह्यन्ती पुत्रशोकेन बहुला पुत्रवत्सला ॥ ३५ ॥
रुदन्ती करुणा दीना निराशा पुत्रदर्शने । दृष्ट्वा तु बहुलां व्याघ्रः क्रन्दमानां सुदुःखिताम् ॥ ३६ ॥ उवाच वचनं घोरं
वहुले किं प्ररुद्यसे । दैवादद्य प्रपन्नासि भक्ष्या त्वम्मे यदृच्छया ॥ ३७ ॥ न रुदन्त्या हसन्त्या वा तथा ते जीवितं
भवेत् । विहितं भुज्यते लोके स्वयं प्राप्तासि धेनुके ॥ ३८ ॥ मृत्युस्ते विहितोऽद्यैव वृथा किमनुशोचसि । पप्रच्छ च
पुनर्व्याघ्रः किमर्थं रुदितं त्वया ॥ ३९ ॥ कौतुकं मेऽत्र सञ्जातमशेषं कथयस्व नः । व्याघ्रस्य वचनं श्रुत्वा बहुला
वाक्यमब्रवीत् ॥४०॥ (वहुलोवाच) क्षन्तुमर्हसि मे नाथ कामरूप नमोऽस्तु ते । त्वां समासाद्य लोकेऽस्मिन् परित्राणं
न विद्यते ॥ ४१ ॥ जीवितार्थं न शोचामि प्राप्तव्यं मरणं मया । जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ ४२ ॥
स्मतादपरिहार्येऽर्थे न शोचामि मृगाधिप । दैवैरपि सदा सर्वैर्मर्तव्यमवशैर्ध्रुवम् ॥ ४३ ॥ तस्मात्तदहमेवैका व्याघ्र !

शोचामि वै कथम्। किन्तु स्नेहवशाद् व्याघ्र! दुःखेव रुदितं मया ॥ ४४ ॥ अस्ति मे हृदि सन्तापः तं च त्वं श्रोतुमिच्छसि। अग्रे वयसि वर्तन्ती प्रसूताऽहं मृगाधिप ॥ ४५ ॥ इष्टः प्रथमजातश्च सुतस्तु मम बालकः। क्षीरपः स च मे वत्सः तृणं नाद्यापि जिघ्रति ॥ ४६ ॥ स च मे गोकुले बद्धः क्षुधार्तो मां प्रतीक्षते। वत्सं तमनुशोचामि कथं जीविष्यति प्रभो ॥ ४७ ॥ तस्येच्छामि स्तनं दातुं पुत्रस्नेह–वशङ्गता। पाययित्वा च वत्समवलिह्य च मूर्द्धनि ॥ ४८ ॥ सखीनामर्पयित्वा तं सन्दिश्य च हिताहितम्। पुनः प्रत्यागमिष्यामि यथेष्टं भक्षयिष्यसि ॥ ४९ ॥ यद्यहं नागमिष्यामि पुनर्व्याघ्र! तवालयम्। क्षत्रियाणां गतिं यास्ये सङ्ग्रामात् प्रपलायिनाम् ॥ ५० ॥ बहुलाया वचः श्रुत्वा मृगेन्द्र पुनरब्रवीत्। (व्याघ्र उवाच) किं ते पुत्रेण कर्तव्यं मरणं किं न बुध्यसे ॥ ५१ ॥ त्रस्यन्ति सर्वभूतानि मां निरीक्ष्य म्रियन्ति च। त्वं पुनः कृपयाविष्टा पुत्र पुत्रेति भाषसे ॥ ५२ ॥ न धर्मो न तपो दानं न माता न पिता सुतः। शक्नुवन्ति परित्रातुं मम दृष्टिपथे गतम् ॥ ५३ ॥ कथं त्वं गोकुलं गत्वा गोपीजनसमाकुलम्। वृषभैर्नादितं रम्यं बालवत्स–विभूषितम् ॥ ५४ ॥ भूषणं मर्त्यलोकस्य स्वर्गतुल्यं न संशयः। नित्योत्सवसमाकीर्णं गीतवादित्रभूषितम् ॥ ५५ ॥ यदाद्यं सर्वभूतानां भूमिस्वर्गमनुत्तमम्। यत्पवित्रं पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ ५६ ॥ यत्तीर्थं सर्वभूतानां रम्याणां रम्यमुत्तमम्। समस्तगुणसङ्कीर्णमीश्वरायतनं महत् ॥ ५७ ॥ गोपीमन्थानशब्देन बालवत्सरवेण च। गवां हूङ्कार–शब्देन यत्रालक्ष्मीर्विहन्यते ॥ ५८ ॥ यत्र वत्साश्च हूङ्कारं करुणं मातृकाङ्क्षया। कुर्वन्ति मातरश्चापि स्नेहार्ताः पुत्रकाङ्क्षया ॥ ५९ ॥ यद्गोपैः पालितं शूरैर्बाहुयुद्ध–कृतश्रमैः। प्रगीत–नृत्यसंलापै–र्वल्गितास्फोटनादिभिः ॥ ६० ॥ इतस्ततः स्थितैः वत्सैः क्रीडमानैः समन्ततः। सरोवद्राजते गोष्ठं चलद्भिरिव पङ्कजैः ॥ ६१ ॥ तच्छ्रीनिकेतनं रम्यं मातरं भ्रातरं सुतम्। दृष्ट्वा सखीजनं भूयः कथं प्रत्यागमिष्यसि ॥ ६२ ॥ पञ्चभूतानि मे भद्रे! पिबन्तु रुधिरं तव। न निराशानि भूतानि वाङ्मात्रेण करोम्यहम् ॥ ६३ ॥ (बहुलोवाच) प्रथमं सूतवत्साहं मृगेन्द्र

शृणु मे वचः । दृष्ट्वा सखीजनं भूयो गोपांश्च परिरक्षकान् ॥ ६४ ॥ गोपीजनमुपामन्त्र्य जननीं च विशेषतः । शपथैरागमिष्यामि मन्यसे यदि मुञ्च माम् ॥ ६५ ॥ यदि ते संशयोऽस्माकं शपथागमनं प्रति । पादैः स्पृशन्ति ये गाश्च शिरोभिर्न नमन्ति च । तेषां पापेन लिप्येऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥ ६६ ॥ द्विभार्यः पुरुषो यस्तु द्वेषादेकां विवर्जयेत् । तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ६७ ॥ यत्पापं ब्रह्महत्यायां पितृमातृवधेऽपि च । तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ६८ ॥ यस्तु बालं बलीवर्दं विषमं वाहयेद्धुरम् । तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ६९ ॥ गृहे यस्यागतं मित्रं निराशं प्रतिगच्छति । तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ७० ॥ ब्राह्मणान् ये च निन्दन्ति रागद्वेषाच्च वै नराः । तेषां पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ७१ ॥ यत्पापं लुब्धकानां तु म्लेच्छानां गरदायिनाम् । तेषां पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ७२ ॥ सकृद्दत्त्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति । तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ७३ ॥ कथायां कथ्यमानायां यो हि विघ्नं समाचरेत् । तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ७४ ॥ गृहे यस्यागतो विद्वान् निराशः प्रतिगच्छति । तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ७५ ॥ यस्तु वेदद्विजातीनां देवानां च विनिन्दकः । तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ७६ ॥ सूतकेषु च यत्पापं परद्रव्यापहारिणाम् । तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ७७ ॥ विद्यादातुस्तथा पित्रोः शुश्रूषां न करोति यः । तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ७८ ॥ एकाकी मिष्टमश्नाति यः कश्चित् पुरुषाधमः । तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ७९ ॥ कौमारं चैव भर्तारं या नारी त्ववमन्यते । तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ८० ॥ निक्षेपं हरते यस्तु विश्वासेनैव मानवः । तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ८१ ॥ उद्दिष्टश्चैव यः साक्ष्ये ह्यनृतं भाषते वचः । तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ८२ ॥ वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यदेवमुपासते । तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ८३ ॥ विफलं चैव भर्तारं या

नारी त्ववमन्यते। तस्याः पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ८४ ॥ गोधनस्य तृषार्त्तस्य यो हि विघ्नं समाचरेत्। तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ८५ ॥ यत्पापं द्विजनिन्दायां यत्पापं तीर्थनिन्दके। तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ८६ ॥ सन्ध्याहीने व्रतभ्रष्टे विप्रे देवविवर्जिते। तेन पापेन लिप्यामियद्यहं नागमे पुनः ॥ ८७ ॥ एककूपोदके ग्रामे वेदध्वनिविवर्जिते। तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ८८ ॥ शीतभीताश्च ये विप्रा रणभीताश्च क्षत्रियाः। तेषां पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ८९ ॥ लुब्धकेषु च यत्पापं तथा भूहरणेऽपि च। तेन पापेन लिप्येऽहं नागच्छेयं पुनर्यदि ॥ ९० ॥ स्वाम्यर्थे प्रहितो नित्यं तथा युद्धपराङ्मुखः। तस्य पापेन लिप्यामि नागच्छेयं पुनर्यदि ॥ ९१ ॥ इत्येतैः पातकैर्घोरैर्नागच्छामि यदा पुनः। पतिष्यामि तदा घारे नरके नात्र संशयः ॥ ९२ ॥ बुद्ध्वा सम्प्रत्ययं व्याघ्रः पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ९३ ॥ (व्याघ्र उवाच) जातः सम्प्रत्ययोऽस्माकं शपथैर्वहुले त्वयि। कदाचिन्मन्यसे गत्वा मूर्खोयं वञ्चितो मया ॥ ९४ ॥ अत्रापि केचिद् ब्रुवते शपथैर्नास्ति पातकम्। प्राणत्यागे समुत्पन्ने श्रद्धातव्यं न च त्वया ॥ ९५ ॥ लोकेऽस्मिन्नास्तिकाः केचिन्मूर्खाः पण्डितमानिनः। भ्रामयन्ति च ते बुद्धिं चक्रारूढां मृदं यथा ॥ ९६ ॥ तत्पक्ष–हेतु–दृष्टान्तैरज्ञानावृत्तचेतसः। भ्रामयन्ति नराः क्षुद्राः कुश्रुत्यागमदर्शनात् ॥ ९७ ॥ अतथ्यान्यपि तथ्यानि दर्शयन्त्यतिपेशलाः। समे निम्नोन्नतानीव चित्रकर्मविदो जनाः ॥ ९८ ॥ प्रायः कृतार्थो लोकोऽयं मन्यते नापकारिणम्। कायार्थं भजते लोको न लोकाः पारमार्थिकाः ॥ ९९ ॥ वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा स्वयं त्यजति मातरम्। न तं पश्यामि लोकेऽस्मिन् कृते प्रतिकरोति यः ॥ १०० ॥ सर्वस्य हि कृतार्थस्य मतिरन्या प्रवर्तते। ऋषि–देवासुर–नरैः शपथाः कार्यसिद्धये ॥ १०१ ॥ कृताः परस्परं पूर्वं तां न मन्यामहे वयम्। सत्येनापि शपेद्यस्तु देवता–गुरुसन्निधौ ॥ १०२ ॥ तस्य वैवस्वतो राजा धर्मस्यार्द्धन्निकृन्तति। मा ते बुद्धिर्भवेदेवं शपथैरेव वञ्चितः ॥ १०३ ॥ तेनेदं दर्शितं सर्वं यथेष्टं कुरु साम्प्रतम्।

(बहुलोवाच) एवमेव महाव्याघ्र ! कस्त्वां वञ्चयितुं क्षमः ॥१०४॥ आत्मैव वञ्चितस्तेन यः परं वञ्चयिष्यति । नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति दानसमो निधिः ॥ १०५ ॥ नास्ति सत्यसमो धर्मो नानृतात् पातकं परम् । अपवादो भवेद् येन येन चाप्रत्ययो भवेत् ॥ १०६ ॥ नरके गम्यते तेन न तत्कर्म समाचरेत् । (व्याघ्र उवाच) बहुले गच्छ पश्य त्वं पुत्रकं पुत्रवत्सले ॥ १०७ ॥ पाययित्वा च तं वत्समवलिह्य च मूर्द्धनि । मातरं भ्रातरं दृष्ट्वा सखीं स्वजनवान्धवान् ॥ १०८ ॥ सत्यमेवाग्रतः कृत्वा शीघ्रमागमनं कुरु । (भीष्म उवाच) एवं सम्प्रत्ययं कृत्वा बहुला सत्यवादिनी ॥ १०९ ॥ अनुज्ञाता मृगेन्द्रेण प्रयाता पुत्रकं प्रति । अश्रुपूर्णमुखी दीना वेपमाना सुदुःखिता ॥ ११० ॥ कुररीव समं तप्ता पतिता शोकसागरे । करिणी पङ्कलग्नेव विजने वनगोचरे ॥ १११ ॥ अशक्तात्मपरित्राणे विलपन्ती मुहुर्मुहुः । अथ सा गोकुले गत्वा बहुलाद्भुतविक्रमा ॥ ११२ ॥ दृष्ट्वा सुतन्तु क्रोशन्तं त्वरिता प्रययौ तदा । उपसर्पति तां वत्सो बाष्पपर्याकुलक्षणाम् ॥ ११३ ॥ सम्प्राप्य मातरं वत्सः शङ्कितः परिपृच्छति । (वत्स उवाच) शोकार्ता दृश्यसे मातर्मन्ये किमिति दुर्मनाः ॥ १९४॥ न ते पश्यामि सौम्यत्वं दुःखितेवाद्य लक्ष्यसे । उद्विग्ना चापि ते दृष्टिः भीतभीतेति दृश्यते ॥ ११५ ॥ (बहुलोवाच) पिब पुत्र स्तनं मेऽद्य कारणं यदि पृच्छसि । आगताहं तव स्नेहात् कुरु तृप्तिं यथेप्सिताम् ॥ ११६ ॥ अपश्चिमामिदं पुत्र ! दुर्लभं मातृदर्शनम् । एकाहमपि पीत्वा मे प्रत्यूषे कस्य पास्यसि ॥ ११७ ॥ मया हि पुत्र ! गन्तव्यं शपथैरागता ह्यहम् । कामरूपस्य व्याघ्रस्य दातव्यमात्मजीवितम् ॥ ११८ ॥ बहुलाया वचः श्रुत्वा वत्सो वचनमब्रवीत् । (वत्स उवाच) अहं तत्र च यास्यामि यत्र त्वं गन्तुमिच्छसि ॥ ११९ ॥ श्लाघ्यं हि मरणं मह्यं त्वया सह न संशयः । अथ वा तिष्ठ मातस्त्वं शपथाः सन्तु ते मम ॥ १२० ॥ जनन्या विप्रयुक्तस्य जीविते किं प्रयोजनम् । अनाथस्य वने नित्यं को मे नाथो भविष्यति ॥ १२१ ॥ नास्ति मातृसमो बन्धुर्बालानां स्तनपायिनाम् । नास्ति मातृसमो नाथो विषमे पर्यवस्थिते ॥ १२२ ॥ नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्ति मातृसमं सुखम् । नास्ति

मातृसमो देव इह लोके परत्र च ॥१२३॥ शतं पितृणां हित्वापि मात्रा जीवन्ति जन्तवः। एष नः परमो धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ॥१२४॥ सह गच्छति ये मातुस्ते यान्ति परमां गतिम्। मासान् दशोदरस्थान् या धृत्वा शूलैः समाकुलाः ॥ १२५ ॥ वेदनैर्विविधैर्दुखैः प्रसूयन्ते विमूर्च्छिताः। स्तन्यं चामृतवद् दत्त्वा गोपायन्ति च वत्सलाः ॥१२६ गूथमूत्रमये पङ्के लग्ना स्नेहाद्विवर्द्धते। प्राणैरपि प्रियान् पुत्रान् मन्यन्ते सुतवत्सलाः ॥ १२७ ॥ कस्तासां निष्कृतिं यातु शक्तो वर्षशतैरपि। एष धर्मो मम मतो माता पुत्रस्य दैवतम् ॥ १५८ ॥ (वहुलोवाच) ममैव विहितो मृत्युर्न त्वं मां गन्तुमर्हसि। न जीवत्यन्यजीवेन मृत्युः स्यादन्यमृत्युना ॥१२९॥ अपश्चिममिदं पुत्र! मातृसन्देशमुत्तमम्। अनुतिष्ठस्व मद्वाक्यमेतच्छुश्रूषणं परम् ॥१३०॥ तृणलोभेन विचरन् प्रमादं मा करिष्यसि। प्रमादात् सर्वभूतानि विनश्यन्ति न संशयः ॥१३१॥ न च लोभेन कर्तव्यं विषमस्थं तृणं क्वचित्। लोभाद्विनाशः सर्वेषामिह लोके परत्र च ॥१३२॥ समुद्रमटवीदुर्गं विशन्ते लोभमोहिताः। लोभादकार्यमत्युग्रं विद्वानपि समाचरेत् ॥ १३३ ॥ लोभात् प्रमादतो वाऽपि द्वाभ्यां सङ्क्षीयते जगत्। तस्माल्लोभं न कुर्वीत प्रमादं च विशेषतः ॥१३४॥ आत्मा हि सततं पुत्र! रक्षितव्यः प्रयत्नतः। सर्वेभ्यः श्वापदेभ्यश्च म्लेच्छचौरादिसङ्कटात् ॥१३५॥ तिरश्चां व्याडयोनीनामेकत्र वसतामपि। विपरीतानि चित्तानि विज्ञायन्ते हि पुत्रक! ॥१३६॥ नदीनां च नखीनां च शृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम्। विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥१३७॥ न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नापि विश्वसेत्। विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति ॥१३८॥ न विश्वसेत् स्वदेहेऽपि चलस्यातीव चेतसः। गावः पश्यन्ति गन्धेन राजानश्चारचक्षुषा ॥ १३९ ॥ शास्त्रेण पण्डिताः सर्वे ज्ञानेनैव तु योगिनः। नैकस्तिष्ठेद्वने घोरे धर्ममेकं विचिन्तयेत् ॥१४०॥ न चोद्वेगस्त्वया कार्यः सर्वस्य मरणं ध्रुवम्। यथा हि पथिकः कश्चित्-छायामाश्रित्य विश्रमेत् ॥१४१॥ विश्रम्य च पुनर्गच्छेत्तदद्भुतसमागमः। यत्रानित्यं जगत्कृत्स्नं तत्रैकः शोच्यसे कथम् ॥१४२॥ तस्माच्छोकं समुत्सृज्य मद्वाक्यमनुपालय। विद्यावृद्धांस्तपो-

वृद्धांन् सेवस्व च तथार्जवान् ॥१४३॥ न स्थातव्यं न गन्तव्यं न वक्तव्यं कदाचन। सर्वथा हि त्वया तात! त्रिविधं
निष्प्रयोजनम् ॥१४४॥ एवमाघ्राय तं वत्समवलिह्य च मूर्द्धनि। शोकेन महताविष्टा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥ १४५ ॥
निःश्वसन्ती च नागीव दीर्घमुष्णं मुहुर्मुहुः। पुत्रहीनं जगत् शून्यं पश्यन्त्यन्धेव साभवत् ॥ १४६ ॥ अपुत्रस्य जगत्शून्यम्
अपुत्रस्य गृहेण किम्। पुत्रेण जीयते लोकः श्रुतिरेषा सनातनी ॥ १४७ ॥ विलप्य बहुला पुत्रमुवाचेदं
पुनर्वचः। नास्ति पुत्रसमः स्नेहो नास्ति पुत्रसमं सुखम् ॥ १४८ ॥ नास्ति पुत्रसमा प्रीतिर्नास्ति पुत्रसमा गतिः।
विलप्य बहुला पुत्रमतिस्नेहेन वीक्ष्यती ॥ १४९ ॥ अनृतं वदति लोकोयं चन्दनं खलु शीतलम्। पुत्र-गात्र-परिष्वङ्गश्चन्दनादपि
शीतलः ॥ १५० ॥ (भीष्म उवाच) इति पुत्रगुणानुक्त्वा सन्निरीक्ष्य मुहुर्मुहुः स्वमातरं सखीं
गोपांस्त्वरमाणाभ्यभाषत ॥ १५१ ॥ (बहुलोवाच) यूथस्याग्रे चरन्तीं मामुत्ससाद मृगाधिपः। मुक्ताहं तेन शपथैर्गोकुलं
त्वं व्रजेति वै ॥१५२॥ सा ततस्तु सुतं द्रष्टुम्मातरं गोकुलं कुलम्। आगता सत्यवाक्येन पुनर्यास्यामि तत्र
च ॥ १५३ ॥ मातः क्षमस्व तत्सर्वं बालिशाद्यत्कृतम्मया। न्यासस्तवायं दौहित्रः किमन्यत्ते ब्रवीम्यहम् ॥ १५४ ॥
विपुले चम्पके दारे भद्रे सुरभि मालिनि। वसुधारे प्रिये नन्दे महानन्दे घटस्रवे ॥ १५५ ॥ अज्ञानाज् ज्ञानतो वापि
मदुक्तं किञ्चिदप्रियम्। तत्क्षमस्व महाभागे यच्चान्यदपकृतम्मया ॥ ९५६ ॥ सर्वाः सर्वगुणोपेताः सर्वलोकस्य मातरः।
सर्वासां हि मया दत्तं रक्षध्वं मम बालकम् ॥ १५७ ॥ अनाथमबलं दीनं रुदन्तं मम बालकम्। मातृशोकाभिसन्तप्तं
भगिन्यः पालयिष्यथ ॥ १५८ ॥ भगिनीनामयम्पुत्रः साम्प्रतन्तु विशेषतः। बालोऽवलेह्यः सर्वाभिः पोष्यः पाल्यः
स्वपुत्रवत् ॥ १५९ ॥ चरन्तं पिषमस्थाने गच्छन्तं परगोकुलम्। अकार्येषु प्रवर्तन्तं सख्यस्तं वारयिष्यथ ॥ १६० ॥
परपुत्रे स्वपुत्रे च यासां चित्तं समं भवेत्। तास्तु धन्याः कृतार्थास्तास्त्रैलोक्यस्य च मातरः ॥ १६१ ॥ मोदन्ते देवलोकेषु
शुभाः पुण्यकृताम्बराः। याः पालयन्त्यनाथांश्च परपुत्रांश्च पुत्रवत् ॥ १६२ ॥ तस्मादनाथं मत्पुत्रं पुत्रवत्पाल-

यिष्यथ । क्षमध्वं सुमहाभागा यास्यामि वनगोचरम् ॥१६३॥ नैव चास्मत्कृते कार्यो मन्युः सख्यः कथञ्चन । यतः स्थितस्य सर्वस्य स्थितं मरणमग्रतः ॥ १६४ ॥ श्रुत्वा तु वहुलावाक्यं माता सख्यश्च बिह्वलाः । विषादं परमं जग्मुरिदमूचुश्च विह्वलाः ॥ १६५ ॥ अहो सुमहदाश्चर्यं यद्व्याघ्रवदनं महत् । प्रवेष्टुमुद्यता भीमं बहुला सत्यवाक्यतः ॥१६६॥ शपथः सत्यवाक्येन वञ्चितव्यो यतो भयम् । भवितव्यं प्रयत्नेन गम्यते तत् कथं पुनः ॥ १६७ ॥ बहुले ! नैव गन्तव्यं धर्मोऽयं कतमस्ततः । येन बालं सुतं त्वक्त्वा सत्यलोभेन गम्यते ॥ १६८ ॥ अत्र गाथा पुरा गीता ऋषिभिर्धर्मवेदिभिः । प्राणत्यागे समुत्पन्ने शपथैर्नास्ति पातकम् ॥ १६९ ॥ उद्वहकाले रतिसम्प्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे । द्विजस्य चार्थेष्वनृतं वदेयुः पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ १७० ॥ उक्तेऽनृते भवेद्यत्र प्राणिनां परिरक्षणम् । अनृतं तत्र सत्यं स्यात् सत्यमप्यनृतं भवेत् ॥ १७१ ॥ यद्भूतहितमत्यन्तं तत् सत्यमितरं मृषा । कामिनीषु विवाहेषु गवां भुक्ते तथा वने ॥ १७२ ॥ ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथैर्नास्ति पातकम् । सर्वस्वहरणे हास्ये वेश्यायां प्राणसंशये । गोद्विजर्थे विवाहे च शपथैर्न्नास्ति पातकम् ॥ १७३ ॥ (वहुलोवाच) परेषाम्प्राणरक्षार्थं वदेच्चैवानृतं वचः । नात्मार्थमुत्सहे वक्तुं स्वल्पमप्यनृतं वचः ॥१७४॥ एकः एव प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते । एकस्तु भुङ्क्ते सुकृतमेकश्चाप्नोति दुष्कृतम् ॥१७५॥ वदन्ति मुनयः सर्वे नानृतात् पातकं परम् । ततः पापतरन्नास्ति तस्मात् सत्यं वदाम्यहम् ॥ १७६ ॥ सत्ये प्रतिष्ठिता लोकाः धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः । उदधिः सत्यवाक्येन मर्यादान्न विलङ्घते ॥ १७७॥ विष्णवे पृथिवीं दत्त्वा बलिः पातालमाश्रितः । छद्मना पद्मनाभेन वलिर्वद्धोऽवतिष्ठते ॥ १७८ ॥ प्रवर्द्धमानः शैलेन्द्रः शतशृङ्गसमुच्छ्रितः । सत्येन संस्थितो विन्ध्यः प्रवर्द्धन्नैव वर्द्धते ॥ १७९ ॥ स्वर्गापवर्गनरकाः सर्वे वाचि प्रतिष्ठिताः । यस्तां विलोपयेद्वाचमशेषं तेन लोपितम् ॥ १८० ॥ योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते । किन्तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ॥ १८१ ॥ तस्मान्नैवाहमात्मानमात्मनैव विलोपये । यास्यामि नरकं घोरं विलोप्यात्मानमात्मना ॥ १८२ ॥ अगाधे

विमले शुद्धे सत्यतीर्थे समीहिते । स्नात्वा पापमलैर्मुक्तः प्रयाति परमाङ्गतिम् ॥ १८३ ॥ सत्येन बहते वायुः सत्येन
तपते रविः । सत्येन वर्धते चन्द्रः सत्येन दहतेऽनलः ॥ १८४ ॥ नास्ति सत्यसमो मोक्षो नास्ति सत्यात् परा
गतिः ॥ १८५ ॥ अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् । अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेवातिरिच्यते ॥ १८६ ॥ सत्यं
साधु तपः श्रुतं च परमं क्लेशादिभिर्वर्जितं, स्वाधीनं च सुदुर्लभञ्च जगतः साधारणं भूषणम् । साधूनान्निकषः
सतांकुलधनं सर्वाश्रमाणां बलं, यद् म्लेच्छोप्यभिधाय गच्छति दिवं सन्त्यज्य तिष्ठेत् कथम् ॥ १८७ ॥ अनृतेषु च पापेषु
नित्यं प्राणिवधेषु च । एभिः सार्द्धमविश्वासो लोके श्लाध्यतरो हि सः ॥ १८८ ॥ (भीष्म उवाच) एवं बहुलया
प्रोक्ताः सख्यः सर्वाः सुशोभनाः । ऊचुस्ताः पुनरेवाथ बहुला धर्मकांक्षिणीम् ॥ १८९ ॥ (सख्य ऊचुः) बहुल त्वं
नमस्कार्या सर्वैरपि सुरासुरैः । या त्वं परमसत्येन प्राणांस्त्यजसि दुस्त्यजान् ॥ १९० ॥ ब्रूमः किमत्र कल्याणि ! या त्वं
धर्मधुरन्धरा । त्यागेनानेन त्रैलोक्ये नाप्राप्यं किञ्चिदस्ति ते ॥ १९१ ॥ अवियोगं च पश्यामः स्थानादस्मात् सुतेन
ते । नहि कल्याणचित्तानामापदः सन्ति कुत्रचित् ॥ १९२ ॥ न बन्धुनः सुहृत्तस्य न मित्राणि न बान्धवाः । वनं
वसन् महाव्याघ्रो मांसशोणितभोजनः ॥ १९३ ॥ पापिष्ठश्चापकारी च मांसाहारस्तु निर्दयः । न धर्मं जानते भद्रे !
अधर्मपथमाश्रितः ॥ १९४ ॥ कुतस्तेन च विश्वासो निःस्नेहेन दुरात्मना । निवर्त्तय मतिं भद्रे ! गमनाय च तं
प्रति ॥ १९५ ॥ तिष्ठ सा त्वं सहास्माभिः पुत्रेण सह नन्दता । बुध्यस्वात्महितं भद्रे ! मूर्खे पण्डितमानिनि ॥ १९६ ॥
(बहुलोवाच) सत्यवादी महाप्राज्ञो धर्मिष्ठः सत्यसंश्रयः । तथा स दृश्यते व्याघ्रः सत्यं सत्यपराक्रमः ॥ १९७ ॥ यदि
धर्मन्न जानाति किमर्थं मां विमुञ्चति । भक्षस्थानगता भद्रा मृत्युना परिपीडिता ॥ १९८ ॥ धर्मसंश्रवणात्तेन मुक्ताहं
सत्यवाक्यतः । अवश्यमेव कर्त्तव्यं सत्यवाक्यस्य पालनम् ॥ १९९ ॥ (भीष्म उवाच) दृष्ट्वा गोपीजनं सर्वं परिक्रम्य
च गोकुलम् । ततः सा गमने युक्ता बहुला पुत्रमब्रवीत् ॥ २०० ॥ (बहुलोवाच) शृणुष्वावहितो वत्स ! मातृसन्देश-

मुत्तमम् । नित्यं वयोगतः पुत्र ! मा प्रमादं करिष्यसि ॥२०१॥ प्रमादेन हि विलश्यन्ति सर्वे जीवा न संशयः । आत्मा भयात्त्वया पुत्र ! रक्षितव्यः प्रयत्नतः ॥ २०२ ॥ दुरात्मनां तु श्वादीनां भेत्तव्यं पुत्र ! नित्यशः । तिर्यग्योनिगतानां च पापानां पापकारिणाम् ॥२०३॥ (भीष्म उवाच) एवं सा वहुला पुत्रं भूयः सन्दिश्य सर्वशः । पालयन्तीह शपथं बहुला प्रस्थिता वनम् ॥ २०४ ॥ वहुला प्रस्थिता दैवात् सर्वांश्चेदमथाब्रवीत् । क्षितिं वरुणमर्कं च राहुं चाग्निं निशाकरम् ॥ २०५ ॥ दश दिग्देवतास्तत्र नक्षत्राणि ग्रहैः सह । सर्वान् विज्ञापयाम्यद्य प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ॥ २०६ ॥ स्वैः स्वैः प्रभावैः सर्वे रक्षध्वं मम बालकम् । साधूनां देवतानां च सर्वो बन्धुसमो जनः ॥ २०७ ॥ तस्मात् करुणया बालमनाथं पालयिष्यथ । ये संश्रिता वने सिद्धाः सर्वाश्च वनदेवताः ॥ २०८ ॥ वने चरन्तं शरणं सर्वे रक्षन्तु मे सुतम् । चम्पकाशोकपुन्नागाः सरलार्जुनकिंशुकाः ॥२०९॥ शृण्वन्तु पादपाः सर्वे सन्देशं मम विक्लवम् । बालमेकाकिनं दीनं चरन्तं विषमे वने ॥२१०॥ रक्षध्वं मातृशोकार्तं स्नेहात् पुत्रमिवौरसम् । मातापितृपरित्यक्तमनाथं दीन-मानसम् ॥ २११ ॥ तस्यैवं क्रन्दमानस्य मत्पुत्रस्य महावने । मातृशोकाभितप्तस्य क्षुत्पिपासाकुलस्य च ॥ २१२ ॥ स्तनस्य पायिनः सर्वं जगत् शून्यं प्रपश्यतः । चरमाणस्य कर्तव्यं सानुक्रोशैस्तु रक्षणम् ॥ २१३ ॥ (भीष्म उवाच) एवं सन्दिश्य वहुला पुत्रस्नेहवशंगता । शोकाग्निना च सन्तप्ता छिन्ना सा पुत्रदर्शने ॥२१४॥ नियुक्ता चक्रवाकीव लतेव पतिता तरोः । अन्धेव यष्टिरहिता प्रस्खलन्ती पदे पदे ॥२१५॥ (वनस्पतय ऊचुः) मा भैः त्वं धेनुके नित्यमभयन्ते ददाम्यहम् । तुष्टाः सर्वाश्च सत्येन वरं वरय सुव्रते ॥२१६॥ (वहुलोवाच) यदि तुष्टा ध्रुवं सर्वा देवता वरदा मम । पुत्रोऽयं मम सर्वत्र रक्षितव्यः प्रयत्नतः ॥२१७॥ (भीष्म उवाच) एवमस्त्विति ताः सर्वाः सपुत्राया वरं ददुः । बहुलायाः प्रपश्यन्त्याः तत्रैवादर्शनं ययुः ॥२१८॥ विस्मिता चैव सा तत्र वहुला सत्यवादिनी । रोदमाना वने तस्मिन् तं देशं समवर्तत ॥२१९॥ एवं सा वहुला धेनुर्वृक्षान् सन्दिश्य दुःखिता । जगाम सा पुनस्तत्र यत्रासौ पिशिताशनः

॥२२०॥ आस्ते विस्तारितनखस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयावहः । व्याघ्रं दृष्ट्वा तु सा धेनुरिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२१ ॥ (बहुलोवाच) आगताहं महाभाग सत्यधर्मव्यवस्थिता । कुरु तृप्तिं यथाकामं मम मांसेन साम्प्रतम् ॥ २२२ ॥ तर्पयस्व च भूतानि पञ्च मे शोणितेन वै ॥ २२३ ॥ (व्याघ्र उवाच) आगता तव कल्याणि बहुले शरदां शतम् । नहि सत्यवतां किञ्चिदशुभं विद्यते क्वचित् ॥ २२४ ॥ त्वयोक्तं बहुले पूर्वं सत्यं प्रत्यागमे पुनः । तेन मे कौतुकं जातं प्राप्ता गच्छेः कथं पुनः ॥ २२५ ॥ तव सत्यपरीक्षार्थं प्रोपितासि मया पुनः । अन्यथा मां समासाद्य जीवन्ती यास्यसे कथम् ॥ २२६ ॥ अपूर्वं कौतुकं तच्च दृष्टं सत्यं गवां मया । तस्मादनेन सत्येन विमुक्तासि मयाधुना ॥ २२७ ॥ सत्ये प्रतिष्ठिता लोकाः धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः । ज्ञानमीक्षा स्थिता सत्ये सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥ २२८ ॥ सत्येन देवाः तुष्यन्ति सत्येन पितरस्तथा । सत्येन ऋषयः निद्धाः सत्यं च त्वयि संस्थितम् ॥ २२९ ॥ धन्या गावः क्षितिर्धन्या धन्या त्वमसि धेनुके । धन्यः स देशो यत्र त्वं वससे सत्यवादिनि ॥ २३० ॥ धन्यः स राजा यस्य त्वं राष्ट्रे निवससे शुभे । धन्यः स विषयो मातः तृणवृक्षलतान्वितः ॥ २३१ ॥ चचार बहुला यत्र दृष्ट्या पापानि नाशयेत् । ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च तैरेव सुकृतं कृतम् ॥ २३२ ॥ तैराप्ता जन्मनः सारा ये पिबन्ति गवां पयः । मृगेन्द्रः प्रत्ययं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः ॥ २३३ ॥ प्रत्यादेशायमस्माकं मन्ये दवः प्रदर्शितः । सत्यमेतद् गवां दृष्ट्वा न मे रोचति जीवितम् ॥ २३४ ॥ तत्करिष्याम्यहं येन मोक्षमेष्यामि किल्विषात् । मया जीवसहस्राणि भक्षितानि हतानि च ॥ २३५ ॥ का गतिं तु गमिष्यामि दृष्ट्वा गोसत्यमीदृशम् । अहं पापी दुराचारी नृशंसी जीवघातकः ॥ २६६ ॥ कांस्तु लोकान् गमिष्यामि कृत्वा कर्म सुदारुणम् । गमिष्ये सर्वतीर्थानि करिष्ये कायशोधनम् ॥ २३७ ॥ पतिष्ये गिरिमारुह्य प्रवेक्ष्ये वा हुताशनम् । शोषयिष्ये निजं देहं ग्रीष्मे भानुजलं यथा ॥ २२८ ॥ बहुले यन्मया कार्यं तपः पापविशुद्धये । तदादिशस्व संक्षेपात् त्वं धर्मं वत्स्यसे यतः ॥२२९॥ (बहुलोवाच) तपः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानमेव च । द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दा-

नमेकं कलौ युगे ॥२४०॥ सर्वेषामेव दानानामिहाचकमनुत्तमम् । अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम् ॥ २४१ ॥ चराचराणाम्भूतानामभयं यः प्रयच्छति । सर्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ २४२ ॥ नास्त्यहिंसासमो धर्मो नास्त्यहिंसापरन्तपः । नास्त्यहिंसापरा विद्या नास्त्यहिंसासमं श्रुतम् ॥ २४३ ॥ यथा हस्तिपदेनान्यत् पदं सर्वं विलीयते । सर्वे धर्माः तथा व्याघ्र ! विलीयन्ते ह्यहिंसया ॥ २४४ ॥ योगवृक्षस्य या शाखा आतपत्रं शमस्य तु । निधिः सा ज्ञानपुष्पाणां मूलं मोक्षफलस्य च ॥२४५॥ दुःखत्रयाभिसन्तप्तः छायां योगतरोः श्रितः । न वाध्यते पुनर्दुःखैः प्राप्य निर्वाणमृच्छति ॥ २४६ ॥ इत्येतत्परमं श्रेयः कीर्तितं ते समासतः । त्वमप्येतद्विजानासि केवलं मास्परीक्षसे ॥ २४७ ॥ (व्याघ्र उवाच) अहं देवैः पुरा शप्तो व्याघ्रत्वे विनियोजितः । ततः प्राणिवधाद् घोरात् तत् सर्वं मम विस्मृतम् ॥ २४८ ॥ त्वत्सम्पर्कोपदेशेन संजातं स्मरणं मम । मुक्तशापश्च संजातः प्रसादात् तव धेनुके ॥ २४९ ॥ बहुले गच्छ तुष्टोस्मि पुत्रेण सहिता भव । त्वं वाप्यनेन सत्येन गमिष्यसि वरां गतिम् ॥ २५० ॥ (भीष्म उवाच) ततः संयोगमाश्रित्य व्याघ्रः तद्गतमानसः । प्राणायामैः स्वकं देहं परित्यज्य दिवं गतः ॥ २५१ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा योगैश्वर्यसमन्वितः । विमानेनाति महता सेवितश्चाप्सरोगणैः ॥ २५२ ॥ विमाने संस्थितं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गता । वहुला हृष्टपुष्टाङ्गी गोकुलं पुनरागता ॥ २५३ ॥ आगत्य च यथावृत्तं व्याघ्रसंवादमुत्तमम् । सखीभ्यः कथयामास जनन्यै स्वसुताय च ॥ ३५४ ॥ वहुला पुत्रसंयुक्ता सुप्रीता सुनिराकुला । गोधनैर्वृषभै–र्वत्सै–र्गोपी–गोप–जनैर्वृता । विचचाराटवीं सर्वामशेषां भयवर्जिता ॥ २५५ ॥ उषित्वा सुचिरं कालं सत्यवाक्यप्रभावतः । गृहीत्वा सर्वयूथं च नृपं च सपरिच्छदम् ॥२५६॥ समीपस्थांश्च तान् सर्वान् वृक्षवल्लीलतादिकान् । समेत्य तैर्महापुण्या वहुला प्रययौ दिवम् ॥२५७॥ महाविमानैः श्रीमद्भिरसंख्यैः सर्वतो वृता । उपर्युपरि लोकानां स्वर्गलोकं समाश्रिता ॥२५८॥ तत्र सा भागसंपूर्णमसंख्यातं सुरोत्तमैः । क्रीडते सहिता सर्वैर्यावदाहुतसंप्लवम् ॥ २५९ ॥ इत्येतत्सत्यवाक्यस्य

महात्म्यं समुदाहृतम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स्वर्गलोकं स गच्छति ॥ ३६० ॥ बहुलाव्याघ्रसंवादं यः पठेत् सततं नरः । शृणुयादेकचित्तस्तु स विघ्नैर्नाभिभूयते ॥ २६१ ॥ विमुक्ता पतिभिः पुत्रैर्बान्धवैर्वापि योषितः । नरो वा यः पठेन्नित्यं स तं भवति संगतः ॥ ३६२ ॥ क्षेत्रमध्ये च पठतां बालानां शांतिवर्धनम् । भवेद् ग्रहाभिभूतानां रक्षामेतां प्रयोजयेत् ॥२६३॥ दुर्गेषु पठतां नित्यमटव्यामटनेषु च । दिवा वा यदि वा रात्रौ न तेषां विद्यते भयम् ॥ २६४॥ दुःस्वप्नारिष्टदुर्भिक्षं पठतः सम्प्रणश्यति । बन्ध्यायाश्च भवेत् पुत्रः सङ्गतिः पतिना सह ॥ ३६५ ॥ कुमारी चैव शृण्वन्ती वीरं पतिमवाप्नुयात् । नारी वा पुरुषो वापि दुर्भगः सुभगो भवेत् ॥ २६६ ॥ गवां पर्वसु भक्त्या यः सर्वदा पुरतः पठेत् । यशोवृद्धिमवाप्नोति स्वर्गलोकं स गच्छति ॥ २६७ ॥ गवां यश्चाग्रतो नित्यं पठेत् पर्वणि पर्वणि । स गोवृद्धिमवाप्नोति गोलोके च महीयते ॥ २६८ ॥

इतीतिहाससमुच्चयोक्ता बहुलाव्रतकथा समाप्ता ।

अथ विसर्जनम्

कथां श्रुत्वा पुष्पाञ्जलिभिस्त्रिभिः पूजयित्वा—यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च । ॐ श्रीभगवति सवत्सबहुले पूजितासि प्रसीद क्षमस्वेति विसृज्य गोभिलगोपादीनपि विसर्जयेत् । ततः कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्य कृतैतद्बहुलापूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । इति दक्षिणान्दद्यात् । आचारादस्मिन्दिने स्त्रियो यवान्नभक्षणं कुर्वन्तीति । सवत्सां गां सिन्दूरादिभिरभ्यर्च्य यवान्नभक्षणमपि कारयन्तीति ।

इति बहुलाव्रतपूजा समाप्ता ।

अथ हलषष्ठीपूजा

पुत्रार्थिभिरत्र व्रतं कर्तव्यम् । तद्यथा—भाद्रकृष्णषष्ट्यां पञ्चदेवतां गौरीं च सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽद्य भाद्रे मासि कृष्णे पक्षे षष्ठ्यां तिथौ अमुकगोत्राया मम श्री अमुकीदेव्याः सकलपापक्षयपूर्वकपूर्वजन्मदौर्भाग्यवैधव्यरहितसकलसुखनिमित्तकपुत्रचिरजीवित्वप्राप्त्यर्थं शम्भुगौरीषण्मुखविनायकानां व्रतपूजनं कथाश्रवणं चाहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य शिव-पार्वती-कार्तिकेय-गणपतिदेवान् यथोपचारैः सम्पूज्य (१९ पृष्ठस्थकथोक्त ३९ श्लोकक्रमेण) पुष्पाञ्जलिं समर्प्य कथां शृणुयात् ।

अथ हलषष्ठीव्रतकथा

युधिष्ठिर उवाच—भगवन् देवकीसूनो लोकानां हितकाम्यया । जातोऽसि भूतले देव तस्मान्मेऽनुग्रहं कुरु ॥ १ ॥
अभिमन्युर्हतो बालः सुभद्राऽपि सुदुःखिनी । जीवितुं नापि शक्नोति शोकेन परिपीडिता ॥ २ ॥ तथेयं रुदती नित्यं
द्रौपदी योषितां वरा । प्रत्यक्षोऽहर्निशं देव पञ्चपुत्रविनाशनात् ॥ ३ ॥ अभिमन्योश्च भार्याया गर्भवासो यदूत्तम !
तस्मिन्नपि च सन्तानः सोऽपि दग्धोऽस्त्रतेजसा ॥ ४ ॥ अश्वत्थाम्नाऽतिदुष्टेन भृशं निश्चलतां गतः । महादुःखमिदं
घोरं संसारेऽपत्यलोकजम् ॥ ५ ॥ पितुस्तत्सफलं जन्म पुत्राणां चिरजीवितम् । यदि दीर्घायुरारोग्यं सन्ततेः स्यात्तदुत्तमम् ॥ ६ ॥
तथा कथय देवेश दानं वा व्रतमेव च । येन तेऽपत्यशोकेन दुःखैर्न परिपीडिताः ॥ ७ ॥
श्रीभगवानुवाच—उत्तरा व्रतमेकं तु करोतु खल्वपूर्वकम् । मृतोऽपि लभतां गर्भो जीवितं नात्र संशयः ॥ ८ ॥
युधिष्ठिर उवाच—को विधिर्देवता का वा कस्मिन् काले विधीयते । कथमाख्यातिमायातं कया कृतमिदं व्रतम् ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—सुभद्रो नाम राजासीत् सुवर्णा तस्य च प्रिया। तस्य सञ्जनयामास पुत्रो हस्तीति विश्रुतः ॥ १० ॥ स्वनाम्ना निर्मिता येन पुरा वै हस्तिनापुरी। स बालः प्रययौ गङ्गां किल धात्रीसहायवान् ॥ ११ ॥ जलक्रीडात्मको बालो बालत्वाज्जलमाविशत्। गृहीत्वा तत्र तं बालं ग्राहोऽगाधजलं गतः ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा क्रोधवेगेन पुत्रदुःखेन भामिनी। धात्रीसुतं सुवर्णाऽपि ज्वालाज्वलन् आक्षिपत् ॥ १३ ॥ अग्नौ क्षिप्त्वा प्रशोचन्ती स्वपुत्रं रुदती भृशम्। राजापि दुःखसंविग्नो जीवन्त्यक्तुमना अभूत् ॥ १४ ॥ धात्री दुःखसमभ्यासाज्जगाम गहनं वनम्। वने कुशपलाशस्य मध्याह्ने देवमर्चयत् ॥१५॥ शम्भुं षण्मुखपार्वत्या विघ्नराजेन संयुतम्। निवृत्य शीर्णप्रासादे सर्वजन्तुविवर्जिते ॥ १६ ॥ धात्र्या च वीक्षिता देवाः पूजिताश्च दिनं प्रति। तृणधान्यमधूकाभ्यामाहारं साऽकरोत्तथा ॥ १७ ॥ एवं तस्याः स्थितायास्तु नगरेऽद्भुतदर्शनम्। बभूव भाद्रमासस्य कृष्णषष्ठ्यां युधिष्ठिर ॥ १८ ॥ निर्ययौ भ्राष्ट्रमध्याद्वै धात्रीपुऽत्रोतिसुन्दरः। आश्चर्यपूर्वमेतद्धि राज्ञी दृष्ट्वा जनैः सह ॥ १९ ॥ चिन्तयाऽकुलितदृष्टो धात्रीपुत्रो हि जीवितः। अपृच्छत् कारणं तत्त्वाद् ब्रह्मज्ञात् ज्ञानिनस्तदा ॥ २० ॥ अत्रान्तरे शिवस्यांशो दुर्वासा मुनिसत्तमः। आजगाम तदादेशान्नृपं बोधयितुं हितम् ॥ २१ ॥ मनोरथं शिवं प्राप्तं दुर्वाससमकल्मषम्। अर्घ्येण पूजयामास चागतं स च भूपतिः ॥ २२ ॥ तमेवार्थं च पप्रच्छ नमस्कृत्य पुनः पुनः। दुर्वासा उवाच—राजंस्तव भयात्तत्र धात्री च या वनं गता ॥ २३ ॥ तया च पूजितः शम्भुः पार्वत्या षण्मुखेन च। गणेशः पूजितश्चैव तस्य तत्फलमीदृशम् ॥ २४ ॥ अद्यैव तत्र गन्तव्यं युवाभ्यां चापि भूपते। गृहाण त्वं महीपाल व्रतमेतन्महाफलम् ॥ २५ ॥ उभाभ्यां च महाराज सन्तोष्य प्रेषितो ध्रुवम्। श्रुत्वा राजा च राज्ञी च जग्मतुस्तद् वनं महत् ॥ २६ ॥ गतैर्हर्षेण सहितैर्दुर्वासादिद्विजैः सह। दृष्ट्वा धात्री पूजयन्ती कुशब्रह्मतरोरधः ॥ २७ ॥ श्रद्धया परया युक्ता देवमूर्तिचतुष्टयम्। राजा धात्रीं समाश्वास्य पुत्रेण समयोजयत् ॥ २८ ॥ धात्री हर्षेण संयुक्ता व्रतं सर्वं न्यवेदयत्। धात्र्युवाच—राजंस्तव भयादत्र यतः प्रभृति चागता ॥ २९ ॥

पूजयामि शिवं देवीं ससुतां वायुभोजना। अर्धरात्रे मया दृष्टः स्वप्नो हर्षविवर्धनः ॥ ३० ॥ शङ्करो वृषमारूढो गौरीपुत्रद्वयान्वितः। अधः पलाशकुशयोस्ततो जीवतु ते सुतः ॥ ३१ ॥ यन्नो व्रतं कृतं तस्मात्तव पुत्रोऽस्ति जीवितः। राज्ञी चैवं व्रतवरं करोतु विधिपूर्वकम् ॥३२॥ सापि जीवत्सुपुत्रेण बहुपुत्रा भविष्यति। व्रतस्यास्य विधानं च दुर्वासा कथयिष्यति ॥३३॥ दुर्वासा उवाच—सम्प्राप्ता भाद्रमासस्य कृष्णा षष्ठी युधिष्ठिर। तत्राहनि व्रतं कुर्वन् प्रातः स्नात्वा तु संयतः ॥ ३४ ॥ व्रतस्य नियमं कृत्वा क्रोधलोभविवर्जितः। यावद् व्रतं करोतीह न हिंस्याज्जीवमात्रकम् ॥ ३५ ॥ न लंघेज्जीवपद्धतिं व्रतसम्पूर्णहेतवे। सखिभिः सह मध्याह्ने पुत्रयुक्तेन चेतसा ॥ ३६ ॥ अधः पलाशकुशयोः कृत्वा मूर्तिचतुष्टम्। सशिवास्कन्दविघ्नेशं मन्त्रैरेभिः प्रपूजयेत् ॥ ३७ ॥ धूपैर्नानाविधैः पुष्पैः कालोद्भूतमनोरमैः। सर्वेषां पूजनं कुर्याद् भावयुक्तेन चेतसा ॥ ३८ ॥ नमः शिवाय सौम्याय पञ्चवक्त्राय शूलिने। नन्दिभृङ्गिमहाकायगणयुक्ताय शंभवे ॥ ३९ ॥ शिवायै हरकान्तायै प्रकृत्यै श्रेष्ठहेतवे। सुखसौभाग्यदायिन्यै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ॥ ४० ॥ नमः शिखिवाहनाय नमः क्रौञ्चविदारिणे! कुमाराय विशाखाय स्कन्दाय च नमो नमः ॥ ४१ ॥ नम आखुवाहनाय नमो लम्बोदराय च। स्वर्णदन्तैकदन्ताय विघ्नेशाय नमो नमः ॥ ४२ ॥ दीपचन्दनधूपैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा। सम्पूज्य गृहमागच्छेत् सतूर्यद्विजसत्तमैः ॥ ४३ ॥ नीवारौदनमश्नीयान्मधूककुसुमैः सह। महिष्या दधिदुग्धं च घृतं तक्रं विशेषतः ॥ ४४ ॥ विधिमेवं व्रतस्यास्य जनो राजन् करोति यः। सद्यो वै लभते सौख्यं पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ४५ ॥ दुर्वासोवचनं श्रुत्वा राजा चक्रे तु तद्व्रतम्। निःसृत्य राजपुत्रस्तु तद्बिलादाह सत्वरम् ॥४६॥ ववन्दे चरणौ मातुः पितुर्दुर्वाससस्तदा। अपरे बहवः पुत्रा जाता राज्ञश्च तत्फलात् ॥ ४७ ॥ दीर्घायुषो महावीर्यबलसत्त्वगुणान्विताः। ईतयः प्रशमं याता मारी दुर्भिक्षमेव च ॥४८॥ चक्रे राज्यं च निर्विघ्नं प्राप्य वर्षगणान् बहून्। श्रीकृष्ण उवाच—एतद्व्रतं करोत्वेषा उत्तरा वरवर्णिनी ॥ ४९ ॥ केशवस्य वचः श्रुत्वा कृतार्थोऽभूद् युधिष्ठिरः।

अश्वत्थाम्ना हतो गर्भो जीवितस्तत्र वाऽचिरम् ॥ ५० ॥ व्रतास्यास्य प्रभावेण स्थिरा भवति सन्ततिः । अथ चोद्यापनं कुर्याद्यथोक्तं विधिपूर्वकम् ॥ ५१ ॥ सुवर्णमहिषी गावो देयं वासांसि ब्रह्मणे । सुवर्णप्रतिमां कुर्यात्तथा रौप्यीं सुशोभनाम् ॥ ५२ ॥ पूजा चैव तु कर्तव्या वेदवेदांगवित्तमैः । उत्तरां कारयामास व्रतं विधिविदांवरः ॥ ५३ ॥ अश्वत्थाम्ना हतो गर्भो व्रतेनाऽनेन रक्षितः । चलितोऽस्य प्रभावेण स गर्भश्चोत्तरोदरे ॥ ५४ ॥ तत्क्षणं जीवमापन्नः प्रसादं समपद्यत । जनमेजयस्य जनिता परीक्षिद् भुवि भूपते ॥ ५५ ॥ एवंविधं यः कुरुते व्रतं राजन्ननुत्तमम् । स पापं सकलं त्यक्त्वा सूर्यलोके महीयते[1] ॥ ५६ ॥

इति श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे कुशपलाशाख्यहलषष्ठीव्रतकथा समाप्ता ।

---

[1] ततः आरार्तिकं विधाय—

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥

इति पूजितदेवताः पूजिताःस्थ क्षमध्वम्, स्वस्थानं गच्छत । इति विसृज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—

नमोऽद्य कृतैतद्-हलषष्ठीव्रतपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे । इति ब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात् ।

अथ श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीपूजा[1]

तत्र कृतनित्यक्रियो व्रती मृन्मयीं कृष्णादिप्रतिमां प्रकल्प्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय[2]—ओं अद्य भाद्रे मासि कृष्णे पक्षेऽष्टम्यां तिथौ अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणः सप्तजन्मावच्छिन्नबाल्य-कौमार-यौवन-वार्धक्यपापक्षयमानसेप्सित-लाभमहापातकनाशकामः श्रीकृष्णपूजनोपवासव्रतमहं करिष्ये । (ग्रामपूज -सङ्कल्पस्तु २२ पृष्ठे टिप्पण्यां द्रष्टव्यः) इति संकल्प्य (सति सम्भवे पृ० २९७ परिशिष्टोक्तविधिना कलशस्थापनं कृत्वा) पुष्पहस्तेन—

---

१. ब्रह्मपुराणे—अथ भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे। अष्टाविंशे तु संजातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः ।। भारावतारणार्थाय क्षत्रियाणां वधाय च। तस्मात् स तत्र सम्पूज्यो यशोदा देवकी तथा ।। गन्धमाल्यैस्तथा धूपैर्यवगोधूमसम्भवैः । गोरसैर्भक्ष्यभोज्यैश्च विविधैरपि ।। रात्रौ प्रजागरः कार्यो नृत्यगीतसमाकुलः ।। इदं व्रतं यस्मिन् दिने उदयगामिनी कृष्णाष्टमी प्राप्यते तद्दिने कर्तव्यम् । अत्र मानन्तु म० म० वाचस्पतिमिश्रकृतद्वैतनिर्णये पद्मपुराणोद्धृतवचनम् । तथा हि—पूर्वविद्धाऽष्टमी या तु उदये नवमीदिने । मुहूर्तमपि संयुक्ता सम्पूर्णा साऽष्टमी भवेत् । कला काष्ठा मुहूर्ताऽपि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः। नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात् सप्तमीसंयुता नहि । पुनश्च तथैव—पञ्चगव्यं यथा शुद्धं न ग्राह्यं मद्यदूषितम् । रवि (सप्तमी) विद्धा तथा त्याज्या रोहिण्यापि युताऽष्टमी । इदं च व्रतं स्त्रीपुरुषसामान्याधिकारम् तथाहि भविष्यपुराणे—नरो वा यदि वा नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । न करोति तदा घोरा व्याली भवति कानने । इति । (जयन्तीव्रतनिर्णयः ३७ पृष्ठे टिप्पण्यां द्रष्टव्यः)

२. एतच्च व्रतं नित्यम्, नित्यतया चाऽत्र सङ्कल्पो नेति व्रतपद्धतिः । कृत्यमहार्णवे तु—अकुर्वन्निरयं याति'……'इत्यादि यथेष्टम् फलमाप्नुयात्' इति भविष्यपुराणोक्तवचनाभ्यां नित्यं काम्यं चेदमिति प्राहुस्तन्मतमनुसृत्यैवात्र मूले सङ्कल्पः संयोजितः।

वैष्णवानां जयन्तीव्रतन्तु अग्रे (३७ पृष्ठे) वक्ष्यामः तिथिचिन्तामणौ महेशठक्कुरास्तु—नवमीयुक्तायामेवाऽष्टम्यां जयंतीव्रतमित्यूचुस्त न्मैथिला न समाद्रियन्ते। वस्तुस्ततु तन्मन्दम्, ब्रह्मपुराणोक्त—कृष्णजन्माष्टमीव्रतकथायामप्यस्य तन्नाम्नैवोपादानात्।

ॐ भगवान् श्रीकृष्णोऽसि। ॐ बलभद्रोऽसि। ॐ वसुदेवोऽसि। ॐ नन्दोऽसि। ॐ यशोदाऽसि। ॐ देवक्यसि। ॐ रोहिण्यसि। ॐ सुभद्राऽसि। ॐ दुर्गाऽसि। ॐ रुक्मिण्यसि। ॐ सत्यभामासि। इति प्रतिमूर्ति स्पृशन् नामकरणं कुर्यात्।

ततः अञ्जलिं बद्ध्वा ध्यायेत्—ॐ नीलोत्पलदलश्यामं सर्वाऽलङ्कारभूषितम्। देवक्यङ्कस्थितं बालं स्तनपायिनमीश्वरम्॥ चतुर्भुजं शङ्खचक्र-गदापद्मान्वितं प्रभुम्। ध्यायेत्तं पद्मपत्राक्षं श्रीवत्सं दधतं हरिम्॥

ततः तिलानादाय—ॐ यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ ॐ भूर्भुवः स्वः भगवन् श्रीकृष्ण इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञँ स मिमन्दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामोम् प्रतिष्ठ॥ ॐ भगवन् श्रीकृष्ण इह सुप्रतिष्ठितो भवेति संस्थाप्य शंखेन पाद्यमादाय ॐ योगाय योगेश्वराय योगपतये योगसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ इदं स्नानीयम् ॐ भगवते श्रीकृष्णाय नमः। ततः सचन्दनपुष्पदूर्वातुलसीपत्रयुतजलमादाय—ॐ ज्ञानाय ज्ञानेश्वराय ज्ञानपतये ज्ञानसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ इति स्नपनं कुर्यात् (सहस्रशीर्षेति षोडशर्चेनाऽपि स्नापयेत्) ततोऽर्घपात्रमादाय—ॐ विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वपतये विश्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ एषोऽर्घः ॐ भगवते श्रीकृष्णाय नमः। ततः चन्दनमादाय—ॐ सर्वाय सर्वेश्वराय सर्वपतये सर्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः॥ इदं चन्दनं ॐ भगवते श्रीकृष्णाय नमः। एते यवतिलाः ॐ भगवते श्रीकृष्णाय नमः। ततः यज्ञोपवीतमादाय–ॐ सत्याय

ग्रामपूजासङ्कल्पस्तु—ओमद्येत्यादि–एतद्ग्रामवासिनां नानागोत्राणां सकलजनानाम् (एतत्पूजोपकारकाणामन्यद्ग्रामवासिनां च) सप्तजन्मावच्छिन्नवाल्य-कौमार-यौवनवार्धक्यपापक्षयमानसेप्सितलाभमहापातकनाशकामः श्रीकृष्णपूजनमहं करिष्यामि।

सत्येश्वराय सत्यपतये सत्यसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ इमे यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते भगवते श्रीकृष्णाय नमः । ततः पीतवस्त्रमादाय—ओं नारायण नमस्तेऽस्तु नमो गरुड़वाहन । त्रैलोक्यव्यापकं देव वस्त्रं मे प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं पीतवस्त्रं बृहस्पतिदैवतं भगवते श्रीकृष्णाय नमः । आचमनीयम्—ओं सुरासुराणामीशाय क्षीराब्धिशयनाय च । दद्यादाचमनं तस्मै कृष्णाय च नमो नमः ॥ इदमाचमनीयं भगवते श्रीकृष्णाय नमः । आभूषणं, तदभावे भूषणार्थं द्रव्यम्—ओं सर्वेश्वराय सर्वाय विश्वरूपधराय च । दद्यात् सर्वमलङ्कारं कृष्णाय च नमो नमः ॥ इदं (भूषणम्) भूषणार्थं द्रव्यं भगवते श्रीकृष्णाय नमः । पुष्पम्—ओं योगेश्वराय देवाय योगानां पतये नमः । योगोद्भवाय नित्याय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ओं सुगन्धीनि सुपुष्पाणि मालत्यादीनि वै प्रभो । मयानीतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ॥ एतानि पुष्पाणि० । माल्यम्—ओं नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम् । वासुदेव जगन्नाथ प्रीत्यर्थं स्वीकुरु प्रभो ॥ इदं पुष्पामाल्यम्० । तुलसीपत्राणि—ओं तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम् । भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥ एतानि तुलसीपत्राणि० । एतानि दूर्वादलानि० । इदमाचमनीयं भगवते श्रीष्णाय नमः ।

अथ अङ्गपूजा—ओं गोविन्दाय नमः, पादयोः । ओं माधवाय नमः, जंघयोः । ओं मधुसूदनाय नमः, कट्याम् । ओं पद्मनाभाय नमः, नाभौ । ओं हृषीकेशाय नमः, हृदये । ओं सङ्कर्षणाय नमः, स्तनयोः । ओं वामनाय नमः, बाह्वोः । ओं दैत्यसूदनाय नमः, हस्तयोः । ओं श्रीकृष्णाय नमः, कण्ठे । ओं सुमुखाय नमः, मुखे । ओं त्रिविक्रमाय नमः, नासिकायाम् । ओं पुण्डरीकाक्षाय नमः, नेत्रयोः । ओं नृसिंहाय नमः, श्रोत्रयोः । ओं उपेन्द्राय नमः, ललाटे । ओं हरये नमः, शिरसि । ओं श्रीकृष्णाय नमः सर्वाङ्गे ।

ततो धूपः—ओं यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च । विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमो नमः ॥ एष धूपः० । दीपः—आज्यं सद्वर्तिसंयुक्तं वह्निना दीपितं मया । दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह ॥ एष दीपः० ।

नैवेद्यम्—ओं विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च । विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमो नमः॥ एतानि नानाविधिनैवेद्यानि० । ततः मूलमन्त्रेण ('ओं श्रीकृष्णाय नमः' इत्यनेन) अष्टोत्तरशतं दशवारं वा जपं कृत्वा—ओम् गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ततः ताम्बूलम्—ओं पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् । कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् । इदं ताम्बूलम्० । द्रव्यम्—ओं हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमवीजं विभावसोः अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ इदं दक्षिणाद्रव्यम्० । ततः पुष्पाञ्जलिः—ओं योगाय योगेश्वराय योगपतये योगसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ इति मन्त्रेण वारत्रयं पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ।

ततः तिलेन ओं बलभद्र इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ॐ बलभद्राय नमः । इदमनुलेपनम्० । एते यवतिलाः० । एतानि पुष्पाणि० । इदं पीतवस्त्रं बृहस्पतिदैवतम्० । इमे यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते० । इदं माल्यम्० । इदं दूर्वादलम्० । इदं तुलसीपत्रम्० । एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बुलनानाविधिनैवेद्यानि । इदमाचमनीयम्० । एष पुष्पाञ्जलिः ओं बलभद्राय नमः ॥

ततः ओं वसुदेव इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं वसुदेवायः नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः सम्पूजयेत् । ततः ओं नन्द इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं नन्दाय नमः । इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः सम्पूजयेत् । ततः ओं यशोदे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं यशोदायै नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः सम्पूजयेत् । ततः ओं देवकि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं देवक्यै नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत् । ततः ओं रोहिणि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं रोहिण्यै नमः । इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत् । ततः

ओं सुभद्रे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ॐ सुभद्रायै नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत् । ततः ओ दुर्गे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं दुर्गायै नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत् । ततः ओं रुक्मिणि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं रुक्मिण्यै नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत् । ततः ओं सत्यभामे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं सत्यभामायै नमः, इति गन्धादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत् । ततः पुष्पाञ्जलिमादाय—

ॐ अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् । वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम् ॥ १ ॥
दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् । गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम् ॥ २ ॥
अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारकम् । अनादिनिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम् ॥ ३ ॥
नारायणं चतुर्बाहुं शंखचक्र-गदाधरम् । पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम् ॥ ४ ॥
श्रीवत्साङ्कं जगत्सेतुं श्रीपतिं श्रीधरं हरिम् । प्रणतोऽस्मि सदा देवं देवदेवं जगत्पतिम् ॥ ५ ॥
नामान्येतानि सङ्कीर्त्य ईप्सितं प्राप्नुयान्नरः । त्राहि मां देव देवेश हरे संसारसागरात् ॥ ५ ॥
त्राहि मां दुःखशोकघ्न रोगशोकार्णवाद्धरे । दुर्गतांस्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत् सकृत् ॥ ७ ॥
सोऽहं देवातिदुर्वृत्तस्त्राहि मां शोकसागरात् । पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं महत्यज्ञानसागरे ॥ ८ ॥
त्राहि मां देव देवेश त्वद्दतेऽन्यो न रक्षकः ॥ ८ ॥

एष पुष्पाञ्जलिः ओं सपरिवाराय श्रीकृष्णाय नमः । इत्येतैर्वारत्रयं पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । ततो दण्डवत् प्रणम्य यथाशक्ति स्तोत्रादिकं पठेत् । ततः कथां श्रुत्वा जन्मरहस्यं च शृणुयाद् ।

अथ श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतकथा

नारद उवाच—भगवन् श्रोतुमिच्छामि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । को विधिः किं फलं चास्य तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ब्रह्मोवाच—श्रृणु नारद वक्ष्यामि विष्णोर्जन्मव्रतं शुभम् । कर्त्तव्यं च सदा विप्र त्रिदशैरपि मानवैः ॥२॥ कृष्णपक्षे नभोमासि अष्टमीरोहिणीयुता । विना विष्णुप्रसादेन कर्तुं विप्र न शक्यते ॥३॥ देवकीसहितं कृष्णमर्चयन्ति सुभक्तितः । मन्वन्तरसहस्रन्तु प्रीतास्तेषां पितामहाः ॥४॥ जयन्ती[1] न कृता यैस्तु जागरेण समन्विता । श्वपचैस्ते समा ज्ञेया जयन्तीवर्जिता नराः ॥५॥ योषितश्च न सन्देहस्तथोक्तं तव सुव्रत । धिग् माता धिक् पिता विप्र जयन्ती येन वर्जिता ॥६॥ तेन कार्यं न पितृणां परं दुःखाय केवलम् । सन्ति व्रतान्यनेकानि पुण्यकोटिप्रदानि च ॥७॥ जयन्तीव्रततुल्यानि न दृष्टानि मुनीश्वर । प्रेतयोनिगतायां न प्रेतत्वं नाशितं च तैः ॥८॥ यैः कृता भाद्रकृष्णा वै अष्टमी रोहिणीयुता । किं पुनर्बुधवारेण सोमेन च विशेषतः ॥९॥ किं पुनर्नवमीयुक्ता कल्पकोटिस्तु मुक्तिदा । नृणां विना व्रतेनापि तपसा वा तथार्जितम् ॥१०॥ कृतेनैकोपवासेन प्रीतो भवति माधवः । भक्त्या विनोपवासेन रात्रौ जागरणेन च ॥११॥ फलं यच्छति दैत्यारिर्जयन्तीव्रतसंभवम् । पुराणे गीयते विप्र स्वयं कृष्णेन कीर्त्तिता ॥१२॥ जयन्ती दुर्लभा कृष्णे पापिनां न च वैष्णवे । एकेनैवोपवासेन पापं जन्मार्जितं हरेत् ॥१३॥ किं किं छिद्रं न सञ्जातं संसारे वसतां नृणाम् । येषां देहस्थितैः प्राणैर्जयन्ती विफलीकृता ॥१४॥ उपवासासमर्थेन जयन्तीवासरे द्विज । मृत्युरङ्गीकृतस्तेन यावदाभूतसंप्लवम् ॥१५॥ न स्नातं न हुतं दत्तं नार्च्चितो देवकीसुतः । जयन्तीवासरे प्राप्ते

---

[1] नवमीयुक्ताऽष्टमीव्रतमेव 'जयन्तीव्रतम्' इति म. म. महेशठक्कुरादयः । वस्तुतस्तु कृष्णाष्टमीव्रतस्यैव नामान्तरं जयन्तीव्रतमिति न वैष्णवानां मते वैमत्यमिति तत्त्वविदः ।

उपवासो न जागरम् ॥१६॥ लिखित्वा चित्रगुप्तेन दत्तं गुप्तपटं मुखे । यमेन यावच्चन्द्रार्कौ दत्ता नरकयातना ॥१७॥ मन्वादिदिवसे जातो देवकीनन्दनो हरिः । तेनासावष्टमी पुण्या पुण्यकोटिफलप्रदा ॥१८॥ अस्यां तिथौ वारिमात्रं पितॄणां यः प्रयच्छति । गयाश्राद्धं कृतं तेन शताब्दं नात्र संशयः ॥१९॥ जयन्तीवासरे प्राप्ते यः कुर्याद् देवकीव्रतम् । कपिलागोयुगं दत्तं यामे यामे तु तद्दिने ॥२०॥ नष्टो धर्मो हता कीर्त्तिर्जयन्ती विफलीकृता । पितरः पातिताः स्वर्गाज्जयन्त्यां भोजने कृते ॥२१॥ सन्ततिर्नैव तस्यास्ते स्वदारेण च शाश्वतम् । न च वृद्धिर्भवेदेव जयन्त्यां भोजने कृते ॥२२॥ युगादिवासरे पुण्यं यत्पुण्यं कल्पवासरे । तत्पुण्यं कोटिगुणितं जयन्त्यां समुपोषणे ॥ २३ ॥ कोटिव्रतकृतं पुण्यं यच्छते देवकीसुतः । जयन्त्यां पूजितो भक्त्या रात्रौ जागरणे कृते ॥२४॥ हरिहरीति कृतोच्चारे प्राणादपि विमुच्यते । तथापि प्राप्यते मोक्षः कृते कृष्णाष्टमीव्रते ॥२५॥ यत्फलं मथुरां गत्वा दृष्टे विश्वान्तसंज्ञके । तत्फलं प्राप्यते विप्र जयन्त्यां समुपोषणे ॥२६॥ रटन्तीह पुराणानि भूयो भूयो हि नारद । न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं जयन्त्यां समुपोषणे ॥२७॥ अम्बरीषेण शूरेण धुन्धुमारेण धीमता । काकुत्स्थेन दीलीपेन शुकेन च महात्मना ॥२८॥ वसुना धर्मपुत्रेण नहुषेण ययातिना । गाधिना बिन्दुना चैव नृगेणापि च धीमता ॥२९॥ इन्द्रद्युम्नेन वीरेण हरिश्चन्द्रेण धीमता । नकुलेन काशिराजेन गांगेयेन महात्मना ॥३०॥ धनञ्जयेन बलिना प्रह्लादेन कलिप्रिय । मनुना मानवेन्द्रेण अलर्केण शतायुषा ॥३१॥ मन्त्रिणा च सुमन्त्रेण जनकेन यशस्विना । शतधन्वना जयन्तेन उत्तरेण सुमन्युना ॥३२॥ सागरेण मरुत्तेन कुशलाभेन धीमता । भगीरथेन रघुणा जह्नुना भरतेन च ॥ ३३ ॥ कार्त्तवीर्यार्जुनेनैव गयेन च महात्मना । एतै राजभिरन्यैश्च धर्मज्ञैश्च सुरादिभिः ॥३४॥ तुष्ट्यार्थं देवकीसूनोर्जयन्ती समुपोषिता । व्रतं कृत्वा महीं भुक्त्वा प्राप्य कीर्तिं च शाश्वतीम् ॥३५॥ जयन्त्यां तूपवासेन विष्णोर्देहेन संस्थिताः । कृष्णजन्माष्टमी प्राप्य येन भुक्तं द्विजोत्तम ॥ ३६ ॥ त्रैलोक्यसंभवं पापं तेन भुक्तं न संशयः ॥ ३७ ॥ करोति न च या नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ।

सा मृता जायते व्याली राक्षसी च विशेषतः ॥३८॥ कपिलागोसहस्रं च यो ददाति दिने दिने । तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥३९॥ रत्नकोटिसहस्राणि यो ददाति द्विजोत्तम । तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥४०॥ मातङ्गानां सहस्रं च यो ददाति द्विजातये । तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥४१॥ हेमभारसहस्रं च यो ददाति दिने दिने । कुरुक्षेत्रे प्रयच्छन्ति जयन्त्यां समुपोषणे ॥४२॥ वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च । तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषणे ॥४३॥ कोटिजन्मकृतं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा । प्रसादाद् देवकीसूनोः पापं हरति वै मुने ॥४४॥ न कुर्वन्ति न जानन्ति कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् । धर्मबाह्यास्तु ते ज्ञेया दैतेयास्ते नराधमाः ॥४५॥ धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च मुनिपुङ्गव । ददाति वाञ्छितान् कामान् कृता भाद्रेऽसिताष्टमी ॥४६॥ एकेनैवोपवासेन जयन्त्यां च प्रजायतो । जन्मनोपार्जितं पापं प्रहरार्द्धेन नश्यति । रात्रौ जागरणे विप्र कृते नश्यन्ति देहिनाम् ॥४७॥ यत्फलं द्वारकायां तु दृष्टे कृष्णमुखे फलम् । प्रत्यहं पठतां पुंसां यच्छते विजयाष्टमी ॥४८॥ कृष्णाष्टमी महापुण्य माहात्म्यं पठते तु यः । सर्वतीर्थफलप्राप्तिं लभते शृणुयादपि ॥४९॥ न व्याधिर्न च रोगो वा न दारिद्र्यं न संक्षयम् । जयन्ती यच्छते पुण्यं पुस्तके लिखिते गृहे ॥५०॥ यत्र तिष्ठति माहात्म्यं जयन्तीव्रतसंभवम् । लिखितं तस्य विप्रेन्द्र जयन्तीव्रतजं फलम् ॥५१॥ न सर्पादिभयं तस्य न चौराग्निभयं तथा । न दैवं राक्षसं चैव माहात्म्यं पठते हि यः ॥५२॥ इह लोके भयं नैव पश्यतां धर्ममुत्तमम् । यः शृणोति नरो भक्त्या कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् ॥ जन्माष्टम्यां हरेर्विप्र कृष्णस्तुष्टः सदा भवेत् ॥५३॥

इति श्रीब्रह्मपुराणोक्ता श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतकथा समाप्ता ।

◆

अथ विष्णुपुराणोक्तं श्रीकृष्णजन्मरहस्यम्

(पराशर उवाच) एवं संस्तूयमाना सा देवैर्देवमधारयत् । गर्भेण पुण्डरीकाक्षं जगतां त्राणकारकम् ॥ १ ॥ ततोऽखिलजगत्पद्मवोधायाच्युतभावना । देवकीपूर्वसन्ध्यायामाविर्भूतं महात्मना ॥ २ ॥ तज्जन्मदिनमत्यन्तमाह्लाद्यमलदिङ्मुखम् । वभूव सर्वलोकस्य कौमुदी शशिनो यथा ॥ ३ ॥ सन्तस्सन्तोषमधिकं प्रशमं चण्डमारुताः । प्रसादं निम्नगा जाता जायमाने जनार्दने ॥ ४ ॥ सिन्धवो निजशब्देन वाद्यं चक्रुर्मनोहरम् । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ५ ॥ ससृजुः पुष्पवर्षाणि देवा भुव्यन्तरिक्षगाः । जज्ज्वलुश्चाग्नयः शान्ता जायमाने जनार्दने ॥ ६ ॥ मध्यरात्रेऽखिलाधारे जायमाने जनार्दने । मन्दं जगर्जुर्जलदाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ ७ ॥ फुल्लेन्दीवरपत्राक्षं चतुर्बाहुमवेक्ष्य च । श्रीवत्सवक्षसञ्जातं तुष्टावानकदुन्दुभिः ॥ ८ ॥ अभिस्तूय च तं वाग्भिः प्रसन्नाभिर्महामतिः । विज्ञापयामास तदा कंसाद् भीतो द्विजोत्तम ॥९॥ (वसुदेव उवाच) ज्ञातोऽसि देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । दिव्यरूपमिदं देव प्रसादेनोपसंहर॥ ०॥अद्यैव देव कंसोऽयं कुरुते मम यातनाम् । अवतीर्णमिति ज्ञात्वा भवन्तं मंदिरे मम॥११॥(देवक्युवाच) योऽनंन्तरूपोऽखिलविश्वरूपो गर्भेपि लोकान् वपुषा विभर्ति । प्रसीदतामेष स देवदेवो यो माययाविष्कृतवान्स्वरूपम् ॥१२॥ उपसंहर सर्वात्मन् रूपमेतच्चतुर्भुजम् । जानति माऽवतारन्ते कंसोऽयं दितिजान्तक ॥ १३ ॥ (श्रीभगवानुवाच) स्तुतोऽहं यत्त्वया पूर्वं पुत्रार्थिन्या तदद्य ते । सफलं देवि सञ्जातं जातोऽहं यत्तवोदरात्॥ १४ ॥ (पराशर उवाच) इत्युक्त्वा भगवांस्तूष्णीं वभूव मुनिसत्तम । वसुदेवोऽपि तं रात्रावादाय प्रययौ वहिः ॥ १५ ॥ मोहिताश्चाभवंस्तत्र रक्षिणो योगनिद्रया । मथुराद्वारपालाश्च व्रजत्यानकदुन्दुभौ ॥१६॥ वर्षतां जलदानां च तोयमत्युल्वणं निशि । सञ्छाद्य प्रययो शेषः फणैरानकदुन्दुभिम् ॥ १७ ॥ यमुनां चाऽतिगम्भीरां नानावर्त्तशताकुलाम् । वसुदेवो वहन् विष्णुं जानुमात्रवहां ययौ ॥ १८ ॥ कंसस्य करमादाय तत्रैवाभ्यागतांस्तटे । नन्दादीन् गोपवृद्धांश्च यमुनायां ददर्श सः॥ १९ ॥ तस्मिन्

काले यशोदाऽपि मोहिता योगनिद्रया। तामेव कन्यां मैत्रेय प्रसूता मोहिते जने ॥ २० ॥ वसुदेवोऽपि विन्यस्य
बालमादाय दारिकाम्। यशोदाशयने तूर्णमाजगामामितद्युतिः ॥ २१ ॥ ददृशे च विबुद्धा सा यशोदा जातमात्मजम्।
नीलोत्पलदलश्यामं ततोऽत्यन्तं मुदं ययौ ॥ २२ ॥ आदाय वसुदेवोऽपि दारिकां निजमन्दिरम्। देवकीशयने न्यस्य
यथापूर्वमवस्थितः ॥ २३ ॥ ततो बालध्वनिं श्रुत्वा रक्षिणः सहसोत्थिताः। कंसाय वेदयामासुर्देवकीप्रसवं
द्विज ॥ २४ ॥ कंसस्तूर्णमुपेत्यैनां ततो जग्राह दारिकाम्। मुंच मुञ्चेति देवक्या सन्नकण्ठन्निवारितः ॥ २५ ॥ चिक्षेप
च शिलापृष्ठे सा क्षिप्ता वियति स्थिता। अवाप रूपं सुमहत्सायुधाष्टमहाभुजम् ॥ २६ ॥ प्रजहास तथैवोच्चैः कंसं च
रुषिताऽब्रवीत्। किं मया क्षिप्तया कंस जातो यस्त्वां बधिष्यति ॥ २७ ॥ सर्वस्वभूतो देवानामासीन्मृत्युः पुरा स ते।
तदेतत्संप्रधार्य्याथ क्रियतां हितमात्मनः ॥ २८ ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ देवी दिव्यस्रग्गन्धभूषणा। पश्यतो भोजराजस्य
स्तुता सिद्धैर्विहायसि ॥ २९ ॥ (पराशर उवाच) कंसस्तदोद्विग्नमनाः प्राह सर्वान् महासुरान्। प्रलम्बकेशिप्रमुखानाहुयासुरपुंगवान् ॥ ३० ॥ (कंस उवाच) हे प्रलम्ब महाबाहो केशिन् धेनुक पूतने। अरिष्टाद्यैस्तथाऽन्यैश्च श्रूयतां वचनं
मम ॥ ३१ ॥ मां हन्तुममरैर्यत्नः कृतः किल दुरात्मभिः। मद्वीर्यतापितैर्वीरान्न त्वेतान् गणयाम्यहम् ॥ ३२ ॥ किमिन्द्रेणाऽल्पवीर्येण किकरेणैकचारिणा। हरिणा वापि किं साध्यं छिद्रेष्वसुरघातिना ॥ ३३ ॥ किमादित्यैस्सवसुभिरल्पवीर्यैः किमग्निभिः। किं चान्यैरसुरैस्सर्वैर्मद्बाहुबलनिर्जितैः ॥३४॥ किन्न दृष्टोऽमरपतिर्मया संवं समेत्य सः। पृष्ठेनैव
वहून् वाणान्नपागच्छन्नरक्षसा ॥ ३५ ॥ मद्राष्ट्रे वारिता वृष्टिर्यदा शक्रेण किन्तदा। मद्बाणभिन्नैर्जलदैरापो मुक्ता
यथेप्सिताः ॥ ३६ ॥ किमुर्व्यामवनीपाला मद्बाहुबलभीरवः। न सर्वे सन्नतिं जाता जरासन्धमृते गुरुम् ॥ ३७ ॥
अमरेषु ममावज्ञा जायते दैत्यपुङ्गवाः। हास्यं च जायते वीरास्तेषु यत्नपरेष्वपि ॥ ३८ ॥ तथापि खलु दुष्टानां तेषामप्यधिकं मया। अपकाराय दैत्येन्द्रा यतनीयं दुरात्मनाम् ॥ ३९ ॥ तद्ये तपस्विनः केचित् पृथिव्यां ये च यज्वनः।

कार्यो दैवापकाराय तेषां सर्वात्मना वधः ॥४०॥ उत्पन्नश्चापि मृत्युर्मे भूतपूर्वश्च यः किल । इत्येतद्दारिका प्राह देवकीगर्भसम्भवा ॥ ४१ ॥ तस्माद्बालेषु परमो यत्नः कार्यो महीतले । तत्रोद्रिक्तबला बाला हन्तव्याः सुप्रयत्नतः ॥ ४२ ॥ इत्याज्ञाप्याऽसुरान् कंसः प्रविश्यात्मगृहन्ततः । मुमोच वसुदेवं च देवकीं च निरोधतः ॥ ४३ ॥ (कंस उवाच) युवयोर्घातिताः पुत्रा वृथैवेते मयाऽधुना । कोप्यन्य एव नाशाय बालो मम समुद्गतः ॥ ४४ ॥ तदलं परितापेन नूनं यद् भावि नो हिते । अर्भका युवयोः कोपादायुषोऽन्ते विहिंसिताः ॥ ४५ ॥ इत्याश्वास्य विमुक्तौ च कंसस्तौ परिशङ्कितः । अन्तर्गृहं द्विजश्रेष्ठ प्रविवेश स्वकन्ततः ॥ ४६ ॥

(इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे चतुर्थोऽध्यायः)

(पराशर उवाच) विमुक्तो वसुदेवोऽपि नन्दस्य शिबिरं गतः । प्रहृष्टं दृष्टवान्नन्दं पुत्रो जातो ममेति वै ॥ १ ॥ वसुदेवोऽपि तं प्राह दिष्ट्या दिष्ट्येति सादरम् । वार्द्धकेऽपि समुत्पन्नस्तनयोऽयं तवाधुना ॥ २ ॥ दत्तो हि वार्षिकः सर्वो भवद्भिर्नृपतेः करः । तदर्थमागतास्तस्मान्नात्र स्थेयं महात्मना ॥ ३ ॥ यदर्थमागताः कार्यं तन्निष्पन्नं किमास्यते । भवद्भिर्गम्यतान्नन्द तच्छीघ्रं निजगोकुलम् ॥४॥ ममापि बालकस्तत्र रोहिणीप्रसवो हि यः । संरक्षीयो भवता यथायं तनयो निजः ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा प्रययुर्गोपा नन्दगोपपुरोगमाः । शकटारोपितैर्भाण्डैः करं दत्त्वा महाबलाः ॥ ६ ॥ वसतां गोकुले तेषां पूतना बालघातिनी । सुप्तं कृष्णमुपादाय रात्रौ तस्मै स्तनन्ददौ ॥ ७ ॥ यस्मै यस्मै स्तनं रात्रौ पूतना सम्प्रयच्छति । तस्य तस्य क्षणेनाङ्गो बालकस्योपहन्यते ॥८॥ कृष्णस्तस्यास्स्तनं गाढं कराभ्यामतिपीडितम् । गृहीत्वा प्राणसहितं पपौ कोपसमन्वितः ॥ ९ ॥ सा विमुक्तमहारावा विच्छिन्नस्नायुबन्धना । पपात पूतना भूमौ म्रियमाणातिभीषणा ॥ १० ॥ तन्नादश्रुतिसन्त्रस्ता विबुद्धास्ते व्रजोकसः । ददृशुः पूतनोत्सङ्गे कृष्णं तां च निपातिताम् ॥ ११ ॥ आदाय कृष्णं सन्त्रस्ता यशोदापि ततो द्विज । गोपुच्छभ्रामणापास्तबालदोषमपाकरोत् ॥ १२ ॥

गोपुरीषमुपादाय नन्दगोपोपि मस्तके। कृष्णस्य प्रददौ रक्षां कुर्वन्निदमुदैरयत् ॥ १३ ॥ (नन्द उवाच) रक्षतु त्वामशेषाणां भूतानां प्रभवो हरिः। यस्य नाभिसमुद्भूतपङ्कजादभवज्जगत् ॥१४॥ येन दंष्ट्राग्रविधृता धारयत्यवनी जगत्। वराहरूपधृद्देवः स त्वां रक्षतु केशवः ॥ १५ ॥ नखाङ्कुरविनिर्भिन्नवैरिवक्षःस्थलो विभुः। नृसिंहरूपी सर्वत्र रक्षतु त्वां जनार्दनः ॥ १६ ॥ वामनो रक्षतु सदा भवन्तं यः क्षणादभूत्। त्रिविक्रमक्रमाक्रान्तत्रैलोक्यस्फुरदायुधः ॥ १७ ॥ शिरस्ते पातु गोविन्दः कण्ठं रक्षतु केशवः। गुह्यं सजठरं विष्णुर्जंघापादौ जनार्दनः ॥ १८ ॥ मुखं बाहू प्रबाहू च मनः सर्वेन्द्रियाणि च। रक्षत्वव्याहतैश्वर्यस्तव नारायणोऽव्ययः ॥ १९ ॥ शार्ङ्गचक्रगदापद्मशङ्खनादाहताः क्षयम्। गच्छन्तु प्रेतकूष्माण्डा राक्षसा ये तवाहिताः ॥ २० ॥ त्वां पातु दिक्षु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदनः। हृषीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वां महीधरः ॥ २१ ॥ एवं कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन बालकः। शायितः शकटस्याधो बालपर्यंकिकातटे ॥ २२ ॥ ते च गोपा महद् दृष्ट्वा पूतनायाः कलेवरम्। मृतायाः परमं त्रासं विस्मयं च तदा ययुः ॥ २३ ॥

(इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे पञ्चमोऽध्यायः)

(पराशर उवाच) कदाचिच्छकटस्याधः शयानो मधुसूदनः। चिक्षेप चरणावूर्ध्वं स्तन्यार्थी प्ररुरोद च ॥ तस्य पादप्रहारेण शकटं परिवर्तितम्। विध्वस्तकुम्भभाण्डन्तद्विपरीतं पपात वै ॥ २ ॥ ततो हाहाकृतो लोको गोपगोपीजनो द्विज। आजगामाथ दद्दशे वालमुत्तानशायिनम् ॥ ३ ॥ गोपाः केनेति केनेति शकटं परिवर्त्तितम्। तत्रैव बालकाः प्रोचुर्बालेनाऽनेन पातितम् ॥ ४ ॥ शकटं परिवृत्तं वो नैतदन्यस्य चेष्टितम्। ततः पुनरतीवासन् गोपा विस्मितमानसाः ॥ ५ ॥ नन्दगोपोऽपि जग्राह बालमत्यन्तविस्मितः। यशोदा शकटारूढभग्नभाण्डकपालिकम् ॥ ६ ॥ शकटं चार्चयामास दधिदुग्धफलाक्षतैः। गर्गश्च गोकुले तत्र वसुदेवप्रचोदितः ॥ ७ ॥ प्रच्छन्न एव गोपानां संस्कारमकरोत्तयोः। ज्येष्ठं च राम इत्याह कृष्णं चैव तथाऽपरम् ॥८॥ गर्गो मतिमतां श्रेष्ठो नामाकुर्वन् महामतिः। अल्पेनैव

तु कालेन रिंगिणौ तौ महाव्रजे ॥ ९ ॥ घृष्टजानुकरौ विप्र बभूवतुरुभावपि । कारीषभस्मदिग्धाङ्गौ भ्रममाणावितस्ततः ॥१०॥
न निवारयितुं सेहे यशोदा तौ न रोहिणी । गोवाटमध्ये क्रीडन्तौ वत्सवाटगतौ पुनः ॥११॥ तदहर्जातगोवत्सपुच्छाकर्षणतत्परौ ।
यदा यशोदा तौ वालावेकस्थानचरावुभौ ॥ १२ ॥ शशाक नो वारयितुं क्रीडन्तावतिचञ्चलौ ।
दाम्ना वध्वा तदा मध्ये निववन्ध उदूखले ॥ १३ ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणमाह चेदञ्च कर्पती । यदि शक्नोषि
गच्छ त्वमतिचञ्चलचेष्टितः ॥ १४ ॥ इत्युक्त्वा च निजं कर्म सा चकार कुटुम्बिनी । व्यग्रायामथ तस्यां च कर्षमाण
उदूखलम् ॥ १५ ॥ यमलार्जुनमध्येन जगाम कमलेक्षणः । कर्पता वृक्षयोर्मध्ये तिर्यग्गतमुदूखलम् ॥ १६ ॥ भग्नादुत्तुङ्गशाखाग्रौ
तेन तौ यमलार्जुनौ । ततः कटकशव्दं समाकर्णनतत्परः ॥ १७ ॥ आजगाम व्रजजनो ददृशे च
महाद्रुमौ । भग्नस्कन्धौ निपतितौ भग्नशाखौ महीतले ॥ १८ ॥ तथोद्गतसुदन्तं च स्मितहासं च वालकम् । तयोर्मध्यगतं
वद्धं दाम्ना गाढं तथोदरे ॥ १९ ॥ ततस्तु दामोदरतां स ययौ दामवन्धनात् । गोपवृद्धास्ततः सर्वे नन्दगोपपुरोगमाः ॥ २० ॥
मन्त्रयामासुरुद्विग्ना महोत्पातातिभीरवः । स्थानेनेह न नः कार्यं व्रजामोऽन्यं महावनम् ॥ २१ ॥
उत्पाता वहवो ह्यत्र दृश्यन्ते नाशहेतवः । पूतनाया विनाशश्च शकटस्य विपर्ययः ॥ २२ ॥ विना वातादिदोषं च
द्रुमयोः पतनन्तथा । वृन्दावनमितः स्थानात् तस्माद् गच्छाम मा चिरम् ॥ २३ ॥ यावद्भौममहोत्पातदोषेणाभिभवेद्
व्रजम् । इति कृत्वा मतिं सर्वे गमनाय व्रजौकसः ॥ २४ ॥ ऊचुः स्वं स्वं कुलं शीघ्रं गम्यतां मा विलम्वत । ततः क्षणेन
प्रययुः शकटैर्गोधनैस्तथा ॥२५॥ यूथगोवत्सपालानां पालयन्तो व्रजौकसः । द्रव्यावयवनिद्धूतं क्षणमात्रेण तत्तथा ॥२६॥
काककाकीसमाकीर्णं व्रजस्थानमभूद् द्विज । वृन्दावनं भगवता कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ २७ ॥ शुभेन मनसा ध्यातं
गवां वृद्धिमभीप्सता । ततस्तत्राभिरूक्षोपि धर्मकाले द्विजोत्तम ॥ २८ ॥ प्रावृट्काल इवोद्भूतं नवशष्पं समन्ततः ।
स समावासितः सर्वो व्रजो वृन्दावने ततः ॥ २९ ॥ शकटो वाटपर्यन्तचन्द्रार्द्धाकारसंस्थितिः । वत्सपालौ च संवृत्तौ

गोपुरीषमुपादाय नन्दगोपोपि मस्तके । कृष्णस्य प्रददौ रक्षां कुर्वन्निदमुदैरयत् ॥ १३ ॥ (नन्द उवाच) रक्षतु त्वामशेपाणां भूतानां प्रभवो हरिः । यस्य नाभिसमुद्भूतपङ्कजादभवज्जगत् ॥१४॥ येन दंष्ट्राग्रविधृता धारयत्यवनी जगत् । वराहरूपधृद्देवः स त्वां रक्षतु केशवः ॥ १५ ॥ नखाङ्कुरविनिर्भिन्नवैरिवक्षःस्थलो विभुः । नृसिंहरूपी सर्वत्र रक्षतु त्वां जनार्दनः ॥ १६ ॥ वामनो रक्षतु सदा भवन्तं यः क्षणादभूत् । त्रिविक्रमक्रमाक्रान्तत्रैलोक्यस्फुरदायुधः ॥ १७ ॥ शिरस्ते पातु गोविन्दः कण्ठं रक्षतु केशवः । गुह्यं सजठरं विष्णुर्जंघापादौ जनार्दनः ॥ १८ ॥ मुखं बाहू प्रबाहू च मनः सर्वेन्द्रियाणि च । रक्षत्वव्याहतैश्वर्यस्तव नारायणोऽव्ययः ॥ १९ ॥ शार्ङ्गचक्रगदापद्मशङ्खनादाहताः क्षयम् । गच्छन्तु प्रेतकूष्माण्डा राक्षसा ये तवाहिताः ॥ २० ॥ त्वां पातु दिक्षु वैकुण्ठो विदिक्षु मधुसूदनः । हृषीकेशोऽम्बरे भूमौ रक्षतु त्वां महीधरः ॥ २१ ॥ एवं कृतस्वस्त्ययनो नन्दगोपेन बालकः । शायितः शकटस्याधो बालपर्यंकिकातटे ॥ २२ ॥ ते च गोपा महद् दृष्ट्वा पूतनायाः कलेवरम् । मृतायाः परमं त्रासं विस्मयं च तदा ययुः ॥ २३ ॥

(इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंऽशे पञ्चमोऽध्यायः)

(पराशर उवाच) कदाचिच्छकटस्याधः शयानो मधुसूदनः। चिक्षेप चरणावूर्ध्वं स्तन्यार्थी प्ररुरोद च ॥ तस्य पादप्रहारेण शकटं परिवर्तितम् । विध्वस्तकुम्भभाण्डन्तद्विपरीतं पपात वै ॥ २ ॥ ततो हाहाकृतो लोको गोपगोपीजनो द्विज । आजगामाथ-ददृशे बालमुत्तानशायिनम् ॥ ३ ॥ गोपाः केनेति केनेति शकटं परिवर्त्तितम्। तत्रैव बालकाः प्रोचुर्बालेनाऽनेन पातितम् ॥ ४ ॥ शकटं परिवृत्तं वो नैतदन्यस्य चेष्टितम् । ततः पुनरतीवासन् गोपा विस्मितमानसाः ॥ ५ ॥ नन्दगोपोऽपि जग्राह बालमत्यन्तविस्मितः । यशोदा शकटारूढभग्नभाण्डकपालिकम् ॥ ६ ॥ शकटं चार्चयामास दधिदुग्धफलाक्षतैः । गर्गश्च गोकुले तत्र वसुदेवप्रचोदितः ॥ ७ ॥ प्रच्छन्न एव गोपानां संस्कारमकरोत्तयोः । ज्येष्ठं च राम इत्याह कृष्णं चैव तथाऽपरम् ॥८॥ गर्गो मतिमतां श्रेष्ठो नामाकुर्वन् महामतिः । अल्पेनैव

तु कालेन रिङ्गिणौ तौ महाव्रजे ॥ ९ ॥ घृष्टजानुकरौ विप्र बभूवतुरुभावपि । कारीषभस्मदिग्धाङ्गौ भ्रममाणावितस्ततः ॥१०॥ न निवारयितुं सेहे यशोदा तौ न रोहिणी । गोवाटमध्ये क्रीडन्तौ वत्सवाटगतौ पुनः ॥११॥ तदहर्जातगोवत्सपुच्छाकर्षणतत्परौ । यदा यशोदा तौ वालावेकस्थानचरावुभौ ॥ १२ ॥ शशाक नो वारयितुं क्रीडन्तावतिचञ्चलौ । दाम्ना वध्वा तदा मध्ये निववन्ध उदूखले ॥ १३ ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणमाह चेदञ्च कर्षती । यदि शक्नोषि गच्छ त्वमतिचञ्चलचेष्टितः ॥ १४ ॥ इत्युक्त्वा च निजं कर्म सा चकार कुटुम्विनी । व्यग्रायामथ तस्यां च कर्षमाण उदूखलम् ॥ १५ ॥ यमलार्जुनमध्येन जगाम कमलेक्षणः । कर्षता वृक्षयोर्मध्ये तिर्यग्गतमुदूखलम् ॥ १६ ॥ भग्नादुत्तुङ्गशाखाग्रौ तेन तौ यमलार्जुनौ । ततः कटकशव्दं समाकर्णनतत्परः ॥ १७ ॥ आजगाम व्रजजनो ददृशे च महाद्रुमौ । भग्नस्कन्धौ निपतितौ भग्नशाखौ महीतले ॥ १८ ॥ तथोद्गतसुदन्तं च स्मितहासं च बालकम् । तयोर्मध्यगतं बद्धं दाम्ना गाढं तथोदरे ॥ १९ ॥ ततस्तु दामोदरतां स ययौ दामवन्धनात् । गोपवृद्धास्ततः सर्वे नन्दगोपपुरोगमाः ॥ २० ॥ मन्त्रयामासुरुद्विग्ना महोत्पातातिभीरवः । स्थानेनेह न नः कार्यं व्रजामोऽन्यं महावनम् ॥ २१ ॥ उत्पाता बहवो ह्यत्र दृश्यन्ते नाशहेतवः । पूतनाया विनाशश्च शकटस्य विपर्ययः ॥ २२ ॥ विना वातादिदोषं च द्रुमयोः पतनन्तथा । वृन्दावनमितः स्थानात् तस्माद् गच्छाम मा चिरम् ॥ २३ ॥ यावद्भौममहोत्पातदोषेणाभिभवेद् व्रजम् । इति कृत्वा मतिं सर्वे गमनाय व्रजौकसः ॥ २४ ॥ ऊचुः स्वं स्वं कुलं शीघ्रं गम्यतां मा विलम्वत । ततः क्षणेन प्रययुः शकटैर्गोधनैस्तथा ॥२५॥ यूथगोवत्सपालानां पालयन्तो व्रजौकसः । द्रव्यावयवनिद्धूतं क्षणमात्रेण तत्तथा ॥२६॥ काककाकीसमाकीर्णं व्रजस्थानमभूद् द्विज । वृन्दावनं भगवता कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ २७ ॥ शुभेन मनसा ध्यातं गवां वृद्धिमभीप्सता । ततस्तत्राभिरूक्षोपि धर्मकाले द्विजोत्तम ॥ २८ ॥ प्रावृट्काल इवोद्भूतं नवशष्पं समन्ततः । स समावासितः सर्वो व्रजो वृन्दावने ततः ॥ २९ ॥ शकटो वाटपर्यन्तचन्द्रार्द्धाकारसंस्थितिः । वत्सपालौ च संवृत्तौ

रामदामोदरौ ततः ॥ ३० ॥ ततः स्थानस्थितौ गोष्ठे चेरतुर्बाललीलया । बर्हिपत्रकृतापीडौ वन्यपुष्पावतंसकौ ॥ ३१ ॥
गोपवेणुकृतातोद्यपत्रवाद्यकृतस्वनौ । काकपक्षधरौ बालौ कुमाराविव पावकौ ॥ ३२ ॥ हसन्तौ च रमन्तौ च चेरतुस्तौ
महावनम् । क्वचिद्धसन्तावन्योन्यं क्रीडमानौ तथापरैः ॥ ३३ ॥ गोपपुत्रैः समं वत्सान् चारयन्तौ विचेरतुः । कालेन
गच्छता तौ च सप्तवर्षौ महावने ॥ ३४ ॥ सर्वस्य जगतः पालौ वत्सपालौ बभूवतुः । प्रावृट्कालस्ततोतीव मेघौघस्थगिताम्बरः
॥ ३५ ॥ बभूव वारिधाराभिरैक्यं कुर्वन् दिशामिव । प्ररूढनवपुष्पाढ्या इन्द्रगोपास्तृता मही ॥ ३६ ॥
तदा मारकतीवासीत् पद्मरागविभूषिता । ऊहुरुन्मार्गवाहीनि निम्नगांभांसि सर्वतः ॥३७॥ मनांसि दुर्विनीतानां प्राप्य
लक्ष्मीन्नवामिव । न रेजेऽन्तरितश्चन्द्रो निर्मलो मलिनैर्घनैः ॥ ३८ ॥ सद्वाक्यवादी मूर्खाणां प्रगल्भाभिरिवोक्तिभिः ।
निर्गुणेनापि चापेन शक्रस्य गगने पदम् ॥ ३९ ॥ अवाप्यते विवेकस्य नृपस्येव परिग्रहैः । मेघपृष्ठे बलाकानां रराज
विमला ततिः ॥ ४० ॥ सद्वृत्तवृत्ते चेष्टेव कुलीनस्यापि शोभने । नवबन्धाम्बरे स्थैर्ये विद्युदत्यन्तचञ्चला ॥ ४१ ॥
मैत्रीव प्रवरे पुंसि दुर्जनेन प्रयोजिता । मार्गा बभूवुरस्पष्टा नवशष्पसमाश्रिताः ॥ ४२ ॥ अर्थान्तरमनुप्राप्ता प्रयतनामिवोक्तयः
। उन्मत्तशिखिशारङ्गे तस्मिन् काले महावने ॥४३॥ कृष्णरामौ मुदा युक्तौ गोपालैः सह चेरतुः । क्वचिद्गोभिः
समं रम्यं गेयतालरताभुवौ ॥ ४४ ॥ चेरतुः क्वजिदत्यर्थं शीतवृक्षलताश्रयम् । क्वचित् कद्म्बस्रक्चित्रौ मायूरस्रग्धरौ
क्वचित् ॥ ४५ ॥ विचित्रौ क्वचिदासेतां विविधैर्गिरिधातुभिः । पर्णशय्याप्रसुप्तौ च क्वचिन्निद्रातुरेक्षणौ ॥ ४६ ॥
क्वचिद्गर्जति जीमूते हाहाकाररवाद्दतौ । गायतामन्यगोपानां प्रशंसातत्परौ क्वचित् ॥ ४७ ॥ मयूरकेकानुगतं गोपवेणुप्रवादकौ
। इति नानाविधैर्भावैरुत्तमप्रीतिसंयुतौ ॥ ४८ ॥ क्रीडन्तौ तौ वने तस्मिन् चेरतुस्तुष्टमानसौ । विलासिनौ
समं गोभिर्गोपवृन्दसमन्वितौ ॥ ४९ ॥ विकाले तु सदा तोषं व्रजमेत्य महाबलौ । गोपैः समानैः सहितौ चिक्रीडातेऽमराविव
॥ ५० ॥ इति श्रीविष्णुपुराणे पञ्चमेंशे षष्ठाऽध्याये श्रीकृष्णजन्मरहस्यं समाप्तम् ।

श्रीकृष्णजन्माष्टमीपूजायां सायंकृत्यम्

सायङ्काले कृतनित्यक्रियो व्रती कर्पूरदीपेन आरार्तिक्यं विधाय पुष्पाण्यादाय—(२५ पृष्ठोक्त) ॐअनघमित्यादिना सपरिवाराय श्रीकृष्णाय त्रिः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा दण्डवत्‌ प्रणम्य स्तोत्रादिकं पठेत्। ततः नृत्यगीतादिना सपादप्रहरद्वयरात्रिव्यतीतानन्तरं चन्द्रमस्युदिते प्राङ्गणे गोमयोपलिप्तभूभागे पूर्वाभिमुख उपविश्य आचम्य चन्द्रं ध्यात्वा अक्षतान्यादाय—ओं सोमाय सोमेश्वराय सोमसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः। ओं रोहिणीसहितसोम इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं रोहिणीसहितसोमाय नमः। इदमनुलेपनम्०। इदमक्षतम्०। एतानि पुष्पाणि०। इदं दूर्वादलम्०। इदं शुक्लवस्त्रं बृहस्पतिदैवतम्०। इमे यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते०। एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनानाविधनैवेद्यानि०। इदमाचमनीयम् ओं रोहिणीसहितसोमाय नमः। ततः पुष्पमादाय—ओं यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः। एष पुष्पाञ्जलिः ओं रोहिणीसहितसोमाय नमः। इति त्रिः पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। ततः पयःपूर्णपुष्पाक्षतसहितं शङ्खमादाय–ओं अत्रिनेत्रसमुद्भूत क्षीरोदार्णवसम्भव। गृहाणार्घं मया दत्तं रोहिण्या सहितः प्रभो॥ एषोऽर्घः ओं रोहिणीसहितसोमाय नमः। इति सम्पूज्यओं रोहिणीसहितसोम पूजितोसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छेति विसर्जयेत्।

अथ श्रीकृष्णजन्माष्टमीपूजाविसर्जनम्

ततो गीतनृत्यादिभिः रात्रिं व्यतीत्य अरुणोदयवेलायां शुचिर्भूत्वा यथोपचारैः संपूज्य (सति सम्भवे मूलमन्त्रेण-‘ओं श्रीकृष्णाय नमः स्वाहा’ इत्यनेन परिशिष्टोक्तं संक्षिप्तहवनं कुर्यात्। ततः २६ पृष्ठोक्त) अनघमित्यादिना त्रिः सपरिवाराय श्रीकृष्णाय पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा क्षमापनस्तोत्रादिकं पठित्वा प्रार्थयेदनेन—

ओं मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं च यद्विभो । पूजितं कृष्ण यत्सर्वं परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं धनं धान्यं सुतान् बहून् । कलत्रं धर्ममोक्षौ च देहि कृष्ण नमोस्तु ते ॥

ओं रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवन् देहि मे ।
धर्मान् देहि धनं देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥

इत्यादिना सम्प्रार्थ्य, विसर्जयेदनेन-ओं यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ ओं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारभगवन् श्रीकृष्ण पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानङ्गच्छ । ओं बलभद्र पूजितोसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानङ्गच्छ । ओं वसुदेव पूजितोसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानङ्गच्छ । ओं नन्द पूजितोसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानङ्गच्छ । ओं यशोदे पूजितासि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानङ्गच्छ । ओं देवकि पूजितासि प्रसीद क्षमस्व० । ओं रोहिणि पूजितासि प्रसीद क्षमस्व० । ओं सुभद्रे पूजितासि प्रसीद क्षमस्व० । ओं दुर्गे पूजितासि प्रसीद क्षमस्व० । ओं रुक्मिणि पूजितासि प्रसीद क्षमस्व० । ओं सत्यभामे पूजतासि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानङ्गच्छ । इति सर्वान् विसर्जयेत् ।

ततः कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अद्य कृतैतत् साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीकृष्णपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे । इति उत्सृज्य ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत् । ततः कृष्णादिप्रतिमां जलाशये प्रक्षिप्य ब्राह्मणान् भोजयित्वा पारणां कुर्यात् ।

इति श्रीकृष्णाष्टमीपूजा समाप्ता ।

अथ वैष्णवानां श्रीकृष्णजन्माष्टमीपूजा

तत्र (१) मृन्मयीं कृष्णादिप्रतिमां कृत्वा जलेनात्मानं वेष्टयित्वा तिलानादाय—ओं मनोजूतिरित्यादिमन्त्रं पठित्वा—ओं भूर्भुवः स्वर्भगवन् श्रीकृष्ण इहागच्छ इह तिष्ठ, इति प्राणप्रतिष्ठां विधाय इदं पाद्यं श्रीकृष्णाय नमः। एषोर्घः श्रीकृष्णाय नमः। इदमाचनीयं श्रीकृष्णाय नमः। एष मधुपर्कः श्रीकृष्णाय नमः। इदं पुनराचमनीयं श्रीकृष्णाय नमः। इदं चन्दनानुलेपनं श्रीकृष्णाय नमः। एते यवतिलाः०, एतानि पुष्पाणि श्रीकृष्णाय नमः। चामरैः संवीज्य इमे यज्ञोपवीते श्रीकृष्णाय नमः। इदं पीतवस्त्रं बृहस्पतिदैवतं श्रीकृष्णाय नमः। इदं माल्यम्० इदं दूर्वादलम्०। एतानि तुलसीपत्राणि०। एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ओं श्रीकृष्णाय नमः। ततः पुष्पाञ्जलि-

---

(१) अत्रापि संकल्पादिदशदिक्पालपूजनान्तं कर्म पूर्ववदेव बोध्यम्। वस्तुतस्तु वैष्णवैः पूजनादिविसर्गान्तं कृत्यं ३९ पृष्ठोक्तजन्माष्टमीव्रतकथोक्तविधिनैव कर्तव्यम्। भविष्ये–माद्रे मास्यसिते पक्षे याऽष्टमी रोहिणीयुता। तस्यास्तु तामसीरात्रिस्तत्र कृष्णस्त्वजायत। वसुदेवसुतः श्रीमान् वासुदेव इति स्मृतः॥ तत्र तं पूजयेत् भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः। जयन्तीव्रतं यस्मिन् दिने रोहिण्याष्टमी योगतस्मिन् दिने कर्तव्यम्। तथाहि भविष्यपुराणे—रोहिणी च यदा कृष्णे पक्षेऽष्टम्यां द्विजोत्तम। जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः। यद् बाल्ये यच्च कौमारे यौवने वार्धकेऽपि च। सप्तजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा बहु वा यदि॥ तत् पापं सकलं नश्येत् यामभ्यचर्य भक्तितः। होमजप्यादिदानानां फलं च शतसम्मितम्॥ सम्प्राप्नोति न संदेहो यच्चाऽन्यं मनसेप्सिम्। उपवासस्तु यत्रोक्तो महापातकनाशनः॥

इयमष्टमी चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या, उभयदिने चन्द्रोदये प्राप्ते तूत्तरदिन एव। तथाहि अग्निपुराणे—वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताऽष्टमी। सऋक्षाऽपि न कर्तव्या सप्तम्या संयुता यदि॥ इति। यद्युत्तरदिने चन्द्रोदयव्यापिनी नाष्टमी तदा सप्तमी संयुता ग्राह्या। तदुक्तं विष्णुपुराणे—कार्या विद्धापि सप्तम्यारोहिणीसंयुताष्टमी। जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्राजयान्विते॥ कृतोपवासतिथ्यन्ते तत्र कुर्यात्तु पारणा॥ इति।

मादय–ओं योगाय योगेश्वराय योगपतये योगसंभवाय गोविन्दाय नमो नमः । इति मन्त्रेण त्रिः पूजयेत् । ततो बलभद्र इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य—ओं जन्मजन्मकृतं यच्च वाल्ययौवनवार्द्धके । पुण्यं समृद्धिमायातु पापं हर हलायुध ॥ एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं वलभद्राय नमः । इदमनुलेपनम्० । एते यवतिलाः । एतानि पुष्पाणि० । इदं पीतवस्त्रं बृहस्पतिदैवतम्० । इमे यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते० । इदं माल्यम्० । इदं दूर्वादलम्० । इदं तुलसीपत्रम्० । एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनानाविधनैवेद्यानि० । इदमाचमनीयम्० । एष पुष्पाञ्जलिः ओं बलभद्राय नमः । ततो वसुदेवं देवकीं यशोदां नन्दं रोहिणीं सुभद्रां रुक्मिणीं सत्यभामां दुर्गां ब्रह्माणं ब्रह्माणीं नरसिंहं वासुदेवं गोविन्दं गर्गं गोकुलं गोपं गोपीं षष्ठिकां रेवतीं वैनतेयं सुदर्शनं सरस्वतीं शान्तिं पुष्टिम् अनन्तं कंसं पूतनां यमलार्जुनं नागं विश्वरोहिणीं चावाह्य पाद्यादिभिः सम्पूजयेत् । ततः (२५ पृष्ठोक्तां) 'अनघमि' त्यादिना सपरिवाराय श्रीकृष्णाय त्रिः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा सम्प्रार्थ्य कथां (३९ पृष्ठोक्तां) श्रृणुयात् ।

ततश्चार्धरात्रे तु संजाते चन्द्रमस्युदिते प्राङ्गणे गोमयोपलिप्तभूभागे उपविश्य अक्षतान्यादाय सोममावाह्य पाद्यादिभिः संपूज्य पयःपूर्णं पुष्पाऽक्षतयुतं शङ्खमादाय—ओं अत्रिगोत्रसमुद्भूत क्षीरोदार्णवसंभव । गृहाणार्घं शशांकेमं रोहिण्या सहितो मम ॥ इति सोमायार्घंन्दत्त्वा प्रणम्य विसर्जयेत् । ततः प्रभाते संजाते कृष्णो मे प्रीयतामित्युक्त्वा—यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् । भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥ सुजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु । इति पठित्वा ओं भगवन् श्रीकृष्ण पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व । इत्यन्यासामपि विसर्जनम् । ततः स्त्रीद्वारा जलाशये प्रतिमा प्रक्षेप्तव्या स्त्रीभिश्च स्नात्वा गृहमागत्य ऐक्षवमधुकृतमरिचसहितयवान्नेन पारणा कर्तव्या (१) ।

---

(१) तथाहि नारदः–अरुणोदयवेलायां नवम्यां च ततः स्त्रियः । रक्तवस्त्रावृताः सर्वा गन्धमाल्यैरलंकृताः ॥

अथ वैष्णवानां श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतकथा

युधिष्ठिर उवाच—तद् व्रतं कीदृशं देव लोकैः सर्वैरनुष्ठितम् । जन्माष्टमीव्रतं नाम पवित्रं पुरुषोत्तम ॥१॥ येन त्वं तुष्टिमायासि लोकानां प्रभवाय च । एतन्मे भगवन् ब्रूहि प्रसादान्मदुसूदन ॥२॥ श्रीकृष्ण उवाच—पार्थ तद्दिवसे प्राप्ते दन्तधावनपूर्वकम् । उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद् यतमानसः ॥३॥ एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरुनन्दन । सप्तजन्मकृतात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः ॥४॥ उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह । उपवासः स विज्ञेयो नोपवासस्तु लङ्घनम् ॥५॥ अद्य स्थित्वा निराहारः श्वो भूते परमेश्वर । भोक्ष्येऽहं देवकीपुत्रशरणम्मे भवाच्युत ॥६॥ ततः स्नात्वा तु मध्याह्ने नद्यादौ विमले जले । देवक्याः शोभनं कुर्यात् सुगुप्तं सूतिकागृहम् ॥७॥ पद्मरागैः पटेनैतैर्मण्डितं चर्चितं शुभैः । रम्यं वन्दनमालाभी रक्षामणिविभूपितम् ॥८॥ सर्वं गोकुलवत् कार्यं गोपीजन-समाकुलम् । घण्टामर्दलसंगीतं माङ्गल्यं कलशान्वितम् ॥९॥ यवार्द्रस्वस्तिकाब्जाद्यैः शङ्खवादित्रसंकुलम् । वद्धकारी लोहखड्गैर्दीपच्छागसमन्वितम् ॥१०॥ मन्थानवारियूपैश्च भूतिसर्षपवह्निभिः । द्वारि विन्यस्तमुषलं रक्षितं रक्षपालकैः ॥११॥ षष्ठ्या देव्याश्च तत्रैव विधानं विधिवत्तथा । एवंविधं यथाशक्ति कर्तव्यं सूतिकागृहम् ॥१२॥ तन्मध्ये प्रतिमा स्थाप्या सा चाप्यष्टविधा स्मृता । काञ्चनी राजती ताम्री पैत्तली मृन्मयी तथा ॥१३॥ वार्क्षी मणिमयी चैव वर्णिका लिखिताऽथवा । सर्वलक्षणसम्पन्ना पर्यङ्के चार्द्धसुप्तिका ॥१४॥ प्रतप्तकाञ्चनाभासा कृता सा तु तपस्विनी । प्रसूता च प्रस्नुता च तत्क्षणाच्च प्रहर्षिता ॥१५॥ मां चापि बालकं सुप्तं पर्यंकं स्तनपायिनम् । श्रीवत्सवक्षसं देवं

नयन्ति प्रतिमां ह्येषान्नानाविभवसंभवाः । नदीतीरं शुभं रम्यं विविक्तं वा महत्सरः । तत्र स्नानं प्रकुर्वन्ति स्नापयन्ति च तास्ततः ॥ ततः प्रविश्य च गृहं यवान्नं भुंजते च ताः । युक्तमिक्षुविकारैश्च मध्वाज्यमरिचैस्सह ॥ इति ।

नीलोत्पलदलप्रभम् ॥ १६ ॥ शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवनमालाविभूषितम् । चतुर्भुजं महःपूर्णं स्थापयेत्तत्र भक्तितः ॥ १७ ॥
यशोदां चापि तत्रैव प्रसूतवरकन्यकाम् । तत्र देवा ग्रहा नागा यक्षविद्याधरोरगाः ॥ १८ ॥ प्रणताः पुष्पमालाभिः
व्यग्रहस्ताः सुरासुराः । संचरन्त इवाकाशे प्रकारैर्मुदितोदितैः ॥ १९ ॥ वसुदेवोपि तत्रैव खड्गचर्मधरः स्थितः ।
कश्यपो वसुदेवोऽयमदितिश्चापि देवकी ॥ २० ॥ शेषनागो हली चात्र यशोदा दितिरेव च । नन्दः प्रजापतिर्दक्षो
गर्गश्चापि चतुर्मुखः ॥ २१ ॥ एषोऽवतारो राजेन्द्र कंसो वै कालनेमिजः । तत्र कंसनियुक्ता ये दानवा विविधायुधाः
॥ २२ ॥ ते च प्राहरिकाः सर्वे सुप्ता निद्राविमोहिताः । आविष्टो धेनुकः केशी दानवाः शस्त्रपाणयः ॥ २३ ॥
नृत्यन्तोऽप्सरसो हृष्टा गन्धर्वा गीततत्पराः । लेखनीयश्च तत्रैव कालियो यमुनाह्रदे ॥ २४ ॥ नन्दगोपश्च गोपश्च
यशोदा च प्रसूतिका । रम्यामेवंविधां कृत्वा देवकीं नवसूतिकाम् ॥ २५ ॥ तां पार्थ पूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः
फलैः । कृष्माण्डैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैर्दाडिमीफलैः ॥ २६ ॥ बीजपूरैः पूगफलै नारङ्गैः पनसैस्तथा । देशकालोद्भवैर्मिष्टैः
पुष्पैश्चापि सुगन्धिभिः ॥ २७ ॥ ध्यात्वावतारान् प्रागुक्तान् मन्त्रेणानेन पूजयेत् । अदितिर्देवमाता त्व सर्वपापप्रणाशिनी
॥ २८ ॥ अतस्त्वां पूजयिष्यामि भयभीतो भवस्य च । पूजितासि यथा देवैः प्रसन्ना त्वं वरानने ॥ २९ ॥
तथा मे पुजिता भक्त्या प्रसादं कुरु सुव्रते । यथा पुत्रं प्रियं बध्वा प्राप्ता ते निर्वृतिः परा ॥ ३० ॥ गायद्भिः किन्नराद्यैः
सततपरिवृता वेणुवीणानिनादै-र्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रकरहृतकरैः किन्नरैः सेव्यमाना । पर्यङ्के स्वास्तृते या मुदिततरमुखी
पुत्रिणी सम्यगास्ते, सा देवमाता जयति सुवदना देवकी कांतरूपा ॥ ३१ ॥ पादावभ्यञ्जयन्ती श्रीर्देवक्याश्चरणान्तिके
। निषण्णा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै श्रियै इति ॥ ३२ ॥ अवतारसहस्रं वै कृतं ते मधुसूदन । न संख्यामवताराणां
कश्चिज्जानाति वै भुवि ॥३३ ॥ ब्रह्माशिवादयो वापि स्वरूपं न विदुस्तव । अतस्त्वां पूजयाम्यद्य मातुरुत्संगशायिनम्
॥ ३४ ॥ स्वनामभिश्चतुर्थ्यन्तैः प्रणवादिनमोन्तकैः । पूजयेयुर्द्विजाः सर्वे स्त्रीशूद्रा मन्त्रवर्जिताः ॥ ३५ ॥

विध्यन्तरमपीच्छन्ति केचिदत्र द्विजोत्तमाः। चन्द्रोदये शशांकाय दद्यादर्घं हरिं स्मरन् ॥ ३६ ॥ अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम्। अपराजितं वासुदेवं माधवं मधुसूदनम् ॥ ३७ ॥ वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं धरणीधरम्। दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् ॥ ३८ ॥ गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम्। अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारणम् ॥ ३९ ॥ अनादिनिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम्। नारायणं चतुर्बाहुं शंखचक्रगदाधरम् ॥ ४० ॥ पीताम्वरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम्। श्रीवत्साङ्कं जगत्सेतुं श्रीपतिं श्रीधरं हरिम् ॥ ४१ ॥ देवकीगर्भसम्भूतं दैत्यसैन्यविनाशनम्। गृहाणार्घमिदं देव गोविन्दाय नमो नमः ॥ ४२ ॥ योगाय योगेश्वराय योगपतये योगसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ४३ ॥ यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ४४ ॥ विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वपतये विश्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥४५॥ धर्माय धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥४६॥ क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिगोत्रसमुद्भव। गृहाणार्घं शशांकेमं रोहिणीसहितो मम ॥ ४७ ॥ स्थण्डिले स्थापयेद् देवं शशाङ्कं रोहिणीं तथा। देवकीं वसुदेवं च यशोदां नन्दमेव च ॥ ४८ ॥ वलभद्रं तथा गोपान् गोपीं गोकुलमेव च। एवं कृते न सन्देहो नरः पापात् प्रमुच्यते ॥ ४९ ॥ अर्द्धरात्रे वसोर्धारां पातयेद् गुडसर्पिषा। ततो वर्द्धापनं षष्ठी नामादिकरणं तथा ॥ ५० ॥ कर्तव्यं तत्क्षणाद् रात्रौ प्रभाते नवमीदिने। यथा मम तथा कार्यो भगवत्या महोत्सवः ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्। हिरण्यं रजतं गावो वासांसि विविधानि च ॥ ५२ ॥ यद्यदिष्टतमन्तेन कृष्णो मे प्रीयतामिति। यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् ॥ ५३ ॥ भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः। सुजन्मवसुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ॥ ५४ ॥ शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु इत्युक्त्वा तं विसर्जयेत्। एवं यः कुरुते देव्या देवक्याः सुमहोत्सवम् ॥ ५५ ॥ वर्षे वर्षे तु मद्भक्तो धर्मार्थी धर्मनन्दन। नरो वा यदि वा नारी यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥५६॥ **इति श्रीभविष्योत्तरे वैष्णवानां श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतकथा समाप्ता।**

अथ कुशोत्पाटनी अमावास्या

भाद्रामावास्या कुशी, तस्यां कुशोत्पाटनं कुर्यात् । इयममावास्या द्वितीयप्रहरव्यापिनी ग्राह्या । तदुक्तं—

समित्पुष्पकुशादीनां द्वितीयः प्रहरो मतः ॥ हारीतः—मासे नभस्यमावास्या तस्यां दर्भोच्चयो मतः । अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्या पुनः पुनः ॥

तत्र निषिद्धकुशानाह लघुहारीतः—चिति दर्भाः पथि दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु । स्तरणाऽऽसनपिण्डेषु षट् कुशान् परिवर्जयेत् ॥ पुनश्च तत्रैव—पिण्डार्थं ये स्मृता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् । मूत्रोच्छिष्टे धृता ये च तेषां त्यागो विधीयते ॥ इति ।

तत्र कुशानयनप्रकारमाह मार्कण्डेयः—शुचिर्भूत्वा शुचौ देशे स्थित्वा पूर्वोत्तरामुखः ओङ्कारेणैव मन्त्रेण कुशान् स्पृष्ट्वा द्विजोत्तमाः ॥ इति ।

कुशोत्पाटनमन्त्राः

ओं विरञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठीनिसर्गज । दहस्व सर्वपापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव ॥ ओं कुशाग्रे वसते रुद्रः कुशमध्ये तु केशवः । कुशमूले वसेद् ब्रह्मा कुशान् मे देहि मेदिनी ॥ ओं कुशोऽसि कुशपुत्रोऽसि ब्रह्मणा निर्मितः पुरा । देव-पितृहितार्थाय कुशमुत्पाटयाम्यहम् ॥ इति ।

अथ हरितालिका-व्रतविधानम्

भविष्योत्तरपुराणे—शृणु देव विधिं वक्ष्ये नार्या तु व्रतमुत्तमम् । कर्तव्यं हि प्रयत्नेन यदि सौभाग्यमिच्छति ॥ तोरणादि च कर्तव्यं कदलीस्तम्भमण्डितम् । आच्छाद्य पट्टवस्त्रैस्तु नानावर्णविचित्रितम् ॥ चन्दनेन सुगन्धेन लेपयेद् यागमण्डलम् । शङ्खभेरीमृदङ्गादिवादित्रनिनदैः सह ॥ नानामङ्गलगीतं च कर्तव्यं मम सद्मनि । संस्थाप्य बालुकालिङ्गं पार्वत्या सहितं मम ॥ पूजयेद्बहुभिः पुष्पैर्गन्धधूपादिभिर्वरैः । नानाप्रकारैर्नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यसमन्वितैः ॥ उपोष्य पूजयेद् भक्त्या कुर्याज्जागरणं निशि । नारिकेलैश्च जम्बीरैरन्यैश्च विविधैः फलैः ॥ ऋतुदेशोद्भवैः सर्वैरनेकैः कुसुमैर्नवैः । वस्त्रालङ्कारदीपाद्यैर्मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥

अथ हरितालिकाव्रतपूजाविधिः

भाद्रशुल्कतृतीयायां (१) प्रदोषे अवैधव्यकामास्त्रियः स्नात्वा गौर्याः नित्यपूजां विधाय ताम्रकलशोपरि एकस्मिन् पात्रे अष्टदलपद्मं विलिख्य तदुपरि (अर्धनारीश्वररूपां) गौरी-शङ्करप्रतिमां संस्थाप्य संकल्पं कुर्युः तद्यथा—नमोऽस्यां रात्रौ भाद्रे मासि शुक्ले पक्षे तृतीयायां तिथौ अमुकगोत्रायाः अमुकीदेव्याः मम जन्मजन्मान्तरार्जितसकलपापक्षयपूर्वकपुत्रपौत्रादिचिरजीवित्वसौभाग्यारोग्यकामा सर्वसम्पत्समृद्धये श्री उमामहेश्वरप्रीत्यर्थं हरितालिकाव्रत-

---

(१) इयं तृतीया परयुता ग्राह्या । तथाहि स्कान्दे—कलाकाष्ठा मुहूर्ताऽपि द्वितीया यदि दृश्यते । सा तृतीया च कर्तव्या, कर्तव्या गणसंयुता ॥ इति । पुराणसमुच्चये—द्वितीयाशेषसंयुक्तां (तृतीयां) या करोति विमोहिता । सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ इति । हरितालिकाव्रतस्यैव नामान्तरं लोके 'तीज' इति ।

पूजनं तत्कथाश्रवणं चाहं करिष्ये। इति संकल्प्य (१) पुष्पाक्षतैः—नमो श्रीमहेश्वरसहितगौरि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सुप्रतिष्ठितो भव। इति (४८ पृष्ठोक्तटिप्पणेन वा) प्राणप्रतिष्ठां विधाय पुष्पमेकं गृहीत्वा ध्यायेत्—

नमो पीतकौशेयवसनां हेमाभां कमलासनाम्। भक्तानां वरदां नित्यं पार्वतीं चिन्तयाम्यहम्॥
मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालाङ्कितशेखराय।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥

आवाहनं—मन्दारमाला० इति पठित्वा—महादेवि समागच्छ प्रार्थयेऽहं जगन्मये। इमां मया कृतां पूजां गृहाण सुरसत्तमे॥ देवदेव समागच्छ प्रार्थयेहं जगत्पते। तावत्त्वं प्रीतिभावेन मूर्तौ सन्निहितो भव॥ आसनम्—मन्दारमाला०—भवानि त्वं महादेवि सर्वसौभाग्यदायिके। अनेकरत्नसंपृक्तमासनं प्रतिगृह्यताम्॥ देवदेव नमस्तुभ्यं सहस्रशिरसे नमः। नमस्ते कृत्तिवासाय स्वासनं प्रतिगृह्यताम्॥ पाद्यम्—मन्दारमाला०—सुचारु शीतलं दिव्यं तोयं गन्धसमन्वितम्। पाद्यं गृहाण देवेशि महादेवि नमोऽस्तु ते॥ शम्भो गङ्गादितीर्थेभ्यो मया प्रार्थनया हृतम्। तोयमेतत्सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम्॥ अर्घ्यम्—मन्दारमाला०—श्रीपार्वति महाभागे शङ्करप्रियवादिनि। अर्घ्यं गृहाण कल्याणि भर्त्रा सह पतिव्रते॥ वरेण्य यज्ञपुरुष प्रजापालनतत्पर। नमो माहात्म्यदेवाय गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥ आचमनीयम्—मन्दारमाला०—गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम्। आचम्यतां महाभागे रुद्रेण सहितेऽनघे। पाटलोशीरकर्पूरसुरभिस्वादुशीतलम्। तोयमाचमनीयार्थं शङ्कर प्रतिगृह्यताम्॥ स्नानम्—मन्दारमाला०—गङ्गासरस्वतीरेवाकावेरीनर्मदाजलैः। स्नापिताऽसि मया देवि तथा शान्ति कुरुष्व मे। मन्दाकिन्याः समानीतं हेमाम्भोरुहवासितम्।

---

(१) सङ्कल्पोत्तरमत्र कलशस्थापनं तु न कर्तव्यम्। तथा हि मात्स्ये—न रात्रौ स्थापनं कुर्यान्न च कुम्भाभिषेचनम्। इति। आचारश्चेत्तदा परिशिष्टोक्तविधिना अत्रैव कलशस्थापनं कर्तव्यम्।

स्नानाय ते मया भक्त्या नीरं स्वीक्रियतां प्रभो ॥ **पञ्चामृतस्नानम्**—मन्दारमाला०—पयो दधि घृतं चैव मधु-शर्करयान्वितम् । पञ्चामृतेन स्नपनं प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ ततः 'श्री उमा-महेश्वराभ्यां नमः' इति नाममन्त्रेण अङ्गोद्वर्तनम् । **शुद्धोदकस्नानम्**—मन्दारमाला०—किरणा धूतपापा च पुण्यतोया सरस्वती । मणिकर्णिजलं शुद्धं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् । इदमाचमनीयम्० । **वस्त्रम्**—मन्दारमाला०—कञ्चुकीमुपवस्त्रं च नानारत्नसमन्वितम् । गृहाण त्वं मया दत्तं पार्वत्यै ते नमो नमः ॥ सर्वभूपाधिके रम्ये लोकलज्जानिवारके । मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ॥ **यज्ञोपवीतम्**—मन्दारमाला०—महादेव नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात् । ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण पुरुषोत्तम ॥ तत इदमाचमनीयम्० । **चन्दनम्**—मन्दारमाला०—कुङ्कुमागरुकर्पूरकस्तूरीचन्दनान्वितम् । विलेपनं महादेवि गन्धं दास्यामि भक्तितः ॥ मलयाचलसंभूतं घनसारमनोहरम् । हृदयानन्दनं चारु चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥ **अक्षताः**—मन्दारमाला०—रञ्जिताः कुसुमौघेन अक्षताश्चातिशोभनाः । ममैषां देवि दानेन प्रसन्ना भव पार्वति ॥ अखण्डानक्षतान् शुक्लान् शोभनान् शालितण्डुलान् । त्राहि मां सर्वपापेभ्यो गृहाण वृषभध्वज ॥ **सौभाग्यद्रव्याणि**—मन्दारमाला०—हरिद्रां कुङ्कमं चैव सिन्दूरं कज्जलान्वितम् । सौभाग्यद्रव्यसंयुक्तं गृहाण परमेश्वरि ॥ **पुष्पाणि**—मन्दारमाला०—सेवन्तिकाबकुलचम्पकपाटलाब्ज-पुन्नागजातिकरवीररसालपुष्पैः । बिल्वप्रवालतुलसीदलमालतीभिस्त्वां पूजयामि जगदीश्वरि मे प्रसीद ॥ **माल्यानि**—माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो । मया हृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

अथाङ्गपूजा—उमायै नमः पादौ पूजयामि । गोर्यै नमः जङ्घे० । पार्वत्यैः नमः जानुनी० । जगद्धात्र्यै नमः ऊरू० । जगत्प्रतिष्ठायै नमः कटिं० । शान्तिरूपिण्यै नमः नाभिं० । देव्यै नमः उदरं० लोकवन्द्यायै नमः स्तनौ० । काल्यै नमः कण्ठं० । शिवायै नमः मुखं० । भवान्यै नमः नेत्रे० । रुद्राण्यैः नमः कर्णौ० । शर्वाण्यै नमः ललाटं० । मङ्गलदात्र्यै नमः शिरः० । भक्ताभीष्टप्रदायै नमः सर्वाङ्गं० । अर्धनारीश्वराय श्रीगौरीशङ्कराय नमः सर्वाङ्गं पूजयामि ।

धूपः—मन्दारमाला०—वेदद्रुमरसोद्भूतकृष्णागुरुसमन्वितः। आनीतोऽयं मया धूपो भवानि प्रतिगृह्यताम् ॥ दशाङ्गं गुग्गुलं धूपं सुगन्धिं सुमनोहरम्। अर्पयामि महादेव प्रसीद सुमुखो भव ॥ दीपः—मन्दारमाला०—त्वं ज्योतिः सर्वदेवानां तेजसा तेज उत्तमम्। आत्मज्योतिः परं धाम दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ स्वप्रकाशो महान् दीपः सर्वतस्तिमिरापहः। आत्मज्योतिः परं धाम महादेव प्रगृह्यताम्। नैवेद्यम्—मन्दारमाला०—अन्नं च विविधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्। भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ सत्पात्रसिद्धं सुहविर्विविधानन्दलक्षणम्। निवेदयामि भवते सानुगाय गृहाण तत् ॥ करोद्वर्त्तनं—मन्दारमाला०—मलयाचलसम्भूतं कर्पूरेण समन्वितम्। करोद्वर्तनकं चारु गृह्यतां जगती पते ॥ फलं—मन्दारमाला०—इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्तव। येन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ ताम्बूलं—मन्दारमाला—कर्पूरैलालवङ्गादिताम्बूलीदलसंयुतम्। क्रमुकस्य फलं चैव ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ दक्षिणा—मन्दारमाला०—हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ भूषणं—मन्दारमाला०—वज्रमाणिक्यवैदूर्यमुक्ताविद्रुममण्डितम्। पुष्परागसमायुक्तं भूषणं प्रतिगृह्यताम्। ततः पुष्पाञ्जलिः—

उमायै नमः, गौर्यै नमः, पार्वत्यै नमः, जगद्धात्र्यै नमः, जगत्प्रतिष्ठायै नमः, शान्तिरूपिण्यै नमः। हराय नमः, महेश्वराय नमः, सम्भवे नमः, शूलपाणये नमः, पिनाकधृषे नमः, शिवाय नमः, पशुपतये नमः, महादेवाय नमः। इति पुष्पाञ्जलिं समर्पयेत्।

प्रदक्षिणा—मन्दारमाला०—यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिण ! पदे पदे ॥ नमस्काराः—शिवायै हरकान्तायै प्रकृत्यै सृष्टिहेतवे। शिवायै सर्वमाङ्गल्यै शिवरूपे जगन्मये। शिवे कल्याणदे नित्यं शिवरूपे नमोऽस्तु ते। शिवप्रिये नमस्तुभ्यं शिवायै सततं नमः ॥ नमस्ते ब्रह्मचारिण्यै जगद्धात्र्यै नमो नमः।

संसारभयसन्तापात् त्राहि सां सिंहवाहिनि॥ नमः शिवाय शान्ताय पञ्चवक्त्राय शूलिने। नन्दिभृङ्गिमहाकालगणयुक्ताय शम्भवे॥ नमस्ते सर्वदीपात्मन् निमेषत्रुटिसम्भव। जन्ममृत्युजराव्याधिसंसारभयनाशन॥ नमस्ते देवदेवेश नमस्ते धरणीधर। नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते पुरुषोत्तम॥ संसारार्णवमग्नं च त्राहि मां वृषभध्वज। हराय च नमस्तुभ्यं त्रैलोक्यव्यापिने नमः॥ मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालाङ्कितशेखराय। दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥ पुष्पाञ्जलिः—मन्दारमाला०—पुष्पाण्यनेकरूपाणि मालाश्चैव सुशोभनाः। गृहाण सह पार्वत्या छत्रचामरदर्पणान्॥ अथ विशेषार्घ्यः—गौरीहर महेशान व्रतसम्पूर्तिहेतवे। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं फलपुष्पाम्बुसम्भृतम्॥ प्रार्थना—पुत्रान् देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि सुव्रते। अन्याश्च सर्वकामान् मे देहि देवि नमोस्तु ते॥ येन कामेन देवि त्वं पूजितासि महेश्वरि। राज्यसौभाग्यसम्पत्ति मह्यं देह्यम्ब पार्वति॥ एवमुमामहेश्वरौ सम्पूज्य (४९ पृष्ठोक्तां) कथां श्रुत्वा गायनकीर्तनादिभिर्निशामतिवाहयेत्।

अथ विसर्जनम्

ततः प्रातः अरुणोदयवेलायां स्नानादिकृत्यं विधाय यथोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा आरार्तिकं विधाय 'मन्दारमाला०' इति मन्त्रेण विसर्जयेत्—शङ्करेण समायुक्ते गच्छ देवि यथासुखम्। मम दौर्भाग्यनाशाय पुनरागमनाय च॥ नमः उमामहेश्वरौ पूजितौ स्थः क्षमेयाथाम् स्वस्थानं गच्छतम्। ततो दक्षिणा—नमोऽद्य कृतैतद् हरितालिकाव्रतपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। ॐ स्वस्तीति प्रतिवचनम्। ततो मृन्मयीं प्रतिमां जलाशये प्रक्षिपेत्। स्वर्णमयीं चेत् प्रतिपादयेत्। ततो गौरीप्रीत्यर्थं ब्राह्मणान् सुवासिनीश्च भोजयेत्। इति हरितालिकाव्रतपूजा समाप्ता।

अथ संक्षिप्तहरितालिकापूजा

भाद्रशुक्लतृतीयायां प्रदोषेऽवैधव्यकामाः स्त्रियः हरितालीव्रतं कुर्युः। तत्र प्रदोषे स्नात्वा गौर्याः नित्यपूजां विधाय चन्दनादिसुगन्धिलिप्तस्थले मृन्मयीं चतुर्भुजां गौरीप्रतिमां वृषभस्थितपञ्चवक्त्रशिवप्रतिमां च स्थापयित्वा कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽस्यां रात्रौ भाद्रमासीयशुक्लपक्षीयतृतीयायां तिथौ अमुकगोत्राया अमुकीदेव्या मम दीर्घायुष्ट्वपुत्रपौत्रादिचिरजीवित्वजन्मजन्मार्जितसकलपापक्षयपूर्वकश्रीगौरीपरमप्रीतिकामा (अद्यादिचतुर्दशवर्षाणि यावत् सकलभाद्रशुक्लतृतीयायां) हरितालिकाव्रतमहं करिष्ये। इति संकल्प्य नमः शिवोसि, नमो गौर्यसि, इति कुशहस्तेन नाम कृत्वा प्राणप्रतिष्ठां (१) विधाय पुष्पमेकं गृहीत्वा—ध्याये नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्। पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥ इति ध्यात्वा, शिवाय नमः इत्यनेन यथोपचारैः शिवं पूजयेत्। ततः पुष्पं गृहीत्वा—पीतकौशेयवसनां हेमाभां कमलासनाम्। भक्तानां वरदां नित्यं पार्वतीं चिन्तयाम्यहम्॥ इति ध्यात्वा—नमः शिवायै शिवरूपायै मङ्गलायै महेश्वरि। शिवे सर्वार्थदे देवि शिवरूपे नमोस्तु ते॥ एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि नमो गौर्यै नमः। ततश्चन्दनं—कर्पूरागरुसंघृष्टकुंकुमादिसमन्वितम्। कस्तूरिकासमायुक्तं चन्दनं प्रतिगृह्यताम्॥ इदमनुलेपनं नमो गौर्यै नमः। ततः अक्षताः—रञ्जिताः कुसुमौघेन अक्षताश्चातिशोभनाः। ममैषां देवि दानेन प्रसन्ना भव पार्वति॥ इदमक्षतं नमो गौर्यै नमः। ततः पुष्पम्—शिवरूपे नमस्तुभ्यं

---

(१) प्राणप्रतिष्ठामन्त्रः—आँ ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः अनयोः प्राणाः। आँ ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः आँ ह्रीं क्रौं-अनयोर्वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥

शिवायै सततं नमः। नमस्ते शिवरूपिण्यै जगद्धात्र्यै नमो नमः॥ एतानि पुष्पाणि नमो गौर्यै नमः। एवं पुनः पुनः इमं मन्त्रमुच्चार्य्य एतानि दूर्वादलानि०, एतानि विल्वपत्राणि०, इदं रक्तवस्त्रम्०, इदं सिन्दूरम्०, इदमलङ्करणम्०, एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनानाविधनैवेद्यानि०, इदमाचमनीयम्०, एष पुष्पाञ्जलिः नमो गौर्यै नमः। इति प्रत्येकं निवेदयेत्। ततो दण्डवत्प्रणम्य प्रार्थयेदनेन—सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। संसारवृत्तिविच्छेदे त्राहि मां सिंहवाहिनि॥ मया ध्यानेन कामेन पूजितासि महेश्वरि। राज्यं मे देहि सौभाग्यं प्रसन्ना भव पार्वति॥ इति सम्प्रार्थ्य कथां श्रुत्वा (४८ पृष्ठोक्त) विधिना विसर्जनं कुर्यात्।

अथ हरितालिकाव्रतकथा

मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालाङ्कितशेखराय।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥ १॥

कैलासशिखरे रम्ये गौरी पृच्छति शङ्करम्। गुह्याद् गुह्यतरं गुह्यं कथयस्व महेश्वर॥ २॥ सर्वेषां धर्मसर्वस्वमल्पायासं महत्फलम्।
प्रसन्नोऽसि यदा नाथ तथ्यं ब्रूहि ममाग्रतः॥ ३॥ केन त्वं हि मया प्राप्तस्तपोदानव्रतादिना।
अनादिमध्यनिधनो भर्ता चैव जगत्प्रभुः॥ ४॥ (ईश्वर उवाच) शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तवाग्रे व्रतमुत्तमम्।
यद्गोप्यं मम सर्वस्वं कथयामि तव प्रिये॥ ५॥ यथा चोडुगणे चन्द्रो ग्रहाणां भानुरेव च। वर्णानाञ्च यथा विप्रो
देवानां विष्णुरुत्तमः॥ ६॥ नदीषु च यथा गङ्गा पुराणानाञ्च भारतम्। वेदानाञ्च यथा साम इन्द्रियाणां मनो
यथा॥ ७॥ पुराणं वेदसर्वस्वमागमेन यथोदितम्। एकाग्रेण शृणुष्वैतद्यथा दृष्टं पुरातनम्॥ ८॥ येन पुण्यप्रभावेण
प्राप्तमर्द्धासनं मम। सर्वं तत्कथयिष्येऽहं त्वं मम प्रेयसी यतः॥ ९॥ भाद्रे मासि सिते पक्षे तृतीया हस्तसंयुता।

तदाचरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १० ॥ शृणु देवि त्वया पूर्वं यद्व्रतं चरितं महत् । तत्सर्वं कथयिष्यामि यथावृत्तं हिमाचले ॥ ११ ॥ (पार्वत्युवाच) कथं कृतं मया नाथ व्रतानां व्रतमुत्तमम् । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्सकाशान्महेश्वर ॥ १२ ॥ (ईश्वर उवाच) अस्ति देवि महादिव्यं हिमवान्नग उत्तमः । नानावृक्षवरै रम्यो नानाशृङ्गादि चित्रितः ॥ १३ ॥ यत्र देवाः सगन्दर्वाः सिद्धचारणगुह्यकाः । विचरन्ति सदा हृष्टा गन्धर्वा गानतत्पराः ॥ १४ ॥ स्फाटिकैः काञ्चनैर्दिव्यैर्मणिवैदूर्यभूषितैः । भुजैर्लिखन्निवाकाशं सुहृदो मन्दिरं यथा ॥ १५ ॥ हिमेन सहितो नित्यं गङ्गाध्वनिनिनादितः । तत्र त्वं पार्वती बाला कुर्वती सुमहत्तपः ॥ १६ ॥ अब्दद्वादशकं देवि धूमपानमधोमुखी । संवत्सरं चतुष्षष्टि पक्वपर्णाशनं कृतम् ॥ १७ ॥ दृष्टं तातेन तत्कष्टं चिन्तया दुःखितोऽभवत् । कस्मै देया मया कन्या एवं चिन्तातुरोऽभवत् ॥ १८ ॥ तदैवाम्बरतः प्राप्तो ब्रह्मपुत्रस्तु धर्मवित् । नारदो मुनिशार्दूलः शैलपुत्रीदिदृक्षया ॥ १९ ॥ अर्घ्यादिभिस्तमभ्यर्च्य हिमवानभ्यभाषत । (हिमवानुवाच) किमर्थमागतः स्वामिन् वदस्व मुनिसत्तम ॥ २० ॥ महद्भाग्येन सम्प्राप्तं त्वदागमनमुत्तमम् । (नारद उवाच) शृणु शैलेन्द्र मद्वाक्यं विष्णुना प्रेषितोस्म्यहम् ॥ २१ ॥ योग्यं योग्याय दातव्यं कन्यारत्नमिदं त्वया । वासुदेवसमो नास्ति ब्रह्मविष्णुशिवादिषु ॥ २२ ॥ तस्मै देया त्वया कन्या अत्रार्थे सम्मतं मम । (हिमवानुवाच) वासुदेवः स्वयं देवः कन्यां प्रार्थयते यदि ॥२३॥ तदा मया प्रदातव्या त्वदागमनगौरवात् । इत्येवं गदितं श्रुत्वा तस्य त्वन्तर्दधे मुनिः ॥ २४ ॥ ययौ पीताम्बरधरं शङ्खचक्रगदाधरम् । कृताञ्जलिपुटो भुत्वा मुनीन्द्रस्तमभाषत ॥ २५ ॥ (नारद उवाच) देव सिद्धं भवत्कार्यं विवाहो निश्चितस्तव । हिमवांस्तु तदा गौरीमुवाच वचनं मुदा ॥ २६ ॥ दत्ताऽसि त्वं मया पुत्रि देवाय गरुडध्वजे । श्रुत्वा वाक्यं पितुर्देवी सखिभिः सहिता वने ॥ २७ ॥ सिहव्याघ्रसृगैर्व्याप्ते तत्र सुप्ता च निर्जने । (सख्युवाच) किमर्थं दुःखिता देवि कथयस्व ममाग्रतः ॥ २८ ॥ यत्ते भवत्यभिहितं करिष्येऽहं न संशयः । (पार्वत्युवाच) सखि प्रिये शृणुष्वाद्य मनोभिलषितं मम ॥ २९ ॥ कपर्दिनं

च भर्तारं करिष्येऽहं न संशयः। एतन्मे चिन्तितं कार्यं तातेन कृतमन्यथा ॥ ३० ॥ तस्माद् देहपरित्यागं करिष्येहं सखि प्रिये। पार्वत्या वचनं श्रुत्वा सखी वचनमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ पिता यत्र न जानाति गमिष्यामो हि तद्वनम्। इत्येवं सम्मतं कृत्वा गता शीघ्रं महद्वनम् ॥ ३२ ॥ पिता निरीक्षयामास हिमवांस्तु गृहे गृहे। केन नीताऽसि मे पुत्रि देवदानवकिन्नरैः ॥ ३३ ॥ नारदेन कृतं सत्यं किं दास्ये गरुडध्वजे। इत्येवं चिन्तयाविष्टो मूर्छितो निपपात ह ॥ ३४ ॥ हा हा कृत्वा ततो लोका अभ्यधावन्त तं प्रति मूर्च्छा प्राप्ता त्वया कस्मात् कथयस्व विशेषतः ॥ ३५ ॥ (हिमवानुवाच) दुःखस्य हेतुं शृणुत कन्यारत्नं हृतं मम। दष्टा वा कालसर्पेण सिहव्याघ्रेण वा हता ॥ ३६ ॥ न जाने क्व गता पुत्री केन दुष्टेन वा हृता। चकम्पे शोकसन्तप्तो वातेनेव यथा तरुः ॥ ३७ ॥ गिरिर्वनाद्वनं यातस्तदालोकनकारणात्। सिहव्याघ्रैश्च भल्लूकैरहिभिः सहितं वनम् ॥ ३८ ॥ त्वं चापि विपिनं घोरे व्रजन्ती सखिभिः सह। तत्र दृष्ट्वा नदीं रम्यां तत्तीरे च महागुहाम् ॥ ३९ ॥ ताम्प्रविश्य सखीसार्द्धमन्नभोगविवर्जिता। संस्थाप्य वालुकापिण्डं पार्वत्या सहितं मम ॥ ४० ॥ या तृतीया भाद्रपदे हस्तनक्षत्रसंयुता। तत्र वाद्येन गीतेन रात्रौ जागरणं कृतम् ॥ ४१ ॥ तेन व्रतप्रभावेण आसनञ्चलितं मम। सम्प्राप्तोऽहं तदा तत्र यत्र त्वं सखिभिः सह ॥ ४२ ॥ प्रसन्नोऽस्मि मया प्रोक्तं वरं ब्रूहि वरानने। यदि देव प्रसन्नोसि भर्ता भव महेश्वर ॥ ४३ ॥ तथेत्युक्त्वा त्वहं देवि कैलासं पुनरागतः। ततः प्रभाते सम्प्राप्ते नद्यां कृत्वा विसर्जनम् ॥ ४४ ॥ पारणन्तु कृतं तत्र सख्या सार्द्धं त्वया शुभे। हिमवानपि तं देशमाजगाम महावने ॥ ४५ ॥ आलोक्य च चतुर्दिक्षु विह्वलः पतितः पुनः। दृष्ट्वा तत्र नदीतीरे प्रसुप्तं कन्यकाद्वयम् ॥ ४६ ॥ उत्थाप्योत्सङ्गमारोप्य रोदनं कृतवान् गिरिः। सिहव्याघ्राहिभल्लूकैर्वने दुष्टे कुतः स्थिता ॥४७॥ (पार्वत्युवाच) शृणु तात मया ज्ञातं त्वं दास्यसीश्वराय माम्। तदन्यथा कृतं येन तेनाहं वनमागता ॥ ४८ ॥ ददासि तात यदि मां महेशाय तदा गृहम्। आगमिष्यामि नैवं चेदिह स्थास्यामि निश्चितम् ॥ ४९ ॥ तथेत्युक्त्वा हिमवता नीतासि त्वं

तदाचरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १० ॥ शृणु देवि त्वया पूर्वं यद्व्रतं चरितं महत् । तत्सर्वं कथयिष्यामि यथावृत्तं हिमाचले ॥ ११ ॥ (पार्वत्युवाच) कथं कृतं मया नाथ व्रतानां व्रतमुत्तमम् । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्सकाशान्महेश्वर ॥ १२ ॥ (ईश्वर उवाच) अस्ति देवि महादिव्यं हिमवान्नग उत्तमः । नानावृक्षवरै रम्यो नानाशृङ्गादि चित्रितः ॥ १३ ॥ यत्र देवाः सगन्दर्वाः सिद्धचारणगुह्यकाः । विचरन्ति सदा हृष्टा गन्धर्वा गानतत्पराः ॥ १४ ॥ स्फाटिकैः काञ्चनैर्दिव्यैर्मणिवैदूर्यभूषितैः । भुजैर्लिखन्निवाकाशं सुहृदो मन्दिरं यथा ॥ १५ ॥ हिमेन सहितो नित्यं गङ्गाध्वनिनिनादितः । तत्र त्वं पार्वती बाला कुर्वती सुमहत्तपः ॥ १६ ॥ अब्दद्वादशकं देवि धूमपानमधोमुखी । संवत्सरं चतुष्षष्टि पक्वपर्णाशनं कृतम् ॥ १७ ॥ दृष्टं तातेन तत्कष्टं चिन्तया दुःखितोऽभवत् । कस्मै देया मया कन्या एवं चिन्तातुरोऽभवत् ॥ १८ ॥ तदैवाम्बरतः प्राप्तो ब्रह्मपुत्रस्तु धर्मवित् । नारदो मुनिशार्दूलः शैलपुत्रीदिदृक्षया ॥ १९ ॥ अर्घ्यादिभिस्तमभ्यर्च्य हिमवानभ्यभाषत । (हिमवानुवाच) किमर्थमागतः स्वामिन् वदस्व मुनिसत्तम ॥ २० ॥ महद्भाग्येन सम्प्राप्तं त्वदागमनमुत्तमम् । (नारद उवाच) शृणु शैलेन्द्र मद्वाक्यं विष्णुना प्रेषितोस्म्यहम् ॥ २१ ॥ योग्यं योग्याय दातव्यं कन्यारत्नमिदं त्वया । वासुदेवसमो नास्ति ब्रह्मविष्णुशिवादिषु ॥ २२ ॥ तस्मै देया त्वया कन्या अत्रार्थे सम्मतं मम । (हिमवानुवाच) वासुदेवः स्वयं देवः कन्यां प्रार्थयते यदि ॥२३॥ तदा मया प्रदातव्या त्वदागमनगौरवात् । इत्येवं गदितं श्रुत्वा तस्य त्वन्तर्दधे मुनिः ॥ २४ ॥ ययौ पीताम्बरधरं शङ्खचक्रगदाधरम् । कृताञ्जलिपुटो भुत्वा मुनीन्द्रस्तमभाषत ॥ २५ ॥ (नारद उवाच) देव सिद्धं भवत्कार्यं विवाहो निश्चितस्तव । हिमवांस्तु तदा गौरीमुवाच वचनं मुदा ॥ २६ ॥ दत्ताऽसि त्वं मया पुत्रि देवाय गरुडध्वजे । श्रुत्वा वाक्यं पितुर्देवी सखिभिः सहिता वने ॥ २७ ॥ सिंहव्याघ्रमृगैर्व्याप्ते तत्र सुप्ता च निर्जने । (सख्युवाच) किमर्थं दुःखिता देवि कथयस्व ममाग्रतः ॥ २८ ॥ यत्ते भवत्यभिहितं करिष्येऽहं न संशयः । (पार्वत्युवाच) सखि प्रिये शृणुष्वाद्य मनोभिलषितं मम ॥ २९ ॥ कपर्दिनं

च भर्तारं करिष्येऽहं न संशयः। एतन्मे चिन्तितं कार्यं तातेन कृतमन्यथा ॥ ३० ॥ तस्माद् देहपरित्यागं करिष्येहं सखि प्रिये। पार्वत्या वचनं श्रुत्वा सखी वचनमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ पिता यत्र न जानाति गमिष्यामो हि तद्वनम्। इत्येवं सम्मतं कृत्वा गता शीघ्रं महद्वनम् ॥ ३२ ॥ पिता निरीक्षयामास हिमवांस्तु गृहे गृहे। केन नीताऽसि मे पुत्रि देवदानवकिन्नरैः ॥ ३३ ॥ नारदेन कृतं सत्यं किं दास्ये गरुडध्वजे। इत्येवं चिन्तयाविष्टो मूर्छितो निपपात ह ॥ ३४ ॥ हा हा कृत्वा ततो लोका अभ्यधावन्त तं प्रति मूर्च्छां प्राप्ता त्वया कस्मात् कथयस्व विशेषतः ॥ ३५ ॥ (हिमवानुवाच) दुःखस्य हेतुं शृणुत कन्यारत्नं हृतं मम। दष्टा वा कालसर्पेण सिंहव्याघ्रेण वा हता ॥ ३६ ॥ न जाने क्व गता पुत्री केन दुष्टेन वा हृता। चकम्पे शोकसन्तप्तो वातेनेव यथा तरुः ॥ ३७ ॥ गिरिर्वनाद्वनं यातस्तदालोकनकारणात्। सिंहव्याघ्रैश्च भल्लूकैरहिभिः सहितं वनम् ॥ ३८ ॥ त्वं चापि विपिनं घोरे व्रजन्ती सखिभिः सह। तत्र दृष्ट्वा नदीं रम्यां तत्तीरे च महागुहाम् ॥ ३९ ॥ ताम्प्रविश्य सखीसार्द्धमन्नभोगविवर्जिता। संस्थाप्य वालुकापिण्डं पार्वत्या सहितं मम ॥ ४० ॥ या तृतीया भाद्रपदे हस्तनक्षत्रसंयुता। तत्र वाद्येन गीतेन रात्रौ जागरणं कृतम् ॥ ४१ ॥ तेन व्रतप्रभावेण आसनञ्चलितं मम। सम्प्राप्तोऽहं तदा तत्र यत्र त्वं सखिभिः सह ॥ ४२ ॥ प्रसन्नोऽस्मि मया प्रोक्तं वरं ब्रूहि वरानने। यदि देव प्रसन्नोसि भर्ता भव महेश्वर ॥ ४३ ॥ तथेत्युक्त्वा त्वहं देवि कैलासं पुनरागतः। ततः प्रभाते सम्प्राप्ते नद्यां कृत्वा विसर्जनम् ॥ ४४ ॥ पारणन्तु कृतं तत्र सख्या सार्द्धं त्वया शुभे। हिमवानपि तं देशमाजगाम महावने ॥ ४५ ॥ आलोक्य च चतुर्दिक्षु विह्वलः पतितः पुनः। दृष्ट्वा तत्र नदीतीरे प्रसुप्तं कन्यकाद्वयम् ॥ ४६ ॥ उत्थाप्योत्सङ्गमारोप्य रोदनं कृतवान् गिरिः। सिंहव्याघ्राहिभल्लूकैर्वने दुष्टे कुतः स्थिता ॥४७॥ (पार्वत्युवाच) शृणु तात मया ज्ञातं त्वं दास्यसीश्वराय माम्। तदन्यथा कृतं येन तेनाहं वनमागता ॥ ४८ ॥ ददासि तात यदि मां महेशाय तदा गृहम्। आगमिष्यामि नैवं चेदिह स्थास्यामि निश्चितम् ॥ ४९ ॥ तथेत्युक्त्वा हिमवता नीतासि त्वं

गृहं प्रति । पश्चाद्दत्ता त्वमस्माकं कृत्वा वैवाहिकीं क्रियाम् ॥ ५० ॥ तेन व्रतप्रभावेण सौभाग्यं साधितं त्वया । अद्यापि व्रतराजस्तु न कस्यापि निवेदितः ॥ ५१ ॥ नामाऽस्य व्रतराजस्य शृणु देवि यथाऽभवत् । आलीभिर्हरिता यस्मात्तस्मात् सा हरितालिका ॥५२॥ (पार्वत्युवाच) नामेदं कथितं तस्य विधिं वद मम प्रभो । किं पुण्यं फलं चास्य केन च क्रियते व्रतम् ॥ ५३ ॥ (ईश्वर उवाच) शृणु देव विधिं वक्ष्ये नारीणां व्रतमुत्तमम् । कर्तव्यं च विशेषेण यदि सौभाग्यमिच्छति ॥५४॥ तोरणादि च कर्तब्यं कदलीस्तम्भमण्डितम् । आच्छाद्य पट्टवस्त्रैस्तु नानावर्णविचित्रितैः ॥ ५५ ॥ चन्दनेन सुगन्धेन लेपयेद् गृहमण्डपम् । शङ्खभेरीमृदङ्गैश्च कारयेद्बहुनिःस्वनैः ॥ ५६ ॥ नानामङ्गलगीतञ्च कर्तब्यं मम सद्मनि । स्थापनं तत्र कर्तव्यं पार्वत्या सहितस्य मे ॥ ५७ ॥ उपोष्य पूजयेद्भक्त्या कुर्याज्जागरणं निशि । नारिकेलैश्च जम्बीरैः फलैश्च विविधैस्तथा ॥ ५८ ॥ ऋतुदेशोद्भवैः सर्वैर्नैवेद्यैः कुसुमैर्नवैः । धूपदीपादिगन्धैश्च मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ ५९ ॥ नमः शिवाय शान्ताय पञ्चवक्त्राय शूलिने । नन्दिभृङ्गिमहाकालगणयुक्ताय शम्भवे ॥ ६० ॥ शिवायै हरकान्तायै प्रकृत्यै सृष्टिहेतवे । शिवायै सर्वमाङ्गल्यै शिवरूपे जगन्मये ॥ ६१ ॥ शिवे कल्याणदे नित्यं शिवरूपे नमोस्तु ते । शिवरूपे नमस्तुभ्यं शिवायै सततं नमः ॥ ६२ ॥ नमस्ते ब्रह्मरूपिण्यै जगद्धात्र्यै नमो नमः । संसारभयसन्तापात् त्राहि मां सिंहवाहिनि ॥ ६३ ॥ येन कामेन देवेशि पूजितासि महेश्वरि । राज्यं सौभाग्यसम्पत्ति देहि मे गिरिकन्यके ॥ ६४ ॥ मन्त्रेणानेन देवि त्वां पूजयित्वा मया सह । कथां श्रुत्वा विधानेन दद्यादन्नञ्च भूरिशः ॥ ६५ ॥ ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति देया वस्त्रहिरण्यगाः । अन्येषां भूयसीं देया स्त्रीणां वा भूषणादिकम् ॥ ६६ ॥ भर्त्रा सह कथां श्रुत्वा भक्तियुक्तेन चेतसा । कृत्वा व्रतेश्वरं देवि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६७ ॥ सप्तजन्म भवेद्राज्यं सौभाग्यं चैव वर्द्धते । तृतीयायान्तु या नारी लोभाद्भोजनमाचरेत् ॥ ६८ ॥ सप्तजन्म भवेद् बन्ध्या विधवा च पुनः पुनः । दारिद्र्यं पुत्रशोकञ्च कर्कशा दुःखभागिनी ॥ ६९ ॥ पच्यते नरके घोरे नोपवासं करोति या । राजते काञ्चने ताम्रे

वैष्णवे चाथ मृन्मये ॥ ७० ॥ भाजने विन्यसेदन्नं सवस्त्रफलदक्षिणम् । भक्त्या निवेद्य विप्राय ततः कुर्याच्च पारणम् ॥ १७ ॥ एवंविधं या कुरुते च नारी, त्वया समाना रमते स्वभर्त्रा । भोगाननेकान् भुवि भुज्यमाना, सायुज्यमन्ते लभते हरेण ॥ २७ ॥ अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । कथाश्रवणमात्रेण तत्फलं लभते नरः ॥ ३७ ॥ एतत्ते कथितं देवि तवाग्रे व्रतमुत्तमम् । कोटियज्ञकृतं पुण्यं यस्यानुष्ठानमात्रतः ॥ ४७ ॥

इति श्रीभविष्योत्तरपुराणे हरितालिकाव्रतकथा समाप्ता ।

अथ भाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्रपूजा

भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां (१) निवृत्तभोजनादिभिः स्त्रीभिः (पुरुषैर्वा) सायं वेलायां पूजा कार्या । तत्र सङ्कल्पः,कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽस्यां रात्रौ भाद्रे मासि शुक्ले पक्षे चतुर्थ्यां तिथौ अमुकगोत्रायाः ममाऽमुकीदेव्याः(२) सकलकल्याणोत्पत्तिपूर्वकधनधान्यसमृद्धिसकलमनोरथसिद्धयर्थं यथाशक्ति गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयज्ञोपवीतवस्त्रनानाविधनैवेद्यादिभिः रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्रपूजनं तत्कथाश्रवणं चाहं करिष्ये॥ इति । ततोऽक्षतमादाय नमो गणपत्यादिपञ्चदेवताः इहागच्छत इह तिष्ठत, इत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि एषोर्धः नमो गणपत्यादिपञ्चदेवताभ्यो नमः । इदमनुलेपनम्०, इदमक्षतम्०, इदं पुष्पम्०, इदं बिल्वपत्रम्०, इदं दूर्वादलम्०, एतानि गन्धपुष्पधूप, दीपताम्बूलयथाभागनानाविधनैवेद्यानि०, इदमाचनीयं नमो गणपत्यादिपञ्चदेवताभ्यो नमः ॥ ततः विधवा स्त्री तु—तिलानादाय नमो भगवन् श्रीविष्णो इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य स्थापयित्वा एतानि पाद्यादीनि एषोर्धः नमो

---

(१) इयं चतुर्थी प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ पञ्चमीयुतैव, 'युग्माग्निकृतुभूतानि'इत्यादिनिगमात् ।

(२) पुरुषकर्तृके सति—'अमुकगोत्रस्य ममामुकशर्मणः' इति । एवं सर्वत्र 'नमः' शब्दस्थाने 'ओं' शब्दः प्रयोक्तव्यः ।

भगवते श्रीविष्णवे नमः । एवं पञ्चोपचारैः पूजयेत् । सधवा (१) स्त्री तु—विष्णुपूजास्थाने गौरीं पूजयेत् । तद्यथा—अक्षतमादाय नमो गौरि इहागच्छ इह तिष्ठ, इत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि नमो गौर्यै नमः । इदमनुलेपनम्०,इदं सिन्दूरम्०, इदमक्षतम्०, इदं पुष्पम्०, इदं दूर्वादलम्०, इदं बिल्वपत्रम्०, एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयथाभागनानाविधनैवेद्यानि० इदमाचनीयं नमो गौर्यै नमः । ततोऽक्षतमादाय–नमो रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठ, इत्यावाह्य स्थापयित्वा श्वेतपुष्पं गृहीत्वा—श्वेताम्बरं स्वच्छतनुं सुधांशुं चतुर्भुजं हेमविभूषणाढ्यम् । वरं सुधां दिव्यकमण्डलुञ्च करैरभीतिञ्च दधानमीडे ॥ एष पुष्पाञ्जलिः० । ततोऽर्घ्यमादाय—सोमाय सोमेश्वराय सोमपतये सोमसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घ्यः नमो रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्राय नमः । ततः चन्दनमादाय—मलयाद्रिसमुद्भूतं श्रीखण्डं त्रिदशप्रियम् । सर्वपापहरं सौख्यं चन्दनं मे प्रगृह्यताम् ॥ इदमनुलेपनं नमो रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्राय नमः । ततः इदमक्षतं नमो रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्राय नमः । ततः श्वेतपुष्पाण्यादाय—त्रैलोक्यमोदकं पुण्यं शुक्लपुष्पं मनोहरम् । दिव्यौषधि क्षपानाथ गृह्यतां च प्रसीद मे ॥ एतानि पुष्पाणि नमो रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्राय नमः । इदं बिल्वपत्रम्०, इदं दूर्वादलम् नमो रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्राय नमः । ततो यज्ञोपवीतमादाय—सुसंस्कृतं चतुर्वेदैर्द्विजानां भूषणं वरम् । यज्ञोपवीतं देवेश कृपया मे प्रगृह्यताम् ॥ इमे यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते नमो रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्राय नमः । ततो

---

(१) अत्र रजोदर्शनादिप्रतिबन्धके विशेषः—गर्भिणी सूतिका चैव कुमारी चाऽथ रोगिणी । यद्यशुद्धा तदाऽन्येन कारयेत् प्रयता स्वयम् ॥ अन्यच्च कात्यायने—भार्या भर्तृव्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिस्तथा । असामर्थ्ये तयोरेव व्रतभङ्गो न जायते ॥ इति । स्कान्दे—असामर्थ्ये शरीरस्य व्रते च समुपस्थिते । कारयेत् धर्मपत्नीं वा पुत्रं वा विनयान्वितम् ॥ भ्रातरं भगिनीं शिष्यं ब्राह्मणं दक्षिणादिभिः ।

वस्त्रमादाय—तन्तुसन्तानसम्भूतं कलाकोशलकल्पितम् । सर्वाङ्गभूषणश्रेष्ठं वसनं परिधीयताम् ॥ इदं वस्त्रं बृहस्पतिदैवतं नमो रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्राय नमः । ततः–नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलां कुरु । ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च पराङ्गतिम् ॥ एतानि गन्धपुष्पधूपदीपसदधिपक्वान्नादिनानाविधनैवेद्यानि नमो रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्राय नमः । ततः—पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् । कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ एतानि ताम्बूलानि । धूपमादाय—गन्धभारवहं दिव्यं नानावस्तुसमन्वितम् । सुरासुरनरानन्दं धूपं देव गृहाण मे ॥ एष धूपः नमो रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्राय नमः । ततः कलशदीपदानम्—मार्तण्डमण्डलाखण्डचन्द्रबिम्बाग्निदीप्तिमान् । विधात्रा देवदीपोऽयं निर्मितस्तेऽस्तु भक्तितः ॥ एष कलशदीपः नमो रोहिणीसहित० । ततः शङ्खस्थफलपुष्पसहितदुग्धेन—अत्रिनेत्रसमुद्भूत क्षीरोदार्णवसम्भव । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिण्या सहितप्रभो ॥ इदं दुग्धार्घ्यं नमो रोहिणीसहित० । ततो दधिशष्कुलीकदलीडल्लकादिकं प्रत्येकं गृहीत्वा चन्द्रं (१) पश्येदनेन—

दर्शनमन्त्रः—सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥

प्रणाममन्त्रः—नमः शुभ्रांशवे तुभ्यं द्विजराजाय ते नमः । रोहिणीपतये तुभ्यं लक्ष्मीभ्रात्रे नमोऽस्तु ते ॥
दिव्यशङ्खतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम् । नमामि शशिनं भक्त्या शम्भोर्मुकुटभूषणम् ॥

प्रार्थनामन्त्रः—मृगाङ्क रोहिणीनाथ शम्भोः शिरसि भूषण । व्रतं सम्पूर्णतां यातु सौभाग्यं च प्रयच्छ मे ॥
रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवन् देहि मे । (२) पुत्रान्देहि धनन्देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥

---

(१) 'सिंहादित्ये शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम् । मिथ्याभिशापं कुरुते तस्मात् प्रश्येन्न तं तदा ॥' इति मार्कण्डेयोक्तभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्रदर्शनदोषनिरासार्थं चन्द्रं प्रति गणेशवाक्यं यथा स्कान्दे—'भाद्रशुक्लचतुर्थ्यान्तु मोदकाद्यैः प्रपूज्य माम् । रोहिण्या सहितं त्वाञ्च समभ्यर्च्य विधानतः । सदा तस्य करिष्यामि संकटस्य निवारणम् ॥'इति । (२)विधवा तु 'धर्मन्देहि'ति पठेत् ।

अथ भाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्रव्रतकथा

नन्दिकेश्वर उवाच—शृणुष्वैकाग्रचित्तः सन् चन्द्रोपाख्यानमुत्तमम् । भाद्रशुक्लचतुर्थ्यान्तु चन्द्रपूजनमुत्तमम् ॥१॥ सनत्कुमार योगीन्द्र यदीच्छेच्छुभमात्मनः । नारी वा पुरुषो वाऽपि यः कुर्यात् पूजनं महत् ॥ २ ॥ धनपुत्रान्वितो भूत्वा मोदते च सदा नरः । अपवादहरञ्चैव सर्वविघ्नविनाशकम् ॥ ३ ॥ (सन० उवाच) मर्त्यलोके कथं प्राप्तं तत्कथां वद मे प्रभो ! (नन्दि० उवाच) चक्रे व्रतं जगन्नाथो गणेशस्य विधोरपि ॥ ४ ॥ दर्शनं पूजनञ्चापि नारदेन च प्रेरितः । वृथा लाञ्छनशान्तिञ्च तस्मादेव बभूव ह ॥ ५ ॥ (सन० उवाच) षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नसृष्टिसंहारकारकः । वासुदेवो जगद्व्यापी प्राप्तवान् लाच्छनङ्कथम् ॥ ६ ॥ एतदाश्चर्यमाख्यानं ब्रूहि त्वं नन्दिकेश्वर । (नन्दि० उवाच०) भुवो भारावतारार्थं वसुदेवसुतावुभौ ॥ ७ ॥ रामकृष्णौ समुत्पन्नौ पद्मनाभहलायुधौ । जरासन्धभयात् कृष्णो द्वारकां समकल्पयत् ॥ ८ ॥ विश्वकर्माणमाहूय पुरीं हाटकनिर्मिताम् । तत्र षोडशसाहस्रं स्त्रीणाञ्चैव वराधिकम् ॥ ९ ॥ यादवानां गृहास्तत्र षट्पञ्चाशत्तु कोटयः । सत्राजितप्रसेनाख्यौ पुत्रावुग्रस्य विश्रुतौ ॥ १० ॥ अम्भोधितीरमासाद्य तन्मनस्कतया च सः । सत्राजितस्तपस्तेपे सूर्यमुद्दिश्य बुद्धिमान् ॥११॥ ततः प्रसन्नो भगवान् सत्राजितपुरः स्थितः । सत्राजितोऽपि तुष्टाव दृष्ट्वा देवं दिवाकरम् ॥ १२ ॥ तेन संस्तूयमानोऽसौ देवदेवो दिवाकरः । वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि यत्ते मनसि वर्तते ॥ १३ ॥ (सत्राजित उवाच) स्यमन्तकर्माणि देहि परितुष्टोसि भास्कर । ददौ तस्मै च तद्रत्नं स्वकण्ठादवतार्य्य सः ॥ १४ ॥ (सूर्य उवाच) भाराष्टकं शातकुम्भं स्रवतेऽसौ महामणिः । शुचिष्मता सदा धार्यं रत्नमेतन्महोत्तमम् ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवस्तेजोराशिदिवाकरः ॥ १६ ॥ तत्कण्ठरत्नज्वलमानरूपो पुरीं स कृष्णस्य विवेश सत्वरम् । दृष्ट्वा तु लोका मनसा दिवाकरं सञ्चिन्तयन्तः स्तिमिताक्षदृष्टयः ॥ १७ ॥ समागतोऽयं हरिदश्वदीधितिर्जनार्दनं द्रष्टुमसंशयेन । नायं सहस्रांशुरितीह लोकाः सत्राजितोऽयं मणिकण्ठभास्वान् ॥ १८ ॥

सत्राजितो जातभयो याचयिष्यति मां हरिः। प्रसेनाय ददौ भ्रात्रे धार्योऽयं शुचिना त्वया ॥ १९ ॥ एकदा कण्ठदेशेऽसौ क्षिप्त्वा तं मणिमुत्तमम् । मृगया क्रीडनार्थाय ययौ कृष्णेन संयुतः ॥ २० ॥ अश्वारूढोऽशुचिश्चासौ हतः सिंहेन तत्क्षणात् । रत्नमादाय सिंहोऽपि गच्छन् जाम्बवता हतः ॥ २१ ॥ नीत्वा स विवरे रत्नं ददौ पुत्राय जाम्बवान् । पुरीं विवेश कृष्णोऽपि स्वकैः सर्वैः समावृतः ॥ २२ ॥ प्रसेनोऽद्यापि नायाति हतः कृष्णेन निश्चितम् । मणिलोभेन हा कष्टं वान्धवः पापिना हतः ॥ २३ ॥ द्वारकावासिनः सर्वे जना ऊचुः परस्परम् । वृथाऽपवादसन्तप्तः कृष्णोपि नगराच्छनैः ॥ २४ ॥ सहैव तैर्यथाऽरण्ये दृष्ट्वा सिंहेन पातितम् । प्रसेनं वाहनयुतं सिंहोऽपि च हतस्ततः ॥ २५ ॥ ऋक्षेण निहतं दृष्ट्वा कृष्णश्च तद्बिलं गतः । विवेश योजनशतमन्धकारं स्वतेजसा ॥ २६ ॥ निवारयन् ददर्शाग्रे प्रासादं बद्धभूमिकम् । सुकुमारं जाम्बवतो दोलायाममितद्युतिम् ॥ २७ ॥ माणिक्यं लम्बमानञ्च ददर्श भगवान् हरिः । क्रीडापयन्ती मणिना धात्रीदं वाक्यमब्रवीत् ॥ २८ ॥ (धात्र्युवाच) सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः । सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥ २९ ॥ रूपयौवनसम्पन्नां कन्यां जाम्बवतीं पुनः । दोलां दोलयमानाञ्च ददर्श कमलेक्षणः ॥ ३० ॥ मदनज्वरदाहार्ता दृष्ट्वा तं कमलेक्षणम् । उवाच ललितं वाक्यं गम्यतां गम्यतामिति ॥३१॥ रत्नं गृहीत्वा वेगेन यावच्छेते तु जाम्बवान् । इत्याकर्ण्य वचः शौरिः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ ३२ ॥ आकर्ण्य सहसोत्थाय ऋक्षः संयुयुधे ततः । तयोर्युद्धमभूद् घोरं हरिजाम्बवतोस्तदा ॥ ३३ ॥ द्वारकावासिनः सर्वे गतास्ते सप्तमे दिने । मृतः कृष्णो रक्षितो वा निःसन्दिग्धं विचार्य च ॥ ३४ ॥ परलोकक्रियां चक्रुः परेतस्य तु ते तदा । एकविंशद्दिनं यावद् बाहुप्रहरणो विभुः ॥ ३५ ॥ युयुधे तेन ऋक्षेण युद्धकर्मणि तोषितः । जाम्बवान् प्राक्तनं स्मृत्वा दृष्ट्वा देवबलं महत् ॥ ३६ ॥ (जाम्बवानुवाच) त्वया जितोऽहं देवेश देवस्त्वमसि निश्चितम् । इति प्रसाद्य देवेशं ददौ माणिक्यमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ सुतां जाम्बवतीं चाथ भार्यार्थं वरवर्णिनीम् । पाणिञ्च ग्राहयामास देवदेवश्च

जाम्बवान् ॥ ३८ ॥ मणिमादाय देवोऽपि जाम्बवत्याऽपि संयुतः । तद्वृत्तान्तं समाचष्टे द्वारकावासिनां ततः ॥ ३९ ॥
सत्राजितस्य माणिक्यं दत्तवान् संसदि स्थितः । मिथ्याऽभिशापसंशुद्धि प्राप्तवान् मधुसूदनः ॥ ४० ॥ सत्राजितोऽपि
सन्त्रस्तः कृष्णाय प्रददौ सुताम् । सत्यभामां महाबुद्धिर्ददौ सर्वगुणान्विताम् ॥ ४१ ॥ दुरात्मा शतधन्वापि गते कृष्णेपि
कुत्रचित् । सत्राजितं निहत्याशु मणिं जग्राह पापधीः ॥ ४२ ॥ कृष्णस्य पुरतः सत्या समाचष्टे विचेष्टितम् । कृष्णोपि
बलदेवं तं भ्रातरं प्रत्युवाच ह ॥ ४३ ॥ हत्वा सत्राजितं हृत्वा मणिमादाय गच्छति । मम भोग्यं च तद्रत्नं भविष्यति
न संशयः ॥ ४४ ॥ एतच्छ्रुत्वा भयत्रस्तः शतधन्वाऽपि यादवः । आहूयाक्रूरनामानं माणिक्यं प्रददौ च सः ॥ ४५ ॥
आरुह्य बडवां वेगान्निर्गतो दक्षिणां दिशम् । रथस्थावनुगच्छेतां तदा रामजनार्दनौ ॥ ४६ ॥ शतयोजनमात्रेण ममार
बडवा तदा । पलायमानो निहतः पदातिस्तु पदातिना ॥ ४७ ॥ रथस्थे बलदेवे तु हरिणा रत्नलोभिना । अदृष्टं
तत्र तद्रत्नं बलदेवं पुरोऽवदत् ॥ ४८ ॥ तदाकर्ण्य महारोषादुवाच वचनं बली । कपटी त्वं सदा कृष्ण लोभी पापी
सुनिश्चितम् ॥ ४९ ॥ अनेकशपथैः कृष्णो बलदेवं प्रसादयत् । सोऽपि धिक्कष्टमित्युक्त्वा ययौ वैदर्भमण्डलम् ॥ ५० ॥
कृष्णोऽपि रथमारुह्य द्वारकां प्रययौ पुनः । तथैवोचुर्जनाः सर्वे न साधीयानयं हरिः ॥ ५१ ॥ निष्काशितो रत्नलोभाज्ज्येष्ठो
भ्राता बलो बली । वृथाभिशापसन्तप्तो बभूव स जगत्पतिः ॥ ५२ ॥ अक्रूरोऽपि विनिष्क्रम्य तीर्थयात्रामिषात्ततः ।
काशीं गत्वा सुखेनासौ यजेद्यज्ञपतिं प्रभुम् ॥ ५३ ॥ शुचिना धार्यते तत्र मणिः सूर्यस्य निश्चितम् ।
जानन्नपि हि सर्वज्ञो मानुषं भावमाश्रितः ॥ ५४ ॥ बन्धुवैरं समुत्पन्नं लाञ्छनं समुपस्थितम् । इति चिन्तातुरं कृष्ण
नारदः समुपस्थितः ॥ ५५ ॥ नारद उवाच—किमर्थं खिद्यसे देव किं वा ते शोककारणम् । यथावृत्तं समाचक्ष्व
ममाग्रे केशव प्रभो ॥ ५६ ॥ कृष्ण उवाच—वृथा च लाञ्छनं वारं वारं लगति दुःखदः । निर्मुक्तं कुरु देवर्षे त्राहि
मां शरणागतम् ॥ ५७ ॥ नारद उवाच—जानामि कारणं देव यदर्थं लाञ्छनन्तव । त्वया भाद्रपदे शुक्लचतुर्थ्यां

चन्द्रदर्शनम् ॥ ५८ ॥ कृतं तेन समुत्पन्नं लाञ्छनन्तु वृथैव हि ॥५९॥ कृष्ण उवाच—वद नारद मे शीघ्रं को दोषश्चन्द्रदर्शने ॥६०॥ नारद उवाच—गणनाथेन संशप्तश्चन्द्रमा रूपगर्वितः । तद्दर्शने नराणां हि वृथा निन्दा भविष्यति ॥ ६१ ॥ कृष्ण उवाच—किमर्थं गणनाथेन शप्तश्चन्द्रः सुधामयः । इदमाख्यानकं श्रेष्ठं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ६२ ॥ नारद उवाच—पुरा ददुः गणेशाय ब्रह्मा विष्णुस्तथा शिवः । भार्यार्थमष्टसिद्धींश्च खल्वर्थान्निधयस्तथा ॥ ६३ ॥ विहितेन विधानेन पूजयित्वा विनायकम् । अथ प्रजापतिर्देव स्तुतिं कर्तुं प्रचक्रमे । ब्रह्मोवाच—गजवक्त्र गणाध्यक्ष लम्बोदर वरप्रद ॥६४॥ विद्याधीशश्च देवेश सृष्टिसंहारकारक । त्वत्कृपया गणाध्यक्षो विष्णुः पालयते सदा । रुद्रोऽपि संहरत्याशु स्तुतिः का ते करोम्यहम् । इत्थं संस्तूयमानोऽसौ देवदेवो गजाननः । उवाच परमप्रीतो ब्रह्माणं जगतां पतिम् । गणेश उवाच—वरं ब्रूहि प्रदास्यामि यत्ते मनसि वर्तते ॥६५॥ ब्रह्मोवाच—क्रियमाणस्य मे सृष्टिं निर्विघ्नं जायतां प्रभो । एवमस्त्विति देवोऽसौ गृहीत्वा मोदकान् करे ॥ ६६ ॥ सत्यलोकात् समागच्छन् स्वेच्छया गगने शनैः । चन्द्रलोकं समासाद्य विभ्रद्रूपमनुत्तमम् ॥ ६७ ॥ अथ हासं महच्चक्रे सोमो रूपमदान्वितः । तं दृष्ट्वा क्रोधताम्राक्षो गणनाथः शशाप ह ॥ ६८ ॥ गर्वितोऽसि शशाङ्कस्त्वं फलं प्राप्स्यसि सत्वरम् । अद्यप्रभृति लोकास्त्वां न हि पश्यन्ति पापिनम् ॥६९॥ ये पश्यन्ति प्रमादेन त्वां नरा मृगलाञ्छनम् । मिथ्याभिशापसंयुक्ता भविष्यन्ति हि ते ध्रुवम् ॥ ७० ॥ हाहाकारो महाञ्जातः श्रुत्वा शापञ्च भीषणम् । अत्यन्तम्लानवदनश्चन्द्रो वारि समाविशत् ॥७१॥ कुमुदे कुमुदां नाथः स्थाप्य तत्र कृतालयः । ततो देवर्षिगन्धर्वा निराशा दीनमानसाः ॥ ७२ ॥ तुरासाहं पुरोधाय जग्मुस्ते च पितामहम् । दृष्ट्वा पितामहं देवं शशंसुश्चन्द्रचेष्टितम् ॥ ७३ ॥ दत्तः शापो गणेशेन कथयामासुरादरात् । विचार्य भगवान् ब्रह्मा तान् सुरानिदमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ तमेव देवदेवेशं व्रजध्वं शरणं सुराः । स एव शापमोक्षं च करिष्यति न संशयः ॥७५॥ देवा ऊचुः—केनोपायेन हे ब्रह्मन् वरदो हि गणेश्वरः । पितामह उवाच—चतुर्थ्यां देवदेवोऽसौ पूजनीयः प्रयत्नतः ॥७६॥ अपूपैर्घृतसंयुक्तैर्मोदकैः परितोपयेत् । एवं बुध्वा च ते सर्वे प्रेरयामास गीष्पतिम् ॥ ७७ ॥ स गत्वा कथयामास वचो

ब्रह्मोदितं तु तत्। व्रतं चक्रे ततश्चन्द्रो यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा ॥ ७८ ॥ आविर्बभूव भगवान् गणेशो व्रततोषितः। क्रीडमानं गणेशञ्च दृष्ट्वा तुष्टाव चन्द्रमाः ॥ ७९ ॥ चन्द्रेण स्तूयमानोऽसावुक्तवान् स गजाननः। **गणेश उवाच**—तुष्टोहं तव दास्यामि वरं ब्रूहि निशाकर ॥ ८० ॥ **चन्द्र उवाच**—लोकानां दर्शनीयोऽहं भवामि पुनरेव हि। विपापोहं विशापोहं त्वत्प्रसादाद्गणेश्वर ॥८१॥ **गणेश उवाच**—विपापश्च विशापश्च मत्प्रसादाच्च त्वं भव। शुक्लपक्षे चतुर्थ्यान्तु ये पश्यन्ति सदैव हि ॥ ८२ ॥ मिथ्यापवादमनायासं ते प्राप्स्यन्ति न संशयः। मासादौ पूर्वमेव त्वां ये पश्यन्ति सदा जानाः ॥ ८३ ॥ भद्रायां शुक्लपक्षस्य तेषां दोषो न जायते ॥ ८४ ॥ सिंहः प्रसेनमित्यादि यो वै मन्त्रेण पश्यति। भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां त्वां फलपुष्पादिसंयुतः ॥ ८५ ॥ मिथ्यापवाददोषादिर्न भवेत्तस्य चन्द्रमाः। चन्द्रस्य दर्शनार्थाय गणेशस्य च भाषितम् ॥ ८६ ॥ शृणोति यः पठेद्वापि वाञ्छितं तस्य सिद्ध्यति ॥ ८७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे भाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्रव्रतकथा समाप्ता।

अथ चतुर्थीचन्द्रपूजाविसर्जनम्

तद्यथा—नमो गणपत्यादिपञ्चदेवताः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत। (विधवापक्षे) नमो विष्णो पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व। (सधवापक्षे) नमो गौरि पूजितासि प्रसीद क्षमस्व। नमो रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्र पूजितोसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ। ततो दक्षिणाद्रव्यं सिक्त्वा कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽस्यां रात्रौ कृतैतद्रोहिणीसहितभाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्रपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं-यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। 'ॐ स्वस्ती'ति प्रतिवचनम्। ततो ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वयमपि भुञ्जीत।

इति भाद्रशुक्लचतुर्थीचन्द्रपूजा समाप्ता।

अथ भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां सिद्धिविनायकपूजनविधिः

तत्र (१) कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य शुद्धासने उपविश्य—'ॐ अपवित्रः पवित्रो वे'ति पूजोपकरणद्रव्यमात्मानं चाभिषिच्य, पञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य, कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्य भाद्रे मासि शुक्ले पक्षे चतुर्थ्यान्तिथौ अमुकगोत्रस्य अमुकशर्मणः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलसमफलप्राप्तिपूर्वकश्रीसिद्धिविनायकप्रीत्यर्थं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीसिद्धिविनायकपूजनं तत्कथाश्रवणं चाहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य (सति संभवे परिशिष्टोक्तकलशस्थापनं कुर्यात्)। ततः सूर्यादिनवग्रहान् दशदिक्पालांश्च पञ्चोपचारैः सम्पूज्य रौप्यादिपात्रे चन्दनादिना अष्टदलं पद्मं विलिख्य तदुपरि सुलक्षणां प्रतिमां संस्थाप्य—ॐ आगच्छ गजस्कन्ध गजवक्त्र चतुर्भुज । यावद् व्रतं समाप्येत तावत्त्वं सन्निधो भव ॥ ॐ आवाहयामि विघ्नेश सुरराजार्चितेश्वर । अनाथनाथ सर्वज्ञ पूजार्थं गणनायक ॥ इत्यावाह्य—ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनो त्वरिष्टं यज्ञँ स मिमं दधातु विश्वेदेवा स इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ । ॐ भूर्भुवः स्वः सांगसायुधसवाहनसपरिवारश्रीसिद्धिविनायक इहागच्छ इह तिष्ठ इह सुप्रतिष्ठितो भव । इति प्राणप्रतिष्ठां विधाय पुष्पमेकं गृहीत्वा—ॐ एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम् । पाशांकुशधरं देवं घ्यायेत् सिद्धिविनायकम् ॥ इति ध्यात्वा—ॐ विचित्ररत्नरचितं दिव्यास्तरणसंयुतम् । स्वर्णसिहासनं चारु गृहाण सुरपूजित ॥ इदमासनं० । ॐ सर्वतीर्थसमुद्भूतं पाद्यं गङ्गादिसंयुतम् । विघ्नराज गृहाणेदं भगवन् भक्तवत्सल ॥ इदं पाद्यं० । ॐ अर्घ्यं च फलसंयुक्तं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् । गणाध्यक्ष नमस्तेऽस्तु गृहाण करुणानिधे ॥

---

(१) भविष्ये—शुक्लपक्षे चतुर्थ्यान्तु मासि भाद्रपदे नृप । प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने देवमर्चयेत् ॥ विस्तरस्तु ६५ पृष्ठे टिप्पण्यां द्रष्टव्यः ।

इदमर्घ्यं० । ॐ दध्याज्यमधुसंयुक्तं मधुपर्कं मया हृतम् । गृहाण सर्वलोकेश गणनाथ नमोऽस्तु ते॥ इदं मधुपर्कं० । ॐ विनायक नमस्तुभ्यं त्रिदशैरभिवन्दित । गङ्गोदकेन शीतेन सुखमाचमनं कुरु॥ इदमाचमनीयम्० । ॐ पयो दधि घृतं चैव मधुशर्करया युतम् । पञ्चामृतेन स्नपनात् प्रीयतां गणनायकः ॥ इदं पञ्चामृतस्नानीयं० । ॐ गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्य आनीतं तोयमुत्तमम् । भक्त्या समर्पितं तुभ्यं स्नानाय प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं शुद्धोदकस्नानीयं० । इदमाचमनीयम्० । ॐ रक्तवस्त्रमिदं देव देवाङ्गसदृश प्रभो । सर्वप्रदं गृहाण त्वं लम्बोदर हरात्मज ॥ इदं रक्तवस्त्रं० । इदमाचमनीयम्० । ॐ राजतं ब्रह्मसूत्रं च काञ्चनं चोत्तरीयकम् । गृहाण चारु सर्वज्ञ भक्तानां वरदायक ॥ इमे यज्ञोपवीते० । इदमाचमनीयम्० । ॐ कस्तूरी चन्दनं चैव कुंकुमेन समन्वितम् । विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं श्रीखण्डचन्दनं० । ॐ उद्यद्भास्करसंकाशं सन्ध्यावदरुणं प्रभो । शृङ्गारकरणं दिव्यं सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं सिन्दूरं० । ॐ रक्ताक्षताश्च देवेश गृहाण द्विरदानन । ललाटपटले चन्द्रस्तस्योपर्युपधार्यताम् ॥ इदं रक्ताक्षतं० । ॐ नानाविधानि दिव्यानि नानारत्नोज्ज्वलानि च । भूषणानि गृहाणेश पार्वतीप्रियनन्दन ॥ इदं भूषणार्थं द्रव्यं० । ॐ करवीरैर्जातिपुष्पैश्चम्पकैर्वकुलैः शुभैः शतपत्रैश्च कह्लारैः पूजयामि विनायकम् । सुगन्धीनि च पुष्पाणि जातीकुन्दसुखानि च । त्रिविधानि च पत्राणि गृहाण गणनायक ॥ एतानि पुष्पाणि० । इदमाचमनीयम्० ।

अथाङ्गपूजा—ॐ गणेशाय नमः, पादौ पूजयामि । ॐ विघ्नराजाय नमः, जानुनी० । ॐ आखुवाहनाय नमः, ऊरू० । ॐ हेरम्बाय नमः, कटिं० । ॐ कामारिसूनवे नमः, नाभिं० । ॐ लम्बोदराय नमः, उदरं० । ॐ गौरीसुताय नमः, स्तनौ० । ॐ गणनायकाय नमः, हृदयं० । ॐ स्थूलकण्ठाय नमः, कण्ठं० । ॐ स्कन्धाप्रजाय नमः, स्कन्धौ० । ॐ पाशहस्ताय नमः, हस्तान्० । ॐ गजवक्त्राय नमः, वक्त्रं० । ॐ विघ्नराजाय नमः नेत्रे० । ॐ विघ्नहर्त्रे नमः, ललाटं० । ॐ सर्वेश्वराय नमः, शिरः पूजयामि । ॐ गणाधिपाय नमः, इति सर्वाङ्गं पूजयामि ।

अथैकविंशति* पत्रपूजनम्—(१) ओं सुमुखाय नमः, मालतीपत्रं समर्पयामि । (२) ओं गणाधिपाय नमः, भृङ्गराजपत्रम्० (३) ओं उमापुत्राय नमः विल्वपत्रम्० । (४) ओं गजाननाय नमः, श्वेतदूर्वापत्रम्० । (५) ओं लम्बोदराय नमः, वदरीपत्रम्० (६) ओं हरसूनवे नमः, धत्तूरपत्रं० । (७) ओं गजकर्णाय नमः, तुलसीपत्रं० । (८) ओं वक्रतुण्डाय नमः, शमीपत्रम्० । (९) ओं गुहाग्रजाय नमः, अपामार्गपत्रम्० । (१०) ओं एकदन्ताय नमः बृहतीपत्रम्० । (११) ओं विकटाय नमः, करवीरपत्रम्० । (१२) ओं विनायकाय नमः, अश्मन्तकपत्रम्० । (१३) ओं कपिलाय नमः, अर्कपत्रम्० । (१४) ओं गजदन्ताय नमः, अर्जुनपत्रम्० । (१५) ओं विघ्नराजाय नमः, विष्णुक्रान्तपत्रम्० । (१६) ओं वटवे नमः, दाडिमीपत्रम्० । (१७) ओं सुराग्रजाय नमः, देवदारुपत्रम्० । (१८) ओं भालचन्द्राय नमः, मरुवकपत्रम्० । (१९) ओं हेरम्बाय नमः, सिन्दुवारपत्रं (२०) ओं चतुर्भुजाय नमः, जातीपत्रम्० । (२१) ओं सर्वेश्वराय नमः, अगस्तिपत्रम् समर्पयामि ।

ततो धूपादिकं दद्यात् । तद्यथा—ओं दशाङ्गं गुग्गुलुं धूपं सुगन्धं च मनोहरम् । गृहाण सर्वदेवेश उमासुत नमोऽस्तु ते ॥ एष धूपः० । ओं सर्वत्र सर्वलोकेश त्रैलोक्यतिमिरापह । गृहाण मङ्गलं दीपं रुद्रप्रिय नमोऽस्तु ते ॥ एष दीपः० । तत एकविशतिमोदकनैवेद्यम्—ओं शालितण्डुलचूर्णोत्थान् सगुडान् घृतपाचितान् । मोदकान् दद्मि नैवेद्यम् नमस्ते विघ्ननाशिने ॥ नैवेद्यम् गृह्यतां देव भक्ति मे ह्यचलां कुरु । ईप्सितं च वरं देहि परत्र च परां गतिम् ॥ इत्येकत्रिंशतिमोदकनैवेद्यम्० । इदमाचमनीयम्० । ओं मलयाचलसम्भूतं कर्पूरेण समन्वितम् । करोद्वर्तनकं चारु गृह्यतां जगतीपते ॥ इदं करोद्वर्तनं० । ओं बीजपूराम्रपनसखर्जूरीकदलीफलम् । नारिकेलफलं दिव्यं गृहाण गणनायक ॥

---

* यत्र यत्र यस्याऽलाभस्तत्र तत्र सर्वत्र तत्पत्रस्थानीयं दूर्वाङ्कुरं दद्यात् । 'सर्वपत्रमयी दूर्वा सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम्' इति स्मरणात् ।

एतानि नानाफलानि० । ओं पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् । कर्पूरैलासमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं ताम्बूलं० । ततो नाममात्रेण छत्र-चामर-पादुका-दर्पणादिकं समर्प्य—ॐ गणाधिप नमस्तेऽस्तु उमापुत्राघनाशन । एकदन्तेभवक्त्रेति तथा मूषकवाहन ॥ विनायकेशपुत्रेति सर्वसिद्धिप्रदायक । कुमारगुरवे तुभ्यमिमां दूर्वां निवेदये ॥ इति दूर्वाङ्कुरं० । ततो नीराजनम्—ॐ चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च । त्वमेव सर्वज्योतींषि आरार्तिः प्रतिगृह्यताम् ॥ ततः प्रदक्षिणा—ॐ विघ्नेश्वर विशालाक्ष सर्वाभीष्टफलप्रद । प्रदक्षिणां करोमि त्वां सर्वान् कामान् प्रयच्छ मे ॥ ततः—ॐ गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् । उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥ नमस्ते विघ्नसंहर्त्रे नमस्तेऽभीप्सितप्रद । नमस्ते देवदेवेश नमस्ते गणनायक ॥ इति प्रणम्य—ॐ विनायकेशतनय गजराज सुरोत्तम । देहि मे सकलान् कामान् सर्वसिद्धिप्रदायक ॥ इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा (७० पृष्ठोक्तां) कथां शृणुयात् ।

अथ विसर्जनम्

तत्र (१)प्रार्थना—ओं विनायक गणेशान सर्वदेवनमस्कृत । पार्वतीप्रिय विघ्नेश मम विघ्नान्निवारय ॥ यन्मया चरितं देव व्रतमेतत् सुदुर्लभम् । त्वत्प्रसादाद् गणेश त्वं सफलं कुरु सर्वदा । आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् । पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥ व्रतं कृतं मया देव यतोऽद्य विधिवन्मया । व्रजेदानीं गणेशस्त्वं स्वस्थानं वै यदृच्छया ॥ ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥

---

(१) अत्राऽयमप्याचारः—प्रतिमासत्त्वे तां प्रतिमां विसर्जनीकृत्यैव कतिपयदिनान्युत्सवार्थं स्थापयित्वा प्रतिदिनं यथोपचारैः सम्पूज्य कथां श्रुत्वा नृत्यगीतकथापुराणादिभिः ब्राह्मणभोजनेन चोत्सवं कारयन् शुभदिने गणेशं विसृज्य नरयानादावारोप्य मङ्गलवाद्योद्घोषपुरस्सरं नीत्वा जलाशं प्रक्षिपेत् ।

ॐ पूजितदेवताः पूजिताः स्थ क्षमध्वम स्वस्थानं गच्छत। ओं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवार श्रीगणेश पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्य स्वस्थानं गच्छ। (शान्तिकलशप्रतिष्ठाविसर्जनादिकन्तु परिशिष्टे द्रष्टव्यम्)। ततो दक्षिणा। कुशत्रयतिलजलान्यादाय ओमद्य कृतैतत्साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीसिद्धविनायकगणेशपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। इति ब्राह्मणाय दक्षिक्षां दद्यात्। ततो यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वयमपि भुञ्जीत।

इति सिद्धविनायकव्रतपूजा।

अथ रुद्रधरवर्षकृत्योक्तसिद्धिविनायकपूजाविधिः

पूर्वदिने (१) निरामिषमेकवारं भुक्त्वा भविष्यद्ध्यानपूर्वकऋद्धिसिद्धिसहितसिद्धिविनायकस्य प्रतिमां निर्माय रत्नसिंहासने संस्थाप्य तस्यां शुक्लतिलकल्कोद्वर्तनपूर्वकस्नानं विधाय कृतनित्यक्रियो व्रती कुशत्रयतिलजलान्यादाय, ॐ अद्य भाद्रे मासि शुक्ले पक्षे चतुर्थ्यां तिथावमुकगोत्रस्यामुकशर्मणो विद्याधनजयपुत्रपौत्रादिसौभाग्यलाभपूर्वकश्रीसिद्धिविनायकप्रीतिकामः श्रीसिद्धिविनायकपूजनमहङ्करिष्ये इति सङ्कल्प्य नवग्रहान्, दशदिक्पालांश्च सम्पूज्य पुष्पहस्तेन ॐ सिद्धिविनायकोसि, इति नाम कृत्वाऽक्षतमादाय, ओं मनो जूतिरित्यादिना ॐ सिद्धिविनायक इहागच्छ

---

(१) भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां सिद्धिविनायकं पूजयेत्। इयं चतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। तथा हि पुराणसमुच्चये—मातृविद्धा प्रशस्ता स्यात् चतुर्थी गणनायके। मध्याह्नात् परतश्चेत् स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते॥ इति। मातृविद्धा=तृतीयाविद्धा। ,बृहस्पतिः—'चतुर्थी च तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा। कर्तव्या व्रतिभिर्वत्स गणनाथसुतोषिणी॥'

इह तिष्ठ इह सुप्रतिष्ठितो भव इति प्राणप्रतिष्ठामावाहनञ्च विधाय, पुष्पहस्तेन—ओं एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं त्रिलोचनम् । पाशांकुशधरं देवं ध्यायेत्सिद्धिविनायकम् ॥ ध्यायेदेवं महाकायं तप्तकाञ्चनसन्निभम् । दन्ताक्षमालपरशुपूर्णमोदकहस्तकम् । मोदकासक्तशुण्डाग्रमेकदन्तं विनायकम् । इति ध्यात्वा, पुनरक्षतमादाय–ओं आगच्छ जगदाधार सुरासुरसुपूजित । अनाथनाथ सर्वज्ञ गीर्वाणसुरपूजित ॥ ओं सिद्धिविनायक इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य रजतासनमादाय—ओं अनेकरत्नसंयुक्तं दिव्यास्तरणभूषितम् । स्वर्णसिंहासनं चारु गृहाण सुरपूजित ॥ इदं रजतासनं सिद्धिविनायकाय नमः । फलपुष्पाक्षतयुतपाद्यमादाय—ओं गौरीसुत नमस्तेस्तु शङ्करप्रियसूनवे । पाद्यं गृहाण देवेश गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः ॥ इदं पाद्यं सिद्धिविनायकाय नमः । गन्धपुष्पाक्षतफलसहितार्घमादाय—ओं अर्घ्यं च फलसंयुक्तं गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् । गणाध्यक्ष नमस्तेस्तु गृहाण करुणानिधे ॥ एषोर्घः सिद्धि० । आचमनीयमादाय—ओं गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम् । आचम्यतां गणाध्यक्ष सर्वविघ्नहरो भव ॥ इदमाचमनीयम् सिद्धि० । मधुपर्कं गृहीत्वा–ओं दधिक्षीरघृतैश्चैव मधुखण्डैर्विमिश्रितम् । प्रीत्यर्थं तव देवेश मधुपर्कन्ददाम्यहम् ॥ एष मधुपर्कः सिद्धि० । इदं पुनराचमनीयम्० । पञ्चामृतमादाय—ओं स्नानं पञ्चामृतं देव गृहाण गणनायक । अनाथनाथ सर्वज्ञ सर्वसिद्धिप्रदो भव ॥ इदं पञ्चामृतम्० । ओं क्षीरोदतनयानन्त क्षीरोदतनयप्रिय । क्षीरोदागारहृदय क्षीरं स्नानाय गृह्यताम् ॥ इदं स्नानीयं दुग्धम् सिद्धि० । ओं घृतञ्च पयसोद्भूतं पवित्रं मङ्गलन्दधि । तस्य स्नानेन देवेश सर्वसिद्धिप्रदो भव ॥ इदं स्नानीयन्दधि सिद्धि० । ओं देवास्तृप्यन्ति पितरो मनुष्याश्चाभितो यशः । घृतस्नानेन तस्मात्त्वं तृप्तिं कुरु विनायक ॥ इदं स्नानीयं घृतम् सिद्धि० । ओं मधुरूपो वसन्तस्त्वं त्वमेव जगतां मधु । मधुसूदनसम्प्रीत्या मधुस्नानाय गृह्यताम् ॥ इदं स्नानीयं मधु सिद्धि० । ओं इक्षुरससमुद्भूतशर्करामधुरप्रिय । तस्याः स्नानेन विघ्नेश रससिद्धि प्रयच्छ मे ॥ इदं शर्करास्नानम् सिद्धि० । गङ्गाजलमादाय—ओं गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यः स्नानार्थं ते मयाहृतम् ।

अनाथनाथ सर्वज्ञ स्नानं कुरु महोत्तमम् ॥ इदं मलापकर्षस्नानम् सिद्धि० । ओं तैलं सुगन्धसंयुक्तं नानापुष्पैः सुवासितम् । मङ्गलार्थं मया दत्तमभ्यङ्गं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं तैलाभ्यङ्गस्नानं सिद्धि० । ओं नानातीर्थादाहृतञ्च सुगन्धजलमुत्तमम् । उष्णं कृतं मया देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदमुष्णोदकस्नानं सिद्धि० । इदमाचमनीयम्० । पुनः शुद्धजलमादाय—ओं गणानान्त्वेति पुरुषसूक्तेन वा इदं स्नानीयं सिद्धि० । रक्तवस्त्रयुगमादाय—ॐ रक्तवस्त्रद्वयं देव दिव्यं काञ्चनसम्भवम् । सर्वप्रद गृहाणेदं लम्वोदर हरात्मज ॥ इदं रक्तवासोयुगं सिद्धि० । ॐ राजतं ब्रह्मसूत्रञ्च काञ्चनञ्चोत्तरीयकम् । गृहाण चारु सर्वज्ञ भक्तानां वरदो भव ॥ इमे यज्ञोपवीते वृहस्पतिदैवते सिद्धि० । भूषणमादाय—ओं स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते । भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमरार्चित ॥ एतानि भूषणानि सिद्धि० । ओं श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं कर्पूरेण च संयुतम् । गन्धं दास्यामि देवेश गणाध्यक्ष नमोऽस्तु ते ॥ इदमनुलेपनं सिद्धि० । इदं रक्तानुलेपनम्० । सिन्दूरमादाय–ओं उद्यद्भास्करसंकाशं सन्ध्यावदरुणं प्रभो । वीरालङ्करणं दिव्यं सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं सिन्दूराभरणं सिद्धि० । ओं रक्ताक्षतांश्च देवेश गृहाण द्विरदानन । ललाटपटले चन्द्रस्तस्योपर्यवधार्यताम् ॥ इदं रक्ताक्षतं सिद्धि० । पुष्पाण्यादाय—ॐ सुगन्धीनि च पुष्पाणि धत्तूरादीनि च प्रभो । विनायक नमस्तुभ्यं गृहाण परमेश्वर ॥ एतानि पुष्पाणि सिद्धि० । एतानि बिल्वपत्राणि सिद्धि० । एतानि दूर्वादलानि सिद्धविनायकाय नमः ॥

अथ अङ्गपूजा । गन्धपुष्पाक्षतान्येकीकृत्य अङ्गानि पूजयेत् । सर्वत्र प्रणवादिनमोन्तं योजयेत् । यथा—ॐ गणेशाय नमः पादौ पूजयामि ॥ १ ॥ विघ्नराजाय नमः जानुनी पू० ॥ २ ॥ आखुवाहनाय नमः उरू पू० ॥ ३ ॥ हेरम्वाय नमः कटिं पू० ॥ ४ ॥ गणाधिपतये नमः नाभिं पू० ॥ ५ ॥ लम्वोदराय नमः उदरं पूजयामि ॥ ६ ॥ गणनायकाय नमः हृदयं पू० ॥ ७ ॥ गौरीसुताय नमः स्तनौ पू० ॥ ८ ॥ स्थूलकण्ठाय नमः कण्ठं पू० ॥ ९ ॥

स्कन्धाग्रजाय नमः स्कन्धौ पू० ॥ १० ॥ पाशहस्ताय नमः हस्तान् पू० ॥ ११ ॥ गजवक्त्राय नमः वक्त्रं पू० ॥ १२ ॥ परशुधारिणे नमः हस्तौ पू० ॥ १३ ॥ विघ्नराजाय नमः नेत्रे पू० ॥ १४ ॥ विघ्नहर्त्रे नमः ललाटं पू० ॥ १५ ॥ सर्वेश्वराय नमः शिरः पूजयामि ॥ १६ ॥ गणाधिपाय नमः सर्वाङ्गं पूजयामि ॥ १७ ॥

अथ नानापत्रैः पूजयेत्। यथा—इदं मालतीपत्रं ॐ सुमुखाय नमः ॥ १ ॥ इदं भृङ्गराजपत्रं गणाधिपाय० ॥ २ ॥ इदं बिल्वपत्रमुमापुत्राय० ॥ ३ ॥ इदं श्वेतदूर्वापत्रं गजाननाय० ॥ ४ ॥ इदं बदरीपत्रं लम्बोदराय० ॥ ५ ॥ इदं धत्तूरपत्रं हरसूनवे० ॥ ६ ॥ इदं तुलसीपत्रं गजकर्णकाय० ॥७॥ इदं शमीपत्रं वक्रतुण्डाय० ॥ ८ ॥ इदमपामार्गपत्रं गुहाग्रजाय० ॥ ९ ॥ इदं बृहतीपत्रम् एकदन्ताय० ॥ १० ॥ इदं करवीरपत्रं विकटाय० ॥ ११ ॥ इदमर्कपत्रं कपिलाय० ॥ १२ ॥ इदमर्जुनपत्रं गजदन्ताय० ॥ १३ ॥ इदमपराजितापत्रं विघ्नराजाय० ॥ १४ ॥ इदं दाडिमीपत्रं वटवे० ॥ १५ ॥ इदं देवदारुपत्रं सुराग्रजाय० ॥ १६ ॥ इदं मसूरपत्रं भालचन्द्राय० ॥ १७ ॥ इदं सिन्दुवारपत्रं हेरम्बाय० ॥ १८ ॥ इदं केतकीपत्रं विनायकाय० ॥ १९ ॥ इदं जातीपत्रं चतुर्भुजाय० ॥ २० ॥ इदमगस्तिपत्रं सर्वेश्वराय० ॥ २१ ॥ इदं गान्धारीपत्रं सुराय नमः ॥ २२ ॥ इति द्वाविंशतिपत्रिकादानम् ॥ पत्रालाभे सर्वत्र दूर्वादलं दद्यात्। 'सर्वपत्रमयी दूर्वा' इति स्मरणात्।

अथ द्वाविंशति दूर्वा आदाय एकैकनाम्ना गन्धाक्षतयुक्तं दूर्वायुग्मं समर्पयेत्—इदं दूर्वायुग्मं गणाधिपाय नमः ॥ १ ॥ इदं दूर्वायुग्मम् उमापुत्राय नमः ॥ २ ॥ इदं दूर्वायु० अघनाशिने नमः ॥ ३ ॥ इदं दूर्वायु० विनायकाय नमः ॥ ४ ॥ इदं दूर्वायु० ईशपुत्राय नमः ॥ ५ ॥ इदं दूर्वायु० सर्वसिद्धिप्रदाय नमः ॥ ६ ॥ इदं दूर्वायु० एकदन्ताय नमः ॥ ७ ॥ इदं दूर्वायु० इभवक्त्राय नमः ॥ ८ ॥ इदं दुर्वायु० मूषकवाहनाय नमः ॥ ९ ॥ इदं दूर्वायु० कुमारगुरवे नमः ॥ १० ॥ इदं दूर्वायुग्मं कपिलाय नमः ॥ ११ ॥

नमः ॥ १० ॥ इदं दूर्वायुग्मं कपिलाय नमः ॥ ११ ॥

धूपमादाय—ओं दशाङ्गं गुग्गुलं धूपमुत्तमं गणनायक । गृहाण सर्वं देवेश उपमापुत्र नमोस्तु ते ॥ एष धूपः उमापुत्राय नमः । दीपमादाय—ओं सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वेषान्तिमिरापह । गृहाण मङ्गलं दीपं रुद्रप्रिय नमोस्तु ते ॥ एष दीपः रुद्रप्रियाय नमः । नानाविधनैवेद्यमादाय—ओं नमो मोदकहस्ताय भालचन्द्राय ते नमः । नैवेद्यं गृह्यतां देव सङ्कटं मे निवारय ॥ ईप्सितं मे वरं देहि विघ्ननाशिन्नमोस्तु ते । नानाखाद्यमयं दिव्यं तुष्ट्यर्थं ते निवेदितम् । मया भक्त्या शिवापुत्र गृहाण गणनायक ॥ एतानि मोदकसहितनानाविधनैवेद्यानि विघ्ननाशिने नमः ॥ सुगन्धितपानीयमादाय—ओं एलोशीरलवङ्गादिकर्पूरपरिवासितम् । प्राशनार्थं कृतं तोयं गृहाण गणनायक ॥ ओं नमस्ते देवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम् । अखण्डानन्दसम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम् ॥ इदं पानार्थं सुगन्धितजलं सिद्धिविनायकाय नमः । इदं पुनराचमनीयम्० । एकविंशतिसंख्याकानि ताम्बूलान्यादाय—ओं पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् । कर्पूरेण समायुक्तं ताम्बूलानि गृह्यताम् ॥ एतानि ताम्बूलानि सिद्धि० । नानाफलान्यादाय—ओं नालिकेरञ्च नारङ्गं कदम्बं मातुलिङ्गकम् । द्राक्षाखर्जूरदाडिम्बं गृहाण गणनायक ॥ एतानि नानाविधफलानि सिद्धि० । दक्षिणार्थद्रव्यमादाय—ओं हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः । तेन प्रीतो गणाध्यक्ष भव सर्वफलप्रद ॥ इदं दक्षिणाद्रव्यं सिद्धिविनायकाय नमः । नीराजनमादाय—ओं नीराजनं गृहाणेश शोभनं भक्तिसंयुतम् । अनाथनाथ सर्वज्ञ नमस्ते भक्तवत्सल ॥ इदं नीराजनं सिद्धिविनायकाय नमः । ओं नमः स्तुतोऽसि विघ्नेश सर्वविघ्नहरो भव । ईप्सितम्मे वरं देहि नमस्ते भक्तवत्सल ॥ देवदेव जगन्नाथ भक्तानां वरदायक । अविघ्नं कुरु देवेश सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ इति प्रणमेत् । ओं गणानान्त्वेत्यादिवैदिकमन्त्रैः पुष्पाञ्जलिन्दद्यात् । ततो वरं प्रार्थयेत्—ओं दीयते गणनाथाय प्रीयताम्मे गणाधिपः । सौख्यं सौमनस्यं नित्यं करोतु गणनायकः ॥ दाता विघ्नेश्वरो देवो ग्रहीता चापि विघ्नराट् । तस्मादिदं मया दत्तं संपूर्णं त्वं ददस्व मे ॥ विनायक नमस्तेऽस्तु विघ्नेश सुरपूजित । ईप्सितम्मे वरं देहि नमस्ते करुणाकर ॥

आधारः सर्वभूतानामधिपः सर्वकामदः । व्रतेनानेन देवेश सुप्रीतो भव सर्वदा ॥ विनायक गणेशान सर्वदेवनमस्कृत । पार्वतीप्रिय विघ्नेश मम विघ्नं विनाशय ॥ सर्वत्र सर्वदा देव निर्विघ्नं कुरु सर्वग । मानोन्नतिञ्च राज्यञ्च पुत्रपौत्रान् प्रदेहि मे ॥ विघ्नान्नाशय मे सर्वान्नाशायोपस्थितान् प्रभो । त्वत्प्रसादेन कार्याणि सर्वाणीह करोम्यहम् ॥ शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणामुदयं कुरु । इति विज्ञाप्य देवेशं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ इति संप्रार्थ्य दण्डवत्प्रणमेत् । ततो यानि कानीति मन्त्रेण त्रिः प्रदक्षिणं कुर्यात् । तत ऋद्धि सिद्धि च पञ्चोपचारैः सम्पूज्य वस्त्रञ्च दद्यात् । ततो दशमोदकानादाय—ओं मोदकान् दशसंख्याकान् सगुडान् घृतपाचितान् । विप्रवर्याय दास्यामि गणनाथप्रतुष्टये ॥ ततः कुशादिकमादाय—ओं अद्य श्रीसिद्धिविनायकप्रीतिकाम इमान् दशसंख्याकान् मोदकान् अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय सम्प्रददे । ततः कथां श्रुत्वा ६४ पृष्ठोक्तरीत्या सिद्धिविनायकादीन् विसृज्य कर्मदक्षिणां कृत्वा मोदकसहितान्नेन ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वयं सुहृद्युक्तो मोदकसहितमन्नं भुञ्जीत ।

अथ सिद्धिविनायकव्रतकथा

भरद्वाज उवाच—निविघ्नेन तु कार्याणि कथं सिद्ध्यन्ति सूत नः । अर्थसिद्धिः कथं नृणां पुत्रपौत्रादिसम्पदः ॥१॥ दम्पत्योः कलहे चैक्यं वन्धुभेदे तथा नृणाम् । सूत उवाच—सन्नद्धयोः पुरा विप्र कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ २ ॥ पृष्टवान् देवकीपुत्रं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः । युधिष्ठिर उवाच—निर्विघ्नो विजयो मह्यं देवदेव कथं भवेत् ॥३॥ कां देवतां नमस्कृत्य सम्यग्राज्यं लभेमहि । श्रीकृष्ण उवाच—पूजयस्व गणाध्यक्षमुमापुत्रं वरप्रदम् । तस्मिन् सम्पूजिते वीर सम्यग् राज्यमवाप्स्यसि ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर उवाच—देव केन विधानेन पूजयामि विनायकम् । सम्पूज्यश्च तिथौ कस्यां सिद्धिदो गणपो भवेत् ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच—भाद्रे मासि सिते पक्षे चतुर्थ्यां पूजयेन्नृप ॥६॥ यदा चोद्वहते भक्तिं तदा पूज्यो गणाधिपः । प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने देवमर्चयेत् ॥ ७ ॥ चन्दनेन समालिप्तं कर्णिकायां न्यसेत्तु तम् ।

पूज्यो गणाधिपः । प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने देवमर्चयेत् ॥ ७ ॥ चन्दनेन समालिप्तं कर्णिकायां न्यसेत्तु तम् ।

आवाहनार्चनार्घादि कुर्याच्चैवं प्रयत्नतः ॥ ८ ॥ पूजां कृत्वा विधानेन स्नात्वा पञ्चामृतैः पृथक् । वस्त्रं सर्वप्रदं दद्याद्रक्तं युग्मञ्च शक्तितः ॥ ९ ॥ विनायकेति नाम्ना वै गन्धं दद्यात् प्रयत्नतः । विनायकेति पुष्पाणि धूपञ्चोमासुताय च ॥१०॥ दीपं रुद्रप्रियायेति नैवेद्यं विघ्ननाशिने । ततो दुर्वाऽङ्कुरान् पुष्पं दद्याद्विंशतिमेव च ॥ ११ ॥ कुमारगुरवे तुभ्यं पूजनीयं प्रयत्नतः । पूजयेत् परया भक्त्या गणेशं सिद्धिनायकम् ॥ १२ ॥ इत्येकविंशतिञ्चैव मोदकान् घृतपाचितान् । स्थापयित्वा गणाध्यक्षसमीपे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥ दश विप्राय दातव्यं गृहीत्वा दशभिः स्वयम् । एकं गणाधिपे दद्यात् नैवेद्यञ्च नृपोत्तम ॥ १४ ॥ गणेशः प्रतिगृह्णाति गणनाथो ददाति च । दीयते गणनाथाय प्रीयतां मे गणाधिप ॥ १५ ॥ सौमनस्यञ्च नित्यम्मे करोतु गणनायकः । इति मन्त्रं समुच्चार्य दश दद्याद् द्विजातये ॥ १६ ॥ कृत्वा नैमित्तिकं कर्म पूजयेदिष्टदेवताम् । ब्राह्मणान् भोजयित्वा च भुञ्जीयात्तैलवर्जितम् ॥ १७ ॥ एवं कृते धर्मराज गणनाथस्य पूजने । विजयस्ते भवेन्नित्यं सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ १८ ॥ त्रिपुरं दग्धुकामेन पूजितः शूलपाणिना । शक्रेण पूजितः पूर्वं तथा वृत्रवधेषु च ॥ १९ ॥ नलस्यान्वेषणे तद्वद्दमयन्त्या पुरार्चितः । रामचन्द्रेण तद्वच्च सीतां चानयता पुरा ॥ २० ॥ अमृतोत्पादनार्थाय पूजितश्च सुरैरपि । अमृताहरणात् पूर्वं वैनतेयेन पक्षिणा ॥ २१ ॥ यदा पूर्वं हि दैत्येन हृतो रुक्मिणिनन्दनः । आराधितो महाराज रुक्मिणीसहितं मया ॥ २२ ॥ कुष्ठव्याधिगते नाथ शाम्बेनाराधितः पुरा । विजयश्च भवेन्नित्यं सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ २३ ॥ प्राप्स्यसि त्वं स्वकं राज्यं हत्वा शत्रून् रणाजिरे । सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि मनसा चिन्तितान्यपि ॥ २४ ॥ सूत उवाच—एवमुक्तस्तु कृष्णेन सानुजः पाण्डुनन्दनः । पूजयामास देवस्य पुत्रं त्रिपुरघातिनः ॥ २५ ॥ सिध्यन्ति सर्वकार्याणि नात्र कार्या विचारणा । कार्येष्वारभ्यमाणेषु गजवक्त्रं प्रपूजयेत् ॥ २६ ॥ विद्याकामो लभेद्विद्यां धनकामो लभेद्धनम् । जयञ्च जयकामश्च पुत्रार्थी लभते सुतान् ॥ २७ ॥ पतिकामा च भर्तारं सौभाग्यञ्च सुवासिनी । विघ्नेशं पूजयित्वा तु वैधव्यं नाप्नुयात् क्वचित् ॥ २८ ॥

वैष्णव्यादिषु दीक्षासु पठनीयः प्रयत्नतः। चण्डिकाद्या मातृगणाः परितुष्टा भवन्ति च ॥ २९ ॥ तस्मिन् सम्पूजिते चैव भक्त्या सिद्धिविनायके। यः पठेच्छृणुयाद्वापि भक्तिमान् सुसमाहितः ॥ ३० ॥ सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि गणनाथप्रसादतः ॥ ३१ ॥

इति श्रीसिद्धिविनायकव्रतकथा समाप्ता ।

अथ ऋषिपञ्चमीपूजा

तत्र भाद्रशुक्लपञ्चम्यां (१) कृतनित्यक्रियो व्रती पञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य (सधवा तु गौरीं सम्पूज्य) कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽद्य भाद्रे मासि शुक्ले पक्षे पञ्चम्यां तिथौ अमुकगोत्राया मम श्री अमुकीदेव्याः सकलदुरितोपसर्गपिच्छान्तिपूर्वक-ज्ञाताऽज्ञातरजस्वलावस्थाकृतसम्पर्कजनितदोषपरिहारार्थमरुन्धतीसहितकश्यपादिसप्तर्षिपूजनं तत्कथाश्रवणं चाऽहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य ध्यायेत्—मूर्तम्ब्रह्मण्यदेवस्य ब्रह्मणस्तेज उत्तमम् । सूर्यकोटिप्रतीकाशमृषिवृन्दं विचिन्तये ॥ ततोऽक्षतमादाय—आगच्छन्तु महाभागाश्चतुर्वेदपरायणाः। यावत् व्रतमिदं कुर्वे कृपया भवतामहम् ॥ इत्यावाह्य—नमोऽरुन्धतीसहितसप्तर्षय इहागच्छत इह तिष्ठतेति प्रतिष्ठाप्य गन्धपुष्पाक्षतयुतार्घपात्रमादाय—गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तं पाद्यं गृह्णन्तु भो द्विजाः। प्रसादं कुरुत प्रीतास्तुष्टाः सन्तु सदा मम ॥

---

(१) इयं पञ्चमी मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ परैव । 'सिता परयुता स्यात् पञ्चमी' इति दीपिकोक्तेः । पूर्वविद्धा ग्राह्या 'युग्माग्निकृतुभूतानाम्' इति युग्मवाक्यादिति केचित् ।

एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि नमोऽरुन्धतीसहितसप्तर्षिभ्यो नमः। ततोऽर्घ्यमादाय––नभस्ये शुक्लपञ्चम्यामर्चिता ऋषिसत्तमाः। दहन्तु पापं मे सर्वं गृह्णन्त्वर्घ्यं नमो नमः॥ इदमर्घ्यं नमोऽरुन्धती०। तत आचमनीयमादाय–लोकानां तुष्टिकर्तारो यूयं सर्वे तपोधनाः। नमो वै धर्मविज्ञेभ्यो महर्षिभ्यो नमो नमः॥ इदमाचमनीयं नमोऽरुन्धती०। ततो वस्त्रमादाय–इदं पीतवस्त्रं बृहस्पतिदैवतं नमो०। तत इदं यज्ञोपवीतं बृहस्पतिदैवतं नमो०। ततः इदं श्रीखण्डचन्दनम्०। एतानि पुष्पाणि०। एतानि तुलसीपत्राणि०। एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनानाविधनैवेद्यानि नमोऽरुन्धतीसहितसप्तर्षिभ्यो नमः। एष पुष्पाञ्जलिः नमो०। एवं सम्पूज्य कथां शृणुयात्।

अथ ऋषिपञ्चमीव्रतकथा

सिताश्व उवाच––श्रुतानि देवदेवेश व्रतानि सुबहूनि च। साम्प्रतं मे समाचक्ष्व व्रतं पापप्रणाशनम्॥ १॥ ब्रह्मोवाच––शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतम्। ऋषिपञ्चमीति विख्यातं सर्वपापहरं परम्॥ २॥ येन चीर्णेन राजेन्द्र नरकन्नैव पश्यति। अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्॥ ३॥ वैदर्भे च द्विजवर उत्तङ्को नाम नामतः। तस्य भार्या सुशीलेति पतिव्रतपरायणा॥ ४॥ तस्या अपत्ययुगलं पुत्रो हि सुविभूषणः। अधीतवान् सुतस्तस्य वेदान् साङ्गपदक्रमान्॥ ५॥ समाने च कुले तेन सुता चापि विवाहिता। विवाहितैव सा दैवाद्वैधव्यं प्राप सत्तम॥ ६॥ सतीत्वं पालयन्ती सा आस्ते निजपितुर्गृहम्। तस्या दुःखेन सन्तप्तः सुतं संस्थाप्य वेश्मनि॥ ७॥ गङ्गातीरवनं प्राप्तः सकलत्रस्तया सह। स तत्राऽध्यापयामास शिष्यान् वेदं द्विजोत्तमः॥ ८॥ सुता च कुरुते तस्य पितुः शुश्रूषणं वरम्। पितुः शुश्रूषणं कृत्वा परिश्रान्ता कदाचन॥ ९॥ निशीथे किल संसुप्ता कृमिराशिरजायत। तथाविधां च तां दृष्ट्वा त्रित्रस्त्रां प्रस्तरस्थिताम्॥ १०॥ शिष्या निवेदयामासुस्तन्मातुः करुणान्विताः।

न जानीमो वयं किञ्चिद् देवीं साध्वीं तथाविधाम् ॥ ११ ॥ कृमिराशिमया जाता मातः सम्प्रति दृश्यते । वज्रतुल्यमिदं वाक्यं श्रुत्वा शिष्यैरुदीरितम् ॥ १२ ॥ सा भ्रान्तमनसा शीघ्रं तत्समीपमुपागमत् । सा तां तथाविधां दृष्ट्वा विललाप सुदुःखिता ॥ १३ ॥ उरश्च ताडयामास सुतरां मोहमवाप च । क्षणेन प्राप्तचैतन्या तामुत्थाप्य प्रमृज्य च ॥ १४ ॥ समालम्ब्य च वाहुभ्यान्निन्ये तत्पितुरन्तिकम् । स्वामिन् कथय मे साध्वी केन दुष्कृतकर्मणा ॥ १५ ॥ निशीथे सम्प्रसुप्तैव जातेयं कृमिसंकुला । एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यमृषिर्ध्यानपरायणः ॥ १६ ॥ ज्ञात्वा निवेदयामास तस्याः प्राग्जन्मचेष्टितम् । ऋषिरुवाच—प्रागियं सप्तमेऽतीतजन्मनि ब्राह्मणी ह्यभूत् ॥ १७ ॥ रजस्वला च सञ्जाता भाण्डादीन्यस्पृशत्तदा । अस्यास्तु पाप्मना तेन जायते कृमिवद्वपुः ॥ १८ ॥ रजस्वलायाः पापेन युक्ता भवति सानघम् । प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥ १९ ॥ तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति । तदा तथा सखीसङ्गाद् व्रतन्दृष्ट्वाऽवमानितम् ॥ २० ॥ दृष्टव्रतप्रभावेण जाता द्विजकुलेऽमले । अवमानात्तद्व्रतस्य कृमिराशिमयाधुना ॥ २१ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं कारणन्दुष्कृतस्य च । सुशीलोवाच—दर्शनादपि यस्यात्र विप्राणां निर्मले कुले ॥ २२ ॥ जन्म युष्मद्विधानां हि जायते ब्रह्मतेजसाम् । अवज्ञया प्रजायन्ते निशीथे कृमिराशयः ॥ २३ ॥ महाश्चर्यकरन्नाथ तद्व्रतं कथयस्व मे । ऋषिरुवाच—सुशीले शृणु तत्सम्यग् व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ २४ ॥ येन चीर्णेन सहसा पापादस्मात् प्रमुच्यते । दुःखत्रयाच्च मुच्येत नारी सौभाग्यमाप्नुयात् ॥२५॥ कल्याणानि विवर्धन्ते सम्पदश्च निरापदः । नभस्ये शुक्लपक्षे तु यदा भवति पञ्चमी ॥ २६ ॥ नद्यादिषु तदा स्नात्वा कृत्वा नियममेव च । विधाय नित्यकर्माणि गत्वा द्वारवतीमृषीन् ॥ २७ ॥ स्नापयेद्विधिवद्भक्त्या पञ्चामृतरसैः शुभैः । चन्दनागुरुकर्पूरैर्विलिप्य च सुगन्धिभिः ॥ २८ ॥ पूजयेद्विविधैः पुष्पैर्गन्धधूपादिदीपकैः । समाच्छाद्य शुभैर्वस्त्रैः सोमपीतैर्यथाविधि ॥ २९ ॥ ततो नैवेद्यसम्पन्नमर्घ्यं दद्याच्छुभैः फलैः । कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रस्तु गौतमः ॥ ३० ॥ जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः

स्मृताः। गृह्णन्त्वद्य मया दत्तं तुष्टो भवतु मे सदा ॥ ३१ ॥ श्रोतव्यमिदमाख्यानं शाकाहारं प्रकल्पयेत् । स्थातव्यं ब्रह्मचर्येण ऋषिध्यानपरायणैः ॥ ३२ ॥ अनेन विधिना सम्यग् व्रतमेतत्समाचरेत् । तस्माद्यज्जायते पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ॥ ३३ ॥ सर्वदानेषु यत्पुण्यं तदस्य व्रतचारणात् । कुरुते या व्रतञ्चैतत् सा नारी सुखभागिनी ॥ ३४ ॥ रूपलावण्यसंयुक्ता पुत्रपौत्रादिसंयुता । इह लोके सदैव स्यात् परत्राप्यक्षया गतिः ॥ ३५ ॥ व्रतस्याऽस्य प्रभावेण जातिं स्मरति पौर्वकीम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीहेमाद्रौ ब्रह्माण्डे ऋषिपञ्चमीव्रतकथा समाप्ता ।

* * *

अथ ऋषिपञ्चमीपूजाविसर्जनम्

ततः पुष्पाञ्जलिं समर्प्य त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य—न्यूनातिरिक्तकर्माणि मया यानि कृतानि च । क्षमध्वं तानि सर्वाणि यूयं सर्वे तपोधनाः ॥ इति प्रणम्य—नमोऽरुन्धतीसहितसप्तर्षयः पूजिताः स्थः क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत । ततो दक्षिणा—नमोऽद्य कृतैतदृषिपञ्चमीव्रतपूजातत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे । ॐ स्वस्तीति प्रतिवचनम् ।

इति श्रीऋषिपञ्चमीपूजा समाप्ता (१) ।

---

(१) भाद्रशुक्लषष्ठी । सप्तमीयुतैवेति दिवोदासः ।

अथ भाद्रशुक्लाष्टम्यां महालक्ष्मीपूजा

तत्र(१) सायाह्ने गोमयोपलिप्तभूमौ पूजासामग्रीं संस्थाप्यासने उपविश्य कुशादिकमादाय—'ॐ पुत्रपौत्रादिसमृद्धिधर्मार्थकाममोक्षप्राप्तिकामो (अद्यादिषोडशवर्षाणि यावत्) महालक्ष्मीव्रतमहं करिष्ये। इति संकल्पयेत्। प्राचीनसङ्कल्पवाक्यन्तु–'ॐ ऐहिकलक्ष्म्यासादितवेश्मत्वसकलवाञ्छितार्थलाभपुत्रपौत्रादिसमृद्धिमत्त्वसकलभोगभुक्तिभूतकालाधिकरणकराज्यभोगप्राप्तिस्वर्गलोकगमनानन्तरविष्णुदैवतनक्षत्रभवनकामनया भाद्रशुक्लाष्टमीमारभ्याश्विनकृष्णाष्टमीपर्यन्तं प्रत्यहं (षोडशवर्षं यावद्यथाविहितकालं) श्रीमहालक्ष्मीव्रतमहं करिष्ये।' इति। ततः षोडशवारं जलेन मुखं हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य षोडशग्रन्थियुतषोडशतन्तुकं निर्माय मालती-कर्पूरागरुचन्दनानुलिप्तं डोरकं कृत्वा पूजयेत्। तत्र क्रमः, अक्षतमादाय—

ॐ महालक्ष्मि समागच्छ पद्मनाभपदादिह। यथोपचारपूजेयं त्वतर्थं देवि सम्भृता॥ ॐ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्मि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सुप्रतिष्ठिता भव। इत्यावाह्य—ॐ आलयं ते निगदितं कमलं कमलालये।

---

(१) इयञ्चाष्टमी दूर्वाख्या। पुराणसमुच्चये—शुक्लाष्टमी तिथिर्या तु मासि भाद्रपदे भवेत्। दूर्वाष्टमी तु सा ज्ञेया नोत्तरा सा विधीयते। बृहद्यमः—'श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशिनी। पूर्वविद्धा तु कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिने॥

दूर्वाष्टमीव्रतं चागस्त्योदये कन्यार्के च न कार्यम्। तथाहि स्कान्दे—शुक्ले भाद्रपदे मासि दूर्वासंज्ञा तथाष्टमी। सिंहार्क एव कर्तव्या न कन्यार्के कदाचन॥ भाद्रशुक्लाष्टमीमारभ्य षोडशदिनपर्यन्तं महालक्ष्मीव्रतम्। उक्तञ्च—मासे भाद्रपदे शुक्ले पक्षे ज्येष्ठायुताष्टमी। प्रारब्धव्यं व्रतं तत्र महालक्ष्म्या युतात्मभिः॥ इति।

एतेन 'भाद्रकृष्णाष्टमीमारभ्याश्विनकृष्णाष्टमीं यावन्महालक्ष्मीव्रतमि'ति यदुक्तं कृत्यसारे तन्मृग्यम्।

अमले कमले ह्यस्मिन् स्थिति मत्कृपया कुरु॥ इदमासनं श्रीमहालक्ष्म्यै नमः। ओं गङ्गादिसलिलाधारतीर्थतोयादिपूरितम्। दूरयात्राश्रमहरं पाद्यं मे प्रतिगृह्यताम्॥ इदं पाद्यम्०। ओं न मे जन्मनि दौर्भाग्यं न मे जन्मदरिद्रता। महालक्ष्मि नमस्तुभ्यमर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम्॥ इदमर्घ्यम्०। ओं स्नानादिकं विधायापि यतः शुद्धिरवाप्यते। तद्देव्याचमनीयन्ते महालक्ष्मि विधीयताम्॥ इदमाचमनीयम्०। ओं तन्तुसन्तानसन्नद्धम् कलाकोशलकल्पितम्। सर्वाङ्गाभरणं दिव्यं वसनं परिधीयताम्॥ इदं रक्तवस्त्रं० इदमाचमनीयम्०। ओं मलयाचलसंभूतं नानापन्नगरक्षितम्। शीतलं वहुलामोदं चन्दनं विन्द्यतामिदम्॥ इदं श्रीखण्डचन्दनम्०। ओं सिन्दूरं सर्वसाध्वीनां भूषणाय विनिर्मितम्। गृहाण वरदे देवि भूषणानि प्रयच्छ मे॥ इदं सिन्दूरम्०। ओं अक्षतं धान्यजं देवि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। प्राणदं सर्वभूतानां गृहाण वरदे शुभे॥ इदं०। ओं चञ्चत्परिमलामोदं मत्तालिकुलसंकुलम्। आनन्दिनन्दनोद्यानं पद्मायै कुसुमन्नमः॥ एतानि पुष्पाणि०। ओं अमृतोद्भवं श्रीवृक्षं शङ्करस्य सदा प्रियम्। पवित्रं ते प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये॥ इदं विल्वपत्रम्०। ओं नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम्। प्रयच्छामि सदा भद्रे गृहाण परमेश्वरि॥ इदं पुष्पमाल्यम्०। ओं गन्धसम्भारसन्नद्धम् पृथुवस्तुसमुद्भवम्। सुरासुरनरानन्दं धूपं देवि गृहाण तम्॥ एष धूपः०। ओं मार्तण्डमण्डलाखण्डचन्द्रविम्वाग्नितेजसाम्। निधानं देवि दीपोऽयं गिर्मितस्तव भक्तितः॥ एष दीपः०। ओं देवतालयपातालभूतलाधारधान्यजम्। षोडशाकारसम्भारं नैवेद्यं तत्प्रगृह्यताम्॥ एतानि षोडशप्रकारकनैवेद्यानि०। ओं स्नानादिकं विधायापि यतः शुद्धिरवाप्यते। तदेतदाचमनीयं महालक्ष्मि विधीयताम्॥ इदमाचमनीयम्०। ओं पातालतलसम्भूतं वदनाम्भोजभूषणम्। नानागुणसमाकीर्णं ताम्बूलं देवि ते नमः॥ इदं ताम्बूलम्०। इदमाचमनीयम्०। ओं त्वं चन्द्रसूर्यज्योतींषि विद्युदग्न्योस्तथैव च। त्वमेव जगतां ज्योतिः दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥ एष कर्पूरदीपः०। नतः प्रार्थना—ओं विष्णोर्वक्षसि पद्मे च शंखे चक्रे तथाम्बरे। लक्ष्मि नित्यं यथाऽसि त्वं मम

नित्या तथा भव ॥ ओं नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये । या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात् त्वदर्चनात् ॥ इति प्रणम्य डोरकमादाय—

ओं धनं धान्यं धरां धर्मं कीर्तिमायुर्यशः श्रियम् ।
तुरङ्गान् दन्तिनः पुत्रान् महालक्ष्मि प्रयच्छ मे ॥

इत्यनेन डोरकं दक्षिणभुजे (स्त्री चेत् वामभुजे) बध्वा ७९ पृष्ठोक्तां कथां शृणुयात् ।

एवं षोडशदिनपर्यन्तं प्रत्यहं सम्पूज्य कथां श्रुत्वा अन्तिमदिने पूजनान्ते कथाश्रवणोत्तरं विशेषार्घ्यमादाय जानुभ्यामवनिं गत्वा—ओं न मे जन्मनि दौर्भाग्यं न मे जन्मदरिद्रता । महालक्ष्मि नमस्तुभ्यमर्घ्यं मे प्रतिगृह्यताम् ॥ इत्यनेन मन्त्रावृत्त्या त्रिवारं षोडशवारं वा अर्घ्यं दत्त्वा प्रणमेत्—ओं इन्दिरा प्रतिगृह्णाति इंदिरा वै ददाति च । इन्दिरा तारकोभाभ्यामिन्दिरायै नमो नमः ॥ ततः क्षमापनम्—ओं अबुद्धमतिरिक्तं वा न्यूनं वा यन्मयार्चितम् । तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥ ततः डोरकोत्तारणम्—ओं लक्ष्मि देवि गृहाण त्वं डोरकं यन्मया धृतम् । व्रतं सम्पूर्णतां यातं कृपा कार्या मयि त्वयि ॥ ततः डोरकं विसृज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्य कृतैतत्षोडशदिनपर्यन्तश्रीमहालक्ष्मीपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । इति ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत् । ततो षोडशदीपान् षोडशगोधूमचूर्णकृतमोदकपिण्डान् (लड्डू), षोडशपात्रस्थितानि भक्तानि च ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा महालक्ष्मीप्रीत्यर्थं षोडशब्राह्मणान् यथाशक्ति वा भोजयेत् ।

इति महालक्ष्मीपूजाविधिः ।

अथ महालक्ष्मीव्रतकथा

युधिष्ठिर उवाच—स्वस्थानलाभपुत्रायुःसर्वैश्वर्यं सुखप्रदम्। व्रतमेकं समाचक्ष्व विचार्य पुरुषोत्तम ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण उवाच—दुर्वारवृत्तदैत्येन्द्रपरिव्याप्तत्रिविष्टपे। एतदेव कृतस्यादौ देवेन्द्रः प्राह नारदम् ॥ २ ॥ तस्य श्रुत्वा ततो वाक्यं स मुनिः प्रत्यभाषत। पुरन्दर पुरा रम्यं पुरमासीच्छुभान्वितम् ॥ ३ ॥ रत्नगर्भाऽभवद् भूमिर्यत्र रत्नाढ्यभूधराः। यत्राङ्गनार्थनापाङ्गभङ्गलोचनसायकैः ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यं स्ववशं चक्रे देवः कुसुमसायकः। चतुर्वेदध्वनिर्यत्र यच्च विश्वविभूषणम् ॥ ५ ॥ विश्वकर्मापि यद्वीक्ष्य कल्पयत्यनिशं शिरः। तत्राभवन्महीपालो मङ्गलो मङ्गलामयः ॥ ६ ॥ चिल्ला देवी प्रिया नस्य दुर्भगैका बभूव ह। अन्या तु चोलदेवी या महिषी सा यशस्विनी ॥ ७ ॥ कदाचिन् मङ्गलो राजा चोलदेवीसहायवान्। प्रासादशिखरारूढः स्थलीमेकां ददर्श सः ॥ ८ ॥ तामालोक्य महीपालः स्मेराननसरोरुहः। चोलदेवीं प्रति प्राह दन्तद्योतितदिङ्मुखः ॥ ९ ॥ चञ्चलाक्षि तवोद्यानं कान्तिनिन्दितचन्दनम्। कारयामि तदाष्टिस्तत्रोद्यानमकारयत् ॥ १० ॥ सम्पन्नं च तदुद्यानं नानाद्रुमलतान्वितम् :। नानारक्षकसंयुक्तं नानाभित्तिसमावृतम् ॥ ११ ॥ तत्रागत्य महाकालस्तनुन्यस्तनभस्थलः। पङ्काप्लावितसर्वाङ्गश्चक्षुराक्षिप्तचञ्चलः ॥१२॥ दंष्ट्राविशिष्टश्चन्द्रार्कः प्रलयाम्भोधरध्वनिः। तद्भुनक्तीति विज्ञाय सहसोद्यानपालकाः ॥ १३ ॥ सभयन्तस्य वृत्तान्तमूचिरे नृपतेः पुरः। तदाकर्ण्य ततो राजा क्रोधारुणितलोचनः ॥ १४ ॥ वधाय दंष्ट्रिणस्तस्य सन्ददेशाखिलं बलम्। ततश्चचाल भूपालस्त्रिगण्डगलितैर्गजैः ॥ १५ ॥ आप्लावयन् महीं सर्वां वाजिवृन्दैः समन्ततः। चालयन्नखिलान् शैलान् स्यन्दनौघमरुद्भवैः ॥ १६ ॥ पदातिभिर्महोदारैः पूरयन्नखिला दिशः। ततो गाढं समावृत्य तदुद्यानं नरेश्वरः ॥ १७ ॥ उवाचोच्चैरतिक्रुद्धो दिशो मुखरयन् दश। पथि यस्य वराहोऽयं प्रयात्युपवनान्तिकम् ॥ १८ ॥ तस्यावश्यं शिरश्छेदं विदधामि रिपोरिव। तस्य भूपस्य तद्वाक्यं समाकर्ण्य स सूकरः ॥ १९ ॥ जगामान्येन मार्गेण प्राणिनाश्चेष्टितं

यथा । ततः स सूकरासक्तः कशयाऽश्वं प्रताड्य च ॥२०॥ व्रीडावलङ्कितः सार्द्धं मार्गेणास्यैव सोऽगमत् । गत्वाऽथ विपिनं घोरं सिंहशार्दूलसंकुलम् ॥२१॥ झिल्लीझङ्कारसंभारवाचालचलकुञ्जरम् । शल्येन सोऽवधीत् कोलं वज्रेणाद्रिं यथा हरिः ॥२२॥ अथ व्योम्नि विमानस्थः सुरसुन्दरविग्रहः । कोलरूपं परित्यज्य सोऽब्रवीन् मङ्गलं नृपम् ॥ २३ ॥ स्वस्त्यस्तु ते महीपाल त्वया मुक्तिः कृता मम । ममाकर्णय वृत्तान्तं येनाहं जात ईदृशः ॥ २४ ॥ एकदा देवतावृन्दसंवृतः कमलासनः । चञ्चत्पटादिभिस्तालैः षड्जाद्यैः सप्तभिः स्वरैः ॥ २५ ॥ मन्द्रादिभिस्त्रिभिर्मानैर्गीयमानं मया नृप । नानास्थानगुणोपेतमश्रौषीद्गीतमुत्तमम् ॥ २६ ॥ गीयमानश्च्युतः तालात्ततोऽहं कर्मपातकी । शप्तश्चित्ररथस्तेन ब्रह्मणा लोककर्तृणा ॥ २७ ॥ कोलो भव त्वं मेदिन्यां मुक्तिस्ते तु तदा भवेत् । निर्जिताखिलभूपालो मङ्गलस्त्वां हनिष्यति ॥ २८ ॥ तदद्य घटितं सर्वं त्वत्प्रसादान्महीपते । तद् गृहाण वरं भूप यद् देवस्यापि दुर्लभम् ॥ २९ ॥ महालक्ष्मीव्रतं दिव्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् । लभस्व सार्वभौमत्वं गच्छ राज्यं निजं द्रुतम् ॥ ३० ॥ चित्ररथोऽथ गन्धर्व उक्त्वेत्थं भूपतिं प्रति । अन्तर्द्धानं गतस्तुष्टः शरत्काल इवाम्बुदः ॥ ३१ ॥ अथ मङ्गलभूपालः पार्श्वस्थं द्विजमागतम् । विलोक्य बटुकं किञ्चित् कक्षानिक्षिप्तशम्बलम् ॥ ३२ ॥ उवाच मधुरां वाचं स्मितपूर्वां शुचिस्मिताम् । देवस्त्वं दानवस्त्वं वा गन्धर्वो वाऽथ राक्षसः ॥ ३३ ॥ तथ्यं वद बटो कस्मात् कमर्थं त्वमिहागतः । दत्त्वाशिषं ततो विप्रः प्राह त्वद्देशसंभवः ॥ ३४ ॥ अहं सार्द्धं त्वयाऽऽयातस्तदादिश यथोचितम् । राजा च तमुवाचेदं त्वं बटो नूतनाह्वयः ॥३५॥ अपर्याणं विधायाश्वं पूर्णं तोयं च पायय । अथ विश्राम्य भूपालं बटुको बहुशस्तदा ॥ ३६ ॥ तथा कृत्वा तुरंगे च समारुह्य महामतिः । जगाम पक्षिघोषेण यत्रास्ते सुन्दरः सरः ॥ ३७ ॥ कमलैकविलासेन रथाङ्गाभरणेन च । वनमालालयत्वेन सरो नारायणीं तनुम् ॥ ३८ ॥ भग्नवायुशतोद्योगमक्षारं विषवर्जितम् । नाशिताऽगस्त्यतृष्णातिप्रसन्नं सागराधिकम् ॥ ३९ ॥ पङ्के मग्नश्च तत्राऽश्वः पृष्ठादुत्तीर्य्य तस्य सः । चतुर्दिशं निरीक्ष्याथ तस्यैव सरस-

स्तटे ॥ ४० ॥ दिव्यवस्त्रपरीधानं दिव्याभरणभूषितम् । कथयन्तं कथां दिव्यां स्त्रीणां सार्थं ददर्श सः ॥ ४१ ॥ उपसृत्याथ तं सार्थं तद्वृत्तान्तं निवेद्य च । कृताञ्जलिरिति प्राह बटुर्मधुरया गिरा ॥ ४२ ॥ एतत् किं क्रियते सार्थ त्वया भक्तिपरेण वै । को विधिः किं फलं चास्य तन्मे ब्रूहि यथा तथम् ॥ ४३ ॥ श्रुत्वेति तमुवाचेदं सार्थः करुणयाऽन्वितः । शृणु विप्रैकचित्तेन श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥ ४४ ॥ मायायाः प्रकृतिः शक्तिस्त्रैलोक्येष्ववधीयते । व्रतमेतन्महालक्ष्म्याः तस्याः सर्वफलप्रदम् ॥ ४५ ॥ आकर्णय विधिं चास्य कथ्यमानं मया बटो । भाद्रे मासि सिताष्टम्यामारम्भोऽस्य विधीयते ॥ ४६ ॥ प्रातः षोडशकृत्वस्तु प्रक्षाल्यांघ्रि करौ मुखम् । तं तु षोडशसंयुक्तं षोडशग्रन्थिसंयुतम् ॥ ४७ ॥ मालतीपुष्पकर्पूर-चन्दनागरुचर्चितम् । लक्ष्म्यै नमोऽथ मन्त्रेण प्रतिपूज्याभिमन्त्र्य च ॥ ४८ ॥ धनं धान्यं धरां धर्मं कीर्तिमायुर्यशः श्रियम् । तुरङ्गान् दन्तिनः पुत्रान् महालक्ष्मि प्रयच्छ मे ॥ ४९ ॥ मन्त्रेणानेन बद्ध्वाथ दोरकं दक्षिणे भुजे । काण्डानि षोडशादाय दूर्वायाः साक्षतानि च ॥ ५० ॥ एकचित्तः कथां श्रुत्वा पूजयेत्तैस्तु दोरकम् । ततस्तु प्रातरारभ्य यावदस्त्यसिताष्टमी ॥ ५१ ॥ तावत् प्रक्षाल्य पादौ च मुखं हस्तौ कथां तदा । शृणुयात् प्रत्यहं विप्र तत्संख्यैरक्षतादिभिः ॥ ५२ ॥ अथ कृष्णाष्टमी प्राप्य नक्तकाले जितेन्द्रियः । स्नातः शुक्लाम्बरधरो व्रती पूजागृहं विशेत् ॥ ५३ ॥ तत्रोपविश्य पूर्वास्यश्चारुधौतासनोपरि । श्वेतपत्रं लिखेदष्टदलं कमलमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ ऐन्द्रादिशक्तिसंयुक्तं पार्श्वे पत्रं सकेसरम् । कर्णिकायां ततो लक्ष्मीं कर्पूरक्षोदपाण्डुराम् ॥ ५५ ॥ शुभ्रवस्त्रपरीधानां मुक्ताभरणभूषिताम् । पङ्कजासनसंस्थानां स्मेराननसरोरुहाम् ॥ ५६ ॥ शारदेन्दुकलाकान्ति मृगनेत्रां चतुर्भुजाम् । पद्मयुग्मामभयदां वरव्यग्रकराम्बुजाम् ॥ ५७ ॥ अभितो गजयुग्मेन सिच्यमानां कराम्बुना । संचिन्त्यैवं लिखेद् देवीं कर्पूरागरुचन्दनैः ॥ ततस्त्वावाहनं कुर्यान्मन्त्रेणानेन स व्रती ॥ ५८ ॥ महालक्ष्मि समागच्छ पद्मनाभपदादिह । पञ्चोपचारपूजेयं त्वदर्थं देवि कल्पिता ॥ ५९ ॥ षोडशाब्दे तु सम्पूर्णे

तदुद्यापनमाचरेत् । विधिना येन विप्रेन्द्र शृणु श्रद्धासमन्वितः ॥ ६० ॥ दातव्या धेनुरेकैव स्वर्णशृङ्गादिसंयुता । आचार्याय सुवर्णं च तथान्नं वसनानि च ॥ ६१ ॥ यथाशक्ति सुवर्णं वा दत्त्वा पूर्णं भवेद् व्रतम् । सार्थ उवाच— एतत्ते कथितं विप्र व्रतानां व्रतमुत्तमम् ॥ ६२ ॥ यद्विधानाद्विनायासाल्लभ्यते वाञ्छितं फलम् । कृत्वा त्वं सद्व्रतं विप्र राजानमपि कारय ॥ ६३ ॥ व्रतमेतत् त्वया विप्र देयं श्रद्धावते परम् । नास्तिकानां पुरस्तात्तु न प्रकाश्यं कथंचन ॥ ६४ ॥ नमस्कृत्याथ तं सार्थं पङ्कादुत्थाप्य वाजिनम् । सरसोम्भस्तदादाय पद्मिनीपत्रसञ्चितम् ॥ ६५ ॥ आरुह्य तुरगं विप्रो राजान्तिकमुपागमत् । निवेद्य तद् व्रतं विप्रो भूपतिं तमकारयत् ॥ ६६ ॥ नानोपकारसम्भारमाकुलं बटुकस्य च । व्रतप्रभावादभवत् स भूभृद् भूभृतां वरः ॥ ६७ ॥ अथारुह्य महीपालो बद्धपर्याणिनं हयम् । तूर्णन्तस्य प्रभावेण व्रतस्य पुरमागतः ॥ ६८ ॥ तमायान्तं समालोक्य राजानं भूपुरन्दरम् । उत्सवं चक्रिरे पौरास्तौर्यादिकपुरस्सरम् ॥ ६९ ॥ चलत्पताकदोर्मालं राजत्कनकमौलिकम् । पुरं नृत्यदिवाभाति चलद्घण्टौघघर्घरैः ॥ ७० ॥ अथोत्कलिकया काचिद्धावतिस्म वराङ्गना । स्खलन्-मुक्तालताजालैश्चतुष्कमिव कुर्वती ॥ ७१ ॥ काचिद्विमुक्तकेशैव वरैकनयनाञ्जना । काचिन्नितम्बभारार्ता काचित् पीनकुचाश्रया ॥ ७२ ॥ अथाविशन् महीपालो बटुना सहितो गृहम् । पौरनारीजनाक्षिप्त-लाजैः पूरितविग्रहैः ॥ ७३ ॥ अथोत्तीर्य्य हयात्तस्माद् बटुबाह्ववलम्बितः । जगाम मङ्गलो राजा चोलदेवी तु यत्र वै ॥ ७४ ॥ दृष्ट्वाऽथ चोलदेवी सा डोरकं राजबाहुके । विमृश्य मनसा क्रुद्धा शङ्कां चक्रे ततस्त्विमाम् ॥ ७५ ॥ आखेटकस्य व्याजेन गतोऽन्यां वल्लभां प्रति । सौभाग्याय तया बद्धं डोरकं भूभुजो भुजे ॥ ७६ ॥ तथैव बटुकश्चायं मां द्रष्टुं प्रेषितो ध्रुवम् । ततो दुर्दैवदुष्टा सा कोपादाच्छिद्य डोरकम् ॥ ७७ ॥ निश्चिक्षेप महीपृष्ठे स्वसौभाग्यसुखैः सह । न बुवोध च तां राजा निःक्षिपन्तीं तु डोरकम् ॥ ७८ ॥ सामन्तमन्त्रिभृत्याद्यैः कुर्वन् वार्तां वनोद्भवाम् । चिल्लादेव्यास्ततः काचिद् दासी तत्र समागता ॥ ७९ ॥ तया डोरकमादाय

भृत्याद्यैः कुर्वन् वार्तां वनोद्भवाम् । चिल्लादेव्यास्ततः काचिद् दासी तत्र समागता ॥ ७९ ॥ तया डोरकमादाय

बटुमापृच्छ्य तद् व्रतम् । तद्व्रतस्य निदानं तु स्वस्वामिन्यै निवेदितम् ॥ ८० ॥ ततो नूतनमादाय चिल्लादेव्यकरोद् व्रतम् । अथ संवत्सरेऽतीते लक्ष्मीपूजादिने नृपः ॥ ८१ ॥ तौर्यत्रिकस्य निस्वानं चिल्लादेवीगृहेऽशृणोत् । तमाकर्ण्य महीपालो नूतनं वटुमब्रवीत् ॥ ८२ ॥ अहहाद्य दिनं लक्ष्म्या व्रतस्य क्व नु डोरकः । इति पृष्टो नृपं प्राह डोरकत्रोटकक्रमम् ॥ ८३ ॥ तच्छ्रुत्वा मङ्गलो राजा चोलदेव्यै प्रकुप्य च । मयाद्य पूजनं कार्यं चिल्लादेवीगृहेऽब्रवीत् ॥ ८४ ॥ अथ मङ्गलभूपालो वटुवाह्वलम्बितः । जगाम कमलार्चायै चिल्लादेवीगृहं प्रति ॥ ८५ ॥ अत्रान्तरे महालक्ष्मीर्वृद्धारूपं विधाय सा । जिज्ञासार्थं गृहं तस्याश्चोलदेव्याः समागता ॥ ८६ ॥ तया दुराशयाऽत्यर्थं लक्ष्मीः साप्यवमानिता । शशापाथ महालक्ष्मीश्चोलदेवीमिति क्रुधा ॥ ८७ ॥ कोलास्या भव दुष्टे त्वं ययाहमपमानिता । चोलदेवी श्रियः शापात् कोलास्या तत्र साऽभवत् ॥ ८८॥ कोलापुरमिति ख्यातं क्षितौ तन्मङ्गलं पुरम् । अथायाता महालक्ष्मीश्चिल्लादेवीनिकेतनम् ॥ ८९ ॥ चिल्लादेव्या च बहुधा लक्ष्मीः सम्मानिताऽर्चिता । वृद्धारूपं परित्यज्य प्रत्यक्षा साऽभवत्तदा ॥ ९० ॥ पञ्चोपचारपूजाभिः श्रियं राज्ञी तदाऽर्चयत् । श्रीरुवाच—प्रसन्नाभ्यर्चनैरेभिः चिल्लादेवि वरं वृणु ॥ ९१ ॥ वरं वव्रे ततो राज्ञी चिल्लादेवी शुभाशया । ये करिष्यन्ति ते देवि व्रतमेतत् सुरेश्वरि ॥ ९२ ॥ तद्वेश्म न त्वया त्याज्यं यावच्चन्द्रदिवाकरौ । अद्यारभ्य कथा ह्येषा भूपसम्बन्धिनी तु या ॥ ९३ ॥ ख्यातिं यातु क्षितौ देवि भक्तिर्भवतु मे त्वयि । सद्भावेन कथामेनां ये शृण्वन्ति पठन्ति च ॥ ९४ ॥ तेषां हि वाञ्छितं सर्वं त्वया कार्यं सदैव हि । तथेत्युक्त्वा महालक्ष्मीस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ९५ ॥ अथ मङ्गलभूपालस्तत्रागत्य श्रियोऽर्चनम् । चक्रे परमया भक्त्या चिल्लादेवीसमन्वितः ॥९६॥ अथेर्ष्यया दुराचारा चिल्लादेवीगृहं प्रति । चोलदेवी समायाता द्वारस्थैर्वारिता जनैः ॥ ९७ ॥ जगाम विपिनं घोरं यत्रासीदङ्गिरा मुनिः । अथालोक्याद्भुताकारां ज्ञानदृष्ट्या विचिन्त्य च ॥ ९८ ॥ स मुनिः श्रीव्रतं दिव्यं चोलदेवीमकारयत् । व्रते कृतेऽथ सञ्जाता

चोलदेवी शुभानना ॥ ९९ ॥ दाक्षिण्यकेलिलीलाभिर्लावण्यैकनिकेतना। ततः कदाचिदागत्य वनमाखेटके नृपः ॥ १०० ॥ मुनेर्वेश्मनि तां राजां ददर्श वामलोचनाम्। अथ राजा मुनि प्राह केयं धन्येति कथ्यताम् ॥ १०१ ॥ तद् वृत्तान्तं समाख्याय राज्ञे तामर्पयन् मुनिः। अथागत्य निजं राज्यं चोलदेवीसमन्वितः ॥ १०२ ॥ चिल्लादेवी वरं वब्रे चोलदेवीसमागमम्। समुद्रस्य यथा गङ्गायमुने मर्त्यमण्डले ॥ १०३ ॥ तथा मङ्गलभूपस्य जाते ते वामलोचने। परस्पराधिकप्रीते तस्य राज्ञो बभूवतुः ॥ १०४ ॥ चिल्लादेव्या समञ्चोलदेव्या च सहितश्चिरम्। सप्तद्वीपवती पृथ्वीं बुभुजे मङ्गलो नृपः ॥ १०५ ॥ व्रतस्यास्यैव माहात्म्याद् बटुकः सोऽपि नूतनः। अभून्मङ्गलभूपस्य मन्त्री तव यथा गुरुः ॥ १०६ ॥ भुक्त्वा तु सकलान् भोगान् मङ्गलो भूभृतां वरः। स पुनः स्वर्गमेत्याभून्नक्षत्रं विष्णुदैवतम् ॥ १०७ ॥ एतत्ते कथितं शक्र व्रतानां व्रतमुत्तमम्। यत्कथाश्रवणेनापि लभते वाञ्छितं फलम् ॥ १०८ ॥ प्रयाग इव तीर्थेषु देवेषु च यथा हरिः। नदीषु च यथा गङ्गा एतेष्वेतत्तथा व्रतम् ॥ १०९ ॥ धर्मं चार्थं च कामञ्च मोक्षं च यदि वाञ्छसि। तदेतत् त्वं व्रतं शक्र कुरु श्रद्धासमन्वितः ॥ ११० ॥ व्रतमिदमथ चक्रे नारदेनोपदिष्टं सुरपतिरथ तस्माद्वाञ्छितार्थं स लेभे। त्वमपि कुरु तदेतद्धर्मसूनो यथा स्यादभिमतफलसिद्धिः पुत्रपौत्रादिवृद्धिः ॥ १११ ॥

इति श्रीभविष्योत्तरे कृष्णयुधिष्ठिरसंवादे महालक्ष्मीव्रतकथा समाप्ता।

अथ विष्णोः पार्श्वपरिवर्तनविधिः

भाद्रशुक्लैकादश्यां (१) सायङ्काले (देवोत्थानपूजावत्) विष्णोः महापूजां कृत्वा पार्श्वपरिवर्तनं (कटिदानं) कुर्यात् । तत्र मन्त्रः—ओं वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तैषैकादशी तव । पार्श्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहि माधव ॥ त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् । प्रबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत्सर्वं चराचरम् । देव देव जगन्नाथ योगिगम्य निरञ्जन । कटिदानं करोम्यद्य मासि भाद्रपदे शुभे ॥ इति पार्श्वपरिवृत्ति दक्षिणाङ्गं प्रकल्प्य सुप्तमिति भावयेत् ।

इति पार्श्वपरिवर्तनविधिः ।

अथ भाद्रशुक्लवामनद्वादश्यां वामनपूजाविधिः

तत्र भाद्रशुक्लद्वादश्यां (२) कृतनित्यक्रियो व्रती शुद्धासने उपविश्य आचम्य पञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्य भाद्रे मासि शुक्ले पक्षे द्वादश्यां तिथौ अमुकगोत्रस्य मम अमुकशर्मणः सपरिवारस्य

---

(१) पद्मपुराणे—प्राप्ते भाद्रपदे मास्येकादश्यां तु सितेऽहनि । कटिदानं भवेद् विष्णोर्महापूजा प्रवर्तते ॥ इति ।

(२) दिवोदासः—आ-भा-का (आषाढ़, भाद्र, कार्तिक)—सितपक्षे तु मैत्रश्रवणरेवती । द्वादशी बुधवारे तु हरेर्वासर उच्यते ॥ पुनश्च तत्रैव—मच्छयने मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्तने । कन्द-मूल-फलाहारी हृदि शूलं समार्पयेत् ॥

इयं द्वादशी मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । श्रवणयुतेयं सर्वैरुपोष्या । तदुक्तं भागवते अष्टमस्कन्धे—श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः । ग्रहनक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यन्दिनगतो नृप । विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥

उपस्थितशरीराविरोधेन विपुलधनधान्यसुतान्विताऽतुलविभूतिचतुर्वर्गफलप्राप्तिपूर्वकविष्णुलोकप्राप्तिकामः साङ्गसायुधसपरिवारश्रीविष्णुपूजनं तत्कथाश्रवणं चाहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य सति सम्भवे परिशिष्टोक्तविधिना शान्तिकलशस्थापनं च कुर्यात्। ततः ओं सूर्यादिनग्रहाः इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यावाह्य सूर्यादिनवग्रहेभ्यो नमः इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य ओं इन्द्रादिदशदिक्पालाः इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यावाह्य इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो नमः, ईति पूजयेत्। ततः ओं अतसीपुष्पसंकाशं तिलकृष्णाजिनोपरि। कुरुक्षेत्रे प्रतिष्ठाप्य वामनं स्थापयाम्यहम्॥ इति प्रतिमां पीठे संस्थाप्य यवतिलानादाय—ओं ब्रह्माण्डमुदरे यस्य महद्भूतैरधिष्ठितम्। मायावी वामनः श्रीशो समायातु जगत्पतिः॥ इत्यावाह्य—ओं मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनो त्वरिष्टं यज्ञ ँ स मिमं दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तमों प्रतिष्ठ। ओं साङ्गसायुधसपरिवार भगवन् श्रीवामन इहागच्छ इह तिष्ठ इह सुप्रतिष्ठितो भव इति प्राणप्रतिष्ठां विधाय पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं ह्रस्वपादं ह्रस्वकायं महाशिरसमर्भकम्। पाणिपादोदरकृशं ह्रस्वजंधोरुकेसरम्। मौञ्ज्या मेखलया वीतसुपवीताजिनोत्तरम्। जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम्॥ इदं ध्यानपुष्पं श्रीवामनाय नमः। ओं पद्मरागादिसंयुक्तं मुक्तामणिविभूषितम्। स्वर्णसिंहासनं चारु वामन प्रतिगृह्यताम्॥ इदमासनं श्रीवामनाय नमः। ओं कमण्डलुशिखाधारी कुब्जरूपोऽसि वामन। छत्रदण्डधरो देव पाद्यं गृह्ण नमोऽस्तु ते॥ ईदं पाद्यं०। ओं सहस्रशीर्षा त्वं देव श्रवणर्क्षसमन्वित अर्घ्यं गृहाण देवेश रमया सहितो हरे॥ एषोऽर्घ्यः०। ओं कमण्डलुस्थितं चारु गङ्गातोयप्रपूरितम्। देवेशाचमनार्थं च वामन प्रतिगृह्यताम्॥ इदमाचमनीयम्०। ओं गङ्गासरस्वतीरेवापयोष्णीनर्मदाजलैः। स्नापितोसि मया देव तथा शान्ति प्रयच्छ मे॥ इदं स्नानीयं जलं०। ओं पयोदधिघृतक्षौद्रशर्करास्नानमुत्तमम्। गृह्यतां देवदेवेश त्रिविक्रम नमोऽस्तु ते॥ ईदं पञ्चामृतस्नानीयं०। ओं नमः कमलकिञ्जल्क पीतनिर्मलवाससे। वासो वै देवदेवेश गृहाण पुरुषोत्तम॥ इदं पीतवस्त्रं बृहस्पतिदैवतं०। ओं नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं

पीतनिर्मलवाससे । वासो वै देवदेवेश गृहाण पुरुषोत्तम ॥ इदं [illegible] । ओं नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं

CC-0 In Public Domain. Digitization by eGangotri and Funding by MoE

त्रिगुणं देवतामयम् । उपवीतं सुरश्रेष्ठ गृहाण पुरुषोत्तम ॥ इदं यज्ञोपवीतं बृहस्पतिदैवतं० । इदमाचमनीयम्० । ओं मलयाचलसम्भूतं घनसारं मनोहरम् । हृदयानन्दनं चारु चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं श्रीखण्डचन्दनम्० । ओं किरीटं कुण्डले दिव्ये केयूरं रत्ननिर्मित म् । कण्ठसूत्रं नुपूरे च वामन प्रतिगृह्यताम् ॥ इदमलङ्करणम्० । ओं अक्षताः परमा दिव्याः सर्वकामफलप्रदाः । गृहाण परया भक्त्या मया दत्तं जगत्पते ॥ इमे अक्षताः० । ओं पूजार्थं शतपत्रं च जातीपुष्पं सुगन्धकम् । चम्पकैर्जलजैर्युक्तं पुष्पं गृह्ण नमोऽस्तु ते ॥ एतानि पुष्पाणि० । एतानि तुलसीपत्राणि० । इदं माल्यं श्रीवामनाय नमः ।

अथाङ्गपूजा—ओं मत्स्याय नमः, पादौ पूजयामि । ओं कूर्माय नमः, कटिं पूजयामि । ओं वराहाय नमः, जंघे पू० । ओं नरसिंहाय नमः, ऊरू पू० । ओं वामनाय नमः, कण्ठं पू० । ओं रामद्वयाय नमः, भुजौ पू० । ओं कृष्णाय नमः, मुखं पू० । ओं बौद्धाय नमः, शिरः पू० । ओं कल्किने नमः, केशान् पू० । ओं वामनाय नमः, सर्वाङ्गं पूजयामि ।

ततः—ओं धूपोऽयं गृह्यतां देव शङ्खचक्रगदाधर । अच्युतानन्त गोविन्द वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥ एष धूपः श्रीवामनाय नमः । ओं त्वमेव पृथिवीज्योतिर्वायुराकाशमेव च । त्वमेव ज्योतिषां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष दीपः० । ओं त्वं माता सर्वदेवानां त्वमेव जगतः पिता । मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ एतानि नानाविधनैवेद्यानि० । इदमाचमनीयम्० । ओं नागवल्लीदलैर्युक्तं पुगीफलसमन्वितम् । कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं ताम्बूलं० । ओं इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव । तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ इदम् फलं० । ओं हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः । अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ इदम् दक्षिणाद्रव्यं० । ओ चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च । त्वमेव सर्वज्योतींषि आरार्तिः प्रतिगृह्यताम् ॥ इदमारार्तिकम्० । ततः पुष्पाञ्जलिः—ओं नमो वामनरूपाय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम । नमस्ते बलिबन्धाय वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥

एप पुष्पाञ्जलि: श्रीवामनाय नमः। ततः कथां शृणुयात्। ततः सति सम्भवे परिशिष्टोक्तविधिना अग्निं संस्थाप्य समिदाज्यतिलौदनैः ओं इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं यमूढमस्य पा॒ँ सुरे' इति मन्त्रेण, ओं श्रीवामनाय नमः स्वाहा' इति मूलमंत्रेण वा अष्टोत्तरशतं सहस्रं वा आहुतीर्दत्त्वा नृत्यगीतवाद्यादिभिः रात्रौ जागरणं कुर्यात्।

अथ वामनद्वादशीव्रतकथा

श्रीकृष्ण उवाच—द्वादश्यास्ते विधिः प्रोक्तः श्रवणेन युधिष्ठिर। सर्वपापप्रशमतः सर्वसौख्यप्रदायकः॥ १॥ एकादशी यदा सा स्याच्छ्रवणेन समन्विता। विजया सा तिथिः प्रोक्ता व्रतिनामभयप्रदा॥ २॥ पुरा देवगणैः सर्वैः समवेतैर्वरार्थिभिः। वरदः प्रथितो विष्णुरिन्द्राग्न्यनिलसंयुतैः॥ ३॥ बलवानजितो दैत्यो बलिर्नाम महाबलः। तेन देवगणाः सर्वे त्याजिताः सुरमन्दिरम्॥ ४॥ त्वं गतिः सर्वबेवानां शीघ्रं कष्टात् समुद्धर। दैत्यं जहि महाबाहो बलिं बलवतां वरम्॥ ५॥ श्रुत्वा विष्णुस्तदा वाक्यं देवानां करुणोदयम्। उवाच वाक्यं वाक्यज्ञो देवानां हितकाम्यया॥ ६॥ विष्णुरुवाच—जाने विरोचनसुतं बलिं त्रैलोक्यकण्टकम्। तपसा भावितात्मानं शान्तं दान्तं जितेन्द्रियम्॥ ७॥ मद्भक्तं मद्गतप्राणं सत्यसन्धं महाबलम्। प्रजापतिसमं स्वात्मप्रजानां प्रियकारकम्॥ ८॥ न गुणास्तस्य शक्यन्ते वक्तुं केनापि भूतले। अवश्यं तपसोपेतैर्भोक्तव्यं तपसः फलम्॥ ९॥ तपसोऽन्तस्तु बहुना कालेनास्य भविष्यति। यदा विजयदं दौत्यं ज्ञास्ये कालेन केनचित्॥ १०॥ समाहृत्य श्रियं तस्य तदा दास्ये दिवौकसाम्। अदितिर्मां पुरा देवा अजयत् पुत्रगर्धिनी॥ ११॥ तस्या मनीषितं कार्यं मयाऽवश्यं सुरोत्तमाः। तस्यां सम्भूय युष्माकं कार्यं सम्पादयाम्यहम्॥ १२॥ श्रीकृष्ण उवाच—अथ काले बहुतिथे साऽदितिर्गुर्विणी भवेत्। सुषुवे नवमे मासि पुत्रं सा वामनं हरिम्॥ १३॥ ह्रस्वपादं ह्रस्वकायं महाशिरसमर्भकम्। पाणिपादोदरकृशं ह्रस्वजङ्घोरुकन्धरम्॥ १४॥ दृष्ट्वा तु वामनं जातमदितिर्मोदमाप वै। भयं बभूव दैत्यानां देवतास्तोषमागमन्॥१५॥

ह्रस्वजङ्घोरुकन्धरम् ॥ १४॥ दृष्ट्वा तु वामनं जातमदितिर्मोदमाप वै । भयं बभूव दैत्यानां देवतास्तोषमागमन् ॥१५॥

जातकादीञ्छुभकरान् संस्कारान् स्वयमेव हि । चकार कश्यपो श्रीमान् प्रजापतिसमन्वितः ॥ १६ ॥ आबद्धमेखलो दण्डी जटी यज्ञोपवीतवान् । कुशचर्माजिनधरः कमण्डलुविभूषितः ॥ १७ ॥ बलेर्बलवतो यज्ञं जगाम बहुविस्तरम् । दृष्ट्वा बलि तु यज्वानं वामनस्तु जगाद ह ॥ १८ ॥ अर्थी ह्यहं यज्ञपते दीयतां मम मेदिनी । पादत्रयप्रमाणं हि पठनार्थे स्थितो ह्यहम् ॥ १९ ॥ दत्ता दत्ता तव मया बलिः प्राह द्विजोत्तमम् । ततो वर्धितुमारब्धो वामनोऽनन्तविक्रमः ॥ २० ॥ पादौ भूमौ प्रतिष्ठाप्य शिरसाऽऽवृत्य रोदसी । नाभ्यां स्वर्गादिकाँलोकाँल्ललाटे ब्रह्मणः पदम् ॥ २१ ॥ न तृतीयं पदं लेभे किं ददे मम तद्वद । तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं सिद्धा देवर्षयस्तथा ॥ २२ ॥ साधु साध्विति देवेशं प्रशशंसुर्मुदान्विताः । ततो दैत्यगणान् सर्वाञ्जित्वा त्रिभुवनं वशी ॥ २३ ॥ बलि प्राह च भो गच्छ पातालं सबलानुगः । तत्र त्वमीप्सितान् भोगान् भुक्त्वा मद्बाहुपालितः ॥ २४ ॥ अस्येन्द्रस्यावसाने तु त्वमेवेन्द्रो भविष्यसि । एवमुक्तो बलिः प्रायान्नमस्कृत्य सुरोत्तमम् ॥ २५ ॥ विसृज्य च बलिं देवो लोकपालानुवाच ह । स्वानि धिष्ण्यानि गच्छध्वं तिष्ठध्वं विगतज्वराः ॥ २६ ॥ देवेनोक्ता गता देवाः प्रहृष्टाः पूज्यं वामनम् । देवः कृत्वा जगत्कार्यं तत्रैवान्तरधीयत ॥ २७ ॥ एतत्सर्वं समभवदेकादश्यां नराधिप । तेनेष्टा देवदेवस्य सर्वथा विजया तिथिः ॥ २८ ॥ एषैव फाल्गुने मासि पुष्येण सहिता नृप । विजया प्रोच्यते सद्भिः कोटिकोटिगुणोत्तरा ॥ २९ ॥ एकादश्यां सोपवासो रात्रौ संपूजयेद्धरिम् । कुर्यात् पात्रं तु सौवर्णं रौप्यं वा दारुवंशजम् ॥ ३० ॥ सौवर्णं वामनं कुर्यात् स्ववित्तस्यानुसारतः । शिखाकमण्डलुधरं छत्रयज्ञोपवीतिनम् ॥ ३१ ॥ आच्छाद्य पात्रं वासोभिरहतैः फलसंयुतन् । मार्गेण चर्मणा नद्धं भक्त्या वा शक्त्यपेक्षया ॥ ३२ ॥ तिलाढकेन सम्पूर्णं प्रस्थेन कुडवेन वा । अलाभे यवगोधूमैः शुभैः शुक्लतिलैस्तथा ॥ ३३ ॥ तस्मिन् गन्धैः पुष्पफलैः कालोत्थैरर्चयेद्धरिम् । नानाविधैश्च नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यैर्गुडौदनैः ॥ ३४ ॥ मत्स्यं कूर्मं वराहं च नारसिंहं च वामनम् । रामं रामं तथा कृष्णं बौद्धं कल्किं समर्चयेत् ॥ ३५ ॥ पादाद्येकैकमङ्गेषु

शीर्षान्तं पूजयेत्ततः। एभिर्मन्त्रदेराजञ्छ्रद्धया गरुडध्वजम् ॥ ३६ ॥ उद्यापनं ततः कुर्याद् द्वादशैर्वत्सरैस्तथा। सौवर्णीं राजतीं ताम्रीं मूर्ति कृत्वा चतुर्भुजाम् ॥ ३७ ॥ द्वादश्यास्तु दिने प्राप्ते गुरुमभ्यर्च्य शक्तितः। सदाचाररतं पार्थं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ ३८ ॥ अस्मदीयं व्रतं विप्र विष्णुवासरसम्भवम्। सम्पूर्णं तु भवेद्येन तत्कुरुष्व द्विजोत्तम ॥ ३९ ॥ तस्याग्रे नियमः कार्यो दन्तधावनपूर्वकम्। स्नानं कृत्वा मन्त्रपूर्वं नद्यादौ विमले जले ॥ ४० ॥ तर्पयित्वा पितॄन् देवान् पूजयेन्मधुसूदनम्। देवं सम्पूज्य विधिवद्रात्रौ जागरणं चरेत् ॥ ४१ ॥ ततः प्रभातसमये स्नात्वाचार्यादिभिः सह। वामनं पूजयेत् प्राग्वद्धोमं कुर्याद्विधानतः ॥ ४२ ॥ मन्त्रेणेदं विष्णुरिति समिदाज्यतिलोदनैः। प्रतिद्रव्यं सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं हुनेत् ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु द्वादशाष्ट व्रती नृप। प्रतिमां च तथा धेनुमाचार्याय निवेदयेत् ॥ ४४ ॥ एवं कृते तु राजेन्द्र गाः कृष्णा द्वादशाष्ट वा। षट् चतुस्रोऽथवा देया एका वापि पयस्विनी ॥ ४५ ॥ वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो वै ददाति च। वामनस्तारकोभाभ्यां वामनाय नमो नमः ॥ ४६ ॥ प्रत्येकं ब्राह्मणं कुम्भैर्दक्षिणावस्त्रचन्दनैः। शक्त्या सम्पूजयेद्राजन् सर्वत्रैष विधिः स्मृतः ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणान् भोजयेत् पूर्वं पश्चाद् भुञ्जीत वाग्यतः। एवं व्रते कृते ब्रह्मन् यत्पुण्यं तन्निबोध मे ॥ ४८ ॥ हस्त्यश्वरथपत्तीनां दाता भोक्ता विमत्सरी। रूपसौभाग्यसम्पन्नो निष्पापी नीतिमान् भवेत् ॥ ४९ ॥ पुत्रपौत्रैः परिवृतो जीवेत् स शरदां शतम् ॥ एषा व्युष्टिः समाख्याता एकादश्या मया तव ॥ ५० ॥ पूर्वमेव समाख्याता द्वादशी श्रवणान्विता। सगरेण ककुत्स्थेन धुन्धुमारेण गाधिना। एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र कृता वै द्वादशी तिथिः ॥ ५१ ॥

इति श्रीहेमाद्रौ भविष्योत्तरपुराणे वामनद्वादशीव्रतकथा सम्पूर्णा।

अथ विसर्जनम्

ततः प्रातः अरुणोदयवेलायां स्नानादिनित्यकृत्यं विधाय पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिमादाय—ॐ नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक। अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यकरो भव॥ इति पुष्पाञ्जलि समर्प्य—ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्। इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च॥ ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गसायुधसपरिवारभगवन्—श्रीवामनपूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ। एवं सूर्यादिनवग्रहान्, इन्द्रादिदशदिक्पालान्, कलशस्थापने सति कलशाधिष्ठितगणेशादिदेवांश्च विसृज्य कर्मदक्षिणां कुर्यात्। कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्य कृतैतत् साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारभगवञ्च्छ्रीवामनपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदेवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम्। ततः परिशिष्टोक्तविधिना शान्तिकलशस्थजलाभिषेकं कृत्वा स्वर्णमयीं प्रतिमां ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत्, मृन्मयीं तु जले प्रक्षिपेत्। तत्र स्वर्णप्रतिमादानमन्त्रः—ओं नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक। अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यकरो भव॥ ततः श्रीवामनप्रीत्यर्थं यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत्।

इति श्रीवामनद्वादशीव्रतपूजा समाप्ता।।

अथ इन्द्रोत्थापनकृत्यम्

भाद्रशुक्लद्वादश्याम्, इक्षुदण्डनिर्मितानिन्द्रशचीजयन्तान् स्थापयित्वा कृतस्नानादिराचान्तः अक्षतान्यादाय ओं भूर्भुवः स्वरिन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य स्थापयित्वा एतानि पाद्यादीनि ओं इन्द्राय नमः। इदमनुलेपनम् ओं इन्द्राय नमः। पूजामन्त्रास्तु, आं एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश। समुत्थितस्त्वं श्रव-

णाद्यपादे गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ ॐ विचित्रैरावतस्थाय भास्वत्कुलिशपाणये। पौलोम्यालिङ्गिताङ्गाय सहस्राक्षाय ते नमः॥ ॐ वज्रहस्त सुरारिघ्न बहुनेत्र पुरन्दर। रक्षार्थं सर्वलोकानां पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥ एभिर्मन्त्रैस्संपूज्य एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ॐ इन्द्राय नमः। इति दत्त्वा—ॐ इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः। शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मायिन्द्राय ते नमः॥ इति प्रणामं कृत्वा—ॐ सुरासुरगणैः सार्धं पुरन्दर शतक्रतो। उपहारं गृहीत्वेमं सर्वेषामभयं कुरु॥ इति वरप्रार्थनम्। ततो दक्षिणदिशि ॐ भूर्भुवः स्वश्शचि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ॐ शच्यै नमः। इदमनुलेपनम्०। इदमक्षतम् ॐ शच्यै नमः। इति यथोपचारैः सम्पूज्य एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ॐ शच्यै नमः। ततो वामे ओं भूर्भुवः स्वर्जयन्त इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ॐ जयन्ताय नमः। इदमनुलेपनम्०। इदमक्षतम्०। एतानि पुष्पाणि ओं जयन्ताय नमः। इति सम्पूज्य एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि ओं जयन्ताय नमः। एवमेव सप्तदिनानि पूजां कृत्वा सप्तमे दिने ओं इन्द्र क्षमस्व। ओं शचि क्षमस्व। ओं जयन्त क्षमस्वेति विसृज्य उषःकाले इन्द्रादीन् जलाशये क्षिपेत्। इति इन्द्रोत्थापनकृत्यम्।

अथ श्रीमदनन्तव्रतविधिः

भविष्ये—अनन्तं हृदये कृत्वा शुचिस्तत्र समाहितः। सङ्कल्पपूर्वं नद्यादौ स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः॥ १॥
गोमयेन समालिप्य मण्डलं तत्र कारयेत्। सर्वतोभद्रमालिख्य कलशं तत्र स्थापयेत्॥ २॥
वेष्टितं वस्त्रयुग्मेन धातुमृन्मयमव्रणम्। सुपूजितं पल्लवाद्यैः पुष्पमालाभिरेव च॥ ३॥
तत्र पात्रं न्यसेद्धैमं राजतं ताम्रवंशजम्। तत्राष्टदलमालिख्य तत्राऽनन्तं प्रपूजयेत्॥ ४॥

तत्र पात्रं न्यसेदेवं राजतं ताम्रवंशजम् । तत्राष्टदलमालिख्य तत्रानन्तं प्रपूजयेत् ॥ ४ ॥

कृत्वा दर्भमयं देवं फलसप्तकमण्डितम् । तस्याग्रतो दृढं सूत्रं कुङ्कमाक्तं प्रपूजयेत् ॥ ५ ॥
सूत्रैरात्ममितैर्डोरं चतुर्दशभिराहितम् । चतुर्दशग्रन्थिभिस्तु सव्यवृत्तैः सुनिर्मितम् ॥ ६ ॥
ततः प्रस्थस्य पक्कानां पूपानां सुविनिर्मितम् । अर्धं विप्राय दातव्यमर्धं भोजनमात्मनः ॥ ७ ॥
शक्त्या च दक्षिणां दद्याद् वित्तशाठ्यविवर्जितः । डोरकं दक्षिणे पुंसां स्त्रीणां वामे करे न्यसेत् ॥ ८ ॥

अथ अनन्तपूजनविधिः

भाद्रशुक्लचतुर्दश्यां(१) कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य जलपूर्णकलशं संस्थाप्य तत्र आम्रपल्लवं दत्त्वा तदुपरि कुशनिर्मितं फणासप्तकमण्डितं चतुर्भुजम् अनन्तं ताम्रपात्रे अष्टदलपद्मं विलिख्य तदुपरि नूतनडोरकं च संस्थाप्य पञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य सङ्कल्पं कुर्यात् । तद्यथा कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अद्य भाद्रे मासि शुक्ले पक्षे चतुर्दश्यां तिथौ अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सपरिवारस्य सर्ववाधाप्रशमनधनधान्यसुतान्वितत्वसर्वपापक्षयत्रिविधोत्पातप्रशमनशरीरारोग्यसकलमनोऽभिलषितकामावाप्तिकामः साङ्गसपरिवारश्रीमदन्तपूजनं तत्कथाश्रवणं

---

(१) इयं चतुर्दशी उदयव्यापिनी ग्राह्या । तथा हि तिथिचन्द्रिकायां पक्षधरमिश्राः—अनन्तस्य व्रते र.जन् घटिकैका चतुर्दशी । उदये घटिकैकार्धं वा सैव ग्राह्या महाफला ॥ भविष्ये—तथा भाद्रपदस्यान्ते चतुर्दश्यां द्विजोत्तम । पौर्णमास्याः समायोगे व्रतं चानन्तकं चरेत् ॥ दिवोदासः—चतुर्दश्युदिते किञ्चित् पूर्णिमा सकला यदि । तत्र कुर्यादनन्तस्य महाविष्णोः प्रपूजनम् ॥ स्कान्दे–मुहूर्तमपि चेद्भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी । सम्पूर्णां तां विदुस्तस्यां पूजयेद् विष्णुमव्ययम् ॥ यत्तु 'मध्याह्ने भोज्यवेलायाम्' इति कथान्तर्गतपद्यमादाय मध्याह्नकी तिथिरियं ग्राह्येति भट्टाः प्राहुस्तन्मन्दम्, 'पूवाह्णो वै देवानाम्' इति स्मृतिविरोधात् । तदुक्तं दिनकरोद्द्योते—त्रेधा विभक्तदिवसे प्रातःकाले सुरार्चनम् । मध्याह्ने तीर्थकार्यं च सायं रक्षाकरी क्रिया ॥ इति ॥

चाऽहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य सति सम्भवे परिशिष्टोक्तविधिना प्रथमं शान्तिकलशस्थापनं च कुर्यात् ।

ततः सूर्यादिनवग्रहपूजनम्(१) । अक्षतानादाय—ॐ भूर्भुवः स्वः सूर्यादिनवग्रहाः इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यावाह्य ॐ सूर्यादिनवग्रहेभ्यो नमः, इति पञ्चोपचारैः पूजयेद् । ततः—ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्रादिदशदिक्पालाः इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यावाह्य ॐ इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो नमः इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

ततोऽनन्तं पूजयेत् । तद्यथा, यवतिलानादाय—ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञँ समिमं दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ, ॐ भूर्भुवः स्वः भगवन् श्री अनन्तदेव इहागच्छ इह तिष्ठ इह सुप्रतिष्ठितो भव । इति कुशप्रतिमायां प्राणप्रतिष्ठां विधाय, ध्यायेदनेन—ॐ वन्दे चतुर्भुजं देवं शङ्खचक्रगदाधरम् । आम्रपल्लववर्णाभं पद्मासनसमन्वितम् ॥ ॐ आगच्छानन्त देवेश तेजोराशे जगत्पते । क्रियमाणामिमां पूजां गृहाण पुरुषोत्तम ॥ ततः पुष्पमादाय ध्यायेत्—ओं नानारत्नसमायुक्तं कार्तस्वरविभूषितम् । आसनं देवदेवेश गृहाण पुरुषोत्तम ॥ इदं पुष्पासनं भगवते श्री अनन्ताय नमः । ततः पाद्यम्—ॐ गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनया हृतम् । तोयमेतत् सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं पाद्यं भगवते० । अर्घ्यम्—ॐ अनन्तानन्तदेवेश अनन्तगुणसागर । अनन्तानन्तरूपोऽसि गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ इदमर्घ्यं० । आचमनीयम्—ओं गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम् । आचम्यतां हृषीकेश त्रैलोक्यव्याधिनाशन ॥ इदमाचमनीयम्० । पञ्चामृतम्—ओं पयो दधि घृतं गव्यं माक्षिकं शर्करा तथा । पञ्चामृतेन स्नपनं गृहाण जगतः पते ॥ शुद्धोदकम्—ओं गङ्गा च यमुना चैव नर्मदा च सरस्वती । तापी पयोष्णी रेवा च ताभ्यः स्नानार्थमाहृतम् ॥ तोयमेतत् सुखस्पर्शं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं शुद्धोदकस्नानीयम्० । (सति सम्भवे पुरुषसूक्तेन चात्र अभिषेकं विधेयम्) ततः—इदमाचमनीयं० । पीतवस्त्रम्—ओं पीताम्बरशुभं देव

---

(१) मात्स्ये—नवग्रहमखं कृत्वा ततः कर्म समारभेत् । अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित् ॥ इति ॥

(१) मात्स्ये—नवग्रहमखं कृत्वा ततः कर्म समारभेत् । अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित् ॥ इति ॥

सर्वकामार्थसिद्धये । मया निवेदितं भक्त्या गृहाण सुरसत्तम ॥ इदं पीतवस्त्रं बृहस्पतिदैवतम्० । यज्ञोपवीतम्—ओं दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात् । ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण सुरसत्तम ॥ इदं यज्ञोपवीतं बृहस्पतिदैवतं० । चन्दनम्—ओं श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् । विलेपनं सुरश्रेष्ठ प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं श्रीखण्डचन्दनम्० । यवतिलाः—ओं तिला यवाः सुरश्रेष्ठ कम्बूजाश्च सुशोभनाः । वासुदेव जगन्नाथ प्रीत्यर्थं स्वीकुरु प्रभो । एते यवतिलाः० । पुष्पाणि—ओं पुष्पन्तु परमं दिव्यं पुण्यं सुरभिसम्भवम् । गृहाण परया भक्त्या मया दत्तं जगत्पते ॥ एतानि पुष्पाणि० । (क्वचिदनन्तसंसारेति पुष्पदानमन्त्रः) । पुष्पमाल्यम्—ओं नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम् । प्रयच्छामि च देवेश गृहाण परमेश्वर ॥ इदं पुष्पमाल्यम्० । तुलसीपत्राणि—ओं तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम् । भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयापि हरिप्रियाम् ॥ एतानि तुलसीपत्राणि० । एतानि दूर्वादलानि० । इदमाचमनीयम्० ।

अथ अङ्गपूजा—गन्धपुष्पाक्षतान्येकीकृत्य—ओं अनन्ताय नमः, पादौ पूजयामि । ओं सङ्कर्षणाय नमः, गुल्फौ पू० । ओं कालात्मने नमः, जानुनी पू० । ओं विश्वरूपिणे नमः, जघने पू० । ओं विश्वरूपाय नमः, कटिं० । ओं विश्वकर्त्रे नमः, मेढ्ं० । ओं पद्मनाभाय नमः, नाभिं० । ओं परमात्मने नमः, हृदयं० । ओं श्रीकण्ठाय नमः, कण्ठं० । ओं शस्त्रास्त्रधारिणे नमः, वाहू० । ओं वाचस्पतये नमः, मुखं० । ओं कपिलाय नमः, चक्षुषी० । ओं केशवाय नमः, ललाटं० । ओं सर्वात्मने नमः, शिरः० ।

ततो धूपः—ओं धूपोऽयं ते महाभाग दशाङ्गोऽगुरुणा सह । मया दत्तः प्रभोऽनन्त गृह्यतां सुरनायक ॥ एष धूपः० । दीपः—ओं दीपं गृहाण भोऽनन्त जाज्वल्यमानमद्भुतम् । त्वं गृहाण सदा देव रक्ष मां घोरसागरात् ॥ एष दीपः० । नैवेद्यानि—ओं अन्नं चतुर्विधं स्वादु पयो दधि घृतं तथा । भक्त्या सम्पादितं देव सापूपं गृह्यतां विभो ।

ओं नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिर्मे ह्यचलां कुरु। ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च पराङ्गतिम् ॥ एतानि नानाविधपक्वान्नादीनि०। इदमाचमनीयम्०। फलानि—ओं फलान्येतानि हे देव स्थापितानि पुरतस्तव। तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ एतानि फलानि०। ताम्बूलम्—ओं पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्। कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं ताम्बूलं०। इदमाचमनीयम्०। दक्षिणाद्रव्यम्—ओं हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसो। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ इदं दक्षिणारूपं द्रव्यं०। पुष्पाञ्जलिः—ओं मालतीमल्लिकापुष्पैर्नागचम्पकसंयुतैः। पुष्पाञ्जलिं गृहाणेमं पादाम्बुजयुगार्पितम्। एष पुष्पाञ्जलिः भगवते श्री अनन्ताय नमः।

ततो बलभद्रादिपूजनम्—तिलानादाय—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीबलभद्र इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं बलभद्राय नमः, इत्यनेन पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं बलभद्रं महात्मानं हलिनं लाङ्गलायुधम्। कादम्बरीमदोन्मत्तं नमामि बलभद्रकम् ॥ एष पुष्पाञ्जलिः ओं बलभद्राय नमः। सुमन्तपूजा—ओं भूर्भुवः स्वः श्री सुमन्तो इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं सुमन्तवे नमः, इत्यनेन पञ्चोपचारैः पूजयेत्। दीक्षापूजा—अक्षतानादाय—ओ भूर्भुवः स्वः श्रीदीक्षे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं दीक्षायै नमः इत्यनेन पाद्यादिभिः पूजयेत्। ततश्चतुर्दशग्रन्थिक्रमेण नामकरणम्—

ओं अनन्तोऽसि ॥ १ ॥ ओं पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २ ॥ ओं हृषीकेशोऽसि ॥ ३ ॥ ओं पद्मनाभोऽसि ॥ ४ ॥ ओं माधवोऽसि ॥ ५ ॥ ओं वैकुण्ठोऽसि ॥ ६ ॥ ओं श्रीधरोऽसि ॥ ७ ॥ ओं त्रिविक्रमोऽसि ॥८॥ ओं मधुसूदनोसि ॥ ९ ॥ ओं वामनोऽसि ॥१०॥ ओं केशवोऽसि ॥११॥ ओं नारायणोऽसि ॥१२॥ ओं दामोदरोऽसि ॥१३॥ ओं गोविन्दोऽसि ॥१४॥

एतान् प्रत्येकमावाह्य प्रणवादिनमोन्तचतुर्थ्यन्तपदेन पञ्चोपचारैः सम्पूज्य प्रार्थयेत्—

ओं अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव।

एतान् प्रत्येकमावाह्य प्रणवादिनमोन्तचतुर्थ्यन्तपदेन पञ्चोपचारैः सम्पूज्य प्रार्थयेत्—

ओं अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव ।

अनन्तरूपे विनियोजयस्व अनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥ १ ॥
नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥ २ ॥
हृदिस्थं सर्वदेवानामिन्द्रियाणां गुणार्तिगम् ।
सर्वपापहरं देवं प्रणमामि जनार्दनम् ॥ ३ ॥
अनन्तरूपेण विभर्षि पृथ्वीमनन्तलक्ष्मीं विदधासि तुष्टः ।
अनन्तभोगान् प्रददासि तुष्टो ह्यनन्तमोक्षं पुरुषे प्रहृष्टः ॥ ४ ॥
प्रणमामि हृषीकेशं वासुदेवं जगद्गुरुम् । सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्तारं प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥
राक्षसानामरिं नौमि नौमि दैत्यारिमर्दकम् । जगतां हितकर्तारं नौमि पङ्केरुहेक्षणम् ॥ ६ ॥
जन्म जन्म कृतं यच्च वाल्ययौवनवार्द्धके । वृद्धिमायातु तत्पुण्यं पापं हर हलायुध ॥ ७ ॥
भक्तिहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं यदर्चितम् । यथोद्दिष्टामिमां पूजां परिपूर्णां कुरुष्व मे ॥ ८ ॥
पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः । त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष हरे संसारसागरात् ॥ ९ ॥
अनन्तकामान् मे देहि सर्वकामफलप्रद । अनन्ताय नमस्तुभ्यं पुत्रपौत्रान् प्रवर्द्धय ॥ १० ॥
अनन्तः सर्वकामानामधिपः सर्वकामदः । व्रतेनानेन सुप्रीतो भवत्विह महान् मम ॥ ११ ॥
नमस्ते देवदेवेश नमस्ते धरणीधर । नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते ह्यमरप्रिय ॥
नमस्ते सर्वभूतेश वासुदेव नमोस्तु ते ॥ १२ ॥

ततः हस्ते सम्बद्धं जीर्णडोरकं स्पृशन्—ओं संवत्सरकृतां पूजां संपाद्य विधिवन्मम । व्रजेदानीं सुरश्रेष्ठ ह्यनन्त-

फलदायक ॥ न्यूनातिरिक्तानि परिस्फुटानि यानीह कर्माणि मया कृतानि । सर्वाणि चैतानि मम क्षमस्व प्रयाहि तुष्टः पुनरागमाय ॥ इति जीर्णडोरकं विसृज्य नवीनडोरकमादाय तैजसपात्रे गोक्षीरं कृत्वा जीर्णेन मन्थयन् 'किं मन्थसे' इत्यन्येनोक्ते 'क्षीरनिधिम्' इति तं वदेत् । पुनः 'किं मृग्यसे' इत्यन्येनोक्ते, 'अनन्तम्' इति वदेत् । ततः 'प्राप्तस्त्वया' इत्यन्येनोक्ते 'प्राप्तो मया' इत्युक्त्वा, शिरसि निधाय प्रणम्य विसर्जयेत् । (यथास्थानं स्थापयेत्)

अथ नूतनडोरकबन्धनमन्त्रः—(तत्तु यथाचारादत्रैव कथाश्रवणानन्तरं वा बध्नीयात्) । ओं अनन्ताय नमस्तुभ्यं सहस्रशिरसे नमः । नमोस्तु पद्मनाभाय नागानां पतये नमः ॥ अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव । अनन्तरूपे विनियोजयस्व ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥ इति संप्रार्थ्य––ओं संसारसागरगुहासु सुखं विहर्तुं वाञ्छन्ति ये कुरुकुलोद्भवशुद्धसत्त्वाः ॥ सम्पूज्य च त्रिभुवनेशमनन्तदेवं बध्नन्ति दक्षिणकरे वरडोरकन्ते ॥ ओं इदं डोरकमनन्ताख्यं चतुर्दशगुणात्मकम् । सर्वदेवमयं विष्णो स्वकरे धारयाम्यहम् । इत्यनेन पुरुषो दक्षिणकरे स्त्री चेत् वामकरे बध्नीयात् । ततः कथां शृणुयात् ।

(अत्र सति सम्भवे श्रावणकृत्यान्तपरिशिष्टोक्तविधिना अग्नि संस्थाप्य—'ओं विष्णोरराटमसि' इति मन्त्रेण, 'ओं श्री अनन्ताय नमः स्वाहा' इत्यनेन वा अष्टोत्तरशतं सहस्रं वा आज्याहुतीर्जुहुयात् ।)

अथ अनन्तव्रतकथा

सूत उवाच––अरण्ये वर्तमानास्ते पाण्डवा दुःखकर्षिताः । कृष्णं दृष्ट्वा महात्मानं पणिपत्येदमब्रुवन् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच—कृष्ण आख्याहि भगवन् व्रतं यद्विश्वदुर्लभम् । यस्याचरणमात्रेण ईप्सितं लभते नरः ॥ २ ॥ कृष्ण उवाच––अनन्तव्रतमाहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् । सर्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणां चैव विशेषतः ॥ ३ ॥ शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे भवेत् । तस्याचरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर उवाच–कृष्ण कोऽयं त्वयाख्यातो

योऽनन्त इति विश्रुतः। किं शेपनाग आहोस्विदनन्तस्तक्षकः स्मृतः ॥५॥ परमात्माऽथ वाऽनन्त उताहो ब्रह्म उच्यते। एष कोऽनन्तसंज्ञो वै तथ्यं मे ब्रूहि केशव ॥ ६ ॥ कृष्ण उवाच—अनन्त इत्यहं पार्थ मम रूपं निबोधय। आदित्यादिषु वारेषु यः कालमुपपद्यते ॥७॥ कलाकाष्ठामुहूर्तादि दिनरात्रिशरीरवान्। पक्षो मासर्तुवर्षादि युगकल्पव्यवस्थया ॥८॥ योऽयं कालो मयाऽख्यातः सोऽनन्त इति कीर्तितः। सोहं कालोऽवतीर्णोत्र भुवो भारावतारणात् ॥ ९ ॥ दानवानां विनाशाय वसुदेवकुलोद्भवः। अनन्तं विद्धि मां पार्थ कृष्णं विष्णुं हरिं शिवम् ॥ १० ॥ ब्रह्माणं भास्करं सोमं सर्वव्यापिनमीश्वरम्। विश्वरूपं महाकायं सृष्टिसंहारकारकम् ॥ ११ ॥ प्रत्ययार्थं मया पार्थ तव रूपं प्रदर्शितम्। पूर्वमेव महाबाहो योगिध्येयमनुत्तमम् ॥ १२ ॥ विश्वरूपमनन्तञ्च यस्मिन्निन्द्राश्चतुर्दश। वसवो द्वादशादित्या रुद्रा एकादशानिलाः ॥ १३ ॥ सप्तर्षयः समुद्राश्च पर्वताः सरितो द्रुमाः। नक्षत्राणि दिशो भूमिः पातालं भूर्भुवस्तथा ॥ १४ ॥ मा कुरुष्वात्र सन्देहं सोऽहं पार्थ न संशयः ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर उवाच—अनन्तव्रतमाहात्म्यं विधिं ब्रूहि जनार्दन। किं पुण्यं किं फलं चास्य विधानञ्चास्य कीदृशम् ॥ १६ ॥ केन चादौ पुरा चीर्णं मर्त्ये केन प्रकाशितम्। एतत्सर्वं प्रयत्नेन विस्तार्य्य वद मे प्रभो ॥ १७ ॥ श्रीकृष्ण उवाच—आसीत् पुरा कृतयुगे सुमन्तुर्नाम वै द्विजः। वसिष्ठगोत्रे चोत्पन्नः सुरूपाञ्च भृगोः सुताम् ॥ १८ ॥ दीक्षानाम्नी चोपयेमे गृह्योक्तविधिना नृप। तस्याः कालेन सञ्जाता दुहिता शुभलक्षणा ॥ १९ ॥ शीलानाम सुशीला सा वर्द्धते पितृवेश्मनि। माता तस्यास्तु काले ज्वरदाहेन पीडिता ॥ २० ॥ विननाश नदीतीरे मृता स्वर्गपुरं ययौ। सुमन्तुश्च ततोऽन्यां वै धर्मपुत्रसुतां पुनः ॥ २१ ॥ उपयेमे विधानेन कर्कशां नाम नामतः। दुःशीलां कर्कशां चण्डीं नित्यं कलहकारिणीम् ॥ २२ ॥ साऽपि शीला पितुर्गेहे गृहार्चनरता बभौ। कुड्यस्तम्भगृहद्वारे देहलीतोरणादिभिः ॥२३॥ वर्णैश्चित्रमकरोन्नीलपीतसितासितैः। स्वस्तिकैः शंखपद्मैश्च अर्चयन्ती दिने दिने ॥ २४ ॥ ततः काले बहुतिथे कौमारव्रत वर्त्तिनी। पित्रा दृष्टा तदा तेन स्त्रीचिह्ने यौवने स्थिता ॥ २५ ॥

१०६४५

कस्मै देया मया शीला विचार्यैवं सुदुःखितः। एतस्मिन्नेव काले तु कन्यार्थी द्विजपुङ्गवः ॥ २६ ॥ सुमन्तोश्च गृहं प्राप्तः कौण्डिल्यो गतकल्मषः। सुमन्तुश्च सुशीलां वै कौण्डिल्याय ददौ तदा ॥ २७ ॥ गृह्योक्तवेदविधिना विवाहमकरोत्तदा। निवर्त्त्यौद्वाहिकं कर्म प्रोक्तवान् कर्कशां प्रति ॥ २८ ॥ किञ्चिद्धनादिकं देयं जामातुः परितोषकम्। तच्छ्रुत्वा कर्कशा क्रुद्धा प्रोत्क्षिप्य गृहमण्डनम् ॥ २९ ॥ पेट्टालकं दृढं बध्वा प्रययौ पितृवेश्मनि। भोज्यावशिष्टचूर्णेन पाथेयं दत्तवान् द्विजः ॥ ३० ॥ कौण्डिल्योऽपि विवाह्यैनां पथि गच्छञ्छनैः शनैः। शीलां सुशीलामादाय नवोढां गोरथेन च ॥ ३१ ॥ मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य्य सरित्तटे। ददर्श शीला स्त्रीणां च समूहं रक्तवाससाम् ॥ ३२ ॥ चतुर्दश्यामर्चयन्तं भक्त्या देवं पृथक् पृथक्। उपगम्य शनैः शीला पप्रच्छ स्त्रीकदम्बकम् ॥ ३३ ॥ आर्याः किमेतन्मे ब्रूत किन्नाम व्रतमीदृशम्। ता ऊचुर्योषितः सर्वाः शीलां शीलविभूषणाम् ॥३४॥ अनन्तव्रतमेतद्धि व्रतेऽनन्तस्तु पूज्यते ॥ साऽब्रवीदहमप्येतत् करिष्ये ब्रतमुत्तमम् ॥ ३५ ॥ विधानं कीदृशं चास्य किन्दानं कस्य पूजनम् ॥ ३६ ॥ स्त्रियः ऊचुः—शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे शुभे। कृत्वा दर्भमयं देवं सर्वालङ्कारभूषितम् ॥३७॥ पूपं कृत्वा घृतेनैव भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ अर्द्धं विप्राय दातव्यं चार्द्धं भुञ्जीत वै स्वयम् ॥३८॥ शक्त्या च दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत्। कर्त्तव्यं तु सरित्तीरे कथां श्रुत्वा हरेरिमाम् ॥३९॥ ध्यात्वाऽनन्तं समभ्यर्च्य मण्डले धूपदीपकैः। पुष्पमाल्यैः सुगन्धैश्च नैवेद्यैः पीतवस्त्रकैः॥४०॥ सुरेशं देवदेवेशं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम्। तस्याग्रतो दृढं सूत्रं कुङ्कुमारक्तडोरकम् ॥ ४१ ॥ चतुर्दशग्रन्थिसंयुक्तं स्त्री वामे करे न्यसेत्। पुमांश्च दक्षिणे चैव बहुसौख्यप्रदायकम् ॥ ४२ ॥ मन्त्रेणानेन राजेन्द्र यावद्वर्षं समाप्यते ॥ ४३ ॥ अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् सयभ्युद्धर वासुदेव। अनन्तरूपे विनियोजयस्व अनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥ ४४ ॥ अनेन डोरकम्बध्वा भोक्तव्यं स्वस्थमानसैः। ध्यात्वा नारायणं देवमनन्तं विश्वरूमिणम् ॥ ४५ ॥ भुक्त्वा चान्ते व्रजेद् गेहं व्रतं प्रोक्तमिदं तव। योऽनन्तस्य व्रतं कुर्याद् वर्षाणि नव पञ्च च ॥ ४६ ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णु-

लोकञ्च गच्छति ॥ ४७ ॥ श्रीकृष्ण उवाच—एवमाकर्ण्य राजेन्द्र प्रहृष्टेनान्तरात्मना । सापि शीला व्रतञ्चक्रे करे बध्वा सुडोरकम् ॥ ४८ ॥ पाथेयशेषं विप्राय दत्त्वा भुक्त्वा तथैव च । पुनर्जगाम सा हृष्टा गोरथेन स्वमाश्रमम् ॥ ४९ ॥ भर्त्रा सहैव सा शीला राजमाना स्वमन्दिरे । तेनानन्तप्रभावेण बभौ गोधनसङ्कुलम् ॥ ५० ॥ गृहाश्रमं श्रिया युक्तं धनधान्यसमाकुलम् । आकुलं व्याकुलञ्चैव सर्वदाऽतिथिपूजनैः ॥५१॥ साऽपि माणिक्यकाञ्चीभिर्मुक्ताहारविभूषिता । दिव्यवस्त्रैश्च सञ्छन्ना सावित्रीप्रतिमाऽभवत् ॥ ५२ ॥ कदाचिदुपविष्टेन भर्त्रा दृष्टः सुडोरकः । किमर्थं डोरको बद्धः, इत्यपृच्छद् द्विजोत्तमः ॥ ५३ ॥ शीलोवाच—व्रतं कृतं मया नाथ बद्धोऽनन्तस्य डोरकः । श्रीमदान्धेन विप्रेण संक्षिप्तं त्रोटितं रुषा ॥ ५४ ॥ कोऽनन्त इति मूढेन ब्रुवता तेन पापिना । क्षिप्तं ज्वालाकुले वह्नौ हा हा कृत्वा प्रधावती ॥५५॥ शीला गृहीत्वा तत्सूत्रं क्षीरमध्ये समाक्षिपत् । तेन कर्मविपाकेन लक्ष्मीस्तस्य क्षयं गता ॥ ५६ ॥ गोधनं तस्करैर्नीतं गृहं चापि प्रदीपितम् । यद्यथैवागता लक्ष्मीस्तत्तथैव गता पुनः ॥ ५७ ॥ स्वजनैः कलहो नित्यं बन्धनं तर्जनं ततः । अनन्ताक्षेपदोषेण दारिद्र्यं पतितं गृहे ॥ ५८ ॥ न किञ्चिद् वदते लोकस्तेन सार्धं नराधिप । शरीरेणातिसन्तप्तो मनसाऽपि च दुःखितः ॥ ५९ ॥ निर्वेदं परमं प्राप्तः कौण्ठिल्यः प्राह तां प्रियाम् । शीले किमेतदुत्पन्नं सहसा शोककारणम् ॥ ६० ॥ येनातिदुःखमस्माकं जातः सर्वधनक्षयः । स्वजनैः कलहो गेहे न कश्चिन्मां प्रभाषते ॥ ६१ ॥ शरीरे तीव्रसन्तापः खेदश्चेतसि दारुणः । ईदृशी दुर्गतिः किम्मे किं कृत्वा सुकृतं भवेत् ॥ ६२ ॥ प्रत्युवाच ततः शीला सुशीला स्वामिनं प्रति ॥ ६३ ॥ शीलोवाच—प्रायोऽनन्तकृताक्षेपात् पापसम्भवजं फलम् । भविष्यति महाभागे तदर्थं यत्नमाचर ॥ ६४ ॥ तच्छ्रुत्वा स च कौण्डिल्यो जगाम गहनं वनम् । विधिवत्कृतसंकल्पो वायुभुक्तजितेन्द्रियः ॥ ६५ ॥ मनसा ध्यायतेऽनन्तं क्वचिद् द्रक्ष्यामि केशवम् । यस्य चाक्षेपदोषेण संजातं मम निर्द्धनम् ॥ ६६ ॥ धनादिकं मम गतं दुःखव्याधिसमागमम् । एवं सञ्चिन्तयत्सोऽथ विभ्राम विजने वने ॥६७॥ तत्रापश्यन्महावृक्षं पुष्पितं फलितं तथा । वर्जितं पक्षिसंवातैः कीटकैरभिभक्षितम् ॥ ६८ ॥ तमपृच्छद् द्विजोऽनन्तः क्वचिद् दृष्टो महाद्रुमः ।

ब्रूहि सौम्य ! ममातीव दुःखं चेतसि वर्त्तते ॥ ६९ ॥ तेनोक्तश्चूतवृक्षेण नानन्तं वेद्म्यहं द्विज । एवं विनिष्कृतस्तेन गां ददर्श सवत्सकाम् ॥ ७० ॥ तृणमध्ये प्रधावन्तीमितश्चेतश्च पाण्डव । सोऽब्रवीद्धेनुके ब्रूहि यद्यनन्तस्त्वयेक्षितः ॥ ७१ ॥ गौरुवाचाऽथ कौण्डिल्यं नानन्तो वीक्षितो मया । ततो व्रजन् ददर्शाग्रे वृषभं शाद्वले स्थितम् ॥ ७२ ॥ दृष्ट्वा पप्रच्छ गोस्वामिन्ननन्तो वीक्षितस्त्वया । वृषभस्तमुवाचेदं नानन्तो वीक्षितो मया ॥ ७३ ॥ ततो व्रजन् ददर्शाग्रे रम्यं पुष्करिणीद्वयम् । अन्योन्यजलकल्लोलैर्वीचीकमलशोभितम् ॥ ७४ ॥ छन्नं कमलकिञ्जल्कैः कुमुदोत्पलमण्डितम् । सेवितं भ्रमरैर्हंसैश्चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ७५ ॥ तमपृच्छद् द्विजोऽनन्तो भवतीभ्यां प्रलक्षितः । ऊचतुः पुष्करिण्यौ ते नावाभ्यां वोपलक्षितः ॥ ७६ ॥ ततो व्रजन् ददर्शाग्रे नदीतीरेष्ववस्थितम् । दह्यमानं दिवारात्रौ कच्छपं स्थूल विक्रमम् ॥ ७७ ॥ तमपृच्छद् द्विजोऽनन्तः कच्छपालोकितस्त्वया । ततोऽब्रवीत् कच्छपस्तं नानन्तं वेद्म्यहं द्विज ॥७८॥ ततो ब्रजन् ददर्शाग्रे वने तिष्ठति उष्ट्रकम् । तमपृच्छद् द्विजोऽनन्तः क्वचिद् दृष्टस्त्वयोष्ट्रक ॥ ७९ ॥ ततोऽब्रवीदुष्ट्रकस्तं नानन्तो वीक्षितो मया । ततो व्रजन् ददर्शाग्रे गर्दभं कुञ्जरन्तथा ॥ ८० ॥ तावप्युक्तो मुनीन्द्रेण चिन्ताव्याकुलचेतसा । नावाभ्यां विक्षितोऽनन्तस्ताभ्यामुक्तो द्विजस्तदा ॥ ८१ ॥ तस्मिन् वने च कौण्डिल्यो विषादमगमत् परम् । दीर्घकालं च निश्वस्य पपात भुवि विह्वलः ॥८२॥ नूनं त्यजाम्यहं प्राणानिति संकल्प्य चेतसि । तस्मिन् क्षीणे सुनिर्विण्णे कौण्डिल्ये ब्राह्मणोत्तमे ॥८३॥ कृपयाऽनन्तदेवोऽपि प्रत्यक्षं समजायत । वृद्धब्राह्मणरूपेण इत एहीत्युवाच तम् ॥८४॥ नास्ति गम्यस्त्वया विप्र समुद्रो विस्तरोऽग्रतः । अहमप्यागतस्तस्मादनन्तो नैव दृश्यते ॥ ८५ ॥ एवं श्रुत्वा ततो वाक्यं सहसा स तपोनिधिः । वह्निः प्रज्वालितः शीघ्रं मरणाय समुद्यतः ॥८६॥ वृद्ध ब्राह्मण उवाच—क्वचिद् द्विजवरानन्तस्त्वया दग्धः किमग्निना । इत्युक्त्वा दर्शयामास शंखचक्रगदाधरम् ॥ ८७ ॥ स दृष्ट्वा तादृशं रूपमनन्तपराजितम् । पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसम्भवः ॥८८॥ त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव । अद्य मे सफलं जन्म जीवितं सफलन्तथा ॥ ८९ ॥ यद्दृष्टोसि मया देव करुणादीनवत्सलः । तच्छ्रुत्वाऽनन्तदेवोऽपि दत्त्वा

तस्मै वरत्रयम् ॥ ९० ॥ दारिद्रचनाशनं धर्म्यं विष्णुलोकं तथाऽक्षयम् । प्रतिगृह्य द्विजोऽप्याह भगवन्तमधोक्षजम्
॥ ९१ ॥ कौण्डिल्य उवाच—को वृक्षः का च गौः सर्पः किं तत्पुष्करिणीद्वयम् । खरश्च कुञ्जरश्चैव देव मे ब्रूहि तत्त्वतः
॥ ९२ ॥ अनन्त उवाच—स चूतवृक्षो विप्रोऽसौ विद्वान् वै वेदगर्वितः । विद्या न दत्ता शिष्येभ्यस्तेनासौ तरुतां
गतः ॥ ९३ ॥ यस्त्वया वृषभो दृष्टो लोभार्थी कृषकोऽभवत् । सा च गौर्भ्रमते ज्ञेया ब्राह्मणी बीजहारिणी ॥ ९४ ॥
निःस्वादं जलमस्यैव तेन पापेन दूषिता । स च सर्पो महाकायः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ९५ ॥ ब्रह्मस्वे रमते नित्यं
पापात्मा क्रूरविग्रहः । धर्माधर्मव्यवस्थानं तच्च पुष्करणीद्वयम् ॥ ९६ ॥ खरः क्रोधस्त्वया दृष्टः कुञ्जरो धर्मनिन्दकः ।
अशास्त्रः कुप्रतिग्राही ग्राहकः पुरुषो भवेत् ॥ ९७ ॥ उष्ट्रो दृष्ट्रो वने रम्ये तेन पापेन क्रन्दति । कच्छपो यस्त्वया दृष्टो
नदीतीरे व्यवस्थितः ॥ ९८ ॥ दूषितं ब्राह्मणं शास्त्रं तेन पापेन दह्यते । ब्राह्मणं मामनन्तं हि गुह्यं संसारसागरे ॥ ९९ ॥
इत्युक्तं च मया सर्वं विप्र गच्छ पुनर्गृहम् । कुरु तत्र व्रतं चेदं नववर्षाणि पञ्च च ॥ १०० ॥ ततस्तुष्टः प्रदास्यामि
अक्षयस्थानमुत्तमम् । इहापि विविधान् भोगान् भुक्त्वा चापि मनोरथान् ॥ १०१ ॥ पुत्रैः पौत्रैः परिवृतस्ततो मोक्षमवाप्स्यसि ।
इति दत्त्वा वरन्देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १०२ ॥ कौण्डिल्योऽपि गतो गेहं चकारान्तकव्रतम् । प्रवेशयित्वा
स्वगृहं गृहीत्वा शुभडोरकम् ॥ १०३ ॥ स्वां पुरीं दर्शयामास दिव्यनारीनरैर्युताम् । तस्यां प्रविश्य स्वात्मानं
दिव्यसिंहासने शुभे ॥ १०४ ॥ शीलया सह धर्मात्मा भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् । अन्ते जगाम स्वर्गन्तु नक्षत्रं
चाभवत्पुनः ॥ १०५ ॥ तत्रैव च समुद्भूतः प्रज्वलन् दृश्यतेऽम्बरे । अनेन व्रतधर्मेण सम्यक् चीर्णेन पाण्डव ॥ १०६ ॥
एतत्ते कथितं राजन् व्रतानां व्रतमुत्तमम् । कीर्त्तिरायुर्यशो भूमिः श्रीरनन्तप्रसादतः ॥ १०७ ॥ यत्कथाश्रवणेनापि
पठनेन नरोत्तमाः । सर्वपापविनिर्मुक्ता यास्यन्ति परमां गतिम् ॥ १०८ ॥ संसारसागरगुहासु सुखं विहर्तुं वाञ्छन्ति
ये कुरुकुलोद्भव शुद्धसत्त्वाः । सम्पूज्य च त्रिभुवनेशमनन्तरूपं बध्नन्ति दक्षिणकरे शुभडोरकन्ते ॥ १०९ ॥

इति श्रीभविष्यपुराणोक्तश्रीमदनन्तव्रतकथा समाप्ता ।

अथ विसर्जनम्

तत्र प्रथमं आरार्तिकम्—ॐ चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च । त्वमेव सर्वज्योतींषि आरार्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदमारार्तिकं साङ्गाय सपरिवाराय भगवते श्री अनन्ताय नमः । ततः पुष्पाञ्जलिमादाय—ॐ मालती माल्लिकापुष्पैर्नागचम्पकसंयुतैः । पुष्पाञ्जलि गृहाणेदं पादाम्बुजयुगार्पितम् ॥ एष पुष्पाञ्जलिः—ॐ साङ्गाय सपरिवाराय भगवते श्री अनन्ताय नमः । ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसर्जयेत्—ओं यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामप्रसिध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ ओं अनन्तादिसर्वदेवताः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत इति । सति सम्भवे प्रत्येकं विसर्जयेत् । ततः कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्य कृतैतत्साङ्गसपरिवारश्रीमदनन्तपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । इति दक्षिणां दद्यात् । ॐ स्वस्तीति प्रतिवचनम् । ततो यथाशक्ति प्राह्मणान् भोजयित्वा स्वयमपि भुञ्जीत । इति अनन्तव्रतपूजा समाप्ता ।

अथ अगस्त्यार्घदानविधिः

भाद्रशुक्लपूर्णिमायामगस्त्यार्घदानं कुर्यात् । तत्र मन्त्राः—ओं (१) कुम्भयोनिसमुत्पन्न मुनीनां मुनिसत्तम । उदयन्ते लङ्काद्वारे अर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ १ ॥ ओं शङ्खं पुष्पं फलं तोयं रत्नानि विविधानि च । उदयन्ते लङ्काद्वारे अर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥२॥ ओं काशपुष्पप्रतीकाश वह्निमारुत सम्भव । उदयन्ते लङ्काद्वारे अर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥३॥ ततः—ओं आतापी भक्षितो येन वांतापी च महाबलः । समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु ॥ इति प्रार्थयेत् ॥ ततस्तत्पत्न्या अप्यर्घदानं दद्यात् । तत्र मन्त्रः—ओं लोपामुद्रे महाभागे राजपुत्रि पतिव्रते । गृहाणार्घं मया दत्तं मैत्रावरुणिवल्लभे । इति ।

इति भाद्रमासकृत्यम् ।

---

(१) नारसिंहे—शंखे तोयं विनिःक्षिप्य सितपुष्पाक्षतैर्युतम् । मन्त्रेणानेन वै दद्याद् दक्षिणाशामुखः स्थितः ॥

अथ आश्विनमासकृत्यम्

तत्र पार्वणश्राद्धे विशेषः

ब्रह्मपुराणे—आश्विने कृष्णपक्षे तु श्राद्धं (१) देयं दिने दिने। त्रिभागहीनपक्षं वा त्रिभागं त्वर्धमेव वा ॥

मनुः—कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम्। श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः। अत्र कृष्णादिरेव मासाः।

आषाढीमवधिं कृत्वा यः स्यात् पक्षस्तु पञ्चमः। तत्र श्राद्धं प्रकुर्वीत कन्यां गच्छतु वा न वा (२) ॥ एतद्वाक्येन स्फुटमविधानात्।

युवानस्तु गृहे यस्य मृतास्तेषां तु दापयेत्।
शस्त्रेण वा हता ये वै तेषां दद्यात् चतुर्दशीम् ॥

चतुर्दशीम्=चतुर्दश्यामित्यर्थः। युवानस्तु=षोडशवर्षोपरि त्रिशद्वर्षाणि यावत्। इति।

---

(१) श्राद्धमत्र पार्वणश्राद्धम्। तत्पद्धतिस्तु परिशिष्टे द्रष्टव्या।

(२) हेमाद्रौ—आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे। यो वै श्राद्धं नरः कुर्यादेकस्मिन्नपि वासरे।
तस्य संवत्सरे यावत् सन्तृप्ताः पितरो ध्रुवम् ॥
या तिथिर्यस्य मासस्य मृताहे तु प्रवर्तते। सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः ॥
स्मृतिः—सूर्ये कन्यागते श्राद्धं यो न कुर्याद् गृहाश्रमी। धनपुत्राः कुतस्तस्य पितृनिश्वासपीडनात् ॥

अथ जीमूतवाहनव्रतपूजा

आश्विनकृष्णाष्टम्यां (१) कृतनित्यक्रियो व्रती प्रदोषसमये गोमयोपलिप्तपरिष्कृतभूमौ प्राङ्गणे पुष्करिणीं कारयित्वा तत्र पर्कटीवृक्षमारोप्य तदुपरि मृद्गोमयनिर्मितां चिल्हीं शाखोपरि तथैव श्रृगालीमधःकोटरे धृत्वा मध्ये जलपूर्णं कलशं धृत्वा तत्र दर्भमयं जीमूतवाहनप्रतिमां निर्माय (धृत्वा) नानावर्णपताकादिभिरलंकृत्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽस्यां रात्रौ आश्विनमासीयकृष्णपक्षीयाऽष्टम्यां तिथौ अमुकगोत्रायाः ममामुकीदेव्याः सकलपुत्र-

---

(१) इयं चाष्टमी प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। तथाहि भविष्ये–'प्रदोषसमये स्त्रीभिः पूज्यो जीमूतवाहनः । पुष्करिणीं विधायाथ प्राङ्गणे चतुरस्त्रिकाम् ॥' विष्णुधर्मोत्तरे—'पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा प्रदोषे यत्र चाष्टमी । तत्र पूज्यः सदा स्त्रीभी राजा जीमूतवाहनः ॥' एवमेव तिथिचन्द्रिकायां पक्षधरमिश्राः प्राहुः ।

यत्तु—सप्तम्यामुदिते सूर्ये परतश्चाष्टमी भवेत् । तत्र व्रतोत्सवं कुर्यात् न कुर्यादपरेऽहनि ॥' इति तिथितत्त्वचिन्तामणौ महेशठक्कुरैरभितं तदपि गुरुमिश्रैकवाक्यत्वानुरोधेन पूर्वदिनमात्रे प्रदोषव्यापिन्यष्टमीविषयकमेवेत्यवसेयम्। पारणन्तु परदिने तिथ्यन्ते कार्यम्, यतो भविष्ये—'आश्विनस्याऽसिताष्टम्यां याः स्त्रियोऽन्नञ्च भुञ्जते । मृतवत्सा भवेयुस्ता विधवा दुर्भगा ध्रुवम् ॥' इति । एवञ्च यद्युभयदिने प्रदोषव्याप्तिस्तदाऽपरेऽहन्येव, अष्टम्यां भोजने दोषश्रवणात्तदन्ते निशि पारणाऽविधानाच्च । उभयदिने प्रदोषे तदव्याप्तौ उदयगामिन्यामष्टम्यामेव व्रतं, तथाहि तिथिचन्द्रिकायां—'लक्ष्मीव्रतं चाभ्युदिते शशाङ्के यत्राष्टमी चाश्विनकृष्णपक्षे । यत्रोदयं वै कुरुते दिनेशस्तदा भवेज्जीवितपुत्रिका सा ॥' इति ।

वस्तुतस्तु "......या स्त्रियोऽन्नं च भुञ्जते । 'मृतवत्सा भवेयुस्ता विधवा दुर्भगा ध्रुवम् ॥" इति भविष्योक्तवचनस्य वज्रलेपत्वात् पूर्वदिने, रात्रौ (ओंगठनसमये) वा यदा अष्टम्याः योगस्तदारभ्यैव अन्नाऽशनाभावो विधेयः । व्रतारम्भस्तु उपर्युक्तरीत्यैव कर्तव्यः ।

पौत्रादिचिरजीवित्वसकलसुखसौभाग्याऽवैधव्यगोधनधान्यादिसमृद्धिकामनया श्रीजीमूतवाहनपूजनमहङ्करिष्ये।

इति सङ्कल्प्य अक्षतानादाय नमः श्रीजीमूतवाहन इहागच्छ इह सुप्रतिष्ठितो भव। इति प्रतिष्ठाप्य, **आवाहनम्**—नमो देवेश भक्तिसुलभ सर्वावरणसंयुत। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरो भव॥ **पुष्पासनम्**—कार्तस्वरमयं दिव्यं नानागुणसमन्वितम्। अनेकशक्तिसंयुक्तमासनं प्रतिगृह्यताम्॥ इदं पुष्पासनं श्रीजीमूतवाहनाय नमः। **पाद्यम्**—यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः। तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं देवाय कल्पये॥ इदं पाद्यम्०। **अर्घ्यम्**—तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्। तापत्रयविनिर्मुक्त्यै तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम्॥ इदमर्घ्यम्०। **आचमनीयम्**—कर्पूरवासितं तोयं मन्दाकिन्याः समाहृतम्। आचम्यतां दयानाथ मया दत्तं हि भक्तितः॥ इदम् आचमनीयम्०। **स्नानम्**—गङ्गा च यमुना चैव नर्मदा च सरस्वती। कृष्णा च गोमती वेणी क्षिप्रा सिन्धुस्तथैव च। तापी पयोष्णी रेवा च ताभ्यः स्नानार्थमाहृतम्। तोयमेतत् सुखस्पर्शं स्नानीयं प्रतिगृह्यताम्। इदं स्नानीयं जलम्०। **पञ्चामृतम्**—पयो दधि घृतं चैव मधुशर्करयाऽन्वितम्। पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥ इदं पञ्चामृतम्० (अथवा पञ्चामृतस्थानीयं जलम्)। **शुद्धोदकम्**—नदीनां चैव सरसां मयानीतं जलं शुभम्। अनेन त्वं कुरु स्नानं मन्त्रैर्वारुणकैः शुभैः॥ इदं शुद्धोदकम्०। स्नानाङ्गमाचमनीयम्। **वस्त्रम्**—तन्तुसन्तानसंयुक्तं कलाकौशेयकल्पितम्। पीतवस्त्रयुगं देव कृपया प्रतिगृह्यताम्॥ इदं पीतवस्त्रं बृहस्पतिदैवतम्०। वस्त्राङ्गमाचमनीयम्। **यज्ञोपवीतम्**—यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोक्तं सचराचरम्। यज्ञरूपाय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये॥ इदं यज्ञोपवीतं बृहस्पतिदैवतम्०। यज्ञोपवीताङ्गमाचमनीयम्। **चन्दनम्**—श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्। आघ्रेयः सर्वदेवानां प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्॥ इदं श्रीखण्डचन्दनम्०। **अक्षताः**—अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुंकुमाक्ताः सुशोभनाः। मया निवेदिता भक्त्या तान् गृहाण सुरेश्वर॥ इमे अक्षताः०। **पुष्पाणि**—सुगन्धीनि सुपुष्पाणि देशकालोद्भवानि च।

मयानीतानि पूजार्थं प्रीत्या स्वीकुरु तानि मे ॥ एतानि पुष्पाणि० । पुष्पमाल्यम्—कानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम् । प्रयच्छामि च हे देव गृहाण पुरुषोत्तम् ॥ इदं पुष्पमाल्यम्० । तुलसीपत्राणि—तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम् । भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥ एतानि तुलसीपत्राणि० । एतानि दूर्वादलानि० । धूपः—वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः । आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष धूपः० । दीपः—आज्यं सर्वतिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया । दीपं गृहाण हे देव त्रैलोक्यतिमिरापह ॥ एष दीपः० । नैवेद्यम्—अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् । मया निवेदितं देव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ एनानि नानाविधफलशष्कुलीपोलिकातालफलयुतपीतवस्त्राच्छादितसप्तडल्लकानि नमो जीमूतवाहनाय नमः । एतानि वंशप्रत्राणि नमो जीमूतवाहनाय नमः । आचमनीयम्—सर्वपापहारं दिव्यं गाङ्गेयं निर्मलं जलम् । आचमनीयं मया दत्तं गृहाण पुरुषोत्तम । इदमाचमनीयम्० । ताम्बूलम्—पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् । कपूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं ताम्बूलम्० । भूषणार्थं द्रव्यम्—काञ्चनं रजतोपेतं नानारत्नसमन्वितम् । भूषणार्थं मया दत्तं गृहाण लोकपूजित ॥ इदं भूषणार्थं द्रव्यम् । पुष्पाञ्जलिः—अभीष्टसिद्धिदं मे देहि शरणागतवत्सल । भक्त्या समर्पये तुभ्यं सर्वमावरणार्चनम् ॥ एष पुष्पाञ्जलिः नमो जीमूतवाहनाय नमः ।

अथाऽङ्गदेवतापूजनम्—

यथा—नमः चिह्लि इहागच्छ इह तिष्ठ । एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घ्यः चिह्लयै नमः । इदमनुलेपनम्० । इदं सिन्धूराभरणम्० । इदमक्षतम्० । इदं पुष्पम्० । एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयथाभागनैवेद्यादीनि० । एष पुष्पाञ्जलिः० । ततः—शृगालि इहागच्छ इह तिष्ठ । एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घ्यः शृगाल्यै नमः । इदमनुलेपनम्० । इदं

सिन्दूराभरणम्०। इदं पुष्पम्०। इतमक्षतम्०। एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयथाभागनैवेद्यादीनि०। एष पुष्पाञ्जलि०। ततः नमः पर्कटीवृक्ष इहागच्छ इह तिष्ठ। एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घ्यः पर्कटीवृक्षाय नमः। इदमनुलेपनम्०। इदमक्षतम्०। इदं पुष्पम्०। एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयथाभागनैवेद्यादीनि०। एष पुष्पाञ्जलिः०। ततः नमः वाहूट्टार इहागच्छ इह तिष्ठ। एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घ्यः बाहूट्टाराय नमः इदमनुलेपनं बाहूट्टाराय नमः। इदमक्षतम्०। इदं पुष्पम्०। एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयथाभागनैवेद्यादीनि०। एष पुष्पाञ्जलिः०। ततः नमो मरुस्थल इहागच्छ इह तिष्ठ। एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घ्यः मरुस्थलाय नमः। इदमनुलेपनम्०। इदमक्षतम्०। इदं पुष्पम्०। एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयथाभागनैवेद्यादीनि०। एष पुष्पाञ्जलिः मरुस्थलाय नमः। इति सर्वान् सम्पूज्य प्रणम्य कथां शृणुयात्।

अथ जीमूतवाहनव्रतकथा

वैशम्पायन उवाच—कैलासशिखरे रम्ये गौरी पृच्छति शङ्करम्। यदहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वं वद महेश्वर॥ पार्वत्युवाच—व्रतेन केन तपसा पूजया नियमेन वा। सौभाग्यवत्यो जायन्ते स्त्रियो जीवितपुत्रिकाः॥ शङ्कर उवाच—आश्विने कृष्णपक्षे तु या भवेदष्टमी तिथिः। शालिवाहनराजस्य पुत्रं जीमूतवाहनम्॥ पूजयन्ति स्त्रियस्तस्यां पुत्रकामाः सहर्षिताः। देवं दर्भमयं कृत्वा स्थापयेद्वारिभाजने॥ पीतलोहितवर्णैश्च कार्पासास्थिभिरेव च। नानावर्णपताकाभिर्गन्धपुष्पादिभिस्तथा॥ प्रकल्प्य प्राङ्गणे कोष्ठं कृत्वा पुष्करिणीं ततः। तत्रैव पर्कटीशाखा धर्तव्या जलसन्निधौ॥ चिल्ली ऋगाली कर्तव्या गोमयैर्मृत्तिकादिभिः। ते उभे तत्र धर्तव्ये सिन्दूरारुणमस्तके॥ यथोपचारैः

पूजाभिस्तं देवं विप्ररूपिणम् । पूजयित्वा कथामेनां याः श्रृण्वन्ति वराः स्त्रियः ॥ उपवासं प्रकुर्वन्ति ताः स्युः पूर्णमनोरथाः । वंशपत्रेण कर्तव्या पूजा वंशविवृद्धये ॥ अस्ति सागरसान्निध्ये शर्मदा नर्मदा नदी । नगर्यां काञ्चनावत्यां तत्तीरे दक्षिणापथे ॥ तत्रैवाखिलभूपाल जेता पार्थ इवापरः ॥ नाम्ना मलयकेतुस्तु महाराजोऽखिलेश्वरः ॥ नाना-पदातिसामग्री-मातङ्गतुरगायुधः । नर्मदापश्चिमे कूले बाहूट्टारमरुस्थलम् ॥ तत्रास्ति पर्कटीघूघूर्महती कोटरान्विता । तस्याञ्चावसतिस्मैका श्रृगाली कोटरे चिरात् ॥ चिल्ली चैकाग्रशाखायां मैत्रमासीत् परन्तयोः । कृष्णाष्टम्यामिषे चैतन्नगराधिनिवासिनाम् ॥ योषितः पूजयन्ति स्म शालिवाहनपुत्रकम् । जीमूतवाहनं जीवत्पुत्रकामाः सहर्षिताः ॥ शुश्रुवुस्ताः कथां जग्मुः स्वं स्वं गृहमतः परम् । शिवा चिल्ली तथा चक्रे यद्यदाचरितं स्त्रिया ॥ दैवात्तद्दिनसन्ध्यायां तन्नगर्यां चिरस्थितः । दन्ताश्रेष्ठिज्येष्ठपुत्रो लोकान्तरमपद्यत ॥ तत्रैव नर्मदातीरे दत्त्वाग्निं तस्य बान्धवाः । दत्त्वा तोयाञ्जलिं सर्वं स्वं स्वं धाम समागताः । ततो निशीथे संवर्षद् घनगर्जभयङ्करे । अतिक्षुधापीडितया श्रृगाल्याऽभिहिता च सा ॥ चिल्ली त्वमिति जागर्षि तां वै प्रोवाच चिल्लिका । स्निग्धे श्रृगालि जागर्मि भूयो भूयो यथाऽवदत् ॥ तथैवोत्तरमातिष्ठ चिल्ली विस्मयमागता । किमर्थमहमाहूता बभाषे नैव किञ्चन ॥ तदहं निश्चलीभूय परीक्षे चैतदाशयम् । इति निश्चत्य मनसा सा चिल्ली मौनमादधत् । निद्रायितां हि तां ज्ञात्वा कोटराद् बहिरागता । श्रृगाली नर्मदां गत्वा मुखेन जलमाहरत् ॥ ततश्चिताग्निं निर्वाप्य शवमांसं यथेप्सितम् । भुक्त्वा तु लवशः कृत्वा शेषं कोटरमानयत् ॥ एतत्सकलवृत्तान्तं ज्ञात्वा चिल्ली समागता । ददर्श सा प्रभाते तु संवृत्तेऽभिहिता तया ॥ श्रृगालि पारणाचर्चा क्रियते न त्वया कथम् । स्मृत्वा तु रात्रिचरितमुदासीनमुवाच सा ॥ श्रृगालि सखि कुर्यास्त्वं पारणान्तु मया पुनः । कर्तव्या पारणा द्रव्यैर्योषाभिश्च निवेदितैः ॥ इति श्रुत्वा श्रृगाली तु मांसैः कोटरसंस्थितैः । यथेष्टं कोटरे स्थित्वा चकारालीकपारणाम् ॥ चिल्ली तु योषितादत्तैर्द्रव्यैश्चक्रे च पारणाम् । ततः कालवशाच्चिल्लीश्रृगाल्यौ

मया पुनः। कर्तव्या पा[illegible] निवेदितैः॥ इति [illegible] तु मांसैः कोटरसंस्थितैः। यथेष्ट [illegible] चकारालीकपारणाम्॥ चिल्ली तु योषितादत्तैर्द्रव्यैश्चक्रे च पारणाम्। ततः कालवशाच्चिल्लीश्रृगाल्यौ

तीर्थराजकम्॥ जग्मतुः कामिकं क्षेत्रं चिल्ली कृत्वा तु कामनाम्। महामात्यवरस्येह बुद्धिसेनस्य धीमतः॥ पत्नी चाहं भविष्यामि तत्र प्राणान् स्वयं जहौ। शिवा मलयकेतोश्च महाराजस्य तादृशी॥ महादेवी भविष्यामि कृत्वा चेति मनोरथम्। तत्याज तीर्थराजेऽस्मिन् प्राणान् सा धूर्त्तकामिनी॥ प्रयागमृतिपुण्येन वेदज्ञस्य द्विजन्मनः। गृहे भास्करसंज्ञस्य बभूव जनिरेतयोः॥ ज्येष्ठा शीलवती तत्र कर्पूरावतिकापरा। बभूवतुर्न्नागकन्या-सुरकन्या-समे गुणैः॥ पूर्वा तु बुद्धिसेनस्य त्वपरा वसुधापतेः। भार्या बभूव हर्षेण कृतकृत्ये बभूवतुः॥ अथ शीलवती तेन सप्तपुत्रानजीजनत्। चिरायुषः क्रमादेव पूर्णकामा जहास च॥ कर्पूरावतिका राज्ञी मृतपुत्रातिदुःखिता। क्षीयमाणानुदिवसं वैराग्यं समवाप सा॥ गते वहुतरे काले शीलवत्याः सुताँश्च तान्। सप्तसेवार्थमायातान् स्वरूपैर्मन्मथोपमान्॥ यूनः सङ्ग्रामसीमायां कुमारप्रतिमौजसः। बुद्धौ वृहस्पतिसमान् परनारीसहोदरान्॥ विलोक्य वज्रपातेन ताडिते वापतत्क्षितौ। कर्पूरावतिका कष्टं कष्टमुत्थाय वेश्म च॥ स्वं गत्वा निजपर्यङ्के द्वारमावृत्य साऽस्वपीत्। राजा पप्रच्छ भृत्यान् स्वान् महादेवी न दृश्यते॥ क गता तैः समाख्यातमस्मिन्नेव गृहेऽम्बिका। सुप्तास्तीति समाकर्ण्यं स राजाप्यविशद् गृहम्॥ आह प्रिये समुत्तिष्ठ किमर्थं विजने गृहे। सुप्ता तिष्ठसि मे खेदं ददासि प्रियभाषिणि॥ सा बभाषे सुखेनेति न तुतोष महीपतिः। राज्ञा तु पृच्छ्यमाना सा बभाषे धरणीपतिम्॥ तदोत्तिष्ठामि हे नाथ यथेप्सितमतर्कितम्। करिष्यसि न चेत्त्वं मे गच्छ सुप्तास्मि मा वद॥ इत्युक्तवाँस्तदा राजा त्वदुक्तमहमाचरे। सहसोत्थाय सोवाच सत्यं कुरु महीपते॥ इति श्रुत्वा महाराजः सत्यं चक्रे प्रियोदितम्। तत उत्थाय चालिङ्ग्य नृपतिं समभाषत॥ मद्भगिन्याः सुतानां वै सप्त मूर्ध्नो निकृत्य मे। ददस्वेति यदि प्राणान् ममाभिलषसि प्रिय॥ श्रुत्वा मलयकेतुः स भूमिं कर्णौ च संस्पृशन्। कथं त्वम्भाषसे चैव स्वपुत्रा भगिनीसुताः॥ न मुमोच हठं राज्ञी भगिनीसुतमारणे। राज्ञा तु सत्यभीत्या तद्दारुणं स्वीकृतं महत्॥ राज्ञी तद्वचनं सत्यमाकलय्य महीपतेः। जीमूतवाहनं

देवं प्रपूज्यासीन्महोत्सवा ॥ अथ द्वारि महाराजो यन्त्रिका-चक्रमादधौ । एकस्मिन् दिवसे तेषां राजसेवां चिकीर्षताम् । शिरांसि सप्तचक्रेण चकर्त्त स महीपतिः । दत्त्वा तानि प्रियायै च मनोदुःखमवाप सः ॥ तानि प्रेक्ष्य महादेवी हर्षिता च बभूव सा । प्रक्षाल्य वंशपात्रेषु सप्तसु. स्फीतवस्त्रकैः ॥ आच्छाद्य वायनान् राज्ञी प्रैषयच्चेटिकाकरैः । अथ शीलवती प्रादात्स्नुषाभ्यः सप्तडल्लकान् ॥ स्वं स्वं च नाथमित्युक्त्वा भोजयिष्यथ हे स्नुषाः । अथ शीलवतीपुत्रवृत्तं जीमूतवाहनः ॥ ज्ञात्वा झटिति चोत्थाय सेवां कृत्वाऽचलद् गृहम् । द्वारमागत्य चालोक्य कबन्धान् परिखागतान् ॥ बुद्धिसेनसुतानाञ्च चिन्तयामास वै चिरम् । एषां मात्रा शीलवत्या चाद्भुतं समुपासितम् ॥ अतः सकरुणो मृद्भिर्घटितानि शिरांसि च । कबन्धेषु नियोज्याशु पीयूषैरभ्यषेचयत् ॥ कर्पूरावतिका यानि शिरांसि प्रैषयत्स्वयम् । शीलवत्यै तान्यभूवन् सप्ततालफलानि वै ॥ जीमूतस्तु तथा कृत्वा स्ववासमगमत्तदा । ततस्तदनुभावेन जीविताः सप्तपूत्रकाः ॥ आनन्दहृष्टपुष्टाङ्गाः सुप्तवत् सहसोत्थिताः । स्वं स्वं घोटकमारुह्य स्वं गृहं चलितास्तथा ॥ तत्र गत्वा तु ते सर्वे स्नात्वा स्वं स्वं गृहं ययुः । एतेभ्यः स्वस्वभार्याभिः प्रत्येकं सप्तडल्लकाः ॥ ददिरे तैस्तु मूर्द्धानः फलीभूताः प्रभावतः । जीमूतवाहनस्यैव भक्षितास्तु यथेप्सितम् ॥ ततो मन्त्रिप्रवीरस्य बुद्धिसेनस्य वेश्मनि । पुत्रवृत्तान्तमावेत्तुं कर्णं दत्त्वा स्थिता सती ॥ राज्ञी नाक्रन्दमश्रौषीत्तदा ज्ञातुं स्वचेटिकाम् । प्रेषयामास तद्वेश्म जायते क्रन्दनं न वा ॥ तत आगत्य दास्या तु तद्वेश्म विनिवेदितम् । सहर्षं सकलं दृष्ट्वा नृत्यगीतसमाकुलम् ॥ इति श्रुत्वा महादेवी बभूवा तीव पीडता । निःश्वस्य क्रुद्धनागीव मुमूर्च्छ च मुहुर्मुहुः ॥ ततः प्रभाते सञ्जाते पुनश्शीलवतीसुतान् । सेवार्थमागतान् दृष्ट्वा राजानं प्रत्युवाच सा ॥ राज्ञीति रजँश्चौराणां छित्त्वा सप्तशिरांसि मे । दत्तानि श्रीमता नाथ मुग्धाहं किं प्रतारिता ॥ अन्यथा कथमेते वै सेवार्यं समुपागताः । राजा च विस्मयाविष्टो नोचे क्षणमधोमुखः ॥ कथमुक्तं त्वया देवि त्वदग्रेण मया पुनः । छिन्नानि मस्तकान्येषां कथमेवं प्रभाषसे ॥ ममापि कौतुकं जातमतः कारणमुच्यते । त्वद्भगिन्या

कृतं पूर्वं तदनुभावतः ॥ इह जन्मनि सा जीवत्सप्तपुत्रा शुभान्विता । न त्वया तद्व्रतं चीर्णमथवा तदुपेक्षितम् ॥ तेन त्वं पुत्रशोकेन पीडिता वर्त्तसे प्रिये । इति तद्वचनं श्रुत्वा नोचे वाञ्चिदुदासिवत् ॥ ततो मन्त्रिप्रवीरेण बुद्धिसेनेन धीमता । स्वयं तत्पुत्रवृत्तान्तं शीलवत्यै न्यवेदयत् ॥ अथ संवत्सरेऽतीते तद्व्रते समुपस्थिते । पारणादिवसे राज्ञी शीलवत्यै न्यवेदयत् ॥ इति मातस्त्वया साकं पारणाद्य विधीयते । दासीमुखेन सन्दिष्टां तां वाचं साऽवमन्यत ॥ महामात्यस्य च वधूः किञ्चिदूचे तदप्रियम् । महादेव्या समं चेटि पारणा नैव युज्यते ॥ इति चेटीमुखाच्छ्रुत्वा रोषाद्विह्वदया सती । दण्डिकां सा समारुह्य ययौ शीलवतीगृहम् ॥ ततः शीलवती देव्याश्चरणौ शीतवारिभिः । प्रक्षाल्याञ्चलवस्त्रेण सम्प्रोक्ष्य स्फीतचामरैः ॥ वीजयामास तां देवीं पप्रच्छ कुशलं शनैः । ततो राज्ञी च तामूचे भगिनीञ्च मया सह ॥ पारणां कुरु यातिस्म पारणासमयः खलु । ततः शीलवती प्राह विचार्य्यं च पुनः पुनः ॥ कर्पूरावति राज्यस्य भोगं कुरु हठं त्यज । राज्ञी निवेदयामास भगिन्यै सा मुहुर्मुहुः ॥ अद्य त्वया समं मातः पारणा मम नान्यथा । भूयो भूयस्तथैवोक्ता शीलवत्या न चात्यजत् ॥ हठं शीलवती तस्यास्ततो ज्ञात्वा सुनिश्चयम् । पारणाद्रव्यमादाय करे धृत्वा तया ययौ ॥ नर्मदातीरमासाद्य महादेवीमुवाच सा । आलिङ्ग्य क्क गृहं त्यक्त्वा राज्यभोगं कुरु प्रिये ॥ शमञ्च भविता राज्ञी शीलवत्यै तदाह सा । ततः शीलवती राज्ञी सुस्नाता नर्मदाम्भसि ॥ अथ शीलवती देवान् नमस्कृत्य दिशांपतीन् । किं पूर्वजन्मवृत्तान्तं न त्वं स्मरसि पश्य तत् ॥ पूर्वजन्मश्शृगाली त्वं चिल्ली चाहं विहङ्गमा । एषा सा नर्मदा वाहूद्वार एतन्मरुस्थलम् ॥ सा घूघूपर्कटी चैतत्कोटरे तव संस्थितिः । एतस्याः शिखरे नीडं ममापि नृपनन्दिनि ॥ एकदा नगरस्त्रीभिः सहावाभ्यां कृतं व्रतम् । जीमूतवाहनस्येह पूजनञ्चोपवासकम् ॥ कथां श्रुत्वाऽथ ताः सर्वाः स्वां वसतिमाययुः । आवामपि च तत्सायं वणिक्कश्चिन्मृतः स्वयम् ॥ तस्मै वह्निञ्च दत्त्वा स्वं गतास्तद्वान्धवा गृहम् । ततोऽर्द्धरात्रे सम्भूते मामाह त्वं

शिवात्मिका ॥ चिल्लि जार्गापि शश्वद्वै सखि जार्गर्मि किं वद। वारं वारं त्वया चोक्तं तथैवोत्तरितं मया ॥ ततस्त्वच्चरितं ज्ञातुं मया निद्रा विभाविता। तथा भूतां तु मां ज्ञात्वा विनिस्सृत्य च कोटरात् ॥ मुखेनानीय पानीयं चितां निर्वाप्य तत्पलम्। भुक्त्वा यथेष्टमन्ते चाऽवशिष्टं कोटरान्तरे ॥ रक्षितं शवमांसं यत् यदस्थ्यत्यत्र तत्स्थले। दर्शयामास सा शीलवती राज्ञीमनिन्दिताम् ॥ अनेन व्रतभङ्गेन भगिनि त्वं तथाऽभवः। मया न तद्व्रतं त्यक्तं तस्मान्मे चिरजीवनी ॥ सन्ततिः सुखिनी चाहं न च स्वामिनि योगिनी। इति प्राग्जन्मवृत्तान्तं स्मारिता नृपकामिनी ॥ तिष्ठन्ती तत्र तत्याज निःश्वस्य स्वं कलेवरम्। ततः शीलवती नृत्य-गीतवाद्यैः सुहर्षिता ॥ आजगाम निजं धाम स्वामिपुत्रादिशोभितम्। तच्छ्रुत्वा नृपतिस्तत्र विललाप मुमोह च ॥ वृद्धब्राह्मणवाक्येन कष्टमुत्थाय भूपितः। स्नात्वा क्रियां शमं चक्रे प्रियायाः पारलौकिकीम्। तत्प्रीत्या द्विजमुख्येभ्यो ददौ बहुविधं धनम्। राज्यचिन्तां ततश्चक्रे वशी मन्त्रिसमन्वितः ॥ ईश्वर उवाच ॥ अधुनापि च या योषिद्विधिवत्तं प्रपूजयेत्। जीमूतवाहनं देवि चोपवाससमन्वितम् ॥ कथां श्रुत्वा तु विप्राय दक्षिणां प्रतिपादयेत्। इह भोगानवाप्यैव जीविपुत्रा शुभान्विता ॥ अन्ते च भजते देवि विष्णुलोकं सनातनम् ॥

इति श्रीभविष्यपुराणे हरगौरीसंवादे श्रीजीमूतवाहनव्रतकथा समाप्ता।

अथ विसर्जनम्

तत्र प्रथममार्तिक्यम्—चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च। त्वमेव सर्वंज्योतींषि आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदमार्तिक्यं श्रीजीमूतवाहनादिसर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। प्रार्थना—देवदेव जगन्नाथ भक्तानां कार्यकारक। त्वत्प्रसादमहं याचे शीघ्रं कार्यप्रदो भव ॥ यद्भक्त्या देवदेवेश मया व्रतमिदं कृतम्। न्यूनं वाऽथ क्रियाहीनं परिपूर्णं तदस्तु मे ॥

ततः प्रदक्षिणा—यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च । तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण ! पदे पदे ॥ इति वारचतुष्टयं प्रदक्षिणीकृत्य विसर्जयेदनेन—यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । ष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ नमः श्रीजीमूतवाहनादिपूजितदेवताः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत । इति सर्वान् विसृज्य कर्मदक्षिणां कुर्यात् । कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽद्य कृतैतत् श्रीजीमूतवाहनपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद् द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे ॥ इत्युत्सृज्य ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत् ।

इति श्रीजीमूतवाहनपूजनविधिः ।

अथ आश्विनकृष्णाष्टम्यां महालक्ष्मीपूजा

(षोडशोपचार-महालक्ष्मीपूजनं द्वितीयभागे २७७ पृष्ठे द्रष्टम्)

अश्विनकृष्णाष्टम्यां (१) चन्द्रोदये सति कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य श्वेतासने उपविश्य श्वेतपत्रकमष्टदलं विलिखेत् । ततोष्टदलकर्णिकायां पुष्पहस्तेन—ॐ कर्पूरधवलाङ्गी च सर्वसम्पत्तिदायिनीम् । शुभ्रवस्त्रपरीधानां मुक्ताभरणभूषिताम् । पङ्कजासनसंस्थानां स्मेराननसरोरुहाम् । शारदेन्दुकलाकान्ति मृगनेत्रां चतुर्भुजाम् ॥ अभितो गजयुग्मेन सिच्यमानां घटाम्बुना ॥ इति ध्यात्वा—पुष्पाक्षतमादाय—ॐ महालक्ष्मि

---

(१) भाद्रशुक्लाष्टमीमारभ्याश्विनकृष्णाष्ठमीं यावत् महालक्ष्मीव्रतमिति भाद्रकृत्ये प्रतिपादितम् । इयं चाष्ठमी चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या तत्रैव पूजोक्तेः । तथाहि तिथिचन्द्रिकायां पक्षधरमिश्राः—'लक्ष्मीव्रतञ्चाऽभ्युदिते शशाङ्के यत्राष्टमी चाश्विनकृष्णपक्षे' इति । परदिने चन्द्रोदयादूर्ध्वं त्रिमुहूर्तव्यापित्वे परैव, अन्यया पूर्वैव, तथाहि स्मृतिः—'पूर्वा वा परविद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदये सदा । त्रिमूहूर्ताऽपि सम्पूज्या परतश्चोर्ध्वगामिनी ॥' इति ।

समागच्छ पद्मनाभपदादिह। पञ्चोपचारपूजेयं त्वदर्थन्देवि संभृता। इत्यनेन ॐ श्रीमहालक्ष्मि इहागच्छ। इत्यावाह्य—ॐ आलयं ते विकसितं कमलं कमलालये। अमले कमलेऽस्मिन् त्वं स्थिर्तिं मत्कृपया कुरु। इत्यनेन ॐ श्रीमहालक्ष्मि इह तिष्ठ इति प्रतिष्ठापयेत्। ततः—ॐ गङ्गादिसलिलाधारं तीर्थमन्त्राभिमन्त्रितम्। दूरयात्राश्रमहरं पाद्यं देवि गृहाण तम्॥ इदं पाद्यम्०। अनेनैव एषोर्ध्यः०। ॐ मलयाचलसंपन्नं नानापन्नगरक्षितम्। शीतलं बहुलामोदं चन्दनं विन्द्यतामिदम्। इदमनुलेपनम्०। इदं सिन्दूराभरणं०। ॐ मिलत्परिमलामोदमत्तालिकुलसंकुलम्। आनन्दिनन्दनोद्यानं पद्मायै कुसुमन्नमः॥ एतानि पुष्पाणि०। इदं माल्यम्०। ॐ तन्तुसन्तानसन्नद्धं कलाकौशलकल्पितम्। सर्वांग ाभरणश्रेष्ठं वसनं परिधीयताम्॥ इदं वस्त्रं बृहस्पतिदै०। ॐ गन्धसंभारसन्नद्धं पृथुवस्तुसमुद्भवम्। सुरासुरनरानन्दं धूपं देवि गृहाण तम्॥ एष धूपः०। ॐ मार्तण्डमण्डलाखण्डचन्द्रविम्वाग्नितेजसाम्। निधानं देवि दीपोयं निर्मितस्तव भक्तितः॥ एष दीपः०। ॐ देवतालयपातालभूतलाधारधान्यजम्। षोडशाकारसंभारं नैवेद्यं तन्नमः श्रियै॥ एतानि नानाविधनैवेद्यानि०। ॐ स्नानादिकं विधायापि यतः शुद्धिरवाप्यते। तदेतदाचयनीयम्महालक्ष्मि विधीयताम्। इदमाचमनीयम्०। ॐ पातालतलसंभूतवदनाम्भोजभूषणम्। नानापुष्पसमाकीर्णं ताम्बूलं देवि ते नमः। इदं ताम्बूलम्०। एष पुष्पाञ्जलिः ॐ श्रीमहालक्ष्मै नमः। इति संपूज्य अञ्जलिं बद्ध्वा—ॐ विष्णोर्वक्षसि पद्मे च शङ्खचक्रे तथाम्वरे। लक्ष्मि नित्या यथासि त्वं मम नित्या तथा भव॥ इत्यनेन प्रार्थयेत्। ॐ लक्ष्मि देवि गृहाण त्वं डोरकं यन्मया धृतम्। व्रतं संपूर्णतां यातं कृपा कार्या मयि त्वया। इत्यनेन बाहोर्डोरकमुत्तार्य लक्ष्म्याः पार्श्वे निवेदयेत्॥ ततः भाद्रकृत्योक्तकथां श्रुत्वा प्रणम्य विसर्जयेत्।

इति महालक्ष्मीपूजा समाप्ता।

अथ हस्तार्के खञ्जनदर्शनम्

तत्र मन्त्रः—ओं नीलग्रीवस्वरूपेण सर्वकामफलप्रद । पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्जरीट नमोस्तु ते ॥
त्वं योगयुक्तो मुनिपुत्रकस्त्वमदृश्यतामेषि शिखोद्गमेन । संदृश्यसे प्रावृषि निर्गतायां त्वं खञ्जनाश्चर्यमयो नमस्ते ॥

तद्दर्शनफलम्—अश्वेषु गोषु गजवाजिमहोरगेषु राज्यप्रदः कुशलदः शुचिशाद्वलेषु । भस्मास्थिकेशनखलोमतुषेषु दृष्टो दुःखं ददाति बहुशः खलु खञ्जरीटः ॥ वित्तं ब्रह्मणि कार्यसिद्धिरतुला शक्रे हुताशे भयम्, याम्यामग्निभयं सुरारिकलहो लाभः समुद्रालये । वायव्यां वरवस्त्रमन्नभरणं दिव्याङ्गना चोत्तरे, ऐशान्यां मरणं ध्रुवं निगदितं दिग्लक्षणं खञ्जने ॥

अथ मातृनवमीनिर्णयः

आश्विनकृष्णनवम्याम् (१) अण्वष्टकाश्राद्धं कुर्यात् । अत्र कात्यायनः—अन्वष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम् । पित्रादिमातृमध्ये च तथा मातामहान्तिकम् । ब्रह्माण्डपुराणे—'पितॄणां प्रथमं दद्यान्मातॄणां तदन-

---

(१) इयं नवमी पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या, 'पूर्वाह्णे मातृकं ज्ञेयमि'त्यादि तिथितत्त्वचन्द्रिकायां निर्णीतत्वात् । ('प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्' इति साहचर्यात् प्रातरारभ्य सार्धप्रहरं यावत्पूर्वाह्णम् ।)

कात्यायनः—'अमावास्याव्यतीपाते पौर्णिमान्वष्टकासु च । विद्वान् श्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपाद्यते ॥'

श्राद्धसूत्रे—'सर्वासामेव मातॄणां श्राद्धं कन्यां गते रवौ । नवम्यामेव कर्तव्यं ब्रह्मलब्धवरा च सा ॥'

शातातपः—अन्वष्टकासु वृद्धौ च प्रतिसंवत्सरं तथा । अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥

अन्वष्टकाश्राद्धकर्मण्येव इयमष्टमी पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्या । केवलं तन्निमित्तकब्राह्मणभोजनमात्रे तु मध्याह्नव्यापिन्येवेति

न्तरम्। ततो मातामहादीनामन्वष्टक इति क्रमः॥ तथा च प्रथमं पित्रादित्रयाणां, ततो मात्रादितिसृणां, ततो मातामहादित्रयाणामेवं नवपुरुषश्राद्धमन्वष्टकायां भवतीति वेद्यम्।

अथ गजच्छायायोगः

आश्विनकृष्णत्रयोदश्यां मघायुक्तायां हस्तनक्षत्रगते सूर्ये गजच्छाया भवति। तथाहि वायुपुराणे—'हस्ते सूर्यस्थिते या तु मघायुक्ता त्रयोदशी। तिथिर्वैवस्ती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु॥' अन्यच्च—'कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मघास्विन्दौ करे रविः। यदा तदा गजच्छाया (१) श्राद्धे पुण्यमवाप्यते॥' अत्र वारनियमो नास्ति प्रापकाऽभावात्। दिवस एवैतादृशयोगे गजच्छाया न तु रात्रौ। तथाहि महाभारते—'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन॥' इति।

नव्याः। वस्तुतस्तु केवलं मात्राद्युद्देश्यकं ब्राह्मणभोजनमपि श्राद्धशब्देन अभिधीयते। तथाहि—

हेमाद्रिः—होमश्च पिण्डदानं च तथा ब्राह्मणभोजनम्। श्राद्धशब्दाऽभिधेयं स्यादेकस्मिन्नौपचारिके॥ इति। एवं च मातृनवमीनिमित्तकं केवलं ब्राह्मणभोजनमपि पूर्वाह्णे एव कर्तव्यमिति तत्त्वविदः। व्यवहारोप्ययमेव प्रायः।

(१) ज्येष्ठपुत्रवता पिण्डरहितमेव श्राद्धमत्र कर्तव्यम्। मघायां पिण्डदानेन ज्येष्ठः पुत्रो विनश्यतीत्यनिष्टश्रवणात्। ज्येष्ठपदमत्र सर्वज्येष्ठपरमिति 'रसमाला।

अत्र मधुघृतयुतपायसेन श्राद्धम् तथाहि पितृणामुक्तिः—

'सोऽस्माकं न कुले जायाद्यो न दद्यात् त्रयोदशीम्। पायसं मधुसर्पिर्भ्यां वर्षासु च मघासु च॥' इति।

शारदीय-दुर्गापूजानिर्णयः

(१) शारदीय-दुर्गापूजा-प्रशंसा

भविष्ये—एकभक्तेन नक्तेन तथैवाऽयाचितेन च । पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे ॥
गृहे गृहे शक्तिपरे ग्रामे ग्रामे वने वने । स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः ॥
वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुक्तैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः । सम्यक्-कल्पोदितां पूजां यदि कर्तुं न शक्नुयात् ॥
उपचाराँस्तथा दातुं पञ्चैतान् वितरेत्तदा । गन्धं पुष्पं च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च ॥
अभावे पुष्प-तोयाभ्यां तदभावे तु भक्तितः ।

(२) चण्डिकार्चने प्रतिपत्तिथिनिर्णयः—

नन्दिकेश्वरः—भगवत्याः प्रवेशादि-विसर्गान्ताश्च याः क्रियाः । रवेरुदयगामिन्यां ताः सर्वाः कारयेद् बुधः ॥
तिथिचिन्ता०—अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने । मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता ॥

(दिनमानस्य पञ्चदशो विभागो मुहूर्तः, तेनाऽन्यूना मुहूर्तमात्रेत्यर्थः । (मुहूर्तं घटिकाद्वयमेकं वेति राद्धान्तः । तन्न्यूनत्वे तिथिमलत्वे च त्याज्या । तथा हि—

स्मृतिः—षष्टिदण्डात्मिकायाश्च · ·तिथेर्निष्कमणे [illegible] परे । अकर्मण्ये तिथिमलं विद्यादेकादशीं विना ॥
देवीपुराणे—आद्या षोडशनाडीस्तु लब्ध्वा यः कुरुते नरः । कलशस्थापनं तत्र ह्यरिष्टं जायते ध्रुवम् ॥
प्रातरावाहयेद् देवीं प्रातरेव प्रवेशयेत् । प्रातः प्रातश्च सम्पूज्य प्रातरेव विसर्जयेत् ॥

यदा क्षयवशाद् अमायुक्तैव प्रतिपद् तथा अमायुक्तैव ग्राह्या । तथा हि—

लल्लस्मृतिः—तिथिः शरीरं तिथिरेव कारणम् । तिथिः प्रमाणं तिथिरेव साधनम् ॥

(३) मूलनक्षत्रे महादेव्याः (सरस्वत्याः) स्थापनम्—

देवीपुराणे—मूलेषु स्थापनं देव्याः पूर्वाषाढासु पूजनम् । उत्तरासु बलि दद्याच्छ्रवणेन (१) विसर्जयेत् ॥
रुद्रयामले—मूलऋक्षे सुराधीश पूजनीया सरस्वती । पूजयेत् प्रत्यहं देव यावद् वैष्णवमृक्षकम् ॥
नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन । पुस्तके स्थापिते देव विद्याकामो द्विजोत्तमः ॥

(४) महाष्टमी-व्रतनिर्णयः—

देवलः—व्रतोपवासनियमे घटिकैकापि या भवेत् । सा तिथिस्तद्दिने पूज्या विपरीता तु पैतृके ॥
स्मृतिसंग्रहे विशेषः—शरन्महाष्टमी पूज्या नवमीसंयुता सदा । सप्तमीसंयुता नित्यं शोकसन्तापकारिणी ॥
ति०नि० वाचस्पतिः—सप्तमी-शल्यसंयुक्तां मोहादज्ञानतोऽपि वा । महाष्टमी प्रकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥
सप्तमी कलया यत्र परतश्चाष्टमी भवेत् । तेन शल्यमिदं प्रोक्तं पुत्रपौत्रक्षयप्रदम् ॥
देवीपुराणे—सप्तमी-वेधसंयुक्ता यैः कृता तु महाष्टमी । पुत्रदारधनैर्हीना रटन्तीह पिशाचवत् ॥
भुवनप्रदीपे—एकस्यैव तु खण्डस्य समस्ते भास्करोदयः । त्रिमुहूर्ते भवेत् पूर्णः स कालो वेधसंज्ञकः ॥
जाबालिः—यदा सूर्योदये न स्यादष्टमी च परेऽहनि । तदाऽष्टमी प्रकुर्वीत सप्तम्या सहितां नृप ॥
निर्णयामृते—उत्तरास्तिथयो यत्र क्षयं यान्ति नराधिप । तदा पूर्वाऽष्टमी कुर्यादन्यथा त्वशुभं भवेत् ॥

---

(१) अन्यच्च—'मूलेनावाहयेद् देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् ।' श्रवणस्य आद्यपादे देवीविर्सनं, तथाहि—
पुराणे—आदिभागो निशायां तु श्रवणस्य यदा मवेत् । सम्प्रेषणं तदा देव्या दशभ्यां च महोत्सवः ।

(५) महाष्टम्यां निशापूजानिर्णयः—

समयप्रदीपे—रात्रिकृत्येषु सर्वेषु रात्रियोगः प्रशस्यते। दिवाकृत्ये दिवायोगो भास्करोदयसङ्गतः॥
स्कान्दे—अष्टमीयुक्तकाले तु निशार्धे परमेश्वरीम्। समभ्यर्च्य बलिं दद्यात् सर्वाभीष्टफलाप्तये॥
कृत्यमहार्णवे—पूर्वेद्युरपरेद्युश्चेन्निशीथव्यापिनी तिथिः। परेद्युरेव सा ग्राह्याऽष्टमी न सप्तमीयुता॥
अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता। अतीव सा प्रशस्ता स्याद् देव्याः पूजनकर्मणि॥

यत्र पूर्वदिने एव महानिशाव्यापिनी अष्टमी, तत्र सप्तमीयुतैव ग्राह्या तथाहि विश्वरूपनिबन्धे—

भद्रायां भद्रकाल्याश्च मध्ये स्यादर्चनक्रिया। तस्माद् वै सप्तमीविद्धा कार्या दुर्गाष्टमी बुधैः॥
आश्विनस्य सिताऽष्टम्यामर्धरात्रे तु पार्वती। भद्रकाली समुत्पन्ना पूर्वाषाढासमायुता॥
तत्राऽष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी॥
महाष्टम्याश्विने मासि शुक्ला कल्याणकारिणी। सप्तम्या संयुता कार्या मूलेन तु विशेषतः॥
महाष्टम्यां भगवती भद्रायामपि पूजिता। ददाति चायुरारोग्यं यतो भद्रास्वरूपिणी॥

उभयदिने महानिशिथव्यापिन्यभावे परदिने एव। तथाहि योगिनीतन्त्रे—

उभयत्र दिने न स्यान्निशीथव्यापिनी यदा। तथा परैव संग्राह्या रवेरुदयगामिनी॥

(६) महानवमी-व्रतनिर्णयः—

ब्रह्मवैवर्ते—अष्टम्या नवमीविद्धा कर्तव्या फलकांक्षिभिः। न कुर्यान्नवमीं तात दशम्यां तु कदाचन॥
पाद्मे—श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशिनी। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्॥

दुर्गापूजासु मूलादिनक्षत्रसंयुता नवमी अतिप्रशस्ता, तथाहि—

भविष्ये—अश्वयुक् शुक्लपक्षे तु अष्टमी मूलसंयुता। सा महानवमी नाम त्रैलोक्येऽपि सुदुर्लभा॥
स्कान्दे—दूर्गापूजासु नवमी मूलाद् ऋक्षत्रयान्विता। महती कीर्तिता तस्यां दुर्गा महिषवाहिनी॥
न कुर्यान्नवमी तात दशम्यां तु कदाचन॥

पूर्वेद्युः पूर्वाह्णे मध्याह्ने अपराह्णे वा मूलादिनक्षत्रसमन्वितायां नवम्यां सत्यां परेद्युः दशमीविद्धां विहितनक्षत्ररहितां नवमीं न कुर्यात्, तथाहि देवीपुराणेऽपि—

अश्वयुक् शुक्लनवमी मुहूर्तं वा कला यदि। सा तिथिः सकला ज्ञेया लक्ष्मी-विद्या-जयार्थिभिः॥

(७) महानवमी-बलिदाननिर्णयः—

यो॰ तन्त्रे—पूर्वाह्णे ह्यष्टमी चैव मध्याह्ने नवमी तिथिः। उत्तरर्क्ष-समायुक्ता बलिदाने प्रशस्यते (१)॥
दिनद्वयेऽपि चेन्न स्याद् ऋक्षयोगं कथञ्चन। केवलायां नवम्यां तु बलिं दद्यात् तदा (नक्षत्राभावे) परे॥
देवीपु॰—उत्तरेण नवम्यां (२) तु बलिभिः पूजयेत् शिवाम्। योगाऽभावे तिथिर्ग्राह्या देव्याः पूजनकर्मणि॥

---

(१) बलिदाने तु नक्षत्रस्यैवातिप्राशस्त्यमुक्तम्। मूलादिविहितनक्षत्रसमन्वितायामसत्यामेव दशमीविद्धा नवमी ग्रह्येति सर्वनिबन्धस्वरसः। अत एव उक्तमग्रे "दिनद्वयेऽपि चेन्न स्यात्……"

(२) मूलादिविहितनक्षत्रसमन्वितायां सत्याम् एव 'उत्तरेण नवम्यामि'ति भावः। अत उक्तमत्रैव अग्रे 'योगाऽभावे' इति। पूर्वदिने नक्षत्रयोगाभवे इति भावः। पूर्वदिने मूलादिविहितनक्षत्राऽभावे एव परदिने दशमीविद्धा नवमी ग्राह्येत्यर्थः। तदुक्तं मूले (पृ॰ १२३)—'सौरधर्मे—'सूर्योदये परा रिक्ता…… ……'इति।

सौरधर्मे—सूर्योदये परा रिक्ता पूर्णा स्यादपरा यदि। बलिदानं प्रकर्तव्यं तत्र देशे शुभं भवेत् ॥
यत्तु—अत्राऽपराह्णिके काले बलिदानं प्रशस्यते। दशमीं वर्जयेत् तत्र नात्र कार्या विचारणा ॥

इति ब्रह्मवैवर्त्तोक्त्या 'बलिदानविधिस्त्वपराह्णे प्रशस्तः' इत्युक्तं तस्याऽयं भावः—'अत्राऽपराह्णिके'' इत्यत्र 'अत्र' पदेन "उत्तरादिविहितनक्षत्रयुक्ते काले एव'' प्रशस्तः। अतएव उक्तं मूले योगिनीतन्त्रे—पूर्वाह्णे ····बलिदाने प्रशस्यते ॥'

देवीपुराणेऽपि—अश्वयुक् शुक्लनवमी मुहूर्तं वा कला यदि। सा तिथिः सकला ज्ञेया लक्ष्मी-विद्या-जयार्थिभिः ॥

(अत्र सुहृद्वर श्री प० गङ्गाधरझामहोदयैस्तु स्वरचित–'महानवमीव्यवस्थासारसमुच्चय' नामकनिबन्धे उत्तम-मध्यम-अधम-भेदेन महानवमीप्रयुक्तबलिदानस्य भेदत्रयं, प्रभूततरबलिदान-पूजाङ्गबलिदानयोः पार्थक्यं च बहुशः प्रतिपादितमिति तत्रैव द्रष्टव्यम्।)

(८) विजयादशमी-निर्णयः—

नारदः—सूर्योदये यदा राजन् दृश्यते दशमीतिथिः। आश्विने मासि शुक्ले तु विजयां तां विदुर्बुधाः ॥
हेमाद्रौ—उदये दशमी किञ्चित् सम्पूर्णैकादशी यदि। श्रवणर्क्षं यदा काले सा तिथिर्विजयाऽभिधा ॥
नन्दिकेश्वरः—प्रातरावाहयेद् देवीं प्रातरेव प्रवेशयेत्। ततः प्रातश्च सम्पूज्य प्रातरेव विसर्जयेत् ॥
व्यासः—व्रतोपवास-दानादौ घटिकैका यदा भवेत्। तामेव तिथिमाश्रित्य कुर्यात् कर्मण्यतन्द्रितः ॥
ज्योतिर्निबन्धे—ईषत् सन्ध्यामतिक्रान्तः किञ्चिदुद्भिन्नतारकः। विजयो नाम कालोऽयं सर्वकार्यासिद्धिदः ॥
कश्यपः—श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः। उल्लंघयेयुः सीमान्तं तद्दिनर्क्षे ततो नरः ॥

(९) विजयादशम्यामपराजितापूजानिर्णयः—

घटिकामात्रे दशमीयुक्तकाले स्वल्पविधिनाऽप्यपराजिता पूजा कार्या, न त्वेकादश्याम्। तथा हि—श्रवणर्क्षं-

संमोपेता भास्करोदयगामिनी । तत्राऽल्पार्चां विधायैव प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ तत्रोदयगामिनी त्रिमुहूर्तव्यापिनी ज्ञेया । तथा च व्यासः—एकस्यैव तु खण्डस्य समस्ते भास्करोदयः । त्रिमुहूर्ते भवेत् पूर्णः स कालो वेदसंज्ञकः ॥ यदि परदिने घटिकान्यूना दशमी चेत्तदा पूर्वदिने नवमीविद्धायां दशम्यामेवाऽपराजितापूजा कार्या । तदुक्तं—घटिकातो यदा न्यूना दशमी स्यात् परेऽहनि । पूर्वेद्युस्तु तदा देवी पूजयित्वा विसर्जयेत् ॥ दशम्यां च बली राजा पूजयित्वाऽपराजिताम् । दशदिक्षु मनोयोगाद्यात्रां कृत्वाऽथवा नृपः ॥ इति पुराणाद् राजा चेदिमां पूजां कुर्यादित्येकदेशिनः । कश्यपः—श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः । उल्लंघयेयुः सीमान्तं तद्दिनर्क्षे ततो नरः ॥

(१०) मरणाद्याशौचे दुर्गापूजानिर्णयः

विश्वरूपनिबन्धे—आश्विने शुक्लपक्षे तु प्रारब्धे नवरात्रके । शवाशौचे समुत्पन्ने क्रिया कार्या कथं बुधैः ॥ सूतके वर्तमाने च तत्रोत्पन्ने सदा बुधैः । देवीपूजा प्रकर्तव्या पशुयज्ञविधानतः ॥ सूतके पूजनं प्रोक्तं दानं चैव विशेषतः । देवीमुद्दिश्य कर्तव्यं तत्र दोषो न विद्यते ॥ आश्विनशुक्लप्रतिपदादि-षष्ठ्यादि-सप्तम्यादि चैकं कर्म, अतश्च तन्मध्ये अशौचपातेऽपि न दोषः । तथा हि विष्णुः—आरब्धे सूतकं न स्यादनारम्भे तु सूतकम् ॥ अत्रारम्भ उक्तो हारीतेन—आरम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतजापयोः । नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥

(११) परकर्तृक-दुर्गासप्तशती-पाठसङ्कल्पः—

ॐ अद्य आश्विने मासि शुक्ले पक्षे अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सपरिवारस्य सर्वबाधाप्रशमन-सकलदुष्कृतनिवृत्ति–दुष्कृतोत्थसमस्तापच्छून्यत्व–दारिद्र्यानुत्पत्तीष्टवियोगराहित्यसार्वदिक–शत्रु–दस्युराजशस्त्रा–ऽनल-तोयौघहेतुक–भयाभाव-महामारीसमुद्भवा-ऽशेषोपसर्ग–त्रिविधोत्पातशमन-सतत-श्रीदुर्गासांनिध्यधन-धान्य-

सुतान्वितत्व—युद्ध–पराक्रमनिर्भयत्वभवन–सकलरिपुक्षयकल्याणोत्पत्ति–स्वकुलानन्द–दारुणग्रहपीडाशान्ति-दुःस्वप्न–सुस्वप्नोत्पत्ति - नृसंघातभेद–मैत्रीकरणा-ऽशेषदुर्वृत्तान्तिक-बहलानि - रक्षोभूत-पिशाचनाशनारोग्यशुभमतित्व–सर्वसंकट-विमुक्ति-स्वावधिर्काहिसादि-दस्युवैरिदूरपलायनकामोऽद्यारभ्य नवमीपर्यन्तं श्रीमार्कण्डेयपुराणान्तर्गत—'मार्कण्डेय उवाच—'सार्वाणः सूर्यतनय' इत्यादि 'सार्वणिर्भविता मनुः' इत्यन्तं देवीमाहात्म्यं ब्राह्मणद्वाराऽहं पाठयिष्ये ।

(१२) स्वकर्तृक-सप्तशती-पाठसंकल्पः—

ॐ अद्य आश्विने मासि शुक्ले पक्षे प्रतिपत्तिथौ अमुगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सकलदुष्कृतिनिवृत्ति–दुष्कृतोत्थसमस्तापच्छून्यत्व - मनोऽभीप्सितसिद्धि-दीर्घायुष्ट्वराजप्रसादपूर्वक - सर्वविधसौमनस्य - सदायुद्ध–विजयकामोऽद्यारभ्य-नवमीपर्यन्तं मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत–'मार्कण्डेय उवाच—सार्वाणः सूर्यतनय' इत्यरभ्य 'सार्वणिर्भविता मनुः' इत्यन्तं देवीमाहात्म्यपाठमहं करिष्ये ।

(१३) मैथिलेतराणां प्रतिज्ञासंकल्पः—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः, नमः परमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय । अद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गतब्रह्मावर्तैकदेशे (अमुक) स्थाने वर्तमाने (अमुक) नामसंवत्सरे (अमुक) हायने महामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमे 'मासे' आश्विनमासे शुक्ले पक्षे प्रतिपत्तिथौ (अमुक) वासरे (अमुक) गोत्रोत्पन्नः (अमुक) शर्माऽहं मम (यजमानपक्षे—अमुक–गोत्रोत्पन्नस्य] अमुकनाम्नो यजमानस्य) सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थम् आयुरारोग्यैश्वर्यादिवृद्ध्यर्थं सर्वदा हर्षविजयकामनासिद्ध्यर्थं श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-देवताप्रीत्यर्थं सर्वापन्निवारणार्थम् (अर्गलाकीलकवचादि-सहितम्) मार्कण्डेयपुराणोक्तं मार्कण्डेय उवाचे'तिपूर्वकसार्वाणः सूर्यतनय इत्यारभ्य सार्वणिः

भविता मनुः ॐ' इत्यन्तं रात्रिसूक्तादि-देवीसूक्तान्तम् आदावन्ते च अष्टोत्तरशतं नवार्णमन्त्रसम्पुटितम् (अमुक-मन्त्रेण सम्पुटितं वा) सप्तशतीस्तवपाठम् अन्ते रहस्यत्रयपठनं च करिष्ये (परकृतपक्षे 'करिष्यामि') इति संकल्प्य—ॐ नमो दैव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ इति पुस्तकपूजनम्।

ततः शापोद्धारमन्त्रं सप्तवारं जपेत्—

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिके देवि शापानुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा।

ततः उत्कीलनमन्त्रं २१ वारं जपेत्—

ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं सप्तशति चण्डिके उत्कीलनं कुरु कुरु स्वाहा ॥

(१४) चण्डीपाठमाहात्म्यम्

वाराहीतन्त्रे—चण्डीपाठफलं देवि शृणुष्व गदतो मम। ग्रहोपशान्त्यै कर्तव्यं पञ्चावृत्तं वरानने ॥ महाभये समुत्पन्ने सप्तावृत्तमुदीरयेत्। अर्कावृत्तेः काम्यसिद्धिर्वैरिहानिश्च जायते ॥ मन्त्रावृत्त्या रिपुर्वश्यस्तथा स्त्री वश्यतामियात्। सौख्यं पञ्चदशावृत्ताच्छ्रियमाप्नोति मानवः ॥ कलावृत्तात् पुत्रपौत्रधनधान्यादिकं विदुः। राज्ञां भीतिविमोक्षाय वैरस्योच्चाटनाय च ॥ कुर्यात् सप्तदशावृत्तं तथाऽष्टादशकं प्रिये। महात्राणविमोक्षाय विंशावृत्तं पठेन्नरः ॥ पञ्चविंशावर्त्तनाच्च भवेद्बन्धविमोक्षणम्। सङ्कटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्सामये तथा ॥ जातिध्वंसे कुलच्छेदे आयुषो नाश आगते। वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये ॥ तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैवातिपातके। कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तं ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ श्रियो वृद्धिश्शतावृत्तादायुर्वृद्धिस्तथा प्रिये। मनसा चिन्तितं देवि सिद्ध्येदष्टोत्तराच्छतात् ॥ शताश्वमेधयज्ञानां फलमाप्नोति सुव्रते। सहस्रावर्त्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा॥

भुक्त्वा मनोरथान् सर्वान् नरो मोक्षममाप्नुयात् । यथाश्वमेधः क्रतुराड् देवानां च यथा हरिः ॥ स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशतीस्तवः । अथवा बहुनोक्तेन किमेतेन वरानने ॥ चण्ड्याः शतावृत्तिपाठात् सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः ॥

(१५) चण्डीपाठविधिः

वाराहीतन्त्रे—न मानसं पठेत् स्तोत्रं (१) वाचिकं तु प्रशस्यते । पुस्तके वाचनं शस्तं शहस्रादधिकं यदि ॥
ततो न्यूनस्य तु भवेद्वाचनं पुस्तकं विना । सकामैः सम्पुटो जाप्यो निष्कामैः सम्पुटं विना ॥
चरितं मध्यमं चैव जपेद्वा चण्डिकाद्वयम् । एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥
चरितार्धं न तु जपेज्जपेच्छिद्रमवाप्नुयात् । यावन्न पूर्यतेऽध्यायस्तावन्न विरमेत् सुधीः ॥
यदि प्रमादादध्याये विरामो भवति प्रिये । पुनरध्यायमारभ्य पठेत् सर्वमुदारधीः ॥
आधारे स्थापयित्वा तु पुस्तकं वाचयेत् सुधीः । हस्ते संस्थापनाद् देवि हन्त्यर्धं हि फलं (२) यतः ॥

* * *

---

(१) शिक्षायाम्—गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा (स्व) लिखितपाठकः अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाऽधमाः ॥
माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः । धैर्यं लयसमर्थश्च षडेते पाठका गुणाः ॥

(२) तिथिचिन्तामणौ प्रतिपदादिनवम्यन्तपाठकस्त्वयम्—

'ऋषिच्छन्दौऽन्वितं न्यस्य पठेत् स्तोत्रं विचक्षणः । स्तोत्रं न दृश्यते यत्र प्रणवं तत्र विन्यसेत् ॥ सर्वत्र पाठो विज्ञेयश्त्वन्यथविफलं भवेत् ॥'

अथ शारदीय-दुर्गापूजापद्धतिः

अथ स्वस्तिवाचनप्रयोगः

ॐ महाकाली–महालक्ष्मी–महासरस्वतीभ्यो नमः । दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यादिप्रामाणिकनिबन्धमनुसृत्य श्रीदुर्गोत्सवविधानस्य (१) प्रयोगो लिख्यते । अथाश्विनशुक्लप्रतिपत्तिथौ स्नातः कृतनित्यक्रियो यजमानः पूजास्थानमागत्य ब्राह्मणद्वारा स्वयं वा स्वस्त्ययनं कुर्यात् । तद्यथा—ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिः नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॐ स्वस्ति नो मिमीतामाश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः । स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना । स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः । बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः । विश्वेदेवा नो ऽअद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये । देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः । स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति । स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो ऽअदिते कृधि । ॐ स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमेमहि । ॐ स्वस्त्ययनं तार्क्ष्यमरिष्टनेमिं महद्भूतं वायसं देवतानाम् । असुरघ्नमिन्द्रसखं समत्सु बृहद्यशोनावमिवारुहेम । ॐ अंहो मुच मांगिरसं गयञ्च स्वस्त्यात्रेयं मनसा च तार्क्ष्यम् । प्रयतपाणिः शरणं प्रपद्यै स्वस्ति सम्बाधेष्वभयं नो ऽअस्तु । ॐ सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे आदित्यं विष्णुं सूर्यं

---

(१) वृहत्सारे—आश्विनस्य सिते पक्षे नानाविधमहोत्सवैः । प्रसादयेयुः श्री दुर्गां चतुर्वर्गफलार्थिनः ।
पुनश्च तत्रैव—शरत्कालीनपूजां ये कर्तारो भक्तिभाविताः । तेषां दारान् सुतान् भोगान् वित्तमारोग्यमुन्नतिम् ।
तुष्टा दास्याम्यहं शम्भो स्वर्लोके वसतिं सदा ॥ (वैष्णवानां शारदीयदुर्गापूजाविधिः अग्रे १८५ पृष्ठे द्रष्टव्यः)

ब्रह्माणं च वृहस्पतिम् । ॐ गणानान्त्वा गणपति॒॑ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपति॒॑ हवामहे व्वसो मम। आहम जानिगर्ब्भधमात्वमजासि गर्ब्भधम् । ॐ अम्बे अम्बिके ऽम्बालिके नमानयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्। ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणा मुम्म इषाण सर्वलोकम्म इषाण। ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्व्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि। यतो यतः समीहसे ततो नोऽ अभयं कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्यो भयन्नः पशुभ्यः। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

अथाऽन्यकर्तृकपक्षे वरणदानम्

यजमानः—पुष्प–चन्दन–ताम्बूल–कटिसूत्राङ्गरीयक–वाशोयुगादिवरणसम्भृतिमाय—ॐ अद्याश्विने मासि शुक्ले पक्षे प्रतिपत्तिथावमुकगोत्रः श्री अमुकशर्माहमद्यारभ्य विजयदशमीपर्यन्तं वार्षिकशरत्कालीनसाङ्गश्रीदुर्गापूजां कर्तुममुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिः पुष्पचन्दनताम्बूलवस्त्रयज्ञोपवीतकटिसूत्राङ्गरीयकैः पूजकत्वेन त्वामहं वृणे। ॐ वृतोऽस्मीति प्रतिवचनम्। ॐ यथाविहितं कर्म कुरु, इति यजमानेनोक्ते ॐ करवाणीति प्रतिवचनम्।

अथ आसनशुद्धिः

कुशत्रयजलान्यादाय—ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः। ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु। इति गङ्गाजलेन पञ्चगव्येन चात्मानं पूजोपकरणद्रव्यं सिक्त्वा कमलासने बद्धकमलासनः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य—ॐ रक्ष रक्ष हूँ फट् स्वाहा। इति मन्त्रेण आसनस्थानमभिषिच्य—ॐ पवित्रवज्रभूमे हुँ फट् स्वाहा। इति मन्त्रेण भूमिमभिमन्त्र्य—ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः। इत्यासन-

मभ्यर्च्य आसनाधः रक्तचन्दनेन त्रिकोणयन्त्रं विलिख्य ॐ आसुरेखे वज्ररेखे हूँ फट् स्वाहा। इति मन्त्रेण मण्डलं विलिख्य 'ॐ ह्सौं' इति प्रेतवीजं मध्ये विलिख्य—ॐ ह्रीं आधाशक्तिकमलासनाय नमः। इति गन्धपुष्पाक्षतादिभिः सम्पूज्य—ॐ अनन्ताय नमः, ॐ विमलासनाय नमः, ॐ पद्मासनाय नमः, ॐ ह्सौं महाप्रेतपद्मासनाय नमः, इति सम्पूज्य आसनं धृत्वा पठेत्—ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्। इति प्रणमेत्। ततः ॐ वास्तुपुरुषाय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः। इति पूर्वादिक्रमेण गन्धपुष्पाक्षतैः सम्पूज्य एवं कोणेषु ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः, ॐ दिशायै नमः, ॐ विदिशायै नमः। इति सम्पूज्य—ॐ रक्ष रक्ष हूँ फट् स्वाहा। ॐ आं हूँ फट् स्वाहा। इति पञ्चवारं व्यापकं विधाय। ॐ अस्त्राय फट्। इति मन्त्रेण वामपादाघातत्रयेण दिव्यदृष्ट्या भौमानन्तरिक्षगान् विघ्नानुत्सार्य ऊर्ध्वमधः तालत्रयं दत्त्वा छोटिकादिभिर्दशदिग्बन्धनं कृत्वा नाराचमुद्रया लाज-चन्दनाक्षत-दूर्वा-भस्मकुशानादाय—ॐ अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः प्रेतगुह्यकाः। ये चात्र निवसन्त्यन्ये देवता भुवि संस्थिताः॥ ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमि संस्थिताः। ये भूता विघ्नकर्तारस्ते गच्छन्तु शिवाज्ञया॥ ते सर्वे विलयं यान्तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः। मृत्युरोगभयक्रोधाः पतन्तु रिपुमस्तके॥ इति चतुर्दिक्षु। क्षिपेत्। इत्यासनशुद्धिः।

अथ सामान्यार्घ्यस्थापनम्

स्वदक्षिणभागे विशुद्धजलेन भूमिं सम्प्रोक्ष्य, तत्र रक्तचन्दनसिन्दूरादिना मण्डलं कृत्वा तत्र चतुरस्रां रेखां विलिख्य तन्मध्ये त्रिकोणयन्त्रं च विलिख्य—ॐ आधारशक्तये नमः। इति पाद्यादिभिः सम्पूज्य तत्र—ॐ ह्लः सामान्यार्घपात्रं स्थापयामि। इति स्वर्ण-रौप्य-ताम्राद्यन्यतमार्घपात्रं संस्थाप्य ओंकारेण जलं निधाय—ॐ गङ्गे च

यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥ ओं ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे। तेन सत्येन देवेश तीर्थं देहि दिवाकर॥ इति सूर्यमण्डलात् अंकुशमुद्रया तीर्थमावाह्य पुष्पाक्षतैः—ओं गङ्गादिसकलतीर्थेभ्यो नमः। ओं हृदयादिषडङ्गदेवताभ्यो नमः। ओं अँ आँ अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, ओं इँ वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, ओं ऊँ सोमण्डलाय षोडषकलात्मने नमः, इति सम्पूज्य तत्र मूलमन्त्रं (ओं ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे) प्रणवं वा दशधा जप्त्वा धेनुमुद्रया अमृतीकृत्य मत्स्यमुद्रया आच्छाद्य योनिमुद्रां प्रदर्श्य तज्जलेन पूजोपकरणम्, आत्मानञ्चाभिषिच्य विशेषार्घ्यस्थापनं कुर्यात्।

अथ विशेषार्घ्यस्थापनम्

स्ववामभागे—'ओं आसुरेखे वज्ररेखे हूँ फट् स्वाहा' इति मन्त्रेण रक्तचन्दनसिन्दूरादिना त्रिकोणगर्भषट्कोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं विलिख्य कुशैः—'ओं लँ' इति भुवमभिषिच्य—'ओं वँ' इति भुवं संमृज्य षट्कोणेषु हृदयादि षडङ्गं सम्पूज्य चतुरस्रे—'ओ पूर्णगिरिपीठाय नमः' इति पूर्वे, ओं उड्डीयानपीठाय नमः' इति दक्षिणे, 'डों कामरूपपीठाय नमः' इति पश्चिमे, ओं जालन्धरपीठाय नमः' इति उत्तरे च सम्पूज्य—ओं आधारशक्तये नमः, ओं कूर्मशेषाभ्यां नमः। इति मध्ये। ओं आँ अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः। ओं इँ वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः! ओं ऊँ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इति पञ्चोपचारैः तत्तन्मण्डलं सम्पूज्य—'ओं ह्रीं फट्' इत्याधारपात्रं त्रिपदिकां संस्थाप्य—'ओं आधारपात्राय नमः' इति सम्पूज्य तदुपरि सौवर्णराजत-ताम्राद्यन्यतमपात्रं शङ्खं वा 'ओं अस्त्राय फट्' इति मन्त्रेण संस्थाप्य—'ओं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे स्वर्गकपालाय सर्वाधाराय सर्वोद्भवाय सर्वशुद्धिमयाय सर्वासुर-रुधिरारुणाय शुभ्राय सुधाभाजनाय देवीकपालाय नमः' इति पुष्पाक्षतैः सम्पूज्य शंखे सुधाबुद्धया मूलमन्त्रेण जलं निधाय तत्र अंकुशमुद्रया सूर्यमण्डलात् तीर्थमावाहयेत्। तद्यथा—ओं गङ्गे च यमुने

चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥ ओं ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे । तेन सत्येन मे देव तीर्थन्देहि दिवाकर ॥ ओं गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः सरांसि जलदा नदाः । ह्रदाः प्रस्रवणाः पुण्याः स्वर्गपातालभूगताः । सर्वतीर्थानि पुण्यानि पात्रे कुर्वन्तु सन्निधिम् ॥ इति तीर्थान्यावाह्य—ओं ऐं ह्लीं श्रीं ह्लौं ओं ह्लीं लीं ईँ फट् हसौं हूँ’ इति जलमभिमन्त्र्य शंखधेनुयोनिमुद्राः दर्शयित्वा मत्स्यमुद्रया आच्छाद्य मूलमन्त्रं दशधा जपित्वा जपा-करवीर-द्रोण-कमलाद्रिपुष्पाणि, अक्षतम्, दूर्वा, दधि, तिलं यवं, सर्वौषधिं, बिल्वपत्रम्, कुश-मूलानि च दत्त्वा त्रिखण्डां मुद्रां प्रदर्श्य गन्धपुष्पाक्षतैः—ओं गङ्गादिसकलतीर्थेभ्यो नमः । ओं ह्रदादिषडङ्गदेवताभ्यो नमः । ओं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारायै स्वेष्टदेवतायै दुर्गायै नमः । इति सम्पूज्य—ओं सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्र-कोटिसुशीतलम् । अष्टादशभुजं देवं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ॥ अमृतार्णवमध्यस्थं ब्रह्मपद्मोपरि स्थितम् । वृषारूढं नीलकण्ठं सर्वाभरणभूषितम् ॥ कपालखट्वाङ्गधरं घण्टाडमरुवादिनम् । पाशाङ्कुशधरं देवं गदामुशलधारिणम् ॥ खड्गखेटकपट्टीशमुद्गैरोच्चूलकुन्तिनम् । विचित्रखेटकं मुण्डं वरदाभयमालिनम् । लोहितं देवदेवेशं भावयेत्साधकोत्तमः । भावयेच्च सुधां देवीं चन्द्रकोट्ययुतप्रभाम् ॥ हिमकुन्देन्दुधवलां पञ्चवक्त्रां त्रिलोचनाम् । अष्टादशभुजैर्युक्तां सर्वानन्दकरोद्दताम् ॥ प्रहसन्तीं विशालाक्षीं देवदेवस्य सम्मुखीम् ॥ इति ध्यात्वा सामान्यार्घ्योदकेन—ओं आनन्द-भैरवीं तर्पयामि । ओं स्वेष्टदेवतां तर्पयामि । इति सन्तर्प्य तज्जलेनात्मानं पूजोपकरणानि चाभिषिच्य पूजामारभेत् ।

अथ कलशस्थापनम्

चतुरस्रवेदिकान्विते (१) कलशस्थापनप्रदेशे पञ्चवर्णरजोभिः पद्माकारमण्डलमालिख्य कुशत्रयतिलजलान्या-

---

(१) रुद्रयामले—शुद्धाभिर्मृत्तिकाभिश्च पूर्व कृत्वा वेदिकाम् । यवान् वै वापयेत्तत्र गोधूमैश्चापि संयुतान् ॥
तत्र संस्थापयेत् कुम्भं विधिना मन्त्रपूर्वकम् । सौवर्ण राजतं वाऽपि ताम्रं मृन्मयमेव वा ॥

दाय(१)–ओंमद्याश्विने मासि शुक्ले पक्षे प्रतिपत्तिथौ अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणो मम सपरिवारस्य सदारापत्यमित्रस्य सकलवाहनस्य चोपस्थितशरीराविरोधेन नवग्रहोपग्रहजनितसकलारिष्टझटिति-प्रशमनपूर्वकदीर्घायुष्ट्वबलपुष्टिनैरुज्यप्राप्तिसर्वपापप्रशमनाऽखिलापच्छान्तिपूर्वक- धनधान्याकण्टकराज्यभोग्यसन्ततिसुखान्वितनिखिल - मनोऽभिलषित-फलप्राप्तिपूर्वक-साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीदुर्गाप्रीतिकामो वार्षिकशरत्कालीनश्रीदुर्गापूजाङ्गभूतकलशस्थापनमहं करिष्ये। इति संकल्प्य स्ववामभागे देवतायाः दक्षिणभागे सम्मुखे वा पञ्चगव्य-गङ्गाजलाद्यभिषिक्तां सुपरिष्कृतां नदीनदसमुद्भवबालुकानिर्मितां द्विहस्तां (२) सार्धहस्तां हस्तमात्रपरिमितां वा सबिन्दुषट्कोणाष्टदलयन्त्रगर्भां सर्वतोभद्रमण्डलगर्भां वा चतुरस्रां वेदीं निर्माय सामान्यार्घोदकेन तामभ्युक्ष्य—ओं कलशाधारशक्ते इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ओं कलशाधारशक्तये नमः। इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य मध्यमानामिकाभ्यां वेदिभूमिं स्पृष्ट्वा पठेत्—ओं भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्रीं, पृथिवीं यच्छ पृथिवीं द ँ ह पृथिवीं माहिꣳसीः। इति मन्त्रेण भूमिपरिग्रहणं कृत्वा—ओं मानस्तोके तनये मान आयुषि मानो गोषु मानो ऽश्वेषु रीरिषः। मनो वीरान् रुद्रभामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हमामहे। इति गोमयोदकेन उपलिप्य—ओं वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम्। यूपेन यूप आप्यते प्रणीतो अग्निरग्निना॥ इति गंगाजलेन शुद्धिं कृत्वा यवान् दद्यादनेन—

कलशाधिष्ठितदेवताः—कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः। मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणः स्मृतः॥ कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धराः। ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः॥ अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशे तु समाश्रिताः॥

(१) सामाजिकसम्मिलितपूजापक्षे—ॐ अद्याश्विने मासि शुक्ले पक्षे एतद्ग्रामवसिनां नानानां गोत्राणां सकलजनानामेतत्पूजोपकारकाणामन्यग्रामवासिनां चोपस्थितशरीराविरोधेन नवग्रहेत्यादि।

(२) मात्स्ये—द्विहस्ता चोत्तमा वेदी मध्यमा सार्धहस्तका। अवमा हस्तमात्रा च न्यूनाधिक्यं न कारयेत्॥

ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणायत्वोदानायत्वा ब्यानायत्वा दीर्घामनुप्रसितिमायुषेधां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वमच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोसि ॥ ओं यव त्वं यवरूपोऽसि यज्ञार्थे निर्मितो विधेः। देवानां तृप्तिकृद्यस्मात् तस्मात्त्वं वरदो भव ॥ ओं जयन्तीं मंगला काली भद्रकाली कपालिनी। दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा तमोऽस्तु ते ॥ ओं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा ॥ ततस्तत्र दृढमव्रणमश्यामं माल्यालंकृतं कलशं स्थापयेदनेन—ओं आजिघ्र कलशं मह्या त्वा व्विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्ज्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः। ततः कलशं (१) दध्यक्षतैर्भूषयेदनेन——ओं दधिक्राव्णो ऽअकारिषं जिष्णोरस्वस्य व्वाजिनः। सुरभि नो मुखाकरत् प्रण ऽआयूंषि तारिषत् । ततः कलशे वरुणं (जलं) न्यसेदनेन——ओं व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्थो व्वरुणस्य ऽऋतसदन्यसि व्वरुणस्य ऽऋतसदनमसि व्वरुणस्य ऽऋतसदनमासीद। ततः कलशे गंगाजलं क्षिपेत्——ओं गंगाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च। सर्वे समुद्राः सरितः तीर्थानि जलदा नदाः। आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥ ततः पञ्चरत्नं (२) दद्यादनेन–ओं हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ततः (३) पञ्चपल्लवं

---

(१) विहितकलशं मेरुतन्त्रे—सौवर्णं भोगदं प्रोक्तं राजतं मोक्षदायकम्। ताम्रं प्रीतिकरं ज्ञेयं कांस्यजं पुष्टिवर्धनम्।
काचं वश्यकरं प्रोक्तं पाषाणं शुभकर्मणि। मृन्मयं सर्वकार्येषु सुदृश्यं सुपरिष्कृतम् ॥

(२) हेमाद्रिः—कनकं हीरकं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम्। पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तमृषिभिः पूर्वदर्शिभिः ॥
तदभावे विशेषः—रत्नानां चाप्यभावे तु स्वर्णं कर्षार्धमेव च। सुवर्णस्याप्यभावे तु आज्यं देयं विचक्षणैः ॥

(३) पञ्चपल्लवं यथा वैदिककर्मणि—'आम्राऽश्वत्थ-वट-पर्कटी-यज्ञोदुम्बराणि'।
तान्त्रिककर्मणि तु—पनसाम्रं तथाऽश्वत्थं वटं वकुलमेव च। पंचपल्लवमुक्तं च मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः ॥ इति।

दद्यादनेन—ओं अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाज ऽइत्किलासाथ यत्सनवथ पूरुषम्। ओं ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः। तेषाᳫं सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि। ओं अम्बे ऽअम्बिके ऽअम्बालिके नमानयति कश्चन ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्। ततः सप्तमृत्तिकां (१) दद्यानेन—ओं स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छानः शर्म सप्रथाः। ततः सर्वौषधीः (२) दद्यात्–ओं या ऽओषधीः सोमराज्ञीर्वह्वीः शतविचक्षणाः। तासामसित्वमुत्तमारं कामायशँ॒ हृदे। ततो नारिकेलं दद्यादनेन—ओं या फलिनीर्या ऽअफला ऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चत्वँ॒ हंसः। ततो वस्त्रं दद्यात्—ओं युवासुवासाः परिवीत आगात् स उश्रेयान् भवति जायमानः। तन्वीरासः कवयः उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः। ततः कलशे हस्तं दत्त्वा स्थिरीकुर्यादनेन—ओं स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन्। पृथुर्भव सुखदस्त्वमग्ने पुरीषवाहणः॥ ततः पुष्पं दद्यादनेन–ओं श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणमुम्म इषाण सर्वलोकम्म इषाण ओं यँ॥ ततश्चन्दनं दद्यादनेन—ओं गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां त्वामिहोपह्वये श्रियम्॥ ततो दूर्वाक्षतं दद्यादनेन—ओं काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च। ओं ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे। ततो व्रीहिवपनम्—ओं व्रीहयश्च मे यवाश्च मे तिलाश्च मे मुद्राश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मे प्रणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। ततः अलक्तकं दद्यात्—ओं आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यंञ्च। हिरण्ययेन सविता रथेना–देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ ततः सिन्दूरं दद्यात्—ओं सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः।

---

(१) सप्तमृत्तिकाः—अश्वस्थानाद् गजस्थानात् वल्मीकात् सङ्गमाद्ध्रदात्। गोकुलादथ रथ्यादाहृताः सप्तमृत्तिकाः॥

(२) सर्वौषधिः—कुष्ठमांसीहरिद्राभिर्वचाशैलेयचन्दनैः। मुराचन्दनकर्पूरमुस्तैः सर्वौषधिः स्मृतः॥

घृतस्य धारा अरुषोन वाजीकाष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः। इति प्रधानकलशस्थापनं विधाय वेदीकोणेषु दध्यक्षतमाल्यवस्त्रालंकृतान् जलपूर्णान् शरावयवमुखान् यवोपरि चतुरः कलशान्निवेशयेत्। ततः कलशे पूजामारभेत्। पुष्पाक्षतमादाय—ओं मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳसमिमन्दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्यामों प्रतिष्ठ। ओं विनायकादि-पञ्चदेवता-नवदुर्गा-नवचण्डिका-नवग्रहादि-दिक्पाल-वाहनास्त्रादिदेवतासहित-सांगसायुधसवाहनसपरिवार ओं भूर्भुवःस्वर्भगवति श्रीदुर्गे इहागच्छ इह तिष्ठ तिष्ठ, इह सन्निधेहि सन्निधेहि, अत्राधिष्ठानं कुरु कुरु, मम सर्वोपचारसहितां पूजां गृहाण गृहाण स्वाहा। इति प्रतिष्ठाप्य—ओं शान्तिकलश इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ओं शान्तिकलशाय नमः। इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्॥ ततः पुष्पाञ्जलिः—ओं शान्तिकुम्भ महाभाग सर्वकामफलप्रद। पुष्पं गृहाण शुभं यच्छ देवाधार नमोऽस्तु ते॥ ततः कलशे गणपतिमावाह्य पूजयेत्। तद्यथा— ओं गणानान्त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिꣳ हवामहे व्वसो मम ऽआहम जानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्। इति पठित्वा ओं कलशाधिष्ठित-गणेश इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात्—ओं एकदन्तं महाकायं लम्बोदर-गजाननम्। विघ्नविनाशकरं देवं हेरम्बं प्रणमाम्यहम्॥ ततः ओं वरुण इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात्—ओं वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्जनीस्थो व्वरुणस्य ऋतसदन्यसि व्वरुणस्य ऋतसदनमसि व्वरुणस्य ऋतसदनमासीद॥ ततो ब्रह्मपूजा—पुष्पाक्षतमादाय—ओं आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योतिव्याधी महारथो धायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुनन्ध्रिर्योषा जिष्णूरथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य व्वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ ओं भूर्भुवः स्वर्ब्रह्मन् इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिमादाय—

ओं पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदवासाः पितामहः । यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ एष पुष्पाञ्जलिः ओं ब्रह्मणे नमः । ततो दुर्गां पूजयेत्—ओं जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते । ओं भूर्भुवः स्वर्भगवति दुर्गे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

अथ प्रतिपदि कलशे प्रधानदुर्गापजा .

ततः कलशस्थापनानन्तरं कलशे (१) देव्याः प्रधानपूजामारभेत् । तत्र सङ्कल्प—कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अद्याश्विने मासि शुक्ले पक्षे प्रतिपत्तिथौ अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणो मम (२) सपरिवारस्योपस्थितशरीराविरोधेन राज्यायुःसुतसौख्यसेव्येश्वरकर्तृकसम्मानसदायुद्धविजयसर्वविधसौमनस्य—नैरुज्य-दीर्घायुष्ट्वसार्वदिक्—श्रीदुर्गाप्रीति-काम कलशे श्रीदुर्गादेव्याः पूजनमहं करिष्ये । इति संकल्प्य पुष्पाक्षतमादाय—ओं जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोस्तु ते ॥ ओं भूर्भुवः स्वर्भगवति श्री दुर्गे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य पुष्पमेकं गृहीत्वा—ओ आगच्छ चण्डिके देवि अष्टाभिः शक्तिभिः सह । पूजाभागं गृहाणेमं सान्निध्यमिह कल्पय ॥ ओ आगच्छ त्वं महाभागे सर्वकल्याणहेतवे । मम शत्रुविनाशाय शङ्करप्राणदायिनि ॥ इदमावाहनपुष्पं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारायै दक्षयज्ञविनाशिन्यै महाघोरायै योगिनीकोटिपरिवृतायै भद्रकाल्यै सर्वशक्तिस्वरूपिण्यै ओं ह्रीं भगवत्यै श्रीदुर्गायै नमः । पुनः पुष्पं गृहीत्वा—ओं दुर्गे सर्वजगन्नाथे यावत् पूजावसानकम् । तावत्त्वं प्रीतिभावेन घटेऽस्मिन् सन्निधा भव ॥ इति सम्मुखीकृत्य—ओं खमापः पृथिवी चैव ज्योतिषं वायुरेव च । लोकसंस्मृ·

---

(१) मात्स्ये—चित्रे च प्रतिमायां च मृन्मय्यां श्रीफलेऽपि च । महायोनौ चन्द्रविम्बे शिलायां कलशे तथा ॥
चक्रे पादुके खड्गे महानिम्बे तथैव च । पुण्यक्षेत्रे च गङ्गायां देवीमावाह्य पूजयेत् ॥ इति ।

(२) ग्रामपूजायां तु—ओमद्येत्यादि एतद्ग्रामवासिनां नानानां गोत्राणां सकलजनानामेतत्पूजोपकारकाणामन्यग्रामवासिनां चोपस्थितशरीराविरोधेन राज्यायुरित्यादि ।

तिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम् ॥ इदं स्नानीयं भगवत्यै श्रीदुर्गादेव्यै नमः। चन्दनमादाय—ओं मलयाजलसम्भूतं नानागन्धसमन्वितम्। शीतलं वहुलामोदं चन्दनं गृह्यतामिदम् ॥ इदं श्रीखण्डचन्दनम्०। ततः रक्तचन्दनम्। ततः सिन्दूरमादाय--ओं सिन्दूरं सर्वसाध्वीनां भूषणाय विनिर्मितम्। गृहाण वरदे देवि भूषणानि प्रयच्छ मे ॥ इदं सिन्दूराभरणम्०। ततोऽक्षतमादाय--ओमक्षतं धान्यजं देवि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। प्राणदं सर्वभूतानां गृहाण वरदे शुभे ॥ इदमक्षतम्०। ततः पुष्पाण्यादाय--ओं चलत्परिमलामोदमत्तालिगणसङ्कुलम्। आनन्दनन्दनोद्भूतं दुर्गायै कुसुमं नमः ॥ एतानि पुष्पाणि०। ततो विल्वपत्रमादाय-ओं अमृतोद्भवश्रीवृक्षं शङ्करस्य सदा प्रियम्। पवित्रं ते प्रयच्छामि विल्वपत्रं सुरेश्वरि॥ इदं विल्वपत्रम्०। ततो द्रोणपुष्पमादाय-ओं ब्रह्मविष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदा प्रियम्। तत्ते दुर्गे प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये ॥ इदं द्रोणपुष्पम्०। ततो वस्त्र-धूप-दीप-नानाविधनैवेद्यैः ताम्बूलैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात्--ओं दुर्गे दुर्गे महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि। त्वं काली कमला ब्राह्मी त्वं जया विजया शिवा ॥ त्वं लक्ष्मीर्विष्णुलोकेषु कैलासे पार्वती तथा। सरस्वती ब्रह्मलोके चेन्द्राणी शक्रपूजिता ॥ वाराही नारसिंही च कौमारी वैष्णवी तथा। त्वमापः सर्वलोकेषु ज्योतिस्त्वं ज्योतिरूपिणी ॥ योगमाया त्वमेवासि वायुरूपा नभःस्थिता। सर्वगन्धवहा पृथ्वी नानारूपा सनातनी ॥ विश्वरूपे विश्वेशे विश्वशक्तिसमन्विते। प्रसीद परमानन्दे दुर्गे देवि नमोस्तु ते। नानापुष्पसमाकीर्णं नानासौरभसंयुतम्। पुष्पाञ्जलिञ्च विश्वेशि गृहाण भक्तवत्सले ॥ एष पुष्पाञ्जलिः०। ततः नीराजनं—ओं कर्पूरवर्तिसंयुक्तं वह्निना दीपितञ्च यत्। नीराजनं च देवेशि गृह्यतां जगदम्बिके ॥ इदं नीराजनम्०। ततः क्षमापनम्--ओं प्रार्थयामि महामाये यत्किञ्चित् स्खलितं मम। क्षम्यतां तज्जगन्मातः दुर्गे देवि नमोस्तु ते ॥ ततः ओं महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि। द्रव्यमारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमः सदा ॥ ओं सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते। भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ इत्यादिना प्रणमेत् ॥

[एवं च षष्ठीपर्यन्तं प्रत्यहं पूजयेत्। तत्र पूजां कृत्वा द्वितीयायां देव्यै केशसंयमनार्थं पट्टडोरकं, तृतीयायां चरणरागार्थमलक्तकं, शिरसि धारणार्थं सिन्दूरं, मुखविलोकनार्थं दर्पणम्, चतुर्थ्यां मधुपर्कम्, रौप्यतिलकं (टिकुली), नेत्रार्थं कज्जलम् , पञ्चम्यां चतुःसमालेपनं यथाशक्त्यलङ्करणं च समर्पयेदिति विशेषः। पूजितदेवताभ्यः सायं प्रातः पुष्पाञ्जलिं च प्रत्यहं दद्याद्। शङ्कल्पवाक्येषु प्रत्यहं तत्तत्तिथ्युल्लेखः कर्तव्यः।]

अथ दशदिक्पालपूजनम्

ततः यजमानः इन्द्रादिदशदिक्पालान् (१) पूजयेत्तद्यथा–अक्षतादिकमादाय—ॐ शतयज्ञ सुरारिघ्न सहस्राक्ष पुरन्दर। पूजां गृहाण देवेश सन्निधेहि नमोस्तु ते ॥ ॐ इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ॐ इन्द्राय नमः। इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्। ततः पुष्पाञ्जलिः—ॐ इन्द्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः। शतयज्ञाधिपो देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः॥ इति त्रिः। तत आग्नेयदले—ओं स्वाहाप्रिय महाज्वाल हुताशन सुरानन। सर्वयज्ञभुजां श्रेष्ठ सन्निधेहि नमोस्तु ते ॥ ओं अग्ने इहागच्छ इह तिष्ठेत्वाह्य, एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओं अग्नये नमः। इत्यनेन यथोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुपब्रुवे देवाँ२ आसादयादिह॥ इति त्रिः पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। ततो दक्षिणदले—ओं धर्मराज महाबाहो महामहिषवाहन। हिताय यमलोकेश सन्निधेहि नमोस्तु ते॥ ओं यम इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पद्यादीनि एषोऽर्घः ओं यमाय नमः। इत्यनेन यथोपचारैः पूजयेत्। ततः पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं असि यमो ऽअस्यादित्यो ऽअर्व्वन्नसित्रितो गुह्येन व्रतेन ऽअसि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि॥ इति त्रिः पुष्पा-

---

१. इन्द्रादिदशदिक्पालाश्च—१. इन्द्रः, २. अग्निः, ३. यमः, ४. निर्ऋतिः, ५. वरुणः, ६. वायुः, ७. सोमः, ८. ईशानः, ९. अनन्तः, १०. ब्रह्मा च।

ञ्जलिं दद्यात् । ततो नैर्ऋत्यदले—ओं रक्षोधिप महासत्त्व बहुहस्त महाबल । निर्ऋते मम रक्षार्थं सन्निधेहि नमोस्तु ते ॥ ओं निर्ऋते इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओं निर्ऋतये नमः । इत्यनेन यथोपचारैः पूजयेत् । ततः पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहा ॥ इति त्रिः पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । ततः पश्चिमदले—ओं यादःपते पाशधर पश्चिमाशाप्रसाधक । परिवारैः सह विभो सन्निधेहि नमोऽस्तु ते ॥ ओं वरुण इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं वरुणाय नमः इति यथोपचारैः पूजयेत् । ततः पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं वरुणः सबलो जिष्णुः पुरुषो निम्नगाधिपः । पासहस्तो महाबाहुस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इनि त्रिः पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । ततो वायव्यदले—ओं जगत्प्राण जगद्देव जगदाद्य जगद्गुरो । गणैः सह महानाथ सन्निधेहि नमोऽस्तु ते ॥ ओं वायो इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं वायवे नमः इति यथोपचारैः पूजयेत् । ततः पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं सर्वप्राणाधिपो नित्यं सर्वजन्तुष्ववस्थितः । ध्वजहस्तो मेघवर्णस्तस्मै वातात्मने नमः ॥ इति त्रिः पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । तत उत्तरदले—ओं सर्वनक्षत्रमध्ये यः सोमो राजा व्यवस्थितः । शुक्लवर्णो गदाहस्तस्तस्मै सोमात्मने नमः ॥ ओं सोम इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं सोमाय नमः, इति यथोपचारैः पूजयेत् । ततः पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं गौरेयस्तु पुमान् सौम्यः सर्वौषधिसमन्वितः । नक्षत्राधिपतिः सोमस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति त्रिः पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । तत ईशानदले—ओं एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूलकपालखट्वाङ्गधारेण सार्धम् । लोकेश यज्ञेश्वर सिद्धसंघैर्गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ ओं ईशान इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ओं इशानाय नमः, इति यथोपचारैः पूजयेत् । ततः पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं सर्वदेवाधिपो देव ईशानः शुक्लविग्रहः । शूलपाणिर्वृषारूढो रुद्राधिपतये नमः ॥ इति त्रिः पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । ततो निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये—ओं पन्तगाधिपतिर्देवो योऽनन्तो नीलविग्रहः । पातालवसतिर्नित्यमनन्ताय नमो नमः ॥ ओमनन्त इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य यथोपचारैः पूजयेत् । ततः पुष्पाञ्जलिः—

ओं योऽसावतन्तरूपेण ब्रह्माण्डसचराचरम् । पुष्पवद्धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति त्रिः पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । ततः ईशानेन्द्रयोर्मध्ये—ओं पलाशकुसुमाकारो ब्रह्मा चैवाक्षसूत्रधृक् । सर्वयज्ञपतिर्देवस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ ओं ब्रह्मन्निहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत् । ततः पुष्पाञ्जलिः—ओं ब्रह्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदवासाः पितामहः । यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ इति त्रिः पुष्पाञ्जलिं दद्यात् ।

अथ नवग्रहपूजनम्

अथ यजमानो लिखिताष्टदलमध्ये सूर्यादिनवग्रहानावाह्य(१) पूजयेत् । तत्र क्रमः—रक्ताक्षतादिकमादाय पूर्वदले—ओं सूर्य इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतम्मर्त्यञ्च । हरिण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओं सूर्याय नमः । इदं रक्तानुलेपनम्० इदं रक्ताक्षतम्० एतानि रक्तपुष्पाणि इत्यनेन यथोपचारैः पूजयेत् । ततः उत्तरदले ओं—सोम इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं इमन्देवा असपत्न ँ् सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै व्विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणा ँ् राजा ॥ एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओं सोमाय नमः । एवं श्वेतपुष्पादिना यथोपचारैः पूजयेत् । ततः ओं कुज इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपा ँ् रेता ँ् सिजिन्वति ॥ एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओं कुजाय नमः । एवं लोहितपुष्पादिना पूजयेत् । तत ऐशान्याम्—ओं बुध इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं उद्बुध्यस्वाग्ने

---

(१) नवग्रहाणां समिधः—अर्कः पलाशः खदिरो ह्यपामार्गोऽथ पिप्पलः । औदुम्बरः शमी दूर्वाः कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥ समिदर्कमयी मानोः पलाशी शशिनस्तथा । खादिरी भूमिपुत्रस्य त्वपामार्गी बुधस्य च। गुरोरश्वत्थजा प्रोक्ता शुक्रस्यौदुम्बरी मता । शमीनां तु शनेः प्रोक्ता राहोर्दूर्वामयी तथा । केतोर्दर्भमयी प्रोक्ताऽन्येषां पालाशवृक्षजाः ॥ इति । सति हवने इदं ज्ञेयम् ।

प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते स ँ सृजेथामयञ्च। अस्मिन्त्सधस्थे अद्ध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत॥ एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओं बुधाय नमः। इति पीतपुष्पादिना पूजयेत्। तत उत्तरस्याम्—ओं बृहस्पते इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं बृहस्पते अतिर्यदर्य्यो ऽअर्हाद्युमद्विभाति ऋतुमञ्जनेषु। यद्दीदयच्छवास ऋतप्रजाततदस्मासु द्रविणन्धेहि चित्रम्॥ एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओं बृहस्पतये नमः। इति पीतपुष्पादिना पूजयेत्। ततः प्राच्याम्—ओं शुक्र इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोमृतं मधु। एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओं शुक्राय नमः। इति श्वेतपुष्पादिना पूजयेत्। ततः पश्चिमायाम्—ओं शनैश्चर इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंय्योरभिस्रवन्तु नः॥ एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओं शनैश्चराय नमः। इति कृष्णपुष्पादिना पूजयेत्। ततो नैर्ऋत्याम्—ओं राहो इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं कयानश्चित्र आभुवदूती सदा वृधः सखा। कयाशचिष्ठयावृता। एतानि पाद्यादीनि ऐषोर्घः ओं राहवे नमः। एवं कृष्णपुष्पादिना पूजयेत्। ततो वायव्याम्—ओं केतव इहागच्छत इह तिष्ठतेत्यावाह्य, ओं केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः। एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओं केतुभ्यो नमः। इति धूम्रपुष्पादिना पूजयेत्। ततो देव्याः दक्षिणे नवाऽहोरात्रस्थायिनं दीपमुत्सृज्येत्। तद्यथा—कुशत्रयादिकमादाय—ओमद्येत्यादि वाजपेययज्ञजन्यफलसमफलप्राप्तिकामो नवाहोरात्रस्थायिदीपमिदं विष्णुदैवतं श्रीदुर्गादेव्यै अहं ददे।

अथाचाराद् देवीमुद्दिश्य नानाविधानि फलानि नानापक्वान्नानि पायसं च दद्यात्। यथाशक्ति चण्डीपाठं, सति संभवे वक्ष्यमाणविधिना स्वस्त्ययनं हवनं, छागादिबलिदानं(१), कुमारीपूजनं, कुमारीभोजनं सुवासिनीभोजनं,

---

(१) षष्ठीपर्यंतं छागादिबलिदानन्तु क्वचिदेव भवति। तद्विधिस्तु महासप्तमीपूजान्ते द्रष्टव्यः।

ब्राह्मणभोजनञ्च कारयेत् । देवीगृहे नृत्यगीतवाद्यादिभिरुत्सवं च कारयेत् । सायङ्काले कुंकुमगन्धामलकीकंकतिका(१) प्रभृतिकेशसंस्कारकवस्तूनि देव्यै समर्प्य आरार्तिकं पुष्पाञ्जलिं च स्तोत्रपाठादिना दद्यात् ।

अथ द्वितीयायां रेमन्तपूजाविधिः

कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्याश्विने मासि शुक्ले पक्षे द्वितीयायां तिथौ(२) 'अमुकगोत्रस्यास्य अमुकशर्मणः उपस्थितशरीराविरोधेन सपरिवारस्य सकलपीडाप्रशमनपूर्वकदीर्घायुष्ट्ववलपुष्टिनैरुज्याद्यखिलकल्याणोत्पत्तिकामो रेमन्तमुच्चैःश्रवसं तुरङ्गञ्चाऽहं पूजयिष्ये । इति संकल्प्य(३) पुष्पाक्षतमादाय—ॐ साश्वरेमन्त इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य—ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनों त्वरिष्टं यज्ञᳬ समिमन्दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामोमम्प्रतिष्ठ । इत्यनेन प्राणप्रतिष्ठां विधाय एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ॐ साश्वरेमन्ताय नमः । इति पंचोपचारैः पूजयेत् । ततः पुष्पाञ्जलिमादाय—ॐ नमो देवाधिदेवाय तुरङ्गवलचारिणे । सूर्यपुत्राय देवाय तुरङ्गाणां हिताय च । तुरङ्गोपरि संयम्य मृगयां परिधावति । साश्वमश्वाधिपं रक्ष शरणं त्वां व्रजाम्यहम् ॥ ओमश्वरूपोऽसि

---

(१) भविष्यपुराणे–केशसंस्कारद्रव्याणि प्रदद्यात् प्रतिपद्दिने । पट्टडोरं द्वितीयायां केशसंयमहेतवे ॥ दर्पणञ्च तृतीयायां सिन्दूरालक्तकन्तया । मधुपर्कं चतुर्थ्यां तु तिलकं नेत्रमण्डलम् ॥ पञ्चम्यामङ्गरागञ्च शक्त्यालङ्करगानि च ॥ इति ।

(२) ग्रामपूजायान्तु—ओमद्येत्यादि 'एतद्ग्रामवासिनां नानानां गोत्राणां सकलजनानामेतत्पूजोपकारकाणामन्यग्रामवासिनां च उपस्थितशरीराविरोधेन' सपरिवारस्येत्यादि योज्यम् ।

(३) राजा चेद्यजमानस्तदा अश्वशालायां सर्वतः परिवृतामनुलिप्तां नानावर्णपुष्पालंकृतां सुधूपितां कृत्वा अश्वशालायाः पश्चिमदिशि वप्रत्रयावृततण्डुलचूर्णस्थण्डिलं निर्माय तदुपरि चन्दनादिना मण्डलं प्रकल्प्य तत्र मूर्तौ वा रेमन्तमुच्चःस्रवसं च पूजयेत् । रेमन्तपूजा नृपैरेव कर्तव्या न तु गृहस्थैः, अनावश्यकत्वादिति केचित् । अत्र यथाचार एव प्रमाणम् ।

तेजस्वी खड्गपाणिर्भयानकः सवर्णासम्भवः सौरी रेमन्तस्त्वं प्रसीद मे ॥ एष ध्यानपुष्पाञ्जलिः ॐ साश्वरेमन्ताय नमः । ततोऽञ्जलिं बध्वा—ॐ सूर्यपुत्र महाबाहो छायाहृदयनन्दन । शान्तिं कुरु तुरङ्गाणां रेमन्ताय नमोऽस्तु ते ॥ इति प्रणमेत् । ततः पुष्पाक्षतमादाय—ॐ उच्चैःश्रव इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ॐ उच्चैःश्रवसे नमः, इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् । ततोऽश्वकर्णे जपेत्—ॐ उच्चैःश्रवो नमस्तुभ्यं नमः क्षीराब्धिनन्दन । वाहान् वर्धय वाहेन्द्र सर्वोत्पातं विनाशय ॥ येन सत्येन रेमन्त येन सत्येन भास्करम् । वहसे तेन सत्येन विजयस्व वहस्व माम् ॥ एवं महानवमीपर्यन्तं प्रत्यहं पूजयेत् । ततो धान्य–भल्लातक-वचा-कुष्ठ-सर्षप-लोह–निम्बपत्र–गुग्गुलु–घृत–हिङ्गुभिः पञ्चरङ्गसूत्रेण पीतवस्त्रैश्च पोटलिकां कृत्वा अश्वकण्ठे बध्नीयात् (१) ।

अथ षष्ठ्यां गजपूजा

शालायाः (२) प्रागुदग्भागे स्थण्डिलं कल्पयेत् बुधः । चतुर्द्वारं चतुर्हस्तं मण्डपं तु सुशोभनम् ॥ तत्राङ्गं षोडशदलं निर्मातव्यं सकर्णिकम् । सिततण्डुलचूर्णेन प्रयत्नेन मनीषिणा ॥ विदिक्षु पूर्णकलशान् पूर्णपात्रयुतान् न्यसेत् । सप्तहस्तेषु दण्डेषु पताकांश्च तथा न्यसेत् ॥ दिग्गजानान्तु विन्यासमौषधीभिः प्रकल्पयेत् ॥ ततः कुशादिकमादाय—ओमद्याश्विने मासि शुक्ले पक्षे षष्ठ्यां तिथौ अमुकगोत्रः श्री अमुकशर्माऽहं गजसमृद्धिकामः कुमुदैरावतादीन्

---

(१) यजमानो राजा चेत्—अश्वशालायां निम्बाज्यसर्षपांश्च दद्यात् । छागबलिदानं च कारयेत् । तत्र सङ्कल्पः—ओमद्येत्यादि अश्वानामुत्पातपीडाप्रशमनपूर्वकदीर्घायुष्ट्वसमृद्धिकामोऽमुं छागं वह्निदैवतं रेमन्तायाऽहं घातयिष्ये । इति बलिं दत्त्वा गीतवाद्यादिकं कारयेत् । ताडनवाहनादि वर्जयेत् ।

(२) ततः षष्ठ्यां गजपूजा कार्या—ज्येष्ठायोगे पुरा तत्र……नवम्यन्तञ्च पूजयेत् ॥ इति ब्रह्मपुराणवचनात् महानवमीपर्यन्तं प्रत्यहं पूजयेत् । इयं गजपूजा नृपैरेव कार्या न तु गृहस्थैरनावश्यकत्वादिति सर्वनिबन्धस्वरसः ।

१० व० पू०

दिग्गजान् पूजयिष्ये ॥ इति सङ्कल्प्य, इन्द्रादीनां प्रत्येकं सम्बोधनान्तपदेनावाह्य चतुर्थ्यन्तपदेन पञ्चोपचारैः पूजयेत् । तद्यथा—पूर्वदले—इन्द्राय नमः, ऐरावताय नमः, अभ्रमवे नमः, अग्नये नमः, पद्माय नमः, कपिलायै नमः । ततो दक्षिणदले—यमाय नमः, पुष्पदन्ताय नमः, पिङ्गलायै नमः । ततो नैर्ऋत्यदले—रक्षोऽधिपतये नमः, वामनाय नमः, अनुपमायै नमः, वरुणाय नमः, सार्वभौमाय नमः, ताम्रकर्ण्यै नमः । ततो वायव्ये—वायवे नमः, अञ्जनाय नमः, शुभ्रदन्त्यै नमः । तत उत्तरदले—कुबेराय नमः, नीलाय नमः, अङ्गनायै नमः । तत ऐशान्ये—ईशानाय नमः, कुमुदाय नमः, अञ्जनावत्यै नमः । ततो मध्यदले—विष्णवे नमः, श्रियै नमः, सूर्याय नमः, पृथिव्यै नमः, अन्तरिक्षाय नमः । पुनः पूर्वादितः—वज्राय नमः, शक्तये नमः, दण्डाय नमः, खड्गाय नमः, पाशाय नमः, अङ्कुशाय नमः, गदायै नमः, शूलाय नमः । एवं सर्वत्र प्रणवादिनमोन्तेन सम्पूज्य गजं च पञ्चोपचारैः पूजयेत् । ततः गजस्य कर्णयोरभिमन्त्रयेत् । (करिणं तं समारुह्य कृत्वा तस्य प्रदक्षिणम्) ॐ श्रीगजस्त्वं हृतो राज्ञा भवानस्य गजाग्रणीः । गन्धमाल्याम्बुभक्ष्यैस्त्वां पूजयिष्यति पार्थिवः ॥ लोकस्तदाज्ञया पूजां करिष्यति तथा तव । पालनीयस्त्वया राजा युद्धेऽध्वनि तथा गृहे ॥ तिर्यग्भावं समुत्सृज्य दिव्यभावमनुस्मर । देवासुरे तथा युद्धे श्रीगजस्त्रिदशैः कृतः ॥ ऐरावतःस्वतः श्रीमान् विष्णुर्नाम च वारणः । श्रीगजानां तु यत्तेजः सर्वमेवापतिष्ठति ॥ तत्तेजस्तव नागेन्द्र दिव्यभावसमन्वितम् । उपतिष्ठतु भद्रं ते व्रज राजानमाहवे ॥ इत्येवमभिसंमंत्र्य शुभेऽहनि नराधिपः । आरोहयेत्ततो नागं सर्वमङ्गलसंयुतम् ॥ ज्येष्ठायोगे पुरा तत्र गजाष्टौ च महाबलाः । पृथिवीमावहन् पूर्वं सशैलवनकाननाम् ॥ कुमुदैरावतौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः । सार्वभौमः सुप्रतीकोऽप्यञ्जनोऽमितविक्रमः ॥ सर्वे ह्येते महावीर्या इत्यष्टौ देवयोनयः । तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वलान्यष्टौ समाश्रिताः ॥ भद्रमल्लो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च । नानारत्ने प्रसूतास्ताम् स्मर योनिं महागज ॥ पान्तु वो वसवो रुद्रा-आदित्याश्च मरुद्गणाः । भर्तारं रक्ष नागेन्द्र समयः प्रतिपाल्यताम् ॥ अवा-

प्नुहि जयं युद्धे समये स्वस्ति नो व्रज । श्रीस्ते सोमाद् 'बलं कृष्णात् तेजः । सूर्याज्जवोऽनिलात् ॥ शौर्यं मेरोर्जवं रुद्राद् यशो देवपुरन्दरात् । मेरुः शक्रश्च नागाश्च दिशश्च सह दैवतैः ॥ अश्विभ्यां सह गन्धर्वाः पान्तु त्वां सर्वतः सदा । युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां दिवश्च सह दैवतैः ॥ अश्विन्यौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतः सदा (१) ॥

अथ षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणविधिः

षष्ठ्यां सायङ्काले(२) विल्ववृक्षसमीपं गत्वा तत्र स्थलं परिष्कृत्य सर्वोपचारविधिम्परिकल्प्य आचम्य कुशत्रय-तिलजलान्यादाय—ओमद्याश्विने मासि शुक्ले पक्षे षष्ठ्यां तिथौ सायाह्ने सर्वोपद्रवशान्तिकामो बिल्वाभिमन्त्रणमहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य—ॐ विल्ववृक्ष महाभाग सदा त्वं पापनाशनः । मम विघ्नविनाशाय विल्ववृक्षाय ते नमः॥ इति प्रणम्य—ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । इति जलेन विल्ववृक्षं स्नापयेत् । तत एवोर्ध्वः ॐ विल्ववृक्षाय नमः । इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिमादाय —ओं नमो विल्वतरवे सदा शङ्कररूपिणे । सफलानि ममाङ्गानि कुरुष्व शिवहर्षद ॥ एष पुष्पाञ्जलिः ओं बिल्ववृक्षाय नमः । ततो विल्ववृक्षे ओं भूर्भुवः स्वर्भगवति दुर्गे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ओं जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते ॥ इति मन्त्रेण पञ्चोपचारैः सम्पूज्य गीतवाद्यादिभिः देवीम्बोधयेत् । तद्यथा अञ्जलिं वद्ध्वा—ओं रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च । अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्यास्त्वयि

---

(१) पूजान्ते छागबलिं च दद्यात् । तत्र सङ्कल्पः—ओमद्येत्यादिगजानामुत्पातपीडाप्रशमनपूर्वकसमृद्धिकामोऽमुं छागं वह्निदैवतमैरावतादिदिग्गजेभ्योऽहं घातयिष्ये इति ।

(२) देवीपुराणे—ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां विल्वाभिमन्त्रणम् ।
महाकालसंहितायाम्—षष्ठ्यां सायं प्रकुर्वीत वृल्ववृक्षेऽधिवासनम् । रजन्याद्ये मुहूर्ते तु चण्डिकामधिवासयेत् ॥

कृतः परा । अहमस्याश्विने पष्ठ्यां सायाह्ने बोधयाम्यतः । तस्मादहन्त्वा प्रतिबोधयामि विभूतिराज्यप्रतिपत्तिहेतोः । यथैव रामेण हतो दशास्यस्तथैव शत्रून् विनिपातयामि ॥ अशेषसुखलाभाय नानाविभवहेतवे । नेतव्यः श्वोदिते गेहे सर्वकामप्रदो भव ॥ नमस्ते विल्ववृक्षाय सर्वकामप्रदाय च । दातव्यं श्वोदिते मह्यं पूजनीयं फलद्वयम् ॥ महादेवप्रियोऽसि त्वं श्रीवृक्षः सर्वकामदः । दुर्गायागनिमित्तं हि शाखामेकां प्रयच्छ मे ॥ इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा, अञ्जलिम्वद्ध्वा—ओं पल्लवैः श्रीफलोपेतैः शाखाभिः सुरनायिके । पल्लवे संस्थिते देवी गृहाणार्चां सुरेश्वरि ॥ त्रैलोक्यनर्मिते देवि नमस्ते शङ्करप्रिये । एह्येहि भगवत्यम्ब विल्ववृक्षनिवासिनि ॥ श्वोदिते वर्तते कार्यमतस्त्वां पूजयाम्यहम् ॥ इति बोधयित्वा विल्वतरुं स्पृशन्नामन्त्रयेत्—ओं मेरुमन्दरकैलासहिमवच्छिखरे गिरौ । जातः श्रीफलवृक्ष त्वमम्बिकायाः सदा प्रियः ॥ श्रीशैलशिखरे जातः श्रीफलः श्रीनिकेतनः । नेतव्योऽसि मया वृक्ष पूज्यो दुर्गास्वरूपतः ॥ ततः पीतसूत्रेण विल्ववृक्षं वेष्टयित्वा प्रणमेत् । आचारात् पीतवस्त्रेण छेद्यशाखान्तर्गतफलयुगलवेष्टनं कुर्यात् । ततः ओं सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते । भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ इति प्रणम्य नीराजनं कुर्यात् ।

अथ महासप्तम्यां नवपत्रिकास्थापनविधिः

महासप्तम्यां (१) प्रातः कृतनित्यक्रियो यजमानः पूर्वदिनाभिमन्त्रितविल्ववृक्षसमीपं गत्वा पूजोपकरणान्यासाद्य

---

(१) देवीपुराणे—आश्विने शुक्लपक्षे तु सप्तम्यादितिथित्रये । महाशब्दः प्रयोक्तव्यो नान्यथेति विनिश्चयः ॥

ज्योतिर्निबन्धे—आश्विनस्य सिते पक्षे सुमुहूर्तेन सप्तमी । तस्यां च पत्रिकापूजा कर्तव्या नरनायकैः ॥ प्रशस्तां सफलां विल्वशाखामाहृत्य पूजयेत् । दुर्गापूजा च शाखायां विल्वे वा यस्तु पूजयेत् ॥ देवीपुराणे—सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्रिकायाः प्रवेशनम् । पत्रीप्रवेशात् पूर्वेद्युः सायाह्ने विल्ववासिनीम् ॥ चण्डीमामन्त्रयेद्विद्वान् नात्र षष्ठीपुरस्क्रिया । नन्दिकेश्वरः—मूलाभावेऽपि सप्तम्यां केवलायां प्रवेशयेत् ॥ तिथितत्त्वे—भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च या क्रियाः । तिथावुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद् बुधः ॥

आचम्य विल्ववृक्षं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य कृताञ्जलिः प्रसादयेदनेन—ॐ वनस्पते नमस्तुभ्यं वृक्षराज शिवप्रिय । दुर्गासम्प्रीतिकामोऽहं करोम्यर्चां तवाद्य भोः । ॐ विल्ववृक्ष महाभाग सर्वदा शङ्करप्रिय । गृहीत्वा तव शाखान्तु दुर्गापूजां करोम्यहम् ॥ शाखाच्छेदोद्भवं दुःखं न च कार्यं त्वया प्रभो ॥ इति प्रसाद्य—ॐ छिन्धि छिन्धि फट् ह्रीं स्वाहा । ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा । इति मन्त्रद्वयेन निशितछुरिकया फलयुगलयुतां विल्वशाखामेकच्छेदेन (१) छेदयित्वा तां हस्तेन धृत्वा प्रार्थयेदनेन—ॐ देवैर्गृहीत्वा शाखा ते पूजिता चेति विश्रुतिः । पुत्रायुर्धनवृद्ध्यर्थं नेष्यामि त्वामुमाप्रियाम् ॥ विल्वशाखां समाश्रित्य राज्यं देवि प्रयच्छ मे ॥ ॐ आगच्छ चण्डिके देवि सर्वकल्याणहेतवे । कात्यायनि गृहाणार्चां नमस्ते शङ्करप्रिये ॥ इति प्रणम्य दोलादिना समानीय दुर्गापूजनगृहप्राङ्गणे पीठोपरि स्थापयित्वा—ॐ विल्वशाखायै नमः । इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् । ततो गृहद्वारमागत्य गोमयेन कृतमण्डले भूतानि सम्पूज्याऽपसारयेत् । तद्यथा—ॐ भूतानि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य पाद्यादिभिः ॐ भूतेभ्यो नमः । इति सम्पूज्य माषभक्तबलिं तेभ्यो दद्यादनेन—ॐ भूताः प्रेताः पिशाचाश्च ये सन्त्यत्र भूतले । ते गृह्णन्तु मया दत्तो बलिरेष प्रसाधितः ॥ पूजिता गन्धपुष्पाद्यैर्बलिभिस्तर्पितास्तथा । देशादस्माद् विनिःसृत्य पूजां पश्यन्तु मत्कृताम् ॥ ॐ भूतेभ्यः एष माषभक्तबलिर्नमः इति सपुष्पजलमादायोत्सृज्येत् । ततः तालत्रयेण 'ॐ फट्' इति मन्त्रेण सप्तवारानभिमन्त्रितान् गौरसर्षपयवपुष्पाणि चतुर्दिक्षु विकीर्य भूतानपसारयेत् । अथ पुनर्बिल्वशाखायाम्—ॐ चामुण्डायै नमः । इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य देव्या आसनं (बिल्वशाखाधारपीठं) धृत्वा—ॐ श्रीशैलशिखरे जातः श्रीफलः श्रीनिकेतनः । नेतव्योऽसि मया वृक्ष पूज्यो दुर्गास्वरूपतः ॥ इति चामुण्डतया ध्यात्वा—'ॐ चामुण्डे चल चल' इति चालयित्वा

---

(१) मत्स्यसूक्ते—स्त्रीणां दृष्टिः पशोर्दृष्टिर्यथा नैव तु छेदने । तथा कुर्यात् प्रयत्नेन शिविकायां प्रवेशयेत् । उन्मत्तं पतितं क्लीवं वामनं छिद्रसंयुतम् । न योजयेद् दरिद्रञ्च मन्त्रहीनं न वेशयेत् ॥

प्रतिमासन्निहितां गीतवाद्यादिना गृहं प्रवेश्य—ॐ आरोपितासि दुर्गे त्वं मृन्मये श्रीफलेऽपि च । स्थिरा नितान्तं भूत्वा मे गृहे त्वं कामदा भव ॥ इति संचाल्य पूजास्थाने पीठोपरि स्थिरीकृत्य देव्या दक्षिणदिशि श्वेतापराजितालताबद्धा कदली–दाडिम–धान्य–हरिद्रा–मान–कचु–विल्व–अशोक–जयन्तीरूपा नवपत्रिकाः (१) स्थापयेत् । ततः प्रत्येकं स्नपयेत् । कुशादिकमादाय—ओमद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहं सप्तजन्मकृतपापक्षयकामो (२) नवपत्रिकारूपां दुर्गां स्नापयिष्ये । इति सङ्कल्प्य–तत्र प्रथमं शुद्धजलेन १–ॐ कदलीतरुसंस्थासि विष्णोर्वक्षःस्थलाश्रये । स्नापयाम्यद्य पत्रि त्वां नमस्ते चण्डनायिके ॥ २–ॐ दाडिम्यघविनाशाय क्षुन्नाशाय सदा भुवि । निर्मिता फलकामाय प्रसीद त्वं हरिप्रिये ॥ ३–ॐ लक्ष्मीस्त्वं धान्यरूपासि प्राणिनां प्राणदायिनि । स्थिरात्यन्तं हि नो भूत्वा गृहे मे कामदा भव ॥ ४–ॐ हरिद्रे हररूपासि शङ्करस्य सदाप्रिये । रुद्ररूपेण देवि त्वं सर्वशान्ति प्रयच्छ मे ॥ ५–ॐ मानो मान्येषु वृक्षेषु माननीयः सुरासुरैः । स्नापयामि महादेवि मानं देहि नमोस्तु ते ॥ ६–ॐ कच्चित्त्वं स्थावरस्थासि सदा सिद्धिप्रदायिनि । दुर्गारूपेण सर्वत्र स्नानेन विजयं कुरु ॥ ७–ॐ श्रीफल श्रीनिकेतोऽसि सदा विजयवर्धनः । देहि मे हितकामाश्च प्रसन्नो भव सर्वदा ॥ ८–ॐ स्थिरा भव सदा दुर्गे अशोके शोकहारिणि । मया त्वं पूजिता दुर्गे स्थिरा भव हरप्रिये ॥ ९–ॐ जयन्ती जयरूपासि जगतां जयकारिणि । स्नापयामीह देहि त्वां जयन्देहि गृहे मम ॥ ततो नदीजलेन नवपत्रिकाः प्रत्येकं स्नपयेत् । ॐ आत्रेयी भारती गङ्गा यमुना च सरस्वती । सरयूर्गण्डकी श्वेता कावेरी कौशि-

---

(१) रम्भा कचुर्हरिद्रा च जयन्ती विल्वदाडिमौ । अशोको मानकं चैव धान्यादिर्नवपत्रिका ॥ समूला पत्रिका ग्राह्या हरिद्राधान्यकं विना ॥

(२) महाष्टम्याम्—अष्टसहस्रवर्षावच्छिन्नस्वर्गाधिकरणकस्थितिकामः । नवम्यां तु धनपुत्रविवर्धनशतयज्ञफलकामः । इति ।

की तथा ॥ भोगावती च पाताले स्वर्गे मन्दाकिनी तथा । एताः सुमनसो भूत्वा भृङ्गारैः स्नपयन्तु ते ॥ ॐ देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाऽप्सरसाङ्गणाः । ऋषयो देवपुत्राश्च भृङ्गारैः स्नपयन्तु ते ॥ दुर्गा चण्डेश्वरी चण्डी वाराही कार्तिकी तथा । नारसिंही तथा काली इन्द्राणी वैष्णवी तथा ॥ एताः सुमनसो भूत्वा भृङ्गारैः स्नपयन्तु ते ॥ इति नवपत्रिकाः स्नपयेत् । ततः शुभे लग्ने बिल्वपत्रे घृतेन कज्जलं विधाय तेन प्रतिमायाः प्रथमं दक्षिणं, ततो वामं, तत ऊर्ध्वं चक्षुर्दद्यात् (कज्जलं कुर्यात्) तत्र मन्त्रः—ॐ इदं नेत्रत्रयं दिव्यं चन्द्रसूर्यानलप्रभम् । ताराकारमयं देवि पश्य त्वं भुवनत्रयम् ॥ ओं ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥ इदं चक्षुः ॐ भगवत्यै श्री दुर्गादेव्यै नमः । इति दत्त्वा आचारात् पटयवनिकामपसार्य्यं कूष्माण्डबलिं प्रदर्शयेत् । ततो दक्षिणे पूजार्थवस्तूनि वामे नैवेद्यादिकं सम्पाद्य पूजामारभेत् ।

तत्र महासप्तम्यां दुर्गापूजाविधिः

कुश-जल-तिलानादाय—ओमद्य आश्विने मासि शुक्ले पक्षे महासप्तम्यां तिथौ (१)—'अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः' सपरिवारस्योपस्थितशरीराविरोधेन महाभयाभावपूर्वकपिपुलधनधान्यसुतान्विताऽतुलविभूतिचतुर्वर्गफलप्राप्तिपूर्वकश्रीदुर्गाप्रीतिकामः साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारायाः भगवत्याः श्रीदुर्गादेव्याः वार्षिकशरत्कालीनपूजनमहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य कुशपुष्पाक्षतान्यादाय देव्याः हृदये अनामिकाङ्गुष्ठाभ्याम्—ओं मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनो त्वरिष्टं यज्ञꣳसमिमन्दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामोम्प्रतिष्ठ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारभगवति दुर्गे देवि इह सुप्रतिष्ठिता भव । इति देव्याः प्राणप्रतिष्ठां विधाय आवाहयेत् ।

---

(१) ग्रामपूजायां तु—'अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः' इत्यरय स्थाने—ऐतद्ग्रामवासिनां नानानां गोत्राणां सकलजनानामेतत्पूजोपकारकाणामन्यद्ग्रामवासिनां च' इति योज्यम् ।

(एवं १५५ पृष्ठे सर्वासु प्राणप्रतिष्ठां वक्ष्ये) ततः पुष्पमादाय—ओं आवाहयाम्यहं देवीं मृन्मये श्रीफलेऽपि च । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥ ओं कैलासशिखराद् देवि विंध्याद्रेः हिमपर्वतात् । आगत्य विल्वशाखायां मृन्मये कुरु सन्निधिम् ॥ ओं दुर्गे देवि इहागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय । यज्ञभागं गृहाणेमं योगिनीकोटिभिः सह । ओं एँ ह्लीं क्लीं चामुण्डे दक्षयज्ञविनाशिनि साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीदुर्गे देवि इहागच्छ इह तिष्ठेति स्थापयित्वा कृताञ्जलिः पठेत्—ओं एह्येहि भगवत्यम्बे शत्रुक्षयजयप्रदे । भक्तितः पूजयामि त्वां दुर्गे देवि सुरार्चिते ॥ पल्लवैश्च फलोपेतैः पुष्पैश्च सुमनोहरैः । पल्लवे संस्थिते देवि पूजये त्वां प्रसीद मे ॥ ओं दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय । यज्ञभागं गृहाणेममष्टाभिः शक्तिभिः सह ॥ ओं आयाहि वरदे देवि लोकानुग्रहकारिणि । यज्ञभागं गृहाणेमं यन्मया परिकल्पितम् ॥ ओं दुर्गे देवि जगन्मातः सृष्टिसंहारकारिणि । पत्रिकासु समस्तासु सान्निध्यमिह कल्पय ॥ शारदीयामिमां पूजां करोमि कमलेक्षणे । आज्ञापय महादेवि दैत्यदर्पविनाशिनि ॥ चण्डि त्वं चण्डरूपासि सुरतेजो महावले । प्रविश्य तिष्ठ यज्ञेऽस्मिन् यावत् पूजां करोम्यहम् ॥ ततो—ओं जटाजूटसमायुक्तामर्धेन्दुकृतशेखराम् । लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसदृशाननाम् ॥ अतसीपुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् ॥ नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ सुचारुदशनां तद्वत् पीनोन्नतपयोधराम् । त्रिभंगस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् ॥ कपालं खेटकं घण्टां दर्पणं तर्जनीं धनुः । ध्वजं डमरुकं पाशं वामहस्तेपु बिभ्रतीम् ॥ शक्ति च मुद्गरं शूलं खड्गं वज्रांकुशं तथा । शङ्खं चक्रं शरञ्चैव दक्षिणेषु च बिभ्रतीम् ॥ अधस्तान्महिषं तद्वद् विशिरस्कं प्रदर्शयेत् । शिरश्छेदोद्भवं तद्वद् दानवं खड्गपाणिनम् । हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्गतं तु विभूषितम् । रक्तं रक्तीकृताङ्गञ्च रक्तविस्फारितेक्षणम् ॥ वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीकुटिलाननम् । सपाशवामहस्तेन धृतकेशञ्च दुर्गया ॥ वमद्रुधिरवक्त्रं च देव्याः सिहं प्रदर्शयेत् ॥ देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरिस्थितम् ॥ किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममंगुष्ठं महिषोपरि । स्तूयमानं च तद्रूप-

ममरैः सन्निवेशयेत् ॥ उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका । चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ॥ आभिः शक्तिभिरष्टाभिः सततं परिवेष्टिताम् । चिन्तयेत् सततं दुर्गां धर्मकामार्थमोक्षदाम् ॥ इदं ध्यानपुष्पं साङ्गसायुधसपरिवारायै श्रीदुर्गादेव्यै नमः ।

ततः स्वागतं—ओं स्वागतं ते महामाये चण्डिके सर्वमङ्गले । पूजां गृहाण विविधां सर्वकल्याणकारिणि ॥ इति स्वागतम् कृत्वा—ओं देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते । यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ॥ इति स्थिरीकृत्य आसनं दद्यादनेन—ओं आसनं भास्वरं तुङ्गं मांगल्यं सर्वमङ्गले । भजस्व जगतां मातः प्रसीद जगदीश्वरि ॥ इदमासनं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारायै भगवत्यै श्रीदुर्गादेव्यै नमः । ततः पाद्यम्—ओं गङ्गादिसलिलाधारं तीर्थं मन्त्राभिमन्त्रितम् । दूरयात्राश्रमहरं पाद्यं तत्प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं पाद्यं साङ्ग०, तत उद्वर्तनम्—ओं तिलतैलसमायुक्तं सुगन्धिद्रव्यनिर्मितम् । उद्वर्तनमिदं देवि गृहाण त्वं प्रसीद मे ॥ ततोऽर्घ्यम्—ओं तिलतण्डुल संयुक्तं कुशपुष्पसन्वितम् । सुगन्धं फलसंयुक्तमर्घ्यं देवि गृहाण मे ॥ एषोऽर्घ्यः साङ्ग० । तत आचमनीयम्—ओं स्नानादिकं विधायापि यतः शुद्धिरवाप्यते । इदमाचमनीयं हि दुर्गे देवि प्रगृह्यताम् । इदमाचमनीयं साङ्ग० । ततः स्नानीयम्—ॐ खमापः पृथिवी चैव ज्योतिषं वायुरेव च । लोकसंस्मृतिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम् ॥ इदं स्नानीयम् साङ्ग० । ततः अष्टगार्घ्यः—ॐ जगत्पूज्ये त्रिलोकेशि सर्वदानवभञ्जिनि । अष्टगार्घ्यं गृहाण त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ॥ एष अष्टगार्घ्यः साङ्ग० । ततो दधि–सिता–घृत–मधु–मिश्रितात्मकं कांस्यपात्रेण पिहितं कांस्यपात्रस्थं मधुपर्कमादाय—ॐ मधुपर्कं महादेवि ब्रह्माद्यैः कल्पितं तव । मया निवेदितं भक्त्या गृहाण गिरिपुत्रिके ॥ एष मधुपर्कः साङ्ग० । ततः पुनराचमनीयम्—ॐ स्नानादिकं पुरः कृत्वा पुनः शुद्धिरवाप्यते । पुनराचमनीयं ते दुर्गे देवि प्रगृह्यताम् ॥ इदं० । ततश्चन्दनम्—ओं मलयाचलसम्भूतं नानागन्धसमन्वितम् । शीतलं बहुलामोदं चन्दनं गृह्यता-

मिदम् ॥ इदं श्रीखण्डचन्दनं० । ततो रक्तचन्दनं—ओं रक्तानुलेपनं देवि स्वयं देव्या प्रकाशितम् । तद् गृहाण महाभागे शुभं देहि नमोस्तु ते ॥ इदं रक्तचन्दनं साङ्ग० । ततः सिन्दूरम्—ॐ सिन्दूरं सर्वसाध्वीनां भूषणाय विनिर्मितम् । गृहाण वरदे देवि भूषणानि प्रयच्छ मे ॥ इदं सिन्दूराभरणं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारायै श्रीदुर्गादेव्यैनमः । ततः कुङ्कुमम्—ॐ जपापुष्पप्रभं रम्यं नारीभालविभूषणम् । भास्वरं कुङ्कुमं रक्तं देवि दत्तं प्रगृह्य मे ॥ इदं कुङ्कुमाभरणम्० । ततोऽक्षतम्—ॐ अक्षतं धान्यजं देवि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । प्राणदं सर्वभूतानां गृहाण वरदे शुभे । इदमक्षतम्० । ततः पुष्पम्—चलत् परिमलामोदमत्तालिगणसङ्कुलम् । आनन्दनन्दनोद्भूतं दुर्गायै कुसुमं नमः ॥ एतानि पुष्पाणि० । ततो विल्वपत्रं—ॐ अमृतोद्भवं श्रीवृक्षं शङ्करस्य सदा प्रियम् । पवित्रं ते प्रयच्छामि सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ इदं विल्वपत्रम्० । ततो मालाम्—ॐ नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम् । प्रयच्छामि सदा भद्रे गृहाण परमेश्वरि ॥ इदं माल्यम्० । ततो वस्त्रम्—ॐ तन्तुसन्तानसंयुक्तं कलाकौशलकल्पितम् । सर्वाङ्गाभरणश्रेष्ठं वसनं परिधीयताम् ॥ इदं पीतवस्त्रं वृहस्पतिदैवतं साङ्ग० । ततो द्वितीयवस्त्रम्—यामाश्रित्य महादेवो जगत्संहारकः सदा । तस्यै ते परमेशान्यै कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥ इदं द्वितीयवस्त्रम्० । ततोऽलङ्करणम्—ॐ सौवर्णाद्यलङ्कारं कङ्कणादिविभूषितम् । हारकेयूरयुक्तानि नूपुराणि गृहाण मे ॥ इदमलङ्करणम्० । ततो धूपम्—ॐ गुग्गुलं घृतसंयुक्तं नानाभक्ष्यैश्च संयुतम् । दशाङ्गं गृह्यतां धूपं दुर्गे देवि नमोस्तु ते ॥ एष धूपः० । ततो दीपः—ॐ मार्तण्डमण्डलान्तस्थचन्द्रविम्वाग्नितेजसाम् । निधानं देवि दीपोऽयं निर्मितस्तव भक्तितः ॥ एष दीपः० । तत सुगन्धितद्रव्यम्—ओं परमानन्दसौरभ्यं परिपूर्णदिगम्बरम् । गृहाण सौरभं दिव्यं कृपया जगदम्बिके ॥ इदं सुगन्वितद्रव्यम्० । ततः कर्पूरदीपः—ओं त्वं चन्द्रसूर्यज्योतींषि विद्युदग्न्योस्तथैव च । त्वमेव जगतां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष कर्पूरदीपः० । ततो नानाविधनैवेद्यानि—ओं दिव्यान्नरससंयुक्तं नानाभक्ष्यैस्तु संयुतम् । चोष्यपेयसमायुक्तमन्नं देवि गृहाण मे ॥

एतानि नानाविधनैवेद्यानि० । ततः पायसम्—ओं गव्यसर्पिःपयोयुक्तं नानामधुरमिश्रितम् । निवेदितं मया भक्त्या परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥ इदं पायसम्० । ततो मोदकम् (लड्डू)—ओं मोदकं स्वादु रुचिरं कर्पूरादिभिरन्वितम् । मिश्रं नानाविधैर्द्रव्यैः प्रतिगृह्याशु भुज्यताम् ॥ इदं मोदकम्० । ततोऽपूपादिः—ओं अपूपानि च पक्वानि मण्डका वटकानि च । पायसापूपमन्नं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदमपूपादिनैवेद्यानि० । ततः फलादीनि—ओं फलमूलानि सर्वाणि ग्राम्याऽरण्यानि यानि च । नानाविधसुगन्धीनि गृहाण देवि यथासुखम् ॥ एतानि नानाविधानि फलानि० । ततः पानीयम्—ओं पानीयं शीतलं स्वच्छं कर्पूरादिसुवासितम् । भोजने तृप्तिकृद्यस्मात् कृपया परिगृह्यताम् ॥ इदं पानीयम्० । ततः करोद्वर्तनजलम्–ओं कर्पूरादीनि द्रव्याणि सुगन्धीनि महेश्वरि । गृहाण जगतां नाथे करोद्वर्तनहेतवे ॥ इदं करोद्वर्तनजलम्०॥ तत आचमनीयम्—ओं आमोदवस्तु सुरभीकृतमेतदनुत्तमम् । गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् ॥ इदमाचनीयम्० । ततः ताम्बूलम्—ओं तमालदलकर्पूरनागवल्लीसमन्वितम् । संशोधितं सुगन्धं च ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं ताम्बूलम्० । ततः कज्जलम्—ओं स्निग्धमुष्णं हृद्यतमं दृशां शोभाकरं तव । गृहीत्वा कज्जलं सद्यो नेत्राण्यञ्जय पार्वति ॥ इदं कज्जलम्० । ततः सौवीराञ्जनम्—ओं नेत्रत्रयं महामाये भूषयामलकज्जलैः । सौवीरकाञ्जनैर्दिव्यैर्जगदम्ब नमोस्तु ते ॥ इदं सौवीराञ्जनम्० । ततः आलक्तकम्–ओं त्वत्पादाम्भोजनखरद्युतिकारिमनोहरम् । आलक्तकमिदं देवि मया दत्तं प्रगृह्यताम् ॥ इदमालक्तकम्०। ततश्चामरम्–ओं चामरं चमरीपुच्छं हेमदण्डसमन्वितम् । मयार्पितं राजचिह्नं चामरं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं चामरम्० । ततो व्यजनम्—ओं बर्हिबर्हकृताकारं मध्यदण्डसमन्वितम् । गृह्यतां व्यजनं दुर्गे देहस्वेदापनुत्तये ॥ इदं व्यजनम्० । ततो घण्टावाद्यम्—ओं यया भीषयसे दैत्यान् यया पूरयसेऽसुरम् । तां घण्टां सम्प्रयच्छामि महिषघ्नि प्रसीद मे ॥ इदं घण्टावाद्यम्० । ततो दक्षिणाद्रव्यम्—ओं काञ्चनं रजतोपेतं नानारत्नसमन्वितम् । दक्षिणार्थं च देवेशि गृहाण त्वं नमोस्तु ते ॥ इदं

दक्षिणाद्रव्यम्०। ततः पुष्पाञ्जलिः—ॐ दुर्गे दुर्गे महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि। त्वं काली कमला ब्राह्मी त्वं जया विजया शिवा॥ त्वं लक्ष्मीर्विष्णुलोकेषु कैलाशो पार्वती तथा। सरस्वती ब्रह्मलोके चेन्द्राणी शक्रपूजिता॥ वाराही नारसिंही च कौमारी वैष्णवी तथा। त्वमापःसर्वलोकेषु ज्योतिर्ज्योतिःस्वरूपिणी॥ योगमाया त्वमेवाऽसि वायुरूपा नभःस्थिता। सर्वगन्धवहा पृथ्वी नानारूपा सनातनी॥ विश्वरूपे च विश्वेशे विश्वशक्तिसमन्विते। प्रसीद परमानन्दे दुर्गे देवि नमोस्तु ते॥ नानापुष्पसमाकीर्णं नानासौरभसंयुतम्। पुष्पाञ्जलिञ्च विश्वेसि गृहाण भक्तवत्सले॥ एष पुष्पाञ्जलिः०। ततो नीराजनम् (आरार्तिकम्)—ओं कर्पूरवर्तिसंयुक्तं वह्निना दीपितञ्च यत्। नीराजनं च देवेशि गृह्यतां जगदम्बिके॥ इदं नीराजनम्०। ततः पञ्चवर्तिनीराजनम्—ओं पञ्चवर्तिसमायुक्तं गोघृतेन च पूरितम्। नीराजनं जगद्वन्द्ये गृहाणाऽम्ब नमोस्तु ते॥ इदं पञ्चवर्तिनीराजनम्०। ततोऽच्छिद्रावधारणम्—ओं दुर्गे देवि महामाये यादृक्पूजा मया कृता। अच्छिद्रास्तु शिवे साङ्गा तव देवि प्रसादतः॥ ततः क्षमापनम्—ॐ प्रार्थयामि महामाये यत्किञ्चित् स्खलितं मम। क्षम्यतां तज्जगन्मातः दुर्गे देवि नमोस्तु ते॥ ततः साष्टाङ्गं प्रणमेत्।

अथ नवपत्रिकासु नवदुर्गापूजाविधिः

ततो नवपत्रिकासु कदल्यां–ब्रह्माणीम्। दाडिमे–रक्तदन्तिकाम्। धान्ये–लक्ष्मीम्। हरिद्रायां–दुर्गाम्। मानके चामुण्डाम्। कचुपत्रे–कालिकाम्। बिल्वपत्रे–शिवाम्। अशोके–शोकरहिताम्। जयन्त्यां–कार्तिकीम्, आवाह्य पूजयेत्। तद्यथा—पुष्पाक्षतमादाय कदल्याम्—ॐ ह्रीं ब्रह्माणि इहागच्छ, इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं ह्रीं ब्रह्माण्यै नमः। इति पञ्चोपचारैः संपूज्य पुष्पाञ्जलिमादय—ओं ब्रहाणि त्वं समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय। रम्भास्वरूपे मे नित्यं शान्ति कुरु नमोऽतु ते॥ एष पुष्पाञ्जलिः०। ततो दाडिमे—ओं ह्रीं रक्तदन्तिके इहागच्छ०, ॐ रक्तदन्तिकायै नमः इति सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिः—ॐ दाडिमि त्वं पुरा युद्धे रक्तबीजस्य संक्षये। उमाकार्यं कृतं यस्मात्तस्मान्मे वरदा

भव ॥ ततो धान्ये—ओं ह्रीं लक्ष्मि इहागच्छ०, ओं ह्रीं धान्याधिष्ठात्र्यै लक्ष्म्यै नमः। इति सम्पूज्य, पुष्पाञ्जलिः—ओं जगतः प्राणरक्षार्थं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा। उमाप्रीतिकरं धान्यं तस्मात्त्वं रक्ष मां सदा॥ ततो हरिद्रायां-ओं ह्रीं दुर्गे इहागच्छ०, ओं ह्रीं हरिद्राधिष्ठात्र्यै दुर्गायै नमः। इति सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिः–ॐ हरिद्रे वरदे देवि उमारूपासि सुव्रते। मम विघ्नविनाशाय पूजां गृह्ण प्रसीद मे॥ ततो मानके--ॐ ह्रीं चामुण्डे इहागच्छ०, ॐ ह्रीं मानाधिष्ठात्र्यै चामुण्डायै नमः। इति सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिः—ॐ यस्य पत्रे वसेद् देवी मानवृक्षः शचीप्रियः। मम विघ्नविनाशाय पूजां गृह्ण यथासुखम्॥ ततः कचुपत्रे–ॐ ह्रीं कालि इहागच्छ०, ॐ ह्रीं कचुपत्रिकाधिष्ठात्र्यै काल्यै नमः। इति सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिः—ॐ महिषासुरयुद्धे त्वं कचुभूतासि सुव्रते। मम चानुग्रहार्थाय आगतासि हरप्रिये॥ ततो बिल्वशाखायाम्—ॐ ह्रीं शिवे इहागच्छ०, ॐ ह्रीं बिल्वाधिष्ठात्र्यै शिवायै नमः। इति सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिः–महादेवप्रियकरो वासुदेवप्रियः सदा। उमाप्रीतिकरो वृक्षो बिल्ववृक्ष नमोस्तु ते॥ ततोऽशोके—ॐ ह्रीं शोकरहिते इहागच्छ०, ॐ ह्रीं अशोकाधिष्ठात्र्यै शोकरहितायै नमः। इति सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिः—ॐ शिवप्रीतिकरो देवो ह्यशोकः शोकनाशनः। उमाप्रीतिकरो यस्मादशोकं मां सदा कुरु॥ ततो जयन्त्याम्– ॐ ह्रीं कार्तिकि इहागच्छ०, ॐ ह्रीं जयन्त्यधिष्ठात्र्यै कार्तिक्यै नमः। पुष्पाञ्जलिः—ॐ निशुम्भशुम्भमथने सेन्द्रैर्देवगणैः सह। जयन्ति पूजितासि त्वमस्माकं वरदा भव॥ ततोऽञ्जलिं बद्ध्वा—ॐ पत्रिके नवदुर्गे त्वं महादेवमनोरमे। पूजां समस्तां संगृह्य रक्षां कुरु महेश्वरि॥ स्थापितासि महादेवि पत्रिकासु सुरेश्वरि। आयुरारोग्यविजयं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥ इति पुष्पाञ्जलिं दद्यात्।

अथ दुर्गापरिवारपूजाविधिः

ततो देव्याः दक्षिणे लक्ष्मीं ध्यायेत्–ॐ तप्तकाञ्चनसंकाशां द्विभुजां लोललोचनाम्। कटाक्षविशिखोद्दीप्तामञ्जनाञ्चितलोचनाम्॥ शुक्लाम्बरपरीधानां सिन्दूरतिलकोज्ज्वलाम्। शुक्लपद्मासनगतां ध्यायेन्नारायणप्रियाम्॥ इति

ध्यात्वा ॐ मनोजूतिरित्यादिपूर्वोक्तमन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां विधाय ॐ ह्रीं क्लीं भूर्भुवः स्वर्लक्ष्मि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य पाद्यादिना यथोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिमादाय— ॐ विश्वरूपस्य भार्यासि पद्मे पद्मालये शुभे। सर्वतः पाहि मां देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते॥ इति पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। ततो वामे सरस्वतीं ध्यायेत्–ॐ शंखकुन्देन्दुसंकाशां द्विभुजां पद्मलोचनाम्। कटाक्षविशिखोद्दीप्तां दिव्याम्बरपरिच्छदाम्॥ दिव्याभरणवेशाढ्यां वाग्रूपां परमां भजे॥ इति ध्यात्वा मनोजूतिरित्यनेन महासरस्वत्याः प्राणप्रतिष्ठां विधाय ॐ ह्रीं भूर्भुवः स्वर्महासरस्वति इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य यथोपचारैः सम्पूज्य–ॐ भद्रकाल्यै नमो नित्यं सरस्वत्यै नमो नमः। वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यास्थानेभ्य एव च॥ इति प्रणमेत्। ततो लक्ष्म्या दक्षभागे गणेशं ध्यायेत्–ॐ लम्बोदरं महाकायं गजवक्त्रं त्रिलोचनम्। सर्वदेवमयं देवं पार्वतीनन्दनं भजे॥ इति ध्यात्वा मनोजूतिरिति मन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां विधाय ॐ ह्रीं भूर्भुवः स्वर्गं गणेश इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ॐ ह्रीं गं गणेशाय नमः। इति यथोपचारैः सम्पूज्य–– ॐ एकदन्तं महाकायं लम्बोदरगजाननम्। विघ्ननाशकरं देवं हेरम्बं प्रणयाम्यहम्॥ इत्यनेन प्रणमेत्। ततः सरस्वत्याः वामे कार्तिकेयं ध्यायेत्––ॐ कार्तिकेयं महाभागं मयूरोपरि संस्थितम्। तप्तकाञ्चनवर्णाभं शक्तिहस्तं वरप्रदम्। दिवसं शत्रुहन्तारं नानालङ्कारभूषितम्॥ इति ध्यात्वा मनोजूतिरिति मन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां विधाय ॐ ह्रीं गुहाय कार्तिकेयाय सेनान्यै स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गसायुधसवाहनश्रीकार्तिकेय इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य उक्तमूलेन ॐ साङ्गसायुधसवाहनश्रीकार्तिकेयाय नमः। इति यथोपचारैः सम्पूज्य–ॐ कार्तिकेय महाभाग गौरीहृदयनन्दन। कुमार रक्ष मां नित्यं दैत्यार्दन नमोस्तु ते॥ इति प्रणमेत्। ततः कार्तिकेयवामे जयां (१) ध्यायेत्–ॐ तप्तकाञ्चनसंकाशां

---

(१) यत्र जयायाः विजयायाश्च योगिन्याः प्रतिमा तत्र पद्धतिरीत्या प्राणप्रतिष्ठां विधाय पूजयेत्। यत्र प्रतिमाऽभावस्तत्राऽवाह्य पूजयेत्। क्वचित् पद्धतौ जयापूजनतः प्रागेव शिव-गौरी-नन्दिनां पूजनमस्ति। अत्र यथाचाराद् व्यवस्था कर्तव्या।

द्विभुजां लोललोचनाम् । कटाक्षविशिखोपेतां दिव्याम्बरपरिच्छदाम् ॥ दिव्याभरणसंयुक्तां ध्यायेत् सिद्धिप्रदायिनीम् ॥ इति ध्यात्वा मनोजूतिरिति प्राणप्रतिष्ठां विधाय ओं ह्लीं ह्लीं जये इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ॐ ह्लीं ह्लीं जयायै नमः । इति यथोपचारैः पूजयेत् । ततो गणेशदक्षिणे विजयां ध्यायेत्—ॐ दलिताञ्जनसंकाशां द्विभुजां खञ्जनेक्षणाम् । कटाक्षविशिखोद्दीप्तां कज्जलाञ्चितलोचनाम् ॥ दिव्याम्बरपरीधानां नानारत्नविभूषिताम् । ध्यायेत्तां विजयां नित्यां सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् ॥ इति ध्यात्वा मनोजूतिरित्यादिना प्राणप्रतिष्ठां विधाय—ॐ ऐं ह्लीं विजये इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ॐ ऐं ह्लीं विजयायै नमः । इति यथोपचारैः (१) पूजयेत् । (ततः प्रथमदिनोक्तक्रमेण दशदिक्पालान् (२) नवग्रहाँश्च पूजयेत्) ततो देव्याः वाहनादिपूजां कुर्यात् ।

अथ दुर्गावाहनादिपूजाविधिः

तत्र (३) प्रथमं सिंहपूजा । पुष्पाण्यादाय—ॐ तीक्ष्णदंष्ट्रः करालास्यः सटाशोभितकन्धरः । चतुरंघ्रिर्वज्रनखो

---

(१) विजयापूजनोत्तरं क्वचित् ब्रह्मणः सावित्र्याश्च पूजनं दृश्यते । सति सम्भवे तदपि कर्तव्यम् ।

(२) कोष्ठान्तर्गतदिक्पालादिपूजनं क्वचिदुपलभ्यते । प्रथमदिनोक्तपूजनैव गतार्थतेति केचित् ।

(३) सति सम्भवे अत्र देव्या अस्त्र-शस्त्रपूजाऽपि कर्तव्या (प्रधानपूजायां 'साङ्गसायुध' इत्युक्तत्वात् सति सम्भवे' इत्युक्तं, यदीच्छेत्तदा वाहनपूजातः प्रागेव कुर्यात) तद्यथा—ओं कपाल इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ॐ कपालाय नमः इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् । एवम्—ओं खेटक इहागक्छ, खेटकाय नमः । ओं घण्टे इहागच्छ, घण्टायै नमः । ओं धनुरिहागच्छ, धनुषे नमः । ओं ध्वज इहागच्छ, ध्वजाय नमः । ओं डमरुक इहागच्छ, डमरुकाय नमः ओं नागपाश इहागच्छ, नागपाशाय नमः, ओं शक्ते इहागच्छ, शक्तये नमः । ओं शूल इहागच्छ, शूलाय नमः । ओं खड्ग इहागच्छ, खड्गाय नमः ओं वज्र इहागच्छ,

महासिंहः प्रकीर्तितः ॥ इति ध्यात्वा–मनोजूतिरिति मन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां विधाय—ॐ ह्रां ह्रीं वज्रनखदंष्ट्रायुध महासिंहासन इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ॐ वज्रनखाय दंष्ट्रायुधाय महासिंहासनाय नमः। इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं दद्यादनेन—ॐ नमस्ते सर्वतोभद्र शिवो भव महीपते। त्रैलोक्यस्य तु सर्वस्य सिंहासन नमोऽस्तु ते॥ ॐ आसनं चासि दुर्गाया नानालङ्कारभूषितम्। मेरुसिंहप्रतीकाश सिंहासन नमोस्तु ते॥ इति प्रणमेत्। ततो महिषासुरं ध्यायेत्–ॐ महिषस्त्वं महावीर शिवरूप सदाशिव। अतस्त्वां पूजयिष्यामि क्षमस्व महिषासुर॥ इति ध्यात्वा मनोजूतिरित्यनेन प्राणप्रतिष्ठां विधाय–ॐ ह्रीं ह्रीं हूँ महिषासुर इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ॐ महिषासुराय नमः। इत्यनेन पञ्चोपचारैः सम्पूज्य –ॐ महिषस्त्वं महावीर इन्द्रादिदेवमर्दक। देव्यस्त्रताडितो भूत्वा गतः स्वर्गं नमोऽस्तु ते। इति प्रणमेत्। ततो मूषिकं मयूरं चावाह्य प्राणप्रतिष्ठां विधाय पञ्चोपचारैः पूजयेत्। ततो द्वितीयोक्तक्रमेण रेमन्तम्, उच्चैःश्रवसं तुरगं च पूजयेत्। ततो नवभैरवांश्च पूजयेत्। तद्यथा—

वज्राय नमः। ओं अङ्कुश इहागच्छ, अङ्कुशाय नम;। ओं शङ्ख इहागच्छ, शङ्खाय नमः। ओं शर इहागच्छ, शराय नमः। ओं छुरिके इहागच्छ, छुरिकाय नमः। ओं कट्टार इहागच्छ, कट्टाराय नमः। ओं कुन्त इहागच्छ, कुन्ताय नमः। ओं वर्मन इहागच्छ, वर्मणे नमः। ओं परशो इहागच्छ, परशवे नमः। इत्यनेन प्रत्येकं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं परशो त्वमतितीक्ष्णोऽसि सर्ववैरिविमर्दन। देवीहस्तगतश्चासि सदा तुभ्यं नमो नमः॥ यानि यानीह मुख्यानि प्रसिद्धान्यायुधानि च। क्षयकारीणि शत्रूणां विख्यातानि जगत्त्रये॥ यानि यान्यम्बिका धत्ते करेषु स्वेषु सर्वदा। भुशुण्डीपाशपरिघभिन्दिपालशिलागुडाः॥ ऋष्टितोमरकुन्ताश्च पट्टिशो मुशलस्तथा। गदाशतघ्नीकुणपच्छुरिकाकर्तरीमुखाः॥ सर्वास्तान् पूजयाम्यद्य सप्तम्यां च विशेषतः। सर्वे रक्षन्तु मां नित्यं सर्वसिद्धिं ददत्वपि॥ इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा ओं छत्राय नमः, चामराय नमः, इत्यनेन छत्रचामरौ च पूजयेत्।

पुष्पाञ्जलिमादाय, देव्या अग्रे—ॐ भैरवं परमं देवं सर्वकामप्रसाधकम् । पूजयाम्यग्रतो देव्याः सर्वाभीष्टफलप्रदम् । ॐ भीषणास्यं त्रिनयनमर्धचन्द्रविभूषितम् । स्फटिकाभं कङ्कणादिभूषाशतसमावृतम् ॥ अष्टवर्षवयस्कं च कुण्डलोल्लसितं भजे । धारयन्तं दण्डशूले भैरव्यादिसमायुतम् ॥ इति ध्यात्वा १–ॐ ऐँ ह्रीँ अँ असिताङ्गभैरवा इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, असिताङ्गभैरवाय नमः । इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् । एवम् २–ॐ ऐँ ह्रीँ इँ रुरुदभैरवाय नमः । ३–ॐ ऐँ ह्रीँ उँ चण्डभैरवाय नमः । ४–ॐ एँ ह्रीँ ऋँ क्रोधभैरवाय नमः । ५–ॐ ऐँ ह्रीँ लृँ उन्मत्तभैरवाय नमः । ६–ॐ ऐँ ह्रीँ ऐँ भयङ्करभैरवाय नमः । ७–ॐ ऐँ ह्रीँ ॐ भीषणभैरवाय नमः । ८–ॐ ऐँ ह्रीँ अँ संहारभैरवाय नमः । ९–ॐ ऐँ ह्रीँ कँ कपालिभैरवाय नमः । इति प्रथमान्तपदेनावाह्य चतुर्थ्यन्तपदेन सर्वान् पूजयेत् । ततः पूर्ववत् कलशेष्वावाहितदेवान् पञ्चोपचारैः सम्पूज्य प्रार्थयेत्—ॐ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । द्रव्यमारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥ कुङ्कमेन सदालब्धे चन्दनेन विलेपिते । विल्वपत्रकृपापाणे दुर्गेऽहं शरणं गतः ॥ ततः ॐ सर्वमङ्गलमाङ्गल्येत्यादि, ॐ रूपं देहि जयं देहीत्यादि च पठित्वा नमस्कुर्यात् । ततो वक्ष्यमाणविधिना बलिदानं कुमारीपूजनं च कृत्वा त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य यथालाभं तोरणादीनि देव्या गृहे संस्थाप्य नृत्यगीतवाद्यादिभिरुत्सवं कारयेत् ।

अथ महासप्तम्यां सायंकृत्यम्

सायंकाले सूर्यायाऽर्घं दत्त्वा देवीं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य नानास्तोत्रादिना पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा नीराजनं कुर्यात्–ॐ मङ्गले कालिके दुर्गे महिषासुरमर्दिनि । इदं नीराजनं देवि गृहाण सुरसुन्दरि ॥ ॐ समस्तयोगिनीचक्रे परिवारगणावृते । आरार्तिकमिदं दुर्गे कृपया प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं नीराजनम् ॐ साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारायै श्रीदुर्गादेव्यै

नमः। ततः कर्पूरनीराजनं दद्याद्—ओं त्वं चन्द्रसूर्यज्योतींषि विद्युदग्न्योस्तथैव च। त्वमेव जगतां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। इनि सप्तमी (१) कृत्यम्।

अथ छागवलिदानविधिः

स्ववामे स्नातं(२) छागं संस्थाप्य रक्तमाल्येन पञ्चडोरकेण वा वेष्टयित्वा 'ओं छागाय नमः' इति पञ्चोपचारैः

---

(१) सति सम्भवे सप्तम्यां मध्यरात्रौ श्मशाने बिल्वमूले प्रान्तरे वा भक्ष्यवस्तूनि गृहीत्वा शिवाभ्यो बलिं दद्यात्। अथ शिवाबलिदानविधिः—ॐ कालि कालि इत्यनेन शिवा आहूय पात्रे अन्नादिकं परिविष्य कुशत्रयादिकमादाय—ॐ ह्रीं एष बलिः शिवाभ्यो नमः। इत्युसृज्य—गृह्ण देवि महाभागे शिवे कालाग्निरूपिणि। शुभाशुभं फलं ब्रूहि गृह्ण देवि बलिं तव ॥ अथावशिष्टान्नव्यञ्जनादिभिः भैरवादिभ्यो बलिं दद्यात्। तद्यथा—एष बलिः, ॐ संहारभैरवाय नमः। बटुकेभ्यो नमः। विनायकेभ्यो नमः। मातृभ्यो नमः। क्षेत्रपालेभ्यो नमः। योगिनीभ्यो नमः। डाकिनीभ्यो नमः। शिवदूतीभ्यो नमः। इति यथाक्रमेण बलिं दत्त्वा तस्मात्स्थानात् किञ्चिदपसृत्य तासु भक्षयन्तीषु निश्चेष्टं देवीधिया प्रणम्य स्तुतिं कुर्यात्—शिवारूपधरे देवि गुह्यकाले नमोस्तु ते। उल्कामुखि ललज्जिह्वे घोररावे शृगालिनि ॥ श्मशानवासिनि प्रेत-शवमांसप्रियेऽनघे। अरण्यचारिण्यनघे शिवे जम्बूकरूपिणि ॥ नमोस्तु ते महामाये जगतारिणि कालिके। मातङ्गि कुक्कुटे रौद्रि महाकालि नमोस्तु ते ॥ इति स्तुत्वा शिवास्वपसृतासु सतीषु तत्र गत्वा फलं परीक्षेत्। निःशेषं भक्षिते सम्यक् फलम्, अर्धभक्षिते मध्यमम्, अभक्षिते तु निष्फलमिति ज्ञेयम्। तत उच्छिष्टमन्नादिभाजनं च भूमौ निखनेत्। तथाहि—

यदि काकाः खराः श्वानो ये चान्ये पापजातयः। भक्षयन्ति तदुच्छिष्टं तदा विघ्नं प्रजायते ॥ इति।

(२) देवीपुराणे—बलिं च ये प्रयच्छन्ति सर्वभूतविनाशनम्। तेषां तु तुष्यते देवी यावत्कल्पन्तु शाङ्करम् ॥ नवधा पशुघातं च महिषाजविघातनम् ॥ इत्यादि।

सम्पूज्य सचन्दनपुष्पाक्षतान्यादाय—ओमद्येत्यादि (महासप्तम्यां, महाष्टम्यां, महानवम्यां वा तिथौ) श्रीदुर्गापूजन दर्शनतर्पणजनितपूर्वपूर्वाधिकरणपुण्याधिकप्राप्तिकामोऽमुं छागं वह्निदैवतं भगवत्याः श्रीदुर्गादेव्याः प्रीतये धातयितुमहमुत्सृज्ये ॥ इत्युत्सृज्य तद्दक्षिणकर्णे—ओं पशुपाशाय विद्महे शिरश्छेदाय धीमहि तन्नश्छागः प्रचोदायात् । इति पशुगायत्रीं जपित्वा—ओं यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा । अतस्त्वां घायताम्यद्य तस्माद्यज्ञे वधो भव ॥ ततः खड्गाय नमः । इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य खड्गं प्रणमेदनेन—ओं असिर्विशसिनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ॥ श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्माधार नमोस्तु ते । खड्गायासुरनाशाय शक्तिकार्याय तत्पर । पशुश्छेद्यस्त्वया शीघ्रं खड्गनाथ नमोऽस्तु ते ॥ ततः पशोर्ग्रीवायां खड्गस्पर्शं कारयेत् पठेच्च—ॐ यज्ञार्थे पशवः सृष्टा यज्ञार्थे पशुघातनम् । यज्ञस्य मारणे त्वं हि ध्रुवं गन्ता त्रिविष्टपम् ॥ खड्गघातमहद्दुःखं विनिर्जित्य पशूत्तम । देवीवरप्रसादेन मामात्मनञ्च तारय ॥ ततो बन्धनमोचनमन्त्रं पठेत्—ॐ रक्षार्थं बन्धनस्थोऽसि मुक्तये मोचितो मया । देव्याः प्रीतिं समुत्पाद्य स्वर्गं गच्छ पशूत्तम । इदं देहं परित्यज्य भूत्वा दैववपुर्धरः । मोदस्व प्रमथैः सार्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ततः ॐ हें इति मन्त्रेण पशुं छेदयेत् । ततः ॐ ऐं ह्रीं कौशिकि समांसरुधिरेणाप्यायताम् । इति मांसरुधिरं दद्यात् । ततः छागमस्तकं सदीपं कृत्वा—ॐ एष सप्रदीपच्छागपशुशीर्षवलिः ह्रीं दुर्गायै नमः । इत्युत्सृज्य प्रार्थयेत्—ॐ घोरदंष्ट्रे करालास्ये मत्स्यमांसवलिप्रिये । वलिं गृह्ण महादेवि पशुरक्तं समांसकम् ॥ ॐ आहवे रुधिराकांक्षि वलिं गृह्ण प्रसीद मे । त्रिनेत्रे विकरालास्ये मुण्डमालाविभूषिते ॥ सर्वासुरकृतान्ते त्वं खड्गखट्वाङ्गधारिणि । महिषघ्नि महामाये दैत्यदर्पनिषूदिनि । छागलेन वलिं दद्मि गृहाण हरवल्लभे ॥ तत आचारात् खड्गशोणितबिन्दुं ललाटे धारयेत् पठेच्च—ॐ यं यं स्पृशामि पादेन यं यं पश्यामि चक्षुषा । स स मे वश्यतां यातु यदि शत्रुसमो भवेत् ॥ ततश्छागवलिदानप्रतिष्ठार्थं दक्षिणां कुर्यात्—

ॐअद्येत्यादि अमुकतिथौ कृतैतत्साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीभगवत्याः दुर्गादेव्याः प्रीतिकामश्छागबलिदानप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। इति छागबलिदानविधिः।

अथ कुमारीपूजाविधिः

कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्येत्यादि (महासप्तम्यां, महाष्टम्यां, महानवम्यां वा तिथौ) देवीप्रसादविविधमनोभीष्टकामावाप्तिराज्यकरणतदुत्तरदेवीलोकगमनकामः एताः कुमारीरहं(१) पूजयिष्ये॥ इति सङ्कल्प्य कुमारीणां चरणप्रक्षालनं विधाय गोमयोपलिप्तभूभागे रम्ये शुभासनेषु ब्राह्मणकुमारीः प्राङ्मुखीरुपवेश्य, एतानि पाद्यादीनि ॐ ह्रीं कुमारीभ्यो नमः (एकत्वे तु कुमार्यै नमः) इत्यनेन पञ्चोपचारैः सम्पूज्य वासोमाल्यादिविभूषणैः सविधि समभ्यर्च्य—ॐ इदं नानाविधान्नभोजनीयं तुभ्यमहं निवेदयामि। इति निवेद्य शनैः शनैर्यथासुखं भोजयेत्।

---

(१) कुमारीपूजने विशेषमाह वाडवानलीये—उत्तमा सा परिज्ञेया सप्ताष्टनवहायना। मध्यमा पञ्चवर्षी च षडब्दा दशहायना॥ एकद्वित्रिचतुर्वर्षी रुद्राब्दाख्या वरा स्मृता। इति। महाथर्वणसंहितायाम्—ततः कुमारीपूजनं कुर्यात् साधकसत्तमः। यस्मिन् कृते विधिवत् कर्मणः साङ्गता भवेत्॥ अकृते चाङ्गहानिः स्याद् विशेषाच्छरदर्चने॥ न तथा तुष्यति शिवा बलिहोमस्तुतोरणैः॥ कुमारीपूजने चात्र यथा सद्यः प्रसीदति॥ न केवलं पूजयेत्तां भोजयेच्चापि यत्नतः॥ इत्यादि। यामले—कुमारी पूजिता हन्ति कलुषं पूर्वसञ्चितम्। कुमारिकां विजानीयात् साक्षात् प्रकृतिरूपिणीम्॥ वसन्ति सततं देहे कुमार्या योगिनीगणाः। स सर्वसिद्धिमाप्नोति यः कुमारीं समर्चयेत्॥ कुमारीपूजनं भगवत्या शरत्पूजनकर्मणि। बलिहोमादयश्चास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ पुनश्च तत्रैव—भोजिता चेत् कुमारी स्याद् भोजितम् भुवनत्रयम्। नवरात्रे समायाते नवम्यन्तं निशातधीः। नानोपहारैरभ्यर्च्य कुमारीं वृद्धिपूर्वकम्। वृद्धिक्रमेण प्रजयेद्वांछितां सिद्धिमाप्नुयात्॥ कुमारीं न स्पृशेत् भक्त्या भावयुक्तेन चेतसा। अन्यथा मृत्युमाप्नोति नो चेद् देवीं पराङ्मुखी॥ इति।

अपेक्षितान्नपानादिकं दत्त्वा तासामाचान्तानां करेष्वक्षतं दत्त्वा क्षमध्वमित्युक्त्वा ताभ्योऽक्षतान् शिरसा प्रतिगृह्य, कुमारीध्यानं कुर्यात् । तद्यथा--ॐ प्रसन्नवदनाम्भोजां प्रोद्यद्बालार्कसुप्रभाम् । रक्ताम्बरां रक्तमाल्यां नानालङ्कारभूषिताम् ॥ सस्मितां दिव्यकन्याभिः क्रीडारसपरायणाम् । ध्यायेत् कुमारिकां बालां स्वभक्ताभीष्टसिद्धिदाम् ॥ ततो दक्षिणां दद्यात् ।

इति कुमारीपूजाविधिः ।

अथ महाष्टमीकृत्यम्

कृत्यनित्यक्रियो यजमानः पूजोपकरणमासाद्य शुद्धासने प्राङ्मुख उपविश्य सङ्कल्पं कुर्यात्--ओमद्याश्विने मासि शुक्ले पक्षे महाष्टम्यां तिथौ अमुकगोत्रस्य श्री अमुकशर्मणः (१) सपरिवारस्योपस्थितशरीराविरोधेन महाभयाभावपूर्वकश्रीदुर्गाप्रीतिकामः साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारभगवत्याः श्रीदुर्गादेव्याः पूजनमहं करिष्ये ॥ इति सङ्कल्प्य--ॐ जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोस्तु ते॥ इत्यादिना प्राणायामं विधाय । ध्यायेत्--ॐ जटाजूटसमायुक्तामर्धेन्दुकृतशेखराम् । लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसदृशाननाम् ॥ अतसीपुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम् । नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ सुचारुवदनां तद्वत् पीनोन्नतपयोधराम् । त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम् ॥ कपालं खेटकं घण्टां दर्पणं तर्ज्जनी धनुः । ध्वजं डमरुकं पाशं वामहस्तेषु बिभ्रतीम् । शक्ति च मुद्गरं शूलं खड्गं वज्रांकुशं तथा । शंखं चक्रं शरं चैव दक्षिणेषु च बिभ्रतीम् ॥ अधस्तान्महिषं तद्वत् विशिरस्कं प्रदर्शयेत् । शिरश्छेदोद्भवं तद्वद् दानवं खड्गपाणिनम् ॥ हृदि शूलेन

---

(१) ग्रामपूजायां तु—'अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणः' इत्यस्य स्थाने—'नानागोत्राणां सकलजनानामेतद्ग्रामवासिनामेतत्पूजोपकारकाणामन्यद्ग्रामवासिनाम्' इति योज्यम् ।

निर्भिन्नं निर्गतं तु विभूषितम् । रक्तरक्तीकृताङ्गञ्च रक्तविस्फारितेक्षणम् ॥ वेष्ठितं नागपाशेन भ्रुकुटीकुटिलाननम् । सपाशवामहस्ते धृतकेशञ्च दुर्गया ॥ पमदरुधिरवक्त्रं च देव्याः सिहं प्रदर्शयेत् । देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरिस्थितम् ॥ किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि । स्तूयमानं च तद्रूपममरैः सन्निवेशयेत् ॥ उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका । चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ॥ आभिः शक्तिभिरष्टाभिः सततं परिवेष्टिताम् । चिन्तयेत् सततं दुर्गां धर्मकामार्थमोक्षदाम् ॥ इदं ध्यानपुष्पं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवार श्रीभगवत्यै दुर्गादेव्यै नमः । ततः पुष्पाक्षतमादाय—एहि दुर्गे महाभागे रक्षार्थं मम सर्वदा । आवाहयाम्यहं देवि सर्वकामार्थसिद्धये ॥ अस्यां मूर्तौ समागच्छ स्थितिं मत्कृपया कुरु । रक्षां कुरु सदा भद्रे विश्वेश्वरि नमोस्तु ते ॥ ॐ भगवति दुर्गे इहागच्छ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह स्थिता भव इह सुप्रसन्ना भव इत्यावाहनादि विधाय पुष्पचन्दनयुतं पाद्योदकमादाय--ओं जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोस्तु ते ॥ 'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा' इति मन्त्रमुच्चार्य्यं इदं पाद्यम् ओं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीदुर्गादेव्यै नमः । इति पाद्योदकं दत्त्वा एकस्मिन् पात्रे कुङ्कुम–विल्वपत्राक्षत–पुष्प–दधि–दूर्वा–कुशाग्रत्रय–तिल–जल–यवैरर्घ्यं सम्पाद्य–'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिण स्वाहा'—इति मूलमन्त्रमुच्चार्य्य एषोऽर्घः ॐ साङ्ग० दुर्गादेव्यै नमः । ततः ओं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा—इति मूलमन्त्रमुच्चार्य्य इदमाचमनीयम् ओं साङ्ग० दुर्गादेव्यै नमः । मूलमन्त्रमुच्चार्य्य—इदं स्नानीयम् ओं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीदुर्गादेव्यै नमः । ततः एवं क्रमेण मूलमन्त्रमुच्चार्य्योच्चार्य्य—इदं मधुपर्कम्० । इदं पुनराचमनीयम्० । इदं चन्दनम्० । इदं सिन्दूरम्० । इदं कुङ्कुमाद्यनुलेपनम्० । एष पुष्पाञ्जलिः० । इति प्रत्येकं समर्पयेत् । ततो विल्वपत्राञ्जलिमादाय—ओं अमृतोद्भवं श्रीवृक्षं शङ्करस्य सदा प्रियम् । विल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥ मूलमन्त्रमुच्चार्य्य एतानि बिल्वपत्राणि ओं साङ्ग०

श्रीदुर्गायै नमः। ततो द्रोणपुष्पमादय—ओं ब्रह्मविष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदाप्रियम्। तत्ते दुर्गे प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये। मूलमन्त्रमुच्चार्य एतानि द्रोणपुष्पाणि साङ्ग० श्रीदुर्गायै नमः। ततो जाती–चम्पक–पद्म–कुमुद–मल्लिकाकरवीर–जपादिकुसुमैर्यथालाभमर्चयेत्। ततः अगुरु–गुग्गुलुप्रभृति–धूपद्रव्यपात्रस्थज्वलिताङ्गारे निक्षिप्य मूलमन्त्रमुच्चार्य एष धूपः ॐ साङ्ग० श्रीदुर्गायै नमः। ततो मूलमन्त्रमुच्चार्य्य एष दीपः०। एतानि नानाविधनैवेद्यानि०। एतानि मुक्तारत्नानि०। इदं छत्रं वनस्पतिदैवतम्०। इमे उपानहावुत्तानाङ्गिरोदैवते०। एतानि वासांसि बृहस्पतिदैवतानि०। इति मूलमन्त्रसुच्चार्य्य प्रत्येकं समर्प्य मूलपूजां विधाय विशेषतो देव्या आवरणपूजां पीठपूजां च कुर्यात्। तद्यथा—गन्धपुष्पाक्षतैरष्टदलकमलेषु–अग्निकोणे ॐ हृदयाय नमः। नैर्ऋत्यकोणे–ॐ दुर्गे शिरसे स्वाहा। वायव्यकोणे—ॐ दुर्गे शिखायै वषट्। ईशानकोणे—ॐ रक्षिणि कवचाय हुँ। मध्ये—ॐ स्वाहा नेत्राभ्यां वौषट्। सर्वदिक्षु—ॐदुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा अस्त्राय फट्। ततः पुष्पाक्षतमादाय सम्बोधनपदेनावाह्य यतुर्थ्यन्तपदेन देव्याः शक्तीः पूजयेत्। तद्यथा—ॐ ह्रीं मङ्गलायै नमः। ॐ ह्रीं मङ्गलायै नमः। ॐ ह्रीं काल्यै नमः। ॐ ह्रीं भद्रकाल्यै नमः। ॐ ह्रीं कपालिन्यै नमः। ॐ ह्रीं शिवायै नमः। ॐ ह्रीं धात्र्यै नमः। ॐ ह्रीं स्वधायै नमः॥ ततः पूजितदेवताः यथासामर्थ्यमभ्यर्च्य कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भविष्यपुराणोक्तं स्तोत्रं पठेत्—ॐ दुर्गां शिवां शान्तिकरीं ब्रह्माणीं ब्रह्मणः प्रियाम्। सर्वलोकप्रणेत्रीञ्च प्रणमामि सदा शिवाम्॥ मङ्गलां शोभनां शुद्धां निष्कलां परमां कलाम्। विश्वेश्वरीं विश्वमातां चण्डिकां प्रणमाम्यहम्॥ सर्वदेवमयीं देवीं सर्वरोगभयापहाम्। ब्रह्मेशविष्णुनमितां प्रणमामि सदा उमाम्॥ विन्ध्यस्थां विन्ध्यनिलयां दिव्यस्थाननिवासिनीम्। योगिनीं योगमातां च चण्डिकां प्रणमाम्यहम्॥ ईशानमातरं देवीमीश्वरीमीश्वरप्रियाम्। प्रणतोऽस्मि सदा दुर्गां संसारार्णवतारिणीम्॥ य इदं पठति स्तोत्रं शृणुयाद्वापि यो नरः। स मुक्तः सर्वपापैस्तु मोदते दुर्गया सह॥ ततो वरप्रार्थनम्—ॐ महिषघ्नि

महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि। द्रव्यमारोग्यविजयं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्यो रक्षोभ्यश्च महेश्वरि। देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च भयेभ्यो रक्ष मां सदा॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। उमे ब्रह्माणि कौमारि विश्वरूपे प्रसीद मे॥ ॐ रूपं देहि जयन्देहि यशो भगवति देहि मे। पुत्रान्देहि धनन्देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥ ॐ चन्दनेन समालब्धे कुंकुमेन विलेपिते। विल्वपत्रकृतापीडे दुर्गेऽहं शरणं गतः॥ इति सम्प्रार्थ्य पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा महासप्तम्युक्तप्रकारेण वलिदानं कुमारीपूजनं च कुर्यात्। यथाशक्ति सुवासिनीः ब्राह्मणांश्च भोजयेत्। इति दिवाकृत्यम्।

अथ महाष्टम्यां निशापूजा

तत्र कृतनित्यक्रियो यजमानः सकलपूजोपकरणमासाद्याचम्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ॐ अस्यां रात्रौ 'अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणः'(१) सपरिवारस्योपस्थितशरीराविरोधेन दुर्भिक्षदुःखनिवृत्तिदीर्घायुष्ट्व–बलपुष्टिनैरुज्यध्वजमालाकुलविमानवरारोहणब्रह्मलोकगमनपूर्वकहर्षविजयकामः सोपवासः साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीदुर्गादेव्याः पूजनमहं करिष्ये॥ इति सङ्कल्प्य पूजामारभेत्। तत्र प्रथमं श्रीदुर्गादेव्याः स्मरणादि (२) सङ्कल्पं कुर्यात्–कुशादिक-

---

(१) ग्रामपूजायां तु—ओमद्येत्यादि नानागोत्राणां सकलजनामेतद्ग्रामवासिनामेतत्पूजोपकारकाणामन्यद्ग्रामघासिनां च दुर्भिक्षदुःखनिवृत्तिपूर्वकाऽतिशयितशुभमतिप्राप्तिदीर्घायुष्ट्ववलपुष्टिपरमपदप्राप्तिध्वजमालाकुलविमानवरारोहणपूर्वकब्रह्मलोकगमनपूर्वकशाश्वतसमावच्छिन्नहर्षविजयकामः सोपवासो दुर्गादेव्याः पूजनमहं करिष्ये। इति संकल्प्य पूजामारभेत्।

(२) शक्तिसङ्गमतन्त्रे—अष्टम्यामर्धरात्रे तु यत्किञ्चित् कुरुते नरः। तत्तदक्षयमायाति नवदुर्गाप्रयोगतः॥
भविष्ये—तत्र देशे न दुर्भिक्षं न च दुःखं प्रवर्तते। नाकाले म्रियते कश्चित् पूज्यते यत्र चण्डिका॥

मादाय—ॐ अस्यां महाष्टम्यां रात्रौ सर्वविधमहाभयाभावकामः श्रीदुर्गादेव्याः स्मरणं, (१) दुर्गालोकमहतत्वकामो श्रीदुर्गानामकीर्तनं, श्रीदुर्गाभिवन्दनजन्यपुण्याधिकपुण्यलाभकामः श्रीदुर्गायाः स्पर्शनं, परमपदप्राप्तिकामः श्रीदुर्गायाः दर्शनमहं करिष्ये ॥ इति सङ्कल्प्य—ॐ चन्द्रमौलिपदप्राप्त्यै महाष्टम्यां महेश्वरि। अद्याहं स्मरणं दुर्गे करिष्ये तव प्रीतये ॥ ॐ सर्वानिष्टविनाशार्थमभयार्थं सुरेश्वरि। भवबन्धविमोक्षार्थं ज्ञानं प्राप्तं महेश्वरि ॥ अद्याहं च महाष्टम्यां करिष्ये स्मरणं तव ॥ ततः कीर्तनम्—ॐ नामानुकीर्तनं तेऽद्य महाष्टम्यां शिवप्रिये। कलिकल्मषनाशार्थं करिष्ये धनवृद्धये ॥ अत्युत्कृष्टपदं प्राप्तुं दुःखात्ततुं पुनः पुनः। अद्य दुर्गे महाष्टम्यां करिष्ये कीर्तनं तव ॥ ततो दर्शनम्—ॐ अद्याऽहं ते महाष्टम्यां पुण्यप्राप्तिसुखाप्तये। दुर्गे देवि महामाये करिष्ये दर्शनं तव ॥ ॐ महाश्रियं महाज्ञानं महैश्वर्यं महाबलम्। आयुर्बलं यशो वित्तं विद्यां विज्ञानमेव च ॥ प्राप्तुकामोऽद्य सर्वज्ञे करिष्ये तव दर्शनम् ॥ ओ आनन्दार्थं महादुर्गे गोदानफलप्राप्तये। वृद्ध्यर्थं चैव वंशानां करिष्ये वन्दनं तव ॥ ततः—ओमद्याऽहं महाष्टम्यां शत्रुनाशाय चण्डिके। सुश्रीवृद्ध्यर्थकामश्च मनोवाञ्छितकामुखः। नानाशुभफप्राप्त्यै सर्वबाधाक्षयाय च। अद्याऽहं ते महाष्टम्यां करिष्ये पूजनं तव ॥ इति पठित्वा पूजामारभेत्। तत्र क्रमः—'जयन्ती मङ्गला काली' इति मन्त्रेण प्रणम्य—'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा' इति मूलमन्त्रेण प्रातरुक्तपूजाकल्पेन—ओं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीभगवत्यै दुर्गादेव्यै नमः। इत्यर्घादिना पूजयेत्।

अथावरणपूजा—ततः पुष्पाक्षतमादाय प्रणवपूर्वकं 'ह्रीँ' बीजं दत्त्वा सम्बोधनपदेनावाह्य 'ह्रीँ' बीजसहितं चतुर्थ्यन्तपदेन पाद्यादिभिः पञ्चोपचारैः जयन्त्यादीनां प्रत्येकं पूजयेत्। तद्यथा—प्रथमं देव्याः दक्षिणपार्श्वे—
१. ॐ ह्रीँ जयन्ति इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ॐ ह्रीँ जयन्त्यै नमः। इति पञ्चोपचारैः सम्पू-

---

(१) भविष्ये—स्मरणं कीर्तनं चैव दर्शनं स्पर्शनं तथा। पूजनं चेति पञ्चाङ्गं कर्म प्रोक्तं सदा बुधैः ॥

जयेत् । (एवं सर्वत्र ओं ह्रीँ बीजं दत्त्वा)—२. मङ्गले इहागच्छ०, मङ्गलायै नमः । ३. कालि इहागच्छ०, काल्यै नमः । ४. भद्रकालि इहागच्छ०, भद्रकाल्यै नमः । ५. कपालिनि इहागच्छ०, कपालिन्यै नमः । ६. दुर्गे इहागच्छ०, दुर्गायै नमः । ७. क्षमे इहागच्छ०, क्षमायै नमः । ८. शिवे इहागच्छ०, शिवायै नमः । ९. धात्रि इहागच्छ, धात्र्यै नमः । १०. स्वधे इहागच्छ०, स्वधायै नमः ११. स्वाहे इहागच्छ०, स्वाहायै नमः । ततो देव्याः पृष्ठपार्श्वे—१२. ओं ह्रीं उग्रचण्डे इदागच्छ०, ओं ह्रीँ उग्रचण्डायै नमः । (एवं ओं ह्री सर्वत्र दत्त्वा)—१३. प्रचण्डे इहागच्छ०, प्रचण्डायै नमः । १४. चण्डोग्रे इहागच्छ०, चण्डोग्रायै नमः । १५. चण्डनायिके इहागच्छ०, चण्डनायिकायै नमः । १६. चण्डे इहागच्छ० चण्डायै ममः । १७. चण्डवति इहागच्छ०, चण्डवत्यै नमः । १८. रुद्रचण्डे इहागच्छ०, रुद्रचण्डायै नमः । १९. चण्डरूपे इहागच्छ०, चण्डरूपायै नमः । २०. चण्डिके इहागच्छ०, चण्डिकायै नमः । ततो देव्याः वामपार्श्वे—२१. ओ ह्रीँ उग्रदंष्ट्रे इहागच्छ०, ओ ह्रीँ उग्रदंष्ट्रायै नमः । एवं (ओं ह्रीँ सर्वत्र दत्त्वा)—२२. महादंष्ट्रे इहागच्छ०, महादंष्ट्रायै नमः । २३. शुभ्रदंष्ट्रे इहागच्छ०, शुभ्रदंष्ट्रायै नमः । २४. कालिनि इहागच्छ०, कालिन्यै नमः । २५. भीमनेत्रे इहागच्छ०, भीममेत्रायै नमः २६. विशालाक्षि इहागच्छ०, विशालाक्ष्यै नमः । २७. मंगले इहागच्छ०, मङ्गलायै नमः । २८. विजये इहागच्छ०, विजयायै नमः । २९. जये इहागच्छ०, जयायै नमः । ततो देव्याः पुरतः–३०. ओं ह्रीँ नन्दिनि इहागच्छ ओ ह्रीँ नन्दिन्यै नमः । (एवं ओं ह्रीँ सर्वत्र दत्त्वा)—३१. भद्रे इहागच्छ०, भद्रायै नमः । ३२. लक्ष्मि इहागच्छ०, लक्ष्म्यै नमः ३३. । कीर्ते इहागच्छ०, कीर्त्यै नमः । ३४. यशस्विनि इहागच्छ०, यशस्विन्यै नमः । ३५. कोटियोगिनि इहागच्छ०, कोटियोगिन्यै नमः । ३६. पुष्टे इहागच्छ, पुष्ट्यै नमः । ३७. मेधे इहागच्छ, मेधायै नमः । ३८. शिवे इहागच्छ०, शिवायै नमः । ३९. साध्वि इहागच्छ, साध्व्यै नमः । ४० यशे इहागच्छ०, यशायै नमः । ४१. शोभने इहागच्छ०, शोभनायै नमः । ४२. जये इहागच्छ० जयायै

नमः। ४३. धृते इहागच्छ० घृत्यै नमः। ४४. आनन्दे इहागच्छ०, आनन्दायै नमः। ४५. सुनन्दे इहागच्छ० सुनन्दायै नमः। ततो देव्याः समीपे 'ह्रीँ' इति बीजरहितं देव्यः पूज्याः। तथाहि—१. विजये इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं विजयायै नमः। इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य एवमेवान्या अपि पञ्चोपचारैः पूजयेत्। तद्यथा—२. मङ्गले इहागच्छ०, मङ्गलायै नमः। ३. भद्रे इहागच्छ०, भद्रायै नमः। ४. धृते इहागच्छ०, घृत्यै नमः। ५. शान्ते इहागच्छ०, शान्त्यै नमः। ६. ऋद्धे इहागच्छ०, ऋद्ध्यै नमः। ७. क्षमे इहागच्छ, क्षमायै नमः। ८. शिवे इहागच्छ०, शिवायै नमः। ९. सिद्धे इहा०, सिद्ध्यै नमः। १०. तुष्टे इहा०, तुष्ट्यै नमः। ११. पुष्टे इहा०, पुष्ट्यै नमः। १२. उमे इहा० उमायै नमः। १३. रते इहा० रत्यै नमः। १४. दीप्ते इहा० दीप्तायै नमः। १५. कान्ते इहा० कान्त्यै नमः। १६. यशे इहा० यशायै नमः। १७. लक्ष्मि इहा० लक्ष्म्यै नमः। १८. त्रिपुरे इहा०, त्रिपुरायै नमः। १९. ऋद्धे इहा०, ऋद्ध्यै नमः। २०. शक्ते इहा० शक्त्यै नमः। २१. जयावति इहा० जयावत्यै नमः। २२. ब्राह्मि इहा० ब्राह्म्यै नमः। २३. जयन्ति इहा० जयन्त्यै नमः। २४. अपराजिते इहा० अपराजितायै नमः। २५ अजिते इहा० अजितायै नमः। २६. मानसि इहा० मानस्यै नमः। २७. श्वेते इहा० श्वेतायै०। २८. दिते इहा० दित्यै०। २९. माये इहा० मायायै०। ३० महामाये इहा० महामायायै०। ३१. मोहिनि इहा० मीहिन्यै०। ३२. रतिलालसे इहा० रतिलालसायै० ३३. तारे इहा० तारायै०। ३४. विमने इहा० विमनायै०। ३५. गौरि इहा० गौर्यै०। ३६. कौशिकि इहा० कौशिक्यै०। ३७. मते इहा० मत्यै०। ३८. दुर्गे इहा० दुर्गायै०। ३९. क्रिये इहा० क्रियायै०। ४०. अरुन्धति इहा० अरुन्धत्यै०,। ४१. घण्टे इहा० घण्टायै०। ४२. कर्णे इहा० कर्णायै०। ४३. कपालिनि इहा० कपालिन्यै०। ४४. रौद्रि इहा० रौद्र्यै। ४५. कालि इहा० काल्यै०। ४६. मयूरि इहा० मयूर्यै०। ४७. त्रिनेत्रे इहा० त्रिनेत्रायै०। ४८. स्वरूपे इहा० स्वरूपायै। ४९. बहुरूपे इहा० बहुरूपायै०। ५०. रिपुहे इहा० रिपुहायै०। ५१. चर्चिके इहा० चर्चिकायै०। ५२. अम्बिके इहा० अम्बि-

कायै० ५३. सुरपूजिते इहा० सुरपूजितायै०। ५४. वैवस्वते इहा० वैवस्वतायै०। ५५. कौमारि इहा० कौमार्यै०। ५६, माहेश्वरि इहा० माहेश्वर्यै०। ५७. वैष्णवि इहा० वैष्णव्यै०। ५८. महालक्ष्मि इहा० महालक्ष्म्यै०। ५९. कार्तिकि इहा० कार्तिक्यै०। ६०. शिवदूति इहा० शिवदूत्यै०। ६१. वाराहि इहा० वाराह्यै०। ६२. चामुण्डे इहा० चामुण्डायै नमः।

ततो देव्याः प्रदक्षिणक्रमेण मातरः पूज्याः—६३. ओं ह्रीँ ब्रह्माणि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं ह्रीँ ब्रह्माण्यै नमः। इत्यनेन पञ्चोपचारैः पूजयेत्। एवम्—६४. माहेश्वरि इहागच्छ० माहेश्वर्यै नमः। ६५. कौमारि इहा० कौमार्यै नमः। ६६. वैष्णवि इहा० वैष्णव्यै नमः। ६७. वाराहि इहा० वाराह्यै नमः। ६८. इन्द्राणि इहा० इन्द्राण्यै नमः। ६९. चामुण्डे इहा० चामुण्डायै नमः। ७०. महालक्ष्मि इहा० महालक्ष्म्यै नमः। ७१. चण्डिके इहा० चण्डिकायै नमः।

ततो देव्याः पूरोभागे नवभैरवान् पूजयेत्। तद्यथा—१. ॐ भूर्भुवः स्वर्भगवन् भैरव इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, पुष्पाण्यादाय—ॐ भैरवं परमं देवं सर्वकामप्रसाधकम्। पूजयाम्यग्रतो देव्याः सर्वाभीष्टफलप्रदम्॥ इति पुष्पाञ्जलि दत्त्वा ओं भैरवाय नमः, इत्यनेन पञ्चोपचारैः पूजयेत्। एवम्—२. ॐ असिताङ्गभैरव इहा० असिताङ्गभैरवाय नमः। ३. कालभैरव इहा० कालभैरवाय नमः। ४. क्रोधभैरव इहा० क्रोधभैरवाय नमः। ५. उन्मत्तभैरव इहा० उन्मत्तभैरवाय नमः। ६. कपालिभैरव इहा० कपालिभैरवाय नमः। ७. भीषणभैरव इहा० भीषणभैरवाय नमः। ८. संसारभैरव इहा० संहारभैरवाय नमः। ९. वटुकभैरव इहा० वटुकभैरवाय नभः। ततः पुष्पाञ्जलि दत्त्वा प्रणमेत्—ओ भैरवं परमं देवं शत्रुक्षयकरं विभुम्। प्रणमामि सदोपास्यै वीरभावसमाश्रितम्॥

ततो द्वादश क्षेत्रपालान् यक्षान् पञ्चोपचारैः पूजयेत्। तद्यथा—१. ओं यक्षराज इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य,

ॐ यक्षराजाय नमः इति सम्पूज्य २. ॐ हूँ क्षौँ केतुकक्षेत्रपाल इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ॐ हूँ क्षौँ केतुकक्षेत्रपालाय महाविभीषणाय स्वाहा नमः। ३. ॐ वलिभद्र इहा० वलिभद्राय नमः। ४. चित्रमुण्ड इहा० चित्रमुण्डाय नमः। ५. सेन्द्रयक्ष इहा० सेन्द्रयक्षाय नमः। ६. जम्भ इहा० जम्भाय नमः। ७. वेताल इहा० वेतालाय नमः। ८. भीषणक्षेत्रपाल इहा० भीषणक्षेत्रपालाय नमः। ६. एकपादयक्ष इहा० एकपादयक्षाय नमः। १०. अग्निजिह्वक्षेत्रपाल इहा० अग्निजिह्वक्षेत्रपालाय नमः। ११. कालक्षेत्रपाल इहा० कालक्षेत्रपालाय नमः। १२. जङ्गयक्ष इहा० जङ्गयक्षाय नमः।

ततो देव्या अङ्गानि पूजयेत्—ॐ कालि कालि हृदय इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ॐ कालि कालि हृदयाय नमः। एवं वक्ष्यमाणानां प्रत्येकं सम्बोधनपदेनावाह्य चतुर्थ्यन्तपदेन पाद्यादिभिः पूजयेत्। तद्यथा—ॐ कालि कालि वज्रिणि शिरसे नमः। ॐ कालि २ वज्रेश्वरि शिखायै नमः। ॐ कालि २ वज्रेश्वरि कवचाय नमः। ॐ कालि २ लोहदंष्ट्रायै स्वाहा नेत्रत्रयाय नमः। ॐ कालि २ लौहदण्डायै अस्त्राय नमः।

अथ देव्याः पञ्चवक्त्रपूजनम्। तत्र सम्बोधनपदेनावाह्य चतुर्थ्यन्तपदेन पाद्यादिभिः पूजयेत् तद्यथा— १. ॐ ईशानाय नमः, इति शिरसि। २. ॐ कालि कालि तत्पुरुषाय नमः, इति मुखे। ३. ॐ वज्रेश्वरि अघोराय नमः, इति हृदये। ४. ॐ लोहदंष्ट्रायै वामदेवाय नमः, इत्यधः। ५. ॐ स्वाहा सद्योजाताय नमः, इति सर्वाङ्गं पूजयेत्।

अथ देव्या अस्त्रपूजा (अत्रापि पूर्वत् टिप्पण्योक्त्या सम्बोधनपदेनावाह्य चतुर्थ्यन्तपदेन पूजयेत्। ॐकारं सर्वत्र प्रयोज्यम्)। तद्यथा—ॐ कपालाय नमः। खेटकाय नमः। घण्टायै नमः। दर्पणाय नमः। तर्जन्यै नमः। धनुषे नमः। ध्वजाय नमः। डमरुकाय नमः। पाशाय नमः। दक्षिणहस्ताय नमः। शक्तये नमः। मुद्गराय नमः। शूलाय नमः। खड्गाय नमः। वज्राय नमः। अङ्कुशाय नमः। शंखाय नमः। चक्राय नमः। शराय नमः। सर्वेभ्यो

देव्यस्त्रेभ्यो नमः। ततः ओं यानि यानीह मुख्यानि प्रसिद्धान्यायुधानि च। क्षयकारीणि शत्रूणां विख्यातानि जगत्त्रये॥ सर्वास्तान् पूजयाम्यद्य महाष्टम्यां विशेषतः। सर्वे रक्षन्तु मां नित्यं सर्वसिद्धिं ददत्वपि॥ ओं देव्याः किरीटाद्यलङ्कारेभ्यो नमः। इति सम्पूज्य—ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहासनाय हुं फट् स्वाहा, सिंहासनाय नमः। इति सिंहासनमपि सम्पूज्य महिषञ्च पूजयेत्।

ततश्चन्दनेन अष्टदलकमलमालिख्य पूर्वादिदलेषु क्रमेण—रुद्रचण्डां, प्रचण्डां, चण्डोग्रां, चण्डनायिकाम्, मध्ये—उग्रचण्डां च सम्वोधनपदेनावाह्य चतुर्थ्यन्तपदेन पञ्चोपचारैः पूजयेत्।

ततो महासप्तम्युक्तविधिना छागादिवलिं दद्यात्। ततो नैर्ऋत्ये त्रिकोणमण्डलं कृत्वा माषभक्तघृतपक्वान्नअपूपपूरिकापायसादिद्रव्यमेकत्रोपकृत्य वलिं दद्यात्। तद्यथा—ओमस्यां महाष्टम्यां रात्रौ लोकपालादिनवग्रहनक्षत्राऽसुरगणगन्धर्वयक्षराक्षसविद्याधरपन्नगगजेन्द्रपशुभूतपिशाचक्रव्यादमनुष्यगणयोगिनीगणडाकिनीगणाः इमं नानाद्रव्यवलिं गृह्णन्तु स्वाहा। इति प्रचुरं वलिं समुत्सृज्येत्। ततः—ओं शिवाः कङ्कालवेतालाः पूतनाजम्बुकादयः। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु बलिदानेन तोषिताः॥ इति भूतवलिं दत्त्वा अञ्जलिं वद्ध्वा 'ॐ महिषघ्नि' इत्यादि (१६७ पृष्ठोक्त) नानास्तुतीर्यथाशक्ति पठेत्। ततो लक्ष्यादिपूजितदेवताः पूजयेत्। ततो नीराजनं कृत्वा महासप्तम्युक्तविधिना कुमारीः सम्पूज्य भोजयेत्। सति सम्भवे सधवास्त्रीः ब्राह्मणांश्च भोजयेत्। ततो नृत्यगीताद्युत्सवैः रात्रिशेषं (१) नयेत्।

इति महाष्टमीकृत्यम्

---

(१) कालिकापुराणे—पुनः पूजां तथाऽष्टम्यां विशेषेण समाचरेत्। जागरं च स्वयं कुर्याद् बलिदानं महानिशि॥ अन्यच्च—दुर्गा सा पूजनीया च तद्दिने द्रोणपुष्पकैः। ततो खड्गं नमस्कृत्य शत्रूणां वधसिद्धये॥ इच्छेच्च विजयं राज्यं सुभिक्षं चात्मने नृपः। पुनः पुनः प्रणम्यार्यां संस्मरन् हृदये शिवाम्॥ सर्वं कृत्वेति कौरव्य अष्टम्यां जागरं निशि। नटनर्तकगीतैश्च कारयेच्च महोत्सवम्॥

अथ महानवमीकृत्यम्

महानवम्यां त्रिशूलिनीपूजा। प्रातः कृतनित्यक्रियः पञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय- ॐ अद्याश्विनशुक्लमहानवम्यां तिथौ (१) 'अमुकगोत्रस्याऽमुकशर्मणः' महापातकादिसकलपापक्षयपूर्वकदिव्याधिकरणकदेवतागणपरिवृतत्वसहस्राश्वमेधशतवाजपेययज्ञसमफलप्राप्तिपूर्वकशरीरारोग्यबलपुष्टिसुखसौमनस्यप्राप्तिकामनया त्रिशूलाकृतिदुर्गादेवीमहं पूजयिष्ये। इति सङ्कल्प्य सूपलिप्ते स्थण्डिले काष्ठादिमयं चण्डिकात्मकं त्रिशूलं निधाय तीर्थोदकेन स्नापयित्वा दुग्धदधिमधुघृतादिभिश्च स्नपयेत्। ततो वारिणा प्रक्षाल्य—ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्येति मन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां विधाय ॐ भूर्भुवः स्वर्भगवति दुर्गे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घ्याचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ॐ भगवत्यै चण्डिकायै नमः। एवम् इदं कुंकुमागुरुकर्पुरचन्दनानुलेपनम्०। इदं सिन्दूरम्० इदमक्षतम्० एतानि करवीरजातीजपाकुसुमबिल्वपत्रपुष्पमालादीनि० एष सघृतगुग्गुलुधूपः० एष दीपः० एतानि नैवेद्यानि० इदमाचमनीयम्० इदं ताम्बूलम्० इदं वस्त्रं बृहस्पतिदैवतम्० एतानि हिरण्यरत्नभूषणसिन्दूरालक्तकपट्टसूत्रिकादीनि०। एष सितकुसुमाञ्जलिः ॐ चण्डिकायै नमः। इति सम्पूज्य प्रणम्य मणिकाञ्चनभूषितं त्रिशूलं अश्वे रथे वा समारोप्य समन्ताच्छत्रचामरादिशोभान्वितनानावाद्यवेदनिर्घोषैर्दुर्गादेव्याः पुरतः स्थापयेत्। ततः पुनरुक्तोपचारैः—ॐ ह्रीं चण्डिकायै नमः। इति सम्पूज्य प्रणम्य ॐ दुर्गां शिवामित्यादिभिः स्तुत्वा महीषघ्नीत्यादिना सम्प्रार्थ्य प्रणमेत्। ततः पूर्वस्थापितदुर्गादिदेवताः, कलशावाहितदेवताः, नव पत्रिकाश्च, अष्टमीवत्सकलोपचारैः

---

(१) ग्रामपूजायाम्—'अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणः' इत्यस्य स्थाने नानागोत्राणां सकलजनानामेतद्ग्रामवासिनामेतत्पूजोपकारकाणामन्यद्ग्रामवासिनाम्' इति यथेप्सितं योज्यम्।

सम्पूज्य रेमन्तं च पूजयेत्। सति सम्भवे मातृचक्रं पूजयेत्। तद्यथा—रक्तचन्दनेनाष्टदलपद्ममालिख्य तन्मध्ये चण्डिकां सम्पूज्य प्राग्दले—ब्रह्माणीम्। आग्नेये—माहेश्वरीम्। दक्षिणे—कौमारीम्। नैर्ऋते—वैष्णवीम्। पश्चिमे—वाराहीम्। वायव्ये—नारसिंहीम्। उत्तरे—ऐन्द्रीम्। ईशाने—शिवदूतीम्। मध्ये—चामुण्डाञ्चावाह्य प्रणवादिनमोन्तचतुर्थ्यन्तेन पाद्यादिभिः पूजयेत्।

ततः महासप्तम्युक्तकुमारीपूजनविधिना कुमारिकाः संपूज्य वस्त्रभोजनदक्षिणादिना परितोषयेत्॥ ततो वक्ष्यमाणविधिना होमं कुर्यात्। ततः महासप्तम्युक्तप्रकारेण प्रचुरं छागबलिं दद्यात्। शक्तश्चेत् महिषबलिदानं च कुर्यात्॥

अथ महिषबलिदानविधिः

तत्र बलिप्रदानस्थानं गत्वा पुष्पाञ्जलिमादाय पृथ्वीमावाहयेत्—ॐ आवाहयाम्यहं देवीं भूतधात्रीं सुलक्षणाम्। कामदां वैष्णवीमृद्धिं सिद्धिं सर्वत्र पूजिताम्॥ शस्याढ्यां सुरभिं देवीं धात्रीं सर्वजनस्य च। चलत्पङ्कजसंयुक्तामिहागच्छ वसुन्धरे॥ इत्यावाह्य—ॐ पद्मासनस्थां शशिमौलिरम्यां दूर्वादलश्यामतमाङ्गयष्टिम्। दैत्यारिपार्श्वे परिमर्दयन्तीं वसुन्धरां तां वरदां स्मरामि॥ महिषासुरयुद्धेषु सर्वदेवगणैः सह। कम्पिता क्षोभिता पृथ्वि भज तुष्टिं वधेऽस्य तु॥ खुराग्रक्षेपणात् क्षुण्णा पुरासीन्महिषस्य तु। इदानीं शोणितैस्तस्य स्निग्धा भव वसुन्धरे॥ इदं ध्यानपुष्पं ॐ पृथिव्यै नमः। ॐ सर्वसहायै नमः। ॐ वसुन्धरायै नमः। इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्। ततः ॐ पशुपाशविनाशाय हेमकूटस्थिताय च। परावराय मरमेष्ठिने हूँकाराय च मूर्तये॥ इति पठित्वा ॐ ह्रः अस्त्राय फट्॥ इति पठित्वा महिषस्य सर्वाङ्गानि अवलोकयेत्। ततः ॐ मेघाकारस्तम्भमध्ये महिषं बन्धय बन्धय हूँ फट् स्वाहा॥ इति पठित्वा स्तम्भे महिषं संयम्य हरिद्रारागरञ्जितजलपूर्णघटे नवदुर्गामावाह्य पञ्चोपचारैः पूजयेत्।

तद्यथा—१. ओं कौमार्यै नमः। २. ओं वैष्णव्यै नमः। ३. ओं ब्रह्माण्यै नमः। ४. ओं माहेश्वर्यै नमः। ५. ओं चामुण्डायै नमः ६. ओं वाराह्यै नमः। ७. ओं इन्द्राण्यै नमः ८. ओं अम्बिकायै नमः। ९. ओं वलीँ सर्वलोकनिखिलपापक्षयाय ब्रह्मवीजस्वरूपाय दिव्यतेजसे दिव्यस्वरूपाय नमः। इति सम्पूज्य तज्जलेन महिषं स्नापयेत्। ततः ओं महिषाय नमः। इत्यनेन पञ्चोपचारैः महिषं सम्पूज्य ओं ऐँ ऐँ ह्लीँ ह्लीँ श्रीँ श्रीँ हूँ हूँ वरुणमण्डलाधिष्ठितविग्रहायै महिषरूपचण्डिकायै इमं महिषं प्रोक्षयामि स्वाहा॥ इति महिषं सम्प्रोक्ष्य—ओं युवासुवासाः परिवीत आगात् स उच्छ्रेयान् भवति जायमानः। तन्धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥ इति मन्त्रेण वस्त्रं दत्त्वा शृङ्गमध्ये सिन्दूरमलक्तकं पटसूत्रं च दद्यात्॥ ततो रक्तमालां गृहीत्वा—ओं महिषासुरयुद्धेषु त्वयापि कामरूपिणा। चित्रं तनुत्रयं धृत्वा कृतं युद्धं सुदारुणम्। अतस्त्वद्वलिदानेन तुष्टा भवतु चण्डिका॥ ओं महिषस्त्वं महाभाग धर्मवाहनविश्रुतः। प्रियं धान्यं धनं देहि धर्मञ्चैव स्वभावतः॥ यथा वाऽघं भवान् द्वेष्टि यथा वहसि चडिकाम्। तथा मम रिपून् हंसि शुभं वह लुलायक॥ यमस्य वाहनस्त्वं तु वररूपधरोऽव्यय। आयुर्वित्तं यशोदेहि कासाराय नमो नमः॥ इदं रूपं परित्यज्य गन्धर्वत्वमवाप्नुहि। ललाटे ते शिवो देवः शृङ्गयोः पार्वतीप्रियः। दुर्गायाः प्रीतिदत्तो हि शतं वर्षाणि निश्चितम्॥ इति मालां दत्त्वा प्रणम्य महिषाङ्गे अङ्गदेवताः पूज्याः, तद्यथा ब्रह्मरन्ध्रे—ओं ब्रह्मणे नमः। नासिकायां–दामिन्यै नमः। कर्णयोः–आकाशाय नमः। जिह्वायां–सर्वमुखाय नमः, चक्षुषोः–ज्योतिर्भ्यां नमः। मुखे–विष्णवे नमः। ललाटे–चन्द्रमसे नमः। दक्षगण्डे–शक्राय नमः। वामगण्डे–वह्निहृदयाय नमः। ग्रीवायां–सोमवर्तिने नमः। केशाग्रे–निर्ऋतये नमः। भ्रूमध्ये—प्रचेतसे नमः। नासामूले–श्वसनाय नमः। स्कन्धे–धनेश्वराय नमः। हृदये-सर्पराजाय नमः। इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्। ततः स्तम्भं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं स्तम्भ त्वं स्थाणुरूपोऽसि ब्रह्मणा निर्मितः पुरा। अतस्त्वां पूजयाम्यद्य पशुबन्धनहेतवे॥ स्तम्भ-

मूले वसेद् ब्रह्मा स्तम्भमध्ये च माधवः। स्तम्भाग्रे च स्वयं रुद्रस्तस्मात् त्वमचलो भव॥ यथाऽचलो गिरिर्मेरुहिमवांश्च यथाऽचलः। यथाऽचला नगाश्चाऽन्ये तथा त्वमचलो भव॥ सर्वे देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः। तव सान्निध्यमायान्ति तस्मात्त्वमचलो भव॥ ततः ओं पाशाय नमः इति पञ्चोपचारैः पाशं सम्पूज्य प्रार्थयेत्—ओं पाश त्वं वरुणाज्जातः सदा वरुणदैवतः। अतस्त्वां पूजयाम्यद्य तस्माच्छान्ति प्रयच्छ मे॥ त्वं साक्षी भगवान् देवः सर्वशत्रुनिबर्हणः। पूज्योऽसि सर्वभूतानां पाशसिद्धि कुरुष्व मे॥ ततः कुशत्रयतिलजलान्यादाय सार्वदिक्दुर्गाप्रीतिसेव्येश्वरकर्तृकसम्मानसदायुद्धविजयदीर्घायुष्ट्वपुत्रपौत्रादिसमृद्धिसर्वविधसौमनस्यप्राप्तिकामोऽमुं महिषं यमदैवतं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीदुर्गादेवीप्रीतये घातयितुमहमुत्सृज्ये। इत्युत्सृज्य पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं असुरयोनिप्रसूतोऽसि पूजाहोमादिकर्मणि। तुष्टा भवतु सा देवी समांसै रुधिरैस्तव॥ कुरु मम रिपुनाशं काम्यसिद्धि च ऋद्धि, हर हर मम दुःखं सर्वपापं कुबुद्धिम्। भवतु तव वधो मे भक्तितः पूजितस्य, कुरु भुवि मम सिद्धि सर्वयज्ञव्रतानाम्॥ ततो महिषस्य कर्णे जपेत्—ओं पशुपाशाय विद्महे विश्वकर्मणे धीमहि। तन्नो महिषः प्रचोदयात्॥ ततः ओं ह्रीँ श्रीँ निखिलब्रह्माण्डखण्डरूपं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा॥ इति मनसा बलिं देव्यै समर्प्य ओं खड्गाय नमः। इत्यनेन पञ्चोपचारैः खड्गं सम्पूज्य प्रणमेदनेन—ओं असिर्विशसिनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः। श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल नमोस्तु ते॥ ततः ॐ ऐँ श्रीँ इमं महिषं महामोक्षं कुरु कुरु गृह्ण गृह्ण स्वाहा। इत्यनेन महिषग्रीवायां खड्गस्पर्शं कुर्यात्। ततोऽञ्जलिं बद्ध्वा प्रार्थयेत्—ओं खड्गपातोद्भवं दुःखं विनिर्जित्य पशूत्तम। देवीवरप्रसादेन मामात्मानं च तारय॥ ततः 'ओं क्रीँ फट्' इति मन्त्रेण खड्गं गृहीत्वा—ॐ दैवे पत्रे च सुभगः खड्गस्त्वं खड्गसन्निभः। छिन्धि विघ्नान् महाभाग ग्रहानन नमोऽस्तु ते॥ अनेन बलिकर्त्रे खड्गं समर्पयेत्। ततो महिषंछित्त्वा छागपशुवत् समांसरुधिरं शिरश्च निवेद्य दक्षिणां कुर्यात्। ओं अद्य कृतैतन्महिषबलिदानप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्य-

मूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् ।

अथ हवनविधिः

सति सम्भवे महाष्टम्यां महानवम्यां च पूजान्ते यथोक्तकल्पेन शतचण्डीविधानेन वा होमं (१) कुर्यात्। तद्यथा—होता कुण्डस्थण्डिलं कुशैः परिसमूह्य गोमयेनोपलिप्य तत्र प्रागग्रा उदगग्राश्च तिस्रो रेखाः कुशमूलेनोल्लिख्य ताभ्यः मृदमुद्धृत्य जलेनाभ्युक्ष्य कांस्यपात्रेण अग्निमुपसमाधाय पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पठेत्—ओं जगद्धात्रि महामाये सर्वशत्रुक्षयङ्करि। होमद्रव्यं गृहाणाऽम्ब वह्न्यास्येन महेश्वरि॥ इति प्रणम्य समिद्धतमेऽग्नौ—ओं भूः स्वाहा, इदं भूः। ओं भुवः स्वाहा, इदं भुवः। ओं स्वः स्वाहा, इदं स्वः इति व्याहृतित्रयेण हुत्वा—१ ओं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि रक्षिणि स्वाहा। २ ओं ह्रीँ दक्षयज्ञविनाशिन्यै महाघोरायै योगिनीकोटिपरिवृतायै ह्रीँ भद्रकाल्यै नमः स्वाहा॥ ३ ओं अम्बे अम्बिके अम्बालिके न मानयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीं स्वाहा॥ ४ ओं जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी। दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा नमोऽस्तु ते, स्वाहा॥ इति मन्त्रचतुष्टयेन, अन्यतमेन वा ओं ऐँ ह्रीँ क्लीँ चामुण्डायै विच्चे' इति नवार्णमन्त्रेण वा घृतमधुक्षीराक्तैस्तिलैरष्टोत्तरशतम् (असमर्थश्चेद्यथासंख्यकं वा) आहुतीर्हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्यादनेन—ओं मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमुत आजातमग्निम्। कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः, स्वाहा। ओं दुर्गे दुर्गे रक्षिणि रक्षिणि स्वाहा। ततस्त्रया-

---

(१) रुद्रयामले—प्रधानद्रव्यमुद्दिष्टं पायसान्नं तिलास्तथा। किंशुकैः सर्षपैः पूगैर्लाजादूर्वाङ्कुरैरपि॥ यवैर्वा श्रीफलैर्दिव्यैर्नानाविधफलैस्तथा। रक्तचन्दनखण्डैश्च गुग्गुलैश्च मनोहरैः॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयात् सर्वद्रव्याणि च क्रमात्। नवाक्षरेण वा हुत्वा नमो देव्यै इतीति च॥

युषं कुर्यात् । तद्यथा—स्रुवेण भस्मानीय दक्षिणानामिकागृहीतभस्मना—ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः, इति ललाटे । ओं कश्यपस्य त्र्यायुषम्, इति ग्रीवायाम् । ओं यद्देवेषु त्र्यायुषम्, इति दक्षिणबाहुमूले । ओं तन्मेऽस्तु त्र्यायुषमिति हृदि । ततो दक्षिणा—ओं अद्य कृतैतद्होमकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् ।

अथ महानवम्यां सायं कृत्यम्

तत्र कृतनित्यक्रियः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य दण्डवत्प्रणम्य भक्त्या स्तुवीत—ओं आयुर्देहि यशो देहि भाग्यं भगवति देहि मे । पुत्रान्देहि धनन्देहि सर्वान्कामान्प्रदेहि मे ॥ प्रचण्डे पुत्रदे नित्यं सुप्रीते सुरनायिके । कुलोद्द्योतकरे चोग्रे जयन्देहि नमोस्तु ते ॥ उग्रचण्डे प्रचण्डासि प्रचण्डबलनाशिनि । नमस्ते सर्वदा देवि विश्वेश्वरि नमोस्तु ते ॥ दुर्गोत्तारिणि दुर्गे त्वं सर्वासुरनिषूदिनि । धर्मार्थमोक्षदे देवि नित्यम्मे वरदा भव ॥ दुर्गे देवि महाभागे त्राहि मां शरणागतम् । महिषासृङ्मदोन्मत्ते प्रणतोऽस्मि प्रसीद मे ॥ हर पापं हर क्लेशं हर शोकं हराऽशुभम् । हर रोगं हर क्षोभं हर मानं हराप्रियम् ॥ कालि कालि महाकालि कालिके पापहारिणि । धर्मकामप्रदे देवि नारायणि नमोस्तु ते ॥ संग्रामे विजयन्देहि धनन्देहि सदा गृहे । धर्मकामार्थसम्पत्तिं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । आयुरारोग्यविजयन्देहि देवि नमोस्तु ते ॥ आयुर्ददातु मे काली पुत्रानपि सदा शिवा । अर्थकामौ महामाया विभवं सर्वमङ्गला ॥ शिरो मे चण्डिका पातु कण्ठं पातु सुरेश्वरी । हृदयं पातु चामुण्डा सर्वतः पातु कालिका ॥ ब्रह्माणी चैव कौमारी वाराही वैष्णवी तथा । माहेश्वरी नारसिंही चेन्द्राणी शिवदूत्यपि ॥ महाकाली च चामुण्डा भैरवी कौशिकी तथा । उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥ चण्डा चण्डवती चैव ह्यतिचण्डा च चण्डिका । एताश्चान्याश्च रुद्राणि यास्ते तिष्ठन्ति शक्तयः ॥ ताभिस्सहैव मां रक्ष संग्रामे सङ्कटे

तथा । नानापुराणवाक्येन नानादेवर्षिभाषितैः ॥ सदा शिवाज्ञया चापि त्वमेव शरणम्मम । त्वां विहाय न चान्य वै संश्रये तेवतां शिवे । अतः परं यदुचितं तत्कर्तुं मातरर्हसि । आध्याकुलञ्च दारिद्रयं रोगं शोकञ्च दारुणम् ॥ बन्धुस्वजनवैराग्यं दुर्गे त्वं हर दुर्गतिम् ॥ राज्यन्तस्य प्रतिष्ठां च लक्ष्मीस्तस्य सदा स्थिरा । प्रभुत्वन्तस्य सामर्थ्यं यस्य त्वं मस्तकोपरि ॥ धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सफलं जीवितम्मम । आगतासि यतो दुर्गे माहेश्वरि ममालयम् । अर्घ्यं पुष्पञ्च नैवेद्यं धूपं दीपं वलिन्तथा । गृहाण वरदे देवि कल्याणं कुरु सर्वदा ॥ इति स्तुत्वा प्रणम्य जलमादाय ओं मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् । पूर्णम्भवतु तत्सर्वन्त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥ ग्रहीतुं शारदीं पूजां मर्त्यमण्डलमागताम् । चण्डिके त्वान्नमाम्यद्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥ कायेन मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्मम । अन्तश्चरसि भूतानां ज्ञात्री त्वं सर्वसाक्षिणि ॥ इति देव्यै पूजां समर्पयेत् । तत आरात्तिकं विधाय नृत्यगीतवाद्याद्युत्सवादिना रात्रि क्षपेत् ॥ इति महानवमीकृत्यम् ।

अथ दशमीकृत्यम्

तत्र प्रातः कृतनित्यक्रियः पर्ववद्यथाविधि पूजां विधाय (१) वलिदानं बिनैव ‘ओं जयन्ती मङ्गला काली इति जयन्तीं छित्त्वा दण्डवत् प्रणम्य–ओं दुर्गां शिवाम् (पृ० १६६) इत्यादिभिः स्तुत्वाऽञ्जलिम्बद्ध्वा ओं महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । द्रव्यमारोग्यविजयं देहि देवि नमोस्तु ते ॥ ओं रूपन्देहि जयन्देहि भाग्यं भगवति देहि मे । धर्मां देहि धनन्देहि सर्वान्कामान्प्रदेहि मे ॥ ओं कुंकुमेनेत्यादि (पृ० १६०) सर्वमङ्गलमाङ्गल्यै इत्यादिना च संप्रार्थ्यं—ओं विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् । पूर्णम्भवतु तत्सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥ शक्नुवन्ति न ते

---

(१) केचित्त्वत्र प्रस्तुतपूजायाः अनङ्गत्वेपि देविविसर्जनात् प्रागेव अपराजितापूजामाचरन्ति । वस्तुतस्तु नृपतिरेवात्र अपराजितापूजामाचरेदिति गुरुचरणाः । अपराजितापूजा १८३ पृष्ठे द्रष्टव्या ।

पूजां कर्तुं ब्रह्मादयः सुराः। अहं किं वा करिष्यामि मृत्युधर्मा नरोऽल्पधीः॥ न जानेऽहं स्वरूपं ते न शरीरं न वा
गुणम्। एकामेव हि जानामि भक्तिन्त्वच्चरणाब्जयोः॥ ताम्भक्तिं हृदि सम्भाव्य शारद्यर्चां प्रगृह्य च। गच्छ देवि निजं
स्थानं मह्यन्दत्त्वा वरान्बहून्॥ इति संप्रार्थ्य पुष्पं गृहीत्वा—ओं चण्डेश्वर्यै नमः, ओं निर्माल्यवासिन्यै नमः इत्यै-
शान्यां क्षिपेत्। ततो देव्याः चरणं स्पृष्ट्वा—ओं कालि कालि महाकालि कालिके पापनाशिनि। कालीकरालि
निष्क्रान्ते कालिके त्वान्नमोस्तु मे॥ सिंहवाहिनि चामुण्डे पिनाकधरवल्लभे। उपहारं गृहीत्वैवं प्रसीद परमेश्वरि॥
उत्तिष्ठ देवि चामुण्डे शुभां पूजां प्रगृह्य मे। कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह॥ गच्छ गच्छ परं स्थानं
स्वस्थानं देवि चण्डिके। यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णन्तदस्तु मे॥ गम्यतामर्थलाभाय क्षेमाय विजयाय च। शत्रोर्दर्प-
विनाशाय पुनरागमनाय च॥ व्रज त्वं स्रोतसि जले मद्गेहे तिष्ठ भूतये। आगामिवत्सरे च त्वं पुनरायास्यसि ध्रुवम्॥
ओं गच्छन्तु देवताः सर्वा दत्त्वा मे वरमीप्सितम्। त्वं गच्छ परमेशानि सुखं सर्वगणैः सह॥ ओं ह्रीं साङ्गसायुध-
सपरिवारभगवति श्रीदुर्दे देवि पूजितासि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ। एवम् ओं लक्ष्मि पूजितासि प्रसीद मयि
रमस्व। ओं सरस्वति पूजितासि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ। ओं गणेश पूजितोसि प्रसीद० । ओं कार्तिकेय
पूजितोसि प्र०। ओं जये पूजितासि प्र०। ओं विजये पूजितासि प्र०। ओं सिंह पूजितोसि प्र०। ओं महिष पू०।
ओं मूषिक पू०। ओं मयूर पू०। ओं नवपत्रिकास्थदेव्यः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत। ओं कलशस्थावा-
हितदेवताः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत। इति प्रत्येकं विसृज्य ओं ह्रीं चामुण्डे चल चल चालय चालय हूं
फट् स्वाहा इत्यनेनोत्थाय नृत्यगीतादिनोत्सवपुरस्सरं जलाशयं नीत्वा—ओं दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ
पूजिते। संवत्सरव्यतीते तु पुनरागमनाय वै॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्ति निवेदिताम्। रक्षणार्थं समादाय
व्रजस्व स्थानमुत्तमम्॥ इति पठित्वा जले प्रवाहयेत्। एवमन्याः प्रतिमा अपि प्रवाहयेत्।

अथ पुनः पूजास्थानमागत्य(१) कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अद्याश्विनशुक्लप्रतिपदमारभ्य दशमीं यावत् कृतैतच्छरत्कालीनसाङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीदुर्गादेवीपूजनकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे ॥ इति दक्षिणां दत्त्वा शान्तिकलशमुत्थापयेदनेन—ओं उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उपप्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवासचा ॥ ईति । ततो वक्ष्यमाणमन्त्रैर्यजमानमभिषिञ्चेत् ।

अथाऽभिषेकमन्त्राः

कलशजलेन पञ्चपल्लवैरभिषेकं कुर्यात् । तद्यथा—ओं सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः ॥ प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते । आखण्डलोग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा ॥ वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः । ब्रह्मणा सहितश्शेषो दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥ कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः । बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ॥ एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः । आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः ॥ ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः । देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च । देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च । ओषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ॥ सरितः सागराश्शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः । एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

---

(१) अत्रैव भूयसीं कुर्यात् । तद्यथा—कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ॐ अद्य कृतैतत्साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारशरत्कालीनश्रीदुर्गापूजाकर्मणि न्यूनाधिककर्मदोषशमनार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो भूयसीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृज्ये ।

अथ अपराजितापूजाविधिः

अत्र सङ्कल्पः—कुशादिकमादाय—ओं अद्याश्विने मासि शुक्ले पक्षे विजयदशम्यां तिथौ अमुकगोत्रस्याऽमुकशर्मंशः यात्रायां विजयकामोऽपराजितापूजनमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य–एकस्मिन् पात्रे चन्दनादिना अष्टदलपद्मविलिख्य तत्र दूर्वाहरिद्रासहितापराजितालतां स्थापयित्वा अष्टदलमध्ये-ओं भूर्भुवः स्वर्भगवति श्री अपराजिते इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य पुष्पमादाय—ओं चतुर्भुजां पीतवसनां सर्वाभरणभूषिताम्। शुद्धस्फटिकसंकाशां चन्द्रकोटिसुशीतलाम्॥ वरदाऽभयहस्तां च पीतवस्त्रैरलंकृताम्। नानाभरणसंयुक्तां चक्रवाकैश्च वेष्टिताम्॥ इदं ध्यानपुष्पम् ओं भगवति श्री अपराजितायै नमः। इति यथोपचारैः सम्पूज्य—ओं क्रिये इहागच्छ० क्रियायै नमः। ओं उमे इहागच्छ० उमायै नमः। ओं जये इहागच्छ० जयायै नमः। ओं विजये इहागच्छ० विजयायै नमः। इत्यनेन पञ्चोपचारैः पूजयेत्। ततोऽपराजितालतामभिमन्त्रयेदनेन—ओं सदाऽपराजिते यस्मात्त्वं लतासूत्तमा स्मृता। सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थं तस्मात्त्वां धारयाम्यहम्॥ भवाऽपराजिते देवि मम सर्वसमृद्धये। पूजितायां त्वयि श्रेयो ममाऽस्तु दुरितं हतम्॥ इत्यभिमन्त्र्य—ओं जयदे वरदे देवि दशम्यामपराजिते। धारयामि भुजे दक्षे जयलाभाभिवृद्धये॥ इति अभिलषितकामनावाप्तिपूर्वकयात्राविजयकामनया दक्षिणकरे धारयेत्। ततः समाचारादस्त्राणि सम्पूज्य खड्गमादाय ओङ्कारमुच्चारयन् प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य—

ओं इमां पूजां महादेवि यथाशक्ति निवेदिताम्।
रक्षणाय समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम्॥

ओं साङ्गसायुधसपरिवारभगवति श्री अपराजिते पूजितासि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ ।

एवमन्या अपि विसृज्य दक्षिणां दद्यात्—

ॐ अद्य कृतैतत्साङ्गसायुधसपरिवार—श्री अपराजितापूजनकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे । ॐ स्वस्तीति प्रतिवचनम् ।

इत्यपराजितापूजाविधिः (१) ।

इति शारदीयदुर्गापूजापद्धतिः ।

---

(१) विजयदशम्यां सीमोल्लंघनविधिः । भविष्ये—
श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः । उल्लंघयेयुः सीमानं तद्दिनर्क्षे ततो जनाः ॥
तत्रैव शमीपूजनमप्युक्तं—शमीयुक्तं जगन्नाथ भक्तानामभयङ्करम् । अर्चयित्वा शमीवृक्षमर्चयेच्च ततः पुनः ॥
तत्र मन्त्रः—अमङ्गलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च । दुःस्वप्ननाशिनीं धन्यां प्रपद्येऽहं शमीं शुभाम् ॥
पुनश्च भविष्ये—शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टका । धारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥
करिष्यमाणयात्रायां यथाकालं सुखं मया । तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते ॥
गृहीत्वा साक्षतामार्द्रां शमीमूलगतां मृदम् । गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत् स्वगृहं प्रति ॥
ततो भूषण-वस्त्रादि धारयेत् स्वजनैः सह ॥

शमीपूजनविधिः वैष्णवानां शा० दुर्गापूजनान्ते १९३ पृष्ठे द्रष्टव्यः ।

अथ वैष्णवानां शारदीयदुर्गापूजापद्धतिः

अथ कलशस्थापनविधिः

तत्र देवगृहस्येशानभागे सुलिप्तायां सुशोभितायां भूमौ चतुरस्रचतुर्हस्तवेदिकोपरि सर्वतोभद्रादिमण्डलं विलिख्य कदलीस्तम्भसुवितानादिशोभितं यथासम्भवं विधाय वीजप्ररोहणयोग्यां मृत्तिकां किञ्चित् यवबीजं पञ्चरत्न-पञ्चपल्लव-पञ्चगव्य-दूर्वा-फल-ताम्बूल-कुंकुम-वस्त्र-नैवेद्य-धूप-दीपादिसम्भारान् यथाशक्ति सम्पादयेत् ।

अथ यजमानः प्रतिपदि प्रातरभ्यङ्गं कृत्वा मण्डपसमीपे आसने प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य दीपं प्रज्वाल्य आचम्य पवित्रपाणिः प्राणानायम्य आत्माग्रे चन्दनेन शंखचक्रे लिखित्वा 'ओं आधारशक्तये नमः ।' इत्याधारशक्तिं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य तत्रार्घ्यपात्रं संस्थाप्य शुद्धजलेन आपूरयेदनेन—

ओं गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

ततो गन्धपुष्पादि तूष्णीं क्षिपेत् । ततः पूजासङ्कल्पः—ओं अद्य शरदृतौ आश्विने मासि शुक्ले पक्षे प्रतिपदि शुभपुण्यतिथौ (१)'अमुकगोत्रोऽहं सकुटुम्बस्य ममेह जन्मनि' श्रीमहामायाप्रीतिद्वारा सर्वापच्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्विपुल-धनपुत्रपौत्राद्यविच्छिन्नसन्ततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीशत्रुजयकीर्तिलाभप्रमुखचतुर्विधपुरुषार्थसिद्धयर्थमद्यप्रभृति - महानवमी-पर्यन्तं प्रत्यहं शारदीयमहोत्सवं करिष्ये, तत्रादौ कलशस्थापनं करिष्ये । ततः—ओं मही द्यौः पृथिवी च न इमं

---

(१) ग्रामपूजायां तु—'अमुकगोत्रोऽहं……'जन्मनि' इत्यस्य स्थाने—"एवद्ग्रामवासिनां नानानाम् गोत्राणां सकल-जनानामेतत्पूजोपकारकाणामन्यद्ग्रामवासिनां इह जन्मनि' इति योज्यम् ।

यज्ञं मिमिक्षताम् । पिपृतान्नो भरीमभिः ॥ इति भूमिं स्पृष्ट्वा तदुपरि अङ्कुरारोपणार्थं शुद्धमृदं प्रक्षिप्य—ओं ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणत्वꣳराजन् पारयामसि ॥ इति । तत्र किञ्चिद् यवानुदकसंस्थान् क्षिप्त्वा तदुपरि किञ्चिद् मृत्तिकां दत्त्वा पुनः किञ्चिद् यवान् पञ्चवारं सप्तवारं वा क्षिप्त्वा तद्योग्यां मृत्तिकां बीजमिश्रां पुनर्दद्यात् । एवं वीजवापनं विधाय वेद्यां दिक्षु कोणेषु च काण्डरोपणादिनाऽऽभरणं विधाय तत्रेशाने कलशं स्थापयेदनेन—ॐ आजिघ्र कलशं मह्या त्वा व्विशन्त्वन्दवः । पुनरूर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा विशताद्रयिः ॥ इति अव्रणं दध्यक्षतचन्दनमालार्चितं कलशं स्थापयेत् । ततः—ओं वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो व्वरुणस्यऽ ऋतसदन्यसि व्वरुणस्यऽऋतसदनमसि व्वरुणस्यऽऋतसदनमासीद ॥ इति गङ्गादितीर्थजलेनापूरयेत् । ततो गन्धप्रक्षेपः—ओं गन्धद्वारां दुराधर्षा नित्यपुष्टां करींषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ इति । ततो दूर्वाप्रक्षेपः—ओं काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवा नो दूर्व्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ ततः सर्वौषधीनां हरिद्रायां वा प्रक्षेपः—ओं याऽओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मनो नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥ इति । ततः पूगीफलादिप्रक्षेपः—ओं याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । वृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥ ततो गव्यं पयः—ओं पयः पृथिव्यां पयऽओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः । पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ ततो गव्यं दधि—ओं दधिक्राव्णोऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य व्वाजिनः । सुरभि नो मुखाकरत् प्रणऽआयूꣳषि तारिषत् ॥ ततो गव्यं घृतम्—ओं घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्व्वी पृथ्वी मधुदुधे सुपेशसा । द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा व्विष्कभितेऽअजरे भूरिरेतसा ॥ ततः पञ्चपल्लवप्रक्षेपः—ओं अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो व्वसतिष्कृता । गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ततः सप्तमृत्प्रक्षेपः—ओं स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ ततः पञ्चरत्नानि—ओं परिवाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्

दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ ततो हिरण्यम्—ओं हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । सदाधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा व्विधेम ॥ ततो वस्त्रम्—ओं यदश्वाय वासऽउपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्या न्यस्मै । सन्दानमर्वन्तं षड्वीशं प्रिया देवेष्वायामयन्ति ॥ ततः कलशोपरि धान्यपूर्णपात्रं स्थापयेदनेन—ओं पूण दर्व्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत । व्वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जँ शतक्रतो ॥ ततोऽक्षतैर्वरुणावाहनम्—ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो व्वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्रमोषीः ॥ ततः सर्वतीर्थावाहनम्—सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥ ततः कलशाभिमन्त्रणम्—कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः । मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणः स्मृतः ॥ कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा । ऋग्वेदोऽथ ययुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥ अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ॥ ततः कलशप्रार्थना–देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ । उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥ त्वत्तोये सर्वतीर्थानि वेदाः सर्वे त्वयि स्थिताः । त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥ शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः । आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः । त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदः ॥ त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव । सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ॥ ओं स्थिरा भव मीढ्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुखदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहनः ॥ ततः ओं भूर्भुवः स्वः ब्रह्मवरुणसहितादित्यादिनवग्रहा अस्मिन् कलशे सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु । 'ॐ ब्रह्मवरुणग्रहेभ्यो नमः' इति मन्त्रेण गन्धाक्षतपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः सम्पूज्य तत्र कलशोपरि कुलदेवताया नवदुर्गाया वा प्रतिमां पूगीफलेषु नवदुर्गां वा प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् । स्वस्थाने एव वा संस्थाप्य पूजयेत् । अथवा नवां सौवर्णीं कुलदेवताप्रतिमां प्राणप्रतिष्ठापूर्वकं प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् ।

अथ दुर्गापूजाविधिः

तत्र ओं 'मनोजूतिः०' इत्याद्यन्ते ओं भूर्भुवः स्वः भगवति दुर्गे इहागच्छेह तिष्ठेह सन्निधेहि स्थिरा सुप्रसन्ना सुप्रतिष्ठिता भव। इति प्राणप्रतिष्ठां विधाय ध्यायेत्—ओं या माया मधुकैटभप्रमथिनी या माहिषोन्मूलिनी, या धूम्रेक्षणचण्डमुण्डमथनी या रक्तबीजाशनिः। शक्तिः शुम्भनिशुम्भदैत्यदलनी या सिद्धिलक्ष्मीः परा, सा दुर्गा नवकोटिमूर्तिसहिता मां पातु विश्वेश्वरी॥ आवाहनम्—ओं आवाहयाम्यहं देवि सर्वकामार्थसिद्धये। अस्यां मूर्तौ समागच्छ स्थितिं मत्कृपया कुरु॥ ओं जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी। दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥ आसनम्—ओं नानाप्रभासमाकीर्णं नानावर्णविचित्रितम्। आसनं कल्पितं देवि प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्॥ पाद्यम्—ओं गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्य आनीतंतोयमुत्तमम्। पाद्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण परमेश्वरि॥ अर्घ्यम्—ओं गन्धाक्षतैश्च संयुक्तं फलपुष्पयुतं शुभम्। अर्घ्यं गृहाण दत्तं मे प्रसीद परमेश्वरि॥ आचमनीयम्—ओं गङ्गागोदावरीरेवायमुनाभ्यः समाहृतम्। मयाचनीयार्थं सुशीतं तोयमुत्तमम्॥ पञ्चामृतस्नानम्—ओं पञ्चामृतं मयानीतं पयोदधिसमन्वितम्। घृतं मधु शर्करया प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्॥ शुद्धोदकस्नानम्—ओं ज्ञानमूर्ते भद्रकालि दिव्यमूर्ते सुरेश्वरि। स्नानं गृहाण देवि त्वं नारायणि नमोऽस्तु ते॥ वस्त्रम्—ॐ सूक्ष्मतन्तुसमाकीर्णं नानावर्णविचित्रितम्। वस्त्रं गृहाण मे देवि प्रीत्यर्थं तव निर्मितम्॥ उत्तरीयम्—ॐ उत्तरीयं महादिव्यं पट्टसूत्रादिनिर्मितम्। समानीतं मया देवि प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्॥ गन्धः—ओं मलयाद्रिसमुद्भूतं कर्पूरागुरुवासितम्। मया निवेदितं भक्त्या प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्॥ अक्षताः—ओं अक्षताश्च सुरश्रेष्ठाः कुङ्कुमेन समन्विताः। मया निवेदिता भक्त्या प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्॥ पुष्पाणि—ओं मन्दारः पारिजातश्च पाटलो केतकी तथा। मालती मोगरं चैव शतपत्राणि चम्पकम्॥ मया निवेदितं भक्त्या प्रसीद परमेश्वरि।

अथाङ्गपूजा—ओं दुर्गायै नमः पादौ पूजयामि १, महाकाल्यै० गुल्फौ० २, मङ्गलायै० जानुनी० ३, कात्या-

यन्यै० ऊरू० ४, भद्रकाल्यै० कटिं० ५, कमलायै० नाभिं० ६, शिवायै० उदरं० ७, क्षमायै० हृदयं० ८, स्कन्दायै० कण्ठं० ९, महिषासुरमर्दिन्यै० नेत्रे० १०, उमायै० शिरः० ११, विन्ध्यवासिन्यै० सर्वाङ्गं० १२। धूपः—ॐ दशाङ्गं गुग्गुलुं धूपं चन्दनागुरुसंयुतम्। मया निवेदितं भवत्या गृहाण परमेश्वरि॥ दीपः—ॐ आज्यं सद्वर्तिसंयुक्तं वह्निना दीपितं मया। पीपं गृहाण देवेशि त्रैलोक्यतिमिरापहम्॥ नैवेद्यम्—ॐ अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्। मक्ष्यभोज्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥ तत आचमनीयम्। ततः प्राणादिमुद्राः प्रदर्श्य क्षणं ध्यात्वा यथाशक्ति मूलमन्त्रजपं विधाय गुह्यातीति देव्या दक्षिणाधोहस्ते समर्प्य नैवेद्यमुद्वास्य 'ॐ दुर्गायै नमः' इति आचमनीयं समर्प्य करोद्वर्तनं दद्यात्—ॐ मलयाचलसम्भूतं कस्तूर्यादिसमन्वितम्। करोद्वर्तनकं देवि गृहाण परमेश्वरि॥ ततः फलम्—ॐ इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्तव। तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि॥ ताम्बूलं—ॐ पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम्। कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥ अलङ्काराः–ॐ अलङ्करान् महादिव्यात् नानारत्नविनिर्मितान्। गृहाण देवदेवि त्वं प्रसीद परमेश्वरि॥ दक्षिणा––ॐ हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे॥ ततः छत्रचामरपादुकादर्पणान् 'साङ्गायै सपरिवारायै सवाहनायै सायुधायै श्रीभगवत्यै महासरस्वत्यै नमः' इति समर्पयेत्।

अथ नीराजनम्—ॐ अन्तस्तेजो बहिस्तेज एकीकृत्यामितप्रभम्। आरार्तिकमिदं देवि गृहाण मम सिद्धये॥ चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च। त्वमेव सर्वज्योतींषि आरार्तिः प्रतिगृह्यताम्॥ प्रदक्षिणा––ॐ यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि वै। तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिण पदे पदे॥ ततः पुष्पाञ्जलिः—ॐ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि। द्रव्यमारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥ ततः पूजनान्ते—ॐ अखण्डदीपकं देव्याः प्रीतये नवरात्रकम्। उज्ज्वालयेदहोरात्रमेकचित्तो धृतव्रतः॥ इति मन्त्रेणाऽखण्डदीपं प्रतिष्ठाप्य प्रज्वाल्य पूज-

येत् । ततः पूर्वसङ्कल्पितं स्वकुलाचारानुसारेण चण्डीपाठादि कुर्यात्, ब्राह्मणद्वारा वा कारयेत् ।

अथ कुमारिकापूजनविधिः

ओं मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातॄणां रूपधारिणीम् । नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यामावाहयाम्यहम् ॥ जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि । पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥ इति मन्त्राभ्यां कुमारीं सम्पूज्य नानाभक्ष्यभोज्यचूष्यलेह्यादिभिः सम्भोज्य आचमय्य तद्धस्तेषु अक्षतान् दद्यात् । कुमारी च तानक्षतान् यजमानशिरसि दद्यात् । ततः कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात् ।

(एवं च षष्ठीपर्यन्तं प्रत्यहं पूजयेत् । तत्र पूजां कृत्वा द्वितीयायां देव्यै केशसंयमनार्थं पट्टडोरकम्, तृतीयायां चरणरागार्थमलक्तम्, शिरसि धारणार्थं सिन्दूरं, मुखविलोकनार्थं दर्पणम्, चतुर्थ्यां मधुपर्कं, रौप्यतिलकं (टिकुली), नेत्रार्थं कज्जलम्, पञ्चम्यां चतुःसमालेपनं, यथाशक्त्यलङ्करणं च समर्पयेत् । सायं प्रातः पुष्पाञ्जलिं च प्रत्यहं दद्यात् । सङ्कल्पवाक्येषु प्रत्यहं उक्ततिथ्युल्लेखः कर्तव्यः ।)

अथ षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणविधिः

तत्राश्विनशुक्लषष्ठ्यां ज्येष्ठानक्षत्रयुतायां केवलायां वा सायङ्काले बिल्ववृक्षे देवीबोधनं निमन्त्रणं च ।

तत्प्रयोगः—अर्घ्यं सम्पाद्य शुचिर्भूत्वा फलसंयुतबिल्ववृक्षसमीपमागत्य यथाविधि अर्घ्यं संस्थाप्य पूजासङ्कल्पं कुर्यात् । ओं विष्णुः ३ अद्येत्यादि अमुकोऽहं श्रीदेवीबोधनाङ्गत्वेन श्रीवृक्षस्य पूजनं निमन्त्रणं च करिष्ये । ओं बिल्ववृक्षाय नमः' इति नाममन्त्रेण बिल्ववृक्षं सम्पूज्य 'ओं जयन्ती' इत्यादि पठित्वा 'श्रीदुर्गे इहागच्छ' इत्यादि वा दुर्गामावाह्य सम्पूज्य गीतवाद्यघोषपुरःसरं देवीं बोधयेत् । तत्र मन्त्रः—ओं रावणस्य वधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च । अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्यास्त्वयि कृतः पुरा ॥ इषे मासि सिते पक्षे षष्ठ्यां ज्येष्ठानुयोगतः । श्रीवृक्षे बोधयामि त्वां

यावत्पूजां करोम्यहम् ॥ ततो बिल्वतरोरामन्त्रणम्—ओं मेरुमन्दरकैलासहिमवच्छिखरे तथा। जातः श्रीफलवृक्षस्त्वमम्बिकायाः सदा प्रियः॥ श्रीशैलशिखरे जातः श्रीफलः श्रीनिकेतनः। नेतव्योऽसि मया वृक्ष पूज्यो दुर्गास्वरूपतः॥ इत्यामन्त्र्य गृहमागच्छेत्।

अथ महासप्तम्यां पत्रिकापूजनविधिः

ततः सप्तम्यां प्रातर्नित्यकृत्यान्ते निमन्त्रितवृक्षसमीपमागत्य पुनः सम्पूज्य कृताञ्जलिः प्रार्थयेत्—ओं बिल्ववृक्ष महाभाग सर्वदा शङ्करप्रिय। गृहीत्वा तव शाखां तु दुर्गापूजां करोम्यहम्। शाखाच्छेदोद्भवं दुःखं न च कार्यं त्वया प्रभो॥ ततः 'ओं छिन्धि फट् ओं हुँ फट् स्वाहा' इति मन्त्रेण फलद्वययुतामपराजितादिग्गतामेकां शाखां छेदयेत्। तत्र मृन्मयप्रतिमायां शाखायां च देवीमावाहनपुरःसरं सम्पूज्य सप्रतिमां शाखां दोलादिना गृहमानीय भूतोत्सादनं विधाय देवस्थाने कलशादिसन्निधौ स्थापयेत्। तत्र मन्त्रः—ओं आरोपिताऽसि दुर्गे त्वं मृन्मये श्रीफलेऽपि च। स्थिरा नितान्तं भूत्वा मे गृहे त्वं कामदा भव॥ ततः प्राणप्रतिष्ठां विधाय ओं दुर्गायै नमः इति ध्यायेत्। तत आवाहनम्—ओं आवाहयाम्यहं देवि मृन्मये श्रीफलेऽपि च॥ कैलासशिखराद् देवि विन्ध्याद्रेर्हिमपर्वतात्॥ आगत्य बिल्पशाखायां चण्डिके कुरु सन्निधिम्॥ भगवति दुर्गे इहागच्छेत्युभयोरावाह्य स्थापनम्—ओं स्थापिताऽसि मया देवि मृन्मये श्रीफलेऽपि च। आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥ भगवति दुर्गे इह तिष्ठेति संस्थाप्य कृताञ्जलिः पठेत्—ओं दुर्गे दुर्गस्वरूपाऽसि सुरतेजोमहाबले। सदानन्दकरे देवि प्रसीद मम सिद्धये॥ एह्येहि भगवत्यम्ब शत्रुक्षयजयप्रदे। भक्तितः पूजयामि त्वां दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ पल्लवैश्च फलोपेतैः पुष्पैश्च सुमनोहरैः। पल्लवे संस्थिते देवि पूजये त्वां प्रसीद मे॥ दुर्गे देवि इहागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय। यज्ञभागान् गृहाण त्वं योगिनीकोटिभिः सह॥

ततः (१८८ पृष्ठोक्त) भूर्वोक्तप्रधानदुर्गापूजाविधिना पुष्पपूजान्तं सम्पूज्य बिल्वपत्रं समर्पयेत्—

ओं अमृतोद्भववृक्षोत्थं शङ्करस्य सदा प्रियम् । विल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥ द्रोणपुष्पार्पणमन्त्रः— ब्रह्मविष्णुशिवादीनां द्रोणपुष्पं सदा प्रियम् । तत्ते दुर्गे प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये ॥ पुनः पूर्वोक्ताङ्गपूजादि नीराजनान्तं सम्पूज्य प्रार्थयेत्—

ओं कुङ्कुमेन समालब्धे चन्दनेत विलेपिते । बिल्वपत्रकृतापीडे दुर्गेऽहं शरणं गतः ॥ सर्वमङ्गल० रूपं देहि० इति च प्रार्थयेत् । एवमेव नवम्यन्तं पूजयेत् ।

अथ पुस्तकेषु सरस्वतीस्थापनविधिः

तत्र प्रातः कृतनित्यक्रियो मूलनक्षत्रे पुस्तकानि संस्थाप्य ओं विष्णुः ३ अद्यहेत्यादि अमुकोऽहं मूलनक्षत्रे पुस्तकेषु सरस्वत्या आवाहनं पूजनं च करिष्ये । ॐ 'मनोजूतिः' इति पठित्वा ॐ भूर्भुवः स्वः सरस्वति देवि इहागच्छ इह तिष्ठ सुप्रतिष्ठिता वरदा भव । ध्यानम्—ॐ या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता, या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना । या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता, सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेपजाड्यापहा ॥ श्री सरस्वत्यै नमः । आवाहनम्—ॐ भूर्भुवः स्वः भुवनमातः सरस्वति सर्ववाङ्मयरूपेणागच्छेह तिष्ठ पूजां गृहाण । 'ॐ श्रीसरस्वत्यै नमः' इति मन्त्रेण आसनादिनीराजनान्तं सम्पूज्य प्रार्थयेत् । ॐ दोर्भियुक्ता चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधाना, हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण । या सा कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकमणिनिभा भासमाना समाना, सा मे वाग्देवतेयं निवसतु वदने शारदा शुभ्रवर्णा ॥ यस्य स्मृत्या० इति कर्मेश्वरार्पणम् । ततः पूर्वाषाढोत्तराषाढानक्षत्रयुक्तद्वितीयतृतीयदिनयोरपि आवाहनरहितं सर्वं पूर्ववत्पूजनं कुर्यात् । ततः श्रवणदिने—ॐ विष्णुः ३ अद्येहेत्यादि अमुकोऽहं श्रवणेन विसर्जनं कर्तुं तदङ्गभूतां पूजां करिष्ये । इति संकल्प्य पूर्ववत्संपूज्य विसर्जयेत् ।

अथ महाष्टम्यां पूजाबलिदानविधिः

ततो व्रती कृतनित्यक्रियः ओं विष्णुः ३ अद्येहेत्यादि महाष्टम्यां शुभपुण्यतिथौ अमुकोऽहं महाष्टमीव्रताङ्गत्वेन श्रीदुर्गादेव्या यथामिलितोपचारैः पूजनं करिष्ये। इति संकल्प्य पूर्वोक्तविधिना महापूजां विधाय बलिदानं कुर्यात्— ओं विष्णुः ३ अद्येहेत्यादि अमुकोऽहं श्रीचण्डिकाप्रीतये वलिदानं करिष्ये। इति संकल्प्य कूष्माण्डबलिं वस्त्रवेष्टितं गन्धादिभिः सम्पूज्य—ओं कूष्माण्डो वलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः। प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम्॥ चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशन। चामुण्डाबलिरूपाय बले तुभ्यं ददाम्यहम्॥ ऐँ ह्रीँ श्रीँ इति मन्त्रेण बलिमूर्ध्नि पुष्पं दद्यात्। श्रीफलादिसत्त्वे श्रीफलं वलिरूपेण इत्याद्यूहः कार्यः। 'ओं ह्रीँ ऐँ ह्रीँ कौशिक कूष्माण्डरसेनाप्यायताम्। इति निवेदयेत्।

अथ हवनविधिः

तत्र नवम्यां पूजां विधाय पूर्वोक्तशारदीयदुर्गापूजाहवनविधिना अग्निं संस्थाप्य होमः कार्यः। तद्विधिश्च डामरतन्त्रे—पायसं सर्पिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम्। होमयेद्विधिवद्भक्त्या दशांशेन नृपोत्तमः॥ रुद्राध्याये यथा होमं मन्त्रेणैकेन साधयेत्। तथा स्तोत्रजपे होमं श्लोकेनैकेन साधयेत्। यद्वा सप्तशतीं जप्त्वा होममन्त्रो नवाक्षरः॥ रुद्रयामलेऽपि—प्रधानद्रव्यमुद्दिष्टं पायसान्नं तिलास्तथा। किंशुकैः सर्षपैः पूगैर्लाजादूर्वाङ्कुरैरपि॥ यवैर्वा श्रीफलैर्दिव्यैर्नानाविधफलैस्तथा। रक्तचन्दनखण्डैश्च गुग्गुलैश्च मनोहरैः॥ प्रति श्लोकं च जुहुयात् सर्वद्रव्याणि च क्रमात्। नवाक्षरेण वा हुत्वा नमो देव्या इतीति च॥ इति। स च नवार्णमन्त्रेण जयन्तीत्यादिश्लोकेन नमो देव्यै श्लोकेन सप्तशतीश्लोकैर्वा यथाकुलाचारं कार्यः। होमद्रव्यं सर्पिमिश्रितं च पायसम्, केवलं तिलां वा। किंशुकपुष्पदूर्वासर्षपलाजपूगयवश्रीफलरक्तचन्दनखण्डनानाविधफलानामपि पायसे मिश्रणं कार्यम्। होमश्च जपदशांशेन कार्यः।

अथ दशम्यां देवीविसर्जनम्

तत्र मृदादिप्रतिमाया विसर्जनपूर्वकं जलादौ त्यागः । परम्परया पूजिताया धातुप्रतिमायास्तु केवलमुत्थापनं कार्यं, न तु विसर्जनम् । तत्र प्रातः पूर्ववत्पूजयित्वा—ॐ रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवति देहि मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे ॥ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥ इति संप्रार्थ्य—ॐ उत्तिष्ठ देवि चामुण्डे शुभां पूजां प्रगृह्य च । कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह ॥ गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके । व्रज स्रोतोजलं वृद्ध्यै स्थीयतां च जले त्विह ॥ इत्युत्थाप्य जलं नीत्वा—ॐ दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिता । संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय वै ॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्युपपादिताम् । रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम् ॥ इति जले प्रवाहयेत् । तत आचार्यादीन् वस्त्रादिभिः सम्पूज्य अच्छिद्रं वाचयित्वा भूयसीं दक्षिणां च विभज्य दत्त्वा तान् भोजयित्वा स्वयमपि भुञ्जीत । अथ श्रवणे सरस्वतीविसर्जनम् । तद्विधिः संग्रहे—आश्विनस्य सिते पक्षे मेधाकामः सरस्वतीम् । मूलेनावाहयेद् देवीं श्रवणेन विसर्जयेत् ॥ श्रवणाद्यपादे विसर्जयेदिति । ॐ विष्णुः ३ अद्येहेत्यादि अमुकोऽहं श्रवणे पुस्तकेष्वावाहितसरस्वतीविसर्जनं कर्तुं तदङ्गभूतां पूजां करिष्ये इति संकल्प्य सम्पूज्य विसर्जयेत् ।

अथ दशम्यामपराजितापूजा

तत्र ऐशान्यां शुचिदेशे भुवमुल्लिख्य तत्र चन्दनादिना अष्टदलमालिख्य–ओमद्येत्यादि मम सकुटुम्बस्य क्षेमसिद्ध्यर्थमपराजितापूजनं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य मध्ये—ॐ अपराजितायै नमः । इत्यपराजितामावाह्य तद्दक्षिणे—ॐ क्रियाशक्त्यै नमः । इति जयाम्, वामतः—ओं उमायै नमः । इति विजयां चावाह्य ओं अपराजितायै नमः,

ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, इति नाममन्त्रैः यथोपचारपूजां कृत्वा प्रार्थयेत्—ॐ इमां पूजां मया देवि यथाशक्ति निवेदिताम् । रक्षार्थं तु समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम् ॥

ततः सीमामुल्लंघ्य सीमान्ते ऐशान्याभिमुखाः—ॐ अपराजितायै नमः ओं जयायै नमः, ओं विजयायै नमः, इति नमस्कुर्युः । ततः सर्वे जना ग्रामाद् वहिः ईशानदिगवस्थितां शमीं गत्वा पूजयेयुः ।

अथ शमीपूजनविधिः

तत्र ओमद्येत्यादि मम दुष्कृतामङ्गलनिरासार्थं च शमीपूजनं करिष्ये । इति संकल्प्य—अमङ्गलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च । दुःस्वप्ननाशिनीं धन्यां प्रपद्येऽहं शमीं शुभाम् ॥ शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टका । धारिण्यर्जुनवाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥ करिष्यमाणयात्रायां यथाकालं सुखं मया । तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते ॥ इति सम्प्रार्थ्य यथोपचारैः पूजयेत् ।

शमीवृक्षाऽलाभे अश्मन्तकपूजा कार्या । तत्र—'ॐ अस्मन्तकाय नमः' इति नाममात्रेण यथोपचारैः सम्पूज्य प्रार्थयेदनेन—

ओं अश्मन्तक महावृक्ष महादोषनिवारण । इष्टानां दर्शनं देहि शत्रूणां च विनाशनम् ॥

ततः साक्षतामार्द्रां शमीं गृहीत्वा तन्मूलमृदं च गृहीत्वा गीतवादित्रघोषपुरस्सरं गृहमानयेत् ।

इति वैष्णवानां शारदीयदुर्गापूजाविधिः ।

अथ कोजागरा-लक्ष्मीपूजा

आश्विनीपूर्णिमायां प्रदोषे(१) लक्ष्मीं पूजयेत्। तत्र सर्वाणि गृहाणि आवाससमीपमार्गाश्च परिष्करणीयाः। शरीरं चन्दनादिना भूषयितव्यम्। स्त्रीवालवृद्धमूर्खान् विहाय अन्यैः दिने न भोक्तव्यम्। प्रदोषसमये द्वारोर्ध्वभित्तौ—हव्यवाहन—पूर्णेन्दु-सभार्यरुद्र—स्कन्द—नन्दीश्वरमुनि—सुरभि—निकुम्भ—लक्ष्मी—इन्द्र—कुवेरा एते पूज्याः। येषां मेषा भवन्ति तैर्वरुणः पूजनीयः। येषां हस्तिनो भवन्ति तैर्विनायकः पूजनीयः। येषामश्वास्तै रेमन्तः पूजनीयः। येषां गावस्तैः सुरभिः पूज्या।

अथ पूजाविधिः—तत्र कृतनित्यक्रियो व्रती शुभासने उपविश्य गणपत्यादिपञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय ओं अस्यां रात्रौ आश्विने मासि शुक्ले पक्षे पञ्चदश्यां तिथावमुकगोत्रस्यामुकशर्मणो मम सकलदुःखदारिद्र्यनिरासपूर्वकदीर्घायुरारोग्यपुत्रपौत्रमहैश्वर्यसुखसम्पदभिवृद्धिकुलाभ्युदयाद्यभीष्टसिद्धिपूर्वकलक्ष्मीन्द्रप्रीतिकामनयाऽङ्गदेवतापूजापूर्वक—लक्ष्मीन्द्रकुवेरपूजनमहङ्करिष्ये। इति संकल्प्य द्वारदेशे जलेन द्वारमभिषिच्य, गन्धपुष्पाक्षतैः ओं द्वारोर्ध्वभित्तिभ्यो नमः। ओं द्वारदेवताभ्यो नमः। इति द्वारपूजां विधाय पूजास्थानमागत्य पुनः गन्धपुष्पाक्षतैः ओं वास्तुपुरुषाय नमः। इति सम्पूज्य अक्षतानादाय ओं हव्यवाहन इहागच्छ इह तिष्ठ एतानि पद्यादीनि ओं हव्य-

---

(१) इयं पूर्णिमा निशीथप्रदोषोभयव्यापिनी ग्राह्या। तदसम्भवे प्रदोषमात्रव्यापिन्यपि इत्युक्तं भविष्ये—दिवा तत्र न भोक्तव्यं मनुष्यैश्च विवेकिभिः। प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः क्रमात्॥ लैङ्गे—कौमुद्यां पूजयेल्लक्ष्मीमक्षैर्जागरणं चरेत्। निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी॥ तस्मै वित्तं प्रयच्छामि अक्षैः क्रीडां करोति यः॥ यदा तु परेद्युः प्रदोषव्याप्तिः पूर्वेद्युश्च निशीथव्याप्तिस्तदा पूर्वा। 'नक्तादिव्रतयोगे तु रात्रियोगो विशिष्यते।' इति वचनात्।

वाहनाय नमः। इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्। ततः पूर्णेन्दो इहागच्छ इह तिष्ठ। एतानि पाद्यादीनि एषोर्घः ओं पूर्णेन्दवे नमः। इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्। ततः ओं सभार्यरुद्र इहागच्छ इह तिष्ठ एतानि पाद्यादीनि ओं शभार्यरुद्राय नमः। एवं गन्धादिभिः पूजयेत्। ततः ओं स्कन्द इहागच्छेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ओं स्कन्दाय नमः एवं गन्धादिभिः पूजयेत्। ततः ॐ नन्दीश्वरमुने इहागच्छ इह तिष्ठ। एतानि पाद्यादीनि ॐ नन्दीश्वरमुनये नमः। इति पूजयेत्। ततः ॐ सुरभे इहागच्छ इह तिष्ठ। एतानि पाद्यादीनि ॐ सुरभ्यै नमः। इति पूजयेत्। ततः ॐ निकुम्भ इहागच्छ इह तिष्ठ। एतानि पाद्यादीनि ॐ निकुम्भाय नमः इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्।

अथ लक्ष्मीपूजा। तद्यथा, पुष्पं गृहीत्वा—ॐ या सा पद्मासनस्था विपुलकटितटी पद्मपत्रायताक्षी, गम्भीरावर्त्तनाभिः स्तनभरनमिता शुभ्रवस्त्रोत्तरीया। लक्ष्मीर्दिव्यैर्गजेन्द्रैर्मणिगणखचितैः स्नापिता हेमकुम्भैः, नित्यं सा पद्महस्ता वसतु मम गृहे सर्वमाङ्गल्ययुक्ता॥ इति ध्यात्वा—ॐ भूर्भुवः स्वर्लक्ष्मि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पद्याध्र्याचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ॐ लक्ष्म्यै नमः। इदमनुलेपनम्०। इदं सिन्दूरम्०। इदमक्षतं ॐ लक्ष्म्यै नमः। ततः पुष्पाण्यादाय—ॐ मन्दारपारिजाताद्यैरनेकैः कुसुमैः शुभैः। पूजयामि शिवे भक्त्या कमलायै नमो नमः॥ एतानि पुष्पाणि ॐ लक्ष्म्यै नमः। इति त्रिर्दत्वा, इदं रक्तवस्त्रम्०। इदं बिल्वपत्रम्०। इदं माल्यम्०। एष धूपः०। एष दीपः०। एतानि नानाविधनैवेद्यानि०। इदमाचमनीयम्०। एतानि नानाविधपक्वान्नसहितनारिकेलोदकसहितनानाफलानि०। एतानि ताम्बूलादीनि०। इदमाचमनीयं ॐ लक्ष्म्यै नमः। ततः—नमस्ते सर्वभूतानां वरदासि हरिप्रिये। या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात्त्वदर्चनात्॥ एष पुष्पाञ्जलिः ॐ लक्ष्म्यै नमः। इति त्रिर्दद्यात्। ततः ॐ रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवति देहि मे। धनान् देहि धनं देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे॥ इति सम्प्रार्थ्य ॐ विश्वरूपस्य भार्यासि पद्मे पद्मालये शुभे। सर्वतः पाहि मां देवि महालक्ष्मि नमोस्तु ते॥ इति प्रण-

मेत् । ततः ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ॐ इन्द्राय नमः । इति पाद्यादिभिः पूजयेत् । ततः ॐ भूर्भुवः स्व कुवेर इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ॐ कुबेराय नमः । ततः— ॐ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ ॐ पूजितदेवताः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत । ॐ श्रीर्मयि रमस्वेति लक्ष्मीञ्च विसृज्य यथाशक्ति ब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात् । तद्यथा कुशादिकमादाय—ओमद्य कृतैतदङ्गदेवतापूजापूर्वकश्रीमहालक्ष्मीपूजनकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे । ॐ स्वस्तीति प्रतिवचनम् । ततो नारिकेलजलादिनैवेद्यं च भुक्त्वा रात्रौ(१) अक्षैर्जागरणं बान्धवानां च भोजनम् ।

इति कोजागरालक्ष्मीपूजा समाप्ता ।

इति आश्विनमासकृत्यम् ।

---

(१) तिथितत्त्वे—'निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी । तस्मै वित्तं प्रदास्यामि अक्षैः क्रीडां करोति यः ॥' ः णतोषिणीतन्त्रे—'नारिकेलोदकं पीत्वा अक्षैर्जागरणं निशि । तद्विभूतिं प्रयच्छामि को जागर्ति महीतले ॥' इति ।

अथ कार्तिकमासकृत्यम्

अथ हविष्यनिर्णयः

नारदीये— नारिकेलफलं चैव कदलीं लवलीं तथा। आम्रमामलकीं चैव पनसं च हरीतकम् ॥ व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्यते बुधैः ॥ कात्यायनः—हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयो मताः। माषकोद्रवगौरादीन् सर्वाभावे विवर्जयेत्। यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत्। यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः ॥

महाभारते—कार्तिके सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः। जपन् हविष्यभुक् शान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ नित्यस्नायी = प्रातःस्नायी। स्नानं प्रधानं जपादिकमङ्गम्।

अथ कार्तिके प्रातःस्नानविधिः

वायुपुराणे—तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते। हविष्यं ब्रह्मचर्यञ्च महापातकनाशनम् ॥ अरुणोदय-वेलायां(१) जलाशयं गत्वा नित्यस्नानं कृत्वा—ॐ अमुकगोत्रोऽमुकशर्माऽहं मम सकलपापक्षयकामोऽद्यादि-

---

(१) देवीपुराणे—'कार्तिके ग्रहणं श्रेष्ठं गङ्गायमुनसङ्गमे ॥' कृत्यशिरोमणौ—यः करोति नगे नित्यं कार्तिके पत्रभोजनम्। न दुर्गतिमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ महाभारते—मासि मास्यश्वमेधेन यो जयेत्तु शतं समाः। न खादति च यो मांसं सममेतद्युधिष्ठिर ॥

पराशरः—स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला। पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रत चरेत् ॥ सिक्तगात्रा भवेदद्भिः साङ्गोपाङ्गा कथञ्चन। न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत् ॥ देवलः—उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ॥ इति ॥

कार्तिकमासं व्याप्य प्रतिप्रातःस्नानमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य—ॐ कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन। प्रीत्यर्थं तत्र देवेश दामोदर मया सह॥ इमं मन्त्रमुच्चार्य्य स्नायात्। ततोऽर्घदानम्—ॐ व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम। गृहाणार्घ मया दत्तं राधया सहितो हरे॥ स्नानाऽशक्तौ आह विष्णुरहस्ये—अशक्त्या त्रिदिनं स्नायात् मद्भक्त्या कार्तिके यदि। तस्मै पुण्यफलं लोके दास्यामि सकलं मुदा॥ इति।

अथ आकाशदीपदानविधिः

(उद्यापनविधिस्तु वर्षकृत्य-द्वितीयभागे द्रष्टव्यः)

कार्तिके(१) सङ्क्रान्तिक्रमेण प्रातः कृतस्नानादिराचान्तः—ॐ भगवन् सूर्य भगवत्यो देवता अद्यादि कार्तिकमासं व्याप्य प्रतिरात्रि विष्णुसम्प्रदानकाऽऽकाशस्थदीपदानव्रतमहमाचरिष्ये इति निवेद्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ॐ सर्वकुलोद्धरणपूर्वकविष्णुलोकावाप्तिकामनया अद्यादिकार्तिकमासं व्याप्य प्रतिनिशमाकाशस्य दीपं विष्णवेऽहं दास्ये। इति संकल्प्य रात्र्युपक्रमे विष्णुं संपूज्य—ॐ दामोदराय नभसि तुलायां लीलया सह। प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे॥ इति पठित्वा एष दीपः ॐ विष्णवे नमः। इति दद्यात्। एवं मासं यावत् प्रत्यहं स एव मन्त्रः। प्रतिसायंसन्ध्यं तिलतैलेन गोघृतेन वा आकाशे दीपं दद्यात्। तथाहि—तुलायां तिलतैलेन सायंसन्ध्यासमागमे। आकाशदीपं यो दद्यान्मासमेकं निरन्तरम्। यः श्रीकामः स श्रीपतये स श्रिया न वियुज्यते॥

---

(१) गौडाः—उच्चैः प्रदीपमाकाशे यो दद्याद्विष्णवे नरः। स सर्वं कुलमुद्धृत्य विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ पुनश्च तत्रैव यस्तु केशवमुद्दिश्य दीपं दद्यात्तु कार्तिके। आकाशस्थं ज्वलन्तं च शृणु तस्यापि यत् फलम्॥ धनधान्यसमृद्धस्तु पुत्रवान् ईश्वरो भवेत्। लोचने च शुभे तस्य विद्वानपि च जायते॥

वृश्चिकार्कसंक्रमणदिने प्रातः उद्यापनान्तं कार्तिकव्रतं समाप्य गोदानादि ब्राह्मणभोजनान्तं कर्म कुर्यात् ।

अथ लघुदीपावलिः

भविष्यपुराणे—यः कुर्यात् कार्तिके मासि शोभनां दीपमालिकाम् । घृतेन तु चतुर्दश्याममायाञ्च(१) विशेषतः ॥ यावद्दीपप्रसंख्या वै घृतेनापूर्य बोधिता । तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥

कार्तिककृष्णचतुर्दश्यां बहून् दीपान् प्रज्वाल्य कुशादिकमादाय—ओमद्यैतद्दीपसमसंख्यकयुगसहस्रावच्छिन्नरुद्रलोकमहितत्वकामनया इमां दीपमालिकां विष्णुदैवतां शिवायाऽहं ददे । इत्युत्सृज्येत् ।

अथ बृहद्दीपावलिः (सुखरात्रिः)

इयञ्चामावास्या प्रदोषव्यापिनी(२) ग्राह्या । तिथितत्त्वचिन्तामणौ–कार्तिके कृष्णपक्षे च प्रदोषे भूतदर्शयोः । नरः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोरमान् ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च । उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितृणां मार्गदर्शनम् ॥ अत्र दीपवृक्षाः कर्तव्याः । देवगृहचतुष्पथश्मशाननदीपर्वतवृक्षमूलगोष्ठचत्वरगृहेषु दीपितव्याः । ईदृग्भूमयश्च परिष्करणीयाः । दीपमालापरिवृतस्थाने ब्राह्मणा भोजयितव्याः । स्वयमपि अलङ्कृतः स्निग्धैर्बान्धवैः सार्धं

---

(१) कार्तिककृष्णत्रयोदश्यां यमप्रीत्यर्थं दीपदानं, तथाहि स्कान्दे—कार्तिकस्यासिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे । यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति ॥ यावन्तः परिवारजनास्तेषामेकैकस्मैकैकं दीपं दद्यात् ।

(२) उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ परा ग्राह्या । दण्डैकरजनीयोगे दर्शः स्याच्च परेऽहनि । तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका ॥ इति ज्योतिर्वचनात् । उभयदिने व्याप्त्यभावे तु परदिने एव पार्वणानुरोधादुल्काभ्रमणम् ।

भोक्तव्यम् । रात्रौ च शोभनायां शय्यायां विभूषिताभिर्दयिताभिः सह शयितव्यम् । भृत्येभ्योऽपि नववस्त्राणि दातव्यानि । अत्र महालयश्राद्धं प्रशस्तम् ।

अथ उल्काभ्रमणविधिः

अत्रोल्काग्रहणं पितृणां (१) मार्गदर्शनार्थं कार्यम् । प्रदीपनयोग्या तृणादिनिर्मिता दीर्घदीपिका कासारोल्का तामेकतः प्रदीप्तां गृहाद् बहिः दक्षिणामुखः तिष्ठन् गृह्णीयात् । उल्काग्रहणमन्त्रस्तु—ॐ शस्त्राशस्त्रहतानां च भूतानां भूतदर्शयोः । उज्ज्वलज्योतिषा देहं निर्दहे व्योमवह्निना ॥ ततः उल्का दक्षिणस्यां दिशि दर्शयन् मन्त्रं पठेत्—ॐ अग्निदग्धाश्च ये जीवाः येऽप्यदग्धाः कुले मम । उज्ज्वलज्योतिषा दग्धास्ते यान्तु परमाङ्गतिम् । विसर्जनमन्त्रस्तु—यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालये उज्ज्वलज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यन्तो व्रजन्तु ते ॥ इति दक्षिणस्यां क्षिपेत् ।

अथ सुखरात्रिकृत्ये लक्ष्मीपूजाविधिः

(बृहत्पूजा द्वि-भागे)

तत्र दिने वालान् रोगिणश्च विहाय कैश्चिदपि न भोक्तव्यम्(२) प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयेयुः । तत्र क्रमः— कृतनित्यक्रियो व्रती गृहाभ्यन्तरे उपविश्य कुशादिकमादाय—ओमद्य कार्तिके मासि कृष्णे पक्षे अमावास्यायां तिथौ प्रदोषे लक्ष्मीप्रसादमङ्गलावाप्तिकामो लक्ष्मीपूजनमहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य पुष्पाक्षतमादाय—ओं लक्ष्मि

---

(१) कार्तिककृष्णत्रयोदश्यां यमप्रीत्यर्थं दीपदानं, तथाहि स्कान्दे—कार्तिकस्यासिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे । यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति ॥ यावन्तः परिवारजनास्तेषामेकैकस्यैकैकं दीपं दद्यात् ।

(२) उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ परा ग्राह्या । दण्डैकरजनीयोगे दर्शः स्याच्च परेऽहनि । तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका ॥ इति ज्योतिर्वचनात्/ उभयदिने व्याप्त्यभावे तु परदिने एव पार्वणानुरोधादुल्काभ्रमणम् ।

इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ॐ लक्ष्म्यै नमः। इदमनुलेपनम्०, इदमक्षतम्०, इदं सिन्दूरम्० ॐ लक्ष्म्यै नमः। ततः पुष्पेण– ॐ नमस्ते सर्वभूतानां वरदासि हरिप्रिये। या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात् त्वदर्चनात्॥ एतानि गन्धपुष्पाणि ओं लक्ष्म्यै नमः। इति त्रिः पूजयेत्। ततः एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयथाभागनानाविधनैवेद्यानि ओं लक्ष्म्यै नमः। इदमाचमनीयम् ॐ लक्ष्म्यै नमः। ततः प्रार्थना—ओं विश्वरूपस्य भार्याऽसि पद्मे पद्मालये शुभे। महालक्ष्मि नमस्तुभ्यं शुभरात्रि कुरुष्व मे॥ वर्षाकाले महाघोरे यन्मया दुष्कृतं कृतम्। सुखरात्रिप्रभातेषु तन्मे लक्ष्मीर्व्यपोहतु॥ या रात्रिः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता। संवत्सरप्रिया या च सा ममास्तु सुमङ्गला॥ माता त्वं सर्वभूतानां देवानां तुष्टिसम्भवा। आख्याता भूतले देवि सुखरात्रि नमोस्तु ते॥ ततः ओं इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ओं इन्द्राय नमः। इदमनुलेपनम्०, इदमक्षतम्—ओं इन्द्राय नमः। ततः पुष्पाण्यादाय—ओं विचित्रैरावतस्थाय भास्वत्कुलिशपाणये। पौलोम्यालिङ्गिताङ्गाय सहस्राक्षाय ते नमः॥ एतानि पुष्पाणि ओं इन्द्राय नमः। एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयथाभागनानाविधनैवेद्यानि ओं इन्द्राय नमः। इदमाचमनीयम् ओं इन्द्राय नमः। ततः कुबेर इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ओं कुबेराय नमः। इत्यनेन पञ्चोपचारैः पूजयेत्। पुष्पदानमन्त्रस्तु—ओं धनदाय नमस्तुभ्यं निधिपद्माधिपाय च। भवन्तु त्वत्प्रसादान्मे धनधान्यादिसम्पदः॥ इति त्रिः पूजयेत्। ततः क्षमापनस्तोत्रादिकं पठित्वा त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य विसर्जयेत्। तद्यथा—ओं महालक्ष्मि पूजिताऽसि प्रसीद क्षमस्व मयि रमस्व। ओं इन्द्र पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ। ओं कुबेर पूजितोसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ। ततो दक्षिणा–ओमस्यां रात्री कृतैतल्लक्ष्मीपूजनकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यव हिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम्।

इति सुखरात्रिकृत्ये लक्ष्मीपूजा समाप्ता।

अथ श्यामापूजाविधिः

तत्र कृतनित्यक्रियो यजमानः (१) मध्यरात्रे पूजामण्डपस्थानमागत्य कृताञ्जलिर्भूत्वा पठेत्—ॐ तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम। भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि॥ ततो ब्राह्मणद्वारा स्वयं वा स्वस्त्ययनादिकं (२) कुर्यात्। ततो दक्षिणे पूजार्थवस्तूनि, वामे नैवेद्यादिकं च संस्थाप्य संकल्पं कुर्यात्—कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ॐ

---

(१) कामाख्यातन्त्रे—शरत्काले च देवेशि दीपयात्रादिने तथा। अमावास्यां समासाद्य मध्यरात्रौ विचक्षणः॥ मृन्मयीं पुत्तलीं कृत्वा दीपादिभिरलंकृताम्। बलिं नानाविधं दद्याद् वाद्यभाण्डसमन्वितम्॥ नृत्यं गीतं कौतुकानि यावत् सूर्योदयं चरेत्। प्रातःकाले शुद्धतोये स्नापयेदरिनाशिनीम्॥

भविष्ये—प्रतिसंवत्सरं कुर्यात् कालिकाया महोत्सवम्। कार्तिके तु विशेषेण अमावास्यानिशार्धके॥ तस्यां च पूजयेद् देवीं भोगमोक्षप्रदायिनीम्॥ व्योमकेशसंहितायाम्—तुलार्के यस्त्वमायां हि निशार्धे घोरदक्षिणाम्। पूजयेद्विधिवद्भक्त्या सर्वसिद्धेश्वरो भवेत॥ उभयदिने महानिशीथव्याप्तौ यत्र प्रदोषव्यापिनी भवेत्तदैव, तथाहि कुलसर्वस्वे—प्रदोषव्यापिनी यत्र महानिशि च सा भवेत्। तदैव कालिका पूज्या दक्षिणा मोक्षदायिनी॥ पुनश्च तत्रैव—महानिशादिने देवि प्रतिपच्च यदा भवेत्। कालीकैवल्ययोगोऽयं तद्दिने कालिकार्चनम्॥ यद्युभयदिने प्रदोषव्यापिनी तदा चतुर्दशीयुक्ता ग्राह्या। तथाहि आगमे—अर्धरात्रे महेशानी अमावास्या यदा भवेत्। चतुर्दशीयुता ग्राह्या चामुण्डापूजने सदा॥ शनिभौमदिनानुरोधात् प्रदोषव्यापिन्यपि निशीथव्यापिनी ग्राह्या, तथाहि—चतुर्दशीप्रदोषे तु अमावास्या महानिशि। शनिभौमदिने देवि नितरां सर्वथा त्यजेत्॥

(२) स्वस्तिवाचनम् सामान्यार्घ्यस्थापनम्, विशेषार्घ्यस्थापनं च सति सम्भवे दुर्गापूजावत् कर्तव्यम्।

अस्यां रात्रौ कार्तिके मासि कृष्णे पक्षे तुलार्के अमावास्यायां तिथौ अमुकगोत्रस्य 'मम (१) श्री अमुकशर्मणः' उपस्थितशरीराविरोधेन सर्वपापच्छान्तिपूर्वकाऽतुलधनधान्यादिविभूतिमद्राज्यलाभसर्वसिद्धीश्वरत्वावाप्त्यर्थं शान्तिघटस्थापनदशदिक्पालपूजन-नवग्रहपूजनपूर्वकसाङ्गासायुधसवाहनसपरिवार-महाकालसहितदक्षिणकालिकापूजनमहङ्करिष्ये ॥ इति सङ्कल्प्य तत्र प्रथमं शान्तिघटस्थापनं कुर्यात् ।

अथ शान्तिघटस्थापनम्

ततो महावेद्याः पश्चिमे होमस्थण्डिलात् पूर्वोत्तरभागे शान्तिकलशं स्थापयेत । तद्यथा—कुण्डपूर्वोत्तरभागे उपविश्य उदकेन भूमिमभ्युक्ष्य ॐ कलशाधारशक्ते इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ॐ कलशाधारशक्तये नमः, इत्यनेन पञ्चोपचारैः सम्पूज्य भूमि स्पृष्ट्वा ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं माहिꣳसीः । इति कलशस्थापनस्थाने भूशुद्धि कृत्वा ॐ मानस्तोके तनये मान आयुषि मानो गोषु मानोऽअश्वेषु रीरिषः । मानोव्वीरान् रुद्रभामिनोव्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे । इति मन्त्रेण कलशस्थापनस्थाने गोमयोपलेपनं कृत्वा ओं वेद्या वेदिः समाधत्ते र्वाहिषा बर्हिरिन्द्रियम् । यूपेन आप्यते यूप प्रणीतोऽग्निस्तथाग्निना ॥ इति गङ्गाजलेन भूशुद्धि कृत्वा ओं धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा दीर्घामनुप्रसितिमायुषेधान् देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि । इति मन्त्रेण तदुपरि धान्यं यवं वा विकीर्य—आजिघ्र कलशं मह्या त्वाव्विशन्त्विन्दवः- पुनरुर्ज्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा

---

(१) ग्राम्यपूजायां तु—'अमुकशर्मणः' इत्यस्य स्थाने 'नानागोत्राणां सकलजनानामेतद्ग्रामवासिनामेतत्पूजोपकारकाणामन्यद्ग्रामवासिनाम्' इत्यादि योज्यम् ।

पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः। इति मन्त्रेण यत्रोपरि लौहभिन्नान्यमव्रणमच्छिद्रमश्यामं दृढं कलशं स्थापयेत्। ततः—ओं दधिक्राव्णोऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य व्वाजिनः। सुरभिनो मुखाकरत् प्रण आयूꣳषि तारिषत्॥ इत्यनेन कलशं दध्यक्षतैर्भूषयेत्। ततः—ओं व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनीस्यो वरुणस्य ऋतसदन्यसि व्वरुणस्य ऋतसदनमासीद। इति मन्त्रेण कलशे जलं दत्त्वा—ओं स हि रत्नानि दाशुषेऽ अरातिसहिता भगः। तं भागं वित्रमीमहे॥ इति मन्त्रेण कलशे पञ्च (१) रत्नानि। ओं उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना। नमस्ते सर्वदेवानां प्रभुर्वारिणि सुव्रते॥ इति मन्त्रेण सप्तमृत्तिकाः (२) ततः—ओं या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनैनुवभ्रणामहꣳशतं धामानि सप्त च॥ इत्यनेन सर्वोषधीः (३)। ततः ओं गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषीणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥ इति मन्त्रेण गन्धान् दद्यात्। ततः ओं याः फलिनीर्य्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। वृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वꣳहसः॥ इत्यनेन कलशे पूगीफलं प्रक्षिप्य ॐ अम्बिकेऽम्बालिके नमानयति कश्चन। स सस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥ इति आम्रपल्लवं दद्यात्। ततः—ॐ काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च॥ इति दूर्वादलं प्रक्षिप्य—ॐ इमम्मे वरुण श्रुधीहवमद्या च मृडय। त्वामवस्यु राचके॥ इत्यनेन जलं दद्यात्। ततः—ॐ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च सरांसि च। सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः॥ आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥

---

(१) पञ्चरत्नम्—कनकं हीरकं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम्। पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥
अभावे पञ्चरत्नस्य कर्षार्धं कनकं तथा। सुवर्णस्याप्यभावे तु आज्यं देयं विचक्षणैः॥

(२) सप्तमृत्तिकाः—अश्वस्थानात् गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदात्। राजद्वाराद् गोकुलाच्च मृदमानीय निक्षिपेत्॥

(३) सर्वौषधिः—कुष्टमांसीहरिद्राभिर्वचाशैलेयचन्दनैः। मुराचन्दनकर्पूरमुस्तैः सर्वौषधिः स्मृतः॥

ॐ आपो हिष्ठामयो भुवः। ॐ तान ऊर्ज्जे दधातन। ॐ महेरणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः। ॐ तस्य भाजयते ह नः। ॐ उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरङ्गमामवो। ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ। ॐ आपो जनयथा च नः। इत्यनेन गङ्गाजलं च दद्यात्। तीर्थानि न्यसेत्। ततः—ॐ प्राणाय स्वाहा। ॐ अपानाय स्वाहा। ॐ व्यानाय स्वाहा। इत्यनेन कलशे ताम्बूलं दत्वा—ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। सदाधारपृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ इत्यनेन हिरण्यादिकं क्षिपेत्। ततः—ॐ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उश्रेयान् भवति जायमानः। तन्धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥ इत्यनेन वस्त्रेण कलशं वेष्टयित्वा, कलशाधिकरणकैकस्मिन् पात्रे 'धान्यमसीति' पूर्वोक्तमन्त्रेण धान्यं दत्वा पूर्वदिशि– ॐ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा, सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा, अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा। सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा, ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा, इत्यनेन प्रज्वलितदीपं निदध्यात्। ततः प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्—ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳसमिमं दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामो प्रतिष्ठ। ततः कलशं स्पृट्वा—ॐ कलशाधिष्ठितगणेशादिदेवता इह सुप्रतिष्ठिता भवन्त्विति पठित्वा ॐ शान्तिकलशगणेश इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य यथाशक्ति (१३६ पृष्ठोक्त दुर्गापूजोक्तविधिना) पूजयेत्।

ततः १३९ पृष्ठोक्त दुर्गापूजावत् 'दशदिक्पालपूजनम्' १४१ पृष्ठोक्त नवग्रहपूजनम्' च कर्तव्यम्।

अथ षोडशोपचारश्यामापूजाविधिः

अथ श्यामापूजामारभेत्। तद्यथा—गन्धपुष्पाक्षतान्यादाय अञ्जलिं बद्ध्वा ध्यायेत्—ॐ करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्। दक्षिणां कालिकां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्॥ सद्यश्छिन्नशिरःखड्गवामाधोर्ध्वंकराम्बुजाम्। महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम्॥ कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्। कर्णावतंसतानीत-

शवयुग्मभयानकाम् ॥ घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम् । शवानां करसंघातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम् ॥ सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम् । घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ॥ बालार्कमण्डलाकारां लोचनत्रितयान्विताम् । दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम् ॥ शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम् । शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ॥ महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम् । सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम् ॥ एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं धर्मकामार्थमोक्षदाम् ॥ ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते । यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावद् देवि स्थिरा भव ॥ इति कल्पितमूर्त्तेः शिरसि पुष्पादिकं दत्त्वा कुशपुष्पाक्षतान्यादाय, देव्या हृदये अनामिकाङ्गुष्ठाभ्याम्—ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञ(ँ) समिमं दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामोम्प्रतिष्ठ ॥ ॐ क्रीं भूर्भुवः स्वः साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारभगवति श्रीदक्षिणकालिके इह सुप्रतिष्ठिता भव इति प्रतिमायां प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । ततः—महाकालं यजेत् पूर्वं पश्चाद् देव्या दक्षिणे धूम्रवर्णकम् । बिभ्रतं दण्डखट्वाङ्गौ दंष्ट्राभीममुखं शिवम् ॥ व्याघ्रचर्मावृतकटिं तुन्दिलं रक्तवाससम् ॥ त्रिनेत्रमूर्द्ध्वकेशञ्च मुण्डमालाविभूषितम् । जटाभीषणसच्चन्द्रखण्डं तेजो ज्वलन्निव ॥ इति ध्यात्वा—ॐ हूँ स्फौं याँ राँ लाँ वाँ क्रीँ महाकालभैरव सर्वविघ्नान्नाशय नाशय ह्रीँ श्रीँ फट् स्वाहा ॥ इति मूलमन्त्रेण आवाह्य – मनोजूतिरिति मन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां विधाय पाद्यादिभिः पञ्चोपचारैः पूजयेत् । ततः पुनः श्यामापूजामारभेत—

तत्र स्वागतं—स्वागतं ते महामाये चण्डिके सर्वमङ्गले । पूजां गृहाण विविधां सर्वकल्याणकारिणि ॥ इति स्वागतं कृत्वा—ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते । यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ॥ इति स्थिरीकृत्य आसनं दद्यादनेन—आसनं भास्वरं तुङ्गं माङ्गल्यं सर्वमङ्गले । भजस्व जगतां मातः प्रसीद जगदीश्वरि ॥ इदमासनं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारायै श्रीदक्षिणकालिकायै नमः । ततः पाद्यम्—ॐ गङ्गादिसलिलाधारं तीर्थं मन्त्राभिमन्त्रितम् । दूरयात्राश्रमहरं पाद्यं तत्प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं पाद्यं साङ्ग० । तत उद्वर्तनम्—ॐ तिलतैलसमायुक्तं

सुगन्धिद्रव्यनिर्मितम् । उद्वर्तनमिदं देवि गृहाण त्वं प्रसीद मे ॥ ततोऽर्घ्यम्—ॐ तिलतण्डुलसंयुक्तं कुशपुष्पसमन्वितम् । सुगन्धं फलसंयुक्तमर्घ्यं देवि गृहाण मे ॥ एषोऽर्घ्यः साङ्ग० । तत आचमनीयम्—ॐ स्नानादिकं विधायापि यतः शुद्धिरवाप्यते । इदमाचनीयं हि श्यामे देवि प्रगृह्यताम ॥ इदमाचमनीयं साङ्ग० । ततः स्नानीयम्—ॐ खमापः पृथिवी चैव ज्यौतिषं वायुरेव च । लोकसंस्मृतिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम् ॥ इदं स्नानीयम् साङ्ग० । ततः अष्टगार्घ्यः—ओं जगत्पूज्ये त्रिलोकेशि सर्वदानवभञ्जिनि । अष्टगार्घ्यं गृहाण त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ॥ एष जष्टगार्घ्यः साङ्ग० । ततो दधि-सिता-घृत-मधु-मिश्रितात्मकं कांस्यपात्रेण पिहितं कांस्यपात्रस्थं मधुपर्कमादाय—ॐ मधुपर्कं महादेवि ब्रह्माद्यैः कल्पितं तव । मया निवेदितं भक्त्या गृहाण गिरिपुत्रिके ॥ एष मधुपर्कः साङ्ग० । ततः पुनराचमनीयम्—ओं स्नानादिकं पुरः कृत्वा पुनः शुद्धिरवाप्यते । पुनराचमनीयं च श्यामे देवि प्रगृह्यताम्० ॥ ततश्चन्दनम्—ओं मलयाचलसम्भूतं नानागन्धसमन्वितम् । शीतलं बहुलामोदं चन्दनं गृह्यतामिदम् ॥ इदं श्रीखण्डचन्दनं साङ्ग० । ततो रक्तचन्दनम्—ॐ रक्तानुलेपनं देवि स्वयं देव्या प्रकाशितम् । तद् गृहाण महाभागे शुभं देहि नमोस्तु ते ॥ इदं रक्तचन्दनं साङ्ग० । ततः सिन्दूरम्—ॐ सिन्दूरं सर्वसाध्वीनां भूषणाय विनिर्मितम् । गृहाण वरदे देवि भूषणानि प्रयच्छ मे ॥ इदं सिन्दूराभरणं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारायै दक्षिणकालिकायै नमः । ततः कुङ्कुमम्—ॐ जपापुष्पप्रभं रम्यं नारीभालविभूषणम् । भास्वरं कुङ्कुमं रक्तं देवि दत्तं प्रगृह्य मे ॥ इदं कुङ्कुमाभरणम्० । ततोऽक्षतम्—ओं अक्षतं धान्यजं देवि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । प्राणदं सर्वभूतानां गृहाण वरदे शुभे ॥ इदमक्षतम्० । ततः पुष्पम्०—ॐ चलत्परिमलामोदमत्तालिगणसङ्कुलम् । आनन्दनन्दनोद्भूतं श्यामायै कुसुमं नमः ॥ एतानि पुष्पाणि० । ततो विल्वपत्रम्—ॐ अमृतोद्भवं श्रीवृक्षं शङ्करस्य सदा प्रियम् । पवित्रं ते प्रयच्छामि सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ इदं विल्वपत्रम्० । ततो मालाम्—ॐ नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम् । प्रयच्छामि सदा भद्रे गृहाण

परमेश्वरि ॥ इदं माल्यम्० । ततो वस्त्रम्—ॐ तन्तुसन्तानसंयुक्तं कलाकौशलकल्पितम् । सर्वाङ्गाभरणश्रेष्ठं वसनं परिधीयताम् । इदं वस्त्रं बृहस्पतिदैवतं साङ्ग० । द्वितीयवस्त्रम्—ॐ यामाश्रित्य महादेवो जगत्संहारकः सदा । तस्यै तं परमेशान्यै कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥ इदं द्वितीयवस्त्रम्० । ततोऽलङ्करणम्—ॐ सौवर्णाद्यलङ्कारं कङ्कणादिविभूषितम् । हारकेयूरयुक्तानि नूपुराणि गृहाणमे ॥ इदमलङ्करणम्० । ततो धूपम्—ॐ गुग्गुलं घृतसंयुक्तं नानाभक्ष्यैश्च संयुतम् । दशाङ्गं गृह्यतां धूपं श्यामं देवि नमोस्तु ते ॥ एष धूपः० । ततो दीपः—ॐ मार्तण्डमण्डलान्तस्थ-चन्द्रबिम्बाग्नितेजसाम् । निधानं देवि दीपोऽयं निर्मितस्तव भक्तितः ॥ एष दीपः० । ततः सुगन्धितद्रव्यम्—ॐ परमानन्दसौरभ्यं परिपूर्णदिगम्बरम् । गृहाण सौरभं दिव्यं कृपया जगदम्बिके ॥ इदं सुगन्धितद्रव्यम्० । ततः कर्पूरदीपः—ॐ त्वं चन्द्रसूर्यज्योतींषि विद्युदग्न्योस्तथैव च । त्वमेव जगतां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष कर्पूरदीपः० । ततो नानाविधनैवेद्यानि—ॐ दिव्यान्नरससंयुक्तं नानामक्ष्यैस्तु संयुतम् । चोष्यपेयसमागुक्तमन्नं देवि गृहाण मे ॥ एतानि नानाविधनैवेद्यानि० । ततः पायसम्—ॐ गव्यसर्पिःपयोयुक्तं नानामधुरमिश्रितम् । निवेदितं मया भक्त्या परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥ इदं पायसम्० । ततो मोदकम् (लड्डू)—ॐ मोदकं स्वादु रुचिरं कर्पूरादिभिरन्वितम् । मिश्रं नानाविधैर्द्रव्यैः प्रतिगृह्याशु भुज्यताम् ॥ इदं मोदकम्० । ततोऽपूपादि—ॐ अपूपानि च पक्वानि मण्डका वटकानि च । पायसापूपमन्नं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ एतान्यपूपादिनैवेद्यानि० । ततः फलादीनि—ॐ फलमूलानि सर्वाणि ग्राम्याऽरण्यानि यानि च । नानाविधसुगन्धीनि गृह्ण देवि ममाचिरम् ॥ एतानि नानाविधानि फलानि० । ततः पानीयम्—ॐ पानीयं शीतलं स्वच्छं कर्पूरादिसुवासितम् । भोजने तृप्तिकृद्यस्मात् कृपया प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं पानीयम्० । ततः करोद्वर्तनजलम्—ॐ कर्पूरादीनि द्रव्याणि सुगन्धीनि महेश्वरि । गृहाण जगतां नाथे करोद्वर्तनहेतवे ॥ इदं करोद्वर्तनजलम्० ॥ तत आचमनीयम्—ॐ आमोदवस्तु-सुरभीकृतमेतदनुत्तमम् ।

गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् ॥ इदमाचमनीयम्० ॥ ततः ताम्बूलम्– ॐ पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् । कर्पूरैलासमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं ताम्बूलम्० । ततः कज्जलम्—ॐ स्निग्धमुष्णं हृद्यतमं दृशां शोभाकरं तव । गृहीत्वा कज्जलं सद्यो नेत्राण्यञ्जय कालिके ॥ इदं कज्जलम्० । ततः सौवीराञ्जनम्०—ॐ नेत्रत्रयं महामाये भूषयामलकज्जलैः । सुसौवीराञ्जनैर्दिव्यैर्जगदम्ब नमोस्तु ते ॥ इदं सौवीराञ्जनम्० । ततोऽलक्तकं०—ॐ त्वत्पदाम्भोजनखर द्युतिकारिमनोहरम् । अलक्तकमिदं देवि मया दत्तं प्रगृह्यताम् ॥ इदमलक्तकम्० । ततश्चामरम्—ॐ चामरं चमरीपुच्छं हेमदण्डसमन्वितम् । मयार्पितं राजचिह्नं चामरं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं चामरम्० । ततो व्यजनम्—ॐ वर्हिर्वर्हकृताकारं मध्यदण्डसमन्वितम् । गृह्यतां व्यजनं श्यामे देहस्वेदापनुत्तये ॥ इदं व्यजनम्० । ततो घण्टावाद्यम्– ॐ यया भीषयसे दैत्यान् यया पूरयसेऽसुरम् । तां घण्टां सम्प्रयच्छामि महिषघ्नि प्रसीद मे ॥ इदं घण्टावाद्यम्० । ततो दक्षिणाद्रव्यम्--ॐ काञ्चनं रजतोपेतं नानारत्नसमन्विम् । दक्षिणार्थं च देवेशि गृहाण त्वं नमोस्तु ते ॥ इदं दक्षिणाद्रव्यम्० । ततः पुष्पाञ्जलिः—ॐ श्यामे श्यामे महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि । त्वं काली कमला ब्राह्मी त्वं जया विजया शिवा ॥ त्वं लक्ष्मीर्विष्णुलोकेषु कैलासे पार्वती तथा । सरस्वती ब्रह्मलोके चेन्द्राणी शक्रपूजिता ॥ वाराही नारसिंही च कौमारी वैष्णवी तथा । त्वमापः सर्वतोयेषु ज्योतिस्त्वं ज्योतिरूपिणी ॥ योगमाया त्वमेवाऽसि वायुरूपा नभःस्थिता । सर्वगन्धवहा पृथ्वी नानारूपा सनातनी ॥ विश्वरूपे च विश्वेशे विश्वशक्तिसमन्विते । प्रसीद परमानन्दे श्यामे देवि नमोस्तु ते ॥ नानापुष्पसमाकीर्णं नानासौरभसंयुतम् । पुष्पाञ्जलिञ्च विश्वेशि गृहाण भक्तवत्सले ॥ एष पुष्पाञ्जलिः० । ततो नीराजनम् (आरार्तिकम्)– ॐ कर्पूरवर्तिसंयुक्तं वह्निना दीपितञ्च यत् । नीराजनं च देवेशि गृह्यतां जगदम्बिके ॥ इदं नीराजनम्० । ततोऽच्छिद्रावधारणम्—ॐ श्यामे देवि महामाये येषा पूजा मया कृता । अच्छिद्रास्तु शिवे साङ्गा तव देवि प्रसादतः ॥ ततः क्षमापनम्—

ॐ प्रार्थयामि महामाये यत्किञ्चित् स्खलितं मम । क्षम्यतां तज्जगन्मातः श्यामे देवि नमोस्तु ते ॥

अथाङ्गपरिवारादिपूजा

यद्यपि प्रधानदेवतापूजने साङ्गादिपदेन एकत्रापि साङ्गपरिवाराणां पूजनं सिद्धचति, तथापि बहुनिबन्धस्वरसाल्लिख्यते—तत्र प्रथममङ्गपूजा—ॐ क्राँ हृदयाय नमः—हृदयदेव्यै नमः। ॐ क्रीँ शिरसे स्वाहा—शिरोदेव्यै नमः। ॐ क्रूँ शिखायै वषट्—शिखादेव्यै नमः। ॐ क्रैँ कवचाय हुँ—कवचदेव्यै नमः। ॐ क्रौँ नेत्रत्रयाय वौषट्—नेत्रदेव्यै नमः। ॐ : क्रँ अस्त्राय फट् अस्त्रदेव्यै नमः। ततः—आवरणानि पूजयेत्। तत्र सर्वत्र प्रथमं ॐ इत्युच्चार्य्य सम्बोधनपदेनावाह्य चतुर्थ्यन्तपदेन पञ्चोपचारैः पूजयेत्। तद्यथा पुष्पाञ्जलिमादाय—ॐ अभीष्टसिद्धि मे देहि शरणागतवत्सले। भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥ इति देव्यै पुष्पाञ्जलिं समर्प्य १—ॐ क्रीँ काल्यैः नमः। २—कँ कपालिन्यै नमः। ३—कुँ कुल्यायै नमः। ४–कुँ कुरुकुल्यायै नमः। ५—विं विरोधिन्यै नमः। ६—विँ विप्रचित्तायै तमः। ७—उँ उग्रायै नमः। ८—उँ उग्रप्रभायै नमः। ९—दीँ दीप्तायै नमः। १०—नीँ नीलायै नमः। ११—घँ घनायै नमः। १२—बँ बलाकायै नमः। १३—माँ मात्रायै नमः। १४–मुँ मुद्रायै नमः। १५—मिँ मितायै नमः। ततोऽष्टदले अष्टौ मातृर्यजेत्–१—ॐ ब्राह्मण्यै नमः। २—ईं० नारायण्यै नमः। ३–ॐ माहेश्वर्यै नमः।। ४–ऋँ चामुण्डायै नमः। ५–लृँ कौमार्यै नमः। ६–ऐँ अपराजितायै नमः। ७–ॐ वाराह्यै नमः। ८—अँ नारसिंह्यै नमः। ततोऽष्टभैरवानावाह्य पूजयेत्। तद्यथा पुष्पाञ्जलिमादाय—ॐ भैरवं परमं देवं सर्वकामप्रसाधकम्। पूजायाम्यग्रतो देव्याः सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥ ॐ भीषणास्यं त्रिनयनमर्घचन्द्रविभूषितम्। स्फटिकाभं कङ्कणादिभूषाशतसमावृतम् ॥ अष्टवर्षवयस्कं च कुण्डलोल्लसितं भजे। धारयन्तं दण्डशूले भैरव्यादिसमायुतम् ॥ इति ध्यात्वा–अष्टदलाग्रेषु पूर्वे १–ऐँ ह्रीँ असिताङ्गभैरवाय नमः। ऐशान्यां २—ऐँ ह्रीं रुरुभैरवाय

नमः । उदीच्यां ३—ऐं ह्रीं चण्डभैरवाय नमः । वायव्यां ४—ऐं ह्रीं क्रोधभैरवाय नमः । प्रतीच्यां ५—ऐं ह्रीं उन्मत्तभैरवाय नमः । नैर्ऋत्यां ६—ऐं ह्रीं कपालभैरवाय नमः । याम्ये ७—ऐं ह्रीं भीषणभैरवायः नमः । आग्नेय्यां ८—ऐं ह्रीं संहारभैरवाय नमः । ततोऽस्त्राणि पूजयेत्––ॐ वं वज्राय नमः । शं शक्त्यै नमः । दं दण्डाय नमः । खं खड्गाय नमः । पां पाशाय नमः । क्रौं अङ्कुशाय नमः । गं गदायै नमः । त्रि त्रिशूलाय नमः । चं चक्राय नमः । पं पद्माय नमः । ततो रक्तपुष्पाण्यादाय—ॐ क्रीं हूँ स्त्रीं ह्रीं फट् दक्षिणकालिकाकुल्लुकायै नमः इत्यनेन स्वमूर्ध्नि कुल्लुकां सम्पूज्य—ॐ खं खड्गाय नमः । एवं तदधोहस्ते—मुँ मुण्डाय नमः । दक्ष-ऊर्ध्वहस्ते––अं अभयाय नमः । तदधः––वं वराय नमः । इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् । इत्यङ्गपरिवारादिपूजा ।

ततो देव्याः दक्षिणपार्श्वे स्थितं महाकालभैरवं पुनः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिमादाय––ॐ साङ्गसायुधसवाहनमहाकालसहितदक्षिणकालिकायै नमः । इति पुष्पांजलिं समर्प्य सति सम्भवे ‘ॐ ह्रीं क्लीं हूँ महाकालाय ह्रौं महादेवाय क्रीं कालिकायै ह्रौं’ इत्येकविंशाक्षरं महाकालमन्त्रमष्टोत्तरशतं जपेत् । ततः ॐ ‘क्रीं’ इति दक्षिणकालिकाबीजमन्त्रं च यथासम्भवं सहस्रं लक्षं वा जपेत् । ततः सति सम्भवे वक्ष्यमाणविधिना होमं च कुर्यात् ।

ततो दुर्गापूजोक्तविधिना छागादिबलिं कुमारीपूजनादिकं सर्वं कृत्वा नानास्तोत्रादिना पुष्पाञ्जलिं प्रदाय नीराजनं कुर्यात्—ॐ मङ्गले कालिके दुर्गे महिषासुरमर्दिनि । इदं नीराजनं देवि गृहाण सुरसुन्दरि ॥ ॐ समस्तयोगिनीचक्रे परिवारगणावृते । आरार्तिकमिदं श्यामे कृपया प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं नीराजनम् ॐ साङ्ग० श्रीमद्दक्षिणकालिकायै नमः ।

अथ संक्षिप्तहवनविधिः

कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ॐ अस्यां रात्रौ श्रीमद्दक्षिणकालिकाप्रीतये षोडशाहुतीरहं होष्यामि । इति

संकल्प्य हस्तमात्रां भूमिं कुशैः परिसमूह्य तान् कुशानैशान्यां परित्यज्य गोमयेनोपलिप्य प्रादेशमितास्तिस्रो रेखा उल्लिख्य ताभ्यो मृदमुद्धृत्य ऐशान्यां क्षिपेत् । ततः कांस्यपात्रेण अग्निमुपसमाधाय स्रुवेण आज्याहुतीर्जुहुयात्—ॐ भुः स्वाहा, इदं भुः । ॐ भुवः स्वाहा, इदं भुवः । ॐ स्वः स्वाहा, इदं स्वः ॥ ततो वह्नौ स्वेष्टदेवतां (श्यामां) पञ्चोपचारैः सम्पूज्य—ओं क्राँ हृदयाय नमः स्वाहा । ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा । ॐ क्रूं शिखायै वषट् स्वाहा । ॐ क्रैं कवचाय हुँ स्वाहा । ॐ क्रः अस्त्राय फट् स्वाहा । इति हुत्वा—ॐ ह्रीं क्लीं हूँ महाकालाय, हौं महादेवाय, क्रीं कालिकायै ह्रौं स्वाहा ॥ इति महाकालमन्त्रेण षडाहुतीर्हुत्वा—'ॐ क्रीं स्वाहा' इत्यनेन षोडशाहुतीर्जुहुयात् । ततः 'क्रीं दक्षिणकालिकापरिवारेभ्यः स्वाहा' इत्येकामाहुतिन्दत्त्वा पुष्पचन्दनताम्बूलफलादिभिः—'ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् स्वाहा' इत्यनेन पूर्णाहुतिं दद्यात् । ततो 'यानि कानि च' त्यादिना प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य नृत्यगीतवाद्युत्सवैः रात्रिशेषं नयेत् ।

अथ विसर्जनम्

ततोऽरुणोदयवेलायां प्रातः कृतनित्यक्रियः पूजास्थानमागत्य यथाविधि पूजां विधाय बलिदानं (१) विनैव पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा अञ्जलिं बद्ध्वा—ॐ रूपं देहि जयं देहि भाग्यं भगवति देहि मे । धर्मान् देहि धनं देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥ 'ॐ सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये' इत्यादिना संप्रार्थ्य—ॐ विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् । पूर्णम्भवतु

---

(१) निशापूजायां (कूष्माण्डादि) बलिदानमवश्यमेव कर्तव्यम् । तथाहि—

विश्वसारतन्त्रे—बलिपूजादिकं सर्वं निशायां क्रियते तु यत् । तत्तदक्षयतां याति काली विद्या प्रसीदति ॥
मात्स्ये—तस्मान्नैमित्तिकार्चायां बलिरावश्यकः प्रिये । बलिं विना नैव देवी पूजामङ्गीकरोति हि ॥
बलिदानफलं तत्रैव—बलिभिर्वर्द्धते ह्यायुर्बलिभिः शाम्यते रुजा । जयत्यरातीन् बलिभिः प्राप्यते बलिभिर्धनम् ॥

तत्सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥ शक्नुवन्ति न ते पूजां कर्तुं ब्रह्मादयः सुराः । अहं किं वा करिष्यामि मृत्युधर्मा नरोऽल्पधीः ॥ न जानेऽहं स्वरूपं ते न शरीरं न वा गुणान् । एकामेव हि जानामि भक्तिं त्वच्चरणाब्जयोः ॥ तस्मात् सम्भाव्य भक्तिं मे मदीयार्चां प्रगृह्य च । गच्छ देवि निजं स्थानं मह्यं दत्त्वा वरान् बहून् ॥ इति सम्प्रार्थ्य मूर्तिस्थनिर्माल्यपुष्पमादाय—ॐ ते सर्वे विलयं यान्तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः । मृत्युरोगभयक्लेशाः पतन्तु रिपुमस्तके ॥ इत्यैशान्यां तत्पुष्पं क्षिपेत् । ततो देव्याः चरणं स्पृष्ट्वा—ॐ कालि कालि महाकालि कालिके पापनाशिनि । कालीकरालि निष्क्रान्ते कालिके त्वान्नमोऽस्तु मे ॥ ॐ उत्तिष्ठ देवि चामुण्डे शुभां पूजां प्रगृह्य मे । कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह ॥ गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि कालिके । यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ व्रज त्वं स्रोतसि जले मद्गेहं तिष्ठ मूर्तये । आगामिवत्सरे च त्वं पुनरायास्यसि ध्रुवम् ॥ ॐ क्रीं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीमद्दक्षिणकालिके पूजिताऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । (सति सम्भवे एवं प्रत्येकं विसर्जयेत्) ॐ कलशाधिष्ठितदेवताः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत । ततो दक्षिणा । कुशादिकमादाय—ॐ अद्य कृतैतद्दक्षिणकालिकापूजनकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । इति दक्षिणां दत्त्वा यथाशक्ति (दुर्गापूजोक्तवत्) भूयसीं कुर्यात् । ततः शान्तिघटमुत्थापयेदनेन—ओं उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उपप्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्रप्राशूर्भवासवा ॥ ततो दुर्गापूजोक्त (पृ० १८२) अभिषेकमन्त्रैः यजमानमभिषिञ्चेत् । ततः—ओं क्राँ दक्षिणकालिके चल चल चालय चालय हुँ फट् स्वाहा । इत्यनेन देवीमुत्थाप्य नृत्यगीतादिना उत्सवपुरःसरं जलाशयं नीत्वा—ओं श्यामे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते । संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय वै ॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्ति निवेदिताम् । रक्षणार्थं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम् ॥ इति जले प्रवाहयेत् । तद्दिने देवीप्रीत्यर्थं कुमारी-सुवासिनी-वटुक-ब्राह्मणान् भोजयेत् । इति श्यामापूजापद्धतिः ।

अथ द्यूतक्रीडानिर्णयः

कार्तिकशुक्लप्रतिपदि द्यूतक्रीडा कार्या । तथा च हेमाद्रौ आदित्यपुराणे—शङ्करस्तु पुरा द्यूतं ससर्ज सुमनोहरम् । कार्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि सत्यवान् ॥ जितश्च शङ्करस्तत्र जयं लेभे च पार्वती । अतीव शङ्करो दुःखी उमा नित्यं सुशोपिता ॥ तस्माद् द्यूतं प्रकर्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः । तस्मिन् द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः ॥ पराजये विरुद्धन्तु लब्धनाशस्ततो भवेत् ॥ इति ।

अथ गोवर्धनपूजा

कार्तिकशुक्लप्रतिपदि गोवर्धनं पूजयेत् । तद्यथा प्रातः कृतनित्यक्रियो गोमयेन मूर्तिं विधाय पीतपुष्पादिभिः यथोपचारैः सम्पूज्य प्रणमेदनेन—ओं गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारक । कृष्णबाहुकृतच्छाय गवाङ्कोटिप्रदो भव ॥ इति प्रणम्य विसृज्येत् ।

अथ गोक्रीडानिर्णयः

कार्तिकशुक्लप्रतिपदि गोक्रीडनं कुर्यात्तथाहि—सायाह्ने होलिकां कुर्यात्पूर्वाह्णे (१)क्रीडनं गवाम् । देवलः—प्रतिपद्दर्शसंयोगे गवां वै क्रीडनं भवेत् । परविद्धासु करणात् पुत्रदारधनक्षयः ॥ नारदः—भद्रायां गोकुलक्रीडा सदेशो वै विनश्यति । इति (भद्रायाम्=द्वितीयायुक्तायाम्) । पुराणसमुच्चये—गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः ।

---

(१) पूर्वाह्णः=सार्धप्रहरं यावत् । तथाहि तिथिचन्द्रिकायाम्—पूर्वाह्णः प्रहरं सार्धं मध्याह्नः प्रहरं तथा । तत्तृतीयोऽपराह्णः स्यात् सायाह्नश्च ततः परम् ॥ इति ।

सोमो राजा पशून् हन्ति सुरभि पूजकाँस्तथा ॥ एतेन चन्द्रदर्शनाऽयोग्य (१) द्वितीयायोगे परविद्धापि प्रतिपत्तिथिः ग्राह्येति सिद्धम् । आचारादस्मिन्नेव समये वृषभाणां भेषजक्षेपमाचरन्ति हलवाहकाः ।

अथ गोपूजानियमः

नारदः—या कहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेन्नृप । पूजनात् त्रीणि वर्धन्ते प्रजा गावो महीपतिः ॥ पापाहे, विशाखानक्षत्रयोगे उभयदिनेऽपि गोपूजा न कार्या । तथा च राजमार्तण्डे—विशाखायाममावास्या विशाखा प्रतिपद्युता । आयुः पुत्रं धनं हन्ति सुरभेः पूजकांस्तथा ॥ पुनश्च तत्रैव—पापाहे (२) च विशाखायां गोपूजां नैव कारयेत् । पूजनाच्च तदा गावो लक्ष्मीश्चैव विनश्यति ।

अथ गोपूजाविधिः

पूर्वाह्णे कृतनित्यक्रियः पुष्पमालादिभिर्गामलङ्कृत्य पञ्चोपचारैः सम्पूज्य प्रार्थयेदनेन—ॐ लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता । घृतं वहति यज्ञार्थं मम पापं व्यपोहतु ॥ अग्रतः सन्तु मे गावो, गावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥ इति ।

---

(१) प्रतिपदुत्तरं सूर्यास्तमनकालपर्यन्तं षण्मुहूर्तन्यूना द्वितीया यदा तदैव चन्द्रादर्शनसम्भावना ।

(२) निर्णयामृते—प्रतिपद्यग्निकरणं द्वितीयायां गवार्चनम् । क्षेत्रच्छेदं करिष्येते वित्तनाशं कुलक्षयम् ॥

स्मृतिः—शनौ वारे तथाऽङ्गारे सूर्यवारे तथैव च । अन्यदृक्षगते वापि गोपूजां न च कारयेत् ॥

यदि मोहात् कृता पूजा प्रायश्चित्तं भवेत् तथा । गवां नाशोऽर्थनाशश्च प्रजानाशो भवेद् ध्रुवम् ॥ इति ।

(गोक्रीडाविषये तु नेयं व्यवस्था, पूजन-क्रीडनयोरसाम्यादिति तत्त्वविदः ।)

अथ भ्रातृद्वितीयानिर्णयः

इयं द्वितीया (भोजनकालिकत्वेन) मध्याह्नव्यापिनी पूर्वविद्धा ग्राह्येति हेमाद्र्यादिबहुषु निबन्धेषु प्रथितम् (१) अस्यां भगिनीहस्तेन भोजनं पुष्टिवर्धनं, भ्रातृभिश्च भोजनानन्तरं भगिन्यः पूजनीयाः ।

अत्र भगिन्या पठनीयो मन्त्रः— भ्रातस्तवाऽनुजाताऽहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम् । प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः ॥ (ज्येष्ठभगिन्यास्तु—'भ्रातर्ज्येष्ठानुजाताहम्' इति विशेषः ।)

अथ भ्रातृद्वितीयाकथा

बालखिल्या ऊचुः—कार्तिकस्य सिते पक्षे द्वितीया यमसंज्ञिता । तत्रापराह्णे कर्तव्यं सर्वथैव यमार्चनम् ॥१॥ प्रत्यहं यमुनाऽऽगत्य यमं सम्प्रार्थयत्पुरा । भ्रातर्मम गृहे याहि भोजनार्थं गणावृतः ॥२॥ अद्य श्वो वा परश्वो वा प्रत्यहं वदते यमः । कार्यव्याकुलचित्तत्वादवकाशो न जायते ॥३॥ तदैकदा यमुनया बलात्कारान्निमन्त्रितः । स गतः कार्तिके मासि द्वितीयायां मुनीश्वराः ॥ ४ ॥ नारकीयजनान्मुक्त्वा गणैः सह रवेः सुतः । कृतातिथ्यो यमुनया नानापाकाः कृतास्तथा ॥ ५ ॥ कृताभ्यङ्गो यमुनया तैलैर्गन्धमनोहरैः । उद्वर्तनं कारयित्वा स्नापितः सूर्यनन्दनः ॥ ६ ॥ ततोऽलङ्कारकं दत्तं नानावस्त्राणि चन्दनम् । माल्यानि च प्रदत्तानि मञ्चोपरि उपाविशत् ॥ ७ ॥ पक्वान्नानि विचित्राणि कृत्वा सा

---

(१) स्मृतिसारसंग्रहे उमापतिठक्कुरा अपि—सार्धप्रहरोपरि भोजनकालस्तत्कालव्यापिनी ग्राह्या, उभयदिने तत्प्राप्तौ परैव युग्मनिगमादित्याहुः । सार्धप्रहरोपरि मध्याह्नः । तथाहि थितिचन्द्रिकायां—'पूर्वाह्णः प्रहरं सार्धं, मध्याह्नः प्रहरं तथा । तत्तृतीयोपराह्णः स्यात् सायाह्नश्च ततः परम् ॥" इति । यत्तु—'अपराह्णव्यापिनी सा द्वितीया भ्रातृभोजने' इति कथान्तर्गतपद्यमादाय आपराह्णिकी तिथिरियं ग्राह्येति प्राहुस्तन्मन्दम्, 'पूर्वाह्णो वै देवानां मध्यं दिनं मनुष्याणामपराह्णः पितृणाम्' इति श्रुतिविरोधात् ।

स्वर्णभाजने । यमं च भोजयामास यमुना (१) प्रीतमानसा ॥ ८ ॥ भुक्त्वा यमोऽपि भगिनीमलङ्कारैः समर्चयत् । नानावस्त्रैस्ततः प्राह वरं वरय भामिनि ॥ ९ ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा यमुना वाक्यमब्रवीत् । यमुनोवाच— प्रतिवर्षं समागच्छ भोजनार्थं तु मद्गृहे ॥ १० ॥ अद्य सर्वे मोचनीयाः पापिनो नरकाद्यम् । ये चैव भगिनीहस्तात्करिष्यन्ति च भोजनम् ॥ ११ ॥ तेषां सौख्यप्रदो हि त्वमेतदेव वृणोम्यहम् । यम उवाच—यमुनायान्तु यः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ १२ ॥ भुनक्ति भगिनीगेहे भगिनीं पूजयेदपि । कदाचिदपि मद्द्वारं न स पश्यति भानुजे ॥ १३ ॥ वीरेशैशान्यादिग्भागे यमतीर्थं प्रकीर्तितम् । तत्र स्नात्वा च विधिवत्सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ १४ ॥ पठेदेतानि नामानि आमध्याह्नं नरोत्तमः । सूर्यस्याभिमुखो मौनी दृढचित्तः स्थिरासनः ॥ १५ ॥ यमो निहन्ता पितृधर्मराजो वैवस्वतो दण्डधरश्च कालः । भूताधिपो दत्तकृतानुसारी कृतान्तमेतद्दशभिर्जपन्ति ॥ १६ ॥ ततो यमेशं सम्पूज्य भगिनीगृहमाव्रजेत् । मन्त्रेणानेन च तया भोजितः पूर्णमादरात् ॥ १७ ॥ भ्रातस्तवानुजाताऽहं भुङ्क्ष्व भक्ष्यमिदं शुभम् । प्रीतये यमाराजस्य यमुनाया विशेषतः ॥ १८ ॥ ततः सन्तोष्य भगिनीं वस्त्रालङ्करणादिभिः । स्वप्नेऽपि यमलोकस्य भविष्यति न दर्शनम् ॥१९॥ नृपैः कारागृहे ये च स्थापिता मम वासरे । अवश्यं ते प्रेषणीया भोजनाय स्वसुर्गृहे ॥२०॥ विमोक्तव्या मया पापा नरकेभ्योऽद्य वासरे । यद्येवं धिक्करिष्यन्ति ते दण्ड्या मम सर्वथा ॥ २१ ॥ कनीयसी स्वसा नास्ति तदा ज्येष्ठागृहं व्रजेत् । तदभावे सपत्नायाः पैतृव्यास्तदभावतः ॥ २२ ॥ तदभावे मातृष्वसुर्मातुलस्यात्मजा तथा ।

---

(१) भविष्ये—कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां युधिष्ठिर । यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः ॥ अतो यमद्वितीयेयं त्रिषु लोकेषु विश्रुता । अस्यां निजगृहे विप्र न भोक्तव्यं ततो नरैः । स्नेहेन भगिनीहस्ताद् भोक्तव्यं पुष्टिवर्धनम् । दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विधानतः ॥ स्वर्णालङ्कारवस्त्रान्नपूजासत्कारभोजनैः ॥ सर्वा भगिन्यः सम्पूजा अभावे प्रतिपन्नकाः (भगिनीत्वेन कल्पिताः) ।

सापत्नगोत्रसम्बन्धैः कल्पयेच्च यथाक्रमम् ॥ २३ ॥ सर्वाभावे माननीया भगिनी काचिदेव हि। गोनद्याद्यथवा तस्या अभावे सति कारयेत् ॥ २४ ॥ तदभावेऽप्यरण्यादि कल्पयित्वा सहोदराम्। अस्यां निजगृहे देवि न भोक्तव्यं कदाचन ॥ २५ ॥ ये भुञ्जन्ति दुराचारा नरके ते पतन्ति वै। स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥ २६ ॥ दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विशेषतः। श्रावणे तु पितृव्यस्य कन्याहस्तेन भक्षयेत् ॥ २७ ॥ मातुलस्य सुताहस्ताद्भोक्तव्यं भाद्रमासके। पितुर्मातुः स्वसुः कन्ये आश्विने तु तयोः करात् ॥ २८ ॥ अवश्यं कार्तिके मासि भोक्तव्यं भगिनीकरात्। एवमुक्त्वा धर्मराजो ययौ संयमनीं ततः ॥ २९ ॥ तस्माद्दविवराः सर्वे कार्तिकव्रतकारकाः। भुञ्जन्तु भगिनीहस्तात् सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ३० ॥ यमद्वितीयां यः प्राप्य भगिनीगृहभोजनम्। न कुर्याद्वर्षजं पुण्यं नश्यतीति रवेः सुतात् ॥ ३१ ॥ या तु भोजयते नारी भ्रातरं युग्मके तिथौ। अर्चयेच्चापि ताम्बूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥ भ्रातुरायुःक्षयो नूनं न भवेत्तर्हि कर्हिचित्। अपराह्णव्यापिनी सा द्वितीया भ्रातृभोजने ॥ ३३ ॥ अज्ञानादथवा मोहान्न भुक्तं भगिनीगृहे। प्रवासिना ह्यभावाद्वा ज्वरितेनाथ वन्दिना ॥ ३४ ॥ एतदाख्यानकं श्रुत्वा भोजनस्य फलं लभेत् ॥३५॥ इति श्रीसनत्कुमारसंहितोक्तभ्रातृद्वितीयाकथा समाप्ता।

अथ चित्रगुप्तपूजा

कार्तिकशुक्लद्वितीयायां कायस्थाः चित्रगुप्तपूजां कुर्वन्ति (१) तथाहि—कृतनित्यक्रियः पूजास्थानमागत्य गणेशं

---

(१) स्कन्दपुराणे—कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां नराधिप। कायस्थैश्चित्रगुप्तस्य पूजा कार्या यथाविधि ॥ चित्रं च चित्रगुप्तं च यमं च यमुनां तथा। पूजयित्वा प्रयत्नेन स गोभोजनसंस्थितान् ॥ चित्रकस्य तु पुष्पेण पिष्टकेन गुडेन च। छागमांसेन पूज्योऽसौ यथाविभवविस्तरैः। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्वस्त्रैश्छत्रैस्तथा शुभैः। स्वाध्यायं लेखनं निद्रां प्रवासं च विवर्जयेत् ॥ मङ्गलाचारकं कृत्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात्।

संपूज्य समीभाजनं प्रक्षाल्य ताम्रपात्रोपरि धृत्वा कुशत्रयतिलजलान्यादाय–नमोऽद्य कार्तिकशुक्लद्वितीयायां तिथौ धनधान्यादिविपुललक्ष्मीलिपित्वप्राप्तिपूर्वकसर्वविधसौमनस्यनैरुज्यदीर्घायुष्ट्वप्राप्तिकामश्चित्रगुप्तयमयमुनापूजनमह करिष्ये। इति संकल्प्य नमो भगवन् चित्र इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि एषोर्घः नमो चित्राय नमः। इदमनुलेपनम्०, इदमक्षतम्०, एतानि पुष्पाणि०, एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनानाविधनैवेद्यानि नमः चित्राय नमः। इदमाचमनीयं नमः चित्राय नमः। ततः—नमः चित्रगुप्त महाबाहो गतागतविलेखक। पञ्चोपचारिकां पूजां गृहाण त्वं जगद्गुरो॥ ततः चित्रगुप्त इहागच्छेत्यावाह्य–त्वं मया स्थापितो देव समीभाजनसंस्थितः॥ अभीष्टं कुरु मे क्षिप्रमभीष्टार्थं प्रदेहि मे॥ चित्रगुप्त इह तिष्ठेति संस्थाप्य–चित्रगुप्त महाभाग सहजो धर्मसेवितः। दक्षिणाशास्थितः पाहि धर्मं कर्म नमोऽस्तु ते॥ इदं स्नानीयं नमः चित्रगुप्ताय नमः। ततोऽर्घ्यमादाय— अर्घ्यं गृहाण मे नाथ निखिलार्णवतारक। पवित्रन्ते प्रयच्छामि गाङ्गं नीरसमप्रभम्॥ एषोऽर्घ्यः०। चन्दनमादाय–दक्षिणाचलसंपन्नं बहुपन्नगसेवितम्। आनन्दं स्वगृहोद्यानं गृहाण त्वं यथेप्सितम्॥ इदमनुलेपनम्०। इदमक्षतम्०। पुष्पमादाय–नानाविधानि पुष्पाणि ग्रथिताग्रथितान्यपि। यथा कृतानि यत्नेन चित्रगुप्ताय ते नमः॥ एतानि सपुष्पमाल्यानि०। ततः पुष्पाञ्जलिमादाय वारत्रयं पूजयेदनेन—वेधोमयस्त्वं देवेश सर्वप्राणिहृदि स्थितः। कायस्थकायभूतोसि चित्रगुप्त नमोस्तु ते॥ इदं पुष्पं चित्रगुप्ताय नमः। धूपं गृहाण मे नाथ चन्दनागुरुसम्मितम्। आघ्राणं देवलोकस्य त्वदर्थं सम्भृतं मया॥ एष धूपः०। दीपोयं दीप्यते गेहं निशायां गिरिगह्वरे। पञ्चोपचारसंयुक्तो गृह्यतां च कृपां कुरु॥ एष दीपः०। त्रयोदशगुणागारं गन्धर्वगणसेवितम्। अपूर्वं दंवलोकस्य ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्॥ इदं ताम्बूलम्०। सर्वलोकसमाधानं सर्वभूषणसेवितम्। शरीरावरणश्रेष्ठं वस्त्रं च परिधीयताम्॥ इदं पीतवस्त्रम् बृहस्पतिदैवतं चित्रगुप्ताय नमः। चित्रगुप्ताय वै तुभ्यं यत्नादेतत् कृतम्मया। प्रसीद मम देवेश नैवेद्यं गृह्यतां मम॥ एतानि नानाविध-

नैवेद्यानि० । इदमाचमनीयं नमः चित्रगुप्ताय नमः । ततः नमो यम इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि एषोर्घः नमो यमाय नमः । इति अक्षतादिभिः पञ्चोपचारैः संम्पूज्य प्रणमेदनेन—धर्मराज नमस्तुभ्यं नमस्ते यमुनाग्रज । पाहि मां किंकरैः सार्धं सूर्यपुत्र नमोस्तु ते ॥ ततो यमुनामावाह्य गन्धादिभिः संपूज्य—यमुने त्वं महाभागा यमस्य भगिनी मता । पूजां गृहाण मे देवि कृपा कार्या सदा मयि ॥ यमुनायै नमः इति पुष्पाञ्जलित्रयेण पूजयेत् । ततो नमो लेखिनि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य स्थापनं कृत्वा एतानि पाद्यादीनि नमो लेखिन्यै नमः । इदमनुलेपनम्० । इदमक्षतम्० । इदं वस्त्रं बृहस्पतिदैवतं लेखिन्यै नमः । कृतासि चित्रगुप्तेन मर्त्यानां हितकाम्यया । एवं गतागता सा त्वं लेखिन्यै ते नमो नमः ॥ इति पुष्पैस्त्रिस्सम्पूज्य एतानि नानाविधनैवेद्यानि नमो लेखिन्यै नमः। इदमाचयनीयम्०। एष पुष्पांजलिः० । रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवति देहि मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥ इति वरं प्रार्थ्य स्कन्दपुराणोक्तं त्रयोदशयमस्तवं पठेत् । तद्यथा—

नमो भगवन् देवदेवेश सर्वभूतानुकम्पक । मानवासंभवं ब्रूहि येन तुष्यन्ति ते नमः ॥ १ ॥ **ईश्वर उवाच—** दक्षिणाशाधिपो योऽसौ यमो महिषवाहनः । सप्ताश्वतनयश्चैव धर्माधर्मप्रवर्तकः ॥ २ ॥ तं त्वं प्रपद्य लोकेशं सर्वपापप्रणाशनम् । त्वं साक्षी सर्वलोकानां सर्वलोकवरप्रदः ॥३॥ करे घृतमहादण्ड आरूढो महिषं प्रति । यस्तुल्यो नामकरणैः प्रसीदतु स मे यमः ॥४॥ चराचराणां भूतानां ज्ञाता यः पापपुण्ययोः । मित्रामित्रौ समौ यस्य प्रसीदतु स मे यमः ॥५॥ जपन्ति यस्य ध्यायन्ति नित्यं मूर्तीश्चतुर्दश । सर्वसन्तापशान्त्यर्थंम्प्रसीदतु स मे यमः ॥ ६ ॥ यो भक्तान् मोचयत्येव जन्मकर्मादिबन्धनात् । स मे दिशतु भद्राणि पापसन्धानभेदकृत् ॥ ७ ॥ चक्रपाणिः शूलधरो धाता कमलसंभवः । सकलभुवनभेदज्ञस्तं नमामि सदा यमम् ॥ ८ ॥ यस्याज्ञावशगा देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सर्वलोकप्रभुर्देवः स मे स्वस्तिकरोऽवतु ॥ ३ ॥ योऽर्चितो बाहुले मासि शुक्लपक्षे च मानवैः । शुभाय सर्वलोकानां तं यमं प्रणमा

स्यहम् ॥ १० ॥ ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां यथाविभवविस्तरैः । सम्पूज्य च यमं भक्त्वा स्तवमेनं पठन्ति ये ॥ ११ ॥ आपदस्तस्य नश्यन्ति सम्पदः सम्भवन्ति च । सफलः सर्वकामः स्यात् पुत्रपौत्रादिवर्धनम् ॥ १२ ॥ विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना । परमं स्थानमाप्नोति मोदते तत्र देववत् ॥ १३ ॥ ततः कथां शृणुयात् ।

अथ चित्रगुप्तव्रतकथा

भीष्म उवाच—कायस्था इति यल्लोके ख्याताश्चैव महामुने । कस्य वंशे समुद्भूताः कस्मिन् वर्णे च कथ्यते ॥१॥ तमहं श्रोतुमिच्छामि कथ्यतां भो महामुने । एतन् मे संशयं ब्रह्मन् छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥ २ ॥ इति पृष्टो मुनिः प्राह गाङ्गेयं शुचिविग्रहम् । पुलस्त्य उवाच—शृणु गाङ्गेय वक्ष्यामि कायस्थोत्पत्तिकारणम् ॥ ३ ॥ न श्रुतं यत्त्वया पूर्वं तन्मे निगदतः शृणु । येनेदं सकलं विश्वं स्थावरं जङ्गमादिकम् ॥ ४ ॥ उत्पाद्य पाल्यते भूयो निधनाय प्रकल्प्यते । अव्यक्तः पुरुषः शान्तो ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ५ ॥ यथाऽसृजत् पुरा विश्वं कथयामि च तं प्रभो । मुखतो ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियास्तथा ॥६॥ ऊरुभ्यां च तथा वैश्याः पद्भ्यां शूद्राः समुद्भवाः । द्विचतुःषट्पदादींश्च सर्वजीवान् सरीसृपान् ॥ ७ ॥ एककालेऽसृजद् ब्रह्मा चन्द्रसूर्यग्रहांस्तथा । एवं बहुविधं तत्र विश्वमुत्पाद्य भारत ॥ ८ ॥ सुतं ज्येष्ठं समाहूय सूर्यप्रमिततेजसम् । प्रतिपालय यत्नेन जगत्सर्वञ्च सुव्रत ॥ ९ ॥ इत्याज्ञाप्य सुतं ज्येष्ठं सृष्टिपालनहेतुकम् । ततस्तु ब्रह्मणा तेन यत्कृतं तं निशामय ॥ १० ॥ दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च । समाधिमगमद् ब्रह्मा ततो विश्रान्तमानसः ॥ ११ ॥ ततः समाहितमते यदभूत्तद्वदामि ते । तच्छरीरान्महाबाहुः श्यामः कमललोचनः ॥ १२ ॥ कम्बुग्रीवो व्यूढशीर्यः पूर्णचन्द्रनिभाननः । लेखिनीकटिनीहस्तो मसीभाजनसंयुतः ॥ १३ ॥ तेजस्वी पुरुषो धीमान् ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । उत्पन्नस्तु विचित्राङ्गो ध्यानस्तिमितलोचनः ॥ १४ ॥ त्यक्त्वा समाधि गाङ्गेय तं ददर्श पितामहः । अथ ऊर्ध्वं निरीक्ष्येमं तुरुपं चाग्रतः स्थितम् ॥ १५ ॥ पप्रच्छ को भवानग्रे

स्थितो वै पुरुषोत्तम । इति पृष्टोऽब्रवीद्वाक्यं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ १६ ॥ उत्पन्नोऽहं विधे नाथ त्वच्छरीरान्न संशयः । नामधेयं च मे तात कर्तुमर्हस्यशेषतः ॥ १७ ॥ यथोचितं भवत्कार्यं तत्त्वं मामनुशासय । इत्याकर्ण्य ततो ब्रह्मा पुरुषं तं शरीरजम् ॥ १८ ॥ प्रहस्य प्रत्युवाचैनमानन्दितमनास्ततः । ब्रह्मोवाच—मच्छरीरात्समुद्भूतस्तस्मात् कायस्थसंज्ञकः ॥ १९ ॥ चित्रगुप्तेति नाम्ना तु ख्यातो भुवि भविष्यति ॥ २० ॥ धर्माधर्मविवेकार्थं धर्मराजपुरे शुभे । भविष्यति हि भो वत्स निवासं सुविनिश्चलम् ॥ २१ ॥ निजवर्णोचितं धर्मं पालनीयं यथाविधि । प्रजाः सृजस्व भो पुत्र इति भारसमन्वितम् ॥ २२ ॥ तस्मै तत्त्वा वरं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥ २३ ॥ पुलस्त्य उवाच—चित्रगुप्तात् प्रजा जाता शृणु तां कथयामि ते । शृणु तेषां च नामानि कुरु वंशविवर्धनम् ॥२४॥ गौडाख्या माथुराश्चैव भट्टनागरसेनकाः । अहिगणाः श्रीवास्तव्या अम्बष्ठाः करणास्तथा ॥ २५ ॥ अपरे चाभवन्पुत्राश्चित्रगुप्तान्महामते । कुशलाः सर्वशास्त्रेषु ह्यम्बष्ठाद्याश्च सत्तमाः ॥ २६ ॥ पुत्रान् प्रस्थापयामास चित्रगुप्ता महीतले । धर्माधर्मविचराज्ञांश्चित्रगुप्तो महामतिः ॥ २७ ॥ भूयस्तान् शिक्षयामास धर्मसाधनमुत्तमम् । पूजनं देवतानां च पितृणां यज्ञसाधनम् ॥ २८ ॥ भरणं ब्राह्मणानां च सर्वदाऽतिथिसेवनम् ॥ २९ ॥ कर्तव्यं हि प्रयत्नेन लोकत्रयहिताय वै । हे पुत्राः स्वर्गकामाय पूज्या महिषमर्दिनी ॥ ३० ॥ सा माया प्रकृतिश्चण्डी चण्डमुण्डविनाशिनी । तस्यास्तु पूजनं कार्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ३१ ॥ यस्याः प्रभावतो देवाः सिद्धिं प्राप्य दिवं गताः । स्वर्गाधिकारमासाद्य जाता यज्ञभुजः सदा ॥ ३२ ॥ भवद्भिः सा सुपूज्या तु मिष्टान्नैः सुमनोहरैः । भवतां सिद्धदा यस्मात् देवतानां च चण्डिका ॥ ३३ ॥ वैष्णवं धर्ममाश्रित्य मद्वाक्यं प्रतिपालय । अनुशास्य सुतानेवं चित्रगुप्तो दिवं ययौ ॥ ३४ ॥ धर्मराजाधिकारे च चित्रगुप्तः सदाऽवसत् । एवं भीष्म समुत्पन्नाः कायस्था ये प्रकीर्तिताः ॥ ३५ ॥ ये सृष्टास्ते समाख्याता संवादं शृण्वतः परम् ॥ ३६ ॥ अहं ते कथयिष्यामि विचित्रमितिहासकम् । प्रभावं चित्रगुप्तस्य समुद्भूतं यथा पुनः ॥ ३७ ॥

पुलस्त्य उवाच—सौदासो नाम राजाऽभूत् समस्ते क्षितिमण्डले । सदा पापरतः सोपि धर्माधर्मं न विन्दति ॥ ३८ ॥
स यथा स्वर्गमासाद्य लब्धं पुण्यं फलं शृणु । स हि पापो दुराचारो धर्मकार्यविवर्जितः ॥ ३९ ॥ राजनीतिगतं धर्मं
न जानाति कथञ्चन । स्वदेशे वादयामास पटहं स नराधिपः ॥ ४० ॥ न दातव्यं न कर्त्तव्या दैवी पैत्र्यी कथञ्चन ।
आतिथ्यं जपकर्माणि तपः साधनमुत्तमम् ॥ ४१ ॥ न कर्त्तव्यं नरैः क्वापि मत्पालितमहीतले ॥ ४२ ॥ वसन्ति ये
तस्य चक्रे देव्यादिषु रता द्विजाः । परित्यज्य स्वकं देशं नानादेशान्तरं गताः ॥ ४३ ॥ ये केचिन्न्यवसंश्चक्रे चान्ये वा
ब्राह्मणादयः । नैव यज्ञं प्रकुर्युस्ते दैवं पैत्र्यं कदाचन ॥ ४४ ॥ ततः प्रभृति गाङ्गेय यज्ञो न हवनं क्वचित् । न
कोऽपि कुरुते भीष्म पुण्यं तस्यावहिर्गतम् ॥ ४५ ॥ ते द्विजाश्चान्यवर्णाश्च चक्रिरे धर्मविप्लवम् । अहो भूमिभृतस्तस्य
शृणु कर्मविपाकजम् ॥ ४६ ॥ कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां मुदा तिथौ । शुचिर्भूत्वा तु कायस्थाः चित्रगुप्तस्य
पूजनम् ॥ ४७ ॥ चक्रिरे भक्तिभावेन धूपदीपादिकैः शुभैः । दैवात्तत्र समायातः सौदासः पर्यटन् महीम् ॥ ४८ ॥
दृष्ट्वा पप्रच्छ कस्येदं पूजनं क्रियते शुभम् । तेऽप्यूचुश्चित्रगुप्तस्य पूजां कुर्मः शुभां नृप ॥ ४९ ॥ राजोवाच—अहमप्याचरिष्यामि
चित्रगुप्तस्य पूजनम् । ततश्च विधिवत्स्नानं कृत्वा चैव नराधिपः ॥ ५० ॥ श्रद्धायुक्तेन मनसा कृतवान्
पूजनं ततः । करणात् पूजनं तस्य चित्रगुप्तस्य भक्तितः ॥ ५१ ॥ गतपापोऽभवत् सद्यः सौदासः स महीपतिः ।
चित्रगुप्तप्रसादेन सुरलोकं गतो नृपः ॥ ५२ ॥ इदं विचित्रमाख्यानं चित्रगुप्तप्रभावजम् । कथितं ते नृपश्रेष्ठ किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि
॥ ५३ ॥ इत्याकर्ण्य ततो भीष्मः प्रत्युवाच महामुनिम् । भीष्म उवाच—विधिना केन विप्रेन्द्र पूजां तत्र
चकार सः ॥ ५४ ॥ को मन्त्रः को विधिस्तत्र तत्सर्वं कथय प्रभो । यामासाद्य मुनिश्रेष्ठ सौदासः स्वर्गमाप्नुयात् ॥५५॥
पुलस्त्य उवाच—चित्रगुप्तस्य पूजाया विधानं कथयामि ते । नैवेद्यैर्घृतपक्वैश्च तथा कालोद्भवैः फलैः ॥ ५६ ॥ गन्धपुष्पोपहारैश्च
धूपदीपैस्तथोत्तमैः । नानाप्रकारैर्नैवेद्यैः पट्टवस्त्रैः सुशोभनैः ॥ ५७ ॥ भेरीशङ्खमृदङ्गैश्च नानावाद्यैश्च डिण्डिमैः ।

चित्रगुप्तस्य पूजां तु कुर्याद्भक्तिसमन्वितः ॥ ५८ ॥ कलशं नवमानीय वारिणा परिपूरितम् । शर्करापूरितं विद्वन् पात्रं तस्योपरि स्थितम् ॥ ५९ ॥ पूजाकाले प्रयत्नेन दातव्यं च द्विजन्मने ॥ ६० ॥ तत्र मन्त्रः—समीभाजनसंयुक्तश्चरोसि त्वं महीतले ॥ लेखनीकटिनीहस्त चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते ॥ ६१ ॥ चित्रगुप्त नमस्तुभ्यं लेखकाक्षरदायक । कायस्थजातिमासाद्य चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते ॥ ६२ ॥ येषां त्वया लेखनस्य जीविका येन निर्मिता । तेषां च पालको यस्मात्ततः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ ६३ ॥ एभिर्मन्त्रैस्तु राजेन्द्र चित्रगुप्तस्य पूजनम् । सङ्कल्पपूर्वकं कुर्यात् कुरुवंशविवर्द्धन ॥ ६४ ॥ एवं सम्पूज्य विधिवत् सौदासो भक्तिभावतः । अचिरेणैव कालेन राज्यं कृत्वा मृतो नृपः ॥ ६५ ॥ नीतोऽसौ यमदूतैस्तु यमलोकं भयानकम् । चित्रगुप्तं तदाऽपृच्छद्यमराजश्च भारत ॥ ६६ ॥ धर्मराज उवाच—सौदासोऽयं दुराचारः पापकर्मरतः सदा । अनेन स्वप्रजाभ्यश्च पापं कारितवांस्तथा ॥ ६७ ॥ पृष्टोऽसौ धर्मराजेन धर्माधर्मविशारदः । धर्मराजं तदा प्राह चित्रगुप्तो महामतिः ॥ ६८ ॥ विपाककर्मजं ज्ञात्वा तं प्रहस्य शुभं वचः ॥ ६९ ॥ पापकर्मण्ययं राजा ख्यातोऽद्यापि महीतले । त्वत्प्रासादादहं सौरं पूज्योऽहं वसुधातले ॥ ७० ॥ त्वया दत्तवरः स्वामिन् शिवं भूयान्नमोऽस्तु ते । भवान् जानात्विदं देव राजापापोऽस्ति मे मतिः ॥ ७१ ॥ पूजां चकार राजाऽसौ भक्तिभावेन मामकीम् । अतस्तुष्टोऽस्मि हे देव यातु विष्णुपदं पृपः ॥ ७२ ॥ यमेनाज्ञापितो राजा वैष्णवं पदमाविशत् ॥ ७३ ॥ पुलस्त्य उवाच—ये चान्ये पूजयिष्यन्ति चित्रगुप्तं महीतले । कायस्था वाऽघनिर्मुक्ता यास्यन्ति परमां गतिम् ॥ ७४ ॥ तस्मात्त्वमपि गाङ्गेय पूजां कुरु विधानतः । राजेन्द्र दुर्लभं लोकं कृत्वा पूजामवाप्स्यसि ॥ ७५ ॥ मुनेर्वचनमाकर्ण्य भीष्मः प्रयतमानसः । चकार पूजनं तत्र चित्रगुप्तस्य भक्तितः ॥ ७६ ॥ कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां च भारत । यमुनाया गृहे यस्माद् यमेन भोजनं कृतम् ॥ ७७ ॥ अतो यमद्वितीयेति लोके संज्ञां जगाम ह । वरं दत्तं भगिन्या तु भ्रात्रेचायुर्विवर्द्धनम् ॥ ७८ ॥ अतो भगिनीहस्तेन तिथावस्यां च भोजनम् । धनं यश-

स्यमायुष्यं वर्द्धते कार्यसाधनम् ॥ ७९ ॥ स्वशक्त्या चैव दातव्यं भगिन्यै तु विधानतः । काले चात्रैव सम्पूज्य चित्रगुप्तं च लेखकः ॥ ८० ॥ चित्रैश्च रक्तपुष्पैश्च रक्तचन्दनमिश्रितैः । कृष्णोन्मत्तकपुष्पैश्च शमीपत्रैर्विशेषतः ॥ ८१ ॥ नैवेद्यं चैव दातव्यं मोदकं गुडमिश्रितम् ॥ ८२ ॥ पूजामन्त्रः—शान्तिदः प्रलये चैव भोगाभोगे कृताकृते । लेखकानां सदा श्रीदश्चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते ॥ ८३ ॥ चित्रगुप्त महाबाहो मामायुर्वरदो भव ॥ ८४ ॥ चित्रगुप्तः सन्तुष्टो भीष्माय प्रददे वरम् । मत्प्रसादान्महाबाहो मृत्युस्ते न भविष्यति ॥ ८५ ॥ स्मरिष्यसि यदा मृत्युं तदा मृत्युमवाप्स्यसि । इति तस्मै वरं दत्त्वा चित्रगुप्तो दिवं ययौ ॥ ८६ ॥ अनेन विधिना यस्तु चित्रगुप्तस्य पूजनम् । करिष्यति महाप्राज्ञस्तस्य पूजाफलं शृणु ॥ ८७ ॥ इह वै विपुलान् भोगान् भुक्त्वा चैव मनोहरान् । अव्ययं वैष्णवं लोकं नरो याति न संशयः ॥ ८८ ॥ चित्रगुप्तकथां दिव्यां कायस्थोत्पत्तिकारिणीम् । भक्तियुक्तेन मनसा ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ॥ ८९ ॥ दीर्घायुषो भविष्यन्ति सर्वव्याधिविवर्जिताः ॥ मृते विष्णुपदं यान्ति यत्र यान्ति तपोधनाः ॥ ९० ॥

इति श्रीमद्ब्रह्मपुराणोक्त चित्रगुप्तयमद्वितीयाव्रतकथा समाप्ता ।

अथ विसर्जनम्

ततः सर्वान् प्रणम्य विसर्जयेत् । तद्यथा—नमो चित्रगुप्त पूजितोसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । नमो यम पूजितोसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । नमो यमुने पूजितासि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । नमो लेखिनि पूजितासि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । ततो दक्षिणाद्रव्यमादाय नमोऽद्य कृतैतत्सवाहनचित्रगुप्तपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् ।

इति चित्रगुप्तपूजा समाप्ता ।

अथ प्रतिहारषष्ठी (छठ) निर्णयः

कार्तिकशुक्लषष्ठी सप्तमीयुतैव ग्राह्या। तथाहि स्कान्दे—नागविद्धा न कर्तव्या षष्ठी चैव कदाचन। सप्तमीसंयुता कार्या षष्ठी सर्वार्थचिन्तकैः। विष्णुधर्मोत्तरे—एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चदुर्दशी। अमावास्या तृतीया च समुपोष्याः परान्विता ॥ पुनश्च–नागविद्धा तु या षष्ठी सप्तम्या च तथाष्टमी। दशम्येकादशीविद्धा न ग्राह्या मुनिपुङ्गवैः(१)।

---

(१) अत्र विशेषवाक्यं तिथिचन्द्रिकायां—कलाकाष्ठानिमेषापि यदि स्यादपरेऽहनि। षष्ठ्या कथञ्चिद् विप्रेन्द्र सैवोपोष्या प्रयत्नतः ॥ अनेन सायं सप्तम्यामपि प्रथमोऽर्घ्यो विहितः। यतः माघवीये स्कान्दे—नागविद्धां तु ये षष्ठीमुपोष्यन्तीह मानवाः। वृद्धिः श्रेयश्च कल्याणं तेषां नश्यन्ति पूर्वजम् ॥ सगरेण कृता पूर्वं पञ्चम्या सह भारत। हतं पुत्रसहस्रं तु तस्माद् विद्वान्न कारयेत् ॥ अतोऽत्र पञ्चमीयुताया निषेघात् सप्तमीयुतैवेति सर्वनिबन्धस्वरसः। यत्र सप्तम्याः क्षयः तत्र इत्थं व्यवस्थामाह कृत्यशिरोमणिकारः—षष्ठ्याश्चैका कला यत्र तत्र सन्निहितो रविः। तत्र क्रतुशतं पुण्यमष्टम्यां पारणेन तु ॥ षष्ठी च सप्तमी चैव रात्रिशेषे यदाष्टमी। त्रिस्पृशा नाम सा प्रोक्ता तथा चैकादशी पुनः।, शुद्धैव सप्तमी ज्ञेया उपोष्या फलकाङ्क्षिभिः। अष्टम्यां पारणां कुर्याद् व्रतमेतन्नराधिप ॥ द्वैतनिर्णये--षष्ठीसमेता कर्तव्या सप्तमी, नाष्टमी पुनः। पतङ्गोपासनायाथ षष्ठ्यामाहुरुपोषणम् ॥

कृत्यशिरोमणौ—उदयकाले यद्दिने षष्ठी तस्य सायंकाले षष्ठ्यामसत्यामपि तत्रैवार्घ्यो देयः सप्तम्यनुरोधात्। यत्र पञ्चम्यां वृद्धिस्तत्परं षष्ठ्या क्षयस्तत्रापि षष्ठीक्षयदिन एव व्रतम्। यत्र तु षष्ठ्या वृद्धिस्तत्र परदिने सप्तमीविद्धायास्तस्या विहीनत्वादपि एकादशी तिथिभिन्नतिथिमलस्य व्रतादौ वर्जनीयत्वात् षष्ठिदण्डात्मकषष्ठ्यां व्रतं सायन्तनोऽर्घश्च, तदग्रिमदिने उदयानन्तरं षष्ठ्यन्ते द्वितोयोऽर्घो देयः। अत्र 'कलाकाष्ठानिमेष' इत्यादि वचनं तिथिमलरूपषष्ठीशेषभिन्नपरं ज्ञेयम्। तिथिमलस्वरूपं यथा–षष्ठिदण्डात्मिकायाश्च तिथेर्निष्क्रमणे परे। अकर्मण्यन्तिथिमलं विद्यादेकादशीं विना ॥ इति।

("षष्ठ्यामुपोष्य सप्तम्यां त्रिविवदर्कमर्चयेत्" इति पद्मपुराणाऽनुयायिनो राद्धान्तः पन्थाः)

अथ प्रतिहारषष्ठीपूजा

तत्र कृतनित्यक्रिया सरित्तटमागत्य सायंकाले सूर्याभिमुखी कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽद्य कार्तिकमासीयशुक्लपक्षीयषष्ठ्यां तिथौ अमुकगोत्राया ममाऽमुकीदेव्या इह जन्मनि जन्मान्तरे वा सकलदुःखदारिद्र्यसकलपातकक्षयापस्मारकुष्ठादिमहाव्याधिसकलरोगक्षयचिरजीविपुत्रपौत्रादिलाभगोधनधान्यादिसमृद्धिसुखसौभाग्याऽवैधव्यसकलकामावाप्तिकामा अद्य श्वश्व सूर्यायार्घ्यमहं दास्ये। इति सङ्कल्प्य नमो भगवन् सूर्य इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य नानाफलदूर्वारक्तचन्दनाक्षतघृतपाचितान्नयुतताम्रपात्रस्थार्घ्यमादाय—नमोऽस्तु सूर्याय सहस्रभानवे नमोऽस्तु वैश्वानरजातवेदसे। त्वमेव चार्घ्यं प्रतिगृह्ण गृह्ण देवाधिदेवाय नमो नमस्ते॥ नमो भगवते तुभ्यं नमस्ते जातवेदसे तत्तमर्घ्यं मया भानो त्वं गृहाण नमोऽस्तु ते॥ ज्योतिर्मय विभो सूर्य तेजोराशे जगत्पते॥ अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥ एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते। अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर॥ एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञया सहितप्रभो॥ एतान्मन्त्रान् समुच्चार्य्य उत्तिष्ठन्ती अर्घ्यं दद्यात्। ततो रक्तचन्दनरक्ताक्षतरक्तपुष्पदूर्वाविल्वपत्रवस्त्रयज्ञोपवीतधूपदीपताम्बूलनानाविधनैवेद्यैस्सम्पूज्य प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणमेदेभिः—जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्। ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोस्मि दिवाकरम्॥ इति प्रणम्य तत्तडल्लकं सूर्याय समर्प्य कथां शृणुयात्।

अथ प्रतिहारषष्ठीव्रतकथा

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

एकदा नैमिषारण्ये शौनकाद्या महर्षयः। नानादुःखयुतान् दृष्ट्वा मनुष्यांश्च दयालवः ॥ १ ॥ तमागतं समालोक्य समभ्यर्च्याप्तसौहृदाः। पप्रच्छुर्विनयान्नृणां दुःखनाशाय सत्तमाः ॥२॥ सूत सूत महाभाग सर्वशास्त्रार्थकोविद। नानादुःखसमायुक्ता मनुष्या भूतले स्थिताः ॥ ३ ॥ दुःखनाशः कथं तेषां मनुष्याणां भवेद्वद। सूत उवाच—कथयामि कथां दिव्यां शृणुध्वं हि समाहिताः ॥ ४ ॥ एवमेव पुरा पृष्टः पुलस्त्यो वाग्विशारदः। सत्यव्रतेन भीष्मेण लोकानुग्रहकांक्षया ॥ ५ ॥ मनुष्याश्चापि लोकेऽस्मिन् स्वकर्मवशवर्तिनः। अल्पायुषोऽल्पदेहाश्च तथा चैवाल्पबुद्धयः ॥ ६ ॥ अल्पप्रजाः धर्महीना आलस्याद्विहितोज्झिताः। देवार्चनविहीनाश्च भूसुरस्यापमानिनः ॥ ७ ॥ दुःखजालैः परीभूताः पीडिताश्चप्यहर्निशम्। दुःखनाशः कथं तेषामचिरात् स्याद्वद प्रभो ॥ ८ ॥ एवं पृष्ठो मुनिः प्राह रोगसन्दोहनाशने। पुलस्त्व उवाच—शृणुध्वं कथयिष्यामि पुरावृत्तं मनोरमम् ॥ ९ ॥ शृण्वतां पठतां नृणां महापातकनाशनम्। आसीत् क्षत्रियदायादः सर्वेषां द्रोहकृन्नृणाम् ॥ १० ॥ परोत्सवं न सहते भूयो दुष्टमतिर्बली। प्राग्जन्मकृतदोषेण कुष्ठरोगातुरोऽभवत् ॥ ११ ॥ यक्ष्मादिरोगसम्पन्नो जीवन्नेव मृतोपमः। जीवनान्मरणं भद्रं मेने रोगातुरः किल ॥ १२ ॥ तदा वै ब्राह्मणः कश्चिद्वेदवेदांगपारगः। तेजस्वी सर्वशास्त्रज्ञस्तपस्वी करुणार्द्रधीः ॥ १३ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन तत्रापि समुपागतः। तमागतं समुत्तस्थुर्ददुस्तस्मै वरासनम् ॥ १४ ॥ प्रणेमुश्चोपविष्टञ्च तमूचुर्विनयान्विताः। अहो भाग्यवशाद्यातं दर्शनं तव सुव्रत ॥ १५ ॥ दुःखनाशो भवेत् त्वत्त इति मन्यामहे वयम्। महोदयाय महतां दर्शनं नान्यथा भवेत् ॥ १६ ॥ इति मत्वाथ पृच्छामि त्वामिदं करुणानिधे। कुष्ठाभिभूतश्चैवायं तथा पुत्रविवर्जितः ॥ १७ ॥ मृतप्रजस्तथैवायमयञ्च धनवर्जितः। परित्यक्ता च भर्त्रेयमियं प्रोषितभर्तृका ॥ १८ ॥ राज्यभ्रष्टाः कुमाराश्च विद्याहीनाश्च सन्ति हि। दुःखनाशः कथं तेषां भवेद्वद महामते ॥ १९ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां ब्राह्मणः करुणामयः। अभिनन्द्य वचस्तेषां स विचारपरोऽभवत् ॥ २० ॥ आरोग्यं भास्कराद्देवात्पापराशिक्षयस्तथा। पापमूलानि दुःखानि सर्वाणीति

जगुर्बुधाः ॥ २१ ॥ एक एवोपदेशोऽत्र कर्तव्यः सर्वकार्यकृत् । एते विधिमजानन्तो जपादिकरणेऽक्षमाः ॥ २२ ॥ भक्तिश्रद्धाविहीनाश्च तथात्मानधिकारिणः । भूयो भूयो विचार्याथ जगाद वचनं द्विजः ॥ २३ ॥ भास्करस्य व्रतं त्वेकं यूयं कुरुत सत्तमाः । सर्वेषां दुःखनाशो हि भवेत्तस्य प्रसादतः ॥ २४ ॥ श्रुत्वा मुमुदिरे सर्वे स्मृत्वा वाक्यं पुनः पुनः । पप्रच्छुर्विनयात् सर्वे हर्षगद्गदया गिरा ॥ २५ ॥ कदा कोऽत्र विधिर्विप्र कथमाराधनं विभोः । सर्वं विस्तरतो ब्रूहि कृपासागर सुव्रत ॥ २६ ॥ विप्र उवाच—कार्तिके शुक्लपक्षे तु निरामिषपरो भवेत् । पञ्चम्यामेकभोजी स्याद्वाक्यं दुष्टं परित्यजेत् ॥ २७ ॥ भावदुष्टं न भुञ्जीत दुष्टश्रवणकृन्नरः । भूमिशायी जितक्रोधः शुचिः श्रद्धासमन्वितः ॥ २८ ॥ षष्ठ्याञ्चैव निराहारः फलपुष्पसमन्वितः । सरित्तटं समासाद्य गन्धदीपैर्मनोहरैः ॥२९॥ धूपैर्नानाविधैर्दिव्यैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः । गीतवाद्यादिभिश्चैव महोत्सवसमन्वितैः ॥ ३० ॥ समभ्यर्च्य रविं भक्त्या दद्यादर्घ्यं विवस्वते । रक्तचन्दनसंमिश्रं रक्तपुष्पाक्षतान्वितम् ॥ ३१ ॥ नानाफलसमायुक्तं दिव्यकौशेयसंयुतम् ॥ ३२ ॥ नमोऽस्तु सूर्याय सहस्रभानवे नमोस्तु वैश्वानरजातवेदसे । त्वमेव चार्घ्यं प्रतिगृह्ण गृह्ण देवाधिदेवाय नमो नमस्ते ॥ ३३ ॥ नमो भगवते तुभ्यं नमस्ते जातवेदसे । दत्तमर्घ्यं मया भानो त्वं गृहाण नमोऽस्तु ते ॥ ३४ ॥ ज्योतिर्मय विभो सूर्य तेजोराशे जगत्पते । अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥ ३५ ॥ एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञया सहितप्रभो ॥ ३६ ॥ मन्त्रैरेभिः प्रदातव्यं भास्वते दीप्ततेजसे । अर्धप्रदक्षिणां कृत्वा प्रणमेच्च पुनः पुनः ॥ ३७ ॥ गीतवाद्यादिनृत्यैश्च रात्रौ जागरणं चरेत् । पुनः प्रातः समभ्यर्च्य दत्त्वाऽर्घ्यं स्वस्थमानसः ॥ ३८ ॥ सदक्षिणं तथा चान्नं विप्रेभ्यः प्रतिपादयेत् । व्रती च पारणां कुर्यात् प्रसन्नवदनाम्बुजः ॥ ३९ ॥ व्रतेनानेन सन्तुष्टो दुःखं हरति भास्करः । चक्रुस्ते श्रद्धया युक्ताः स्वस्वदुःखोपशान्तये ॥ ४० ॥ यक्ष्मापस्मारकुष्ठादियुक्तः क्षत्रियनन्दनः । कमनीयः स नारीणां त्रिभिर्वर्षैर्बलान्वितः ॥ ४१ ॥ पुत्रहीनो भवेत्पुत्री जीवत्पुत्रो मृतप्रजः । सुभगा पतिना त्यक्ता

पत्युः प्राणसमा भवेन् ॥ ४२ ॥ प्रोषितस्तु पतिर्यस्याः सा भवेद्भर्तृसंयुता । एवं मनोरथैः पूर्णा अभवन् व्रतकारिणः ॥ ४३ ॥ सूत उवाच—ख्यातमेतद् व्रतं विप्राः स्तुतं वै सर्वदेहिनाम् । वाञ्छितार्थप्रदञ्चैव व्रतं सर्वसुखप्रदम् ॥ ४४ ॥ आसीत्तत्र दरिद्रो यः सद्ब्राह्मणकुलोद्भवः । विद्याहीनः कुमारश्च भिक्षुर्गृहविवर्जितः ॥ ४५ ॥ न वित्तनियमस्तस्य न भक्ष्याच्छादनस्य च । क्षुत्क्षामः पर्यटन् पृथ्वीं शर्म विन्दति न क्वचित् ॥ ४६ ॥ एवं बहुतिथे काले पर्यटन् खिन्नमानसः । समागतश्च तत्रैव यत्रैते समुपागताः ॥ ४७ ॥ श्रुत्वा विप्रवचस्सोऽथ प्राहेदं हृष्टमानसः । अकार्षीच्छ्रद्धया चैतद् व्रतं सर्वेप्सितप्रदम् ॥ ४८ ॥ व्रतेनैकेन तस्यासीदतीव पठने मतिः । पठित्वा कतिचिद्वर्षैः काव्यालङ्कृतिवित्कृती ॥ ४९ ॥ स्वविद्योपार्जितैर्वित्तैर्विवाह्यैकां सुवंशजाम् । पुत्रपौत्रान्वितो भूत्वा सर्वसम्पत्समन्वितः ॥ ५० ॥ पाठयन् बहुशो विप्रान् सर्वभोगान्वितः सुखी । जपन्नष्टाक्षरं विष्णोर्वेदपारायणं चरन् ॥ ५१ ॥ निनाय च दिनं सर्वमन्ते तेजस्विनां गतिम् । जगाम स द्विजश्रेष्ठो व्रतस्यास्य प्रसादतः ॥ ५२ ॥ राज्यभ्रष्टश्च श्रुत्वैतद् व्रतं सर्वेप्सितप्रदम् । चकार विधिवद्विप्रो भक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ ५३ ॥ अमात्यः पञ्चभिर्वर्षैर्मन्त्रयित्वा परस्परम् । समागतश्च तत्रैव यत्रास्ते राजसत्तमः ॥ ५४ ॥ राजानमग्रतः कृत्वा गताः सर्वे बलान्विताः । हत्वा द्रोहकरान् सर्वानुत्सार्य च परं बलम् ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वा त्वन्यान् समुत्सार्य कृत्वा राज्यमकण्टकम् । तमेव चक्रे राजानं पूर्ववत् सोऽप्यपालयत् ॥ ५६ ॥ अन्येऽपि ये व्रतं चक्रुरभीष्टं तेऽपि लेभिरे । एवं ये वै करिष्यन्ति व्रतं सर्वेप्सितप्रदम् ॥ ५७ ॥ तेषामभीष्टसिद्धिः स्याद्भास्करस्य प्रसादतः । साक्षादेव सप्तसप्तिः सर्वेषां पालकः स च ॥ ५८ ॥ श्रुत्वा कथामिमां दिव्यां व्रतं कृत्वा विधानतः । शक्तितो दक्षिणां दद्यात् सुवर्णं वाचकाय वै ॥ ५९ ॥ शृण्वन्ति ये कथां दिव्यां भक्तिभावसमान्विताः । गङ्गादिसर्वतीर्थानां स्नानपुण्यं लभन्ति ते ॥ ६० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणोक्तप्रतिहारषष्ठीव्रतकथा समाप्ता ।

अथ विसर्जनम्

ततः सूर्यं प्रणम्य विसर्जयेत् । ततः कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽद्य कृतैतत्प्रतिहारषष्ठीव्रतकरणतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । इति ब्राह्मणाय दक्षिणां दत्त्वा पारणां कुर्यात् ।

इति प्रतिहारषष्ठीव्रतपूजा समाप्ता ।

अथ गोपाष्टमीनिर्णयः

कार्तिकशुक्लाष्टम्यां गोपूजनमुक्तं शब्दकल्पद्रुमे—शुक्लाष्टमी कार्तिकस्य स्मृता गोपाष्टमी बुधैः । तद्दिने वासुदेवोऽभूद्गोपः पूर्वन्तु वत्सपः । तत्र कुर्याद् गवां पूजां गोग्रासं गाः प्रदक्षिणाम् । गवानुगमनं कुर्यात् सर्वकामानभीप्सितः ।

अथ अक्षयनवम्यां दुर्गापूजाविधिः

तत्र (१) कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य पञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य कुशादिकमादाय—ओमद्य

---

(१) इयं नवमी सूर्योदयव्यापिनी ग्राह्या । तथा हि पूजाव्रतप्रसंगे दिनकरोद्योते—'शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः' पूजाविहितकाल उक्तस्तत्रैव—त्रेधाविभक्तदिवसे प्रातःकाले सुरार्चनम् । मध्याह्ने तीर्थकार्यंञ्च सायं रक्षाकरी क्रिया ॥ उभयदिनव्याप्तौ मुहूर्तद्वयलाभे तु परेद्युरेवेति सर्वे निबन्धकाराः । कात्यायनीतन्त्रे—कुम्भराशिगते चन्द्रे नवम्यां कार्तिकस्य च ।

कार्तिके मासि शुक्ले पक्षे अक्षयनवम्यां तिथौ (१) अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सपरिवारस्योपस्थितशरीराविरोधेन महाभयाभावपूर्वकविपुलधनधान्यसुतान्विताऽतुलविभूतिचतुर्वर्गफलप्राप्तिपूर्वकमासचतुष्टयावच्छिन्नविधिवच्चण्डिकापूजनजन्यफलसमफलप्राप्तिकामः साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारायाः भगवत्याः श्रीदुर्गादेव्याः पूजनमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य कुशपुष्पाक्षतान्यादाय देव्याः हृदये अनामिकाङ्गुष्ठाभ्याम्–ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनो त्वरिष्टं यज्ञँ समिमन्दधातु। विश्वेदेवास इह मादयन्तामोम्प्रतिष्ठ॥ ॐ दुर्गे देवि इहागच्छ सन्निध्यमिह कल्पय। यज्ञभागं गृहाणेमं योगिनीकोटिभिः सह। ॐ ऐँ ह्रीँ क्लीँ चामुण्डे दक्षयज्ञविनाशिनि साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीदुर्गे देवि इहागच्छ इह तिष्ठ। इति प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्।

ततः श्रावणकृत्यान्तपरिशिष्टोक्तविधिना शान्तिकलशस्थापनं नवग्रहादिपूजनं च कुर्यात्। (सति सम्भवे पूर्वोक्तशारदीयदुर्गापूजावत् सूर्यादिनवग्रहान् इन्द्रादिदशदिक्पालांश्च पूजयेत्)

ततः करकच्छपिकां बद्ध्वा पठेत्—ओं एह्येहि भगवत्यम्बे शत्रुक्षयजयप्रदे। भक्तितः पूजयामि त्वां दुर्गे देवि सुरार्चिते॥ ओं दुर्गे देवि समागच्छ सान्निध्यमिह कल्पय। यज्ञभागं गृहाणेममष्टाभिः शक्तिभिः सह॥ ओं आयाहि वरदे देवि लोकानुग्रहकारिणि यज्ञभागं गृहाणेमं यन्मया परिकल्पितम्॥ ओं चण्डि त्वं चण्डरूपासि सुरतेजोमहा-

---

उषस्यघोंदिते मानी दुर्गामाराध्य यत्नवान्॥ पुत्रारोग्यफलं लेभे लोकसाक्षित्वमेव च। तां तिथिं प्राप्य मनुजः शनिभौमदिने यदि॥ प्रपूजयेन्महादुर्गां धर्मकामार्थमोक्षदाम्॥ अन्यच्च–मासैः चतुर्भिर्यत्पुण्यं विधिना पूज्य चण्डिकाम्। तत्फलं लभते वीर नवम्यां कार्तिकस्य च॥ इति।

(१) ग्रामपूजायां तु—'अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः' इत्यस्य स्थाने—'एतद्ग्रामवासिनां नानागोत्राणां सकलजनानामेतत्पूजोपकारकाणामन्यद्ग्रामवासिनां च' इति योज्यम्।

बले। प्रविश्य तिष्ठ यज्ञेऽस्मिन् यावत् पूजां करोम्यहम्। ततो ध्यायेत्–ओं जटाजूटसमायुक्तामर्धेन्दुकृतशेखराम्। लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसदृशाननाम्॥ अतसीपुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम्। नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम्॥ सुचारुदशनां तद्वत् पीनोन्नतपयोधराम्। त्रिभंगस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम्॥ कपालं खेटकं घण्टां दर्पणं तर्जनीं धनुः। ध्वजं डमरुकं पाशं वामहस्तेषु बिभ्रतीम्॥ शक्तिं च मुद्गरं शूलं खड्गं वज्राङ्कुशं तथा। शङ्खं चक्रं शरञ्चैव दक्षिणेषु च बिभ्रतीम्॥ अधस्तान् महिषं तद्वद् विशिरस्कं प्रदर्शयेत्। शिरश्छेदोद्भवं तद्वद् दानवं खड्गपाणिनम्॥ हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्गतं तु विभूषितम्। रक्तं रक्तीकृताङ्गञ्च रक्तविस्फारितेक्षणम्॥ वेष्टितं नागपशेन भ्रुकुटीकुटिलाननम्। सपाशवामहस्तेन धृतकेशञ्च दुर्गया। वमद्रुधिरवक्त्रं च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत्। देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम्॥ किञ्चिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि। स्तूयमानं च तद्रूपममरैः सन्निवेशयेत्॥ उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका। चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका। आभिः शक्तिभिरष्टाभिः सततं परिवेष्टिताम्। चिन्तयेत् सततं दुर्गां धर्मकामार्थमोक्षदाम्॥ इदं ध्यानपुष्पं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारायै श्री दुर्गादेव्यै नमः।

ततः स्वागतं—स्वागतं ते महामाये चण्डिके सर्वमङ्गले। पूजां गृहाण विविधां सर्वकल्याणकारिणि। इति स्वागतं कृत्वा—देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते। यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव॥ इति स्थिरीकृत्य आसनं दद्यादनेन—ॐ आसनं भास्वरं तुङ्गं माङ्गल्यं सर्वमङ्गले। भजस्व जगतां मातः प्रसीद जगदीश्वरि॥ इदमासनं भगवत्यै श्रीदुर्गादेव्यै नमः। ततः पाद्यम्—ॐ गङ्गादिसलिलाधारं तीर्थं मन्त्राभिमन्त्रितम्। दूरयात्राश्रमहरं पाद्यं तत्प्रतिगृह्यताम्॥ इदं पाद्यं०। तत उद्वर्तनम्—ओं तिलतैलसमायुक्तं सुगन्धिद्रव्यनिर्मितम्। उद्वर्तनमिदं देवि गृहाण त्वं प्रसीद मे॥ इदमुद्वर्तनं भगवत्यै०। ततोऽर्घ्यम्—ॐ तिलतण्डुलसंयुक्तं

कुशपुष्पसमन्वितम् । सगन्धं फलसंयुक्तमर्घ्यं देवि गृहाण मे ॥ एषोऽर्घ्यः । ततः आचमनीयम्—ॐ स्नानादिकं विधायापि यतः शुद्धिरवाप्यते । इदमाचनीयं हि दुर्गे देवि प्रगृह्यताम् ॥ इदमाचमनीयं० । ततः स्नानीयं—ॐ खमापः पृथिवी चैव ज्योतिषं वायुरेव च । लोकसंस्मृतिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम् ॥ इदं स्नानीयम्० । तत अष्टगार्घ्यः—ॐ जगत्पूज्ये त्रिलोकेशि सर्वदानवभञ्जिनि । अष्टगार्घ्यं गृहाण त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ॥ एष अष्टगार्घ्यः० । ततो दधि-सिता-घृत-मधु-मिश्रितात्मकं कांस्यपात्रेण पिहितं कांस्यपात्रस्थं मधुपर्कमादाय—ॐ मधुपर्कं महादेवि ब्रह्माद्यैः कल्पितं तव । मया निवेदितं भक्त्या गृहाण गिरिपुत्रिके । एष मधुपर्कः० । ततः पुनराचमनीयम्—ओं स्नानादिकं पुरः कृत्वा पुनः शुद्धिरवाप्यते । पुनराचमनीयं ते दुर्गे देवि प्रगृह्यताम् ॥ इदमाचमनीयं० । ततश्चन्दनम्—ॐ मलयाचलसम्भूतं नानागन्धसमन्वितम् । शीतलं बहुलामोदं चन्दनं गृह्यतामिदम् । इदं श्रीखण्डचन्दनं० । ततो रक्तचन्दनम्—ॐ रक्तानुलेपनं देवि स्वयं देव्या प्रकाशितम् । तद्गृहाण महाभागे शुभं देहि नमोऽस्तु ते ॥ इदं रक्तचन्दनं० । ततः सिन्दूरम्—ॐ सिन्दूरं सर्वसाध्वीनां भूषणाय विनिर्मितम् । गृहाण वरदे देवि भूषणानि प्रयच्छ मे ॥ इदं सिन्दूराभरणं भगवत्यै श्रीदुर्गादेव्यै नमः । ततः कुंकुमम्—ॐ जपापुष्पप्रभं रम्यं नारीभालविभूषणम् । भास्वरं कुङ्कुमं रक्तं देवि दत्तं प्रगृह्य मे ॥ इदं कुंकुमाभरणम्० । ततोऽक्षतम्-ॐ अक्षतं धान्यजं देवि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । प्राणदं सर्वभूतानां गृहाण वरदे शुभे ॥ इदमक्षतम्० । ततः पुष्पम्—ॐ चलत्परिमलामोदमत्तालिगणसङ्कुलम् । आनन्दनन्दनोद्भूतं दुर्गायै कुसुमं नमः ॥ एतानि पुष्पाणि० । ततो बिल्वपत्रं—ॐ अमृतोद्भवश्रीवृक्षं शङ्करस्य सदाप्रियम् । पवित्रं ते प्रयच्छामि सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ इदं बिल्वपत्रम्० । ततो मालाम्—ॐ नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम् । प्रयच्छामि सदा भद्रे गृहाण परमेश्वरि ॥ इदं माल्यम्० । ततो वस्त्रम्—ओं तन्तुसन्तानसंयुक्तं कलाकौशलकल्पितम् । सर्वाङ्गाभरणश्रेष्ठं वसनं परिधीयताम् ॥

इदं वस्त्रं बृहस्पतिदैवतं० । ततो द्वितीयवस्त्रम्—यामाश्रित्य महादेवो जगत्संहारकः सदा । तस्यै ते परमेशान्यै कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥ इदं द्वितीयवस्त्रम्० । ततोऽलङ्करणम्–ओं सौवर्णाद्यलङ्कारं कङ्कणादिविभूषितम् । हारकेयूरयुक्तानि नूपुराणि गृहाण मे ॥ इदमलङ्करणम्० ।

अथ अङ्गपूजा—ॐ दुर्गायै नमः, पादौ पूजयामि । ॐ महाकल्यै नमः, गुल्फौ पूजयामि । ॐ मङ्गलायै नमः, जानुनी० । ॐ कात्यायन्यै नमः, ऊरू० । ॐ भद्रकाल्यै नमः, कटिं० । ॐ कमलायै नमः, नाभिं० । ॐ शिवायै नमः, उदरं० । ॐ क्षमायै नमः, हृदयम्० । ॐ स्कन्दायै नमः, पृष्ठम्० । ॐ महिषासुरमर्दिन्यै नमः, नेत्रे० । ॐ उमायै नमः, शिरः० । ॐ विन्ध्यवासिन्यै नमः, सर्वाङ्गम्० ।

ततो धूपम्—ॐ गुग्गुलुं घृतसंयुक्तं नानाभक्ष्यैश्च संयुतम् । दशाङ्गं गृह्यतां धूपं दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ एष धूपः० । ततो दीपः—ॐ मार्तण्डमण्डलान्तःस्थ-चन्द्रविम्बाग्नितेजसाम् । निधानं देवि दीपोऽयं निर्मितस्तव भक्तितः ॥ एष दीपः० । ततः सुगन्धितद्रव्यम्—ॐ परमानन्दसौरभ्यं परिपूर्णदिगम्बरम् । गृहाण सौरभं दिव्यं कृपया जगदम्बिके ॥ इदं सुगन्धितद्रव्यम्० । ततः कर्पूरदीपः—ॐ त्वं चन्द्रसूर्यज्योतींषि विद्युदग्न्योस्तथैव च । त्वमेव जगतां ज्योतिः दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष 'कर्पूरदीपः । ततो नानाविधनैवेद्यानि—ॐ दिव्यान्तरससंयुक्तं नानाभक्ष्यैस्तु संयुतम् । चोष्यपेयसमायुक्तमन्नं देवि गृहाण मे ॥ एतानि नानाविधनैवेद्यानि । ततः पायसम्—ॐ गव्यसर्पिः पयोयुक्तं नानामधुरमिश्रितम् । निवेदितं मया भक्त्या परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥ इदं पायसान्नं० । ततो मोदकम् (लड्डू)—ॐ मोदकं स्वादु रुचिरं कर्पूरादिभिरन्वितम् । मिश्रं नानाविधैर्द्रव्यैः प्रतिगृह्याशु भुज्यताम् ॥ एतानि मोदकान्नानि० । ततोऽपूपादि—ॐ अपूपानि च पक्वानि मण्डका वटकानि च । पायसापूपमन्नं च नैवेद्यं प्रति- [illegible] । एतान्यपूपादिनैवेद्यानि० । ततः फलादीनि—ॐ फलमूलानि सर्वाणि ग्राम्यारण्यानि यानि च । नाना-

विधसुगन्धीनि गृहाण त्वं यथासुखम् ॥ एतानि तानाविधानि फलानि० । ततः पानीयम्—ॐ पानीयं शीतलं स्वच्छं कर्पूरादिसुवासितम् ॥ भोजने तृप्तिकृद्यस्मात् कृपया परिगृह्यताम् ॥ इदं पानीयम्० । ततः करोद्वर्तनजलम्—ॐ कर्पूरादीनि द्रव्याणि सुगन्धीनि महेश्वरि । गृहाण जगतां नाथे करोद्वर्तनहेतवे ॥ इदं करोद्वर्तनजलम्० । तत आचमनीयम्—ॐ आमोदवस्तुसुरभिः कृतमेतदनुत्तमम् । गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् ॥ इदमाचमनीयम्० । ततः ताम्बूलम् ॐ तमालदलकर्पूरनागवल्लीसमन्विम् । संशोधितं सुगन्धं च ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं ताम्बूलम्० । ततः कज्जलम्—ॐ स्यिग्धमुष्णं हृद्यतमं दृशां शोभाकरं तव । गृहीत्वा कज्जलं सद्यो नेत्राण्यञ्जय पार्वति । इदं कज्जलम् । ततः सौवीराञ्जनम्—ॐ नेत्रत्रयं महामाये भूषयामलकज्जलैः । सौवीराञ्जनकैर्दिव्यैर्जगदम्ब नमोऽस्तु ते ॥ इदं सौवीराञ्जनम्० । तत आलक्तकम्—ॐ त्वत्पादाम्भोजनखद्युतिकारिमनोहरम् । आलक्तकमिदं देवि मया दत्तं प्रगृह्यताम् ॥ इदमालक्तकम्० । ततश्चामरम्—ॐ चामरं चमरीपुच्छं हेमदण्डसमन्वितम् । मयार्पितं राजचिह्नं चामरं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं चामरम्० । ततो व्यजनम्—ॐ बर्हिर्बर्हकृताकारं मध्यदण्डसमन्वितम् । गृह्यतां व्यजनं दुर्गे देहस्वेदापनुत्तये ॥ इदं व्यजनम्० । ततो घण्टावाद्यम्—ॐ यया भीषयसे दैत्यान् यया पूरयसेऽसुरम् । तां घण्टां सम्प्रयच्छामि महिषघ्नि प्रसीद मे ॥ इदं घण्टावाद्यम्० । ततो दक्षिणाद्रव्यम्—ओं काञ्चनं रजतोपेतं नानारत्नसमन्वितम् । दक्षिणार्थं च देवेशि गृहाण त्वं नमोऽस्तु ते ॥ इदं दक्षिणाद्रव्यम्० । ततः पुष्पाञ्जलिः—ओं दुर्गे दुर्गे महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि । त्वं काली कमला ब्राह्मी त्वं जया विजया शिवा ॥ त्वं लक्ष्मीर्विष्णुलोकेपु कैलासे पार्वती तथा । सरस्वती ब्रह्मलोके चेन्द्राणी शक्रपूजिता ॥ वाराही नारसिंही च कौमारी वैष्णवी तया । त्वमापः सर्वलोकेपु ज्योतिस्त्वं ज्योतिरूपिणी ॥ योगमाया त्वमेवाऽसि वायुरूपा नभस्स्थिता । सर्वंगन्धवहा पृथ्वी नानारूपा सनातनी ॥ विश्वरूपे च विश्वेशे विश्वशक्तिसमन्विते । प्रसीद परमानन्दे दुर्गे देवि नमोऽस्तु

ते ॥ नानापुष्पसमाकीर्णं नानासौरभसंयुतम् । पुष्पाञ्जलिञ्च विश्वेशि गृहाण भक्तवत्सले ॥ एष पुष्पाञ्जलिः० । ततो नीराजनम् (आरार्तिकम्)—ओं कर्पूरवर्तिसंयुक्तं वह्निना दीपितञ्च यत् । नीराजनं च देवेशि गृह्यतां जगदम्बिके ॥ इदं नीराजनम्० । ततोऽच्छिद्रावधारणम्—ओं दुर्गे देवि महामाये यादृक्पूजा मया कृता । अच्छिाद्रास्तु शिवे साङ्गा तव देवि प्रसादतः ॥ ततः क्षमापनम्—ओं प्रार्थयामि महामाये यत्किंचित् स्खलितं मम । क्षम्यतां तज्ज्यगन्मातः दुर्गे देवि नमोस्तु ते ॥ ततः साष्टाङ्गं प्रणमेत् ।

अथ दुर्गापरिवारपूजाविधिः

ततो देव्याः दक्षिणे लक्ष्मीं ध्यायेत्—ओं तप्तकाञ्चनसंकाशां द्विभुजां लोललोचनाम् । कटाक्षविशिखोद्दीप्तामञ्जनाञ्चितलोचनाम् ॥ शुक्लाम्बरपरीधानां सिन्दूरतिलकोज्ज्वलाम् । शुक्लपद्मासनगतां ध्यायेन्नारारायणप्रियाम् ॥ इति ध्यात्वा ओं मनोजूतिरित्यादिपूर्वोक्तमन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां विधाय ॐ ह्रीं क्लीं भूर्भुवः स्वः भगवति श्रीलक्ष्मि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य पाद्यादिना यथोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं विश्वरूपस्य भार्यासि पद्मे पद्मालये शुभे । सर्वतः पाहि मां देवि महालक्ष्मि नमोस्तु ते ॥ ततो वामे सरस्वतीं ध्यायेत्—ओं शंखकुन्देन्दुसंकाशां द्विभुजां पद्मलोचनाम् । कटाक्षविशिखोद्दीप्तां दिव्याम्बरपरिच्छदाम् । दिव्याभरणवेशाढ्यां वाग्रूपां परमां भजे ॥ इति ध्यात्वा मनोजूतिरित्यनेन महासरस्वत्याः प्राणप्रतिष्ठां विधाय ओं ह्रीं भूर्भुवः स्वर्महासरस्वति इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य यथोपचारैः सम्पूज्य—ओं भद्रकाल्यै नमो नित्यं सरस्वत्यै नमो नमः । वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यास्थानेभ्य एव च ॥ इति प्रणमेत् । ततो लक्ष्म्या दक्षभागे गणेशं ध्यायेत्—ओं लम्बोदरं महाकायं गणवक्त्रं त्रिलोचनम् । सर्वदेवमयं देवं पार्वतीनन्दनं भजे ॥ इति ध्यात्वा मनोजूतिरिति मन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां विधाय ओं ह्रीं भूर्भुवः स्वर्गं गणेश इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ॐ ह्रीं गं गणेशाय नमः इति यथोपचारैः सम्पूज्य—ओं एकदन्तं महाकायं लम्बोदरगजा-

ननम् । विघ्ननाशकरं देवं हेरम्बं प्रणमाम्यहम् ॥ इत्यनेन प्रणमेत् । ततः सरस्वत्याः वामे कार्तिकेयं ध्यायेत्—ओं कार्तिकेयं महाभागं मयूरोपरि संस्थितम् । तप्तकाञ्चनवर्णाभं शक्तिहस्तं वरप्रदम् । नमामि शत्रुहन्तारं नानालङ्कारभूषितम् ॥ इति ध्यात्वा मनोजूतिरिति मन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां विधाय ओं ह्रीं गुहाय कार्तिकेयाय सेनान्यै स्वाहा, ओं भूर्भुवः स्वः साङ्गसायुधसवाहनश्रीकार्तिकेय इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य उक्तमूलेन ओं साङ्गसायुधसवाहनश्रीकार्तिकेयाय नमः । इति यथोपचारैः सम्पूज्य—ॐ कार्तिकेय महाभाग गौरीहृदयनन्दन । कुमार रक्ष मां नित्यं दैत्यार्दन नमोऽस्तु ते ॥ इति प्रणमेत् । ततो कार्तिकेयवामे जयां (१) ध्यायेत्—ॐ तप्तकाञ्चनसंकाशां द्विभुजां लोललोचनाम् । कटाक्षविशिखोपेतां दिव्याम्बरपरिच्छदाम् । दिव्याभरणसंयुक्तां ध्यायेत् सिद्धिप्रदायिनीम् ॥ इति ध्यात्वा मनोजूतिरिति मन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां विधाय ॐ ह्रीं ह्रीं जये इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ॐ ह्रीं ह्रीं जयायै नमः । इति यथोपचारैः पूजयेत् । ततो गणेशदक्षिणे विजयां ध्यायेत्—ॐ दलिताञ्जनसंकाशां द्विभुजां खञ्जनेक्षणाम् । कटाक्षविशिखोद्दीप्तां कज्जलाञ्चितलोचनाम् ॥ दिव्याम्बरपरीधानां नानारत्नविभूषिताम् । ध्यायेत्तां विजयां नित्यं सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् ॥ इति ध्यात्वा मनोजूतिरित्यादिना प्राणप्रतिष्ठां विधाय—ॐ ऐं ह्रीं विजये इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ॐ ऐं ह्रीं विजयायै नमः इति यथोपचारैः पूजयेत् । ततो देव्याः वाहनादिपूजां कुर्यात् ।

अथ दुर्गावाहनपूजा

तत्र(२) प्रथमं सिंहं पूजयेत् । तद्यथा ॐ तीक्ष्णदंष्ट्रः करालास्यः सटाशोभितकन्धरः । चतुरंघ्रिर्वज्रनखो

---

(१) यत्र जयायाः विजयायाश्च योगिन्याः प्रतिमा तत्र पद्धतिरीत्या प्राणप्रतिष्ठां विधाय पूजयेत् । यत्र प्रतिमाऽभावस्तत्रावाह्य पूजयेत् । क्वचित् पद्धतौ जयापूजनतः प्रागेव शिव–गौरि–नन्दिनः पूजनमस्ति । अत्र यथाचाराद् व्यवस्था कर्तव्या ।

(२) सति सम्भवे अत्र देव्या अस्त्र-शस्त्रपूजाऽपि कर्तव्या । यद्यथा—

महासिंहः प्रकीर्तितः ॥ इति ध्यात्वा–मनोजूतिरिति मन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां विधाय—ओं ह्रीँ ह्रीँ वज्रनखदंष्ट्रायुध महासिंहासन इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं वज्रनखाय दंष्ट्रायुधाय महासिंहासनाय नमः। इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं दद्यादनेन—ॐ नमस्ते सर्वतोभद्र शिवो भव महीपते। त्रैलोक्यस्य तु सर्वस्य सिंहासन नमोऽस्तु ते॥ ओं आसनं चासि दुर्गायाः नानालङ्कारभूषितम्। मेरुसिंहप्रतीकाश सिंहासन नमोऽस्तु ते॥ इति प्रणमेत्। ततो महिषासुरं ध्यायेत्—ॐ महिषस्त्वं महावीर शिवरूप सदाशिव। अतस्त्वां पूजयिष्यामि क्षमस्व महिषासुर॥ इति ध्यात्वा मनोजूतिरित्यनेन प्राणप्रतिष्ठां विधाय—ॐ ह्रीँ ह्रीँ ह्रूँ महिषासुर इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ॐ महिषासुराय नमः इत्यनेन पञ्चोपचारैः सम्पूज्य—ॐ महिषस्त्वं महावीर इन्द्रादीनां विमर्दकः। देव्याश्चताडितो भूत्वा गतः स्वर्गं नमोऽस्तु ते॥ इति प्रणमेत्। ततो महिषं मयूरं चावाह्य प्राणप्रतिष्ठां विधाय पञ्चोपचारैः पूजयेत्।

अथ नवभैरवपूजा—देव्या अग्रे—ॐ भैरवं परमं देवं सर्वकामप्रसाधकम्। पूजयाम्यग्रतो देव्याः सर्वाभीष्टफलप्रदम्॥ ॐ भीषणास्यं त्रिनयनमर्धचन्द्रविभूषितम्। स्फटिकाभं कङ्कणादिभूषाशतसमावृतम्॥ अष्टवर्षवयस्कं च

पुष्पाक्षतैः—ओं कपाल इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ओं कपालाय नमः इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्। एवम्—खेटकाय नमः। घण्टायै नमः। धनुषे नमः। ध्वजाय नमः डमरुकाय नमः। नागपाशाय नमः। शक्तये नमः। शूलाय नमः। खड्गाय नमः। वज्राय नमः। अङ्कुशाय नमः। शंखाय नमः। शराय नमः। छुरिकायै नमः। कट्टराय नमः। कुन्ताय नमः। वर्मणे नमः। परशवे नमः। इत्यनेन प्रत्येकं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य—ओं यानि यान्यम्बिका धत्ते करेषु स्वेषु सर्वदा। भुशुण्डीपाशपरिघभिन्दिपालासिलागुडाः। ऋष्टितोमरकुन्ताश्च पट्टिशो मुशलस्तथा॥ गदाशतघ्नीकुणपच्छुरिकाकर्तरीमुखाः। सर्वे रक्षन्तु मां नित्यं सर्वसिद्धिं ददत्वपि॥ इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा ओं छत्राय नमः, चामराय नमः, इत्यनेन छत्रचामरौ च पूजयेत्।

कुण्डलोल्लसितं भजे ॥ धारयन्तं दण्डशूले भैरव्यादिसमायुतम् ॥ इति ध्यात्वा—(१) ॐ ऐं ह्रीं अँ असिताङ्गभैरव इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, असिताङ्गभैरवाय नमः। इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्। एवम् (२) ॐ ऐं ह्रीं इँ रुरुदभैरवाय नमः। (३)—ॐ ऐं ह्रीं ऊँ चण्डभैरवाय नमः। (४) ॐ ऐं ह्रीं ऋँ क्रोधभैरवाय नमः। (५) ॐ ऐं ह्रीं लृँ उन्मत्तभैरवाय नमः। (६)—ॐ ऐं ह्रीं एँ भयङ्करभैरवाय नमः। (७) ॐ ऐं ह्रीं ओँ भीषणभैरवाय नमः। (८) ॐ ऐं ह्रीं अँ संहारभैरवाय नमः। (९)—ॐ ऐं ह्रीं कँ कपालिभैरवाय नमः। इति प्रथमान्तपदेनावाह्य चतुर्थ्यन्तपदेन सर्वान् पूजयेत्। ततः प्रार्थयेत्--ॐ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनी। द्रव्यमारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥ ॐ कुङ्कुमेन सदालब्धे चन्दनेन विलेपिते। बिल्वपत्रकृपापाणे दुर्गेऽहं शरणं गतः॥ ततः ॐ सर्वमङ्गलमाङ्गल्येत्यादि, ॐ रूपं देहि जयं देहीत्यादि च पठित्वा सति सम्भवे श्रावणकृत्यान्तपरिशिष्टोक्तविधिना अग्नि संस्थाप्य 'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे नमः स्वाहा' इति मन्त्रेण अष्टोत्तरशतं सहस्रं वा आज्याहुतीर्जुहुयात्। ततो यथाचारात् श्रावणकृत्यान्त परिशिष्टोक्तविधिना छागबलिदानं कृत्वा कुमारीपूजनं च विधाय त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य यथालाभं तोरणादीनि देव्या गृहे संस्थाप्य नृत्यगीतवाद्यादिभिरुत्सवं कारयेत्।

अथ सायंकृत्यम्

सायंकाले सूर्यायाऽर्घं दत्त्वा देवीं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य नानास्तोत्रादिना पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा नीराजनं कुर्यात्—ॐ मङ्गले कालिके दुर्गे महिषासुरमर्दिनि। इदं नीराजनं देवि गृहाण सुरसुन्दरि॥ ॐ समस्तयोगिनीचक्रे परिवारगणावृते। आरार्तिकमिदं दुर्गे कृपया प्रतिगृह्यताम्॥ इदं नीराजनम् ॐ साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारायै श्रीदुर्गादेव्यै नमः। ततः कर्पूरनीराजनं दद्यात्—ॐ त्वं चन्द्रसूर्यज्योतींषि विद्युदग्न्योस्तथैव च। त्वमेव जगतां ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥ ततः स्तोत्रादिकं पठित्वा पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा नृत्यगीतवाद्याद्युत्सवैः रात्रिं क्षपेत्।

अथ विसर्जनम्

तत्र प्रातः कृतनित्यक्रियः पञ्चोपचारैः पूजां विधाय—ॐ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि । द्रव्यमारोग्यविजयं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥ ॐ रूपन्देहि जयन्देहि भाग्यं भगवति देहि मे । धर्मान्देहि धनन्देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥ ॐ विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् । पूर्णं भवतु तत्सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥ शक्नुवन्ति न ते पूजां कर्तुं ब्रह्मादयः सुराः । अहं किं वा करिष्यामि मृत्युधर्मा नरोऽल्पधीः ॥ न जानेऽहं स्वरूपं ते न शरीरं न वा गुणम् । एकामेव हि जानामि भक्तिन्त्वच्चरणाब्जयोः ॥ इति संप्रार्थ्य पुष्पं गृहीत्वा—ॐ चण्डेश्वर्यै नमः । ॐ निर्माल्यवासिन्यै नमः । इत्यैशान्यां क्षिपेत् । ततो देव्याः चरणं स्पृष्ट्वा—ॐ सिंहवाहिनि चामुण्डे पिनाकधरवल्लभे । उपहारं गृहीत्वैवं प्रसीद परमेश्वरि ॥ उत्तिष्ठ देवि चामुण्डे शुभां पूजां प्रगृह्य मे । कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह ॥ गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके । यत्पूजितम्मया देवि परिपूर्णन्तदस्तु मे ॥ गम्यतामर्थलाभाय क्षेमाय विजयाय च । शत्रोर्दर्पविनाशाय पुनरागमनाय च ॥ व्रज त्वं स्रोतसि जले मद्गेहे तिष्ठ भूतये । आगामिवत्सरे च त्वं पुनरायास्यसि ध्रुवम् ॥ ॐ गच्छन्तु देवताः सर्वे दत्त्वा मे वरमीप्सितम् । त्वं गच्छ परमेशानि सुखं सर्वगुणैः सह ॥ ॐ ह्रीं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारभगवति श्रीदुर्गे देवि पूजितासि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । एवम् ॐ लक्ष्मि पूजितासि प्रसीद मयि रमस्व । ॐ सरस्वति पूजितासि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । ॐ गणेश पूजितोसि प्रसीद० । ॐ कार्तिकेय पूजितोसि प्र० । ॐ जये पूजितासि प्र० । ॐ विजये पूजितासि प्र० । ॐ सिंह पूजितोसि प्र० । ॐ महिषासुर पूजितोसि प्रसीद० । ओं महिष पु० । ओं मूषिक पू० । ओं मयूर पू० । ओं असिताङ्गादिनवभैरवाः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत । ओं कलशस्थावाहितदेवताः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत । इति प्रत्येकं विसृज्य—ओं ह्रीं चामुण्डे चल चल चालय चालय हूं फट् स्वाहा । ओं

दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते । संवत्सरव्यतीते तु पुनरागमनाय वै ॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्या निवेदिताम् । रक्षणार्थं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम् ॥ इति पठित्वा (१) कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अद्य कृतैतत् साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीदुर्गादेवीपूजनकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे ॥ इति दक्षिणां दत्त्वा शान्तिकलशमुत्थापयेदनेन—ओं उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उपप्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवासवा ॥ इति । ततो वक्ष्यमाणमन्त्रैर्यजमानमभिषिञ्चेत् ।

अथाऽभिषेकमन्त्राः

कलशजलेन पञ्चपल्लवैरभिषेकं कुर्यात् । तद्यथा—ओं सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः । प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते । आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा ॥ वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः । ब्रह्मणा सहितश्शेषो दिक्पालाः पान्तु ते तदा ॥ कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रियामतिः बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ॥ एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः ॥ आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः । ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥ देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥ देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः । अस्त्राणि सर्वशास्त्राणि राजानो वाहनानि च ॥ औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये । सरितः सागराश्शैलास्ती-

---

(१) अत्रैव भूयसीं कुर्यात् । तद्यथा—कुशत्रयतिजलान्यादाय—ॐ अद्य कृतैतत्साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीदुर्गापूजाकर्मणि न्यूनाधिकदोषशमनार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो भूयसीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृज्ये ।

र्थानि जलदा नदाः । एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये । ततो देवीप्रतिमामुत्थाय नृत्यगीतवाद्याद्युत्सवपुरस्सरं जलाशयं नीत्वा जयघोषैर्जले प्रवाहयेत् । तद्दिने देवीप्रीत्यर्थं कुमारी-सुवासिनी-बटुक-ब्राह्मणान् भोजयेत् ।

इति अक्षयनवम्यां दुर्गापूजा समाप्ता ।

अथ अक्षयनवम्यां कूष्माण्डदानविधिः

गन्धपुष्पाक्षतैः—ओं (एतावद्द्रव्यमूलक—) मुक्ताप्रवालरत्नहेम-फलताम्बूलवस्त्रादियुतगोधूमराशिस्थितकूष्माण्डाय नमः ॥ ३ ॥ ओं ब्राह्मणाय नमः ३ इति त्रिः संपूज्य, कुशत्रयतिलजलान्यादाय-ओमद्य कार्तिकमासीयशुक्लपक्षीयाक्षयनवम्यां तिथौ अमुकगोत्रस्य अमुकशर्मणः सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे तुलादानफलसमफलप्राप्तिपूर्वकब्रह्महत्यादिसकलमहापातकोपपातकक्षयपूर्वकबहुपुत्रपौत्रश्रीसौभाग्यादिसकलमनोरथावाप्तिपूर्वककूष्माण्डवीजसमसंख्यकवर्षसहस्रावच्छिन्नाक्षयब्रह्मलोकनिवासकामनया इदं कूष्माण्डफलं मुक्ताप्रवालरत्नहेमफलताम्बूलवस्त्रादियुतं गोधूमराशिस्थितं वनस्पतिदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाहं ददे (१) पुनः कुशादिकमादाय—ओं ब्रह्महत्यादिपापघ्नं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । कूष्माण्डं वहुबीजाढ्यं पुत्रपौत्रादिवृद्धिदम् ॥ मुक्ताप्रवालहेमादि युक्तं दत्तं तव द्विज । अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ इति मन्त्रं पठित्वा-ओमद्य कृतैतत्सोपकरण-कूष्माण्डदानप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । इति ब्राह्मणाय प्रतिपादयेद् ।

इति कूष्माण्डदानविधिः ।

---

(१) पाद्मे—कार्तिके मासि कूष्माण्डं सहिरण्यं सरत्नकम् । गुप्तदानेन सहितं दीयते मुनिपुङ्गव । ते धन्याः कृतकृत्यास्ते तरात्मा वारितो मुने ॥ इति ॥

अथ अक्षयनवमीव्रतकथा

नारद उवाच—श्रृणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं पापनाशनम्। अक्षयाया नवम्यास्तु यद् गोप्यं च त्रिविष्टपे॥ १॥ तदहं ते समग्रञ्च कथयिष्ये तपोधन। कार्तिकस्य तु शुक्लस्य पक्षस्य नवमीतिथिः॥ २॥ अक्षया सा तु सम्प्रोक्ता व्यासाद्यैर्मुनिपुङ्गवैः। तस्मात्तु करणं यत् स्यात्तच्छृणुध्वं हरिप्रियम्॥ ३॥ ब्राह्मे मुहुर्ते चोत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितम्। कृत्वा निमित्तिकं कर्म पूजयेदिष्टदेवताः॥ ४॥ विष्णुपूजां विधायादौ तथा पञ्चोपचारकैः। प्रदद्यात्तत्र नैवेद्यं पक्वान्नं सलवङ्गकम्॥ ५॥ जीरकं नागरं कृष्णमारिचं दाडिमं तथा। नारिकेलफलं चान्यत् कूष्माण्डं काञ्चनीयुतम्॥६॥ सङ्कल्प्य दद्याच्छ्रीकृष्णः प्रीयतामिति चाक्षयः। स्वशक्त्या तोषयेद्विप्रान् नमस्कारेण वा पुनः॥७॥ सूर्यग्रहे ·कुरुक्षेत्रे तुलादानस्य यत्फलम्। तत्फलं लभते मर्त्यस्तस्यां कूष्माण्डदानतः॥ ८॥ महापातकयुक्तोऽपि तद्युक्तो चोपपातकैः। नरो विशुद्धो मुक्तो हि यमलोकं न पश्यति॥९॥ कूष्माण्डदानकर्तारः सर्वंलोकान् व्रजन्ति वै। स्वेच्छया पर्यटन्तश्च नानाभोगरता द्विज॥ १०॥ **शौनक उवाच**—भूलोके केन दत्तं हि वद मह्यं मुनीश्वर। दानं कूष्माण्डकमयं येन कौतूहलं हि मे॥ ११॥ **नारद उवाच**—अन्तर्वेद्यां महाग्रामो यामुनस्य गिरेरधः। तत्र सुब्राह्मणो रामशर्माऽसौ लोकविश्रुतः॥ १२॥ तेनात्यन्तधनं सम्यगर्जितं प्रचुरं किल। पुण्यकार्यपरो दाता वार्द्धक्यं समुपागतः॥ १३॥ तस्य पुत्रौ तु सञ्जातौ नाम्ना कृष्णधनञ्जयौ। तयोर्मूर्द्धवहं दत्त्वा जगाम तपसे वनम्॥ १४॥ तपःक्लिष्टशरीरोऽसौ वासुदेवमनः सदा। प्राप्तवान् वैष्णवं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥१५॥ ततस्तस्य सुतौ तौ तु काले तरुणतां गतौ। वारस्त्रीरतिसंसक्तौ मद्यपानरतौ सदा॥ १६॥ न श्रृण्वाते वचः पूर्वं वृद्धानां तत्र तावुभौ। परस्त्रीभ्यः प्रददतुः सहस्रं च शतं तथा॥१७॥ एवं द्रव्यं क्षयं नीतं ताभ्यां क्षणसुखाय वै। मल्लौ चाणूर शैलूषौ वेश्याद्यूतप्रियावुभौ॥ १८॥ अपात्रे तद्धनं दत्तं भुवि बीजमिवोषरे। द्रव्यक्षयादुभौ भूतौ चौरमार्गानुसारिणौ॥ १९॥

रात्रौ तु कोटपालेन धृतौ राज्ञा प्रवासितौ । वनं गतौ तु तौ सार्धमधर्मनिरतौ द्विजौ ॥ २० ॥ मांसाहारप्रियौ जातौ सिंहान् मृत्युमुपागतौ । एकस्मिन् दिवसे ब्रह्मन् मृतौ यमपुरङ्गतौ ॥ २१ ॥ यमदूतौ पृष्टवन्तौ का शास्तिः क्रियते विभो । किङ्करस्य वचः श्रुत्वा तदा वैवस्वतो यमः ॥ २२ ॥ चित्रगुप्त लेखनीयं नराणां च शुभाशुभम् । एकत्र क्रोधताम्राक्षः एतौ कुत्र क्षिपाम्यहम् ॥२३॥ चित्रगुप्तोऽब्रवीद्वाक्यं किङ्करान् शूलधारिणः । एकश्च नीयतां स्वर्गे यत्र भोगाश्च शाश्वताः ॥ २४ ॥ अपरः क्षिप्यतां दूता नरके यातनाकुले । चित्रगुप्तवचः श्रुत्वा तदा दूतः प्रियंवदः ॥ २५ ॥ नीत्वा धनञ्जयं तुष्टः स्वर्गमार्गमुपागतः अन्यस्तु पापकर्माणं गृहीत्वा कृष्णशर्मकम् ॥ २६ ॥ नरकेऽपातयत्क्रुद्धः भुंक्ष्व कर्मकृतं द्विज । धनञ्जयो व्रजन् मार्गे पश्यन् वैचित्र्यमाप्तवान् ॥२७॥ अप्सराश्च तदागत्य उर्वश्याद्या महामुने । पारिजातकृतां मालां शिरसि प्राक्षिपन् मुदा ॥२८॥ इति दृष्ट्वा तदाश्चर्यं स्वर्गमार्गस्य शौनक । पृष्टवान् यमदूतश्च तदा सकरुणं वचः ॥२९॥ धनञ्जय उवाच—एका माता पिता चैकस्ताभ्यां जातौ सहोदरौ । पापमेव कृतं ताभ्यां न वार्ता पुण्यकर्मणः ॥३०॥ एकस्मिन् दिवसे दूत मृतौ यमपुरीं गतौ । कथं स नरके क्षिप्तो मम ज्येष्ठः प्रियंवद ॥ ३१ ॥ (यमदूत उवाच) स्वसा माता पिता भ्राता पितृव्यश्च धनन्जय । अदृष्टकर्मजा संज्ञा जन्मकर्मोपभुक्तये ॥३२॥ यथा कन्यागते सूर्ये श्वशुनीनां समागमः । पुत्रभ्रातृपितॄणां च तथा भवति संगमः ॥ ३३ ॥ तस्मान्चिन्ता न कर्तव्या व्रज मार्गं पुरस्य वै । पुण्यवांस्त्वं सुकृतिनां लोकं यासि नमोस्तु ते । ॥ ३४ ॥ धनन्जय उवाच—केन पुण्येन मां दूत नयसि त्वं त्रिविष्टपम् । पापिष्ठो मत्परो नान्यो भविष्यति धरातले ॥ ३५ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा यमदूतोऽब्रवीद्वचः । पाठकस्य प्रसङ्गेन गतस्त्वं यमुनां किल । वाससी च गुरोर्गृह्य कुशाश्च समिधस्तथा ॥ २६ ॥ आचार्यस्याज्ञया स्नानमूर्जे प्रातः कृतं त्र्यहम् । नियमं यत्कृतं तत्र सञ्जातन्तु महत्फलम् ॥ ३७ ॥ एकेन मज्जनेनाशु पापान्मुक्तोसि जन्मनः । मज्जनेन द्वितीयेन अक्षयं स्वर्गमाप्नुहि ॥ ३८ ॥ नरके च तव भ्राता सहतां यमयातनाम् । इति श्रुत्वा

वचस्तस्य भ्रातृगौरवयन्त्रितः ॥ ३९ ॥ देवदूत प्रणम्याहं मैत्रीं साप्तपदीं स्मरन् । निर्गमो नरकाद् दूत भ्रातुर्मे जायते कथम् ॥ ४० ॥ यथाहं भ्रातृसङ्गेन स्वर्गं यामि प्रियंवद । नहि भ्रातृसमो बन्धुर्नहि भ्रातृसमः सखा ॥ ४१ ॥ नहि भ्रातृसमः त्राता भ्रातृजातं विशेषतः । स्वर्गं नेच्छे विना तेन तत्र मे कार्यनिर्वृतिः ॥ ४२ ॥ यथा भ्रात्रा समो योगस्तमुपायं वदस्व मे । इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवदूतोऽब्रवीत्ततः ॥४३॥ पूर्वजन्मकृतं पुण्यं तद्वदामि धनन्जय । दानं नवम्यां कूष्माण्डस्योर्जे शुक्लतिथौ दिने ॥ ४४ ॥ सहिरण्यं त्वया दत्तं सरत्नं च सवस्त्रकम् । देहि पुण्यं च त्वं भ्रात्रे दुष्प्राप्यं स्वर्गिणामपि ॥ ४५ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवदूतस्य सादरम् । ददौ भ्रात्रे च कूष्माण्डदानपुण्यं धनञ्जय ॥ ४६ ॥ पुण्यदानेन कृष्णोपि नरकादागतस्तदा । भ्रात्रा सह द्विजवरः प्राप्तवान् वैष्णवं पदम् ॥ ४७ ॥ भोगोपभोगसम्पन्नौ यमदूतविवर्जितौ । अद्यापि तौ द्विजवरौ पुण्यशीलसुशीलकौ ॥ ४८ ॥ कृष्णभक्तावभूतां वै कृष्णाराधनतत्परौ । नवम्यां कृष्णमुद्दिश्य शुक्लपक्षे विचक्षणैः ॥ ४९ ॥ कार्तिके मासि कूष्माण्डं सहिरण्यं सवस्त्रकम् । कूष्माण्डस्य च दानेन तार्यन्ते कोटिपूरुषाः ॥ ५० ॥ एतत्ते कथितं विप्र कार्तिके नवमीव्रतम् । कूष्माण्डदानमाहात्म्यं यद्गीतं यमदूतकैः ॥ ५१ ॥ धात्र्यै चैकप्रणामेन अश्वमेधाधिकं फलम् । प्रदक्षिणां तु कुरुतां सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणान् सत्यसन्धांश्च हरिभक्तिपरायणान् । भुञ्जन्ति चैव ये विप्रास्तेषामन्नं गुणप्रदम् ॥ ५३ ॥ धात्रिच्छायां समाश्रित्य कार्तिकेऽन्नं तु भुज्यते । अन्नसंसर्गजं पापं बहुवर्षं च नश्यति ॥ ५४ ॥

इति श्रीनारदपुराणोक्ताक्षयनवमीव्रतकथा समाप्ता ।

अथ देवोत्थानैकादशीव्रतपूजनविधिः

(संक्षिप्तपूजनोत्थापनविधिः ९५२ पृष्ठे द्रष्टव्यः)

कार्तिकशुक्लैकादश्यां (१) प्रदोषे देवोत्थापनं कुर्यात्। तथाहि ब्रह्मपुराणे—एकादश्यान्तु शुक्लायां कार्तिके मासि केशवम्। सुप्तं प्रबोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।

---

(१) एकादशी द्वादशीयुतैव ग्राह्या। तिथिमलरूपाया अपि द्वादशीयुक्तायाः प्राप्तौ सैव ग्राह्या। 'षष्टिदण्डात्मिकायाश्च तिथेर्निष्क्रमणे परे। अकर्मण्ं तिथिमलं विद्यादेकादशीं विना॥ इति वचनात्। दशमीयुक्ताया ग्रहणे दोषमाह स्मृतिः-एकादशी-दशाविद्धा गान्धार्या समुपोषिता। तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥ मात्स्ये—'विद्धाप्येकादशी कार्या परतो द्वादशी न चेत्' इति। ऋष्यश्रृङ्गः—एकादशी न लभते, सकला द्वादशी भवेत्। उपोष्या दशमीविद्धा यतिभिर्गृहिभिस्तदा॥ स्कान्दे—त्रयोदश्यां न लभ्येत द्वादशी यदि किञ्चन। उपोष्यैकादशी तत्र दशमीमिश्रितापि च॥ वैष्णवानां तु विद्धायाः सर्वथा त्याज्यत्वाद् द्वादश्यामेव उपवासः तदुक्तं गारुडे—दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः। नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्धि नैकादशीव्रतम्॥ त्र्यहस्पर्शमाह स्मृतिः—एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी। त्र्यहस्पृक्तादहोरात्रं तत्र साहस्रिकं फलम्॥

व्रताऽशक्तदशायां जीवनरक्षणार्थमुपायो यथा वायुपुराणे—नक्तं हविष्यान्नमनौदनं वा घृतं तिला क्षीरमथाम्बुपानम्। यत् पञ्चगव्यं यदि वाथ वायुः प्रसस्तमत्रोत्तरमुत्तरञ्च॥ नक्तं=दिनोपवासपूर्वकरात्रिभोजनरूपम्। अनौदनं=भक्तरहितं-(हविष्यान्नम्) एतेन रोटिका-चिपिटान्नभक्षणे दोषाभाव उक्तः। एकादशीव्रतं सूतकादिष्वपि न त्याज्यं तथा हि वायुपुराणे—एकादश्यां न भोक्तव्यं पक्षयोरुभयोरपि। सूतके मृतके चैव अन्यत्किमप्यशौचके॥ तत्र दुर्दिनयोगेनाऽपि कर्तव्यतोक्ता विष्णुधर्मोत्तरे-भृगुभानुदिनोपेता सूर्यसंक्रान्तिसंयुता। एकादशी सदोपोष्या पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी॥ तथा च भृगुभानुवासरे संक्रान्तौ च पुत्रवतां तत्र ये व्रतनिषेधं कुर्वन्ति ते भ्रान्ता इति महेशठक्कुराः प्राहुः।

तत्र कृतनित्यक्रियो व्रती गृह-पीठिकोपरि चतुर्षु कोणेषु दीपं प्रज्वाल्य ताम्रपात्रे शालग्रामं संस्थाप्य—ओं अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याऽभ्यन्तरः शुचिः । इति पठित्वा आसादितपूजोपकरणान् आत्मानं चाऽभिषिच्य पुष्पाक्षतैः—ओं गणपत्यादिपञ्चदेवताः इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यावाह्य 'ओं गणपत्यादिपञ्चदेवताभ्यो नमः' इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य सङ्कल्पं कुर्यात्—कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अस्यां रात्रौ कार्तिके मासि शुक्ले पक्षे एकादश्यां तिथौ अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सपरिवारस्य कायिकवाचिकमानसिक-जन्मजन्मान्तरिक-ज्ञाताज्ञातसकलपापक्षयपूर्वकश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलसमफलप्राप्तिपूर्वकविष्णुलोकप्राप्तिकामनया श्रीविष्णुपूजनपूर्वकतदुत्थापनं तत्कथाश्रवणं चाहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य (शालग्रामशिलाऽभावे तिलान् गृहीत्वा—ओं भगवन् श्री विष्णो इहागच्छ इह सुप्रतिष्ठितो भव इति प्रतिष्ठाप्य) पुष्पाण्यादाय आवाहनम्—ओं देवेश भक्तिसुलभ सर्वावरणसंयुत । यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरो भव ॥ **आसनम्**—ओं कार्तस्वरमयं दिव्यं नानागुणसमन्वितम् । अनेकशक्तिसंयुक्तमासनं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं पुष्पासनं भगवते श्री विष्णवे नमः । (एवं सर्वत्र ऊह्यम्) पाद्यम्—ओं यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः । तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं देवाय कल्पये ॥ **अर्घ्यम्**—ओं तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम् । तापत्रयविनिर्मुक्त्यै तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥ **आचमनीयम्**—ओं देव देव नमस्तुभ्यं पुराणपुरुषोत्तम । मयानीतमिदं तोयं गृहीत्वाचमनं कुरु ॥ **पञ्चामृतम्**—ओं पयो दधि घृतं चैव मधुशर्करयाऽन्वितम् । पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ **शुद्धोदकम्**—ओं परमानन्दबोधश्रीनिमग्ननिजमूर्तये । साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयामि प्रसीद मे ॥ मूलेन (**श्रीविष्णवे नमः इत्यनेन**) स्नानाङ्गमाचमनीयम् । **वस्त्रम्**—ओं तन्तुसन्तानसंयुक्तं कलाकौशेयकल्पितम् । पीतवस्त्रं शुभं देव कृपया परिगृह्यताम् ॥ मूलेन वस्त्राङ्गमाचमनीयम् । **यज्ञोपवीतम्**—ओं यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोक्तं सचराचरम् । यज्ञरूपाय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ॥

मूलेन यज्ञोपवीताङ्गमाचमनीयम् । चन्दनम्—ओं श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढयं सुमनोहरम् । विलेपनं सुरश्रेष्ठ प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ यवतिलाः—ओं तिला यवाः सुरश्रेष्ठ कम्बूजाश्च सुशोभनाः । मया निवेदिता भक्त्या तान् गृहाण सुरेश्वर ॥ पुष्पाणि—ओं सुगन्धीनि सुपुष्पाणि देशकालोद्भवानि च । मयानीतानि पूजार्थं प्रीत्या स्वीकुरु तानि मे ॥ पुष्पमाल्यम्—ओं नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम् । प्रयच्छामि च देवेश गृहाण परमेश्वर ॥ तुलसीपत्राणि—ओं तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम् । भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥ धूपः—ओं वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः । आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ दीपः—ओं आज्यं सद्वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया । दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह ॥ नैवेद्यं—ओं अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् । मया निवेदितं देव नैवेद्यं प्रतिगृह्य ताम् ॥ फलानि—ओं फलान्यमृतकल्पानि सुगन्धीन्यघनाशन । आनीतानि यथाशक्ति गृहाण परमेश्वर ॥ पानीयं—ओं मया निवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीलतम् । परमानन्दसम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम् ॥ ताम्बूलं—नागवल्लीदलैर्युक्तं पूगीफलसमन्वितम् । कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥

ततो भूषणार्थं द्रव्यं—ओं काञ्चनं रजतोपेतं नानारत्नसमन्वितम् । भूषणार्थं च देवेश गृहाण जगतीपते ॥ इदं भूषणार्थं द्रव्यं भगवते श्रीविष्णवे नमः ।

ततः पुष्पाञ्जलिः—ओं नमस्ते देवदेवेश नमस्ते गरुडध्वज । नमस्ते विष्णवे तुभ्यं व्रतस्य फलदायक एष ॥ पुष्पाञ्जलिः भगवते श्रीविष्णवे नमः ।

ततो गृहपीठिकासहितं भगवन्तं श्रीविष्णुं त्रिवारं बहुभिर्ब्राह्मणैः सह प्रबोधयेत् (उत्थापयेत्) । तत्रोत्थापनमन्त्राः—

वाराहपुराणे—

ओं व्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिवन्द्यमानो भवानृषिर्वन्दितवन्दनीयः ।
प्राप्ता तवेयं किल कौमुदाख्या जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ ॥ १ ॥
ओं मेघा गता निर्मलपूर्णचन्द्रः शारद्यपुष्पाणि मनोहराणि ।
अहं ददानीति च पुण्यहेतोर्जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ ॥ २ ॥
ओं उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते ।
त्वया चोत्थीयमानेन, उत्थितं भुवनत्रयम् ॥ ३ ॥

ततः पुष्पान्जलिं समर्प्य श्रीगौरीशङ्करौ सम्पूज्य (२५३ पृष्ठोक्तां) कथां शृणुयात् ।

अथ संक्षिप्तपूजनविधिः

तत्र प्रदोषे प्राङ्गणे इक्षुदण्डमयं गृहं निर्माय यथासम्भवोपचारैः विष्णुं सम्पूज्य गन्धपुष्पमालाधूपदीपताम्बूलनानाविधनैवेद्यानि वहुविधापूपादिभक्ष्याणि नानादाडिमादिफलानि कृष्णतुलसीपत्राणि तन्मञ्जरीं जातीपुष्पाणि च निवेद्य नृत्यगीतवहुविधवाद्यवासुदेवकथासूक्तस्तोत्रैश्च प्रबोधयेत् ॥

तत्रोत्थापनमन्त्राः—

ॐ व्रह्मेन्द्ररुद्रैरभिवन्द्यमानो भवानृषिर्वन्दितवन्दनीयः । इत्यादि श्लो० १–३

इत्येतैः गृहपीठिकासहितं भगवन्तं त्रिवारं बहुभिर्ब्राह्मणैः सहोत्थापयेत् । यथाशक्तिब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात् । बहवस्तु नक्तव्रतमेव कुर्वन्ति । ते तु रात्रावेव फलमूलादिकं विष्णवे निवेद्य तं भक्षयेयुः ।

अथ देवोत्थानैकादशीव्रतकथा

ब्रह्मोवाच—प्रबोधिन्याश्च माहात्म्यं पापघ्नं पुण्यवर्धनम् । मुक्तिप्रदं सुबुद्धीनां श्रृणुष्व मुनिसत्तम ॥ १ ॥ तावद्गर्जति विप्रेन्द्र गङ्गा भागीरथी क्षितौ । यावन्नायाति पापघ्नी कार्तिके हरिबोधिनी ॥ २ ॥ तावद् गर्जन्ति तीर्थानि ह्यासमुद्रं सरांसि च । यावत्प्रबोधिनी विष्णोस्थितिर्नायाति कार्त्तिकी ॥ ३ ॥ अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । एकेनैवोपवासेन प्रबोधिन्यां लभेन्नरः ॥ ४ ॥ **नारद उवाच**—एकभुक्तेन किं पुण्यं किं पुण्यं नक्तभोजने । उपवासेन किं पुण्यं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ५ ॥ **ब्रह्मोवाच**—एकभुक्तेन जन्मोत्थं नक्तेन द्विजनुर्भवम् । सप्तजन्मभवं पापमुपवासेन नश्यति ॥ ६ ॥ यद्दुर्लभं यदप्राप्यं त्रैलोक्ये न तु गोचरम् । यदप्यप्रार्थितं पुत्र ददाति हरिबोधिनी ॥ ७ ॥ मेरुमन्दरमात्राणि पापान्युग्राणि यानि तु । एकेनैवोपवासेन दहते पापहारिणी ॥ ८ ॥ पूर्वजन्मसहस्रैस्तु यद्दुष्कर्म उपार्जितम् । जागरेण प्रबोधिन्यां दहते तूलराशिवत् ॥ ९ ॥ उपवासं प्रबोधिन्यां यः करोति स्वभावतः । विधिवन्मुनिशार्दूल यथोक्तं लभते फलम् ॥ १० ॥ यथोक्तं सुकृतं यस्तु विधिवत्कुरुते नरः । स्वल्पं मुनिवरश्रेष्ठ मेरुतुल्यं भवेत्फलम् ॥ ११ ॥ विधिहीनं तु यः कुर्यात्सुकृतं मेरुमात्रकम् । अणुमात्रं न चाप्नोति फलं धर्मस्य नारद ॥ १२ ॥ सन्ध्याहीने व्रतभ्रष्टे नास्तिके वेदनिन्दके । नैतेषां तिष्ठते देहे धर्मशास्त्रविदूषके ॥ १३ ॥ परदाररते मूर्खे कृतघ्ने वन्धके तथा । धर्मो न तिष्ठते देहे एतेषामपि देहिनाम् ॥ १४ ॥ ब्राह्मणो वापि शूद्रो वा सेवते परयोषितम् । ब्राह्मणीं च विशेषेण चाण्डालसदृशावुभौ ॥ १५ ॥ सभर्तृकां वा विधवां ब्राह्मणीं ब्राह्मणो यदि । सेवते मुनिशार्दूल सान्वयो याति संक्षयम् ॥ १६ ॥ परदाराभिगमनं कुरुते यो द्विजाधमः । सन्ततिर्न भवेत्तस्य फलं जन्मार्जितं नहि ॥ १७ ॥

सुकृतं नश्यते शीघ्रं धनं नाप्नोति सन्ततिम् ॥ १८ ॥ आचारभ्रष्टदेहानां
गुरुणा सह विप्रैश्च योऽहङ्कारेण वर्तते। सुकृतं नश्यते शीघ्रं धनं नाप्नोति सन्ततिम् ॥ १९ ॥ पतितैः सह सङ्गं च तद्गृहे गमनं तथा।
वृषलीगामिनां तथा। दुर्जनं सेवमानानां धर्मस्तेषां पराङ्मुखः ॥ १९ ॥ पतितैः सह सङ्गं च तद्गृहे गमनं तथा।
ये कुर्वन्ति नृपश्रेष्ठ ते गच्छन्ति यमालये ॥ २० ॥ धर्मो नष्टो नृणां येषां स्वागतासनभोजनैः। तेषां वै नश्यते वत्स
कीर्तिरायुः प्रजास्सुखम् ॥ २१ ॥ साधूनामपमानं तु ये कुर्वन्ति नराधमाः। त्रिवर्गफलहीनास्ते दह्यन्ते नरकाग्निना
॥ २२ ॥ कृत्वाऽवमानं साधूनां ये हृष्यन्ति नराधमाः। वारयन्ति न ये मूढास्ते पश्यन्ति कुलक्षयम् ॥ २३ ॥
आचारभ्रष्टदेहस्य पिशुनस्य शठस्य च। ददतो जुह्वतो वापि गतिस्तस्य न विद्यते ॥ २४ ॥ तस्मान्न त्वाचरेत्कि-
ञ्चदशुभं लोकगर्हितम्। सदाचारवता भाव्यं यथा धर्मो न नश्यति ॥ २५ ॥ ये ध्यायन्ति मनोवृत्त्या करिष्यामः
प्रबोधिनीम्। तेषां विलीयते पापं पूर्वजन्मशतोद्भवम् ॥ २६ ॥ समतीतं भविष्यं च वर्तमानं कुलायुतम्। विष्णुलोकं
नयत्याशु प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥ २७ ॥ वसन्ति पितरो हृष्टा विष्णुलोकेऽत्यलंकृताः। विमुक्ता नारकैर्दुःखैः पूर्व-
कर्मसमुद्भवैः ॥ २८ ॥ कृत्वा तु पातकं घोरं ब्रह्महत्यादिकं नरः। कृत्वा तु जागरं विष्णोर्धौतपापो भवेन्मुने ॥ २९ ॥
दुष्प्राप्यं यत्फलं रम्यैरश्वमेधादिभिर्मखैः : प्राप्यते तत्सुखेनैव प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥ ३० ॥ आप्लुत्य सर्वतीर्थेषु
दत्त्वा गाः काञ्चनं महीम्। न तत्फलमवाप्नोति यत्कृत्वा जागरं हरेः ॥ ३१ ॥ जातः स एव सुकृती कुलं तेनैव
पावितम्। कार्तिके मुनिशार्दूल कृता येन प्रबोधिनी ॥ ३२ ॥ यथा ध्रुवं नृणां मृत्युर्धननाशस्तथा ध्रुवम्। इति
ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ कर्तव्यं वैष्णवं दिनम् ॥ ३३ ॥ यानि कानि च तीर्थानि त्रैलोक्ये सम्भवन्ति च। तानि तस्य गृहे
सम्यग् यः करोति प्रबोधिनीम् ॥ ३४ ॥ सर्वकृत्यं परित्यज्य तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः। उपोष्यैकादशी रम्या कार्तिके
हरिबोधिनी ॥ ३५ ॥ स ज्ञानी स च योगी च स तपस्वी जितेन्द्रियः। भोगो मोक्षश्च तस्यास्ति ह्युपास्ते हरि
बोधिनीम् ॥ ३६ ॥ विष्णुप्रियतरा ह्येषा धर्मसारस्य दायिनी। सकृदेनामुपोष्यैव मुक्तिभाक् च भवेन्नरः ॥ ३७ ॥

प्रबोधिनीमुपोषित्वा न गर्भे विशते नरः । सर्वधर्मान् परित्यज्य तस्मात् कुर्वीत् नारद ॥ ३८ ॥ कर्मणा मनसा वाचा पापं यत्समुपार्जितम् । तत्क्षालयति गोविन्दः प्रबोधिन्यां तु जागरे ॥ ३९ ॥ स्नानं दानं जपो होमः समुद्दिश्य जनार्दनम् । नरैर्यत्क्रियते वत्स प्रबोधिन्यां तदक्षयम् ॥ ४० ॥ येऽर्चयन्ति नरास्तस्यां भक्त्या देवं च माधवम् । समुपोष्य प्रमुच्यन्ते पापैस्ते शतजन्मभिः ॥ ४१ ॥ महाव्रतमिदं पुत्र महापापौघनाशनम् । प्रबोधवासरं विष्णोर्विधिवत्समुपोषयेत् ॥ ४२ ॥ व्रतेनानेन देवेशं परितोष्य जनार्दनम् । विराजयन्दिशः सर्वाः प्रयाति भवनं हरेः ॥ ४३ ॥ कर्तव्यैषा प्रयत्नेन नरैः कांतिमभीप्सुभिः । द्वादशी द्विपदां श्रेष्ठ कार्तिके तु प्रबोधिनी ॥ ४४ ॥ बाल्ये यच्चार्जितं वत्स यौवने वार्धके तथा । शतजन्मकृतं पापं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥ ४५ ॥ शुष्कमार्द्रं मुनिश्रेष्ठ स्वगुह्यमपि नारद । तत्क्षालयति गोविन्दमस्यामभ्यर्च्य भक्तितः ॥ ४६ ॥ धनधान्यवहा पुण्या सर्वपापहरा परा । तामुपोष्य हरेर्भक्त्या दुर्लभं न भवेत्क्वचित् ॥ ४७ ॥ चन्द्रसूर्योपरागे च यत्फलं परिकीर्तितम् । तत्सहस्रगुणं प्रोक्तं प्रबोधिन्यां तु जागरात् ॥ ४८ ॥ स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायोऽभ्यर्चनं हरेः । तत्सर्वं कोटितुल्यं तु प्रबोधिन्यां तु यत्कृतम् ॥४९॥ जन्मप्रभृति यत्पुण्यं नरेणाभ्यर्जितं भवेत् । वृथा भवति तत्सर्वमकृत्वा कार्तिकव्रतम् ॥ ५० ॥ अकृत्वा नियमं विष्णोः कार्तिकं यः क्षिपेन्नरः । जन्मार्जितस्य पुण्यस्य फलं नाप्नोति नारद ॥ ५१ ॥ तस्मात्त्वया प्रयत्नेन देवदेवो जनार्दनः । उपासनीयो विप्रेन्द्र सर्वकामफलप्रदः ॥ ५२ ॥ परान्नं वर्जयेद्यस्तु कार्तिके विष्णुतत्परः । परान्नवर्जनाद्वत्स चान्द्रायणफलं लभेत् ॥ ५३ ॥ न तथा तुष्यते यज्ञैर्न दानैर्वा गजादिभिः । यथाशास्त्रकथालापैः कार्तिके मधुसूदनः ॥ ५४ ॥ ये कुर्वन्ति कथां विष्णोर्ये शृण्वन्ति समाहिताः । श्लोकं वा श्लोकपादं वा कार्तिके गोशतं फलम् ॥ ५५ ॥ सर्वधर्मान् परित्यज्य ममाग्रे कार्तिके नरैः । शास्त्रावधारणं कार्यं श्रोतव्यं च सदा मुने ॥ ५६ ॥ श्रेयसां लोभबुद्ध्या वा यः करोति हरेः कथाम् । कार्तिके

मुनिशार्दूल कुलानां तारयेच्छतम् ॥ ५७ ॥ नित्यं शास्त्रविनोदेन कार्तिकं यः क्षिपेन्नरः । निर्दहेत्सर्वपापानि यज्ञायुतफलं लभेत् ॥ ५८ ॥ नियमेन नरो यस्तु श्रृणुते वैष्णवीं कथाम् । कार्तिके तु विशेषेण गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ५९ ॥ प्रबोधवासरे विष्णोः कुरुते यो हरेः कथाम् । सप्तद्वीपवतीदाने तत्फलं लभते मुने ॥ ६० ॥ श्रुत्वा विष्णुकथां दिव्यां येऽर्चयन्ति कथाविदम् । स्वशक्त्या मुनिशार्दूलं तेषां लोकाः सनातनाः ॥ ६१ ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा नारदः पुनरब्रवीत् । नारद उवाच—विधानं ब्रूहि मे स्वामिन्नेकादश्याः सुरोत्तम ॥६२॥ चीर्णेन येन भगवन् यादृशं फलमाप्नुयात् । नारदस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ६३ ॥ ब्रह्मोवाच—ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय ह्येकादश्यां द्विजोत्तम । स्नानं चैव प्रकर्त्तव्यं दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ६४ ॥ नद्यां तडागे कूपे वा वाप्यां गेहे तथैव च । केशवञ्चैव संपूज्य कथायाः श्रवणं तथा ॥ ६५ ॥ नियमार्थे महाभाग इमं मंत्रमुदीरयेत् । एकादश्यां निराहारः स्थित्वाऽहनि पदे ह्यहम् ॥ ६६ ॥ भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत । अमुं मन्त्रं समुच्चार्य देवदेवस्य चक्रिणः ॥ ६७ ॥ भक्तिभावेन तुष्टात्मा ह्युपवासं समर्पयेत् । रात्रौ जागरणं कार्यं देवदेवस्य सन्निधौ ॥ ६८ ॥ गीतं नृत्यं च वाद्यं च तथा कृष्णकथां मुने । यः करोति स पुण्यात्मा त्रैलोक्योपरि संस्थितः ॥ ६९ ॥ बहुपुष्पैर्बहुफलैः कर्पूरागुरुकुङ्कुमैः हरेः पूजा विधातव्या कार्तिक्यां वोधवासरे ॥ ७० ॥ वित्तशाठ्यं न कर्त्तव्यं संप्राप्ते हरिवासरे । यस्मात्पुण्यमसंख्यातं प्राप्यते मुनिसत्तम ॥ ७१ ॥ फलैर्नानाविधैर्दिव्यैः प्रबोधिन्यां तु जागरे । शङ्खे तोयं समादाय ह्यर्घो देयो जनार्दने ॥ ७२ ॥ यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वदानेषु यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं दत्त्वार्घं बोधवासरे ॥ ७३ ॥ अगस्त्यकुसुमैर्दिव्यैः पूजयेद्यो जनार्दनम् । देवेन्द्रोऽपि मुनिश्रेष्ठ करोति करसंपुटम् ॥ ७४ ॥ न तत्करोति विप्रेन्द्र तपसा तोषितो हरिः । यत्करोति हृषीकेशो मुनिपुष्पैरलंकृतः ॥ ७५ ॥ विल्वपत्रैश्च ये कृष्णं कार्तिके कलिवर्धन । पूजयन्ति महाभक्त्या मुक्तिस्तेषां मयोदिता ॥ ७६ ॥ तुलसीदलपुष्पैश्च पूजयन्ति जनार्दनम् । कार्तिके सकलं वत्स पापं जन्मायुतं दहेत् ॥ ७७ ॥

दृष्टा स्पृष्टाऽथवा ध्याता कीर्तिता नमिता स्तुता। रोपिता सेचिता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा ॥ ७८ ॥ नवधा तुलसीर्भक्ति ये कुर्वन्ति दिने दिने। युगकोटिसहस्राणि ते वसन्ति हरेर्गृहे ॥ ७९ ॥ रोपिता तुलसी यावत्कुरुते मूलविस्तरम्। तावद्युगसहस्राणि तनोति सुकृतं मुने ॥ ८० ॥ यावच्छाखाप्रशाखाभिर्बीजपुष्पदलैर्मुने। रोपिता तुलसी पुंभिर्वर्धते वसुधातले ॥ ८१ ॥ कुले तेषां तु ये जाता ये भविष्यन्ति ये गताः। आकल्पयुगसाहस्रं तेषां वासो हरेर्गृहे ॥ ८२ ॥ कदम्बकुसुमैर्देवं येऽर्चयन्ति जनार्दनम्। तेषां यमालयो नैव प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ ८३ ॥ दृष्ट्वा कदम्बकुसुमं प्रीतो भवति केशवः। किं पुनः पूजितो विप्र सर्वकामप्रदो हरिः ॥ ८४ ॥ यः पुनः पाटलापुष्पैः कार्तिके गरुडध्वजम्। अर्चयेत्परया भक्त्या मुक्तिभागी भवेद्धि सः ॥ ८५ ॥ बकुलाशोककुसुमैर्येऽर्चयन्ति जगत्पतिम्। विशोकास्ते भविष्यन्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ८६ ॥ येऽर्चयन्ति जगन्नाथं करवीरैः सितासितैः। चतुर्युगानि विप्रेन्द्र प्रीतो भवति केशवः ॥ ८७ ॥ मञ्जरीं सहकारस्य केशवोपरि ये नराः। यच्छन्ति ते महाभागा गोकोटिफलभागिनः ॥ ८८ ॥ दूर्वांकुरं हरेर्यस्तु पूजाकाले प्रयच्छति। पूजाफलं शतगुणं सम्यगाप्नोति मानवः ॥ ८९ ॥ शमीपत्रैस्तु ये देवं पूजयन्ति सुखप्रदम्। यममार्गो महाघोरो निस्तीर्णस्तैस्तु नारद ॥ ९० ॥ वर्षाकाले तु देवेशं कुसुमैश्चम्पकोद्भवैः। येऽर्चयन्ति न ते मर्त्याः संसरेयुः पुनर्भवे ॥ ९१ ॥ कुम्भीपुष्पं तु विप्रर्षे ये यच्छन्ति जनार्दने। सुवर्णपलमात्रं ते लभन्ते वै फलं मुने ॥ ९२ ॥ सुवर्णकेतकीपुष्पं यो ददाति जनार्दने। कोटिजन्मार्जितं पापं दहते गरुडध्वजः ॥ ९३ ॥ कुङ्कुमारुणवर्णां च गन्धाढ्यां शतपत्रिकाम्। यो ददाति जगन्नाथे श्वेतद्वीपालये वसेत् ॥ ९४ ॥ एवं सम्पूज्य रात्रौ च केशवं भुक्तिमुक्तिदम्। प्रातरुत्थाय च ब्रह्मन् गत्वा तु सजलां नदीम् ॥ ९५ ॥ तत्र स्नात्वा जपित्वा च कृत्वा पौर्वाह्णिकीः क्रियाः। गृहे गत्वा च सम्पूज्यः केशवो विधिवन्नरैः ॥ ९६ ॥ व्रतस्य पूरणार्थाय ब्राह्मणान् भोजयेत्सुधीः। क्षमापयेच्च शिरसा भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ९७ ॥ गुरुपूजा ततः कार्या भोजनाच्छादना

दिभिः । दक्षिणा तैश्च दातव्या तुष्ट्यर्थं चक्रपाणिनः ॥ ९८ ॥ भूयसी चैव दातव्या ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः । नियमश्चैव सन्त्याज्यो ब्राह्मणाग्रे प्रयत्नतः ॥ ९९ ॥ कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद्दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् । नक्तभोजी नरो राजन् ब्राह्मणान् भोजयेच्छुभान् ॥ १०० ॥ अयाचिते बलीवर्दं सहिरण्यं प्रदापयेत् । अमांसाशी नरो यस्तु प्रददेद्गां सदक्षिणाम् ॥ १०१ ॥ धात्रीस्नायी नरो दद्याद्दधिमाक्षिकमेव च । फलानां नियमे राजन् फलदानं समाचरेत् ॥ १०२ ॥ तैलस्थाने घृतं देयं घृतस्थाने पयः स्मृतम् । धान्यानां नियमे राजन् दीयन्ते शालितण्डुलाः ॥ १०३ ॥ दद्याद्भूशयने शय्यां सतूलां सपरिच्छदाम्-। पत्रभोजी नरो राजन् भाजनं घृतसंयुतम् ॥ १०४ ॥ मौने घण्टां तिलाश्चैव सहिरण्यं प्रदापयेत् दम्पत्योर्भोजनं देयं निःस्नेहं सर्पिषा युतम् ॥ १०५ ॥ धारणेन स्वकेशानामादर्शं दापयेद् बुधः । उपानहौ प्रदातव्ये उपानत्परिवर्जनात् ॥ १०६ ॥ लवणस्य च संत्यागे शर्करां च प्रदापयेत् । नित्यं दीपः प्रदेयस्तु विष्णोर्वा विबुधालये ॥ १०७ ॥ सदीपं सघृतं ताम्रं कांचनं वा दशायुतम् । प्रदद्याद्विष्णुभक्ताय संपूर्णव्रतहेतवे ॥ १०८ ॥ एकांतरोपवासे तु कुम्भानष्टौ प्रदापयेत् । सवस्त्रान् कांचनोपेतान्सर्वान् सालंकृताच्छुभान् ॥ १०९ ॥ सर्वेषामप्यलाभे तु यथोक्तकरणं विना । द्विजवाक्यं स्मृतं राजन्संपूर्णव्रतसिद्धिदम् ॥ ११० ॥ नत्वा विसर्जयेद्विप्रांस्ततो भुञ्जीत च स्वयम् । यत्त्यक्तं चतुरो मासान्समाप्ति तस्य चाचरेत् ॥ १११ ॥ एवं य आचरेत्प्राज्ञः सोऽनन्तफलमाप्नुयात् । अवसाने राजेन्द्र वासुदेवपुरं व्रजेत् ॥ ११२ ॥ यश्चाविघ्नं समाप्यैवं चातुर्मास्यव्रतं नृप । स भवेत् कृतकृत्यस्तु न पुनर्मानुषो भवेत् ॥ ११३ ॥ एतत्कृत्वा महीपाल परिपूर्णं व्रतं तभवेत् । व्रतवैकल्यमासाद्य ह्यंधः कुष्ठी प्रजायते ॥ ११४ ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया । पठनाच्छ्रवणाद्वापि लभेद् गोदानजं फलम् ॥ ११५ ॥

इति श्रीस्कंदपुराणे कार्तिकशुक्लैकादशीप्रबोधिनीव्रतकथा समाप्ता ।

अथ विसर्जनम्

तत्र प्रथममार्तिकम्—ओं चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च। त्वमेव सर्वज्योतींषि आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदमार्तिकं सर्वेभ्यो पूजितदेवेभ्यो नमः। **ततः प्रदक्षिणा**—ओं यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च। तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण ! पदे पदे ॥ इति वारचतुष्टयं प्रदक्षिणीकृत्य प्रार्थयेदनेन—ओं विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम्। पूर्णं भवतु तत्सर्वं त्वत्प्रसादान् महेश्वर ॥ रूपं देहि यशो देहि भाग्यं केशव देहि मे। धर्मान् देहि धनं देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥ इति सम्प्रार्थ्य विसर्जयेत्—यों यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्। इष्टकामप्रसिध्यर्थं पुनरागमनाय च। ओं गणपत्यादिपञ्चदेवताः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत। ओं भगवन् श्री विष्णो पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व (शालग्रामशिलाऽभावे 'स्वस्थानं गच्छ' इत्यप्यूह्यम्) ओं गौरीशङ्करौ पूजितौ स्थः क्षमेथायां स्वस्थानं गच्छतम्। सर्वान्ते 'ओं ब्रह्मणे नमः' इति ब्रह्मपूजनम्।

ततः कर्मदक्षिणा—कुशत्रयतिलजलान्यादाय—

ओं अस्यां रात्रौ कृतैतत्श्रीविष्णुपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थम् एतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। ॐ स्वस्तीति प्रतिवचनम्।

ततः रात्रौ नृत्यगीतवाद्यादिभिर्जागरणं कुर्यात्। प्रातः कृतनित्यक्रियो भूत्वा यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयित्वा तुलसीदलेन पारणां कुर्यात्। ये तु नक्तव्रतमेव कुर्वन्ति ते रात्रावेव फलमूलादिकं विष्णवे निवेद्य तद्भक्षयेयुः।

इति देवोत्थानैकादशीव्रतपूजाविधिः।

अथ भीष्मपञ्चक (वकपञ्चक) व्रतविधिः

कार्तिकशुक्लैकादश्यां भीष्मपञ्चकव्रतारम्भ उक्तो नारदेन—अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम्। कार्तिकस्यामले पक्षे स्नात्वा सम्यक् ततो व्रती ॥ एकादश्यां तु गृह्णीयाद् व्रतं पञ्चदिनात्मकम् ॥ अत्रैकादशीप्रभृतिदिनपञ्चकमपि मांसपरित्यागः(१) कर्तव्यः। ब्रह्मपुराणे—तद्दिनपञ्चकमधिकृत्य देया च सर्वभूतेम्यो नरैरभयदक्षिणा ॥ (अहिंसारूपैषाऽभयदक्षिणा)। वकैरप्यत्र मांसपरित्यागाद्वकपञ्चकमिति प्रसिद्धम्। अस्मिन् सकले पक्षे मांसपरित्यागः शस्तः। तथाहि महाभारते—कौमुदे तु विशेषेण शुक्लपक्षे नराधिप। वर्जयेत् सर्वमांसानि धर्मो ह्यत्र विधीयते ॥ सकलकार्तिके मांसभक्षणे चाण्डालयोनिजन्मफलम्। अतः यथासम्भवं वकपञ्चकं तु अवश्यमेव न भोक्तव्यम्। तत्र कृतनित्यक्रियः कुशादिकमादाय—ॐ अद्य कार्तिके मासि शुक्ले पक्षे एकादश्यां तिथौ अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणो लोकपृथिव्यवस्थानपर्यन्तं विष्णुभक्तत्वपरमकामो वकपञ्चकव्रतमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य मौनी दृढव्रतः सन् प्रथमेऽह्नि कमलैर्हरेः पादौ सम्पूज्य गोमयं प्राश्य, द्वितीयेऽह्नि बिल्वपत्रैर्जानुनी सम्पूज्य गोमूत्रं प्राश्य, त्रितयेऽह्नि भृङ्गराजेन नाभिं सम्पूज्य क्षीरं प्राश्य, चतुर्थेऽह्नि करवीरैः स्कन्धं सम्पूज्य दधि प्राश्य, पञ्चमेऽह्नि लौहमयीं पापप्रतिमां शङ्खचक्रहस्तां कृष्णवस्त्रवेष्टितां प्रस्थमिततिलोपरि स्थितां कृत्वा धर्मराजनामभिः करवीरैः सम्पूज्य पुष्पाण्यादाय—ॐ ओं यदन्यजन्मनि कृतमिह जन्मनि वा पुनः। तत्सर्वं प्रशमं यातु मत्पापं तव पूजनात् ॥ इत्यनेन पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा विसृजेत्। ततः द्विजान् सन्तोष्य तेभ्यः प्रतिमां दद्यात्।

इति भीष्मपञ्चकविधिः

---

(१) 'सर्वमांसमयो मीनः'। नान्दीपुराणे—यो नरः कार्तिके मासे मांसन्तु परिवर्जयेत्। संवत्सरस्य लभते फलं मांसविवर्जनाद् ॥ न मत्स्यं भक्षयेन् मासं न कौर्मं नान्यदेव हि। चाण्डालो जायते राजन् कार्तिके मांसभक्षणात् ॥

अथ हरिवासरयोगः

आ-भा-का-सितपक्षे तु मैत्रश्रवणरेवती। द्वादशी बुधवारे तु हरेर्वासर उच्यते॥ तथा च आषाढ़शुक्लद्वादशी बुधवाराऽनुराधायुक्ता, भाद्रशुक्लद्वादशी बुधश्रवणयुक्ता, कार्तिकशुक्लद्वादशी बुधरेवतीयुक्ता हरिवासर इत्यर्थः पर्यवसितः। हरिशयनादौ फलादिभक्षणे दोषमाह भगवान्–'मच्छयने मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्तने। कन्दमूलफलाहारी हृदि शूलं ममार्पति॥'(१)

रोगादिना उभयदिने व्रतकरणाशक्तश्चेद् एकादश्यां फलाहारं कृत्वा द्वादश्यामुपोष्य सम्पूर्णं व्रतफलं लभेत्। तथाहि तिथिचिन्तामणौ वाराह-वामनोभयपुराणोद्धृतवचनम्—एकादश्यां नरो भुक्त्वा द्वादश्यां समुपोषणात्। व्रतद्वयकृतं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यशंसयम्॥' भविष्येऽपि—"उपवासद्वयं कर्तुं न शक्नोति नरो यदि। प्रथमेऽह्नि फलाहारो निराहारोऽहपरेऽनि॥" इति।

अथ कार्तिकपूर्णिमायामुमापूजा

कार्तिके(२) पौर्णमास्यां तु सोपवासोऽर्चयेदुमाम्। अग्निष्टोमफलं विन्देत् सूर्यलोकं च गच्छति॥ तत्र चतु-

---

(१) कार्तिकशुक्लद्वादश्यां चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिः। तथा हि भारते—चतुर्धागृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यं व्रतं नरः। कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत्॥ कार्तिकशुक्लचतुर्दशी वैकुण्ठचतुर्दशी। तथाहि भविष्ये—कार्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप। सोपवासस्तु सम्पूज्य हरिं रात्रौ जितेन्द्रियः॥

(२) कार्तिकपौर्णमास्यां मत्स्यावतार उक्तः पाद्मे—वरान् दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूपोऽभवत्ततः। तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षयफलं स्मृतम्॥

दश्यामुपवासं कृत्वा पूर्णिमायां कृतनित्यक्रियो भूत्वा कुशत्रयादिकमादाय—ओमद्य कार्तिके मासि शुक्ले पक्षे पौर्णमास्यां तिथौ अमुकगोत्रोऽमुकशर्मा अग्निष्टोमफलसमफलप्राप्तिपूर्वकसूर्यलोकगतिकाम उमापूजनमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य ओं उमे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ओं उमायै नमः। इति पञ्चोपचारैः सम्पूजयेत्। अस्यां तिथौ सूर्यपूजा च अधिकफला। स्नानदानादि च प्रशस्तम्।

अथ कार्तिकपूर्णिमायां कौशिकीस्नानविधिः

कार्तिकपूर्णिमायां कौशिकीस्नाने फलमाह रामायणे—कृत्तिकाऋक्षसंयुक्ता राका या कार्तिके भवेत्। कोकामुखे तु कौशिक्यां स्नात्वा स्वर्गे वसेन्नरः॥ तत्र सङ्कल्पः—ओमद्य कार्तिके मासि शुक्ले पक्षे पूर्णिमायां तिथावमुकगोत्रस्य मम-श्री-अमुकशर्मणः कायिकवाचिकमानसिकजन्मान्तरीयसकलपापक्षयपूर्वकश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणोक्तफलसमफलप्राप्तये कौशिकीस्नानमहं करिष्ये। ततो वारमेकं स्नात्वाऽमुं मन्त्रं पठेद्—ओं गाधिराजसुते देवि विश्वामित्रमुनेः स्वसः। ऋचीकभार्ये सत्तोये पापं मे हर कौशिकि॥ इति।

अथ सामापूजाविधिः

कार्तिकशुक्लपक्षे शुभर्क्षयोगे पञ्चम्यादिशुभतिथौ तृणमयं वृन्दावनं निर्माय सप्तर्षीणां च प्रतिमां मृन्मयी निर्माय सामाया मूर्ति चक्रवाकमूर्ति चूडक (चूगला) मूर्तिञ्च मृण्मयीं विधाय पूजोपकरणमासाद्य जीवितभर्तृका गौरीपूजनं विधवा चेत् पञ्चदेवतापूजनं कृत्वा सङ्कल्पं कुर्यात्। तद्यथा, कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽस्यां रात्रौ कार्तिके मासि शुक्ले पक्षेऽमुकतिथावमुकगोत्राया मम श्री-अमुकीदेव्याः जन्मजन्मान्तरार्जितसकलपापक्षयपूर्वकसप्तजन्मावच्छिन्नभ्रातृचिरजीवित्वसौभाग्याऽवैधव्यपुत्रपौत्राद्यखिलैश्वर्यप्राप्तिपूर्वकविष्णुलोकप्राप्तिकामनया श्रीसामापूजनं

तत्कथाश्रवणञ्चाहं करिष्ये। ततः'ॐ आँ ह्रीं क्रौं हं सः' इति मन्त्रेण प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा पूजामारभेत। तद्यथा—अक्षतान्यादाय नमः सप्तर्पय इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यावाह्य पञ्चोपचारैः पूजयेत्। एवमेव वृन्दावनपूजनम्, चक्रवाकपूजनम्, सामापूजनञ्च विधाय पृथुकदधिचिपटान्नमिष्टान्नादीनि च निवेद्य दीपं प्रज्वाल्य चूडकमुखमग्निना सन्दह्य महोत्सवं कृत्वा क्षेत्रे क्षेत्रे भ्रामयेत्। कथाश्रवणञ्च कुर्यात्।

एवमेव कार्तिकपूर्णिमां यावत् प्रतिरात्रि पूजनं कृत्वा पूर्णिमायां महता समारोहेण पूजनादिकं कृत्वा पूजनक्रमेण विसर्जयेत्। तथा भ्रातॄन् भोजयित्वा स्वयं भुञ्जीत। इयं पूर्णिमा निशाव्यापिनी ग्राह्येति।

अथ सामाव्रतकथा

ऋषय ऊचुः—आख्यातं भवता सूत इतिहासं पुरातनम्। विचित्रञ्च कथायोगं त्वन्मुखाद्गलितं श्रुतम् ॥ १ ॥ न कदापि श्रुतं सूत सामायाश्चरितं मुने। सर्वं कथय मे सूत त्वदृतेऽन्यो न संशयः ॥ २ ॥ का सामा भुवि विख्याता कस्य पुत्री स्वसा तथा। का माताऽस्याः कथञ्जाता भूतले किं फलं मुने ॥ ३ ॥ पूजनेन तु तस्या वै कीदृशञ्च विधानकम्। तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कृपया कथयस्व मे ॥ ४ ॥ सूत उवाच—शृणुध्वं मुनयः सर्वे सामाचरितमद्भुतम्। यत्कथाश्रवणादेव ससौभाग्याः स्त्रियोऽभवन् ॥५॥ यस्याः पूजनमात्रेण कृतकृत्याः स्त्रियस्तथा। द्वारकायाञ्च कृष्णस्य पुत्री सामातिसुन्दरी ॥ ६ ॥ साम्बस्य भगिनी सामा माता जाम्ववती शुभा। सामा सर्वसौभाग्या रूपौदार्यगुणान्विता ॥ ७ ॥ मोहयित्वा सखीस्सर्वा मुदं लेभे दिने दिने। मुनीनामाश्रमङ्गत्वा क्रीडिता मुनिभिस्सह ॥ ८ ॥ प्रभाते पुनरायाति पितुर्गेहमनिन्दिता। एकदा दैवयोगेन केनचित्पथि वीक्षिता ॥ ९ ॥ चूडकाख्येन शूद्रेण, वृन्दावनसमीपके। न्यवेदयत्स कृष्णाय सामायास्तद्व्यतिक्रमम् ॥ १० ॥ तच्छ्रुत्वा कुपितः कृष्णः शापन्तस्यै प्रदत्तवान्।

श्रीकृष्ण उवाच—स्वर्गतुल्यं गृहन्त्यक्त्वा मुनौ जाता महावने ॥ ११ ॥ तस्माद् भूमण्डले सामे! शकुनित्वं वनेचर। स्वकर्मजफलाच्छापान्ममेदं ते भविष्यति ॥ १२ ॥ इति कृष्णेन संशप्ता सामाऽभूत्क्षितिपक्षिणी। तदा क्रोधपराधीना चूडकं सा शशाप ह ॥ १३ ॥ मयि मिथ्याभिशापो हि येनास्येन कृतस्त्वया। स्त्रियो धरायास्त्वद्वक्त्रं वह्निना दाहयन्तु ताः ॥ १४ ॥ इत्युक्त्वा सा जगामाशु नाम्ना वृन्दावनं वनम्। सा चचारातिदुःखेन सर्वभोगविवर्जिता ॥ १५ ॥ अथ तस्याः पतिः श्रीमांश्चारुवक्त्रोऽतिपीडितः। भार्यावियोगमसहन् तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ १६ ॥ एवं बहुतिथे काले प्रसन्नोभून्महेश्वरः। उवाच वचनं प्रीत्या तत्ते दास्ये न संशयः ॥ १७ ॥ वरं वरय भो वत्स चारुवक्त्र मनीषितम्। **चारुवक्त्र उवाच**—प्रसन्नोऽसि यदा देव भार्या मे शापदोषतः ॥ १८ ॥ शकुनीरूपमास्थाय वने चरति निर्भया। तस्या वियोगतो भूमौ नाऽहं जीवितुमुत्सहे ॥ १९ ॥ अतः सहचरीधर्मा यथा मे भवति प्रभो। ममापि च शरीरं त्वं शाकुनं कुरु वै तथा ॥ २० ॥ इत्थमभ्यर्थितस्तेन भूतभर्ता महेश्वरः। ओमित्युवाच कृपया तत्तथैव भवेत्तदा ॥ २१ ॥ चक्रवाक इति ख्यातः प्रियया सहितो वने। स चचार नदीतीरे गिरिकन्दरसानुषु ॥ २२ ॥ **सूत उवाच**—स्वसृशापन्तु संश्रुत्वा साम्बो व्यथितमानसः। भामस्यापि तथावृत्तं व्यग्राद् व्यग्रतरोऽभवत् ॥ २३ ॥ चित्तेऽपि चिन्तां सम्प्राप्य भक्त्या विष्णुमपूजयत्। विष्णोर्नामसहस्रेण नित्यं स्तौति समाहितः ॥ २४ ॥ ततः प्रसन्नो भगवान् शङ्खचक्रगदाधरः। उवाच प्रणतं दृष्ट्वा साम्बं स्वतनयन्तथा ॥ २५ ॥ **भगवानुवाच**—तवार्चनेन भो वत्स परितुष्टोऽस्मि साम्प्रतम्। वरं वरय दास्यामि सत्यमेव न संशयः ॥ २६ ॥ **साम्ब उवाच**—एका एव स्वसाऽस्माकं सापि शापाच्छकुन्तिका। भामोऽपीह शकुन्तोऽभूदीहे सुखमहन्तयोः ॥ २७ ॥ मानुष्यञ्च तयोर्येन भवेद्देव तथा कुरु। **भगवानुवाच**—साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु त्वं मद्वचः परम् ॥ २८ ॥ यथा विमुक्ता शापात्तु भगिनी ते भविष्यति। ऊर्जो विणुप्रियो मासः सर्वपापप्रणाशनः ॥ २९ ॥ तत्र कृत्यं प्रवक्ष्यामि येन शापात्प्रमुच्यते। कार्तिकस्य

सिते पक्षे प्रथमेऽह्नि या तिथिः ॥ ३० ॥ तस्यां प्रमुदिता नार्यो ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे । क्षौमचित्रांशुकास्ता वै सभामस्य तवापि च ॥ ३१ ॥ चूडकस्यापि प्रतिमां तथा वृन्दावनस्य च । सप्तर्षीणान्तथा कृत्वा नानावर्णैर्विचित्रिताम् ॥ ३२ ॥ तत्सर्वं वंशपात्रे तु कृत्वा कृत्वा तु मस्तके । दीपञ्च विधिवत्स्थाप्य रात्रौ गानपुरःसराः ॥ ३३ ॥ नानाऽलङ्काररुचिराः कुर्वन्त्यस्तु महोत्सवम् । चिपटान्नं दधिसंयुक्तं प्रतिमां भोजयन्ति च ॥ ३४ ॥ दग्धं कुर्वन्तु परितश्चूडकाख्यं पुरस्त्रियः । क्षेत्रे क्षेत्रे तथा नार्यः कृतकौतुकमङ्गलाः ॥ ३५ ॥ दिने दिने तथा कुर्याद्यावत्पञ्चदशी भवेत् । राकायां निशिके प्राप्ते विनिधाय गृहं व्रजेत् ॥ २६ ॥ ततः पक्वान्नमिष्टान्नैर्भ्रातरं तोषयेत्स्वकम् । अनेनैव विधानेन सामापूजां यदा क्षितौ ॥ ३७ ॥ करिष्यन्ति प्रयत्नेन तदा तच्छापदोषतः । भविष्यति विमुक्ता ते स्वसा यादवनन्दन ॥ ३८ ॥ स्वसारश्चार्चयिष्यन्ति विधानेन तवानघ ! । न ता वैधव्यपदवीङ्गमिष्यन्ति कदाचन ॥ ३९ ॥ भर्तुर्वियोगं नाप्नोति सुभगा च भविष्यति । पुत्रपौत्रयुता नारी भ्रातृणां जीवनप्रदा ॥ ५० ॥ भविष्यति न सन्देहः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते । सूत उव.च—इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः साम्बोऽपि स्वपुरङ्गतः ॥ ४१ ॥ तत्र वै कारयामास सामापूजां विधानतः । पश्चादाज्ञापयामास राज्यस्थान् प्रमदाजनान् ॥ ४२ ॥ स्वसारन्नार्चयिष्यन्ति या ममैतत्पुरस्थिताः । मम राज्याद्बहिर्यान्तु चातुर्वर्ण्यस्य योषितः ॥ ४३ ॥ इत्याकर्ण्यं च राज्यस्था वनिताः परया भिया । पूजां प्रचक्रुः संहृष्टाः जातकौतूहलाश्च ताः ॥ ४४ ॥ तेन पुण्येन सा सामा स्वरूपं प्राप दुर्लभम् । स्वरूपञ्च यदा प्राप्ता तदा सा विस्मिताऽभवत् ॥ ४५ ॥ कथं जात्यन्तरं गत्वा पुनः प्राप्ता स्वकान्तनुम् । इति विस्मितचित्ता सा सखीजनमपृच्छत ॥ ४६ ॥ **सामोवाच**—कथं प्राप्तं स्वकं देहं सख्यो वदत कारणम् । कृतं येन प्रियं मेऽद्य तस्मै दास्यामि जीवनम् ॥ ४७ ॥ **सख्युवाच**—न पिता न च ते माता न भर्ता न च बान्धवाः । एक एव च ते भ्राता न द्वितीय जगत्त्रये ॥ ४८ ॥ भ्राता भवत्याः स्नेहेन साम्बस्सखि न चापरः । सख्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सामा मोहवशं गता ॥ ४९ ॥

उवाच गद्गदं वाक्यं सखीजनमनिन्दिता । धन्याऽहं कृतकृत्याहं यस्या भ्राता ममेदृशः ॥ ५० ॥ यत्प्रसादादहं मुक्ता स भ्राता मम जीवतु । नास्ति भ्रातृसमो बन्धुर्नास्ति भ्रातृसमं सुखम् ॥ ५१ ॥ धन्यास्ताः कृतकृत्याश्च यासां भ्राता सहोदरः । एवं बहुविधं वाक्यं कारणन्निजगाद सा ॥ ५२ ॥ भर्त्रा भ्रात्रा पितृव्यैश्च मिलिता सुखमाप सा । इत्येतत्कथितं विप्राः सामायाश्चरितं मया ॥ ५३ ॥ मिथ्याभिशापान्निर्मुक्ता यथा जाम्बवतीसुता । तदारभ्य मुनिश्रेष्ठाः ! सामा ख्याता महीतले ॥ ५४ ॥ श्रुत्वा त्विदमुपाख्यानं कारुण्याद्विजिताः स्त्रियः । भ्रातृ-सुखप्रजननं पुत्रसौभाग्यदायकम् ॥ ५५ ॥ वर्षे वर्षे तु या नारी न करोति महोत्सवम् । पुत्रपौत्रविनिर्मुक्ता भर्तृहीना च जीवति ॥ ५६ ॥ इति गदितमशेषं कृष्णवक्त्राभिशापं पुनरपि परिहारं पूजनस्य प्रभावम् । पठति यदि स भक्त्या भामिनी वा शृणोति विविधसुखसमेता वल्लभा स्यात् ॥ ५७ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे सूतशौनकसंवादे सामापूजाव्रतकथा समाप्ता ।

इति कार्तिककृत्यम् ।

अथ मार्गकृत्यम्

अथ नवान्नभक्षणनिर्णयः

अकृताग्रायणश्चैव धान्यजातं द्विजोत्तम। राजमाषानणुंश्चैव मसूरांश्च विवर्जयेत् ॥
तथा—देवताभ्यो द्विजायाथ दत्त्वाऽन्नं प्राशयेन्नवम्।

नवान्ने विहितसमयाः—

वृश्चिके पूर्वभागे तु नवान्नं शस्यते बुधैः। अपरे क्रियमाणे तु धनुष्येव कृतं भवेत् ॥
धनुषि यच्च कृतं श्राद्धं मृगनेत्रासु रात्रिषु। पितरस्तन्न गृह्णन्ति नवान्नामिषकाङ्क्षिणः (१) ॥ इति।

अथ रविव्रतारम्भनिर्णयः

वृश्चिकार्के सितेऽर्केऽह्नि रविव्रतमथारभेत्। मेषस्थेऽर्के सिते पक्षे तद्व्रतं च समापयेत् ॥
सूर्याब्जाहस्करे—मार्गे मासि तथा माघे वैशाखाषाढयोरपि। शुक्लपक्षे व्रतं कुर्यात् सम्यग्देवस्य भास्वतः ॥
स्मृतिः—आदौ वृश्चिकमेषान्ते रविवारो यदा भवेत्। तदा रविव्रतारम्भविसर्गौ शास्त्रसम्मतौ ॥

---

(१) द्वैतनिर्णये—कृष्णपक्षे नवान्नन्तु न कुर्यान्मानवो यतः। पितरस्तन्न गृह्णन्ति दाता तु नरकं व्रजेत् ॥ चैत्रे पौषे कृष्णपक्षे नवान्नं नाचरेद् बुधः। भवेज्जन्मान्तरे रोगी पितृणां नोपतिष्ठति ॥

साम्बपुराणे—अलिमेषगते भानौ भगवत्यर्कवासरे । शुक्लपक्षं स विधिवद् व्रतं साम्ब ! समाचरेत् ॥
धनुर्वृषगते भानौ यः कुर्यात् सवितुर्व्रतम् । सप्तजन्मनि कुष्ठी स्याद् दरिद्रश्चोपजायते॥
देवोत्थानात् परं ग्राह्यं व्रतं देवस्य भास्वतः । कदाचिदलि (वृश्चिक ; मेषार्के कृष्णपक्षे न कारयेत् (१) ॥
विष्णुधर्मोत्तरे—ये त्वादित्यदिनं प्राप्य नक्तं(२) कुर्वन्ति मानवाः । सप्तजन्मनि ते प्राप्य सम्भवन्त्यवियोगिनः ॥

(षोडशोपचारसूर्यपूजाविधिः परिशिष्टे द्रष्टव्यः)

---

(१) अत्र रविव्रते शुक्लपक्षस्य प्राधान्यात् कार्तिकशुक्लारम्भ एव यदा वृश्चिकसंक्रान्तिः, मार्गशुक्लरविवासरे तु वृश्चिकसंक्रान्त्यभावस्तदा देवोत्थानात् परं मार्गकृष्णपञ्चमीपर्यन्तं यदा रविवारो भवेत्तस्मिन्नहन्येव रविव्रतारम्भो विधेयः, इत्यत्रोपर्युक्तसर्वनिबन्धस्वरसः । (एवं मार्गशुक्लान्तिम एक एव रविवासरे यदा वृश्चिकसंक्रान्तिस्तदाप्येष एव नियम इति केचित् ।)

ज्यौतिषे—सूर्यव्रतं च वैशाखे मलमासो यदा भवेत् । तथा तत्रैव कर्तव्यं वृषादित्ये न कारयेत् ॥ एवं भाद्रस्य मलमासत्वे मलमास एव सिंहादित्यसम्भवात् सौरं व्रतं तत्रैव कार्यमिति सर्वनिबन्धरसः ।

(२) भविष्ये—ये त्वादित्यदिने ब्रह्मन् नक्तं कुर्वन्ति मानवाः । दिनान्ते ते तु भुञ्जीरन् निषेधो रात्रिभोजने ॥

अपरार्के—यदा तु प्राङ्मुखी छाया पुरुषाद् द्विगुणा भवेत् । तदा नक्तं विजानीयादनक्तं त्वन्यथा भवेत् ॥
रविव्रते वर्ज्याणि, पद्मपुराणे—वर्जयेच्च शिलाघृष्टं शृङ्गवेरं च शाककम् । कोरदूषकपत्रं च रम्भां छागीघृतं तथा ॥
केशकीटादिकं वर्ज्यमुष्णोदकस्नानमेव च । अल्पबीजादिकं सर्वं व्रते सूर्यस्य वर्जयेत् ॥
(शिलाघृष्टं=गोधूमादिचूर्णम् । शृङ्गवेरम्=आर्द्रकम् । कोरदूषकपत्रं=कोद्रवान्नपत्रम् । रम्भां=कदली ।)

अथ कालभैरवाष्टमीनिर्णयः

मार्गकृष्णाऽष्टमी कालभैरवाष्टमी । अत्र निशि (१) श्रीकालभैरव आविर्बभूव । अत्रोपवासः प्रधानम् । तथा हि काशीखण्डे—

मार्गशीर्षाऽसिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ । उपोष्य जागरणं कुर्यात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ इति ।

अथ श्रीजानकी-विवाहपञ्चमीनिर्णयः

मार्गशुक्लपञ्चमी(२) श्रीजानकीविवाहपञ्चमी । अत्र जनकपुरयात्राप्रसङ्गे आह बृहद्विष्णुपुराणे—

कोशलेन्द्रसरः स्नायान् मार्गमासे विशेषतः । मार्गं वै मण्डनं तीर्थं पादप्रक्षालनं सरः ॥
रामलक्ष्मणसीतानां सरांसि फलदानि वै । विशेषेण महाभाग नवम्यां रामजन्मनि ॥
जानकीजन्मवारेऽपि विवाहे च तथैव तु । सर्वेषां स्नानदानादि महापुण्यफलप्रदम् ॥ इति ।

(श्रीजानकीपूजाविधिस्तु वैशाखे जानकीजन्माष्टम्यां द्रष्टव्यः) ।

इति मार्गकृत्यम् ।

◆

---

(१) 'निशि' इति केचित् । शिवरहस्ये तु—नित्ययात्रादिकं कृत्वा मध्याह्ने संस्थिते रवौ । (इत्युपक्रम्य) तदोग्ररूपादनघान्मत्तः श्रीकालभैरवः । आविरासीत्तदा लोकान् भीषयन्नखिलानपि ॥ एवं चात्र मध्याह्ने भैरवाविर्भावनिश्चयेऽपि आविर्भावकालव्यापिन्येव तिथिर्ग्राह्येत्यत्र प्रमाणाभावात् अस्तोत्तरयामचतुष्टयपूजनसन्ध्यापूजनादिप्रधानकर्मकलापस्य रात्रिकालित्वात् रात्रिव्यापिन्येव अष्टमी ग्राह्येति सर्वनिबन्धस्वरसः ।

(२) इयं पञ्चमी वसन्तपञ्चमीवत् उदयव्यापिनी ग्राह्या । निर्णयस्तु तत्रैव द्रष्टव्यः ।

अथ पौषकृत्यम्

तत्र अर्धोदययोगः

महाभारते—

अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत् पौषमाघयोः । अर्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः ।
श्रवणार्कव्यतीपातैरमा वै पौषमाघयोः । अर्धोदयः स विज्ञेयः किञ्चिन्न्यूने महोदयः ॥

योगोऽयं दिवैव(१) शस्तः । तथाहि—

तिथितत्त्वचिन्तामणिधृतवचनम्—

'दिवैव योगः शस्तोयं न तु रात्रौ कदाचन ॥' इति ।

'किञ्चिन्न्यूने महोदयः' इति नक्षत्रमात्रराहित्ये इत्यर्थः, व्यतीपातार्कवारयोः प्राधान्यात् । तथा च—पौषमाघयोः रविवारश्रवणनक्षत्रव्यतीपातयोगयुक्ता दिवा अमावास्या भवेत् चेदर्धोदययोगः । तथा पौषमाघयोः रविवारव्यतीपातयुक्ता दिवा अमावास्या भवेच्चेन्महोदययोगः ।

स्कान्दे— अर्धोदये तु सम्प्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम् । शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेयुर्ब्रह्मसन्निभाः ॥
यत्किञ्चिद्दीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम् ।

अत्र गंगास्नाने संकल्पः—ओमद्य पौषे मासि कृष्णे पक्षे अमावास्यायां तिथौ अर्धोदयपर्वणि अमुकगोत्रस्य मम

---

(१) स्मृतिकौस्तुभादौ तदह्व्यापित्वे एवाऽयं योग इत्युक्तं, तन्मैथिला न समाद्रियन्ते :

श्री-अमुकशर्मणः कायिकवाचिकमानसिकजन्मान्तरीयज्ञाताऽज्ञातसकलपापक्षयकामनया श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणोक्तफलसमफलप्राप्तिपूर्वकसूर्यग्रहणकालिकगङ्गास्नानजन्यफलकोटिगुणाधिकफलकामो गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये।
माघे तु—'पौषे मासि' इत्यत्र 'माघे मासि' इति योज्यम्।

(स्त्री चेत्—'अमुकगोत्रायाः अमुकीदेव्याः' इत्यूहः कर्तव्यः। सामान्यजलाशये तु 'गङ्गायाम्' इति न वक्तव्यम्।)

अथ पौषीपूर्णिमायां कौशिकीस्नानविधिः

तत्र कुशादिकमादाय ओमद्य पौषमासीयशुक्लपक्षीयपूर्णिमायां तिथावमुकगोत्रस्यामुकशर्मणः पृथिव्यधिकरणकसकलतीर्थस्नानजन्यपुण्यसमपुण्यप्राप्तिकामः कौशिक्यां स्नानमहं करिष्ये।

इति सङ्कल्प्य—

ॐ गाधिराजसुते देवि विश्वामित्रमुनेः स्वसः। ऋचीकभार्ये सत्यार्ये पापं मे हर कौशिकि॥

इति पठित्वा स्नायात्।

अथ अकालवृष्ट्यादिविचारः

स्मृतिः—पौषादिचतुरो मासान् ज्ञेया वृष्टिरकालजा। व्रतयात्राविवाहादि वर्जयेत् सप्तवासरान्॥
एकेनैकदिनं त्याज्यं द्वितीयेन दिनत्रयम्। तृतीयेन तु सप्ताहं त्यजेदकालवर्षणे॥
वृत्तेप्यकालवर्षे नाऽशुद्धि निर्दिशेत् तावत्। यावन्न भवति याने नरपशुचरणाङ्किता वसुधा॥

इति पौषकृत्यम्।

अथ माघकृत्यम्

अथ प्रातःस्नानविधिः

पद्मपुराणे—आयुरारोग्यसम्पत्तौ रूपे सुभगतागुणे। तेषां मनोरथास्तैस्तु न त्याज्यं माघमज्जनम्॥ दारिद्र्यपापदौर्भाग्यपङ्कप्रक्षालनाय वै। माघस्नानान्न चान्योऽस्ति उपायो नरसत्तम॥ मकरस्थे(१) रवौ यो हि न स्नात्यनुदिते रवौ। कथं पापैः प्रमुच्येत कथं स त्रिदिवं व्रजेत्॥ उपपातकसंज्ञानि पातकानि महान्त्यपि। भस्मीभवन्ति सर्वाणि माघस्नानेन सुव्रत॥ वेपन्ते सर्वपापानि माघमासे समागमे। नाशकालोऽयमस्माकं यदि स्नास्यति मानवः॥ पावका इव दीप्यन्ते माघस्नानेन मानवाः। विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमाः॥ आर्द्रशुष्कं लघुस्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम्। माघस्नानं दहेत् पापं पावकः समिधो यथा॥ प्रामादिकं च यत्पापं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत्। स्नानमात्रेण तत्सर्वं नश्यते तूलराशिवत्॥ पद्मपुराणे—स्वर्गलोके चिरं वासो येषां मनसि वर्तते। यत्र क्वापि जले तैस्तु स्नातव्यं(२)मृगभास्करे॥

---

(१) शब्दकल्पद्रुमे—मकरे मूलकं चैव सिंहे चाऽलाबुभक्षणम्। कार्तिके शूरणं चैव सद्यो गोमांसभक्षणम्॥ अलाबु='सजमनि'। शूरणम्='ओल' इति नाम्ना लोके प्रसिद्धम्।

(२) तिथितत्त्वे—उत्तमन्तु सनक्षत्रं लुप्ततारन्तु मध्यमम्। सवितुर्युदिते भूप ततो हीनं प्रकीर्तितम्। वायुपुराणे—माघस्नानं प्रयागे तु प्रशंसन्ति मनीषिणः। नद्यः समुद्रगाः सर्वास्तासु स्नानं प्रशस्यते॥ गङ्गाविष्णुपदोद्भूता जाह्नवी भुवनेश्वरी। नित्यस्नाने त्वशक्तश्चेत् तत्कुर्याच्च दिनत्रये॥ द्वादश्यां रथसप्तम्यां पौर्णमास्यां तथैव च। अथवा पौर्णमास्यां वा माघस्नानं चरेद् धः॥ सरयूस्तु महापुण्या माघे मकरगे रवौ। तस्यां स्नात्वा महापुण्यः काल्पं कर्म निवर्त्यते॥

तत्र संकल्पः— कुशत्रयादिकमादाय—ओमद्येत्यादि पद्मपुराणोक्तमाघस्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामोऽद्यारभ्य मकरस्थरविं यावत् प्रत्यहं प्रातःस्नानमहं करिष्ये । इति । (१) तत्र स्नानमंत्र :—

ओं दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च । प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापप्रणाशनम् ॥
ओं मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाऽच्युत माधव । स्नानेनाऽनेन मे देव यथोक्तफलदो भव ॥ इति ।

पद्मपुराणे—दिने दिने सहस्रन्तु सुवर्णानां विशांपते । तेन दत्तं हि गङ्गायां यो माघे स्नाति माधव ॥

तत्र संकल्पः—ओमद्येत्यादि प्रतिदिनसहस्रसुवर्णदानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामोऽद्यारभ्य मकरस्थरविं यावत्प्रत्यहं गङ्गास्नानमहं करिष्ये (२) । स्नानमन्त्रः—ओं माघमासमिमं पुण्यं स्नाम्यहं देव माधव । तीर्थस्याऽस्य जले नित्यं प्रसीद भगवन् हरे ॥ दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च । प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापप्रणाशनम् ॥ मकरस्थे रवौ माघे गोन्दिाच्युत माधव । स्नानेनाऽनेन मे देव यथोक्तफलदो भव ॥ दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोऽस्तु ते । परिपूर्णं कुरुष्वेदं माघस्नानं महाव्रतम् ॥ इति ।

अथ (३) मकरसङ्क्रान्तौ कृशरान्नदानविधिः

गन्धपुष्पाक्षतैः ओं तिलचिपटान्नलड्डूकसहितसोपकरणकृशरान्नेभ्यो नमः ॥ ३ ॥ इति त्रिःसंपूज्य, पुनः ओं ब्राह्मणाय नमः ॥ ३ ॥ इति कुशत्रयरूपं ब्राह्मणं त्रिः सम्पूज्य, जलेन सिक्त्वा कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं

---

(१) नरसिंहपुराणे—शीतकाले महावह्निं प्रज्वालयति यो नरः । सर्वसत्त्वहितार्थाय स्वर्गञ्चाप्सरसं लभेत् ॥

(२) प्रतिदिनसंकल्पे—ओमद्येत्यादि प्रतिदिनसहस्रसुवर्णदानजन्यफलसमफलप्राप्तिकामो मकरस्थे रवौ गङ्गायां प्रातःस्नानमहं करिष्ये ।

(३) मकरसंक्रमे पराः षोडशघटिकाः पुण्याः । 'त्रिंशत्कर्कटके पूर्वा मकरे विंशतिः परा ।' इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः ।

सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्वव्यापी सनातनः। नारायणः प्रसन्नः स्यात् कृशरान्नप्रदानतः॥ इति पठित्वा—ओं अद्येत्यादि मकरार्कसंक्रमणप्रयुक्तपुण्यकाले (पुण्याहे वा) अमुकगोत्रस्य (१) मम श्री-अमुकशर्मणः विष्णुप्रीतिकामः एतानि तिलचिपटान्नलड्डूकसहितानि सोपकरणकृशरान्नानि विष्णुदैवतानि यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे। इत्युत्सृज्य प्रणमेदनेन—

ओं कृशरं सर्वशीतघ्नं शनिप्रीतिकरं सदा। तस्मादस्य प्रदानेन मम सन्तु मनोरथाः॥
ओं सतिलं गुडसंयुक्तं रसप्रीतिकरं नृणाम्। वर्धितं संगृहाणेदमतः शान्ति प्रयच्छ मे॥

ततो दक्षिणा—ओमद्य कृतैतत्तिलचिपटान्नलड्डूकसहितसोपकरणकृशरान्नदानप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकं (कृशरान्नमूल्यकं वा) हिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम्।

अथ तिलपूर्णघटदानविधिः

श्वेतपुष्पाक्षतैः—ओं तिलपूर्णकुम्भाय नमः॥ ३॥ ओं ब्राह्मणाय नमः॥ ३॥ इति त्रिः सम्पूज्य (१)ओमद्ये-

---

वृद्धगर्गः—यद्यस्तमनवेलायां मकरं याति भास्करः। प्रदोषे वाऽधरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि॥ अस्तमनं प्रदोषः। प्रदोषे पूर्वरात्रे। इदं मदनपारिजातादीनां मतम्। मैथिलास्तु निशीथात् (अर्धरात्रात्) पूर्वं मकरसंक्रान्तौ पूर्वदिन एव, निशीथात् पश्चात् संक्रान्तौ परदिन एव पुण्यमित्याहुः। तथाहि स्कान्दे—धनुर्मीनावतिक्रम्य कन्यां च मिथुनं तथा। पूर्वापरविभागेन रात्रौ संक्रमणं यदा।' दिनान्ते पञ्च नाड्यस्तु तदा पुण्यतमाः स्मृताः। उदयेऽपि तथा पञ्च दैवे पैत्र्ये च कर्मणि॥

(१) स्त्रीपक्षे—'अमुकगोत्रायाः अमुकीदेव्याः' इति विशेषः। मृतार्थदाने—'पितुः अमुकशर्मणः स्वर्गप्राप्तिकामः' इति।

(२) वायवीये—तिलाः पापहरा नित्यं विष्णुदेहसमुद्भवाः। तस्मादेषां प्रदानेन पापनाशमुच्यते॥

त्यादि मकरार्कसंक्रमणप्रयुक्तपुण्याहे (पुण्यकाले वा) अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः रसवारिनिमित्तसकलदुरितोपसर्गापच्छान्तिपूर्वकयावत्तिलसंख्यकवर्षसहस्रावच्छिन्नविष्णुलोकप्राप्तिकामनया। इदं तिलपूर्णकुम्भं विष्णुदेवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे। इत्सृज्य प्रणमेत्—

ओं नमो वरुणरूपाय रसाम्बुपतये नमः। रसवारिनिमित्तानि यान्तु नाशमघानि मे ॥

ततो दक्षिणा—ओमद्येत्यादि तिलकुम्भदानप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे।

अथ कम्बलदानविधिः

ओं शीतवर्षाहरकम्बल (ऊर्णा) वस्त्राय नमः ॥ ३ ॥ ओं ब्राह्मणाय नमः ॥ ३ ॥ इति त्रिः सम्पूज्य—ओमद्येत्यादि(१)कम्बलवस्त्रतन्तुसमसंख्यकवर्षसहस्रावच्छिन्नविष्णुलोकवासकामनया अमुं कम्बलवस्त्रं विष्णुदेवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे। इत्युत्सृज्य—

ॐ शीतवर्षाहरः पुण्यो हृष्टो बलविवर्धनः। कम्बलस्य प्रदानेन शान्तिरस्तु सदा मम ॥
ॐ ऊर्णावस्त्रं चारु चित्रं देवानां प्रीतिवर्धनम्। सुखस्पर्शकरं यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

दक्षिणा तु पूर्ववत्। 'रजाई' सत्त्वे 'ॐ तूलपट्टिकायै नमः' इत्यूह्यम्।

पुनश्च तत्रैव—इति (तिलकुम्भे) दत्ते विनश्यन्ति पापानि जलचारिणाम्। हिंसोद्भवानि स्नानेषु पानके वाऽवगाहने। रसो यदा न भक्ष्याणामपेयानां च वाञ्छया ॥ औषधं वाऽपि देवेश सर्वं मेध्यं भविष्यति। शिवलोके वसेत् कल्पान् शतञ्च दशावरान् ॥ इति ॥

(१) नारदीये—निष्किञ्चनेभ्यो दीनेभ्यः शीतवातमहातपैः। अर्दितेभ्यः करुणया वस्त्रमूर्णं ददाति यः। न तस्य सुकृतं वक्तुं त्रिदशैरपि शक्यते ॥ आधिव्याधिविनिर्मुक्तः सोऽक्षयं सुखमश्नुते ॥

अथ वस्त्रदानविधिः

ओं वस्त्राय नमः ॥३॥ कुशोपरि ओं ब्राह्मणाय नमः ॥३॥ इति त्रिः सम्पूज्य—ओमद्येत्यादि कार्पासवस्त्रतन्तुसमसंख्यकवर्षसहस्रावच्छिन्नविष्णुलोकवासकामनया अमुं कार्पासिकं वस्त्रं विष्णुदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे । इत्युत्सृज्य—

ओं शरण्यं सर्वलोकानां लज्जाया रक्षणं परम् । देहालङ्करणं वस्त्रमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥

दक्षिणा तु पूर्ववत् । 'रेशमीवस्त्र' सत्त्वे 'ओं कौशेयवस्त्राय नमः' इत्याद्यूह्यम् ।

अथ सङ्कष्टहरगणेशचतुर्थीपूजा

तत्र माघकृष्णचतुर्थ्यां (१)कृतनित्यक्रियो व्रती स्थानमागत्य शुद्धासने उपविश्य—ओं अपवित्रः पवित्रो वेति पूजोपकरणद्रव्यमात्मानं चाभिषिच्य, पञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य, कुशत्रयतिलान्यादाय—ओमद्य

---

(१) शिवधर्मे—सर्वदेवमयः साक्षात् सर्वमङ्गलकारकः । माघकृष्णचतुर्थ्यां तु प्रादुर्भूतो गणाधिपः ॥ इयं चतुर्थी पूर्वविद्धा ग्राह्या, तथाहि दिवोदासः—चतुर्थी सतृतीया स्यात् तृतीया सचतुर्थिका । चतुर्थी तु गणेशस्य पञ्चम्यां नैव कारयेत् ॥ वृहस्पतिः—चतुर्थी गणनाथस्य मातृ (तृतीया) विद्धा प्रशस्यते । मध्याह्नव्यापिनी चेत् स्यात्, परतश्चेत् परेऽहनि ॥ स्मृत्यन्तरेपि—मातृविद्धा प्रशस्ता स्याच्चतुर्थी गणनायके । मध्याह्ने परतश्चेत् स्यान्नाग (पंचमी) विद्धा प्रशस्यते ॥ वस्तुतस्तूपर्युक्तवचनं भाद्रशुल्कचतुर्थीपरकम् । सङ्कष्टचतुर्थी तु चन्द्रोदयव्यापिन्येव ग्राह्या; यदुक्तं स्कान्दे—'चन्द्रोदये व्रते चैव तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।' संकष्टचतुर्थीविधानप्रसंगेऽप्याह तत्रैव—'गणेशं पूजयित्वा तु चन्द्रायार्घश्च दीयते ।' इति । पुनश्च तत्रैव—

माघे मासि कृष्णे पक्षे चतुर्थीतिथौ अमुकगोत्रस्य मम श्री-अमुकशर्मणः सर्वसङ्कष्टनिवारणपूर्वकदीर्घायुष्ट्वबल-पुष्टिनैरुज्यप्राप्तिकामनया श्रीसङ्कष्टहरगणेशपूजनं तत्कथाश्रवणं चाहं करिष्ये। इति सङ्कल्पं कुर्यात्।

ततः सूर्यादिनवग्रहान् इन्द्रादिदशदिक्पालांश्च यथोपचारैः सम्पूज्य हिरण्य-रजतताम्रमयीम् अर्थाभावे मृन्मयीं वा प्रतिमां संस्थाप्य–ओं आवाहयेच्चतुर्बाहुं बहुवर्णं द्विपाननम्। चित्रपाशाङ्कुशधरं मोदकैश्च सुपूजितम्॥ सिंहासनसमायुक्तं रक्तपुष्पेण पूजितम्। सर्प यज्ञोपवीताङ्गं स्वर्णकुण्डलभूषितम्॥ इति ध्यात्वा—ओं आगच्छ गजस्कन्ध गजवक्त्र चतुर्भुज। यावद् व्रतं समाप्येत तावत्त्वं सन्निधो भव॥ इत्यावाह्य—ओं मनोजूतिर्जुषता-माज्यस्य वृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञं समिमं दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ। ओं भूर्भुवः स्वः भगवन् श्रीगणेश इहागच्छ इह तिष्ठ इह सुप्रतिष्ठितो भव इति प्राणप्रतिष्ठां विधाय—ओं वक्रतुण्ड नमस्तुभ्यं महासङ्कटनाशन। आसनन्ते प्रदास्यामि गिरिजानन्दकारक॥ इदं पुष्पासनं श्रीगणेशाय नमः। ततः—ओं नागयज्ञोपवीतादिनानाभरणभूषित। सूपकर्ण नमस्तुभ्यं पाद्यं गृह्ण गजानन॥ इदं पाद्यं श्रीगणेशाय नमः। ततः—ओं कपिलाय नमस्तुभ्यं सिन्दूरवदनाय च। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सङ्कटं मे निवारय॥ इदमर्घ्यं०। ततः—ओं गणाधीश नमस्तुभ्यमुमापुत्राघनाशन। मया दत्तं गृहाणेदं तोयमाचमनीयकम्॥ इदमाचमनीयकम्०।

चतुर्थ्यां प्रातरुत्थाय दन्तधावनपूर्वकम्। ग्राह्यं व्रतमिदं पुण्यं सङ्कष्टतरणं शुभम्॥ कर्तव्यमिति संकल्प्य व्रतेऽस्मिन् गणपं स्मरेत्। निराहारोऽस्मिन् देवेश यावच्चन्द्रोदयो भवेत्॥ इति।

दिनद्वये चन्द्रोदये सत्त्वे तु मातृयोगस्य प्राशस्त्यात् पूर्वैवेति। ननु 'दिवा त्रिमुहूर्तैवेवे हि मातृविद्धा प्रशस्यते' इत्यस्य प्रवृत्तिर्युक्ता न तु रात्राविति चेन्न, 'अहःसु तिथयः पुण्याः कर्मानुष्ठानतो दिवा। नक्तादिव्रतयोगे तु रात्रियोगो विशिष्यते॥' इति हेमाद्रावुक्तत्वात्।

ओं पञ्चामृतं मया नीतं पयो दधिघृतं मधु। सितया च समायुक्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥ इदं पञ्चामृतस्नानीयम्०। ॐ नर्मदा चन्द्रभागा च गङ्गासङ्गमजैर्जलैः। स्नापितोऽसि मया देव सङ्कटं मे निवारय॥ इदं शुद्धोदकस्नानीयम्०। ओं इभवक्त्र नमस्तेस्तु नमः परशुधारिणे। रक्तवस्त्रं गृहाणेदं सङ्कटं मे निवारय॥ इदं रक्तवस्त्रं बृहस्पतिदैवतम्०। ॐ इभवक्त्र नमस्तेस्तु गौरीहृदयनन्दन। ब्रह्मसूत्रं मया दत्तं गृहाण गणनायक॥ इमे यज्ञोपवीते०। ॐ श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्। विलेपनं सुरश्रेष्ठ प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्। इदं श्रीखण्डचन्दनम्०। ॐ सिन्दूरं शोभनं रक्तं सौभाग्यं सुखवर्धनम्। शुभगं कामदं चैव सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्॥ इदं सिन्दूरम्०। इदं रक्तचन्दनम्०। ॐ अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः। मया निवेदितास्तुभ्यं गृहाण परमेश्वर॥ इदमक्षतम्०। ॐ पुष्पं मनोहरं दिव्यं सुगन्धं देवनिर्मितम्। हृद्यमद्भुतमाघ्रेयं देव तत्प्रतिगृह्यताम्। एतानि पुष्पाणि०। ओं सुगन्धि दिव्यमाल्यं च गृहाण गणनायक। विनायक नमस्तुभ्यं शिवसूनो नमोस्तु ते॥ इदं पुष्पमाल्यम्०। इदं विल्वपत्रम्०। इदं दूर्वादलम्०। ॐ लम्बोदर विशालाक्ष धूम्रकेतो नमो नमः। धूपं गृहाण देवेश संकटं मे निवारय॥ एष धूपः०। ॐ विघ्नान्धकारसूर्याय गणानाम्पतये नमः। दीपं गृहाण देवेश सङ्कटं मे निवारय॥ एष दीपः०। ॐ नमो मोदकहस्ताय भालचन्द्राय ते नमः। नैवेद्यं गृह्ण देवेश सङ्कटं मे निवारय॥ एतानि नानाविधनैवेद्यानि०। ओं गजानन नमस्तुभ्यं विकटाय नमो नमः। आचम्यतां गणाध्यक्ष सङ्कटं मे निवारय॥ इदमाचनीयम्०। ओं फलान्यमृतकल्पानि सुगन्धीन्यघनाशन। आनीतानि यथाशक्ति गृहाण गणनायक॥ एतानि फलानि०। ओं ताम्बूलं गृह्यतां देव नागवल्लीदलान्वितम्। कर्पूरपूगसंयुक्तं सुगन्धं मुखभूषणम्॥ इदं ताम्बूलं श्रीगणेशाय नमः। ततो नाममन्त्रेण प्रत्येकं दूर्वाङ्कुरपूजां कुर्यात्। तद्यथा—इदं दूर्वायुग्मं, ओं वक्रतुण्डाय नमः १, ओं एकदन्ताय नमः २, ओं लम्बोदराय नमः ३, ओं विकटाय नमः ४, ओं विघ्नराजाय

नमः ५, ओं विघ्ननाशिने नमः ६, ओं गजाननाय नमः ७, ओं विनायकाय नमः ८, ओं गणाधिपतये नमः ९, ओं उमापुत्राय नमः १०, ओं सिद्धविनायकाय नम ११, ओं सङ्कटनाशिने नमः १२, ओं कृष्णपिङ्गाक्षाय नमः १३, ओं भालचन्द्राय नमः १४, ओं शूर्पकर्णाय नमः १५, ओं त्रिलोचनाय नमः १६, ओं पाशाङ्कुशधराय नमः १७, ओं सुमुखाय नमः १८, ओं सिन्दूराभाय नमः १९ ओं ईशपुत्राय नमः २०, ओं कुमारगुरवे नमः २१। ततः—ओं गणेशाय नमस्तुभ्यं सर्वसिद्धिप्रदायक। संकटहरं मे देव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥ इति गणेशायाऽर्घ्यं दद्यात्। ततः चन्द्राय अर्घ्यं दद्यादनेन—ओं क्षीरसागरसम्भूत लक्ष्मीबन्धो निशाकर। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रोहिण्या सहितप्रभो॥ एष दुग्धार्घ्यः ओं रोहिणीसहितचतुर्थीचन्द्राय नम। ततश्चतुर्थ्यर्घ्यदानम्—ओं तिथीनामुत्तमे देवि, गणेशप्रियवल्लभे। सर्वसङ्कटनाशाय चतुर्थ्यर्घ्यं नमोस्तु ते॥ ततः कथां शृणुयात्।

अथ सङ्कष्टहरगणेशचतुर्थीव्रतकथा

पार्वत्युवाच—कथं गणेश्वरः पूज्यो माघे किं भोजनं हितम्। किन्नाम किञ्च नैवेद्यं तद्वदस्व विशेषतः॥ १॥ गणेश उवाच—माघमासे गणाध्यक्षं भालचन्द्रं प्रपूजयेत्। श्रद्धया पूजयेद् देवं तत्कालैरुपचारकैः॥ २॥ मोदकान् कारयेन्मातस्तिलजान् दश पार्वति। देवाग्रे स्थापयेत् पञ्च पञ्च विप्राय कल्पयेत्॥३॥ पूजयित्वा तु तं विप्रं भक्तिभावेन देववत्। दक्षिणां च यथाशक्ति मोदकान् पञ्च दापयेत्॥ ४॥ स्वयं दश तिलान् देवि भुञ्जीयाद्भक्तितत्परः। इतिहासं प्रवक्ष्यामि हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः॥ ५॥ आसीत् पूर्वयुगे राजाहरिश्चन्द्रः प्रतापवान्। क्षत्रधर्मरतः साधुः सत्यसन्धो द्विजार्चकः॥ ६॥ नाऽधर्मो दृश्यते देवि तस्मिन् राज्यं प्रशासति। न हीनवदनः कश्चिन्न दुःखी न दरिद्रवान्॥ ७॥ न च व्याधिभयं किञ्चिदल्पायुर्न नरोऽभवद्।

तस्य राज्येऽभवद् विप्र ऋष्यशर्मेति तापसः ॥ ८ ॥ तस्याऽचिरेण कालेन बभूव तनयः प्रियः। ऋषिशर्मा गतः स्वर्गं पत्नी पुत्रं ररक्ष च ॥ ९ ॥ भिक्षाशिनी महादीना पुत्रलालनतत्परा। दरिद्रा कारयामास सङ्कटव्रतमुत्तमम् ॥ १० ॥ गोमयस्य गणाध्यक्षं पूजयन्ती सदा सती। कृत्वा भिक्षां तिलानां तु मोदकान् दश पार्वति ॥ ११ ॥ यथोक्तेन विधानेन तावत् पुत्रो यदृच्छया। गले विनायकं बध्वा क्रीडनार्थं बहिर्गतः ॥ १२ ॥ कुलालश्च ततस्तस्याः पुत्रं वै पञ्चहायनम्। गृहीत्वा प्रददौ वह्नौ पात्रपाकेच्छया कुधीः ॥ १३ ॥ अन्वेषयन्ती सा पुत्रं न लेभे क्वापि विह्वला। पूजयन्ती गणाध्यक्षं विललापातिदुःखिता ॥ १४ ॥ भो गणेश महाकाय सूर्यारुणसमप्रभ। जटाकलापसुभग त्राहि मां पुत्रदुःखिताम् ॥ १५ ॥ गजानन चतुर्बाहो भालचन्द्रविनायक। अनाथनाथ वरद पाहि मां पुत्रदुःखिताम् ॥ १६ ॥ एवं विलापं कुर्वन्ती निशार्धं च तदा सती। ततः कुलालः प्रातस्तु पात्रपाकदिदृक्षया ॥ १७ ॥ अवाहमुत्सृजंस्तत्र बालकं क्रीडने रतम्। ददर्श जानुदघ्ने च जले तिष्ठन्तमद्भुतम् ॥ १८ ॥ दृष्ट्वा स वेपथुस्तूर्णं जगाम नृपमन्दिरम्। तत्र गत्वा जगादाथ नृपस्याग्रे यथाकृतम् ॥ १९ ॥ कुलाल उवाच—हरिश्चन्द्र महाबाहो ज्वलदग्निसमप्रभ। वध्योऽयं सुतरां राजन् येन कर्मेदृशं कृतम् ॥ २० ॥ राजकन्याविवाहार्थं मृत्पात्राणि पुनः पुनः। ददाह परिपक्वानि न जातानि कथञ्चन ॥ २१ ॥ तदा ह्यपृच्छं भीतोऽहं मन्त्रिणं चेटके स्थितम्। स मां बालबलिं दद्या इति प्राह रहः स्थितः ॥ २२ ॥ तदाऽहं चिन्तयामास कस्य गृह्णामि बालकम्। यस्य बालं ददाम्यग्नौ स मां छेत्स्यति सत्वरम् ॥ २३ ॥ इति भीत्या महाराज ब्राह्मणीतनयं बलिम्। कृत्वा मृत्पात्रनिवहं ददाम्यग्नि सुनिश्चितम् ॥ २४ ॥ स च प्राह निजां भार्यामृषिशर्मा मृतो द्विजः। तत्पत्नी विधवा नित्यं भिक्षाकृत्योपजीविनी ॥ २५ ॥ स करिष्यति किं बाले तत्पुत्रोऽयं मया हृतः। पक्वपात्राणि सर्वाणि कार्यं मे च भविष्यति ॥ २६ ॥ इति रात्रौ सुखं सुप्त्वा प्रातः पात्रदिदृक्षया। गतस्तत्रावमुच्यार्थं यावत्पश्यामि सत्वरम् ॥ २७ ॥

तावद्बालो यथानीतस्तथा तिष्ठति निर्भयः । दृष्ट्वा समागतोऽत्राहं सकम्पो जातसम्भवः ॥ २८ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा विस्मृतमानसः । आजगामाशु तत्रैव यत्र बालः स मोदते ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा तथाविधं बालं राजाऽमात्यमुवाच ह । किमिदं कस्य बालोऽयमिति त्वं निश्चयं कुरु ॥ ३० ॥ जानुदघ्नं कुतः प्राप्तं जलं जलजमण्डितम् । वैदूर्यसदृशी दूर्वा दरिद्रस्य यथैव हि ॥ ३१ ॥ न दाहो न क्षुधा तस्य न पिपासाऽपि वर्तते । निर्भयं तु यथा गेहे तथा क्रीडति बालकः ॥ ३२ ॥ एवं निगदिते राज्ञि ब्राह्मणी सा समागता । क्रोशन्ती बालकं दृष्ट्वा स्ववत्सं सुरभिर्यथा ॥ ३३ ॥ समुत्थाय निजं बालं समालिंग्य चुचुम्ब ह । रुदन्ती कम्पमाना सा नृपस्याग्रे न्यषीदत ॥ ३४ ॥ हरिश्चन्द्र उवाच—विप्रपत्नि कुतो बालो नाग्निना भस्मसात्कृतः । चेटकं किं विजानासि को धर्मश्च त्वया कृतः ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण्युवाच—चेटकं न विजानामि न धर्मं न तपस्तथा । न च योगं न दानञ्च न विधानं बलिं पुनः ॥ ३६ ॥ सङ्कष्टनाशनं चैकं करोमि व्रतमुत्तमम् । तत्प्रभावेण राजेन्द्र जातो मे कुशली सुतः ॥ ३७ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा पुनः प्राह स भूपतिः । व्रतमेतत्प्रजाः सर्वाः कुर्वन्तु मम सम्मतम् ॥ ३८ ॥ राजा तां च परिक्रम्य धन्या साध्वीत्यभाषत । पूजनीयो गणाध्यक्षः सर्वैः पौरजनैस्तथा ॥ ३९ ॥ मासि मासि व्रतं चक्रुः सर्वे विस्मयसंयुताः । ब्राह्मणी सा सुतं लेभे व्रतराजप्रभावतः ॥४०॥ श्रीकृष्ण उवाच—तस्मात् पार्थ त्वया कार्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम् । एतद्व्रतप्रभावेण लब्धकामो भविष्यसि ॥ ४१ ॥ राज्यं प्राप्य तथा मित्रं पुत्र-पौत्र-सुखावहम् । यः करोति व्रतं राजन् सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४२ ॥ कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नोऽभूद्युधिष्ठिरः । व्रतं चक्रे गणेशस्य प्राप्य राज्यमकण्टकम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीपार्वती-गणेशसंवादे संकष्टहरगणेशचतुर्थीव्रतकथा समाप्ता ।

अथ विसर्जनम्

तत्र प्रथमं नीराजनम् । तद्यथा—ॐ कर्पूरवर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया । गृहाण मङ्गलं दीपमारार्तिक्य-

मिदं प्रभो ॥ इदमारार्तिकं श्रीगणेशाय नमः । ततः—ओं महासंकष्टदग्धोऽहं गणेश शरणं गतः । तस्मान्मनोरथं पूर्णं कुरु सर्वेश्वरेश्वर ॥ ॐ महासङ्कष्टदग्धेन शरणं त्वां गतेन च । मया कृतामिमां पूजां गृहाणोमासुत प्रभो ॥ इति प्रणम्य प्रार्थयेदनेन—ओं अवुद्धमतिरिक्तं वा द्रव्यहीनं च यत्कृतम् । तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर । विघ्नराज नमस्तेऽस्तु उमापुत्राघनाशन । यदुदिश्य कृतं तेऽद्य यथाशक्ति प्रपूजनम् । तेन तुष्टो मम विभो हृत्स्थान् कामान् प्रपूरय । विघ्नान् नाशय मे सर्वान् नाशायोपस्थितान् प्रभो ॥ व्रतं कृतं मया देव यतोऽद्य विधिवन्मया । व्रजेदानीं गणेशस्त्वं स्वस्थानं वै यदृच्छया ॥ ओं यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टाकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ ओं साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारभगवन् श्रीगणेश पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ।

ततः कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अद्य कृतैतत् साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्रीसङ्कष्टहरगणेशपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । इति ब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात् । ततो यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वयमपि भुञ्जीत ।

इति सङ्कष्टहरगणेशचतुर्थीव्रतपूजा समाप्ता ।

अथ नरकनिवारणचतुर्दशीप्रदोषव्रतपूजाविधिः

माघकृष्णचतुर्दशी (१) नरकनिवारणचतुर्दशी । तत्र प्रदोषे कृतनित्यक्रियो व्रती शुद्धासने उपविश्य मृन्मयीं महेशप्रतिमां विधाय गणपत्यादिपञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—

---

(१) नारदसंहितायाम्—अर्धरात्रियुता यत्र माघकृष्णचतुर्दशी । शिवरात्रिव्रतं तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ नागरखण्डे–माघफाल्गुनयोर्मध्ये असिता या चतुर्दशी । रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपोषयेत् ॥ लिङ्गपुराणे—माघान्ते (अमान्ते) कृष्णपक्षे तु अविद्धा या चतुर्दशी । शिवरात्रिसमा ज्ञेया सर्वयज्ञोत्तमोत्तमा ॥

ओमद्य माघेमासि कृष्णे पक्षे चतुर्दश्यां तिथौ अमुकगोत्रस्य सपरिवारस्य मम श्री अमुकशर्मणः सकलदुरितोपसर्गापच्छान्तिपूर्वंकाऽश्वमेधयज्ञफलसमफलप्राप्तिकामः श्रीमहेश्वरप्रीत्यर्थं नरकनिवारणचतुर्दशीव्रतपूजनमहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य 'ओं मनोजूति' रिति मन्त्रं पठित्वा ओं भूर्भुवः स्वः श्रीगौरीशङ्कराविहागच्छतमिह तिष्ठतम् । इत्यावाह्य—ओं हराय नमः, ओं महेश्वराय नमः, ओं शम्भवे नमः, ओं शूलपाणये नमः, ओं पिनाकधृषे नमः, ओं शिवाय नमः, ओं पशुपतये नमः, ओं महादेवाय नमः । इति पुष्पाञ्जलिं समर्प्य ध्यायेत्—ओं ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं, रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् । पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ।' इति प्रणम्य—ओं देवदेव नमस्तुभ्यं सहस्रशिरसे नमः । नमस्ते कृत्तिवासाय स्वासनं प्रतिगृह्यताम् ।। ततः पाद्यम्—ओं शम्भो गङ्गादितीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम् । तोयमेतत् सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं पाद्यं श्रीगौरीशङ्कराभ्यां नमः । अर्घ्यम्—ओं वरेण्य यज्ञपुरुष प्रजापालनतत्पर । नमो माहात्म्यदेवाय गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ।। इदमर्घ्यं

वस्तुतस्त्वत्र नक्तव्रते प्रदोषव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या तथा हि वत्सः—'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा । अन्यच्च—'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिचतुर्दशी' इति । व्यासः—'त्रिमुहूर्तं प्रदोषः स्याद् भानावस्तं गते सति । इति ।

मन्दिरादौ स्थापितशिवलिङ्गपूजायां तु प्राणप्रतिष्ठादिकमकृत्वैव 'ओं ध्यायेन्नित्यम्' इत्यतः पूजां समारभेत् । अन्ते विसर्जनमपि न कुर्यात् । केचित्तु अमावास्यान्तमासमधिकृत्य शिवरात्रिचतुर्दश्या एव 'नरकनिवारणचतुर्दशी' इति नामान्तरमित्याहुस्तत् 'माघफाल्गुनयोमध्ये असिता या चतुर्दशी' इत्याद्युपर्युक्तबहुवचनविरोधात् मैथिला न मन्यन्ते ।

नरकनिवारण-महाशिवरात्रीत्युभयव्रतोद्यापनं तु फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यामेव भवतीति तज्ज्ञाः । प्रायः आचारोऽप्ययमेव दृश्यते ।

श्रीगौरीशङ्कराभ्यां नमः। आचमनीयम्–ओं पाटलोशीरकर्पूरसुरभिः स्वादु शीतलम्। तोयमाचमनीयार्थं शङ्कर प्रतिगृह्यताम्॥ इदमाचमनीयम्०। स्नानम्—ओं मन्दाकिन्याः समानीतं, हेमाम्भोरुहवासितम्। स्नानाय ते मया भक्त्या नीरं स्वीक्रियतां प्रभो। इदं स्नानीयम्०। पञ्चामृतम्—ओं पयो दधि घृतं चैव मधु शर्करयान्वितम्। पञ्चामृतेन स्नपनं प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्। इदं पञ्चामृतस्नानीयम्०।

शुद्धोदकम्—ओं किरणा धूतपापा च पुण्यतोया सरस्वती। मणिकर्णिजलं शुद्धं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥ इदं शुद्धोदकं०। इदमाचनीयम्०। वस्त्रम्––ओं सूक्ष्मतन्तुसमाकीर्णं नानावर्णविचित्रितम्। वस्त्रं गृहाण मे देव प्रीत्यर्थं तव निर्मितम्॥ इदं वस्त्रं बृहस्पतिदैवतम्०। यज्ञोपवीतम्–ओं महादेव नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात्। ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण परमेश्वर॥ इमे यज्ञोपवीते बृहस्पतिदेवते०। इदमाचमनीयम्०। चन्दनम्––ओं मलयाचलसम्भूतं घनसारमनोहरम्। हृदयानन्दनं चारु चन्दनं प्रतिगृह्यताम्॥ इदं श्रीखण्डचन्दनम्०। अक्षताः—ओ अखण्डानक्षतान् शुक्लान् शोभनान् शालितण्डुलान्। त्राहि मां सर्वपापेभ्यो गृहाण वृषभध्वज॥ इदमक्षतम्०। पुष्पाणि––ओं माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो। मयाहृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम्॥ एतानि पुष्पाणि०। इदं पुष्पमाल्यम्०। बिल्वपत्राणि––ओं त्रिदल त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रस्य सदा प्रियम्। बिल्वपत्रं प्रयच्छामि त्र्यम्बकाय नमोऽस्तु ते॥ एतानि बिल्वपत्राणि०।

अथाऽङ्गपूजा—ओं विश्वपतये नमः, पादौ पूजयामि। ओं शिवाय नमः, जानुनी पूजयामि। ओं शूलपाणये नमः, गुल्फौ पू०। ओं शम्भवे नमः, कटिं पू०। ओं स्वयम्भुवे नमः, गुह्यं पू०। ओं महादेवाय नमः, नाभिं पू०। ओं विश्वकर्त्रे नमः, उदरं पू०। ओं सर्वतोमुखाय नमः, पार्श्वौ पू०। ओं स्थाणवे नमः, स्तनौ पू०। ओं नीलकण्ठाय नमः, कण्ठं पू०। ओं श्रीकण्ठाय नमः मुखं पू०। ओं शशिभूषणाय नमः मुकुटं पू०। ओं देवाधिदेवाय नमः, सर्वाङ्गं पूजयामि।

ततो धूपः—ओं वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष धूपः ओं गौरीशङ्कराभ्यां नमः। नैवेद्यम्—अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम्। भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्। इदं नैवेद्यम्०। पुनराचमनीयम्०। करोद्वर्तनगन्धम्—ओं मलयाचलसम्भूत कर्पूरेण समन्वितम्। करोद्वर्तनकं चारु गृह्यतां जगतः पते ॥ ताम्बूलम्—ओं पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम्। कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं ताम्बूलं०। द्रव्यम्—ओं हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ इदं दक्षिणार्थं द्रव्यम्०। आरार्तिकम्—ओं चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च। त्वमेव सर्वज्योतींष्यारार्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदमारार्तिकं०। प्रदक्षिणा—ओं यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च। तानि तानि प्रणश्यन्तु प्रदक्षिण पदे पदे ॥ नमस्काराः—ओं नमः शिवाय शान्ताय पञ्चवक्त्राय शूलिने। नन्दिभृङ्गिमहाकालगणयुक्ताय शम्भवे ॥ नमस्ते सर्वदीपात्मन् निमेषत्रुटिसम्भव। जन्ममृत्युजराव्याधिसंसारभयनाशन ॥ नमस्ते देव देवेश नमस्ते धरणीधर। नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ संसारार्णवमग्नं च त्राहि मां वृषभध्वज। हराय च नमस्तुभ्यं त्रैलोक्यव्यापिने नमः॥ इति। ततः वक्ष्यमाणां कथां श्रुत्वा विसर्जनं कुर्यात्।

अथ विसर्जनम्—ओं गौरीशङ्करौ पूजितौ स्थः क्षमेयाथां स्वस्थानं गच्छतमिति विसृज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्य कृतैतन्नरकनिवारणचतुर्दशीव्रतपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। इति ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत्।

अथ नरकनिवारणचतुर्दशीव्रतकथा

पार्वत्युवाच—कथं यमपुरं मार्गं त्यक्त्वा दैवं व्रजेन्नरः। एतन्मे महदाश्चर्यं प्रत्यक्षं कुरु शङ्कर ॥१॥ शङ्कर

उवाच—शृणु देवि यथावृत्तां कथां पौराणिकीं शुभाम् । यमशासनहन्त्रीं च शिवशासनदायिकाम् ॥२॥ कश्चिदासीत् पुरा निषादस्त्वामिषप्रियः । प्रत्यन्तदेशवासी च भूधरासन्निकेतनम् ॥ ३ ॥ सीमान्ते स सदा तिष्ठेत् कुटुम्बपरिपालकः । तन्वा पीनो धनुर्धारी श्यामाङ्गः कृष्णकञ्चुकः ॥ ४ ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणः सदैव मृगयारतः । एवंविधो निषादोऽसौ चतुर्दश्यां दिने शुभे ॥ ५ ॥ व्यवहारकैश्च द्रव्यार्थे देवागारे प्ररुन्धितः । तेनापि देवता दृष्टा जनानां वचनं श्रुतम् ॥ ६ ॥ उपवासव्रतीनां च शिवः शिव शिवेति च । दिनान्ते तैस्तदा मुक्त प्राप्तर्दव्यं प्रदीयताम् ॥७॥ ततोऽसौ धनुरादाय दक्षिणेन गतः स्वयम् । आगच्छन् स वनोद्देशे जनहासं चकार सः ॥ ८ ॥ शिवशिव किमेतद्वै कुर्वन्ति नगरे जनाः । वनेचरान्निरीक्षंस्तु चतुर्दिक्षु इतस्ततः ॥ ९ ॥ पदं च पदमार्गं च आश्रमे शूकरान् मृगान् । इतश्चेतश्च धावन् स आमिषे लुब्धमानसः ॥१०॥ वनं सपर्वतं सर्वं भ्रमंस्तद्दिनं गतम् । सम्प्राप्तं तेन नो किञ्चन्मृगशूकरतित्तिरिम् ॥ ११ ॥ निराशो लुब्धको जातस्तदा चास्तङ्गतो रविः । चिन्तयित्वा जलोपान्ते जागरं जीवघातनम् ॥१२। संविधास्याम्यहं रात्रौ निश्चितं मम जीवनम् । गतोऽसौ जलसामीप्यं तीरस्थो जालिमध्यतः ॥ १३ ॥ उटजं कर्तुमारेभे आत्मनो गुप्तिकारणात् । जालिमध्ये महालिङ्गमस्ति स्वायम्भुवं शुभम् ॥१४॥ विल्ववृक्षो महादिव्यो जालिमध्येन संस्थितः । गृहीत्वा तस्य पत्राणि मार्गशुद्ध्यर्थमाक्षिपत् ॥ १५ ॥ क्षिप्तानि दक्षिणे भागे गतानि लिङ्गमूर्धनि । न दिवा भोजनं तस्य आमिषे लुब्धमानसः ॥ १६ ॥ ततश्चिन्तयमानस्य न निद्रा समजायत । यस्य गन्धं समासाद्य लुब्धकस्य वरानने ॥ १७ ॥ न तिष्ठन्ति मृगाः सर्वे शरघातभयात्तदा । मृगान् निरीक्षतस्तस्य निद्रानाशोप्यजायत ॥१८॥बिल्वजालिङ्गतस्यास्य प्रथमः प्रहरो गतः। ततो जलार्थमायाता हरिणी गर्भसंयुता । १९ ॥ यौवनस्था सुरूपा च स्तनपीना सुशोभना । निरीक्षन्ती दिशः सर्वा भृशमुत्फुल्ललोचना ॥ २० ॥ लुब्धकेनापि सा दृष्टा बाणलक्ष्यं समागता । बाणश्च सन्धितस्तेन एकदृष्टेन चेतसा ॥ २१ ॥ त्रोटयित्वा च पत्राणि प्रक्षिप्तानि शिवोपरि । शिवं देवं सदा ध्यायन् शीतेन परिपीडितः ॥ २२ ॥ एतस्मिन्नन्तरे

दृष्टो हरिण्या लुब्धकस्तदा । लुब्धकस्तु स्वरूपेण कृतान्त इव तिष्ठति ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा तु तस्य सन्धानं यमदंष्ट्रासमप्रभम् । सा मृगी दिव्यया वाचा लुब्धकं वाक्यमब्रवीत् ॥ २४ ॥ स्थिरो भव महाव्याध सर्वजीवनिकृन्तन । किमर्थं हन्तुमुद्युक्तः कथयस्व मम प्रभो ॥ २५ ॥ व्याध उवाच—कुटुम्बं पीडितं मेऽद्य क्षुधया च मया सह । धनं च मद्गृहे नास्ति तेन त्वां हन्मि शोभने ॥ २६ ॥ सूत उवाच—जातपूजाप्रभावेण जागरोपोषणेन च । चतुर्थांशेन पापानां विमुक्तो लुब्धकस्तदा ॥ २७ ॥ लुब्धकस्तु ततो दृष्ट्वा मृगीं मानुषभाषिणीम् । आश्चर्यं परमं दृष्ट्वा किञ्चिद्धर्मसमन्वितः ॥ २८ ॥ व्याध उवाच—मया हि पातिता जीवा उत्तमाऽधममध्यमाः । न श्रुता ईदृशी वाणी श्वापदानां कदाचन ॥ २९ ॥ कस्मिन् देशे त्वमुत्पन्ना कस्मात् स्थानादिहागता । कथयस्व प्रयत्नेन परं कौतूहलं हि मे ॥ ३० ॥ मुग्युवाच—श्रृणु त्वं लुब्धकश्रेष्ठ कथयामि तवाखिलम् । आसन् पूर्वं मदारम्यः स्वर्गे शक्रस्य चाप्सराः ॥ ३१ ॥ अनन्तरूपलावण्याः सौभाग्येन विगर्विताः । सौभाग्यमदपुष्टाङ्गो दानवो मदगर्वितः ॥ ३२ ॥ मयैव स कृतो भर्ता हिरण्याक्षो महासुरः । तेन सार्द्धं मया भुक्तं चिरकालं यथेप्सितम् ॥ ३३ ॥ अन्यस्मिन् दिवसे व्याध क्रीडन्त्या मेऽसुरेण च । प्रत्यहं प्रेक्षते नित्यं शङ्करस्याग्रतस्तदा ॥ ३४ ॥ यावद् गच्छाम्यहं तत्र तावन्मां शङ्करोऽब्रवीत् । क्व गता त्वं वरारोहे केन वा सङ्गता शुभे ॥ ३५ ॥ किं वा सौभाग्यगर्वेण नायाता मम मन्दिरम् ॥ सत्यं कथय शीघ्रं त्वं नो वा शापं ददामि ते ॥ ३६ । शापभीत्या मया तत्र इत्युक्तं शङ्कराग्रतः । श्रृणु देव प्रवक्ष्यामि शापानुग्रहकारक ॥ ३७ ॥ ममास्ति भर्ता विश्वेश दानवेन्द्रो महाबलः । तेन सार्धं मया देव क्रीडितं निजमन्दिरे ॥ ३८ ॥ तेनाहं नागता शीघ्रं सृष्टिसंहारकारक । रुद्रस्तद्वचनं श्रुत्वा सकोपो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३९ ॥ मृगः कामातुरो नित्यं हिरण्याक्षो भविष्यति । त्वं मृगी तस्य भार्या वै भविष्यसि न संशयः ॥ ४० ॥ त्यक्त्वा स्वर्गं तथा देवान् दानवं भोक्तुमिच्छसि । द्वादशाब्दानि भो भद्रे भविता शाप एव ते ॥ ४१ ॥ परस्परस्य शोकेन शापान्तोऽपि भविष्यति । अनुग्रहः पुनस्त्वेष शङ्करेण कृतः स्वयम् ॥ ४२ ॥ कदाचिद्व्याधप्रवरस्तव

सान्निध्यमाश्रितः । वधार्थं तव सम्प्राप्तः पुर्वंजन्म स्मरिष्यसि ॥ ४३ ॥ अत ऊर्ध्वं तदा रुद्रं दृष्ट्वा मोक्षमवाप्स्यसि । शङ्करो न मया दृष्टो वसत्यस्मिन् महावने ॥ ४४ ॥ ततो दुःखमनुप्राप्ता मांसमेदविवर्जिता । गर्भाक्रान्ता विशेषेण न वध्या चेति निश्चितम् ॥ ४५ ॥ तत्कुटुम्बस्य ते नूनं भोजनं न भविष्यति । आयास्यति मृगी त्वन्या मार्गेणानेन लुब्धक ॥ ४६ ॥ पीना यौवनसम्पन्ना बहुमांसा मदोद्धता । भोजनं सकुटुम्बस्य तव सद्यो भविष्यति ॥ ४७ ॥ अथवाऽन्यो मृगो व्याध पानार्थं तु जलाशये । आगमिष्यति प्रत्यूषे क्षुधार्त्तस्य न संशयः ॥ ४८ ॥ गर्भं त्यक्त्वा॰पुनः प्रातर्बालान् सन्दिश्य बन्धुषु । शपथैरागमिष्यामि सन्दिश्य च सखीजनम् ॥ ४९ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा व्याधो विस्मयमागतः । क्षणमेकं तथा स्थित्वा व्याधो वचनमब्रवीत् । ५० ॥ नागमिष्यति चेदन्यो जीवस्त्वमपि गच्छसि । क्षुधया पीडितोऽहं वै कुटुम्बश्च विशेषतः ॥ ५१ ॥ प्रातस्त्वया मम गृहमागन्तव्यं यथातथम् । शपथं च व्रज त्वं हि यथा मे प्रत्ययो भवेत् ॥ ५२ ॥ पृथिवीवायुरादित्याः सत्ये तिष्ठन्ति देवताः । तस्मात् सत्येन गन्तव्यं भवत्या स्वगृहं प्रति ॥ ५३ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा गर्भार्ता सा मृगी तदा । चक्रे सत्यप्रतिज्ञां वै व्याधस्याग्रे पुनः पुनः ॥ ५४ ॥ मृग्युवाच—द्विजो भूत्वा तु यो व्याध वेदभ्रष्टोऽभिजायते । स्वाध्यायसन्ध्यारहितः सत्यशौचविवर्जितः ॥ ५५ ॥ अविक्रयाणां विक्रेता अपूज्यानां च याजकः । तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ५६ ॥ दुष्टबुद्धौ तु यत्पापं धूर्ते वा ग्रामकण्टके ॥ नास्तिके च विशीले च परदाररते तथा ॥ ५७ ॥ वेदविक्रयिणे चैव शवसूतकभोजने । मृतशय्याप्रतिग्राहे मातापित्रोरपालके ॥ ५८ ॥ दानं दातुं प्रवृत्तस्य योऽन्तरायकरो नरः । तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥५९॥ देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं ब्रह्मद्रव्यं हरेत्तु यः । तस्य पापेन लिप्स्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥६०॥ दीपं दीपेन यः कुर्यात् पादं पादेन धावयेत् । तस्य पापेन॰॥६१॥ भर्तारं स्वामिनं मित्रमात्मानं बलमेव च । गां विप्रं गुरुं नारीं यो मारयति दुर्मतिः । तस्य पापेन॰॥६२॥अवैष्णवे च यत्पापं

यत्पापं दाम्भिके जने। अजितेन्द्रियधूर्ते च परदोषानुकीर्तने ॥ ६३ ॥ कृतघ्ने च कदर्ये च परदाररते तथा। सदाचारविहीने च परपीडाप्रदायके ॥ ६४ ॥ परपैशुन्ययुक्ते च कन्याविक्रयकारके। परापवादसन्तुष्टे सर्वधर्मविवर्जिते ॥ ६५ ॥ वृषलीपतौ वार्धुषौ पित्रोरन्तरदायके। हेतुके बकवृत्तौ च कूटसाक्षिप्रदे तथा। एतेषां पातकं मह्यं यदि नायामि ते गृहम् ॥ ६६ ॥ यत्पापं ब्रह्महत्यायां पितृमातृवधे तथा। तस्य पापेन० ॥ ६७ ॥ यत्पापं लुब्धकानां च यत्पापं गरदायिनाम्। तेन पापेन० ॥ ६८ ॥ द्विभार्यः पुरुषो यस्तु समदृष्ट्या न पश्यति। तेन पापेन० ॥ ६९ ॥ सकृद् दत्त्वा तु यः कन्यां द्वितीयाय 'प्रयच्छति। तस्य पापेन० ॥ ७० ॥ कथायां कथ्यमानायामन्तरं कुरुते नरः। तेन पापेन० ॥ ७१ ॥ पतिनिन्दापरो नित्यं वेदनिन्दापरो हि यः। तेन पापेन० ॥ ७२ ॥ यस्य सङ्ग्रहणी भार्या ब्राह्मणी च विशेषतः। तस्याः पापेन० ॥७३॥ प्रेतश्राद्धे तु यो भुंक्ते पतिते बहुयाजके। असच्छास्त्रार्थनिरते पुराणार्थविवर्जिते ॥ ७४ ॥ मूर्खे पाखण्डनिरते क्रयविक्रयके द्विजे। एतेषां पातकं मह्यं यदि नायामि ते गृहम् ॥ ७५ ॥ एकाकी मिष्टमश्नाति भार्यापुत्रविवर्जितः। आत्मजां गुणसम्पन्नां समानसदृशे वरे ॥ ७६ ॥ न प्रयच्छति यः कन्यां नरो वा ज्ञानदुर्लभः। तस्य पापेन० ॥ ७७ ॥ मृगीवाक्यं ततः श्रुत्वा लुब्धको हृष्टमानसः। संहृत्य बाणसन्धानं मुमोच हरिणीं तदा ॥ ७८ ॥ तस्या मुक्तिप्रभावेण लिङ्गस्यापि प्रपूजनात्। तस्मिन्नेव क्षणे जातेऽपरा प्राप्ता मृगी तदा ॥ ७९ ॥ सन्त्रस्ता भयसम्मग्ना पतिमन्वेष्यती मुहुः। जालिमध्ये स्थितेनाऽथ दृष्टा सा लुब्धकेन तु ॥ ८० ॥ पुनर्वृक्षस्य पत्राणि त्रोटयित्वा करेण तु। क्षिप्तानि दक्षिणे भागे लिङ्गोपरि दिदृक्षया ॥ ८१ ॥ तस्या वधार्थे तेनाऽथ बाणो धनुषि सन्धितः। तिष्ठंस्तत्रैकचित्तेन कुटुम्बार्थं जिघांसया ॥ ८२ ॥ निरीक्ष्य लुब्धको यावद् बाणं तस्यां विमुञ्चति। तावन् मृग्या स सन्दिष्टो दृष्ट्वा तं विह्वलाऽभवत् ॥ ८३ ॥ अद्यैव भगिनी मेऽपि लुब्धकेन विनाशिता। मम किं जीवितव्येन तस्याः दुःखेन पीडिता ॥ ८४ ॥ वरं मृत्युर्न

शोको वै दृष्ट्वा व्याधं विशेषतः । एवं संचिन्त्य हरिणी लुब्धकं वाक्यमब्रवीत् ॥ ८५ ॥ धनुर्धरवर व्याघ सर्वजीवनिकृन्तन । देहि मे वचनं चैकं पश्चात्त्वं मां निपातय ॥८६॥ आयाता हरिणी चैका मार्गेणानेन लुब्धक । समायाताऽथवा नैव सत्यं कथय सुव्रत ॥ ८७ ॥ तच्छ्रुत्वा लुब्धकस्तत्र विस्मृतेक्षण ऐक्षत । तस्यास्तु यादृशी वाणी अस्याश्चैव तु तादृशी ॥ ८८ ॥ सा चैषा चागता नूनं प्रतिज्ञापालनाय च । अथ वाऽन्या समायाता तया या कथिता पुरा ॥ ८९ ॥ लुब्धक उवाच—अहोरात्रं कृतं कष्टं कुटुम्बार्थे मया मृगि । अधुना त्वां हनिष्यामि देवानां स्मरणं कुरु ॥ ९० ॥ व्याघोक्तवचनं श्रुत्वा हरिणी दुःखिता भृशम् । व्याधं प्राह रुदिता वै भो मां व्याध निपातय ॥ ९१ ॥ तेजो वलं तथा सर्वं निर्दग्धं विरहाग्निना । अहं प्राणान् प्रमोक्ष्यामि भोजनं ते न जायते ॥ ९२ ॥ वलवांश्च महातेजो मदमांससमन्वितः । अन्यश्च पीनगौराङ्गो मृगो ह्यत्रागमिष्यति ॥ ९३ ॥ अहं च दुर्बला नूनं मेदमांसविवर्जिता । केवलं पापभाक् त्वं हि मम प्राणविमोचकः ॥ ९४ ॥ मार्गेणानेन भो व्याध आगमिष्यति संस्फुटम् । तं हत्वा तव भो व्याध तृप्तिर्नूनं भविष्यति ॥ ९५ ॥ तथोक्तं लुब्धकः श्रुत्वा किं करोमीति चिन्त्य च । मृगी प्राह सयुक्तार्थमेष मे निश्चयो हृदि ॥ ९६ ॥ सञ्चिन्त्य लुब्धकः प्राह मृगीं शोकातुरां कृशाम् । सत्यं वद महाभागे प्रत्ययो मे यथा भवेत् ॥ ९७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरिणी दुःखकर्शिता । चक्रे सत्यप्रतिज्ञां तु व्याधस्याग्रे पुनः पुनः ॥ ९८ ॥ मृग्युवाच—क्षत्रियस्य रणं श्रुत्वा संग्रामं यो न गच्छति । तस्य पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ॥ ९९ ॥ भेदयन्ति तडागानि वापीनां च गवामपि । मार्गस्थानं च ये घ्नन्ति सर्वसत्त्वभयङ्कराः ॥ १०० ॥ तेषां वै पातकं मह्यं यदि नायामि ते गृहम् । एतच्छ्रुत्वा तु व्याधेन साऽपि मुक्ता मृगी तदा ॥ १०१ ॥ जलं पीत्वा तु वहुशो गता सद्यो यथागतम् । जालिमध्ये स्थितस्यापि द्वितीयः प्रहरो गतः ॥ १०२ ॥ त्रुटित्वा बिल्वपत्राणि पुनर्देव नियोजयेत् । पीडिताऽतीव शीतेन क्षुधया गृहचिन्तया ॥ १०३ ॥ शिवः शिवेति जल्पन् वै न निद्रा-

मुपलब्धवान् ॥ कृतं सुरार्चनं तेन प्रहरे प्रहरे गते ॥ १०४ ॥ वीक्षंश्चैव दिशः सर्वाः सत्त्वमार्गान् निरीक्षयेत् । लुब्धकेनाऽथ दृष्टोऽसौ हरिणः स्फुरितेक्षणः ॥ १०५ ॥ विलोकयन् दिशः सर्वा मार्गमाणो मृगीपदान् । सौभाग्यबलदर्पाढ्यो मदनान् मत्तपीवरः ॥ १०६ ॥ तं दृष्ट्वा बाणमुद्यम्य आकर्णं तुष्टचेतसा । बाणं मुञ्चति तावद् वै यावद् दृष्टो मृगेण तु ॥ १०७ ॥ कालरूपं तु तं दृष्ट्वा मृगश्चिन्तितवान् भृशम् । निश्चयो भविता मृत्युर्गोचरोऽस्य गतो यतः ॥ १०८ ॥ भार्या प्राणसमा मेऽद्य व्याधेनेह निपातिता । तया विरहितस्याद्य नूनं मृत्युर्भविष्यति ॥१०९॥ हाहा कालकृतात् पापाद् यद् भार्यादुःखमागतम् । भार्यया न समं सौख्यं गृहेऽपि च वनेऽपि च ॥११०॥ तया विना च धर्मोऽस्ति नार्थकामौ विशेषतः । वृक्षमूलेऽपि दयिता यत्र तिष्ठति तद् गृहम् ॥ १११ ॥ प्रासादोऽपि तया हीनः कान्तारादतिरिच्यते । धर्मकामार्थकार्येषु भार्या पुंसः सहायिनी ॥ ११२ ॥ विदेशेन गतेनापि सा वै विश्वासकारिणी । नास्ति भार्यासमो बन्धुर्नास्ति भार्यासमं सुखम् ॥ ११३ ॥ नास्ति भार्यासमं लोके नरस्यार्तस्य भेषजम् । यस्य भार्या गृहे नास्ति साऽपि च प्रियवादिनी । अरण्यं तेन गन्तव्यं यथाऽरण्यं तथा गृहम् ॥ ११४ ॥ एका प्राणसमा मेऽभूद् द्वितीया प्राणदा मम । इत्येवं चिन्तयित्वा तु लुब्धकं वाक्यमब्रवीत् ॥११५॥ मृग उवाच—शृणु व्याध नरश्रेष्ठ आमिषाहारभोजन । यत्तो पृच्छाम्यहं वीर तद्वचक्तं वद मे प्रभो ॥११६॥ आगतं हरिणीयुग्मं केन मार्गेण तद्गतम् । त्वया विनाशितं वाऽद्य सत्यं कथय मेऽधुना ॥११७॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लुब्धको विस्मयं गतः । असावपि न सामान्यो देवता काप्यनुत्तमा ॥ ११८ ॥ उवाच लुब्धकः सद्यः तस्याग्रे वाक्यमुत्तमम् । ते गतेऽनेन मार्गेण शपथं कृत्वा ममाग्रतः ॥ ११९ ॥ ताभ्यां दत्तोऽसि भुक्त्यर्थे मम त्वमधुना यतः । सम्प्रति त्वां हनिष्यामि नैव मोक्ष्यामि कर्हिचित् ॥ ११० ॥ मृग उवाच—तत्सत्यं कीदृशं ताभ्यां वाक्यमुक्तं तवाग्रतः । येन ते प्रत्ययो जातो मुक्तं तद्धरिणीद्वयम् ॥ १२१ ॥ ते गते केन मार्गेण ये मुक्ते व्याध तेऽधुना ॥ १२२ ॥

व्याध उवाच—ते गतेऽनेन मार्गेण स्वमाश्रमपदं ययौ। व्याधेन कथितास्ताभ्यां शपथा ये कृतास्तदा ॥ १२३ ॥
मृग उवाच—ताभ्यां व्याध यदुक्तं च तत्करोति न चान्यथा। प्रभाते त्वद्गृहं नूनमागमिष्यामि निश्चितम् ॥१२४॥
भार्या ऋतुमती मेऽद्य कामार्ताप्यधुना भृशम्। मत्वा गृहेषु भुक्त्वा तामापृच्छ्य च सुहृज्जनान् ॥ १२५ ॥
शपथैरागमिष्यामि गृहं ते नात्र संशयः। मद्देहं स्वगृहं नाद्य नेतुं शक्तः कथञ्चन ॥ १२६ ॥ तद् वृथा मरणं मे
स्याद्यदि त्वं चाद्य घातक ॥ १२७ ॥ लुब्धक उवाच—असत्यं भाषसे धूर्त प्रतारयसि मां वृथा। ज्ञात्वा मृत्युं
स्थितं तत्र तदागच्छति कोऽल्पधीः ॥ १२८ ॥ व्याधस्य वचनं श्रुत्वा हरिणो वाक्यमब्रवीत्। शपथैरागमिष्यामि
यथा ते प्रत्ययो भवेत् ॥ १२९ ॥ व्याध उवाच—मृग त्वं शपथान् ब्रूहि विश्वासो मे भवेद्यथा। यथा हि प्रेषयामि
त्वां स्वगृहं प्रति कामुकम् ॥ १३० ॥ मृग उवाच—भर्तारं वञ्चयेद्या स्त्री स्वामिनं वञ्चते नरः। मित्रं च वञ्चयेद्यस्तु
गुरुद्रोहं करोति यः ॥ १३१ ॥ विरसं तु रसं दद्यात् प्रेमभेदं करोति यः। भेदयेद् यस्तडागानि प्रासादं
पातयेत्तु यः ॥ १३२॥ प्रवादशीलो यो विप्रः क्रयविक्रयकारकः। सन्ध्यास्नानविहीनश्च वेदशास्त्रविवर्जितः
॥१३३॥ मद्यपाः स्त्रीषु रक्ता ये परनिन्दारताश्च ये। परस्त्रीसेवका विप्राः परपैशुन्यसूचकाः ॥ १३४ ॥ शूद्रान्नभोजिनो
ये च भार्यापुत्रांस्त्यजन्ति ये। वेदनिन्दापरा ये च वेदशास्त्रार्थनिन्दकाः। तेषां वै पातकं मह्यं यदि
नायामि ते गृहम् ॥१३५॥ आदित्यं विष्णुमीशानं गणाध्यक्षं तु पार्वतीम्। एतास्त्यक्त्वा गृहे मूढो योऽन्यं पूजयते
नरः। तस्य पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ॥१३६॥ यो गाः स्पृशति पादेन उदितेऽर्के च सुप्यति। एकाकी
मिष्टमश्नाति तस्य पापं च याम्यहम् ॥ १३७ ॥ भर्तारमर्थहीनं च कुरूपं व्याधिपीडितम्। या न पूजयते नारी
तस्याः पापस्य भागहम् ॥ १३८ ॥ अथ किं बहुनोक्तेन भो लुब्धक तवाग्रत। यदि नायासि ते गेहं मम सत्यं
भवेद्धि तत् ॥ १३९ ॥ तेन वाक्येन सन्तुष्टो व्याधो वै वीतकल्मषः। संहृत्य धनुषो बाणं मृगो मुक्तो गृहं प्रति
॥ १४० ॥ जलं पीत्वा तु हरिणः प्रविष्टो गहनं वनम। गतोऽसौ तेन मार्गेण गतं येन मृगीद्वयम् ॥१४१॥ लुब्ध-

केन तदा तत्र जालिमध्ये स्थितेन हि। प्रत्यूषे बिल्वपत्राणि त्रोटयित्वा प्रतप्यं च ॥१४२॥ शिवः शिवेति जल्पन् वै स्थितस्तत्रैव जागृतः। अथोदिते सूर्यविम्वे अकामाज्जागरे कृते। पापान् मुक्तोऽप्यसौ सद्यः शिवपूजाप्रभावतः ॥ १४३ ॥ यावद् दिशो निरीक्षेत निराशो भोजनं प्रति। तावच्छिशुवृता चान्या मृगी तत्र समागता ॥ १४४ ॥ दृष्ट्वा मृगीं तदा व्याधो बाणं धनुषि योजयेत्। यावन्मुञ्चत्यसौ बाणं तावदुक्तं तया तदा ॥ १४५ ॥ मा बाणं मुञ्च धर्मात्मन् धर्मं मा मुञ्च सुव्रत। अहं न वध्या सर्वेषामिति शास्त्रे विनिश्चितः ॥ १४६ ॥ राजानो मिथुनासक्तास्तनयो व्याधिपीडितः। न हन्तव्यो मृगा राज्ञा मृगी च शिशुना वृता ॥ १४७ ॥ अथवा धर्ममुत्सृज्य मां हनिष्यसि मानव। वालकं स्वगृहे मुक्त्वा सखीनां च निवेद्य वै ॥ १४८ ॥ शपथैरागमिष्यामि व्याध शृणु वचो मम। या स्वभर्तारमुत्सृज्य परपुंसि रता सदा। तस्याः पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ॥ १४९ ॥ मद्यं मांसं विषं दुग्धं नीलकुम्भफलानि च। एतानि विक्रयेद्यस्तु नरो मोहसमन्वितः। तस्य पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहम् ॥ ५० ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा व्याधो विस्मयमागतः। ततो व्याधेन सा मुक्ता गता वै निजमन्दिरम् ॥ १५१ ॥ व्याधोऽपि तत्सरस्त्यक्त्वा जगाम स्वगृहं प्रति। सर्वेषां वचनं ध्यायन् मृगाणां सत्यवादिनम् ॥ १५२ ॥ एतेषां घातको नित्यमहं गच्छामि कां गतिम्। दृष्ट्वा गृहं समायातो बालकाः क्षुधयावृताः ॥ १५३ ॥ नान्नं मांसं गृहे तस्य भोजनं येन जायते। निरामिषं तु तं दृष्टा निराशास्तेऽभवंस्तदा ॥ १५४ ॥ व्याधोऽपि च तदा तत्र तेषां वाक्यानि संस्मरन्। न भोजनं न निद्रां च लभते विस्मयान्वितः ॥ १५५ ॥ आगमिष्यन्ति ते नूनं शपथैरपि यन्त्रिताः। न तानहं वधिष्यामि सतां व्रतमनुस्मरन् ॥ १५६ ॥ लुब्धकेन तदा मुक्तो हरिणः शपथैर्गतः। स्वमाश्रमं तु सम्प्राप्तो यत्र तद्धरिणीद्वयम् ॥ १५७ ॥ सद्यःप्रसूता सा चैका द्वितीया रतिलालसा। तृतीयापि समायता बालकैर्बहुभिर्वृता ॥ १५८ ॥ सर्वाः समेता एकत्र मरणे कृतनिश्चयाः। परस्परं प्रजल्पन्त्यो लुब्धकस्य विचेष्टितम् ॥ १५९ ॥ आयातां हरिणीं भुक्त्वा रूपाढ्यां

रतिलालसाम् । कृतकृत्योऽभवत्तत्र ताभ्यो वाक्यमथाऽब्रवीत् ।।१६०।। युष्माभिरिह संस्थेयं कर्तव्यं प्राणरक्षणम् । व्याघ्रादिभ्यो लुब्धकेभ्यो बालकानां प्रयत्नतः ।। १६१ ।। अहंमत्यानुगो भार्या न भुङ्क्ते मोहसंवृतः । भ्रूणहा स तु विज्ञेयस्तस्य जन्म निरर्थकम् ।। १६२ ।। सन्तानात् स्वर्गमाप्नोति इह कोर्तिश्च शाश्वती । सन्ततिर्यत्नतः पाल्या स्वर्गसौख्यप्रदायिका ।। १६३ ।। अपुत्रस्य गतिर्नास्ति इहलोके परत्र च । येन केनाप्युपायेन पुत्रमुत्पादयेत् पुमान् ।। १६४ ।। मया च तत्र गन्तव्यं यत्र व्याधस्य मन्दिरम् । सत्यं तु पालनीयं स्यात् सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ।। १६५ ।। एतच्छ्रुत्वा तु ता नार्यो वाक्यमूचुः सुदुःखिताः । वयमप्यागमिष्यामस्त्वया सार्धं मृगोत्तम ।। १६६ ।। तथा ते विप्रियं कान्त न स्मरामः कदाचन । पुष्पितेषु वनान्तेषु नदोनां संगमेषु च ।। १६७ ।। कन्दरेषु च शैलानां युष्माभी रक्षिता वयम् । न कार्यमद्य ह्यस्माकं व्रीडितेन त्वया विना ।। १६८ ।। नारीणां पतिहीनानां जीवितैः किं प्रयोजनम् । मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः । अमितस्य च दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ।। १६९ ।। अपि द्रव्ययुता नारी बहुपुत्रसुहृद्वृता । सा शोच्या बन्धुवर्गस्य पतिहीना कुलाङ्गना ।। १७० ।। गन्धमाल्यैः स्त्रियो नित्यं प्रीयन्ते भर्तुरग्रतः । नातन्त्रा वाद्यते वीणा नाऽचक्रो भ्रमते रथः ।। १७१ ।। नापतिः सुखमाप्नोति नारी पुत्रशतैर्वृता । नास्ति भर्तृसमो धर्मो नास्ति धर्मसमः सुहृत् । नास्ति भर्तृसमो नाथः स्त्रीणां भर्ता परा गतिः ।। १७२ ।। एवं विलप्य ताः सर्वा मरणे कृतनिश्चयः । बालकैस्तैः समायुक्ता भर्तृशोकेन दुःखिताः ।। १७३ ।। मृगस्तासां वचः श्रुत्वा हृदि चिन्तापरोऽभवत् । गन्तव्यं किं न गन्तव्यं मया व्याधस्य मन्दिरम् ।। १७४ ।। एकदा सुकृतं रक्षन् कुटुम्बस्य क्षयो भवेत् । तदन्तिकं न चेद्यामि मम सत्यं क्षयं व्रजेत् ।। १७५ ।। वरं पुत्रस्य मरणं भार्याया आत्मनस्तथा । सत्याकृतपरो नित्यमाकल्पं रौरवं व्रजेत् ।। १७६ ।। तस्मात् सत्यं पालनीयं नरैः श्रेयोऽर्थिभिः सदा । एवं सञ्चिन्त्य हरिणो धर्मान् हृदि मनोरमान् ।। १७७ ।। ताभिः सहैव च शनैः क्षणात्तस्याश्रमं ययौ । तस्मिन् सरसि

संस्नात्वा कर्मन्यासं चकार ह ॥ १७८ ॥ तल्लिङ्गं प्रणिपत्याशु हृदि ध्यायन् सदाशिवम् । मानं पानं परित्यज्य मैथुनं भोगमेव च ॥ १७९ ॥ कामं क्रोधं तथा लोभं मायां मोक्षविनाशिनीम् । वन्दयित्वा तु तं देवं लुव्धकाभिमुखं ययौ ॥ १८० ॥ तस्य भार्याश्च पुत्राश्च मरणे कृतनिश्चयाः । अनाशकं व्रतं गृह्य पृष्ठलग्नाः समाययुः ॥ १८१ ॥ भार्यापुत्रैः परिवृतो मृगस्तं देशमागतः । क्षुधितैर्वालकैर्युक्तो लुव्धको यत्र तिष्ठति ॥ १८२ ॥ अथ तं देशमागत्य कुटुम्वेन समन्वितः । पालयन् सत्यवाक्यानि लुव्धकं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८३ ॥ मृग उवाच—जहि मां प्रथमं व्याध पश्चादेताः क्रमेण तु । वालका मे ततः पश्चात् हन्यन्तां मा विलम्वय ॥ १८४ ॥ लुव्धकैस्तु मृगा भक्ष्य नास्ति दोषः कदाचन । वयं यास्यामः स्वर्लोकं सत्यपूता न संशयः ॥ १८५ ॥ तथा ते सकुटुम्वस्य प्राणयात्रा भविष्यति । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं मृगेण परिभाषितम् । आत्मानं निन्दयित्वा तु लुव्धको वाक्यमब्रवीत् ॥ १८६ ॥ लुव्धक उवाच—अहो मृग महासत्त्व गच्छ गच्छ स्वमाश्रमम् । आमिषेण नाहं कार्यं यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥ १८७ ॥ जीवानां घातने पापं वन्धने तर्जने तथा । न मे पापं करिष्यामि कुटुम्वार्थे कदाचन ॥ १८८ ॥ त्वं गुरुर्मम धर्माणामुपदेष्टा मृगोत्तम । गच्छ गच्छ मृगश्रेष्ठ कुटुम्वेन समन्वितः । मया त्यक्तानि शस्त्राणि सत्यधर्मः समाश्रितः ॥ १८९ ॥ मृग उवाच—कर्मन्यासमहं कृत्वा त्वत्सकाशमिहागतः । हन्यतां हन्यतां शीघ्रं न ते पापं भविष्यति ॥ १९० ॥ मया दत्ता पुरा वाचा तया वद्धो न याम्यहम् । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं लुव्धको वाक्यमब्रवीत् ॥ १९१ ॥ लुव्धक उवाच—त्वं वन्धुस्त्वं गुरुस्त्राता त्वं मे माता पिता सुहृत् । मया त्यक्तानि शस्त्राणि त्यक्तं मायादिकं वलम् ॥ १९२ ॥ कस्य भार्या सुताः कस्य कुटुम्वश्च महामृग । तैः स्वकर्म च भोक्तव्यं मृग गच्छ यथासुखम् ॥ १९३ ॥ इत्युक्त्वा स तदा तूर्णं वभञ्ज सशरं धनुः । मृगं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य क्षमापयेत् ॥ १९४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे नेदुर्देवदुन्दुभयो दिवि । आकाशात् पुष्पवृष्टिस्तु पपात सुमनोहरा १९५ ॥ तदा दूतः समायातो विमानं गृह्य शोभनम् ॥ १९६ ॥ देवदूत उवाच—अहो व्याध महासत्त्व सर्वसत्त्व-

रतिलालसाम् । कृतकृत्योऽभवत्तत्र ताभ्यो वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥१६०॥ युष्माभिरिह संस्थेयं कर्तव्यं प्राणरक्षणम् ।
व्याघ्रादिभ्यो लुब्धकेभ्यो वालकानां प्रयत्नतः ॥ १६१ ॥ अहंमत्यानुगो भार्या न भुङ्क्ते मोहसंवृतः । भ्रूणहा
स तु विज्ञेयस्तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ १६२ ॥ सन्तानात् स्वर्गमाप्नोति इह कीर्तिश्च शाश्वती । सन्ततिर्यत्नतः
पाल्या स्वर्गसौख्यप्रदायिका ॥ १६३ ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति इहलोके परत्र च । येन केनाप्युपायेन पुत्रमुत्पादयेत्
पुमान् ॥ १६४ ॥ मया च तत्र गन्तव्यं यत्र व्याधस्य मन्दिरम् । सत्यं तु पालनीयं स्यात् सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः
॥ १६५ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु ता नार्यो वाक्यमूचुः सुदुःखिताः । वयमप्यागमिष्यामस्त्वया सार्धं मृगोत्तम ॥ १६६ ॥
तथा ते विप्रियं कान्त न स्मरामः कदाचन । पुष्पितेषु वनान्तेषु नदोनां संगमेषु च ॥ १६७ ॥ कन्दरेषु
च शैलानां युष्माभी रक्षिता वयम् । न कार्यमद्य ह्यस्माकं क्रीडितेन त्वया विना ॥ १६८ ॥ नारीणां पतिहीनानां
जीवितैः किं प्रयोजनम् । मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः । अमितस्य च दातार भर्तारं
का न पूजयेत् ॥ १६९ ॥ अपि द्रव्ययुता नारी बहुपुत्रसुहृद्वृता । सा शोच्या बन्धुवर्गस्य पतिहीना
कुलाङ्गना ॥ १७० ॥ गन्धमाल्यैः स्त्रियो नित्यं प्रीयन्ते भर्तुरग्रतः । नातन्त्रा वाद्यते वीणा नाऽचक्रो भ्रमते
रथः ॥ १७१ ॥ नापतिः सुखमाप्नोति नारी पुत्रशतैर्वृता । नास्ति भर्तृसमा धर्मो नास्ति धर्मसमः सुहृत् ।
नास्ति भर्तृसमो नाथः स्त्रीणां भर्ता परा गतिः ॥ १७२ ॥ एवं विलप्य ताः सर्वा मरणे कृतनिश्चयः ।
वालकैस्तैः समायुक्ता भर्तृशोकेन दुःखिताः ॥ १७३ ॥ मृगस्तासां वचः श्रुत्वा हृदि चिन्तापरोऽभवत् ।
गन्तव्यं किं न गन्तव्यं मया व्याधस्य मन्दिरम् ॥ १७४ ॥ एकदा सुकृतं रक्षन् कुटुम्बस्य क्षयो भवेत् ।
तदन्तिकं न चेद्यामि मम सत्यं क्षयं व्रजेत् ॥ १७५ ॥ वरं पुत्रस्य मरणं भार्याया आत्मनस्तथा ।
सत्याकृतपरो नित्यमाकल्पं रौरवं व्रजेत् ॥ १७६ ॥ तस्मात् सत्यं पालनीयं नरैः श्रेयोऽर्थिभिः सदा । एवं
सञ्चिन्त्य हरिणो धर्मान् हृदि मनोरमान् ॥ १७७ ॥ ताभिः सहैव च शनैः क्षणात्तस्याश्रमं ययौ । तस्मिन् सरसि

संस्नात्वा कर्मन्यासं चकार ह ॥ १७८ ॥ तल्लिङ्गं प्रणिपत्याशु हृदि ध्यायन् सदाशिवम् । मानं पानं परित्यज्य मैथुनं भोगमेव च ॥ १७९ ॥ कामं क्रोधं तथा लोभं मायां मोक्षविनाशिनीम् । वन्दयित्वा तु तं देवं लुब्धकाभिमुखं ययौ ॥ १८० ॥ तस्य भार्याश्च पुत्राश्च मरणे कृतनिश्चयाः । अनाशकं व्रतं गृह्य पृष्ठलग्नाः समाययुः ॥ १८१ ॥ भार्यापुत्रैः परिवृतो मृगस्तं देशमागतः । क्षुधितैर्बालकैर्युक्तो लुब्धको यत्र तिष्ठति ॥ १८२ ॥ अथ तं देशमागत्य कुटुम्बेन समन्वितः । पालयन् सत्यवाक्यानि लुब्धकं वाक्यमब्रवीत् ॥ १८३ ॥ मृग उवाच—जहि मां प्रथमं व्याध पश्चादेताः क्रमेण तु । बालका मे ततः पश्चात् हन्यन्तां मा विलम्बय ॥ १८४ ॥ लुब्धकैस्तु मृगा भक्ष्य नास्ति दोषः कदाचन । वयं यास्यामः स्वर्लोकं सत्यपूता न संशयः ॥ १८५ ॥ तथा ते सकुटुम्बस्य प्राणयात्रा भविष्यति । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं मृगेण परिभाषितम् । आत्मानं निन्दयित्वा तु लुब्धको वाक्यमब्रवीत् ॥ १८६ ॥ लुब्धक उवाच—अहो मृग महासत्त्व गच्छ गच्छ स्वमाश्रमम् । आमिषेण नाहं कार्यं यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥ १८७ ॥ जीवानां घातने पापं बन्धने तर्जने तथा । न मे पापं करिष्यामि कुटुम्बार्थे कदाचन ॥ १८८ ॥ त्वं गुरुर्मम धर्माणामुपदेष्टा मृगोत्तम । गच्छ गच्छ मृगश्रेष्ठ कुटुम्बेन समन्वितः । मया त्यक्तानि शस्त्राणि सत्यधर्मः समाश्रितः ॥ १८९ ॥ मृग उवाच—कर्मन्यासमहं कृत्वा त्वत्सकाशमिहागतः । हन्यतां हन्यतां शीघ्रं न ते पापं भविष्यति ॥ १९० ॥ मया दत्ता पुरा वाचा तया बद्धो न याम्यहम् । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं लुब्धको वाक्यमब्रवीत् ॥ १९१ ॥ लुब्धक उवाच—त्वं बन्धुस्त्वं गुरुस्त्राता त्वं मे माता पिता सुहृत् । मया त्यक्तानि शस्त्राणि त्यक्तं मायादिकं बलम् ॥ १९२ ॥ कस्य भार्या सुताः कस्य कुटुम्बश्च महामृग । तैः स्वकर्म च भोक्तव्यं मृग गच्छ यथासुखम् ॥ १९३ ॥ इत्युक्त्वा स तदा तूर्णं बभञ्ज सशरं धनुः । मृगं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य क्षमापयेत् ॥ १९४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे नेदुर्देवदुन्दुभयो दिवि । आकाशात् पुष्पवृष्टिस्तु पपात सुमनोहरा १९५ ॥ तदा दूतः समायातो विमानं गृह्य शोभनम् ॥ १९६ ॥ देवदूत उवाच—अहो व्याध महासत्त्व सर्वसत्त्व-

क्षयङ्कर। विमानमिदमारुह्य सदेहं स्वर्गमाविश ॥ १९७ ॥ चतुर्दश्याः प्रभावेण पातकं ते क्षयं गतम्। उपवासस्तु सञ्जातो निशि जागरणं कृतम् ॥ १९८ ॥ यामे यामे कृता पूजा अज्ञानेन शिवस्य च। सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छ त्वं भद्र मन्दिरम् ॥ १९९ ॥ विमानं च समारुह्य सत्याच्चित्रपदं व्रज। मृगराज महासत्त्व भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ २०० ॥ भार्यात्रितयसंयुक्तो नक्षत्रपदमाप्नुहि। तव नाम्ना तु नक्षत्रं लोके ख्यातं भविष्यति ॥ २०१ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु वचनं लुब्धकेन समन्वितम्। विमानं तु तदारुह्य नक्षत्रपदमागतः ॥ २०२ ॥ हरिणीद्वयमन्वेनं पृष्ठतो मृगमेव च। तारात्रितयसंयुक्तं मृगशीर्षं तदुच्यते ॥ २०३ ॥ बालकं द्वितयं चाग्रे तृतीया पृष्ठतो मृगो। पृष्ठतस्तस्य सम्प्राप्ता मृगशीर्षस्य सन्निधौ ॥ २०४ ॥ ऋक्षराड् दृश्यतेऽद्यापि ऋक्षं व्योम्नि ह्यनुत्तमम् ॥ २०५ ॥

उपवासं करिष्यन्ति जागरेण समन्वितम्। यथोक्तशास्त्रमार्गेण तेषां मोक्षो न संशयः ॥ २०६ ॥
चतुर्दशीसमं नास्ति व्रतं पापक्षयावहम्। यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २०७ ॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। प्राप्नोति तत्फलं सर्वं नात्र कार्या विचारणा ॥ २०८ ॥

इति श्रीलिङ्गपुराणोक्ता नरकनिवारणचतुर्दशीव्रतकथा समाप्ता।

अथ वसन्तपञ्चम्यां श्रीसरस्वतीपूजाविधिः

माघशुक्लपञ्चमी वसन्तपञ्चमी (१) । तत्र कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य शुद्धासने उपविश्य—'ओं अपवित्रः पवित्रो वे'ति पठित्वा पूजोपकरणद्रव्यमात्मानं चाभिषिच्य पञ्चदेवतां विष्णुं च पञ्चोपचारैः पूजयेत् । ततः कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अद्य माघे मासि शुक्ले पक्षे पञ्चम्यां तिथौ (अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सपरिवारस्य अथवा नानागोत्राणां नानानामधेयानामध्यापकानां छात्राणां च) उपस्थितशरीराविराधेन चतुर्वर्गफलप्राप्तिपूर्वकनिर्विघ्नतया सकलशास्त्रज्ञानप्राप्तिकामः सांगसवाहनसपरिवारायाः भगवत्याः श्रीसरस्वतीदेव्याः पूजनमहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्याञ्जलिं बद्ध्वा—ओं शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं, वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम् । हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां, वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥ इति सञ्चिन्त्य श्रावणकृत्यान्तपरिशिष्टोक्तविधिना शान्तिकलशस्थापनं कुर्यात् ।

---

(१) इयं पञ्चमी पूर्वविद्धा ग्राह्येति माधवादिमतानुयायिनो मैथिलादिपञ्चगौडाः । तथाहि, दिवोदासः—'माघशुक्ला पञ्चमी पूर्वविद्धा प्रशस्यते !' परविद्धैवेति दाक्षिणात्याः । तथा हि, आपस्तम्बे—'पञ्चमी तु प्रकर्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद ।'

वस्तुतस्त्वियं तिथियुग्मव्यवस्था उपवासव्रते । अत्र पूजाव्रते तु यस्मिन्नहनि विहितकाललाभस्तत्रैव पूजा कार्या । विहितकालस्तु—'पूर्वाह्णो वै देवानां मध्यं दिनं मनुष्याणामपराह्णः पितॄणाम् ।' इति स्मृतावुक्तेः ।

अन्यच्च दिनकरोद्योते–त्रेधाविभक्तदिवसे प्रातःकाले सुरार्चनम् । मध्याह्ने तीर्थकार्यञ्च सायं रक्षाकरी क्रिया ॥

ततः अक्षतान्यादाय—ओं सूर्यादि (१) नवग्रहाः इहागच्छत इह तिष्ठतेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ॐ सूर्यादिनवग्रहेभ्यो नमः। इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्। रातः ओं इन्द्रादिदशदिक्पालाः इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो नमः। इति पञ्चोपचारैः पूजयेत्।

ततः कुशपुष्पाक्षतैः—ओं आगच्छ हे महादेवि सर्वाभरणभूषिते। क्रियमाणां मया पूजां गृहाण परमेश्वरि॥ इत्यावाह्य देव्याः हृदये अनामिकाङ्गुष्ठाभ्यां—ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनो त्वरिष्टं यज्ञँ समिमं दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ। ॐ ह्लीं भूर्भुवः स्वः भगवति श्रीसरस्वति इहागच्छ इह तिष्ठ इह सुप्रतिष्ठिता भव। इति प्राणप्रतिष्ठां विधाय ध्यायेत्—ॐ तरुणशकलमिन्दुर्बिभ्रतो शुभ्रकान्तिः, कुचभणमिताङ्गी सन्निषण्णा सिताब्जे। निजकरकमलोद्यल्लेखनीपुस्तकश्रीः, सकलविभवसिद्ध्यै पातु वाग्देवता नः॥ ओं स्वागतमनुगृह्णीतोऽस्मि सुस्वागतमिदं शुभम्। प्रसन्ना भव देवेशि कृपां कुरु हरिप्रिये॥ इदं स्वागतं भगवत्यै श्रीसरस्वत्यै नमः। ॐ पाद्यं गृहाण देवेशि सर्वदुःखापहारकम्। त्रायस्व वरदे देवि नमस्ते भग-

---

दिनद्वये तदेकदेशव्याप्तौ तु परैव। तथाहि तत्रैव—शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः। 'युग्माग्निकृतुभूतानाम्' इति युग्मवाक्यं तु नेह प्रवर्तते, उपवासे सावकाशत्वात्। इयमेव पञ्चमी वसन्तपञ्चमी श्रीपञ्चमी च। तथाहि प्राणतोषिणीतन्त्रे—वसन्तं च समभ्यर्च्य कन्दर्पं सर्ति प्रिये। वसन्तरागश्रवणात् श्रियमाप्नोत्यभीप्सिताम्॥ श्रीपञ्चमी तु केचित् तां मुनयः प्रवदन्ति वै। वर्तयेदेकभक्तेन श्रियो न विच्युतिर्भवेत्॥ अत्रैव दिने हलप्रवाहो हलपूजां चेति मिथिलाचाराः।

(१) मात्स्ये—'नवग्रहमखं कृत्वा ततः कर्म समारभेत्। अन्यया फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित्॥' इति।

वत्प्रिये ॥ इदं पाद्यं भगवत्यै श्रीसरस्वत्यै नमः । ॐ दूर्वाक्षतसमायुक्तं गन्धपुष्पं तथा परम् । शोभनं शङ्खपात्रस्थमर्घ्यं देवि गृहाण मे ॥ इदमर्घ्यम्० । ओं जलं च शीतलं स्वच्छं नित्यं शुद्धं मनोहरम् । स्नानार्थं ते प्रयच्छामि वागीश्वरि प्रगृह्यताम् ॥ इदं स्नानीयम्० । इदमाचमनीयम्० । ॐ सुशुक्लं परमं देवि नूतनं सुमनोहरम् । मया निवेदितं भवत्या वस्त्रमेतत् प्रगृह्यताम् । इदं शुक्लवस्त्रं बृहस्पतिदैवतं भगवत्यै श्रीसरस्वत्यै नमः । ॐ शरीरं ते न जानामि चेष्टां चैव सरस्वति । मां रक्ष सर्वतो देवि गन्धानेतान् गृहाण च ॥ इदं श्रीखण्डचन्दनम्० । ओं रक्तानुलेपनं देवि स्वयं देव्या प्रकाशितम् । तद् गृहाण महाभागे शुभं देहि नमोऽस्तु ते । इदं रक्तचन्दनम्० । ॐ सिन्दूरं सर्वसाध्वीनां भूषणाय विनिर्मितम् । गृहाण वरदे देवि भूषणानि प्रयच्छ मे ॥ इदं सिन्दूराभरणं० । ॐ अक्षतं धान्यजं देवि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । प्राणदं सर्वभूतानां गृहाण वरदे शुभे ॥ इदमक्षतम्० । ओं पुष्पं मनोहरं दिव्यं सुगन्धं देवनिर्मितम् । हृद्यमद्भुतमाघ्रेयं देवि तत्प्रतिगृह्यताम् ॥ एतानि पुष्पाणि० । ओं अमृतोद्भवं श्रीवृक्षं शङ्करस्य सदा प्रियम् । पवित्रं ते प्रयच्छामि सर्वकामार्थसिद्धये ॥ इदं विल्वपत्रम्० । इदं दूर्वादलम्० । ओं सूत्रेण ग्रथितं माल्यं नानापुष्पसमन्वितम् । श्रीयुक्तं सुमनोहारि गृहाण परमेश्वरि ॥ इदं पुष्पमाल्यम्० । ओं वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः । मया निवेदितो भवत्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष धूपः० । ओं अग्निर्ज्योती रविर्ज्योतिश्चन्द्रज्योतिस्तथैव च । ज्योतिषामुत्तमो देवि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष दीपः० । ओं परमानन्दसौरभ्यं परिपूर्णदिगम्बरम् । गृहाण सौरभं दिव्यं कृपया जगदम्बिके ॥ इदं सुगन्धितद्रव्यम्० । ओं नैवेद्यं घृतसंयुक्तं नानारससमन्वितम् । मया निवेदितं भक्त्या गृहाण सुरपूजिते ॥ एतानि नानाविधनैवेद्यानि० । ततो मोदकम् (लड्डू)—ओं मोदकं स्वादु रुचिरं कर्पूरादिभिरन्वितम् । मिश्रं नानाविधैर्द्रव्यैः प्रतिगृह्याशु भुज्यताम् ॥ एतानि मोदकान्नानि० । ओं फलमूलानि सर्वाणि ग्राम्याऽरण्यानि यानि च । नानाविधसुगन्धीनि गृह्ण देवि

यथासुखम् ॥ एतानि नानाफलानि० । ओं पानीयं शीतलं स्वच्छं कर्पूरादिसुवासितम् । भोजने तृप्तिकृद्यस्मात् कृपया परिगृह्यताम् ॥ इदं पानीयम्० । ओं कर्पूरादि द्रव्याणि सुगन्धीनि महेश्वरि । गृहाण जगतां नाथे करोद्वर्तनहेतवे ॥ इदं करोद्वर्तनम्० । ओं आमोदवस्तुसुरभि कृतमेतदनुत्तमम् । गृहाणाचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम् ॥ इदमाचमनीयम्० । ओं पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीसमन्वितम् । संशोधितं सुगन्धं च ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं ताम्बूलम्० । इदमाचमनीयम्० । ओं त्वत्पादाम्भोजनखरद्युतिकारि मनोहरम् । आलक्तकमिदं देवि मया दत्तं प्रगृह्यताम् ॥ इदमालक्तकम्० । ततः ओं केशप्रसाधनार्थमिमां कङ्कतिकां (कंघो) भगवत्यै० । मुखावलोकनार्थमिदं दर्पणं भगवत्यै० । एवमन्यान्यपि समर्पयेत् । ततः--ओं काञ्चनं रजतोपेतं नानारत्नसमन्वितम् । भूषणार्थं च देवेशि गृहाण त्वं नमोऽस्तु ते ॥ इदं भूषणार्थंद्रव्यं भगवत्यै श्रीसरस्वत्यै नमः ।

अथ लक्ष्मीपूजनम् । तत्र प्रथमं ध्यायेत्—ओं तप्तकाञ्चनसंकाशां द्विभुजां लोललोचनाम् । कटाक्षविशिखोद्दीप्तामञ्जनाञ्चितलोचनाम् ॥ शुक्लाम्बरपरीधानां सिन्दूरतिलकोज्वलाम् । शुक्लपद्मासनगतां ध्यायेन्नारायणप्रियाम् ॥ इति ध्यात्वा ओं मनोजूतिरित्यादिपूर्वोक्तमन्त्रं पठित्वा—ओं ह्रीँ क्लीँ भूर्भुवः स्वः भगवति श्रीलक्ष्मि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य यथोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं विश्वरूपस्य भार्याऽसि पद्मे पद्मालये शुभे । सर्वतः पाहि मां देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥ एष पुष्पाञ्जलिः० । ततो गणेशं ध्यायेत्—ओं लम्बोदरं महाकायं गजवक्त्रं त्रिलोचनम् । सर्वदेवमयं देवं पार्वतीनन्दनं भजे ॥ इति ध्यात्वा—ओं मनोजूतिरिति पूर्वोक्तमन्त्रं पठित्वा—ओं ह्रीँ भूर्भुवः स्वः गँ गणेश इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ओं गँ गणेशाय नमः इति यथोपचारैः सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं एकदन्तं महाकायं लम्बोदरगजाननम् । विघ्ननाशकरं देवं हेरम्बं प्रणमाम्यहम् ॥ एष पुष्पाञ्जलिः—ओं गँ गणेशाय नमः ।

ततोऽक्षतादिभिः यथोपचारैः 'ओं पुस्तकेभ्यो नमः' इति पुस्तकानि सम्पूज्य—'ओं मस्याधारपात्राय नमः' इति मस्याधारपात्रम्' 'ओं लेखन्यै नमः' इति लेखनीं च पञ्चोपचारैः पूजयेत् ('फाउन्टेनपेन' सत्त्वे—'समसीकलेखन्यै नमः' इत्यूह्यम्)।

अथ नीराजनम्

ततः कर्पूरवर्त्ति प्रज्वाल्य—ओं कर्पूरवर्त्तिसंयुक्तं वह्निना दीपितं च यत्। नीराजनं च देवेशि गृह्यतां जगदम्बिके ॥ एष कर्पूरदीपः साङ्गसवाहनसपरिवारायै भगवत्यै श्रीसरस्वत्यै नमः। ततोऽभिवादयेदनेन—ओं यथा न देवो भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः। त्वां परित्यज्य सन्तिष्ठेत्तथा त्वं वरदा भव ॥ वेदाः सर्वाणि शास्त्राणि नृत्यगीतादिकञ्च यत्। न विहीनं त्वया देवि तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥ लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः। एतानि पाहि तनुभिरष्टाभिर्वा सरस्वति ॥ इति प्रणम्य पुष्पाञ्जलिं दद्यादनेन—ओं सा मे वसतु जिह्वायां वीणापुस्तकधारिणी। मुरारिवल्लभा देवी सर्वशुक्ला सरस्वती ॥ नमो हरिप्रिये नित्यं सरस्वत्यै नमो नमः ॥ वेदवेदान्तवेदाङ्ग-विद्यां देहि नमोऽस्तु ते ॥ ओं विशदकुसुमतुष्टा पुण्डरीकोपविष्टा, धवलवसनवेषा मालतीबद्धकेशा। शशधरकरवर्णा शुभ्रजा तुङ्गहस्ता, जयति जितसमस्ता भारती वेणुहस्ता॥ यन्मया भक्तियोगेन पत्रं पुष्पं फलं जलम्। निवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणानुकम्पया ॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि। यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत्। तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कस्य वै निश्चलं मनः ॥ अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया। दासोऽयमिति मां मत्वा प्रसीद परमेश्वरि ॥ आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्। पूजाविधिं न जानामि क्षमस्व जगदीश्वरि ॥ वागीश्वरि जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे। गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि ॥ सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके। इदानीमनुकम्प्योऽहं

यथेच्छसि तथा कुरु। इति प्रणम्य सति सम्भवे श्रावणकृत्यान्तपरिशिष्टोक्तविधिना अग्निं संस्थाप्य—'ओं ह्लीं सरस्वत्यै नमः स्वाहा' इति मूलमन्त्रेण अष्टोत्तरशतं सहस्रं वा आज्याहुतीर्जुहुयात्।

ततः सामूहिकरूपेण सिद्धसरस्वत्यादिस्तोत्राणि पठित्वा नृत्यगीतवाद्यादिना जयघोषपुरस्सरं महासरस्वतीपूजनोत्सवं कारयेत्। गुलालादिप्रक्षेपानुप्रक्षेपैश्चात्र वसन्तोत्सवं(१) कुर्यात्। (उपर्युक्तं नीराजनं सायाह्नेऽपि समानं बोध्यम्)

अथ सिद्धसरस्वतीस्तोत्रम्

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं, वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्। हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां, वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥ १ ॥ या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता, या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना। या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता, सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥ २ ॥ दोर्भिर्युक्तैश्चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालान्दधानां, हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण। पाशं वीणां मुकुन्दस्फटिकमणिनिभां भासमाना समाना, सा मे वादे च तथ्यं निवसतु वदने सर्वदा सुप्रसन्ना ॥ ३ ॥ ह्लीं ह्लीं ह्लीं हृद्यैकबीजे शशिरुचिकमले कल्पविस्पष्टशोभे, भव्ये भव्यानुकूले शुभमतिवरदे विश्ववन्द्याङ्घ्रिपद्मे, पद्मे पद्मोपविष्टे प्रणतजनमनोमोदसम्पादयित्री प्रोत्फुल्लज्ञानकूले हरिहरनमिते देवि संसारसारे ॥ ४ ॥ ऐं ऐं ऐं जाप्यतुष्टे हिमरुचिमुकुले वल्लकीव्यग्रहस्ते, मातर्मातर्नमस्ते दह दह जडतां देहि बुद्धिं प्रशस्ताम्। विद्ये वेदान्तवेद्ये श्रुतिपरिपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे, मार्गातीतस्वरूपे

---

(१) पुराणसमुच्चये—माघमासे सुरश्रेष्ठ शुक्लायां पञ्चमीतिथौ। रतिकामौ तु सम्पूज्य कर्तव्यः सुमहोत्सवः ॥

भव मम वरदे शारदे शुभ्रहारे॥ ५ ॥ घों घीं धीं धारणाख्ये धृतिमतिनुतिभिर्नामभिः कीर्तनीये, नित्ये, नित्ये निमित्तो मुनिजननमिते नूतने वै पुराणे। पुण्ये पुण्यप्रभावे हरिहरनमिते पूर्णतत्त्वस्वरूपे, मातर्मात्रार्थतत्त्वे मतिमति-मतिदे माधवप्रीतिनादे ॥ ६ ॥ क्लीं क्लीं क्लीं सुस्वरूपे दह दह दुरितं पुस्तकव्यग्रहस्ते, सन्तुष्टाकारचित्तो स्मितमुखि सुभगे जृम्भणि स्तम्भनीये। मोहे मुग्धप्रवोधे मम कुरु कुमतिध्वान्तविध्वंसमीडये, गीर्गौर्वाग्भारती त्वं कविधृतरसने सिद्धिदे सिद्धिसाध्ये ॥ ७ ॥ सौं सौं सौं शक्तिबीजे कमलभवमुखाम्भोजमूर्तिस्वरूपे, रूपे रूपप्रकाशे सकलगुणमये निर्गुणे निर्विकल्पे, न स्थूले नैव सूक्ष्मेऽप्यविदितविभवे जाप्यविज्ञानतुष्टे, विश्वे विश्वान्तराले सकलगुणमये निष्कले नित्यशुद्धे ॥ ८॥ श्रीं श्रीं श्रीं स्तौमि त्वाऽहं मम खलु रसना मा कदाचित्त्यज त्वं, मा मे बुद्धिविरुद्धा भवतु मम मनो पातु मां देवि पापात्। मा मे दुःखं कदाचित् क्वचिदपि विषये पुस्तके नाकुलत्वं, शास्त्रे वादे कवित्वे प्रसरतु मम धीर्माऽस्तु कुण्ठा कदाऽपि ॥ ९ ॥ इत्येतैः श्लोकमुख्यैः प्रतिदिनमुषसि स्तौति यो भक्तिनम्रो, वाणी वाचस्पतेरप्यविदितविभवो वाक्यतत्त्वार्थवेत्ता। स स्यादिष्टार्थलाभी सुतमिब सततं पातु तं सा च देवी, सौभाग्यं तस्य लोके प्रसरतु कविता विघ्नमस्तं प्रयातु ॥ १० ॥ निर्विघ्नं तस्य विद्या प्रभवति सततं चाशुग्रन्थप्रबोधः, कीर्तिस्त्रैलोक्यमध्ये निवसति वदने शारदा तस्य साक्षाद्। दीर्घायुर्लोकपूज्यः सकलगुणनिधिः सन्ततं राजमान्यो, वाग्देव्याः सम्प्रसादात् त्रिजगति विजयो जायते तस्य साक्षात् ॥ ११ ॥ ब्रह्मचारी व्रती मौनी त्रयोदश्यामहर्निशम्। सारस्वतो जनः पाठाद् भवेदिष्टार्थलाभवान् ॥ १२ ॥ पक्षद्वये त्रयोदश्यामेकविंशतिसंख्यया। अविच्छिन्नं पठेद्यस्तु सुभगो लोकविश्रुतः। वाञ्छितं फलमाप्नोति षण्मासैर्नात्र संशय ॥ १३ ॥

इति श्रीसनत्कुमारसंहितोक्तं सिद्धसरस्वतीस्तोत्रं समाप्तम्।

अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो, न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथा। न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं, परं जाने मातस्त्वदनुशरणं क्लेशहरणम् ॥ १ ॥ विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया, विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्। तदेतत्क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे, कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ २ ॥ पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः, परन्तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः। मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदन्नो तव शिवे, कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ३ ॥ जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता, न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया ॥ तथाऽपि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत् प्रकुरुषे, कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ४ ॥ परित्यक्त्वा देवान् विविघविधिसेवाऽऽकुलतया, मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ॥ इदानीञ्चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता, निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥५॥ श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा, निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः। तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥ ६ ॥ चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः। कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं, भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥ ७ ॥ न मोक्षस्याकाङ्क्षा न च विभववाञ्छाऽपि च न मे, न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः। अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै, मृडानी-रुद्राणी-शिव-शिव भवानीति जपतः ॥ ८ ॥ नाराधिताऽसि विधिना विविधोपचारैः, किं रूक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः। श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे,, धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥ ९ ॥ आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि । नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्ता जननीं

स्मरन्ति ॥ १० ॥ जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणाऽस्ति चेन्मयि। अपराधपरम्परावृतं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥ ११ ॥ मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ॥ एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥ १२ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ श्रीसरस्वतीपूजाविसर्जनम्

प्रातः कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य पद्माद्युपचारैः देवीं सम्पूज्य आरार्त्तिकं विधाय—ओं या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता, या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना । या ब्रह्माऽच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता, सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥ इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रार्थयेद्—ओं दोर्भिर्युक्ता चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधाना, हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण । या वै कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकमणिनिभा भासमाना समाना। सा मे वाग्देवतेयं निवसतु वदने शारदा शुभ्रवर्णा । रूपं देहि जयं देहि भाग्यं भगवति देहि मे । विद्यान्देहि धनं देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥ विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् । पूर्णं भवतु तत्सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥ शक्नुवन्ति न ते पूजां कर्तुं ब्रह्मादयः सुराः । अहं किं वा करिष्यामि मृत्युधर्मा नरोऽल्पधीः ॥ न जानेऽहं स्वरूपं ते न शरीरं न वा गुणान् । एकामेव हि जानामि भक्तिं त्वच्चरणाब्जयोः ॥ तस्मात् सम्भाव्य भक्तिं मे मदीयार्चां प्रगृह्य च । गच्छ देवि निजं स्थानं मह्यं दत्त्वा वरान् बहून् ॥ ततो निर्माल्यपुष्पाण्यादाय—ओं ते सर्वे विलयं यान्तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः । मृत्युरोगभयक्लेशाः पतन्तु रिपुमस्तके । इत्यैशान्यां क्षिपेत् । ततो देव्याश्चरणं स्पृष्ट्वा—ओं उत्तिष्ठ त्वं महामाये

अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो, न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथा। न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं, परं जाने मातस्त्वदनुशरणं क्लेशहरणम् ॥ १ ॥ विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया, विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्। तदेतत्क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे, कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ २ ॥ पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः, परन्तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः। मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदन्नो तव शिवे, कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ३ ॥ जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता, न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया ॥ तथाऽपि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत् प्रकुरुषे, कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ ४ ॥ परित्यक्त्वा देवान् विविधविधिसेवाऽऽकुलतया, मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ॥ इदानीञ्चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता, निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥५॥ श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा, निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः। तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥ ६ ॥ चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः। कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं, भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥ ७ ॥ न मोक्षस्याकाङ्क्षा न च विभववाञ्छाऽपि च न मे, न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः। अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै, मृडानी-रुद्राणी-शिव-शिव भवानीति जपतः ॥ ८ ॥ नाराधिताऽसि विधिना विविधोपचारैः, किं रूक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः। श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे,, धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥ ९ ॥ आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि। नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्ता जननीं

स्मरन्ति ॥ १० ॥ जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणाऽस्ति चेन्मयि । अपराधपरम्परावृतं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥ ११ ॥ मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ॥ एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥ १२ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ श्रीसरस्वतीपूजाविसर्जनम्

प्रातः कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य पद्याद्युपचारैः देवीं सम्पूज्य आरार्त्तिकं विधाय—ओं या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता, या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना । या ब्रह्माऽच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता, सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥ इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रार्थयेद्—ओं दोर्भिर्युक्ता चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधाना, हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण । या वै कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकमणिनिभा भासमाना समाना । सा मे वाग्देवतेयं निवसतु वदने शारदा शुभ्रवर्णा । रूपं देहि जयं देहि भाग्यं भगवति देहि मे । विद्यान्देहि धनं देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥ विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम् । पूर्णं भवतु तत्सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ॥ शक्नुवन्ति न ते पूजां कर्तुं ब्रह्मादयः सुराः । अहं किं वा करिष्यामि मृत्युधर्मा नरोऽल्पधीः ॥ न जानेऽहं स्वरूपं ते न शरीरं न वा गुणान् । एकामेव हि जानामि भक्तिं त्वच्चरणाब्जयोः ॥ तस्मात् सम्भाव्य भक्तिं मे मदीयार्चां प्रगृह्य च । गच्छ देवि निजं स्थानं मह्यं दत्त्वा वरान् बहून् ॥ ततो निर्माल्यपुष्पाण्यादाय—ओं ते सर्वे विलयं यान्तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः । मृत्युरोगभयक्लेशाः पतन्तु रिपुमस्तके । इत्यैशान्यां क्षिपेत् । ततो देव्याश्चरणं स्पृष्ट्वा—ओं उत्तिष्ठ त्वं महामाये

शुभां पूजां प्रगृह्य मे। कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह। गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि शारदे। यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे॥ ओं वागीश्वरि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते। संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय वै॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्ति निवेदिताम्। रक्षणार्थं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम्॥ ओं साङ्गसवाहनसपरिवारभगवति श्रीसरस्वति पूजितासि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ (मयि रमस्व)। ओं भगवति श्रीलक्ष्मि पूजितासि प्रसीद क्षमस्व मयि रमस्व। ओं श्रीगणेश पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ। ओं सूर्यादिनवग्रहाः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत। ओं इन्द्रादिदशदिक्पालाः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत। ओं कलशाधिष्ठितदेवताः पूजिताः स्थः क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत। इत्यनेन सर्वान् पूजितदेवान् विसृज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय कर्मदक्षिणां कुर्यादनेन––ओमद्य कृतैतत्साङ्गसवाहनसपरिवारश्रीसरस्वतीपूजनकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। इति ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत्। ततः शान्तिकलशस्थापनसत्त्वे तमुत्थापयेदनेन–ओं उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वे महे। उपप्रयन्तु मरुतः सुदानव। इन्द्रप्राशुर्भवा सवाः॥ इत्युत्थाय (३९९ पृष्ठोक्त) परिशिष्टोक्त 'सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु' इत्यभिषेकमन्त्रैः आम्रपल्लवेन कलशजलमादाय यजमानं (छात्रान् वा) अभिषिञ्चेत्।

ततो नृत्यगीतवाद्यादिपुरस्सरं सरस्वत्यादिप्रतिमां जलाशयं नीत्वा जयनिर्घोषैः अगाधजले प्रवाहयेत्। तद्दिने सरस्वतीप्रीत्यर्थं यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेच्च।

इति सरस्वतीपूजा समाप्ता।

अथ माघीसप्तमी (रथसप्तमी) कृत्यम्

अत्र संकल्पः (१)—ओमद्य माघे मासि शुक्ले पक्षे सप्तम्यां तिथौ अमुकगोत्रस्य ममाऽमुकशर्मणः आयुरारोग्यसम्पत्पूर्वकसूर्यग्रहणकालिकगङ्गास्नानजन्यफलसमफलकामोऽस्मिन् जलाशये स्नानमहङ्करिष्ये।

गङ्गातटे तु—ओं अद्येत्यादि सूर्यग्रहणकालिकगङ्गास्नानफलशतगुणाधिकफलकामो गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये।

प्रयागे तु—ओं अद्येत्यादि सूर्यग्रहणकालिकगङ्गास्नानजन्यफलकोटिगुणाधिकफलकामः प्रयागे त्रिवेण्यां स्नानमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य सप्ताकंपत्राणि, सप्त वदरीपत्राणि च शिरसि निधाय—

ओं यद्यज्जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु। तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी॥
एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम्। मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञातं च यत् पुनः॥
इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके। सप्तव्याधिसमायुक्तं हर माकरि सप्तमि॥

इति पठित्वा स्नायात्।

---

(१) इयं सप्तमी अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या। उभयदिनेऽरुणोदये पूर्वदिन एव, स्नानस्य, सगुड-(पीत) पायसादिना मिथिलाचारपरिप्राप्तकुलदेवतापूजनस्य च अधिककालव्यापित्वात्। विष्णुः—सूर्यग्रहणतुल्या हि शुक्ला माघस्य सप्तमी। अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम्॥ तथा—अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघस्य सप्तमी। गङ्गायां यदि लभ्येत शतसूर्यग्रहैः समा। प्रयागे यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा॥ चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदय उच्यते। देवीभागवते—पञ्च पञ्च उपःकालः सप्तपञ्चाऽरुणोदयः। अष्टपञ्च भवेत् प्रातः शेषः सूर्योदयो मतः॥ यदा पूर्वेऽह्नि घटिकाद्वयं षष्ठी सप्तमी च क्षयवशादरुणोदयात् पूर्वं समाप्यते तदा षष्ठ्यां सप्तमीक्षयं प्रवेश्य अरुणोदये स्नानं कार्यम्। पूजनं तु सप्तम्यामेव। तदेवाह विष्णुः—अचलां सप्तमी दुर्गां शिवरात्रिर्महामरः। द्वादशी वत्सपजायां सुखदा प्राग्युता सदा॥ इति॥

ततोऽर्घ्यमादाय—ओं जननी सर्वभूतानां सप्तमो सप्तसप्तिके। सप्तव्याहृतिके देवि नमस्ते रविमण्डले॥ इत्यर्घ्यन्दद्यात्।

अथ भीष्माष्टमीकृत्यम्

तत्र भीष्मतर्पणविधिः (१)—कुशत्रययवजलैः—ओं वैयाघ्रपादगोत्राय सांकृतिप्रवराय च। अपुत्राय ददाम्येतज्जलं भीष्माय वर्मणे। वसूनामवताराय शान्तनोरात्मजाय च। अर्घं ददामि भीष्माय आबालब्रह्मचारिणे॥ इति मन्त्राभ्यां त्रिः सलिलाञ्जलिं दद्यात्। ततः पठेत्—ओं भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः। आभिरद्भिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम्॥ इति।

अथ माघीपूर्णिमानिर्णयः

इयं परयुता ग्राह्या। तथा हि ब्रह्मवैवर्ते—'भूतविद्धे न कर्तव्ये दर्शपूर्ण कदाचन।' माघीपूर्णिमा क्वचिन्महामाघी भवति। तदुक्तं ज्यौतिषे—मेषराशौ यदा सौरिः सिंहे गुरुविधू तथा। भास्करः श्रवणर्क्षे च महामाघीति सा स्मृता॥ अत्र अनन्तफलकामनया स्नानादिकं कर्तव्यम्।

इति माघकृत्यम्

---

(१) महाभारते—शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्यात् भीष्माय यो जलम्। संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥ पाद्मे—माघे मासि सिताष्टम्यां सतिलं भीष्मतर्पणम्। श्राद्धं च ये नराः कुर्युस्ते स्युः सन्ततिभागिनः॥ अकरणे दोषमाह भारते—ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णा दद्युर्भीष्माय नो जलम्। संवत्सरकृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम॥

अथ फाल्गुनकृत्यम्

तत्र महाशिवरात्रिव्रतारम्भप्रकारः

फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां प्रातः कृतस्नानादिराचमनान्तः उत्तराभिमुखो वारिपूर्णताम्रपात्रमादाय—ॐ भगवन् सूर्य भगवत्यो देवता अद्यादि चतुर्दशवर्षं यावत् प्रतिफाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतमहं करिष्यते। इति निवेद्य कुशादिकमादाय—ओं अमुकगोत्रस्याऽमुकशर्मणो ममान्तकालिकशिवानुचरत्वशिवलोकसहितत्वदेवसाहित्यसुरालयभ्रमणभूपालत्वसार्वदिकशिवभक्तिरूपवुद्धिविवेकाऽनाहताज्ञत्व–लक्ष्मीगोधनप्राप्तिकामोऽद्यादिचतुर्दशवर्षं यावत् प्रतिफाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतमहं करिष्ये। इति संकल्प्य व्रतारम्भं (१) कुर्यात्।

---

(१) इयं चतुर्दशी प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनी ग्राह्या। तथाहि स्कान्दे—त्रयोदशी यदा देवि दिनभुक्तिप्रमाणतः। जागरणे शिवरात्रिः स्यान्निशि पूर्णा चतुर्दशी॥ (दिनभुक्तिः = अस्तमनकालः)। यदि पूर्वदिने निशीथव्यापिनी परदिने प्रदोषमात्रव्यापिनी तदा पूर्वैव, 'निशीथव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिचतुर्दशी' इति स्मरणात्। एवं सति पूर्वेद्युरेवोभयव्याप्तौ पूर्वैव। तथाहि स्कान्दे—त्रयोदशी यदा देवि दिनभुक्तिप्रमाणतः। जागरे शिवरात्रिः स्यान्निशि पूर्णा चतुर्दशी।

पाद्मे—अर्धरात्रात् पुरस्ताच्चेज्जयायोगो यदा भवेत्। पूर्वविद्धैव कर्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः॥ परदिने प्रदोषनिशीथोभयव्याप्तिसत्त्वात् परैवेति माधवः। यदा तु प्रागुक्तार्धरात्रस्य परेद्युरेकदेशव्याप्तिः पूर्वेद्युस्तु सम्पूर्णार्धरात्रव्याप्तिः तदा परेद्युः प्रदोषनिशीथोभययोगे सत्यपि पूर्णनिशीथव्याप्तेरभावात् पूर्वेद्युश्च पूर्णनिशीथप्राप्तेः सत्त्वात् पूर्वैव। तथाहि ईशानसंहितायां—व्याप्यार्धरात्रं यस्यां तु लभ्यते या चतुर्दशी। तस्यामेव व्रतं कार्यं मत्प्रसादार्थिभिर्नरैः॥ यदा तु पूर्वेद्युर्निशीथादूर्ध्वं

अथ महाशिवरात्रिचतुर्दशीव्रतपूजाविधिः

[अत्र प्रदोषपूजाविधिस्तु माघकृत्ये २८२ पृष्ठे (नरकनिवारणे) द्रष्टव्यः]

तत्र रात्रौ प्रथमप्रहरे स्नात्वा पूजास्थानमागत्य शुद्धमृदा पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं चतुर्बाहुः नागयज्ञोपवीतिनं धृतपद्मासनं शिवस्वरूपं निर्माय परिष्कृते पूजास्थाने स्थापयेत् । ततः--'ओं मनोजूति' रित्यादिस्वशाखोक्तमन्त्रेण शिव इह सुप्रतिष्ठितो भव, इति वाक्यान्तेन प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा पुष्पमेकं गृहीत्वा ध्यायेत्—ओं ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं, रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं; परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् । पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्ति वसानं, विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥ एष

चतुर्दशी प्रवृत्ता परेद्युश्च निशीथादर्वागेव समाप्यते तदा परेद्युरेकव्याप्तिसत्त्वात् परैव । एवं दिनद्वये प्रदोषव्याप्त्यभावे निशीथव्याप्तिसत्त्वात् पूर्वैवेति तत्त्वविदः । अत्र चतुर्दश्यामपि पारणम् तथाहि गौतमः—दिनमानप्रमाणेन या तु रात्रौ चतुर्दशी । शिवरात्रिस्तु सा ज्ञेया चतुर्दश्यां तु पारणम् ॥ स्कान्दे—तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद् विना शिवचतुर्दशीम् । अन्यच्च—उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तु पारणम् । कृतः सुकृतलक्षैश्च लभ्यते वाऽथवा न वा ॥ इति ॥

नक्तव्रते तु प्रदोषव्यापिन्येव तिथिर्ग्राह्या । तथाहि व्यासः—त्रिमुहूर्तं प्रदोषः स्याद् भानावस्तं गते सति । नक्तं तत्र प्रकर्तव्यमिति शास्त्रविनिश्चयः । यदि तूभयदिने प्रदोषव्यापिनी तदा परैव । तथाहि जावालः—यदि स्यादुभयोरह्नोः प्रदोषव्यापिनी तिथिः । तत्रोत्तरत्र नक्तं स्यादुभयत्रैव सा यतः ॥ नक्तं तु—दिवाऽनशनपूर्वकं रात्रिभोजनम् । माघवीये—त्रयोदश्यस्तगते सूर्ये चतसृष्वेव नाडिषु । भूतविद्धा तु या तत्र शिवरात्रिव्रतं चरेत् ॥ स्मृतिः—प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिचतुर्दशी । शिवरात्रिवतं तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥

पुष्पाञ्जलिः ओं शिवाय नमः। ततः सर्वौषधिस्नानम्। तत्र क्रमः—ईशानवक्त्रे—'ओं हौं ईशानाय नमः' इति दुग्धेन वारत्रयम्। ततः पूर्ववक्त्रे—'ओं हैं तत्पुरुषाय नमः' इति दध्ना वारत्रयम्। ततः दक्षिणवक्त्रे—'ओं हुँ अघोराय नमः' इति घृतेन वारत्रयम्। ततः पश्चिमवक्त्रे—'ओं हीं सद्योजाताय नमः' इति मधुधारया वारचतुष्टयम्। ततः उत्तरवक्त्रे—'ओं हाँ वामदेवाय नमः' इति खण्डपञ्चधारया वारपञ्चकम्। प्रत्येकमन्त्रैः सर्वौषधिजलस्नानम्। ततो यथाक्रमं पञ्चोपचारैः प्रत्येकं पूजयेत्। तद्यथा—ईशानवक्त्रे—ओं हौं ईशान इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, अर्घमादाय—'ओं नमस्ते देव देवेश नमस्ते मोक्षदायिने। ईशानाय नमस्तुभ्यमर्घोऽयं प्रति गृह्यताम्॥ एतानि पाद्यादीनि एषोर्घः ओं हौं ईशानाय नमः। एवं चन्दनादिना पूजयेत्। ततः पूर्ववक्त्रे—ओं हैं तत्पुरुष इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, अर्घमादाय—ओं नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्ते दितिजान्तक। तत्पुरुषाय नमस्तुभ्यमर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥ एतानि पाद्यादीनि एषोर्घः ओं हैं तत्पुरुषाय नमः। इति गन्धादिना पूजयेत्। ततो दक्षिणवक्त्रे—ओं हूँ अघोर इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, अर्घमादाय—ओं नमस्ते शूलहस्ताय नमस्ते दण्डपाणये। अघोराय नमस्तुभ्यमर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥ एतानि पाद्यादीनि एषोघः ओं हूं अघोराय नमः' इति गन्धादिना पूजयेत्। ततः पश्चिमवक्त्रे—ओं हीं सद्योजात इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, अर्घमादाय—ओं नमस्ते सद्योजाताय नमः कैलासवासिने। सद्योजात नमस्तुभ्यमर्घोऽयं प्रत्तिगृह्यताम्॥ एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओं हीं सद्योजाताय नमः। इत्यनेन पञ्चोपचारैः पूजयेत्। तत उत्तरवक्त्रे—ओं हाँ वामदेव इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य—ओं नमस्ते वामदेवाय शर्वाय शशिशेखर। पापशुद्धयर्थंमर्घोऽयं गिरीश प्रतिगृह्यताम्॥ एतानि पाद्यादीनि एषोऽर्घः ओं हाँ वामदेवाय नमः। एवं गन्धादिना पूजयेत्। ततो मध्ये—ओं भूर्भुवः स्वः हौं भगवन् शिव इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य,, अर्घमादाय—ओं नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च। शिवरात्रौ

मया दत्तं गृहाणार्घमिदं प्रभो । एतानि पाद्यादीनि एषोर्घः ओं ह्रौं शिवाय नमः । इत्यनेन पञ्चोपचारैः पूजयेत् । वस्त्रयज्ञोपवीतान्यपि यथासम्भवं दद्यात् । ततः कथां श्रुत्वा गीतवाद्याद्युत्सवैः शिवं सन्तोषयन् प्रहरं नयेत् । ततो द्वितीयप्रहरे—ओं मया कृतान्यनेकानि पापानि हर शङ्कर । गृहाणार्घ्यमुमाकान्त शिवरात्रौ प्रसीद मे ॥ इत्यनेनाऽर्घ्यं दद्यात् । ततः तृतीयप्रहरे—ओं दुःखदारिद्र्यदग्धोऽहं भगवन् पार्वतीपते । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं शिवरात्रौ च मे शिव ॥ इत्यनेन अर्घ्यं दद्यात् । पुनश्चतुर्थप्रहरे—ओं शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं सर्वपापमोचनम् । शिव प्रसीद मे भक्त्या प्रसादादुमया सह ॥ इत्यर्घ्यादिना शिवं सम्पूज्य इन्द्रादिदशदिक्पालान् प्रपूज्य विसर्जयेत् । ततो दक्षिणा—आमद्य कृतैतच्छिवपूजनपूर्वकशिवरात्रिव्रतप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् । एवं पूर्णे चतुर्दशे वर्षे वर्षकृत्यद्वितीयभागोक्तं शिवरात्रिव्रतोद्यापनं कुर्यात् । यतीन् शैवान् भोजयेत् ।

अथ महाशिवरात्रिचतुर्दशीव्रतकथा

नमस्ते विश्वनाथाय संसारस्थितिहेतवे । जगतां रूपिणे तुभ्यं जन्तूनां परमात्मने ॥ १ ॥
नमो नित्याङ्गरागाय नमो दिव्यरूपिणे । नमः शिवाय शान्ताय शङ्कराय हराय च ॥ २ ॥
कैलासे च महास्थाने गौरी पृच्छति शंकरम् । कथयस्व महादेव प्रसादेन महेश्वरः ॥ ३ ॥ शङ्कर उवाच—
श्रूयतां गिरिजे देवि महाविद्ये महेश्वरि । कथयामि न सन्देहो मनसा यदभिवाञ्छसि ॥ ४ ॥ पार्वत्युवाच—तपसा
कर्मणा वाचा व्रतेन नियमेन वा । लप्स्यसे त्वं महादेव प्रसन्नो भव केन वा ॥ ५ ॥ शङ्कर उवाच—फाल्गुने मासि
या कृष्णा भवेच्चतुर्दशी तिथिः । तस्यान्तु तामसी रात्रिः शिवरात्रिरभिधीयते ॥६॥ त्रयोदश्यां कृतस्नानादेकाहारी-
धृतव्रतः । कुशास्तरणशयनं यतीनामपि तद् व्रतम् ॥ ७ ॥ प्रातरुत्थाय स्नातस्तु तद्दिने मत्परायणः । पुरुषो वाऽथ-

थवा नारी चोपवासं करोति यः ॥ ८ ॥ रात्रौ प्राङ्गणके रम्ये शिवक्षेत्रे शिवालये । बिल्वपत्रेण या पूजा नानापुष्पसमन्विता ॥ ९ ॥ अगुरुगुग्गुलुधूपन्तु दशाङ्गेन तु दापयेत् । स्नानं च पञ्चगव्येन कुर्यात् पञ्चामृतेन वा ॥ १० ॥ खण्डक्षीरगुडैर्वापि अपूपैः पिष्टभक्तकैः । नानाफलं च नैवेद्यं विचित्रं रचयेत्तदा ॥ ११ ॥ नृत्यगीतैस्तथा वाद्यैस्तूर्यंमङ्गलकोहलैः । आनन्दमयशरीरेण शिवभक्तिसमन्वितः ॥ १२ ॥ कुर्याज्जागरणं रात्रौ हृष्टलोमा च मानवः । प्रहरे प्रहरे स्नानं पूजां चैव विशेषतः ॥ १३ ॥ शिवरात्रिव्रतं दिव्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् । यत्कथाश्रवणेनापि लप्स्यते वाञ्छितं फलम् ॥ १४ ॥ पार्वत्युवाच—सत्यं सर्वमिदं प्रोक्तं मिथ्या किमपि नोच्यते । कृतं केन त्रिलोकेश शिवरात्रिरिदं व्रतम् ॥ १५ ॥ नाम तस्य समाख्याहि प्रसादेन महेश्वर । तत्कथां श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥१६॥ शङ्कर उवाच—वाराणस्यां महास्थाने व्याधो वसति पापकृत् । पुत्रदारादिसंयुक्तो धर्मकर्मविवर्जितः ॥ १७ ॥ प्रत्यहं पापकर्माऽसौ परजीवेन जीवति । वृत्त्यर्थं पुत्रदाराणां निर्दयः सर्वजन्तुषु ॥ १८ ॥ मृगारिर्नाम व्याधोऽसौ मृगमांसेन जीवति । प्रातराखेटके याति वनं गुह्यं दिने दिने ॥ १९ ॥ कृष्णः कपिलकेशो च कोपेनारुणलोचनः । हस्ते धृत्वा धनुर्बाणौ यमवज्जीवहारकः ॥ २० ॥ न तस्यास्ति महावृद्धो न युवा न च बालकः । समदृक् सर्वजन्तूनां नित्यं ग्रसति जीवितम् ॥ २१ ॥ वनेचराणां स यमो दुरात्मा वनस्पति हन्ति च दुर्न्निरीक्ष्य । ददाति पाशं स गले मृगाणां, कक्षातटं हन्ति च शूकराणाम् ॥ २२ ॥ तस्यैकेन प्रहारेण हस्ती पतति मूर्च्छितः । त्रिगण्डगलितोन्मत्तः स्वयं दन्तौ प्रयच्छति ॥ २३ ॥ व्याघो ददाति गुञ्जारं यावद्बाणं न पश्यति । आकर्णपूर्णं चापन्तु दृष्ट्वा जीवं विमुञ्चति ॥२४॥ खड्गी खड्गप्रहारेण भूमौ पतति मूर्छितः । विषाणकोटया महिषो वल्मीकं खनति स्वयम् ॥२५॥ शरप्रहारमासाद्य पदमेकं न गच्छति । का कथा स्वल्पजन्तूनां शशादीनां विशेषतः ॥ २६ ॥ ते च तद्बाणपातेन गच्छन्ति योजनाधिकम् ॥ बाणधारणमात्रेण धर्माधर्मौ न पश्यति ॥ २७ ॥ व्याधेन वध्यते प्राणी तस्य मांसेन जीवति । एकदा

दैवयोगेन दूरं गन्तुं न शक्तवान् ॥ २८ ॥ आसने दत्तवाणस्तु पुरोमार्गं न पश्यति । सारङ्गं नैव चाप्नोति भ्रमिते सकले वने ॥ २९ ॥ निभृतेन पदं दत्त्वा लक्षं लक्षीकरोति सः । बाणमोक्षणकाले तु न च लक्षं विलोकते ॥ ३० ॥ अनेनैव प्रकारेण विधिना तत्र वञ्चितः । लज्जाविलक्षितो भूत्वा न गृहङ्गन्तुमिच्छति ॥३१॥ स्मृत्वा निष्ठुरवाक्यानि गृहिणीगदितानि च । मस्तके न्यस्तहस्तोऽसौ बिल्ववृक्षतटे स्थितः ॥ ३२ ॥ वासरं नैव जानाति सन्ध्यामपि समागताम् । रात्रिकालं समासाद्य निद्राघूर्णितलोचनः ॥३३॥ शयनार्थं किमत्राहं कुर्यां घोरायते निशा । अहं सर्वस्य विद्वेषी मनुष्यो मांसजीविक.॥३४॥वृक्षमारुह्य तिष्ठामि यावन्नोदयते रविः । रजनी तामसी घोरा पुरोमार्गो न दृश्यते ॥३५॥ इति सञ्चिन्त्य भीतोऽसौ वृक्षमारोहयेत्तदा । तत्रैव दैवयोगेन लिङ्गस्तिष्ठति भूतले ॥३७॥ तत्पादभग्नपत्राणि पतन्ति शिवमूर्द्धनि । वाह्ये दृष्टिपथं दद्यामिति शाखाविभञ्जनात् ॥३६॥ हिमतोय च तत्पत्रं पपात शिवमस्तके । तस्यैवंविधचित्तस्य न भक्तिर्नं च भावना ॥३८॥ अहो शिवस्य माहात्म्यं सैव पूजा फलप्रदा । एतदेव कृतं तेन सुकृतं चात्र जन्मनि ॥ ३९ ॥ आयुर्वर्षशतं तस्य अन्तकालः समागतः । यमेन प्रहितो दूतो व्याध आनीयतां लघु ॥ ४० ॥ आगतः सोऽपि सन्तुष्टः पाशपाणिर्भयङ्करः । आगते निकटे दूते शिवदूतेन वेष्टितः ॥ ४१ ॥ बलात्तु यमदूतेन गले पाशो नियोजितः । हस्तादाकृष्य कोपेन शिवदूतेन वारितः ॥ ४२ ॥ यमदूत उवाच—कस्त्वं केन च कार्येण यमाज्ञा प्रतिहन्यते । व्याधोऽयं पापकर्मा च नीयते नरकं प्रति ॥ ४३ ॥ शिवदूत उवाच—व्याधः करोतु पापानि पापदेहो भवत्वथ । शिवेन प्रहितो दूतो व्याधरक्षां करोम्यहम् ॥४४॥ यमदूत उवाच—कस्तवायं शिवो देवः को हरिः कः पितामहः । यमाज्ञा भ्राम्यते पृथ्व्यामिच्छया नीयते नरः ॥ ४५ ॥ उत्थाय शिवदूतेन तलाघातेन ताडितः । आः र्शक्ति भाषसे पाप शिवाय परमात्मने ॥ ४६ ॥ एवं ते गञ्जिता दूता यमद्वारं प्रपेदिरे । यमदूत उवाच—नास्त्याज्ञा यमुनाभ्रातरधुना मर्त्यमण्डले ॥ ४७ ॥ पदे पदे महाराज आज्ञा ते खण्डिता भुवि । क्वचिद्राजा

शिवो देवः क्वचिद्धरिपितामहौ ॥ ४८ ॥ न त्वया प्रेषितो गन्तुं युज्यते भुवनत्रयम् । बलिनामाश्रयं कुर्यान्नाबलस्य कदाचन ॥ ४९ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तेषां गञ्जितानां विशेषतः । रोषेणारुणनेत्रोऽसौ बभाषे यमराट् ततः ॥५०॥ गञ्जिताः केन वा यूयं केन वा कलहः कृतः । तान्निहन्मि समाचक्ष्व न भयं पुरतो मम ॥ ५१ ॥ दूत उवाच—धर्मराट् शिवदूतेन बलेनाहं निराकृतः । न मया व्याध आनेतुं भुवनं तव शक्यते ॥५२॥ गत्वा राज्यमिदं तत्राधिकारं त्यक्तु महंसि । त एव चिन्तां कुर्वन्तु अधुना मर्त्यमण्डले ॥५३॥ श्रुत्वा वाक्यं यथायुक्तं कोपेन स्फुरिताधरः । उवाच प्रेतराडुच्चैरानेयो महिषो लघु ॥५४॥ दण्डपाशसमायुक्तश्चिह्नचामरसंयुतः । स्वपुरान् महिषारूढः प्रपेदे शिवसन्निधिम् ॥ ५५ ॥ कैलासे च महास्थाने द्वारि संभाषते यमः । निवेद्यतां महेशाय यमस्यागमनं मम ॥ ५६ ॥ नन्दी धावति वेगेन महेशाय निवेदितुम् । देव द्वारि यमो दण्डी किमागच्छतु गच्छतु ॥५७॥ शिव उवाच—प्रवेश्यतां च वेगेन दक्षिणाशाधिपो यमः । ततः प्रविश्य यमराट् प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥५८॥ यम उवाच–नमस्ते विश्वनाथाय जगतां सृष्टिहेतवे । नमो भस्माङ्गरागाय शिवाय परमात्मने ॥५९॥ शिव उवाच—दक्षिणां दिशमाश्रित्य यमोविशतु सांप्रतम् । इत्यर्द्धोक्तमिदं श्रुत्वा देवो वचनमब्रवीत् ॥६०॥ ज्ञातं मया हि यत्कार्यं यमाद्यागमने तव । मृगारिणा तु व्याधेन कृतमाराधनं मम ॥६१॥ शिवरात्रौ वने भद्रं बिल्वपत्रेण निश्चितम् । स्वेच्छया च भवेद्राज्यं व्याधस्य प्रहरद्वयम् ॥६२॥ यम उवाच–दीयतां तस्य राज्यं वै यावच्चन्द्रार्कमेदिनी । मया पुनर्महादेव त्यक्ता संसारचिन्तया ॥६३॥ यो हि मर्त्ये जगन्नाथ पापात्मा पापकर्मकृत् । तस्मिन्नेवाश्रितोऽसि त्वमलं संसारचिन्तया ॥६४॥ शिव उदाच–धर्मराट् भयभीतेन नरेण मम पूजनम् । क्रियते नैव संदेहो वासुदेवस्य सेवनम् ॥६५॥ एतयोस्तु परीहारः कर्तव्यो भवता सदा । अन्येषां भुवि लोकानां स्वामित्वं भवतः कृतम् ॥६६॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य स गतो निजमन्दिरम् । शीघ्रं व्याधोऽपि राज्यार्थं प्रहितो मर्त्यमण्डले ॥ ६७ ॥ उत्पन्नो राजगेहे स जातिस्मरणसंज्ञितः ।

अमूं जन्मदिनं तस्य सुखाय सर्वदेहिनाम् ॥६८॥ लब्धोदयो यथा सूर्यो वन्दनीयो भवेद् भुवि । स तदा सर्वलोकानां
वन्दनीयो बभूव ह ॥ ६९ ॥ युवराजो युवा चन्द्रः प्रभायुक्तः प्रतापवान् । पितर्युपरते तस्य राज्यं भ्रातृशतेष्वपि
॥ ७० ॥ प्राप्ते राज्ये तु तस्यैव संभूतापूर्वसंस्मृतिः । आज्ञा दत्ता तदात्मीया नगरे सर्वमन्दिरे ॥ ७१ ॥ सर्वलोकास्समारम्भं
कृत्वा विभवविस्तरैः । पूजयध्व महाभागाः शङ्करं प्रीतये मम ॥ ७२ ॥ पूजयित्वा महादेवं फलं
मयि निवेद्यताम् । अनेनैव प्रकारेण लक्षकोटिशतानि च ॥७३॥ शिवरात्रिफलं लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूव ह । राजा
राज्यदिने पूर्णे क्षीणशक्तिश्च निष्प्रभः ॥ ७४ ॥ व्याधिकष्टसमायुक्तः शय्यातलसमाश्रितः । शय्यायां मूर्च्छितो
भूत्वा तिष्ठेद्दिनचतुष्टयम् ॥ ७५ ॥ दिनैकं वा दिनार्द्धं वा शूलपाणिर्गणान्वितः । यमेन पूर्वकोपेन प्रहिता निजसेवकाः ।
७६ ॥ भयानकाः पासहस्ताः शतकोटिसहस्रशः । गणैस्तैर्निर्जिताः सर्वे युद्धे भग्नपराक्रमाः ॥ ७७ ॥
याता यमपुरी शीघ्रं साधवो दुःखिता इव । सर्पा इव विषत्यक्ता निष्प्रभा भानुमण्डलाः ॥ ७८ ॥ दृष्ट्वा यमश्च
कोपेन चित्रगुप्तमपृच्छत । किं कृतं तेन पापेन अधुना सुकृतं महत् ॥ ७९ ॥ येनामी निर्जिताः सर्वे समायाता
ममालयम् । उवाच वचनं सोऽपि चित्रगुप्तो महामतिः ॥ ८० ॥ व्याधेन मतियुक्तेन शिवस्याराधनं कृतम् ।
शिवरात्रिफलं तस्य शतकोटिसहस्रशः ॥ ८१ ॥ तेनास्यास्ति महद्राज्यमिदानीं वसुधातले । तस्य भद्रां विरुद्धां
वा न चिन्तां कर्तुमर्हसि ॥ ८२ ॥ श्रुत्वैवं सर्ववाक्यानि चित्रगुप्तोदितानि सः । स्तब्धदृष्टिर्यमश्चासीद् द्रुमो
वज्रहतो यथा ॥ ८३ ॥ मुहुर्विस्मयमानस्तु हस्तावास्फालयत्तदा । किं मया तत्र कर्तव्यं शिवे परमदैवते ॥ ८४ ॥
फलमेतन्महाभागे शिवरात्रिव्रते कृते । यः करोत्यधुना मर्त्ये स राजा नात्र संशय ॥ ८५ ॥ लक्ष्मीगोधनपुत्रायुर्विद्याकीर्तिर्धनानि च
। मम देवि प्रसादेन तस्य स्यादत्र निश्चितम् ॥ ८६ ॥

इति श्रीशिवधर्मोत्तरोक्तशिवरात्रिचतुर्दशीव्रतकथा समाप्ता ।

अथ चतुर्दशीव्रतारम्भविधिः

फाल्गुनकृष्णशिवरात्रिचतुर्दश्यामेतद्व्रतारम्भः । तत्र संकल्पः—ओमद्य भगवन् सूर्यं भगवत्यो देवता अद्यादि यथाकालं प्रतिकृष्णचतुर्दशीषु नक्तेतर (१) भोजननिवृत्तिव्रतमहं करिष्ये । इति ।

अथ गोविन्दद्वादशीकृत्यम्

कृत्यमहार्णवे ब्रह्मपुराणम्—फाल्गुनस्य सिते पक्षे कुम्भस्थे दिवसाधिपे । जीवे धनुषि संस्थे च शोभने रविवासरे ॥ पुष्यर्क्षेण च संयुक्ता गोविन्दद्वादशी मता ॥ तस्यां कर्तव्यमाह—गोविन्दद्वादशीं प्राप्य गच्छेच्छ्रीपुरुषोत्तमम् (जगन्नाथक्षेत्रम्) । विष्णुलोकमवाप्नोति मोक्षं गङ्गाम्बुमज्जनात् ॥ तत्र—ओं अद्येत्यादिसकलपापक्षयपूर्वकविष्णुलोकप्राप्तिकामः पुरुषोत्तमक्षेत्रयात्रामहङ्करिष्ये । इति सङ्कल्प्य जगन्नाथं गच्छेत् । गङ्गायान्तु—ओं अद्येत्यादिसकलमहापातकक्षयपूर्वकपुनर्जन्माभावकामो गोविन्दद्वादश्यां गङ्गायां स्नानमहङ्करिष्ये । इति सङ्कल्प्य अञ्जलिं बद्ध्वा – ओं महापातकसंज्ञानि यानि पापानि सन्ति मे । गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवि ॥ इति मन्त्रमुच्चार्य्य गङ्गायां स्नायात् ।

---

(१) नक्तन्तु—दिवाऽनशनपूर्वकरात्रिभोजनम् । मात्स्ये—उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते । इति । उपवासाऽसमर्थस्योपायः पुराणान्तरे—उपवासाऽसमर्थश्चेदेकं विप्रं तु भोजयेत् । तावद् धनादि वा दद्यात् भुक्तस्य द्विगुणं तथा ॥ सहस्रसम्मितां देवीं (गायत्रीं) जपेद्वा प्राणसंयमात्, कुर्याद् द्वादशसंख्याकान् यथाशक्त्यातुरो नरः ॥ पराशरः—उपवासं व्रतं होमं तीर्थयात्रा जपादिकम् । विप्रैः सम्पादितं यस्य सम्पन्नं तस्य तत्फलम् ॥ इति । स्वाम्याज्ञया विना व्रतादिकं न कार्यम् । तथाहि स्मृतिः—नारी या त्वननुज्ञाता पित्रा भर्त्रा सुतेन वा । निष्फलं तु भवेत्तस्याः यत् करोति व्रतादिकम् ॥

अथ होलिकादहनविचारः

सायाह्नव्यापिन्यां चतुर्दशीविद्धायां फाल्गुनी पूर्णिमायां भद्राशून्यायां होलिकादाहः(१)। तथाहि—सायाह्ने होलिकां कुर्यात् पूर्वाह्णे क्रीडनं गवाम्। इति। यदि पूर्वदिने सायाह्ने भद्राशून्या सा न लभ्यते तदा परदिने एव। तथाहि ब्रह्मवैवर्ते—

होलिका पौर्णमासी तु सायाह्नव्यापिनी मता। भूतविद्धे न कर्तव्ये दर्शपूर्णे कदाचन॥ इति।

यदि पूर्वदिने चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी परदिने पूर्णिमा सायाह्नात् प्रागेव समाप्यते तदा पूर्वदिने सम्पूर्णरात्रौ भद्रासत्त्वात् परेऽह्नि प्रतिपद्येव कुर्यादिति (२) म० म० महेशठक्कुराः।

---

(१) बृहद्यमः—श्रावणी दुर्गनवमी दुर्गा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्॥
पुराणसमुच्चयेऽपि—भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभङ्गं करोति वै॥

(२) भविष्ये—पूर्णापूर्णदलं यावत् तावज्जीवति वत्सरः। मृते परदले नक्तं दाहस्तस्य विधीयते॥
स्मृत्यन्तरेऽपि—दिनार्धात् परतोऽपि स्यात् फाल्गुनी पूर्णिमा यदि। रात्रौ भद्रावसाने तु होलिका दीप्यते तदा॥
विद्याविनोदे—नन्दायां नरकं घोरं भद्रायां देशनाशनम्। दुर्भिक्षं च चतुर्दश्यां करोत्येव हुताशनः॥
भविष्योत्तरे—सार्धयामत्रयं चेत् स्याद् द्वितीयदिवसे यदि। प्रतिपद् वर्धमाना तु तदा सा होलिका मता॥
अन्यच्च—असत्यामपि पूर्णायां वृद्धित्वे होलिकार्चनम्। क्रियमाणां च नन्दायां शान्तिर्भवति नो क्षयः॥
निर्णयसिन्धुकारानुयायिनो दाक्षिणात्यास्तु—
तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे। प्रदोषव्यापिनी चेत् स्याद् यदा पूर्वदिने तदा॥
भद्रामुखं वर्जयित्वा होलिकायाः प्रदीपनम्॥ इत्यादिवचनात् परदिने सायं पूर्णिमालाभे पूर्वदिन एव होलिकादहनं

अथ होलिकापूजाप्रयोगः

तत्र पञ्चवर्णपताकां होलिकामध्ये आरोप्य सङ्कल्पं कुर्यात्—

ओं अद्य फाल्गुने मासि शुक्ले पक्षे पूर्णिमायां तिथौ अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सपरिवारस्य वर्षाविच्छिन्नसुखकामनया अग्नेर्ढुण्ढीराक्षस्याश्च प्रीतये तत्पीडापरिहारार्थमग्नेर्होलिकायाश्च पूजनमहं करिष्ये।

ततः शुष्ककाष्ठानां गोमयपिण्डानाञ्च राशिं कृत्वा वह्निना प्रदीपयेत्। तत्र मन्त्रः (१)—

ओं दीपयाम्यत्र ते घोरां चितिं राक्षसि ते नमः। हिताय सर्वजगतां प्रीतये पार्वतीपतेः॥
वन्दिताऽसि सुरेन्द्रेण ब्रह्माच्युतशिवादिभिः। अतस्त्वं पाहि नो भीत्या भूषिता भूतिदा भव॥ इति।

कुर्वन्ति, तदसत्। यतः राजमार्तण्डे—भद्रस्य पुच्छं शुभहेतुरन्ये वदन्ति केचिन्न तु युक्तमेतत्। शुष्केन्धनैर्दीप्तहुताशनस्य किमग्रभागेऽप्यतिशीतता स्यात्॥ इति।

ननु 'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने।' इति वचनाद् चन्द्रग्रहणकाले समुपस्थिते चेत् कथं होलिकादहनम्, इति चेन्न, 'स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत श्रृतमन्नं विवर्जयेत्॥' इत्युत्तरार्धेन ग्रहणकालेऽपि नित्यनैमित्तिकक्रिययोरविकारबोधनात्।

(होलिकादहनसमय एव ९ मार्च १९६३ तमे ई० वर्षे रात्रौ २, ४३ वादने 'प्रदीप' नामकं पुत्ररत्नं लेभे—सम्पादकः)

(१) ज्योतिर्निबंधे—तत्राग्निमन्त्रमुच्चार्य दीपयेद्धोलिकां शुभाम्। भगलिङ्गाङ्कितैर्वाक्यैः क्रीडितव्यं पिशाचवत्॥ पुनश्च तत्रैव—तमग्नि त्रिः परिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च। जल्पन्तु स्वेच्छया लोकाः निश्शंका यस्य यन्मतम्॥ होलिकाङ्गारपक्वान्नं यो भक्षयति तद्दिने। यावत्संवत्सरं पूर्णं क्लेशभाङ् न भवेद्धि सः॥

होलिकादहनसमये वायुफलम्—पूर्वे वायुर्होलिकायां प्रजाभूपालयोः सुखम्। पलायनं च दुर्भिक्षं दक्षिणे जायते ध्रुवम्॥ पश्चिमे तृणसम्पत्तिरुत्तरे धान्यसम्भवः। यदीशानेप्यनावृष्टिरूर्ध्वं राजा समाश्रयेत्॥

अथ होलिकादहनविचारः

सायाह्नव्यापिन्यां चतुर्दशीविद्धायां फाल्गुनी पूर्णिमायां भद्राशून्यायां होलिकादाहः(१)। तथाहि—सायाह्ने होलिकां कुर्यात् पूर्वाह्णे क्रीडनं गवाम्। इति। यदि पूर्वदिने सायाह्ने भद्राशून्या सा न लभ्यते तदा परदिने एव। तथाहि ब्रह्मवैवर्ते—

होलिका पौर्णमासी तु सायाह्नव्यापिनी मता। भूतविद्धे न कर्तव्ये दर्शपूर्णे कदाचन॥ इति।

यदि पूर्वदिने चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी परदिने पूर्णिमा सायाह्नात् प्रागेव समाप्यते तदा पूर्वदिने सम्पूर्णरात्रौ भद्रासत्त्वात् परेऽह्नि प्रतिपद्येव कुर्यादिति (२) म० म० महेशठक्कुराः।

---

(१) बृहद्यमः—श्रावणी दुर्गनवमी दुर्गा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्॥
पुराणसमुच्चयेऽपि—भद्रायां दीपिता होली राष्ट्रभङ्गं करोति वै॥

(२) भविष्ये—पूर्णापूर्णदलं यावत् तावज्जीवति वत्सरः। मृते परदले नक्तं दाहस्तस्य विधीयते॥
स्मृत्यन्तरेऽपि—दिनार्धात् परतोऽपि स्यात् फाल्गुनी पूर्णिमा यदि। रात्रौ भद्रावसाने तु होलिका दीप्यते तदा॥
विद्याविनोदे—नन्दायां नरकं घोरं भद्रायां देशनाशनम्। दुर्भिक्षं च चतुर्दश्यां करोत्येव हुताशनः॥
भविष्योत्तरे—सार्धयामत्रयं चेत् स्याद् द्वितीयदिवसे यदि। प्रतिपद् वर्धमाना तु तदा सा होलिका मता॥
अन्यच्च—असत्यामपि पूर्णायां वृद्धित्वे होलिकार्चनम्। क्रियमाणां च नन्दायां शान्तिर्भवति नो क्षयः॥
निर्णयसिन्धुकारानुयायिनो दाक्षिणात्यास्तु—
तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे। प्रदोषव्यापिनी चेत् स्याद् यदा पूर्वदिने तदा॥
भद्रामुखं वर्जयित्वा होलिकायाः प्रदीपनम्॥ इत्यादिवचनात् परदिने रात्रौ पूर्णिमाऽलाभे पूर्वदिन एव होलिकादहनं

अथ होलिकापूजाप्रयोगः

तत्र पञ्चवर्णपताकां होलिकामध्ये आरोप्य सङ्कल्पं कुर्यात्—

ओं अद्य फाल्गुने मासि शुक्ले पक्षे पूर्णिमायां तिथौ अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सपरिवारस्य वर्षाविच्छिन्नसुखकामनया अग्नेर्ढुण्ढीराक्षस्याश्च प्रीतये तत्पीडापरिहारार्थमग्नेर्होलिकायाश्च पूजनमहं करिष्ये।

ततः शुष्ककाष्ठानां गोमयपिण्डानाञ्च राशिं कृत्वा वह्निना प्रदीपयेत्। तत्र मन्त्रः (१)—

ओं दीपयाम्यत्र ते घोरां चितिं राक्षसि ते नमः। हिताय सर्वजगतां प्रीतये पार्वतीपतेः॥
वन्दिताऽसि सुरेन्द्रेण ब्रह्माच्युतशिवादिभिः। अतस्त्वं पाहि नो भीत्या भूषिता भूतिदा भव॥ इति।

कुर्वन्ति, तदसत्। यतः राजमार्तण्डे—भद्रस्य पुच्छं शुभहेतुरन्ये वदन्ति केचिन्न तु युक्तमेतत्। शुष्केन्धनैर्दीप्तहुताशनस्य किमग्रभागेऽप्यतिशीतता स्यात्॥ इति।

ननु 'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने।' इति वचनाद् चन्द्रग्रहणकाले समुपस्थिते चेत् कथं होलिकादहनम्, इति चेन्न, 'स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत्॥' इत्युत्तरार्धेन ग्रहणकालेऽपि नित्यनैमित्तिकक्रिययोरविकारबोधनात्।

(होलिकादहनसमय एव ९ मार्च १९६३ तमे ई० वर्षे रात्री २, ४३ वादने 'प्रदीप' नामकं पुत्ररत्नं लेभे—सम्पादकः)

(१) ज्योतिर्निबंधे—तत्राग्निमन्त्रमुच्चार्य दीपयेद्धोलिकां शुभाम्। भगलिङ्गाङ्कितैर्वाक्यैः क्रीडितव्यं पिशाचवत्॥ पुनश्च तत्रैव—तमग्निं त्रिः परिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च। जल्पन्तु स्वेच्छया लोकाः निश्शंका यस्य यन्मतम्॥ होलिकाङ्गारपक्वान्नं यो भक्षयति तद्दिने। यावत्संवत्सरं पूर्णं क्लेशभाङ् न भवेद्धि सः॥

होलिकादहनसमये वायुफलम्—पूर्वे वायुर्होलिकायां प्रजाभूपालयोः सुखम्। पलायनं च दुर्भिक्षं दक्षिणे जायते ध्रुवम्॥ पश्चिमे तृणसम्पत्तिरुत्तरे धान्यसम्भवः। यदीशानेप्यनावृष्टिरूर्ध्वं राजा समाश्रयेत्॥

ततः—ओं होलिके इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य—

ओं अस्माभिर्भयसन्त्रस्तैः कृता त्वं होलिके यतः। अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव ॥

इति सम्प्रार्थ्य 'ओं होलिकायै नमः' इति वाक्येन यथोपचारैः सम्पूजयेत्। अवीराणि पक्कान्नानि च वह्नौ क्षिपेत्।

ततः पुष्पाञ्जलिचतुष्कं समर्पयेयुः—

ओं होलिकायै नमः। ओं शीतोष्णायै नमः। ओं फाल्गुन्यै नमः। ओं आनन्दनायै नमः।

ततः प्रार्थना—

यदुच्छिष्टेन संसर्गः पादेन प्रतिघातितः। तत् पापं क्षम्यतां देव हव्यवाह नमोऽस्तु ते ॥
यन्मया शीतभीतेन पादस्पृष्टोऽसि कामतः। उच्छिष्टेन च संस्पृष्टो होलिका पूजिता मया ॥
वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शङ्करेण च। अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूतिप्रदा भव ॥

ततः प्रदक्षिणा—

ओं नित्यं प्रदक्षिणां मेरोः करोति सविता यथा। तथा कृता मया वह्ने सहोलिक नमोऽस्तु ते ॥

ततः सर्वे जनाः नृत्यगीतवाद्यहासादिपुरस्सरं रात्रि नयीरन्।

इति फाल्गुनकृत्यम्

अथ चैत्रकृत्यम्

तत्र वसन्तोत्सव (भस्मक्रीडा) निर्णयः

हेमाद्रौ भविष्ये—चैत्रे मासि महावाहो पुण्ये तु प्रतिपद्दिने (१)। यस्तत्र श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः। न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्यायधो नृप॥ प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ। कृत्वा चावश्यकार्याणि सन्तर्प्य पितृदेवताः॥ वन्दयेत् होलिकाभूमिं स्वदुःखोपशान्तये॥ पाद्मे—चैत्रे मासि महापुण्या निर्मिता प्रतिपत् पुरा तस्यां यः श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यात् सचैलकम्। न तस्य दुरितं किञ्चिन् नाधयो व्याधयो न च। भवन्ति कुरु शार्दूल तस्मात् सम्यक् समारभेत्। तथा–प्रभाते विमले जाते ह्यङ्गे भस्म च कारयेत्। सर्वाङ्गे च ललाटे च क्रीडितव्यं पिशाचवत्॥ सिन्दूरैः कुङ्कुमैश्चैव धूलिभिर्धूसरो भवेत्। गीतं वाद्यं च नृत्यं च कुर्याद् रथ्योपसर्पणम्॥ ब्राह्मणैः क्षत्त्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः। एकीभूय प्रकर्तव्या क्रीडा या फाल्गुने सदा। वालकैः सह गन्तव्यं फाल्गुने च युधिष्ठिर॥

भस्मधारणमन्त्रः—ओं वसन्तारम्भसम्भूते सुरासुरनमस्कृते। संवत्सरकृतं पापं क्षमस्व मम होलिके॥ वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शङ्करेण च। अतस्त्वां धारयिष्यामि विभूते भूतिदा भव॥

---

(१) प्रतिपदियमौदयिकी ग्राह्या, तथा हि भविष्ये—प्रवृत्ते मधुमासे तु प्रतिपद्युदिते रवौ। कृत्वा चावश्यकार्याणि सन्तर्प्य पितृदेवताः॥ दिनद्वये तु औदयिकीत्वे पूर्वैव, तथा हि वृद्धवशिष्ठः—वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च। पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत् सर्वदा वुधैः॥

अथ वारुण्यादियोगः

स्कान्दे—वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी । गङ्गायां यदि लभ्येत शतसूर्यग्रहैः समा ।। शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता । गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ॥ शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि । महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ।। शतभिषानक्षत्रयुक्ता चैत्रकृष्णत्रयोदशी वारुणी । वारुणी शनियुक्ता चेत् महावारुणी । महावारुणी शुभयोग युक्ता चेत् महामहावारुणी । तत्र सङ्कल्पः—

ओं तत्सदित्युच्चार्य्यं ओं अद्य चैत्रे मासि कृष्णे पक्षे वारुणयुक्तत्रयोदश्यां तिथावमुकगोत्रस्याऽमुकशर्मणः सूर्यग्रहणकालीनगङ्गास्नानजन्यफलशतगुणफलप्राप्तिकामो गङ्गायां स्नानमहङ्करिष्ये ॥ एवं महावारुण्यां—सूर्यग्रहणकालीनगङ्गास्नानजन्यफलकोटिगुणफलप्राप्तिकामो गङ्गायां स्नानमहङ्करिष्ये ॥ महामहावारुण्यां—त्रिकोटिकुलोद्धरणकामो गङ्गायां स्नानमहङ्करिष्ये । इति संकल्प्य यथाविधि स्नायात् (१) ।

अथ चैत्रनवरात्रारम्भनिर्णयः

चैत्रशुक्लप्रतिपद् देवीपूजादौ परयुतैव ग्राह्या तथा हि—तिथितत्त्वचिन्तामणौ—अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने । मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयायां गुणान्विता ॥ इति । विशेषस्तु आश्विनकृत्ये द्रष्टव्यः ।

दुर्गापूजाविधिस्तु शारदीयपूजावत् कर्तव्यः ।

---

(१) अत्र योगत्रये गङ्गायामेव स्नानफलमन्यत्राऽनुक्तेः इति महेशठक्कुराः । अत्र रात्रौ वारुण्यादिस्नानं न कर्तव्यम्, 'दिवैव योगः शस्तोयं न च रात्रौ कदाचन' इति भारतोक्तेः ।

अथ चैत्रशुक्लाष्टम्यां ब्रह्मपुत्रस्नानविधिः

चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः। स्नायाल्लौहित्यतोयेषु स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ लौहित्यो ब्रह्मपुत्रः ॥ तत्र सङ्कल्पः—ओं अद्येत्यादिसकलपापक्षयपूर्वकसर्वतीर्थस्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिपूर्वकब्रह्मपदगमनकामो ब्रह्मपुत्रे स्नानमहं करिष्ये ॥ इति सङ्कल्प्य—

ओं ब्रह्मपुत्र महाभाग शन्तनोः कुलसम्भव। अमोघागर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर इत्युच्चार्य स्नायात्। तत्र संपूर्णचैत्रस्नाने—चैत्रं तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः। लोहित्यतोये यः स्नायात् स वै कैवल्यमाप्नुयात् ॥

अत्र सङ्कल्पः—ओं अद्येत्यादिकैवल्यप्राप्तिकामश्चैत्रमासं व्याप्य ब्रह्मपुत्रे स्नानमहं करिष्ये ॥ इति (१) ॥

अथ अशोककलिकापानविधिः

चैत्रशुक्लाष्टम्यामशोककलिकापानम् (२) तत्र मन्त्रः—ओं त्वामशोककराभिष्टं मधुमाससमुद्भव। पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु ॥ इति पठित्वा प्राङ्मुखो विष्णुपदजलमिश्रिता अष्टौ अशोककलिकाः पिबेत्।

---

(१) चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्या उत्पत्तिः। इयञ्चाष्टमी नवमीविद्धा ग्राह्या, तथाहि ब्रह्मवैवर्ते—'अष्टमी नवमीविद्धा नवमी चाष्टमीयुता।' इति। काशीखण्डे—भवानीं यस्तु पश्येत शुक्लाष्टम्यां मधौ नरः। न जातु शोकं लभते सदानन्दमयो भवेत् ॥ इति।

(२) लिङ्गपुराणे-अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ। चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमावाप्नुयुः।

अथ श्रीरामनवमीव्रतनिर्णयः

चैत्रशुक्लनवमी । श्रीरामनवमी । तथाहि ब्रह्मपुराणे—चैत्रमासे सिते पक्षे या तिथिर्नवमी भवेत् । सा रामनवमी प्रोक्ता पुण्योपचयकारिणी ॥ नारी वा पुरुषो वापि तत्रैवं भक्तियोगतः । पूजां कुर्याद्विधानेन जागरा चाप्युपोषणम् ॥ कृत्वैव ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते ध्रुवम् । बहुना किमिहोक्तेन मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥

स्मृतिः—यस्तु रामनवम्यां वै मोहाद् भुङ्क्ते नराधमः । कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः (१) ॥

---

(१) इयं नवमी मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । तथा हि अगस्त्यसंहितायाम्—चैत्रशुक्ला तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि । सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ॥ (अभावे केवलाऽपि सदोपोष्या नवमीशब्दसंग्रहात् ।)दिनद्वये मध्याह्नव्यापिनी चेत् पूर्वदिने पुनर्वसुनक्षत्रयुक्तामपि त्यक्त्वा परैव कार्या । तथा हि तत्रैव—नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः । उपोषणं नवम्यां च दशम्यां चैव पारणम् ॥ पुनश्च तत्रैव—दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत् विद्धा त्याज्यैव वैष्णवैः । तदन्येषां च सर्वेषां व्रतं तत्रैव निश्चितम् ॥

अत्र 'दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत्' इति वचनाद् यदा प्रातस्त्रिमुहूर्ता नवमी, दशमी च क्षयवशात् सूर्योदयात् प्रागेव समाप्यते, तदा स्मार्तानां तत्रैव एकादशीनिमित्तोपवासान्नवमीव्रताङ्गपारणालोपः स्यादतः अष्टमीविद्धैव स्मार्तैः कार्या । वैष्णवादीनां तु अरुणोदयविद्धैकादश्याः हेयत्वात् न नवमीव्रताङ्गपारणालोपप्रसङ्ग इति दशमीविद्धैव तैः कार्येत्यवसेयम् । 'त्याज्या विष्णुपरायणैः' इत्यनेन कर्मकालशास्त्रस्यैव बाध इति तदाशयः । 'दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत्' इत्यत्र दशमीवृद्धिः अरुणोदयकाले सूर्योदयोत्तरं वा दशमीसत्त्वम् । यदा तु मुहूर्तमात्रा द्विमुहूर्ता वा नवमी; दशमी तु अरुणोदयात् प्रागेव समाप्यते, तदा मुहूर्तमात्रा नवम्युपवासे द्वितीयदिने वैष्णवानामप्येकादश्युपवासप्राप्तेर्नवमीव्रताङ्गपारणालोपप्रसङ्गो भवत्येवेति वैष्णवैरप्यष्टमीविद्धैवोपोष्या ।

भवत्येवेति वैष्णवैरप्यष्टमीविद्धैवोपोष्या ।

अथ रामनवमीपूजाविधिः

तत्र कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य—ओं अपवित्रः पवित्रो वेति पूजोपकरणद्रव्यमात्मानं चाभिषिच्य पञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अद्य चैत्रे मासि शुक्ले पक्षे नवम्यां तिथावमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः कुलकोटिसमुद्धरणपूर्वकभूरिदक्षिणानेकयज्ञजन्यफलसमफलदुष्करानेकतपोजन्यफलसमफलद्वारकाधिकरणकपिलगवीकोटिदानजन्य–फलसमफलधरादानजन्यफलसमफलबहुजन्मार्जितैकादश्युपवासजन्यफलसमफलप्राप्तिपूर्वकाऽनन्तकालिकविष्णुलोकमहितत्वकामनया साङ्गसायुधसपरिवारश्रीरामचन्द्रपूजनमहं करिष्ये ।

ग्रामपूजायां तु—ओमद्येत्यादि नानागोत्राणां नानानामधेयानामेतद्ग्रामवासिनां कुलकोटिसमुद्धरणेत्याद्यूह्यम् (१)। ततः सति सम्भवे श्रावणकृत्यान्तपरिशिष्टोक्तविधिना शान्तिकलशं प्रतिष्ठापयेत् । ततः (२) पुष्पाक्षतैः ओं भूर्भुवः स्वः श्रीसूर्यादिनवग्रहा इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यावाह्य ओं सूर्यादिनवग्रहेभ्यो नमः । इत्यनेन पाद्यादिभिः पूजयेत् ।

ततः प्रतिमासत्त्वे—ओं श्रीरामचन्द्रोसि ॥ १ ॥ ओं श्रीसीतासि ॥ २ ॥ ओं श्रीलक्ष्मणोसि ॥ ३ ॥ ओं श्रीभरतोसि ॥ ४ ॥ ओं श्रीशत्रुघ्नोसि ॥ ५ ॥ ओं श्रीदशरथोसि ॥ ६ ॥ ओं श्रीकौशल्यासि ॥ ७ ॥ ओं श्रीकैकेय्यसि ॥ ८ ॥ ओं श्रीसुमित्रासि ॥ ९ ॥ ओं श्रीसुग्रीवोसि ॥ १० ॥ ओं श्रीहनूमानसि ॥ ११ ॥ इति यथाक्रमेण प्रत्येकं स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा नामकरणं कुर्यात् ।

---

(१) नवीनव्रतग्रहणे त्वयं विशेषः—ओमद्येत्यादि–सकलपापक्षयपूर्वकश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तसमफलावाप्तये श्रीरामप्रीत्यर्थमद्यारम्य यावज्जीवं रामनवमीव्रतमहं करिष्यते । इति संकल्प्य, फलजलादिपूर्णं ताम्रपात्रं करयोः कृत्वा—ओं इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो । निर्विघ्नं सिद्धिमायातु त्वत्प्रसादात् सुरेश्वर ॥ गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णे मृतो ह्यहम् । तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ (२) नवग्रहमखं कृत्वा ततः कर्म समारभेत् । अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित् ॥

ततः प्रतिमासु (तदभावे तु अष्टदलपद्मं विलिख्य तन्मध्ये) क्रमेण श्रीरामादीनां प्रतिष्ठां कुर्यात् । कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञ ँ समिमं दधातु विश्वेदेवास इहमादयन्तामों प्रतिष्ठ (१) ओं भूर्भुवः स्वः भगवञ्च्छ्रीरामचन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठ इह सुप्रतिष्ठितो भव । एवं सीतां लक्ष्मणादोनाञ्चाऽपि नामग्रहणपूर्वकमुक्तमन्त्रेण स्वस्थाने प्रतिष्ठाप्य रामचन्द्रं ध्यायेत्–ओं कोमलाङ्गं विशालाक्षमिन्द्रनीलसमप्रभम् । दक्षिणांशे दशरथं पुत्रावेक्षणतत्परम् ॥ पृष्ठतो लक्ष्मणं देवं सच्छत्रं कनकप्रभम् । पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तकरावुभौ । अग्रे व्यग्रं हनूमन्तं रामानुग्रहकांक्षिणम् ॥ इति ध्यात्वा ओं आवाहयामि विश्वेशं जानकीवल्लभं विभुम् । कौशल्यातनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतेः परम् ॥ इत्यावाह्य—ओं श्रीरामागच्छ भगवन् रघुवीर नृपोत्तम । जानक्या सह राजेन्द्र सुस्थिरो भव सर्वदा ॥ रामभद्र महेष्वास रावणान्तक राघव । यावत्पूजां करोम्यद्य तावत्त्वं सन्निधो भव ॥ इति सन्निधाप्य—ओं रघुनायक राजर्षे नमो राजोवलोचन । रघुनन्दन मे देव श्रीरामाभिमुखो भव ॥ इत्यभिमुखीकृत्य आसनम्–ओं राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते । रत्नसिंहासनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥ इदमासनं भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः । पाद्यम्—ओं त्रैलोक्यपावनानन्त नमस्ते रघुनायक । पाद्यं गृहाण राजर्षे नमो राजीवलोचन ॥ इदं पाद्यम्० । ततः फलपुष्पजलपूर्णाऽशोकपत्रतुलशीदलसंयुक्तं शंखं गृहीत्वा—ओं दशग्रीवविनाशाय जातोऽसि रघुनन्दन । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रसोद परमेश्वर ॥ एषोऽर्घ्यः भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः । आचमनीयम्—ओं नमः सत्याय शुद्धाय नित्याय ज्ञानरूपिणे । गृहाणाचमनं नाथ सर्वलोकैकनायक ॥ इदमाचमनीयम्० । मधुपर्कः—ओं नमः श्रीवासुदेवाय तत्त्वज्ञानरूपिणे । मधुपर्कं गृहाणेदं जानकीपतये नमः ॥ एष मधुपर्कः० । इदमा-

---

(१) मनोजूतिरिति पठनानन्तरं प्रतिमायाः शिरसि दक्षिणं करं दत्वा—'ओं आँ ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोऽहं श्रीरामचन्द्रस्य प्राणाः जीवः सर्वेन्द्रियाणि च इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।' इत्यपि क्वचिद् दृश्यते ।

चमनीयम्० । पञ्चामृतम्—ओं पयो दधि घृतं गव्यं माक्षिकं शर्करा तथा पञ्चामृतेन स्नपनं गृहाण जगतः पते ॥ इदं पञ्चामृतस्नानीयम्० । शुद्धोदकम्—ओं ब्रह्माण्डोदरमध्यस्थैस्तीर्थैतोयै रघूत्तम । त्वां स्नापयाम्यहं भक्त्या तद् गृहाण जनार्दन ॥ इदं शुद्धोदकं० । इदमाचमनीयम्० । वस्त्रम्—ओं तप्तकाञ्चनसंकाशं पीताम्बरमिदं हरे । संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥ इदं पीतवस्त्रं बृ० । यज्ञोपवीतं—ओं श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्त राघव । ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण रघुनन्दन ॥ इदं यज्ञोपवीतं० । चन्दनम्—ओं कुङ्कुमागरुकस्तूरी-कर्पूरं चन्दनं तथा । तुभ्यं दास्यामि राजेन्द्र श्रीराम स्वीकुरु प्रभो ॥ इदं श्रीखण्डचन्दनम्० । ओं तिला यवाः सुरश्रेष्ठ कम्बूजाश्च सुशोभनाः । वासुदेव जगन्नाथ प्रीत्यर्थं स्वीकुरु प्रभो ॥ एते यवतिलाः० । ओं सुगन्धीनि सुपुष्पाणि देशकालोद्भवानि च । मयानीतानि पूजार्थं प्रीत्या स्वीकुरु तानि मे ॥ एतानि पुष्पाणि० । ओं तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम् । भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥ एतानि तुलसीपत्राणि० । एतानि दूर्वादलानि० । ओं नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम् । प्रयच्छामि च राजर्षे गृहाण परमेश्वर ॥ इदं पुष्पमाल्यं० । इदमाचमनीयम्० ।

अथाङ्गपूजा—ओं श्रीरामचन्द्राय नमः, पादौ पूजयामि । श्रीराजीवलोचनाय नमः, गुल्फौ पूजयामि । श्रीरावणान्तकाय नमः, जानुनी पू० । श्रीवाचस्पतये नमः ऊरू पू० । श्रीविश्वरूपाय नमः, जङ्घे पू० । श्रीलक्ष्मणाग्रजाय नमः, कटिं पू० । श्रीविश्वमूर्तये नमः, मेढ्रं पू० । श्रीविश्वामित्रप्रियाय नमः, नाभिं पू० । श्रीपरमात्मने नमः, हृदयं पू० । श्रीश्रीकण्ठाय नमः; कण्ठं पू० । श्रीसर्वास्त्रधारिणे नमः, बाहू पू० । श्रीरघूद्वहाय नमः, मुखं पू० । श्रीपद्मनाभाय नमः, जिह्वां पू० । श्रीदामोदराय नमः, दन्तान् पू० । श्रीसीतापतये नमः, ललाटं पू० । श्रीज्ञानगम्याय नमः, शिरः पू० । श्रीसर्वात्मने नमः, सर्वाङ्गं पूजयामि ।

ततो धूपः—ओं वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः । रामचन्द्र महीपाल धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

एष धूप श्रीरामचन्द्राय नमः। दीपः—ओं ज्योतिषां पतये तुभ्यं नमो रामाय वेधसे। गृहाण दीपकं चैव त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥ एष दीपः० । नैवेद्यानि—ओं दिव्यान्नरससंयुक्तं नानाभक्ष्यैस्तु संयुतम्। चोष्यपेयसमायुक्तं गृहाणान्नं नमोऽस्तु ते ॥ एतानि नानाविधनैवेद्यानि० । आचमनीयम्—ओं नमस्ते देव देवेश सर्वतृप्तिकरं परम्। अखण्डानन्दसम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम् ॥ इदमाचमनीयम्० । ताम्बूलम्–ओं नागवल्लीदलैर्युक्तं पूगीफलसमन्वितम्। ताम्बूलं गृह्यतां देव कर्पूरादिसमन्वितम्। इदं ताम्बूलं० । ततः प्रणमेदनेन—ओं नमस्ते पुण्डरीकाक्ष त्राहि मां भवसागरात्। सर्वपापप्रणाशाय दण्डवत् प्रणमाम्यहम् ॥

ततः श्रीसीतापूजनम्—(१)—पुष्पाक्षतैः ओं भूर्भुवः स्वः श्रीसीते इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य अर्घ्यमादाय—ओं दशाननविनाशाय जाता धरणिसम्भवा। मैथिली शीलसम्पन्ना पातु नः पतिदेवता ॥ एतानि पाद्यादीनि ओं श्रीसीतायै नमः। ततः इदमनुलेपनम्० । इदं सिन्दूरम्० । इदमक्षतम्० । एतानि पुष्पाणि० । इदं वस्त्रम्० । एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनानाविधनैवेद्यानि० । इदमाचमनीयम्० । एष पुष्पाञ्जलिः ओं श्रीसीतायै नमः। इति यथोपचारैः सम्पूजयेत्।

ततः श्रीलक्ष्मणपूजनम्—यवतिलानादाय—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीलक्ष्मण इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य अर्घ्यमादाय—ओं निहितो रावणिर्येन शक्रजिच्छत्रुघातिना। स पातु लक्ष्मणो धन्वी सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ एतानि पाद्यादीनि ओं श्रीलक्ष्मणाय नमः। इदमनुलेपनं० । एते यवतिलाः० । एतानि पुष्पाणि० । इमे यज्ञोपवीते० । इदं पीतवस्त्रं० । एतानि नानाविधनैवेद्यानि० । इदमाचमनीयम्० । एष पुष्पाञ्जलिः ओं श्रीलक्ष्मणाय नमः।

ततः पूर्वदले—(प्रतिमासत्त्वे तु प्रतिमोपरि एव) पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीदशरथ इहागच्छ इह

---

(१) सति सम्भवे वैशाखकृत्योक्त 'श्रीजानकीनवमी' पूजोक्तषोडशोपचारपूजनक्रमेणैव श्रीसीतापूजा कर्तव्या।

तिष्ठेत्यावाह्य अर्घ्यमादाय–ओं नानाविधगुणागार गृहाणार्घ्यं नृपोत्तम। रविवंशप्रदीपाय नमो दशरथाय वै ॥ एतानि पाद्यादीनि ओं श्रीदशरथाय नमः। एवं चन्दनादिभिः पूजयेत्।

तत आग्नेयदले पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीकौशल्ये इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य अर्घ्यमादाय—ओं गृहाणार्घ्यं महादेवि रम्ये दशरथप्रिये। जगदानन्दवन्द्यायै कौशल्यायै नमो नमः॥ एतानि पाद्यादीनि ओं श्री कौशल्यायै नमः। एवं चन्दनादिभिः पूजयेत्।

ततो याम्यदले पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीकैकेयि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य अर्घ्यमादाय—ओं दृढप्रतिज्ञे कैकेयि मातर्भरतवन्दिते। गृहाणार्घ्यं महादेवि रक्ष मां भक्तवत्सले॥ एतानि पाद्यादीनि ओं श्रीकैकेय्यै नमः। एवं चन्दनादिभिः पूजयेत्।

ततो नैर्ऋत्यदले पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीसुमित्रे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य अर्घ्यमादाय—ओं शुभलक्षणसम्पन्ने लक्ष्मणानन्दकारिणी। सुमित्रं देहि मे देवि सुमित्रायै नमो नमः॥ एतानि पाद्यादीनि ओं श्रीसुमित्रायै नमः। एवं चन्दनादिभिः पूजयेत्।

ततः पश्चिमदले पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीभरत इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य अर्घ्यमादाय—ओं भक्तवत्सल भव्यात्मन् रामभक्तिपरायण। भक्त्या दत्तं गृहाणार्घ्यं भरताय नमो नमः॥ एतानि पाद्यादीनि ओं श्रीभरताय नमः। एवं चन्दनादिभिः पूजयेत्।

ततो वायव्यदले पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीशत्रुघ्न इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य अर्घ्यमादाय—ओं लवणान्तक शत्रुघ्न शत्रुकाननपावक। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रसीद कुरु मे शुभम्॥ एतानि पाद्यादीनि ओं श्रीशत्रुघ्नाय नमः। एवं चन्दनादिभिः पूजयेत्।

तत उत्तरदले— पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीसुग्रीव इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य अर्घ्यमादाय—ओं सुग्रीवाय नमस्तुभ्यं दशग्रीवान्तकप्रिय। गृहाणार्घ्यं महावीर किष्किन्धानायक प्रभो ।। एतानि पाद्यादीनि ओं श्री सुग्रीवाय नमः । एवं चन्दनादिभिः पूजयेत् ।

तत ईशानदले— पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुव स्वः श्रीहनूमन्निहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य अर्घ्यमादाय—ओं कर्मकुम्भीरसङ्कीर्णमुत्तीर्णोऽसि महार्णवम् । हनूमते नमस्तुभ्यं गृहाणार्घ्यं महामते ॥ एतानि पाद्यादीनि श्री हनूमते नमः । एवं चन्दनादिभिः पूजयेत् ।

अथ विभीषणादीनां पूजा । पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीविभीषण इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य श्रीविभीषणाय नमः, इति पाद्यादिभिः पूजयेत् । एवं भूर्भुवः स्वः श्रीनल इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य ओं श्रीनलाय नमः । इत्यनेन पूजयेत् । ओं भूर्भुवः स्वः श्रीनील इहागच्छ, इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं श्रीनीलाय नमः । इत्यनेन पञ्चोपचारैः पूजयेत् । प्रतिमासत्त्वे सर्वत्र श्रीरामपूजनवत् वस्त्रादिकं दद्यात् ।

अथ वारणपूजा । पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुवः स्वः घृष्टे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ओं घृष्टयै नमः । इत्यनेन पाद्यादिभिः पूजयेत् । अनेनैव क्रमेण प्रणवादिनमोऽन्तं संयोज्य जयन्तादिकमपि पूजयेत् । तद्यथा - ओं भूर्भुवः स्वः जयन्त इहागच्छ० ओं जयन्ताय नमः । ओं जय इहागच्छ० जयाय नमः । ओं विजय इहागच्छ० विजयाय नमः । ओं सुराष्ट्र इहागच्छ० सुराष्ट्राय नमः: । ओं राष्ट्रवर्धन इहागच्छ० राष्ट्रवर्धनाय नमः । ओं अकोपन इहागच्छ अकोपनाय नमः । ओं घर्मपाल इहागच्छ० घर्मपालाय नमः । ओं सुमन्तो इहागच्छ० सुमन्तवे नमः । इति ।

तत अष्टदलाग्रे प्रणवादिनमोन्तेन लोकपालानावाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत् । तद्याथा—ओं भूर्भुवः स्वः इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठ, इन्द्राय नमः ।। १ ॥ अग्ने इहागच्छ० अग्नये नमः ॥ २ ॥ यम इहागच्छ० यमाय

नमः ॥ ३ ॥ निर्ऋते इहागच्छ निर्ऋतये नमः ॥ ४ ॥ वरुण इहागच्छ० गरुणाय नमः ॥ ५ ॥ वायो इहागच्छ० वायवे नमः ॥ ६ ॥ कुवेर इहागच्छ कुवेराय नमः ॥ ७ ॥ ईशान इहागच्छ० ईशानाय नमः ॥८॥ (ईशानकुवेरयोर्मध्ये) अनन्त इहागच्छ० अनन्ताय नमः ॥९॥ (इन्द्र-ईशानयोर्मध्ये) ब्रह्मन् इहागच्छ० ब्रह्मणे नमः ॥१०॥ इति ।

अथाऽस्त्रपूजा । पुष्पाक्षतैः—ओं वज्राय नमः । ओं शक्तये नमः । ओं दण्डाय नमः । ओं खड्गाय नमः । ओं पाशाय नमः । ओं अङ्कुशाय नमः । ओं गदायै नमः । ओं शूलाय नमः । ओं चक्राय नमः । ओं शङ्खाय नमः । ओं पद्माय नमः । एवं क्रमेण पञ्चोपचारैः सर्वानावाह्य पूजयेत् ।

ततः सति सम्भवे श्रावणकृत्यान्तपरिशिष्टोक्तविधिना अग्निं संस्थाप्य—'ओं ह्रीं श्रीं सपरिवाराय श्रीरामचन्द्राय नमः स्वाहा' इति मूलमन्त्रेण अष्टोत्तरशतं सहस्रं वा आज्याहुतीर्जुहुयात् ।

तत आरार्तिकं कुर्यादनेन—ओं कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं च प्रदीपितम् । आरार्तिक्यमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव ॥ इदमारार्तिक्यं सपरिवाराय श्रीरामचन्द्राय नमः । ततः प्रणमेदनेन—ओं नमस्ते पुण्डरीकाक्ष त्राहि मां भवसागरात् । सर्वपापप्रणाशार्थं दण्डवत् प्रणमाम्यहम् ॥ ततः प्रदक्षिणा—ओं यानि कानि कृतानीह पापानि मम जन्मनि । तानि तानि प्रणश्यन्तु प्रदक्षिण, पदे पदे ॥ इति त्रिः ।

अथ पुष्पाञ्जलिः—ओं नमस्ते देवदेवेश सुरासुरपते जय । जय कामद भक्तानां जय दाशरते प्रभो । जय सीतापते नाथ जय भग्नेशकार्मुक । जय ब्रह्माण्डखण्डेश जय रावणमर्दन ॥ जय बालिकपोशघ्न जय सुग्रीवराज्यद । जय द्विजगणानन्द जय वायुसुतप्रिय ॥ एष पुष्पाञ्जलिः ओं साङ्गसायुधसपरिवाराय श्रीरामचन्द्राय नमः । इति त्रिः ।

ततोऽन्यान्यपि स्तोत्रादिकं (३३७ पृष्ठोक्तं रामरक्षास्तोत्रं च) पठित्वा श्रीरामनवमीव्रतमाहात्म्यं शृणुयात् ।

तत उत्तरदले— पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीसुग्रीव इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य अर्घ्यमादाय—ओं सुग्रीवाय नमस्तुभ्यं दशग्रीवान्तकप्रिय। गृहाणार्घ्यं महावीर किष्किन्धानायक प्रभो ॥ एतानि पाद्यादीनि ओं श्री सुग्रीवाय नमः। एवं चन्दनादिभिः पूजयेत्।

तत ईशानदले— पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुव स्वः श्रीहनूमन्निहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य अर्घ्यमादाय—ओं कर्मकुम्भीरसङ्कीर्णमुत्तीर्णोऽसि महार्णवम्। हनूमते नमस्तुभ्यं गृहाणार्घ्यं महामते ॥ एतानि पाद्यादीनि श्री हनूमते नमः। एवं चन्दनादिभिः पूजयेत्।

अथ विभीषणादीनां पूजा। पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीविभीषण इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य श्रीविभीषणाय नमः, इति पाद्यादिभिः पूजयेत्। एवं भूर्भुवः स्त्रः श्रीनल इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य ओं श्रीनलाय नमः। इत्यनेन पूजयेत्। ओं भूर्भुवः स्वः श्रीनील इहागच्छ, इह तिष्ठेत्यावाह्य, ओं श्रीनीलाय नमः। इत्यनेन पञ्चोपचारैः पूजयेत्। प्रतिमासत्त्वे सर्वत्र श्रीरामपूजनवत् वस्त्रादिकं दद्यात्।

अथ वारणपूजा। पुष्पाक्षतैः—ओं भूर्भुवः स्वः धृष्टे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य ओं धृष्टयै नमः। इत्यनेन पाद्यादिभिः पूजयेत्। अनेनैव क्रमेण प्रणवादिनमोऽन्तं संयोज्य जयन्तादिकमपि पूजयेत्। तद्यथा - ओं भूर्भुवः स्वः जयन्त इहागच्छ० ओं जयन्ताय नमः। ओं जय इहागच्छ० जयाय नमः। ओं विजय इहागच्छ० विजयाय नमः। ओं सुराष्ट्र इहागच्छ० सुराष्ट्राय नमः:। ओं राष्ट्रवर्धन इहागच्छ० राष्ट्रवर्धनाय नमः। ओं अकोपन इहागच्छ अकोपनाय नमः। ओं धर्मपाल इहागच्छ० धर्मपालाय नमः। ओं सुमन्तो इहागच्छ० सुमन्तवे नमः। इति।

तत अष्टदलाग्रे प्रणवादिनमोन्तेन लोकपालानावाह्य पाद्यादिभिः पूजयेत्। तद्याथा—ओं भूर्भुवः स्वः इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठ, इन्द्राय नमः ॥ १ ॥ अग्ने इहागच्छ० अग्नये नमः ॥ २ ॥ यम इहागच्छ० यमाय

नमः ॥ ३ ॥ निर्ऋते इहागच्छ निर्ऋतये नमः ॥ ४॥ वरुण इहागच्छ० गरुणाय नमः ॥ ५ ॥ वायो इहागच्छ० वायवे नमः ॥ ६ ॥ कुवेर इहागच्छ कुवेराय नमः ॥ ७ ॥ ईशान इहागच्छ० ईशानाय नमः ॥८॥ (ईशानकुवेरयोर्मध्ये) अनन्त इहागच्छ० अनन्ताय नमः ॥९॥ (इन्द्र-ईशानयोर्मध्ये) ब्रह्मन् इहागच्छ० ब्रह्मणे नमः ॥१०॥ इति ।

अथाऽस्त्रपूजा । पुष्पाक्षतैः—ओं वज्राय नमः । ओं शक्तये नमः । ओं दण्डाय नमः । ओं खड्गाय नमः । ओं पाशाय नमः । ओं अङ्कुशाय नमः । ओं गदायै नमः । ओं शूलाय नमः । ओं चक्राय नमः । ओं शङ्खाय नमः । ओं पद्माय नमः । एवं क्रमेण पञ्चोपचारैः सर्वानावाह्य पूजयेत् ।

ततः सति सम्भवे श्रावणकृत्यान्तपरिशिष्टोक्तविधिना अग्निं संस्थाप्य—'ओं ह्रीं श्रीं सपरिवाराय श्रीरामचन्द्राय नमः स्वाहा' इति मूलमन्त्रेण अष्टोत्तरशतं सहस्रं वा आज्याहुतीर्जुहुयात् ।

तत आरार्तिकं कुर्यादनेन—ओं कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं च प्रदीपितम् । आरार्तिक्यमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव ॥ इदमारार्तिक्यं सपरिवाराय श्रीरामचन्द्राय नमः । ततः प्रणमेदनेन—ओं नमस्ते पुण्डरीकाक्ष त्राहि मां भवसागरात् । सर्वपापप्रणाशार्थं दण्डवत् प्रणमाम्यहम् ॥ ततः प्रदक्षिणा—ओं यानि कानि कृतानीह पापानि मम जन्मनि । तानि तानि प्रणश्यन्तु प्रदक्षिण, पदे पदे ॥ इति त्रिः ।

अथ पुष्पाञ्जलिः—ओं नमस्ते देवदेवेश सुरासुरपते जय । जय कामद भक्तानां जय दाशरते प्रभो । जय सीतापते नाथ जय भग्नेशकार्मुक । जय ब्रह्माण्डखण्डेश जय रावणमर्दन ॥ जय बालिकपोशघ्न जय सुग्रीवराज्यद । जय द्विजगणानन्द जय वायुसुतप्रिय ॥ एष पुष्पाञ्जलिः ओं साङ्गसायुधसपरिवाराय श्रीरामचन्द्राय नमः । इति त्रिः ।

ततोऽन्यान्यपि स्तोत्रादिकं (३३७ पृष्ठोक्तं रामरक्षास्तोत्रं च) पठित्वा श्रीरामनवमीव्रतमाहात्म्यं शृणुयात् ।

अथ श्रीरामनवमीव्रतमाहात्म्यम्

नारद उवाच——व्रतानां यद् व्रतं पुण्यं धर्माणां धर्ममुत्तमम् । गुप्तानां यन्महद् गोप्यं तपसां यन्महत्तपः ॥१॥ केन पुण्येन विश्वात्मन् घोरं संसारसागरम् । मायावर्तशताकीर्णं नरस्तरति दुस्तरम् ॥ २ ॥ व्रतान्युक्तान्यनेकानि विष्णोः प्रीतिकराणि वै । नाम्ना विष्णोः सहस्राणि पुरा प्रोक्तानि मे प्रभो ॥३॥ एकादशीव्रतं प्रोक्तं जागरादिसमन्वितम् । केन व्रतेन सहसा प्रीतो भवति केशवः ॥४॥ केन यज्ञेन दानेन तपसा वा जगत्पतिः । प्रीतो भवति विश्वात्मा तन्मे ब्रूहि पितामह ॥५॥ पितामह उवाच——साधु पृष्टं त्वया वत्स लोकानां हितकाम्यया । यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६ ॥ पुरा कैलासशैलस्थं गौरी पृच्छति शङ्करम् । शृणु नारद तत् सर्वं यथावत् कथयामि ते ॥ ७ ॥ चैत्रमासे सिते पक्षे या तिथिर्नवमी भवेत् । सा रामनवमी प्रोक्ता पुण्योपचयकारिणी ॥८॥ तस्यामुपोषणं सद्यो विष्णुप्रीतिकरं परम् । इति मत्वा प्रयत्नेन विधानं तत्र नारद ॥ ९ ॥ नारी वा पुरुषो वापि तत्रैव भक्तियोगतः । पूजां कुर्याद् विधानेन जागरं चाप्युपोषणम् ॥ १० ॥ किं भूरिदक्षिणैर्यज्ञैः किं तपोभिः सुदुष्करैः । किं दानेन भवेत्तस्य येन नैतद् व्रतं कृतम् ॥ ११ ॥ व्रतान्युक्तान्यनेकानि पावनीयानि नारद । परं श्रीरामनवमीव्रतं जगति दुर्लभम् ॥ १२ ॥ कार्तिक्यां पूर्णिमायां वै द्वारकायां द्विजोत्तम । कपिलाकोटिदानस्य फलं प्राप्नोति तद् व्रती ॥ १३ ॥ तेन तप्तं तपस्तीव्रं दत्ता तेन वसुन्धरा । येन वैतत् कृतं सम्यक् श्रीरामनवमीव्रतम् ॥ १४ ॥ एकादश्युपवासेन बहुजन्मार्जितेन वै । यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्र चैकोपवासतः ॥ १५ ॥ तस्मान्नारद नारीभिः पुरुषैश्च समाहितैः । कर्तव्यं व्रतमेतत्तु नात्र कार्या विचारणा ॥ १६ ॥ नारद उवाच— भगवञ्छ्रीरामनवमीमाहात्म्यं प्रोक्तमुत्तमम् । विधिना केन कर्तव्यं तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ॥ १७ ॥ ब्रह्मोवाच— निरामिषं सकृद् भुक्त्वा नरोऽष्टम्यां समाहितः । नवम्यां प्रात-

रुत्थाय कृतनित्यक्रियः शुचिः ॥ १८ ॥ नानाविधानि पुष्पाणि नैवेद्यान्यपि चाहरेत् । ततः सुविस्तरे पुण्ये मण्डपे सुषरिष्कृते ॥ १९ ॥ निर्मायाष्टदलं पद्मं पूजयेत् तद्दिने दले । तन्मध्ये रामचन्द्रस्य मूर्तिर्वै लक्ष्मणस्य च ॥ २० ॥ सीतायाश्च प्रकर्तव्या पूजयेत्तां समाहितः । भक्त्या दशरथं तत्र नरः पूर्वदलेऽर्चयेत् ॥ २१ ॥ वह्निकोणे दले कुर्यात् कौशल्यायां प्रपूजनम् । याम्ये दले च कैकेय्याः सुमित्रायाश्चं नैर्ऋते ॥ २२ ॥ वारुणे भरतस्यापि शत्रुघ्नस्य च मारुतेः । सुग्रीवस्य च कौबेरे तथैशान्यां हनूमतः ॥२३॥ एवमष्टदले पूज्याः पाद्यार्घ्यादिभिरुत्तमैः । अर्घ्यमन्त्रान् प्रत्यनेन श्रृणु नारद विस्तरात् ॥ २४ ॥ ओं दशग्रीवविनाशाय जातोऽसि रघुनन्दन ॥ गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रसीद पुरुषोत्तम ॥ २५ ॥ ओं दशग्रीवविनाशाय जाता साऽवनिसम्भवा । मैथिलीं शीलसम्पन्ना पातु नः पतिदेवता ॥ २६ ॥ ओं निहतो रावणिर्येन शक्रजिच्छत्रुघातिना । स पातु लक्ष्मणो धन्वी सुमित्रानन्दवर्द्धनः ॥ २७ ॥ ओं नानाविधगुणागार गृहाणार्घ्यं नृपोत्तम । रविवंश प्रदीपाय दशरथाय ते नमः ॥ २८ ॥ ओं गृहाणार्घ्यं महादेवि रम्ये दशरथप्रिये । जगदानन्दवन्द्यायै कौशल्यायै नमो नमः ॥ २९ ॥ ओं दृढप्रतिज्ञे कैकेयि मातर्भरतवन्दिते । गृहाणार्घ्यं महादेवि रक्ष मां भक्तवत्सले ॥ ३० ॥ ओं शुभलक्षणसम्पन्ने लक्ष्मणानन्दवर्द्धिनि । सुमित्रं देहि मे देवि सुमित्रायै नमो नमः ॥ ३१ ॥ ओं भक्तवत्सल भव्यात्मन् रामभक्तिपरायण । भक्त्या दत्तं गृहाणार्घ्यं भरताय नमो नमः ॥ ३२ ॥ ओं लवणान्तक शत्रुघ्न शत्रुकाननपावक । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रसीद कुरु मे शुभम् ॥ ३३ ॥ ओं सुग्रीवाय नमस्तुभ्यं दशग्रीवान्तकप्रिय । गृहाणार्घ्यं महाबाहो किष्किन्धानायक प्रभो ॥३४॥ ओं कूर्मकुम्भीरसङ्कीर्णमुत्तीर्णोसि महार्णवम् । हनूमते नमस्तुभ्यं गृहाणार्घ्यं महामते ॥३५॥ ऐभिर्मन्त्रैः प्रदातव्योऽर्घ्यो नारद भक्तितः । पुष्पैर्गन्धैश्च धूपैश्च कर्तव्यो विधिनाऽमुना ॥३६॥ नित्यवादित्रगीतैश्च कुर्याज्जागरणं निशि । येनेव क्रियते विप्र रम्यं रामव्रतं शुभम् ॥ ३७ ॥ तं दृष्ट्वा शत्रवो यान्ति दूरं भयसमन्विताः । पुत्रार्थी लभते पुत्रं राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ॥ ३८ ॥ मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी तु धनं लभेत् ।

ब्राह्मणो धर्ममाप्नोति क्षत्रियो यश उत्तमम् ॥ ३९ ॥ वैश्यो धनसमृद्धिस्त शूद्रः प्राप्नोति सद्गतिम् । अयोध्यायां मुनिश्रेष्ठ य एतत्कुरुते व्रतम् ॥ ४० ॥ पितरस्य तृप्यन्ति वर्षकोटिशतानि च । स्नात्वा वै सरयूतोये कृत्वा रामव्रतं शुभम् ॥ ४१ ॥ न जातु लभते जन्तुर्जन्मसागरबन्धनम् । गयायां पिण्डदानेन यत्फलं कथितं मुने ॥ ४२ ॥ तत्फलं कोटिगुणितमयोध्यायां कृते व्रते । नारीभिः पुरुषैर्वापि पुरुषार्थमभोप्सुभिः ॥४३॥ कर्तव्यश्च प्रयत्नेन भक्तिमुक्तिशुभप्रदम् । या नारी कुरुते भक्त्या व्रतं रामस्य दुर्लभम् ॥ ४४ ॥ पुत्रं सौभाग्यमैश्वर्यं लभते नात्र संशयः । श्रीरामनवमीं प्राप्य भुङ्क्ते या वरवर्णिनी ॥ ४५ ॥ लभते सा मुनिश्रेष्ठ वैधव्यं जन्मजन्मनि । व्रतमेतन्मया प्रोक्तं मुने गुह्यतरं महत् ॥ ४६ ॥ रक्षणीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित् । रामभक्ताय शुद्धाय शान्ताय निर्मलात्मने ॥ ४७ ॥ दातव्यं व्रतमेतत्तु सर्वकामफलप्रदम् । ततः प्रभाते सम्प्राप्ते स्वर्णादिप्रतिमा शुभा ॥ ४८ ॥ आचार्याय प्रदातव्या मृन्मयीं तु विसर्जयेत् । स्नात्वा तु विधिना विप्र सरयूं पूजयेत् ततः ॥ ४९ ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा स्वयं पारणमाचरेत् ॥ ५० ॥

इति श्रीब्रह्मपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे श्रीरामनवमीव्रतमाहात्म्यं समाप्तम् ।

अथ सायंकृत्यम्

सायङ्काले कृतस्नानादिनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्यासने उपविश्य पुष्पाञ्जलिं दद्यादनेन—

ओं नमो देवाधिदेवाय रघुनाथाय शार्ङ्गिणे । चित्सदानन्दरूपाय सीतायाः पतये नमः ॥
नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे । साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ॥

सर्वलोकशरण्याय रामचन्द्राय वेधसे । ब्रह्मानन्दैकरूपाय सीतायाः पतये नमः ।
ओं नमस्ते देव देवेश सुरासुरपते जय । जय कामद भक्तानां जय दाशरथे प्रभो ॥
जय सीतापते नाथ जय भग्नेशकार्मुक । जय ब्रह्माण्डखण्डेश जय रावणमर्दन ॥
जय वालिकपोशघ्न जय सुग्रीवराज्यद । जय द्विजगणानन्द जय वायुसुतप्रिय ॥

एष पुष्पाञ्जलिः ओं सपरिवाराय श्रीरामचन्द्राय नमः । इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा कर्पूरार्तिकं कुर्यादनेन—

ओं कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरेण समन्वितम् ।
आरार्तिक्यं गृहाणेदं जानकीसहितप्रभो ॥

इदमारार्तिक्यं ओं सपरिवाराय श्रीरामचन्द्राय नमः । ततो नृत्यगीतवादनाद्युत्सवैः रात्री जागरणं कुर्यात् ।

अथ विसर्जनम्

ततः प्रभातेऽरुणोदयवेलायां कृतनित्यक्रियो व्रती यथोपचारैः सर्वान् सम्पूज्य सायंकृत्योक्तश्लोकैः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा—ओं देव पूजां मत्कृतां सौभाग्यशुभदां सदा । गृहीत्वा गच्छ स्वस्थानमपराधं क्षमस्व मे ॥ ओं न्यूनाधिकं च यत्किञ्चिन्नवम्यां च मया कृतम् । कृपां मयि विधायेत्थं क्षमस्व पूरुषोत्तम ॥ ओं रामचन्द्र सुराधीश वैकुण्ठं व्रज पार्थिव । पूजां मदीयामादाय मम स्वस्तिकरो भव ॥ ओं रूपं देहि जयं देहि भाग्यं भगवन् देहि मे । धर्मान् देहि धनं देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥ ओं यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ ओं साङ्गसायुधसपरिवार श्रीरामचन्द्र पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । ओं लक्ष्मणादयो देवताः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत । (सति सम्भवे प्रत्येकं विसर्जयेत्) ।

ततः सति कलशस्थापने श्रावणकृत्यान्तपरिशिष्टोक्तविधिना कलशं विसृज्य आम्रपल्लवेन जलाभिषेकं कुर्यात् ।

ततो दक्षिणा—कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्य—कृतैतत् श्रीरामनवमीव्रतनिमित्तकसाङ्गसायुधसपरिवारश्रीरामादिपूजनतन्माहात्म्यश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे । सति सम्भवे भूयसीं च कुर्यात्तथा—कुशादिकमादाय—ओमद्य कृतैतत्साङ्गसायुधसपरिवारश्रीरामादिपूजनकर्मणि न्यूनाधिककर्मदोषप्रशमनार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो भूयसीं दक्षिणां दातुमहमुत्सृज्ये । इत्युत्सृज्य ब्राह्मणेभ्यो दद्यात् ।

ततः ओं यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या व्रतपूजाक्रियादिषु । न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥
ओं प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् । स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥

ओं इमां पूजां मया देव यथाशक्ति निवेदिताम् । रक्षणार्थं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम् ॥

इति पठित्वा नृत्यगीतवाद्याद्युद्घोषपुरस्सरं प्रतिमां नीत्वा (१) अगाधसलिले प्रक्षिपेत् । ततो रामादिप्रीत्यर्थं ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वयमपि भुञ्जीत ।

इति श्रीरामनवमीव्रतपूजा समाप्ता ।

●

---

(१) प्रतिमा स्वर्णमयी चेदाचार्याय तां दद्यादनेन—ओं इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम् । चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां रामाहं राघवाय ते । श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः ॥ इति ।

अथ रामरक्षास्तोत्रम्

अस्य श्रीरामरक्षास्तोत्रमन्त्रस्य बुधकौशिकऋषिः श्रीसीतारामचन्द्रो देवता अनुष्टुप्छन्दः सीताशक्तिः श्रीमद्धनुमत्कीलकम् श्रीरामचन्द्रप्रीत्यर्थे रामरक्षास्तोत्रजपे विनियोगः। अथ ध्यानम्। ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं पीतं वासो वसानं नवकमलदलस्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम्। वामाङ्कारूढसीतामुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभं, नानालङ्कारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम्॥ वामे भूमिसुता पुरश्च हनुमान् पश्चात् सुमित्रासुतः, शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च। सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्, मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम्॥ इति ध्यानम्॥ चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्। एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥ १॥ ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम्। जानकीलक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम्॥ २॥ सासितूणधनुर्बाणपाणिं नवतञ्चरान्तकम्। स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्॥३॥ रामरक्षां पठेत्प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम्। सर्वश्रेयस्करीमृज्वीं दिव्यदिव्यां मनोहराम्॥ ४॥ शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः। कौशल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती॥५॥ घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः। जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः॥ ६॥ स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः। करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित्॥ ७॥ मध्यं पातु खरध्वंसी नाभिं जाम्बवदाश्रयः। गुप्तं हरिहरौ पातां गुदं गौरीशनन्दनः॥ ८॥ सुग्रीवेशः कटिं पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः। ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत्॥ ९॥ जानुनी सेतुकृत्पातु जङ्घे दशमुखान्तकः। पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः॥ १०॥ एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत्। स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत्॥ ११॥ पातालभूतलव्योमचारिणश्छद्मचारिणः। न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः॥ १२॥ रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन्! नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिञ्च विन्दति॥ १३॥

जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम् । यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥ १४ ॥ वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत् । अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम् ॥ १५ ॥ आदिष्टवान् यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः । तथा लिखितवान् प्राज्ञः प्रवुद्धो वुधकौशिकः ॥ १६ ॥ आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम् । अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान् स नः प्रभुः ॥ १७ ॥ तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारौ महाबलौ । पुण्डरीकविशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥ १८ ॥ फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ । पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १९ ॥ शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठौ सर्वधनुष्मताम् । रक्षःकुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥ २० ॥ आत्तसज्जधनुषाविषुस्पृशावक्षयाशुगनिषङ्गसङ्गिनौ । रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ॥ २१ ॥ सन्नद्धकवची खड्गी चापबाणधरो युवा । गच्छन्मनोरथोऽस्माकं रामः पातु सलक्ष्मणः ॥ २२ ॥ रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली । काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौशल्येयो रघूत्तमः ॥ २३ ॥ वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः । जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥२४॥ इत्येतानि जपेन्नित्यं यो भक्तः श्रद्धयान्वितः । अश्वमेधाधिक पुण्यं स प्राप्नोति न संशयः ॥२५॥ रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम् । स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः ॥ २६ ॥ रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं, काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् । कामं भाग्यविधायकं सुखप्रदं, नारायणं मोक्षदं, वन्दे श्रीपरमेश्वरं करुणया कारुण्यमोहापहम् ॥२७॥ रामं पद्मायताक्षं कलिमलमथनं विश्ववृक्षैकबीजं, कौसल्यानन्दरामं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहम् । राजेन्द्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्तिं, बन्दे लोकाऽभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम् ॥२८॥ रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे । रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥२९॥ श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम, श्रीराम राम भरताग्रज राम राम । श्रीराम राम रणकर्कश राम राम, श्रीराम राम शरणं भव राम राम ॥ ३० ॥ श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि, श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि । श्रीराम-

चन्द्रचरणौ शिरसा नमामि, श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ ३१ ॥ माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः। सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालु, र्नान्यं जाने नैव जाने न जाने ॥३२॥ दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे तु जनकात्मजा। पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥३३॥ लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं, राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्। कारुण्यरूपं करुणाकरं तं, श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥ ३४ ॥ मनोजवं मारुततुल्यवेगं. जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्। वातात्मजं वानरयूथमुख्यं, श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥ ३५ ॥ कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्। आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ ३६ ॥ आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्। लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥ ३७ ॥ भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्। तर्जनं यमदूतानां रामरामेति गर्जनम् ॥ ३८ ॥ रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे, रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः। रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं, रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर ॥ ३९ ॥ रामनामगुणान् देवि गातुं रामोऽपि न प्रभुः। उवाचावहितश्शम्भुर्नामसाहस्रजापिकाम् ॥ ४० ॥ राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनामतत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥ ४१ ॥

इति श्रीबुधकौशिकविरचितं श्रीरामरक्षास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

इति चैत्रमासकृत्यम्

अथ वैशाखमासकृत्यम्

तत्र प्रातःस्नानविधिः

उदयात् प्रागेव जलाशयं गत्वा—ओमद्येत्यादि सकलपापक्षयपूर्वकमाधवप्रीतिकामोऽद्यादि मासं व्याप्य प्रत्यहं प्रातःस्नानमहङ्करिष्ये। इति सङ्कल्प्य निम्नोक्तं श्लोकं पठित्वा (१) स्नायात्—

ओं माधवे मेषगे भानौ मुरारे मधुसूदन। प्रातःस्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन् ॥

अथ मेषार्के वारिपूर्णघटदानविधिः

तत्र कृतस्नानादिनित्यक्रियो व्रती शुद्धासने प्राङ्मुख उपविश्य कुशपुष्पाक्षतैः घटोपरि—ओं वारिपूर्णघटाय नमः। कुशोपरि—ओं ब्राह्मणाय नमः। इति त्रिः सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्य अमुके मास्यमुके पक्षे अमुकतिथौ मेषार्कसंक्रमणप्रयुक्तपुण्यकाले (२) अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सकलपापक्षयपूर्वकैहिकसकल-

---

(१) भविष्ये—माधवं सकलं मासं तुलस्या योऽर्चयेन्नरः। त्रिसन्ध्यमघहन्तारं नास्ति तस्य पुनर्भवः ॥ प्रातः स्नात्वा विधानेन माधवे माधवप्रियम्। योऽश्वत्थमूलमासिञ्चेत् तोयेन बहुना सदा। कुर्यात् प्रदक्षिणं तं तु सर्वदेवमयन्ततः ॥

(२) मेषसङ्क्रमणे पूर्वाः पराश्च दशघटिकाः पुण्यकालः। यद्यर्धरात्रात् प्राक् संक्रान्तिस्तदा पूर्वदिनस्योत्तरार्धे पुण्यकालः। यद्यर्धरात्रादुपरि संक्रान्तिस्तदोत्तरदिनस्य पूर्वार्धे पुण्यकालः। तथा हि वृद्धवसिष्ठः—अह्नि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम्। रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्धं स्नानदानयोः ॥ अर्धरात्रादधस्तस्मिन्मध्याह्नस्योपरि क्रिया। ऊर्ध्वं संक्रमणे चोर्ध्वमुदयात् प्रहरद्वयम् ॥

मनोरथसिद्धिपूर्वकाऽनन्तकालिकस्वर्गप्राप्तिकामोऽमुं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकं (सोपकरणं) वारिपूर्णघटं वरुणदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे ।

पित्र्युद्देश्यकघटदानपक्षे--ओमद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य पितुः अमुकशर्मणः (मातृपक्षे अमुकगोत्रायाः मातुः अमुकीदेव्याः) स्वर्गप्राप्तिकामनया अमुं वारिपूर्णघटं वरुणदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे । इत्युत्सृज्य घटं संस्पृश्य पठेत्—

ओं एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात् सफला मम सन्तु मनोरथाः ॥

ततो दक्षिणा—ओमद्य कृतैतद्-वारिपूर्णघटदानप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् । (सक्तुदानं ३४२ पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।)

अथ गलन्तिका (१) दानविधिः

भविष्योत्तरे—वसन्तसमयं ज्ञात्वा गत्वा देवालयं परम् । शिवस्य विष्णोः सम्प्रीत्यै देवं पञ्चामृतेन तु । संस्नाप्य पूजयेद् गन्धैर्नैवेद्यैश्च मनोरमैः । प्रणिपत्य महेशानं मन्त्रमेतदुदीरयेत्--

ओं नमः श्रीशङ्करः शम्भुर्भवो धाता शिवो हरः । प्रीयतां मे महादेवो जलकुम्भप्रदानतः ॥ एवं सङ्कल्प्य दाता

स्कान्दे—सर्वदानेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति माधवे जलदानतः ॥ भविष्योत्तरे—वसन्तग्रीष्मयोर्मध्ये यः पानीयं प्रयच्छति । पले पले सुवर्णस्य फलमाप्नोति मानवः ॥

(१) गलन्तिका—तुलसी-शिवलिङ्गयोरुपरि शनैः शनैः शश्वज्जलपतनार्थं सकुशसूक्ष्मावच्छिद्रयुक्तघटादिः स्तम्भाद्याधारद्वारा यत्स्थाप्यते सा गलन्तिकेत्युच्यते ।

तु पश्चादागत्य वेश्मनि । स्वशक्त्या शिवभक्तांश्च विप्रमुख्यांश्च भोजयेत् ॥ एवं यः कुरुते ग्रीष्मे जलदानक्रियां हरेः । यावद् बिन्दूनि लिङ्गस्य पतितानि न संशयः । स वसेच्छाङ्करे लोके तावत्कोटयो नरेश्वरः ॥

अथ अक्षयतृतीयाकृत्यम्

अत्र (१) गङ्गास्नाने सङ्कल्पः--ओमद्य वैशाखे मासि शुक्ले पक्षे अक्षयतृतीयायां तिथौ अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सर्वकिल्विषमुक्तिकामो गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये। इति। अत्र सक्तुयवहिरण्यादिदानमक्षयफलजनकम् ।

अथ सक्तुदानविधिः

ओं विष्णुर्विष्णुर्हरिर्हरिः, ओं तत्सत् पुण्डरीकाक्ष इति कुशत्रयजलैः आत्मानं देयद्रव्यं च (२) सम्प्रोक्ष्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय--ओमद्य वैशाखे मासि शुक्ले पक्षे अक्षयतृतीयायां तिथौ अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुक-

---

स्कान्दे—प्रपा कार्या च वैशाखे देवे देया गलन्तिका। उपानद्व्यजनच्छत्रं सूक्ष्मवासांसि चन्दनम्। जलपात्राणि देयानि तथा पुष्पगृहाणि च ॥ ('प्रपा' तु लोके 'पनिसाला' इत्युच्यते) ।

(१) नारदीये—वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च। गङ्गातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥ वैशाखशुक्लतृतीया अक्षयतृतीया। सा च चतुर्थीयुता ग्राह्या। तथा हि तिथिचन्द्रिकायां गोभिलः – वैशाखस्य तृतीयां तु पूर्वविद्धां करोति यः। हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यञ्च पितरस्तथा ॥ चतुर्थीयुक्ताया अभावे द्वितीयायुक्ताऽपि ग्राह्या। तथाहि ब्रह्मवैवर्ते–एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी। पूर्वविद्धापि कर्तव्या यदि न स्यात् परेऽहनि ॥

(२) स्मृतिः— ददाति यो हि मेषादौ सक्तूनम्बुघटान्वितान्। पितृनुद्दिश्य विप्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।

शर्मणः कायिकवाचिकमानसिकजन्मजन्मान्तरार्जितसकलपापक्षयपूर्वकश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलसमफलप्राप्तिकामनया श्रीमद्विष्णुप्रीत्यर्थमिमान् (घटपूर्णान्) यवोत्थशक्तून् (यवपक्षे—आमान्नयवान्) प्रजापतिदैवतान् यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे । इत्युत्सृज्य पठेत्—

ॐ सक्तवो धर्मदा नित्यं ब्रह्मणः प्रीतिकारकाः (१) । त्वद्दानान्मम दुष्कर्मक्षयोऽस्तु सुखमस्तु मे ॥
प्राजापत्या यतः प्रोक्ताः सक्तवो यज्ञकर्मणि । तस्मादेषां प्रदानेन प्रीयतां मे प्रजापतिः ॥

यवदानपक्षे त्वयं मन्त्रः–धान्यराजाश्च माङ्गल्ये द्विजप्रीतिकरा यवाः । तस्मादेषां प्रदानेन प्रीयतां मे प्रजापतिः ॥

ततो दक्षिणा—ओमद्य कृतैतत्-सक्तुदान (यवदान) प्रतिष्ठार्थमेतावत्-सक्तु (यव) मूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे । ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् ।

अथ हिरण्यदानम्

ओं सुवर्णाय नमः ॥ ३ ॥ कुशोपरि ओं ब्राह्मणाय नमः ॥ ३ ॥ इति त्रिः सम्पूज्य । ओमद्येत्यादि कायिकवाचिकमानसिकजन्मजन्मान्तरार्जितसकलपापक्षयपूर्वकविष्णुलोकवासकामनया इदं सुवर्णं विष्णुदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे । इत्युत्सृज्य—ओं हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमवीजं विभावसोः । अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ततो देयसुवर्णस्य तृतीयश्चतुर्थो वांशो दक्षिणा । ओमद्य कृतैतत्सुवर्णदानप्रतिष्ठार्थमेतावद्धिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे ।

---

(१) देवीभागवते—वैशाखे सक्तुदानं च यः करोति द्विजातये । सक्तुरेणुप्रमाणाद्धि मोदते शिवमन्दिरे ॥

अथ व्यजनदानम्

ओं व्यजनाय (१) नमः ॥ ३ ॥ कुशोपरि ओं ब्राह्मणाय नमः ॥ ३ ॥ इति त्रिः सम्पूज्य—ओमद्येत्यादि विष्णुलोकप्राप्तिकाम इदं व्यजनं वायुदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे। इत्युसृज्य—ओं व्यजनं वायुदैवत्यं ग्रीष्मकाले सुखप्रदम्। अस्य प्रदानात् सफला मम सन्तु मनोरथाः। ततो दक्षिणा—ओमद्य कृतैतद्व्यजनदानप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे।

अथ छत्रदानम्

ओं छत्राय नमः ॥ ३ ॥ कुशोपरि ओं ब्राह्मणाय नमः ॥ ३ ॥ इति त्रिः सम्पूज्य ओमद्येत्यादि ऐहिकशीतवातातपनिवृत्तिपूर्वकश्रीलाभबहुपुत्रपौत्रादिप्राप्तिमत्त्वानन्तकालिकाप्सरोगणसेव्यमानकिङ्किणीजालमालायुतदिव्यविमानकरणकमहेन्द्रभवनगमनकाम इदं छत्रमुत्तानाङ्गिरोदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे। इत्युत्सृज्य—ओ इहामुत्र परित्राणं कुरु मे केशव प्रभो। छत्रं त्वत्प्रीतये दत्तं ब्राह्मणाय मया शुभम् ॥ ततो दक्षिणा—ओमद्य कृतैतच्छत्रदानप्रतिष्ठार्थमेतावद्-द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे।

अथ उपानद्दानम्

ओं उपानद्भ्यां नमः ॥१॥ कुशोपरि ओं ब्राह्मणाय नमः ॥३॥ इति त्रिः सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्येत्यादि तप्तवालुकासिकण्टकितभूदुर्गसन्तरणकाम इमे उपानहौ उत्तानाङ्गिरोदैवते यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं

---

(१) स्कान्दे—माधवे मासि सम्प्राप्ते ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। व्यजनं च जलं छत्रमेषान् दानं विशिष्यते ॥

ददे । इत्युत्सृज्य—उपानहौ प्रदत्ते मे कण्टकादिनिवारणे । सर्वमार्गेषु सुखदे अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ततो दक्षिणा ओमद्य कृतैतदुपानद्दानप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे (१) ।

अथ श्रीजानकीनवमीव्रतनिर्णय.

आगमे—वैशाखस्य सिते पक्षे नवम्यां (२) जनकात्मजा । आविर्वभूव लोकानां हिताय जगदम्बिका ॥

बृहद्विष्णुपुराणे—

महर्षिभिः समादिष्ट-मार्गेण मिथिलाधिपः । माधवे धवले पक्षे नवम्यां यज्ञमारभत् ॥
स्वर्णलाङ्गलमादाय विचकर्ष महीतलम् । तत्र पुत्री समुत्पन्ना तां तदा गृहमानयत् ॥
जानकी तेन वै नाम्ना विख्याता भुवनत्रये । कदाचिन्नारदो योगी तत्रागत्य महामुनिः ॥
सीतेति नाम्ना चाभाष्य रहस्येतदुपादिशत् ।……………………………………॥

व्रतनिर्णयस्तत्रैव—

वैशाखस्य सिते पक्षे नवमी तु मघायुता । सैव मध्याह्नयोगेन शस्यते व्रतकर्मणि ॥
निर्ऋक्षापि तिथिर्ग्राह्या नवमीशब्दसंग्रहात् । तिथिक्षये तिथेर्वृद्धौ शुद्धा विद्धापि वा पुनः ।
मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या कर्मकालस्तु शस्यते । परैव शस्यते तज्ज्ञैर्मध्याह्ने चेद् दिनद्वये ॥

---

(१) वैशाखशुक्लसप्तम्यां गङ्गोत्पत्तिः इयं गङ्गासप्तमी शिष्टाचारात् मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या ।

(२) 'फाल्गुनस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां महीसुता । जाता दाशरथेः पत्नी तस्मिन्नहनि जानकी ॥' इति यदुक्तं कल्पतरौ तद् बहुवचनविरोधात् मैथिला नाद्रियन्ते ।

दिनद्वयेप्येतद्व्याप्तौ तदा सा गृह्यते परा । दशम्यां पारणं शस्तं दशमीं नैव लंघयेत् ॥

प्रतिमानिर्माणप्रकारोपि तत्रैव—

निर्माय मण्डपं श्रेष्ठं तत्र पूजनमाचरेत् । ज्ञानमुद्राधरं रामं वीरासनसमाश्रयम् ॥
दिव्यसिंहासनासीनं न्यसेदष्टदलाम्बुजे । श्रीरामवामभागस्थां सीतां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥
नीलपद्मधरां देवीं कारयेद् साधकोत्तमः । मिथिलाधीश्वरं पार्श्वे जनकं तत्र स्थापयेत् ॥
लक्ष्मणं पश्चिमे भागे धृतच्छत्रं सचामरम् । पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तकराम्बुजौ ॥
आञ्जनेयं तथैवाग्रे एवं वै प्रतिमाक्रमात् ॥

पूजनप्रकारोऽपि तत्रैव—

पूजा स्याद् वैष्णवे पीठे वेदिकोपरि संस्थिते । प्राणप्रतिष्ठामन्त्रैश्च न्यसेत् प्राणान् प्रयत्नतः ।
संस्कारान् विधिवत् कृत्वा देवमावाह्य पूजयेत् । आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ॥
मधुपर्काचमनं स्नानं वासो यज्ञोपवीतकम् । गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ।
ताम्बूलं चेति रामस्य सीतायाश्चापि पूजने । यज्ञसूत्रोपचारे तु सीतायै भूषणं न्यसेत् ॥
अन्येषां नाममात्रेण चतुर्थ्या नमसा सह । एवं होमोपि कर्तव्यस्तर्पणस्यैव वै क्रमः ॥
पुनः शङ्खे जलं ग्राह्यमर्घ्यं दद्याद् विचक्षणः ॥
'रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया रघुनन्दन ॥
'उत्पन्नासि महाभागे स्वर्णलाङ्गलपद्धतौ । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया मिथिलेशजे ॥'

अथ श्रीजानकीनवमीव्रतपूजाविधिः

वैशाखशुक्लनवम्यां कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य पञ्चदेवतं विष्णुं च सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय--ओं अद्य वैशाखे मासि शुक्ले पक्षे नवम्यां तिथौ अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सपरिवारस्य उपस्थितशरीराविरोधेन दीर्घायुष्ट्वबलपुष्टिनैरुज्यप्राप्तिपूर्वकधनधान्यसन्ततिसुखान्वितत्वनिखिलमनोऽभिलषितफलप्राप्तिकामो लक्ष्मणादिसहितश्रीरामजानकीपूजनमहं करिष्ये। इति संकल्प्य श्रावणकृत्यान्तपरिशिष्टोक्तविधिना शान्तिकलशं प्रतिष्ठाप्य प्रथमं सूर्यादिनवग्रहान् दशदिक्पालांश्च पूजयेत् । ततः प्रतिमायां--

ॐ श्रीरामचन्द्रोसि। ॐ श्रीजानक्यसि। ॐ श्रीजनकोसि। ॐ श्रीलक्ष्मणोसि। ॐ श्रीभरतोसि। ॐ श्रीशत्रुघ्नोसि। ॐ श्रीहनूमानसि।

इति प्रतिमासत्त्वे प्रत्येकं नामकरणं कृत्वा कुशत्रयतिलजलान्यादाय--ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य वृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञ ँ स मिमं दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ। ओं भूर्भुवः स्वः श्रीरामचन्द्रजानक्याविहागच्छतमिह तिष्ठतम्। इति पठित्वा अनेनैव क्रमेण जनकादीनामपि नामग्रहणपूर्वकमुक्तमन्त्रेण प्रतिष्ठापयेत्। (प्रतिमाऽभावे अष्टदलपद्मं विलिख्य तन्मध्ये पूजयेत्।)

ततः करकच्छपिकां बद्ध्वा—ॐ आवाहयामि विश्वेशं जानकीवल्लभं विभुम्। कौशल्यातनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतेः परम्॥ ओं आवाहयाम्यहं सीते सर्वकामार्थसिद्धये। अस्यां मूर्तौ समागच्छ स्थितिं मत्कृपया कुरु॥ इत्यावाह्य--ओं राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते। रत्नसिंहासनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो॥ ओं नानाप्रभाभिराकीर्णं नानावर्णविचित्रितम्। आसनं कल्पितं देवि प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्। इमे आसने श्रीरामजानकीभ्यां नमः। ॐ त्रैलोक्यपावनानन्त नमस्ते रघुनायक। पाद्यं गृहाण राजर्षे नमो राजीवलोचन॥ ॐ गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्य आनीतं

दिनद्वयेप्येतद्व्याप्तौ तदा सा गृह्यते परा । दशम्यां पारणं शस्तं दशमीं नैव लंघयेत् ॥

प्रतिमानिर्माणप्रकारोपि तत्रैव—

निर्माय मण्डपं श्रेष्ठं तत्र पूजनमाचरेत् । ज्ञानमुद्राधरं रामं वीरासनसमाश्रयम् ॥
दिव्यसिंहासनासीनं न्यसेदष्टदलाम्बुजे । श्रीरामवामभागस्थां सीतां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥
नीलपद्मधरां देवीं कारयेद् साधकोत्तमः । मिथिलाधीश्वरं पार्श्वे जनकं तत्र स्थापयेत् ॥
लक्ष्मणं पश्चिमे भागे धृतच्छत्रं सचामरम् । पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तकराम्बुजौ ॥
आञ्जनेयं तथैवाग्रे एवं वै प्रतिमाक्रमात् ॥

पूजनप्रकारोऽपि तत्रैव—

पूजा स्याद् वैष्णवे पीठे वेदिकोपरि संस्थिते । प्राणप्रतिष्ठामन्त्रैश्च न्यसेत् प्राणान् प्रयत्नतः ।
संस्कारान् विधिवत् कृत्वा देवमावाह्य पूजयेत् । आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ॥
मधुपर्काचमनं स्नानं वासो यज्ञोपवीतकम् । गन्धं पुष्पं तथा धूपं दोपं नैवेद्यमेव च ।
ताम्बूलं चेति रामस्य सीतायाश्चापि पूजने । यज्ञसूत्रोपचारे तु सीतायै भूषणं न्यसेत् ॥
अन्येषां नाममात्रेण चतुर्थ्या नमसा सह । एवं होमोपि कर्तव्यस्तर्पणस्यैव वै क्रमः ॥
पुनः शङ्खे जलं ग्राह्यमर्घ्यं दद्याद् विचक्षणः ॥
'रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया रघुनन्दन ॥
'उत्पन्नासि महाभागे स्वर्णलाङ्गलपद्धतौ । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया मिथिलेशजे ॥'

अथ श्रीजानकीनवमीव्रतपूजाविधिः

वैशाखशुक्लनवम्यां कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य पञ्चदेवतं विष्णुं च सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय--ओं अद्य वैशाखे मासि शुक्ले पक्षे नवम्यां तिथौ अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सपरिवारस्य उपस्थितशरीराविरोधेन दीर्घायुष्ट्वबलपुष्टिनैरुज्यप्राप्तिपूर्वकधनधान्यसन्ततिसुखान्वितत्वनिखिलमनोऽभिलषितफलप्राप्तिकामो लक्ष्मणादिसहितश्रीरामजानकीपूजनमहं करिष्ये। इति संकल्प्य श्रावणकृत्यान्तपरिशिष्टोक्तविधिना शान्तिकलशं प्रतिष्ठाप्य प्रथमं सूर्यादिनवग्रहान् दशदिक्पालांश्च पूजयेत् । ततः प्रतिमायां--

ॐ श्रीरामचन्द्रोसि। ॐ श्रीजानक्यसि। ॐ श्रीजनकोसि। ॐ श्रीलक्ष्मणोसि। ॐ श्रीभरतोसि। ॐ श्रीशत्रुघ्नोसि। ॐ श्रीहनूमानसि।

इति प्रतिमासत्त्वे प्रत्येकं नामकरणं कृत्वा कुशत्रयतिलजलान्यादाय--ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञ ँ स मिमं दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ। ओं भूर्भुवः स्वः श्रीरामचन्द्रजानक्याविहागच्छतमिह तिष्ठतम्। इति पठित्वा अनेनैव क्रमेण जनकादीनामपि नामग्रहणपूर्वकमुक्तमन्त्रेण प्रतिष्ठापयेत्। (प्रतिमाऽभावे अष्टदलपद्मं विलिख्य तन्मध्ये पूजयेत्।)

ततः करकच्छपिकां बद्ध्वा--ॐ आवाहयामि विश्वेशं जानकीवल्लभं विभुम्। कौशल्यातनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतेः परम्॥ ओं आवाहयाम्यहं सीते सर्वकामार्थसिद्धये। अस्यां मूर्तौ समागच्छ स्थितिं मत्कृपया कुरु॥ इत्यावाह्य--ओं राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते। रत्नसिंहासनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो॥ ओं नानाप्रभाभिराकीर्णं नानावर्णविचित्रितम्। आसनं कल्पितं देवि प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्। इमे आसने श्रीरामजानकीभ्यां नमः। ॐ त्रैलोक्यपावनानन्त नमस्ते रघुनायक। पाद्यं गृहाण राजर्षे नमो राजीवलोचन॥ ॐ गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्य आनीतं

तोयमुत्तमम् । पाद्यं तेऽहं प्रदास्यामि गृहाण परमेश्वरि ॥ इमे पाद्ये श्रीरामजानकीभ्यां नमः। ओं रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया रघुनन्दन ॥ ओं उत्पन्नासि महाभागे स्वर्णलाङ्गलपद्धतौ । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया मिथिलेशजे ॥ इमे अर्घ्ये० । ओं नमः सत्याय शुद्धाय नित्याय ज्ञानरूपिणे । गृहाणाचमनं नाथ सर्वलोकैकनायक ॥ ओं कर्पूरवासितं तोयं मन्दाकिन्याः समाहृतम् । आचम्यतां महामाये मया दत्तं हि भक्तितः ॥ इमे आचमनीये० । ओं पयो दधि घृतं चैव मधुशर्करयान्वितम् । पञ्चामृतेन स्नपनं गृहाण 'परमेश्वर' (परमेश्वरि') ॥ इमे पञ्चामृतस्नानीये० । ओं जाह्नवीजलमत्यन्तं पवित्रकरणं परम् । स्नानार्थन्तु मयानीतं स्नानं कुरु जगत्पते ॥ ओं ज्ञानमूर्ते महामाये दिव्यरूपे सुरेश्वरि । स्नानं गृहाण देवि त्वं नारायणि नमोऽस्तु ते । इमे शुद्धोदकस्नानीये० । इमे आचमनीये० । ओं तन्तुसन्तानसंयुक्तं कलाकौशलकल्पितम् । सर्वाङ्गाभरणं 'देव' (देवि) वाससी परिधीयताम् ॥ इमे पीतवस्त्रे बृहस्पतिदैवते० । ओं श्रीराम विबुधाधीश सुरासुरवरप्रद । यज्ञोपवीतं मद्दत्तं परिधत्स्व रघूत्तम । इमे यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते श्रीरामचन्द्राय नमः । ओं अलङ्कारान् महादिव्यान् नानारत्नविनिर्मितान् । गृहाण वरदे देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥ इदमलङ्करणं श्रीजानक्यै नमः । ओं मलयाचलसम्भूतं नानागन्धसमन्वितम् । शीतलं बहुलामोदं गृहाण 'वरदो भव' (वरदे शुभे) ॥ एतानि श्रीखण्डचन्दनानि० । ओं सिन्दूरं सर्वसाध्वीनां भूषणाय विनिर्मितम् । गृहाण वरदे देवि भूषणानि प्रयच्छ मे । इदं सिन्दूराभरणं श्रीजानक्यै नमः । ओं तिला यवाः सुरश्रेष्ठाः कम्बूजाश्च सुशोभनाः । वासुदेव जगन्नाथ प्रीत्यर्थं स्वीकुरु प्रभो ॥ एते यवतिलाः ओं श्रीरामचन्द्राय नमः । ओं अक्षतं धान्यजं देवि ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । प्राणदं सर्वभूतानां गृहाण वरदे शुभे ॥ इदमक्षतं श्रीजानक्यै नमः । ओं सुगन्धीनि सुपुष्पाणि देशकालोद्भवानि च । मयानीतानि पूजार्थं प्रीत्या स्वीकुरु 'महेश्वर' (माहेश्वरि') ॥ एतानि पुष्पाणि ओं श्रीरामजानकीभ्यां नमः । ओं तुलसीं हेंमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम् । भवमोक्षप्रदां तुभ्य-

मर्पयामि हरिप्रियाम् ॥ एतानि तुलसीपत्राणि श्रीरामचन्द्राय नमः। एतानि दूर्वादलानि०। ओं नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम्। प्रयच्छामि 'च राजर्षे गृहाण परमेश्वर' (सदा भद्रे गृहाण परमेश्वरि) ॥ इमे पुष्पमाल्ये श्रीरामजानकीभ्यां नमः। ओं नमः सत्याय शुद्धाय नित्याय ज्ञानरूपिणे। गृहाणाचमनं नाथ जानकीसहितप्रभो ॥ इमे आचमनीये श्रीरामजानकीभ्यां नमः। ओं रामचन्द्र सुरश्रेष्ठ जानक्या भ्रातृभिः सह। पूजितोऽसि महादेव धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। ओं गुग्गुलुं घृतसंयुक्तं नानाभक्ष्यैश्च संयुतम्। दशाङ्गं गृह्यतां धूपं सीते देवि नमोऽस्तु ते ॥ एतौ धूपौ०। ओं सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः। सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एतौ दीपौ०। ओं दिव्यान्नरससंयुक्तं नानाभक्ष्यैस्तु संयुतम्। चोष्यपेयसमायुक्तं परमान्नं प्रगृह्यताम् ॥ एतानि नैवेद्यानि०। ओं नमस्ते देव देवेश सर्वतृप्तिकरं परम्। अखण्डानन्दसम्पूर्णं गृहाण जलमुत्तमम् ॥ ओं पानीयं शीतलं स्वच्छं कर्पूरादिसुवासितम्। भोजने तृप्तिकृद्यस्मात् गृहाण कृपयेश्वरि ॥ इदमाचमनीयम्०। ओं पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम्। कर्पूरैलासमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्। इमे ताम्बूले०। ततः प्रार्थना—ओं नमस्ते पुण्डरीकाक्ष त्राहि मां भवसागरात्। सर्वपापप्रणाशार्थं दण्डवत् प्रणमाम्यहम् ॥ ओं दशाननविनाशाय जाता धरणिसम्भवा। मैथिली शीलसम्पन्ना पातु नः पतिदेवता ॥ इति प्रणम्य पार्श्वे मिथिलाधीश्वरं जनकं यथोपचारैः सम्पूज्य अर्घ्यं तस्मै निवेदयेदनेन—ओं विदेहाधिप राजेन्द्र मिथिलेश कृपानिधे। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वसिद्धिं प्रयच्छ मे ॥ ततो लक्ष्मणं भरतं शत्रुघ्नं हनूमन्तं च यथोपचारैः पूजयेत्। ततः सति सम्भवे श्रावणकृत्यान्तपरिशिष्टोक्तविधिना अग्निं संस्थाप्य 'ओं श्रीरामजानकीभ्यां नमः स्वाहा' इति मूलमन्त्रेण अष्टोत्तरशतं सहस्रं वा आज्याहुतीर्जुहुयात्।

ततो वर्षकृत्यद्वितीयभागोक्तं मिथिलामाहात्म्यं, ३३७ पृष्ठोक्तं रामरक्षास्तोत्रं च पठित्वा नृत्यगीतादिभिरुत्सवं कारयन् दिवसं नीत्वा सायङ्काले पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। रात्रौ नृत्यगीतवाद्यादिभिरुत्सवं च कारयेत्।

अथ विसर्जनम्

प्रभातेऽरुणोदयवेलायां कृतनित्यक्रियो व्रती यथोपचारैः सर्वान् सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा--ओं रामचन्द्र सुराधीश वैकुण्ठं व्रज पार्थिव। पूजां मदीयामादाय जानकीसहितप्रभो ॥ ओं गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि जानकि। यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ ओं रूपं देहि जयं देहि भाग्यं भवति देहि मे। धर्मान् देहि धनं देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥ ओं विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम्। पूर्णं भवतु तत्सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वरि। शक्नुवन्ति न ते पूजां कर्तुं ब्रह्मादयः सुराः। अहं किं वा करिष्यामि मृत्युधर्मा नरोऽल्पधीः ॥ न जानेऽहं स्वरूपं ते न शरीरं न वा गुणान्। एकामेव हि जानामि भक्तिं त्वच्चरणाब्जयोः ॥ तस्मात् सम्भाव्य भक्तिं मे मदीयार्चां प्रगृह्य च। गच्छ देवि निजं स्थानं मह्यं दत्त्वा वरान् बहून् ॥ इति सम्प्रार्थ्यं मूर्तिस्थनिर्माल्यपुष्पमादाय—ॐ ते सर्वे विलयं यान्तु ये मां हिंसन्ति हिंसकाः। मृत्युरोगभयक्लेशाः पतन्तु रिपुमस्तके ॥ इत्यैशान्यां क्षिपेत्।

ततः चरणं स्पृष्ट्वा—ॐ व्रज त्वं स्रोतसि जले मद्गेहं तिष्ठ भूतये। आगामिवत्सरे च त्वं पुनरायास्यसि ध्रुवम् ॥ ॐ गच्छन्तु देवताः सर्वा दत्त्वा मे वरमीप्सितम्। त्वं गच्छ परमेशानि सुखं सर्वगणैः सह ॥ ओं साङ्गसपरिवारश्रीरामजानक्यौ पूजितौ स्थः क्षमेयाथां स्वस्थानं गच्छतम्। ओं श्रीमिथिलाधिपतिजनक पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ। एवं लक्ष्मणादिपूजितदेवानपि स्वस्वनामोक्त्या विसृज्य शान्तिकलशाधिष्ठितदेवानपि विसृजेत्। ततः कुशत्रयतिलजलान्यादाय--ओमद्य कृतैतच्छ्रीरामजानक्यादिपूजनकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे। ततः परिशिष्टोक्तविधिना अभिषेक मन्त्रैर्यजमानमभिषिञ्चेत्। ततो नृत्यगीतवाद्यादिना प्रतिमामुत्थाप्य जलाशयं नीत्वा—

ॐ सीते देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते । संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय वै ।।
इमां पूजां मया देवि यथाशक्ति निवेदिताम् । रक्षणार्थं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम् ।।

इति जले प्रवाहयेत् । तद्दिने देवीप्रीत्यर्थं ब्राह्मणांश्च भोजयेत् ।

इति श्रीजानकीनवमीव्रतपूजा समाप्ता ।

अथ वैशाखीपूर्णिमाकृत्यम्

तत्र सङ्कल्पः—ओमद्येत्यादिगङ्गास्नानजन्यफलसहस्रगुणाधिकफलप्राप्तिकामो गङ्गायां स्नानमहं करिष्ये ।।

विष्णुपुराणे—कृष्णाजिनान् तिलान् कृष्णान् हिरण्यमधुरसर्पिषो । ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् (१) ।।

इति वैशाखमासकृत्यम्

---

(१) वैशाखशुक्लचतुर्दशी नृसिंहचतुर्दशी । नृसिंहपुराणे—

वैशाखे शुक्लपक्षे तु चतुर्दश्यां निशामुखे । मज्जनसंभवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ।।

(नृसिंहचतुर्दशीव्रतोपवासे सम्पूर्णवैशाखमासप्रातःस्नानजन्यफलसमफलं लभते नर इति भावः ।)

अथ ज्येष्ठमासकृत्यम्

अथ वटसावित्रीव्रतविधानम्

भविष्ये—अमायां च तथा ज्येष्ठे वटमूले महासती । त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनाऽनेन पूजयेत् ॥
अशक्तौ तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रियः । अयाचितं चतुर्दश्याममायां समुपोषणम् ॥
ज्येष्ठे मासि त्रयोदश्यां दन्तधावनपूर्वकम् । दन्तकाष्ठं समं शुभ्रं जातीयं चतुरङ्गुलम् ॥
तस्यापराह्णसमये नद्यादौ विमले जले । तिलामलककल्केन केशान् संशोध्य यत्नतः ॥
स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा वटं सिञ्चेद् बहूदकैः । सधवा विधवा वाऽपि सुपुत्रा पुत्रवर्जिता ॥
भर्तुरायुर्विवृद्ध्यर्थं कुर्याद् व्रतमिदं शुभम् । ज्येष्ठे मासेऽसिते पक्षे त्रयोदश्यां पतिव्रता ॥
स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा नियमं कारयेत्ततः । त्रिरात्रं लंघयित्वा तु चतुर्थे दिवसे ह्यहम् ॥
समर्प्यार्घ्यमरुन्धत्यै पूजयित्वा सुवासिनीः । मिष्टान्नेन यथाशक्ति भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥
भोक्ष्येऽहं तु जगद्धात्रि निर्विघ्नं कुरु मे शुभे ॥ (विस्तरस्तु ३५५ पृष्ठे टिप्पण्यां द्रष्टव्यः)

अथ वटसावित्रीव्रतपूजाविधिः

(संक्षिप्तपूजाविधिस्तु अग्रे ३५५ पृष्ठे द्रष्टव्यः)

तत्र ज्येष्ठकृष्णाऽमायां स्नानादिकं विधाय स्वदेशस्थितविशेषवटवृक्षसमीपमागत्य पूर्वाभिमुखी उत्तराभिमुखी वा भूत्वा प्रथमं वटमूलं सिञ्चेदनेन—नमो वटमूले स्थितो ब्रह्मा वटमध्ये जनार्दनः वटाग्रे तु शिवं विद्यात्

सावित्री व्रतसंयुता ॥ वट सिञ्चामि ते मूलं सलिलैरमृतोपमैः (१) ॥ ततः पञ्चवारं सप्तवारं वा प्रदक्षिणं कृत्वा सूत्रेण वटवृक्षमावेष्टयेत् । ततः प्रणमेदनेन—नमो मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे । अग्रतः शिवरूपाय वृक्षराज नमोऽस्तु ते ॥ ततः पूजास्थाने उपविश्य दीपं प्रज्वल्ज्याचम्य गणेशं गौरीं च सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—-नमोऽद्य ज्येष्ठे मासि कृष्णे पक्षे वटसावित्र्यमावास्यायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्राया अमुकीदेव्या मम भर्तुरारोग्याद्यभिवृद्धये आत्मनश्च जन्मजन्मन्यवैधव्यसिद्धये पुत्रपौत्राद्यभिवृद्धये च वटसन्निहितब्रह्मणा सह श्रीसावित्रीदेव्याः षोडशोपचारैः पूजनमहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य पुष्पाक्षतैः—-नमः ब्रह्मणा सह श्रीसावित्रि इहागच्छ इह तिष्ठ, इह सुप्रतिष्ठिता वरदा भव । इति प्रतिष्ठाप्य ध्यायेत्—ब्रह्मपत्रासनस्थश्च ब्रह्मा ध्येयश्चतुर्मुखः । सावित्री तस्य ध्यातव्या वामोत्सङ्गगता सती ॥ आदित्यवर्णा धर्मज्ञा साक्षमालाकरा तथा ॥ आवाहनम्—ब्रह्मणा सहितां देवीं सावित्रीं लोकमातरम् । सत्यवन्तं धर्मराजं वटं चावाहयाम्यहम् ॥ ओङ्कारपूर्विके देवि वीणापुस्तकधारिणि । वेदमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥ आसनम्—ब्रह्मणा सह सावित्रि सत्यवत्सहितेऽनघे । गृहाणासनकं हैमं धर्मराजयुतेऽनघे ॥ ओङ्कारपूर्विके देवि वीणापुस्तकधारिणि । वेदमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥ इदं पुष्पासनं ब्रह्मणा सहितायै सावित्रीदेव्यै नमः । पाद्यम्—गङ्गाजलं समानीतं पाद्यार्थं ब्रह्मणः प्रिये । भक्त्या दत्तं धर्मराज सावित्री प्रतिगृह्यताम् ॥ ओङ्कारपूर्विके० ॥ अर्घ्यम्-गाङ्गं समाहृतं तोयं फलपुष्पसमन्वितम् । अर्घ्यं गृहाण सावित्रि मम सत्यव्रतप्रिये ॥ ओङ्कारपूर्विके० ॥ आचमनीयम्—सलिलं सहकर्पूरं सुरभि स्वादु शीतलम् । ब्रह्मणा सह सावित्रि कुरुष्वाचमनीयकम् ॥ ओङ्कारपूर्वके० ॥ पञ्चामृतस्नानम्—पयो दधि घृतं चैव शर्करामधुसंयुतम् । पञ्चामृतेन स्नपनं क्रियतां परमेश्वरि ॥ ओङ्कारपूर्विके० ॥ शुद्धोदकस्नानम्—मन्दाकिन्याः समानीतं हेमाम्बुजसुवासितम् । परिवारयुते देवि

---

(१) यदि लज्जावशात् पूजामन्त्रपठनेऽसमर्था चेन्नववधू, तदा तत्पतिरेव सर्वत्र मन्त्रं पठेत् । तदभावे पुरोधा एवेत्यप्याचारः ।

स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ ओङ्कारपूर्विके० । वस्त्रम्—सूक्ष्मतन्तुमयं वस्त्रयुग्मं कार्पाससम्भवम् । सावित्रि सत्यवत्कान्ते भक्त्या दत्तं प्रगृह्यताम् ॥ ओङ्कारपूर्विके० ॥ यज्ञोपवीतम्-सावित्रि सत्यवत्कान्ते धर्मराजसुरेश्वरि । वटेन ब्रह्मणा सार्धमुपवीतं प्रगृह्यताम् ॥ ओङ्कारपूर्विके० ॥ मङ्गलाभरणानि—भूषणानि च दिव्यानि मुक्ताहारयुतानि च । त्वदर्थमुपक्लृप्तानि गृहाण शुभलोचने ॥ ओङ्कारपूर्विके० ॥ चन्दनम्—कुङ्कुमागुरुकर्पूरकस्तूरीरोचनायुतम् । चन्दनं ते मया दत्तं सावित्रि प्रतिगृह्यताम् ॥ ओङ्कारपूर्विके० । अक्षतम्--अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुकुमाक्ताः सुशोभनाः । मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ॥ ओङ्कार० । सौभाग्यसिन्दूरादिद्रव्यम्--हरिद्रा कुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलान्वितम् । सौभाग्यद्रव्यसंयुक्तं सावित्रि प्रतिगृह्यताम् ॥ ओङ्कार०॥ पुष्पाणि--माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादिशुभानि च । मया हृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ ओङ्कार० ॥

अथाङ्गपूजा--नमो सावित्र्यै नमः, पादौ पूजयामि । वटप्रियायै नमः, जङ्घे पूजयामि । कमलपत्राक्ष्यै नमः, कटिं० । भूतधारिण्यै नमः, उदरम्० । गायत्र्यै नमः, कण्ठं० । ब्रह्मणः प्रियायै नमः, मुखं० । सौभाग्यदात्र्यै नमः, शिरः० ।

ततो धूपः—देवद्रुमरसोद्भूतः कालागुरुसमन्वितः । आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपः सावित्रि गृह्यताम् ॥ ओङ्कार० ॥ दीपः—चक्षुर्दं सर्वलोकानां तिमिरस्य निवारणम् । घृतवर्तिसमायुक्तं दीपं गृह्ण नमोऽस्तु ते ॥ ओङ्कार० । नैवेद्यम्—अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् । भक्ष्यभोज्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ ओङ्कार० ॥ इत्यनेन आचमनीयम्० । ताम्बूलम्--ताम्बूलं गृह्यतां देवि नागवल्लीदलैर्युतम् । कर्पूरपूगसंयुक्तं सुगन्धं मुखभूषणम् ॥ ओंकारपूर्विके० ॥ नीराजनम्--नमो ब्रह्मण्यदेवी त्वं सततं ब्रह्मणः प्रिया । पञ्चार्तिक्यं मया दत्तं गृहाण सुरपूजिते ॥ ओङ्कार० ॥ नमस्कारः—त्रिसन्ध्यं देवि भूतानां वन्दनीया सुशोभने । मया दत्ता च पूजेयं त्वं गृहाण नमोऽस्तु ते ।

ओङ्कार० ॥ प्रदक्षिणा—यानि कानि च पापानि० ॥ ओङ्कार०। पुष्पाञ्जलिः—ओङ्कारपूर्विके देवि वीणापुस्तकधारिणी। वेदमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥ विशेषार्घ्यम्—ओङ्कारपूर्विके देवि सर्वदुःखनिवारिणो। वेदमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥ पतिव्रते महाभागे वह्नियाने शुचिस्मिते। दृढव्रते दृढमते भर्तुश्च प्रियवादिनी ॥ अवैधव्यं च सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते। पुत्रान् पौत्रांश्च सौख्यञ्च गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ततो ब्रह्मणे अर्घ्यं दद्यादनेन—त्वया सृष्टं जगत्सर्वं सदेवासुरमानवम्। सत्यव्रतधरो देव ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ॥ ततो यमाय०—त्वं कर्मसाक्षी लोकानां शुभाशुभविवेचकः गृहाणार्घ्यं धर्मराज वैवस्वत नमोऽस्तु ते। प्रार्थना – सावित्रि ब्रह्मगायत्री सर्वदा प्रियभाषिणी। तेन सत्येन मां पाहि दुःखसंसारसागरात् ॥ त्वं गौरी त्वं शची लक्ष्मीस्त्वं प्रभा चन्द्रमण्डले। त्वमेव भूर्जगन्माता त्वमुद्धर वरानने ॥ सौभाग्यं कुलवृद्धि च देहि त्वं मम सुव्रते। यन्मया दुष्कृतं सर्वं कृतं जन्मशतैरपि। भस्मीभवतु तत्सर्वमवैधव्यं च देहि मे ॥ सावित्रि त्वं यथा देवि चक्षुर्वर्षशतायुतम्। पतिं प्राप्ताऽसि गुणिनं मम देवि तथा कुरु ॥ अवियोगो यथा देवि सावित्र्या सहितस्य ते। अवियोगस्तथाऽस्माकं भूयाज्जन्मनि जन्मनि ॥ कर्मसाक्षिन् जगत्पूज्य सर्वबन्धप्रशान्तये। संवत्सरव्रतं सर्वं परिपूर्णं तदस्तु मे। ततः (३५६ पृष्ठोक्तां कथां शृणुयात्।

अथ संक्षिप्तवटसावित्रीव्रतपूजाविधिः

ज्येष्ठामावास्यायां (१) सावित्रीपूजनम्। तत्र वटस्याधः शुद्धासने उपविश्य कृतनित्यक्रियो भूत्वा कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽद्य ज्येष्ठे मासि कृष्णे पक्षेऽमावास्यायां तिथौ अमुकगोत्राऽमुकीदेवी सौभाग्यप्राप्तिकामा ब्रह्मणा

---

(१) भविष्ये—अमायां च तथा ज्येष्ठे वटमूले महासती। त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनाऽनेन पूजयेत्।
अमाप्रसंगे विस्तरस्तु ३५२ पृष्ठे मूले द्रष्टव्यः।
मदनरत्ने तु—'पञ्चदश्यां तथा ज्येष्ठे' इति पठित्वा ज्येष्ठपौर्णमास्यामेव सावित्रीव्रतमुक्तं, दाक्षिणात्याश्चैतदेवाद्रियन्ते-

सह सावित्रीपूजनं तत्कथाश्रवणञ्चाऽहं करिष्ये। ततः सौवर्णमयीं मृन्मयीं वा प्रतिमां विधाय अक्षतानादाय—नमो ब्रह्मणा सह सावित्रि इहागच्छ इह सुप्रतिष्ठिता भव। एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि नमो ब्रह्मणा सह सावित्र्यै नमः। इदमनुलेपनम्०, इदं सिन्दूरम्० इदमक्षतम्०, इदं रक्तवस्त्रं बृहस्पतिदैवतम्०, इदं पुष्पम्०, इदं बिल्वपत्रम्, इदं पुष्पमाल्यं नमो ब्रह्मणा सह सावित्र्यै नमः। एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनानाविधनैवेद्यानि नमो ब्रह्मणा सह सावित्र्यै नमः इदमाचमनीयम्०, एष पुष्पाञ्जलिः नमो ब्रह्मणा सह सावित्र्यै नमः। एष कर्पूरदीपः नमो ब्रह्मणा सह सावित्र्यै नमः। ततः प्रार्थयेदनेन--ओङ्कारपूर्विके देवि वीणापुस्तकधारिणि। जगदम्बिके नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे॥ इति॥ ततः प्रदक्षिणं कुर्वती सती सूत्रेण वृक्षवेष्टनं कुर्यात्। ततः कथां श्रृणुयात्।

अथ वटसावित्रीव्रतकथा

ओं प्रणम्य सच्चिदानन्दं नृणां श्रेयो विवृद्धये। वक्ष्ये सनातनं धर्मं श्रुतिस्मृतिप्रचोदितम्॥

पार्वत्युवाच—प्रभासे संस्थिता या तु सावित्री ब्रह्मणः प्रिया। तस्याश्चरित्रं मे ब्रूहि देवदेव जगत्पते॥१॥ व्रतमाहात्म्यसंयुक्तमितिहाससमन्वितम्। पातिव्रत्यकरं स्त्रीणां महाभाग्यं महोदयम्॥ २॥ ईश्वर उवाच--कथयामि

स्कन्दपुराणोक्तप्रस्तुतकथायां (पृ० ३६०, श्लो० ६९) तथैवोक्तात्। मैथिलास्तु भविष्योक्तवचनस्य जागरूकत्वात् तन्न समाद्रियन्ते। सावित्रीव्रते पूर्णिमाऽमावास्ये पूर्वविद्धे ग्राह्ये। तथाहि ब्रह्मवैवर्ते—भूतविद्धा न कर्तव्या अमावास्या च पूर्णिमा। वर्जयित्वा नरश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्॥ स्कान्देऽपि—कृष्णाष्टमी चतुर्थी च सावित्री वटपैतृकी। शुक्ला त्रयोदशी रम्भा नोपोष्याः स्युः परान्विताः॥

अत्र वटमूले सावित्रीपूजनं वटप्रदक्षिणां रक्तसूत्रेण सप्तवारवटवृक्षवेष्टनं च कृत्वा त्रिरात्रोपवासं, तदशक्तौ नक्तमेकभुक्तं वा अवैधव्यकामा स्त्रियः कुर्युः।

महादेवि सावित्र्याश्चरितं महत् ॥ प्रभासक्षेत्रसंस्थायाः स्थलस्थाने महेश्वरि ॥ ३ ॥ यथा चीर्णं व्रतकरं सावित्र्या राजकन्यया । आसीन्मद्रेषु धर्मात्मा सर्वभूतहिते रतः ॥ ४ ॥ पार्थिवोऽश्वपतिर्न्नाम पौरजानपदप्रियः । क्षमावननपत्यश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ प्रभासक्षेत्रयात्रायामाजगाम स भूपतिः । यात्रां कुर्वन्विधानेन सावित्रीस्थलमागतः ॥ ६ ॥ स सभार्यो व्रतमिदं तत्र चक्रे नृपः स्वयम् । सावित्रीति प्रसिद्धं यत् सर्वकामफलप्रदम् ॥ ७ ॥ तस्य तुष्टाऽभवद् देवी सावित्री ब्रह्मणः प्रिया । भूर्भुवः स्वरितीत्येषा साक्षान्मूर्त्तिमती स्थिता ॥ ८ ॥ कमण्डलुधरा देवी जगामादर्शनं पुनः । कालेन बहुना जाता दुहिता देवरूपिणी ॥ ९ ॥ सावित्र्या प्रीतया दत्ता सावित्र्याः पूजया तथा । सावित्रीत्येव नामाऽस्याश्चक्रे विप्राज्ञया नृपः ॥ १० ॥ सावित्री या ह्यतीव श्रीः प्रावर्धत नृपात्मजा । सावित्री सुकुमारांगी यौवनस्था बभूव ह ॥११॥ या सुमध्या पृथुश्रोणी प्रतिमा काञ्चनी यथा । प्राप्तेयं देवकन्या वा दृष्ट्वा तां मेनिरे जनाः ॥१२॥ सा तु पद्मा विशालाक्षी प्रज्वलन्तीव तेजसा । चचार सा च सावित्री व्रतं यद्भृगुणोदितम् ॥१३॥ अथोपोष्य शिरःस्नाता देवतामभिगम्य च । हुत्वाग्निं विधिवद्विप्रान् वाचयेद्वरवर्णिनी ॥ १४ ॥ तेभ्यः सुमनसः शेषं प्रतिगृह्य नृपात्मजा । सखीपरिवृताभ्येत्य देवी श्रीवत्सरूपिणी ॥ १५ ॥ साऽभिवाद्य पितुः पादौ शेषं पूर्वं निवेद्य च । कृताञ्जलिर्वरारोहा नृपतेः पार्श्वतः स्थिता ॥ १६ ॥ तां दृष्ट्वा यौवनप्राप्तां स्वां सुतां देवरूपिणीम् । उवाच राजा सम्मंत्र्य पुत्र्यर्थं सह मन्त्रिभिः ॥ १७ ॥ पुत्रि प्रदानकालस्ते नहि कश्चिद् वृणोति त्वाम् । विचारयन्न पश्यामि वरं तुल्यमिहात्मनः ॥ १८ ॥ देवादीनां यथा वाच्यो न भवेयं तथा कुरु । पठ्यमानं मया पुत्रि धर्मशास्त्रेषु च श्रुतम् ॥ १९ ॥ पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता । ब्रह्महत्या पितुस्तस्य सा कन्या वृषली स्मृता ॥ २० ॥ अतोऽर्थं प्रेषयामि त्वां कुरु पुत्रि स्वयंवरम् । वृद्धैरमात्यैः सहिता शीघ्रं गच्छावधारय ॥ २१ ॥ एवमस्त्विति सावित्रि प्रोच्य तस्माद्विनिर्ययौ । तपोवनानि रम्याणि राजर्षीणां जगाम सा ॥ २२ ॥ मान्यानां तत्र वृद्धानां कृत्वा पादाभिवन्दनम् ।

ततोऽभिगम्य तीर्थानि सर्वाण्येवाश्रमाणि च ॥ २३ ॥ आजगाम पुनर्वेश्म सावित्री सह मन्त्रिभिः। तत्रापश्यद् देवर्षि नारदं पुरतः शुचिम् ॥ २४ ॥ आसीनमासने विप्रं प्रणम्य स्मितभाषिणी। कथयामास तत्कार्यं येनारण्यं गता च सा ॥ २५ ॥ सावित्र्युवाच--आसीच्छाल्वेषु धर्मात्मा क्षत्रियः पृथिवीपतिः। द्युमत्सेन इति ख्यातो दैवादन्धो वभूव सः ॥ २६ ॥ आर्यस्य बालपुत्रस्य द्युमत्सेनस्य रुक्मिणा। स बालवत्सया सार्धं भार्यया प्रस्थितो वनम् ॥ २७ ॥ स वने तस्य वृद्धस्य पुत्रः परमधार्मिकः। सत्यवाननुरूपो मे भर्त्तेति मनसेप्सितः ॥ २८ ॥ नारद उवाच – अहो बत महत्कष्टं सावित्र्या नृपते कृतम्। बालस्वभावादनया गुणवान् सत्यवान् वृतः ॥ २९ ॥ सत्यं वदत्यस्य पिता सत्यं माता प्रभाषते। सत्यं वदेति मुनिभिः सत्यवान्नाम वै कृतम् ॥ ३० ॥ नित्यं चाश्वाः प्रियास्तस्य करोत्यश्वांश्च मृन्मयान्। चित्रेऽपि च लिखत्यश्वांश्चित्राश्व इति चोच्यते ॥ ३१ ॥ सत्यवान् रन्तिदेवस्य शिष्यो दानगुणैः समः। ब्रह्मण्यः सत्यवादी च शिविरौशीनरो यथा ॥ ३२ ॥ ययातिरिव चोदराः सोमवत्प्रियदर्शनः। रूपेणान्यतमोऽश्विभ्यां द्युमत्सेनसुतो बली ॥ ३३ ॥ एको दोषोऽस्ति नान्यश्च सोऽद्यप्रभृति सत्यवान्। संवत्सरेण क्षीणायुर्देहत्यागं करिष्यति ॥ ३४ ॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा दुहिता प्राह पार्थिवम्। सावित्र्युवाच—सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति ब्राह्मणाः ॥ ३५ ॥ सकृत्कन्या प्रदीयेत त्रीण्येतानि सकृत्सकृत्। दीर्घायुरथवाऽल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा ॥ ३६ ॥ सकृद् वृतो मया भर्त्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम्। मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाऽभिधीयते ॥ ३७ ॥ क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं हि मनस्ततः। नारद उवाच—यद्येतदिष्टं भवतः शीघ्रमेव विधीयताम् ॥ ३८ ॥ अविघ्नेन तु सावित्र्याः प्रदानं दुहितुस्तव। एवमुक्त्वा समुत्पत्य नारदस्त्रिदिवं गतः ॥ ३९ ॥ राजा च दुहितुः सर्वं वैवाहिकमथाकरोत्। शुभे मुहूर्ते पार्श्वस्थैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ४० ॥ सावित्र्यापि च तं लब्ध्वा भर्तारं मनसेप्सितम्। मुमुदेऽतीव तन्वङ्गी स्वर्गं प्राप्येव पुण्यकृत् ॥ ४१ ॥ एवं तत्राश्रमे तेषां तदा निवसतां सताम्। कालस्तु पश्यतां किञ्चिदतिचक्राम

पार्वति ॥४२॥ सावित्र्यास्तु तदा नार्यास्तिष्ठन्त्याश्च दिवानिशम् । नारदेन यदुक्तं तद्वाक्यं मनसि वर्तते ॥४३॥ ततः काले बहुतिथे व्यक्तिक्रान्ते कदाचन । प्राप्तः कालोऽथ मर्तव्यो यत्र सत्यव्रतो नृपः ॥४४॥ ज्येष्ठमासे सिते पक्षे द्वादश्यां रजनीमुखे । गणयन्त्याश्च सावित्र्या नारदोक्तं वचो हृदि ॥४५॥ चतुर्थेऽहनि मर्तव्यमिति सञ्चित्य भामिनी । व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रं स्थिताश्रमे ॥४६॥ ततस्त्रिरात्रं न्यवसत्स्नात्वा सन्तर्प्य देवताम् । श्वश्रुश्वशुरयो पादौ ववन्दे चारुहासिनी ॥४७॥ अथ प्रतस्थे परशुं गृहीत्वा सत्यवान् वनम् । सावित्र्यपि च भर्तारं गच्छन्तं पृष्ठतोऽन्वयात् ॥४८॥ ततो गृहीत्वा तरसा फलपुष्पसमित्कुशान् । अथ शुष्काणि चादाय काष्ठभारमकल्पयत् ॥४९॥ अथ पाटयतः काष्ठं जाता शिरसि वेदना । काष्ठभारं क्षणात्त्यक्त्वा वटशाखावलंबितः । सावित्रीमाह शिरसो वेदना मे प्रबाधते ॥५०॥ तवोत्संगे क्षणं तावत्स्वप्तुमिच्छामि सुन्दरि । विश्रमस्व महाबाहो सावित्री प्राह दुःखिता ॥५१॥ पश्चादपि गमिष्यामि ह्याश्रमं श्रमनाशनम् । यावदुत्सङ्गगं कृत्वा शिरोऽस्य तु महीतले ॥५२॥ तावद्ददर्श सावित्री पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् । किरीटिनं पीतवस्त्रं साक्षात्सूर्यमिवोदितम् ॥५३॥ तमुवाचाथ सावित्री पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् । किरीटिनं पीतवस्त्रं साक्षात्सूर्यमिवोदितम् ॥५४॥ तमुवाचाथ सावित्री प्रणम्य मधुराक्षरम् । कस्त्वं देवोऽथवा दैत्यो यो मां धर्षितुमागतः ॥५५॥ न चाऽहं केनचिच्छक्या स्वधर्माद् देवरोधितुम् । विद्धि मां पुरुषश्रेष्ठ दीप्तामग्निशिखामिव ॥५६॥ यम उवाच—यमः संयमनश्चास्मि सर्वलोकभयङ्करः । क्षीणायुरेष ते भर्ता सन्निधौ ते पतिव्रते ॥ न शक्यः किङ्करैर्नेतुमतोऽहं स्वयमागतः ॥५७॥ एवमुक्त्वा सत्यव्रतं शरीरात्पाशसंयुतः अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निचकर्ष यमो बलात् ॥५८॥ अथ प्रयातुमारेभे पथानं पितृसेवितम् । सावित्र्यपि वरारोहा पृष्ठतोऽनुजगाम ह ॥५९॥ पतिव्रतत्वाच्चाश्रान्तां तामुवाच यमस्तथा । निवर्त्त गच्छ सावित्रि मुहूर्तं त्वमिहागता ॥६०॥ एष मार्गो विशालाक्षि न केनाप्यनुगम्यते । सावित्र्युवाच—न श्रमो न च मे ग्लानिः कदाचिदपि जायते

॥६१॥ भर्त्तारमनुगच्छन्त्या विशिष्टस्य च सन्निधौ। सतां सन्तो गतिर्नान्या स्त्रीणां भर्त्ता सदा गतिः॥६२॥
वेदो वर्णाश्रमाणाञ्च शिष्याणाञ्च गतिर्गुरुः। सर्वेषामेव भूतानां स्थानमस्ति महीतले ॥६३॥ भर्तारमेकमुत्सृज्य
स्त्रीणां नान्यः समाश्रयः। एवमन्यैः सुमधुरैर्वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः ॥६४॥ तुतोष सूर्यतनयः सावित्री वाक्यमब्रवीत्।
यम उवाच—तुष्टोऽस्मि तव भद्रन्ते वरं वरय भामिनि ॥६५॥ सापि वव्रे च राज्यं स्वं विनयावनतानना। चक्षुः
प्राप्ति तथा राज्यं श्वशुरस्य महात्मनः ॥६६॥ पितुः पुत्रशतञ्चैव पुत्राणां शतमात्मनः। जोवितञ्च तथा भर्तुर्धर्मसिद्धिं
च शाश्वतीम् ॥६७॥ धर्मराजो वरं दत्त्वा प्रेषयामास तां ततः। अथ भर्त्तारमासाद्य सावित्री हृष्टमानसा ॥६८॥
जगाम स्वाश्रमपदं सह भर्त्रा निराकुला। ज्येष्ठस्य पूणिमायां च तया चीर्णं व्रतं त्विदम् ॥६९॥ माहात्म्यतोऽस्य
नृपतेश्चक्षुःप्राप्तिरभूत्पुरः। ततः स्वदेशराज्यं च प्राप निष्कण्टकं नृपः ॥७०॥ पितास्याः पुत्रशतक सा च लेभे
सुताञ्छतम्। एवं व्रतस्य माहात्म्यं कथितं सकलं मया ॥७१॥ देव्युवाच—कीदृशं तद्व्रतं देव सावित्र्याश्चरितं
महत्। तस्मिंस्तु ज्येष्ठमासे हि विधानं तस्य कीदृशम् ॥७२॥ का देवता व्रते तस्मिन् के मन्त्राः किं फलं विभो।
विस्तरेण महेश त्वं ब्रूहि धर्मं सनातनम् ॥७३॥ ईश्वर उवाच——श्रूयतां देवदेवेशि सावित्रीव्रतमादरात्। कथयामि
यथा चीर्णं तथा सत्या महेश्वरि ॥७४॥ त्रयोदश्यां तु ज्येष्ठस्य दन्तधावनपूर्वकम् त्रिरात्रं नियमं कुर्यादुपवासस्य
भामिनि ॥७५॥ अशक्तन्तु त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रियः। अयाचितं चतुर्दश्यां ह्युपवासेन पूर्णिमाम् ॥७६॥
नित्यं स्नात्वा तडागे वा महानद्यां च निर्झरे। पाण्डुकूपे तु सुश्रोणि सर्वस्नानफलं लभेत् ॥७७॥ विशेषात्पूर्णिमायां
तु स्नानं सर्षपमृज्जलैः। गृहीत्वा बालुकं पात्रे प्रस्थमात्रे यशस्विनि ॥७८॥ अथवा धान्यमादाय यवशालितिलादिकम्।
ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते ॥७९॥ सावित्रीप्रतिमां कृत्वा सर्वावयवशोभिताम्। सौवर्णीं मृन्मयीं
वापि स्वशक्त्या दारुनिर्मिताम् ॥८०॥ रक्तवस्त्रद्वयं दद्यात्सावित्र्यै ब्रह्मणे सितम्। सावित्री ब्रह्मणा सार्धमेवं

शक्त्या प्रपूजयेत् ॥ ८१ ॥ गन्धैः सुगन्धपुष्पैश्च धूपनैवेद्यदीपकैः। पूर्णकोशातकैः पक्वैः कूष्माण्डैः कर्कटीफलैः ॥८२॥ नारिकेलैः सखर्जूरैः कपित्थैर्दाडिमैः शुभैः। जम्बूजम्बीरनारिङ्गैरक्षोटैः पनसैस्तथा ॥ ८३ ॥ जीरकैः कटुरसैश्च गुडेन लवणेन च। विरूढैः सप्तधान्यैश्च वंशपात्रप्रकल्पितैः ॥ ८४ ॥ रंजयेत्पट्टसूत्रैश्च शुभैः कुंकुमकेसरैः। अवतारं करोत्येवं सावित्री ब्रह्मणः प्रिया ॥ ८५ ॥ तामर्चयीत मन्त्रेण सावित्रीं ब्रह्मणा समम्। इतरेषां पुराणोक्तो मन्त्रोऽयं समुदाहृतः ॥ ८६ ॥ ओङ्कारपूर्वके देवि वीणापुस्तकधारिणि। वेदाम्बिके नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥ ८७ ॥ एवं सम्पूज्य विधिवज्जागरं तत्र कारयेत्। गीतवादित्रशब्देन नरनारीकदंबकम् ॥ ८८ ॥ नृत्यद्धसन्नयेद्रात्रिं नृत्यशास्त्रविशारदैः। सावित्र्याख्यानकं चापि वाचयीत द्विजोत्तमान् ॥ ८९ ॥ यावत् प्रभातसमयं गीतभावरसैः सह। विवाहमेवं कृत्वा तु सावित्र्या ब्रह्मणा सह ॥ ९० ॥ परिधाप्य सितैर्वस्त्रैर्दम्पतीनां तु सप्तकम्। गृहदानं प्रदातव्यं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ९१ ॥ ब्राह्मणे वेदविदुषे सावित्रीं विनिवेदयेत्। अथ सावित्रीकल्पज्ञे सावित्र्याख्यानवाचके ॥ ९२ ॥ दैवज्ञे ह्युञ्छवृत्तिस्थे दरिद्रे चाग्निहोत्रिणि। एवं दत्त्वा विधानेन तस्यां रात्रौ निमन्त्रयेत् ॥९३॥ पौर्णमास्यां वटाधस्ताद्दम्पतीनां चतुर्दश। ततः प्रभातसमये उषःकाल उपस्थिते ॥ ९४ ॥ भक्ष्यभोज्यादिकं सर्वं सावित्रीस्थलमानयेत्। पाकं कृत्वा तु शुचिना रक्षां कृत्वा प्रयत्नतः ॥ ९५ ॥ ब्राह्मणान् गृहिणीयुक्तांस्तत्र तत्रानयेत् सुधीः। सावित्र्याः स्थलके तत्र कृत्वा पादाभिषेचनम् ॥ ९६ ॥ सुस्नातान् ब्राह्मणांस्तत्र सभार्यानुप्रवेशयेत्। सावित्र्याः पुरतो देवि दम्पत्योर्भोजनं ददेत् ॥ ९७ ॥ तेनाहं भोजितस्तत्र भवामीह न संशयः। द्वितीयं भोजयेद्यस्तु भोजितस्तेन केशवः ॥ ९८ ॥ लक्ष्म्याः सहायो वरदो वरांस्तत्र प्रयच्छति। सावित्र्या सहितो ब्रह्मा तृतीये भोजितो भवेत् ॥ ९९ ॥ एकैकं भोजनं तत्र कोटिभोजसमं स्मृतम्। अष्टादशप्रकारेण षड्रसं कृतभोजनम् ॥ १०० ॥ देव्यास्तत्र महादेवि सावित्रीस्थलसन्निधौ। विधवा न कुले तस्य न वन्ध्या न च दुर्भगा ॥ १०१ ॥ न कन्याजननी चापि नच

स्याद्भर्तुरप्रिया । अष्टौ दोषास्तु नारीणां न भवन्ति कदाचन ॥ १०२ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सावित्र्यग्रे च भोजनम् । दातव्यं सर्वदा देवि कटुनीलविवर्जितम् ॥ १०३ ॥ न चाम्लं न च वै क्षारं स्त्रीणां भोज्यं कदाचन । पञ्च प्रकारं मधुरं हृद्यं सर्वं सुसंस्कृतम् ॥ १०४ ॥ घृतपूर्णाः पूपकाश्च बहुक्षीरसमन्विताः । पूपकास्तादृशाः कार्या द्वितीयाऽशोकवर्त्तिका ॥१०५॥ तृतीया पूपिका कार्या खर्जूरेण समन्विता । चतुर्थश्चैव संयावो गुडाज्याभ्यां समन्वितः॥१०६॥आह्लादकारिणी पुंसां स्त्रीणां चातीव वल्लभः । घनधान्यजनोपेतं नारीनरशताकुलम् ॥१०७॥ पूपकैस्तु कुलं तस्या जायते नात्र संशयः । न ज्वरो न च सन्तापो दुःखं च न वियोगजम् ॥ १०८ ॥ अशोकवर्त्तिदानेन कुलानामेकविंशतिः । वधूभिश्च सुतैश्चैव दासीदासैरनन्तकैः ॥ १०९ ॥ पूरितं च कुलं तस्याः पूरिका या प्रयच्छति । पुत्रिण्यो वै दुहितरो वधूभिः सहिताः कुले ॥११०॥ शिखरिण्याः प्रदात्रीणां युवतीनां न संशयः । मोदते च कुलं सर्वं सर्वसिद्धिप्रपूरितम् ॥१११॥ मोदकानां प्रदानेन एवमाह पितामहः । एतच्च देवि गौरीणां भोजनं हि विशिष्यते ॥११२॥ सुभगा पुत्रिणी साध्वी धनवृद्धिसमन्विता । सहस्रभोजनी देवि भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥११३॥ पापानि चैव मुख्यानि हृद्यानि मधुराणि च । द्राक्षापानं तु चिञ्चायाः पानं गुडसमन्वितम् ॥ ११४ ॥ सरसेन तु तोयेन कृतखण्डेन वै शुभम् । सुवासिनीनां पेयं वै दातव्यं च द्विजन्मनाम् ॥११५॥ इतरैरितराण्येव वर्णयोग्यानि यानि च । सुरभीणि च पापानि तासु योग्यानि दापयेत् ॥ ११६ ॥ प्रतिपूज्य विधानेन वस्त्रादानैः सकञ्चुकैः । कुंकुमेनानुलिप्तांगाः स्रग्दामभिरलंकृताः ॥ ११७ ॥ गन्धैर्धूपैश्च संपूज्य नारिकेलान् प्रदापयेत् । नेत्राणाञ्चाञ्जनं कृत्वा सिन्दूरं चैव मस्तके ॥११८ ॥ पूगीफलानि हृद्यानि वासितानि मृदूनि च । हस्ते दत्त्वा सपात्राणि प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥ ११९ ॥ स्वयं च भोजयेत् पश्चाद् बन्धुभिर्बालकैः सह । अथवा नैव सम्पद्येत्तीर्थे चैव तु भोजनम् ॥१२० ॥ गृहं गत्वा प्रभोक्तव्यं तुष्टा देवी यथा भवेत् । एवमेव पितृणां च आगत्य स्वे च मन्दिरे ॥ १२१ ॥ पिण्डप्रदानपूर्वन्तु श्राद्धं कृत्वा विधानतः । पितरस्तस्य तुष्टा वै भवन्ति

ब्रह्मणा दिनम् ॥ १२२ ॥ तीर्थादष्टगुणं पुण्यं स्वगृहे ददतः शुभे । न च पश्यन्ति वै नीचाः श्राद्धं दत्तं द्विजातिभिः ॥ १२३ ॥ एकान्ते तु गृहे गुप्ते पितॄणां श्राद्धमिष्यते । नीचं दृष्ट्वाऽपि दत्तं तु पितॄणां नोपतिष्ठति ॥ १२४ ॥ तस्मात् सर्वंप्रयत्नेन श्राद्धं गुप्ते च कारयेत् । पितॄणां तृप्तिदं प्रोक्तं स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ १२५ ॥ गौरीभोज्यादिका या तु उत्सर्गात् क्रियते क्रिया । राजसी सा समाख्याता जनानां कीर्त्तिदायिनी ॥ १२६ ॥ इदं दानं सदा देयमात्मनो हितमिच्छता । श्राद्धे चैव विशेषेण यदीच्छेत् सात्त्विकम्फलम् ॥ १२७ ॥ इदमुद्यापनं देवि सावित्र्यास्तु व्रतस्य च । सर्वंपातकशुद्ध्यर्थं कार्यं देवि नरैः सदा ॥ १२८ ॥ अकामतः कामतो वा पापं नश्यति तत्क्षणात् । इह लोके तु सौभाग्यं धनं धान्यं वराः स्त्रियः ॥ १२९ ॥ भवन्ति विविधास्तेषां यैर्यात्रा तत्र वै कृता । इदं यात्राविधानं तु भवत्या यः कुरुते नरः ॥ १३० ॥ शृणोति वा स पापैस्तु सर्वैरेव प्रमुच्यते । ज्येष्ठस्य पूर्णिमायान्तु सावित्रीस्थलके शुभे ॥ १३१ ॥ प्रदक्षिणा यः कुरुते फलदानैर्यथाविधि । अष्टोत्तरशतं वापि तदर्धार्धं तदर्धकम् ॥ १३२ ॥ यः करोति नरो देवि सृष्ट्वा तत्र प्रदक्षिणाम् । अगम्यागमनं यैश्च कृतं ज्ञानाच्च मानवैः ॥ १३३ ॥ अन्यानि पातकान्येवं नश्यन्ते नात्र संशयः । यैर्गत्वा स्थलके सन्ध्यां सावित्र्याः समुपासिता ॥ १३४ ॥ स्वपत्न्याश्चैव हस्तेन पाण्डुकूपजलेन च । भृङ्गारकनकेनैव मृन्मयेनाथ भामिनि ॥ १३५ ॥ आनीयं तु जलं पुण्यं सन्ध्योपास्ति करोति यः । तेन द्वादशवर्षाणि भवेत् संध्या ह्युपासिता ॥ १३६ ॥ अश्वमेधफलं स्नाने दाने दशगुणं तथा । उपवासे त्वनन्तं च कथायाः श्रवणे तथा ॥ १३७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणोक्तवटसावित्रीव्रतकथा समाप्ता ।

अथ विसर्जनम्

आरार्तिकं विधाय यानि कानीति प्रदक्षिणीकृत्य—नमो ब्रह्मणा सह सावित्रि पूजितासि प्रसीद स्वस्थानं गच्छ । ततो दक्षिणा— कुशत्रयतिलजलान्यादाय— नमोऽद्य कृतैतद् ब्रह्मणा सह सावित्रीपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेता-

वद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे। इति दक्षिणान्दद्यात्। सौवर्णादिप्रतिमासत्वे तु ब्राह्मणाय प्रतिपादयेदनेन—ओमद्येत्यादि अमुकीदेव्यहं सर्वसौभाग्यसम्पत्समृद्धये श्रीवटसावित्रीव्रतसांगतासिद्धये च इमां सुपूजितां सुवर्णमयीं (रजतमयीं वा) प्रतिमां सोपस्करां यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दास्ये। इति ब्राह्मणाय प्रतिपाद्य पठेत्—सावित्रीयं मया दत्ता पूजिता विधिना सती। ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्राह्मण प्रतिगृह्यताम्। ततो ब्राह्मणान् भोजयेत्।

इति वटसावित्रीव्रतपूजा समाप्ता।

अथ दशहराकृत्यम्

राजमार्तण्डे—ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता। हरते दश पापानि तस्माद् दशहरा स्मृता॥ स्कान्दे—ज्येष्ठमासे सिते पक्षे दशमी बुधहस्तयोः। गरानन्दे व्यतीपाते कन्याचन्द्रे वृषे (१) रवौ॥ दशयोगे सेतुमध्ये लिङ्गरूपधरं हरम्। रामो वै स्थापयामास शिवलिङ्गमनुत्तमम्॥

पुनश्च तत्रैव—यां काञ्चित् सरितं प्राप्य दद्यादर्घं तिलोदकम्। मुच्यते दशभिः पापैः स महापातकोपमैः॥ अस्यामेव सेतुबन्धे रामेश्वरदर्शनम्।

स्नानविधिः—कुशात्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्य ज्येष्ठे मासि शुक्ले पक्षे दशम्यां तिथौ अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः दशविधपापक्षयकामः (गङ्गायां) स्नानमहं करिष्ये। इति संकल्प्य—ओं पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वतः। असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥ अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च

---

(१) वृषे रवावित्यनेन ज्येष्ठस्य मलमासत्वे तत्रैव वृषादित्यसम्भवान्मलमासशुक्लदशम्यामेव दशहरेति तत्त्वविदः।

कायिकं त्रिविधं मतम् ॥ परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ॥ एतानि दशपापानि प्रशमं यान्तु जाह्नवि । स्नातस्य मम ते देवि जले विष्णुपदोद्भवे ॥ विष्णुपादार्घ्यसंभूते गङ्गे त्रिपथगामिनि । धर्मद्रवेति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि ॥ श्रद्धया भक्तिसम्पन्ने श्रीमातर्देवि जाह्नवि । अमृतेनाऽम्बुना देवि भागीरथि पुनीहि माम् ॥ इति पठित्वा स्नायात् ।

अथ निर्जलैकादशीव्रतविधिः

तत्रैकादश्यां (१) प्रातः कृतनित्यक्रियो व्रती जलपूर्णताम्रपात्रमादाय—ओं करिष्याम्यद्य देवेश जलवर्जमुपोषणम् । भोक्ष्ये परेऽह्नि वैकुण्ठ ह्यन्नं वा तव वासरात् । एकादश्यां निराहारो वर्जयिष्यामि वै जलम् । केशवप्रीणनार्थाय अन्यदाचमनादृते ॥ इति जलं भूमौ क्षिपेत् । ततो देवोत्थानैकादशीपूजनवद् विष्णुं षोडशोपचारैः पूजयेत् ।

अथ निर्जलैकादशीव्रतकथा

युधिष्ठिर उवाच—श्रुता मे मानवा धर्मा वैदिकाश्च मया श्रुताः । द्वैपायनवचोद्दिष्ट-वैष्णवान् वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ व्यास उवाच—श्रुतास्ते मानवा धर्मा वैदिकाश्च श्रुतास्त्वया । कलौ युगे न शक्यन्ते ते वै कर्तुं नराधिप ॥ २ ॥ सुखोपायमल्पधनमल्पक्लेशं महाफलम् । पुराणानां च सर्वेषां सारभूतं वदामि ते ॥ ३ ॥ एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । एकादश्यां न भुङ्क्ते यो न याति नरकं तु सः ॥ ४ ॥ व्यासस्य वचनं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत् । भीमसेनो महाबाहुर्भीतो वाक्यमभाषत ॥ ५ ॥ भीमसेन उवाच—पितामह न शक्तोऽहमुपवासे करोमि किम् । अतो बहुफलं ब्रूहि व्रतमेकमपि प्रभो ॥ ६ ॥ व्यास उवाच—वृषस्थे मिथुनस्थे वा शुक्ला ह्येकादशी भवेत् । ज्येष्ठमासे

---

(१) ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ या शुक्लैकादशी शुभा । निर्जलं समुपोष्यात्र जलकुम्भान् सशर्करान् ॥ प्रदाय विप्रमुख्येभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ (एकादशीनिर्णयस्तु कार्तिककृत्ये वर्षकृत्यद्वितीयभाग-परिशिष्टे वा द्रष्टव्यः) ।

प्रयत्नेन सोपोष्या जलवर्जिता ॥ ७ ॥ स्नाने वाचमने चैव वर्जयित्वोदकं बुधः । उपभुञ्जीत नैवान्यद् व्रतभङ्गोऽन्यथा भवेत् ॥ ८ ॥ उदयादुदयं यावद् वर्जयित्वा जलं बुधः । अप्रयत्नादवाप्नोति द्वादशैकादशीर्नृप ॥ ९ ॥ ततः प्रभाते विमले द्वादश्यां स्नानमाचरेत् । जलं सुवर्णं दत्त्वा च द्विजातिभ्यो यथाविधि ॥ १० ॥ भुञ्जीत कृतकृत्यस्तु ब्राह्मणैः सहितो वशी । एवं कृते तु यत् पुण्यं भीमसेन शृणुष्व तत् ॥ ११ संवत्सरस्य मध्ये या एकादश्यो भवन्त्युत । तासां सत्फलमाप्नोति अत्र मे नास्ति संशयः ॥ १२ ॥ इति मां केशवः प्राह शंखचक्रगदाधरः । तस्य व्रतस्य यत् पुण्यं तन्मे प्राह जनार्दनः ॥ १३ ॥ एकादश्यां सिते पक्षे ज्येष्ठस्योदकवर्जितम् । उपोष्य फलमाप्नोति तच्छृणुष्व वृकोदर ॥ १४ ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् । सर्वहोमेषु यत्पुण्यं तदस्याः समुपोषणात् ॥ १५ ॥ संवत्सरे च याश्च स्युः कृष्णाः शुक्ला वृकोदर । उपोषितास्तु सर्वाः स्युरेकादश्यो न संशयः ॥१६॥ धनधान्यमहापुण्यपुत्रारोग्यप्रदास्तथा । उपोषिता नरव्याघ्र इति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ १७ ॥ यमदूता महाकायाः करालाः कृष्णरूपिणः । दण्डपाणिधरा रौद्रा मरणे दृष्टिगोचराः ॥१८॥ न प्रयान्ति नरव्याघ्र एकादश्यामुपोषणात् । पीताम्बरधराः सौम्याश्चक्रहस्ता मनोजवाः । अन्तकाले नयन्त्येनं वैष्णवं वैष्णवीं पुरीम् ॥ १९ ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन उपोष्या जलवर्जिता । जलधेनुं तथा दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते (१) ॥ २० ॥

इति पद्मनारदयोरुक्ता निर्जलैकादशीव्रतकथा समाप्ता ।

इति ज्येष्ठमासकृत्यम् ।

---

(१) स्कन्दपुराणे तु अस्यां शर्कराजलदानमुक्तं तथाहि--ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ या शुक्लैकादशी शुभा । निर्जला समुपोष्या च जलकुम्भान् सशर्करान् ॥ १ ॥ प्रदाय विप्रमुख्येभ्यः तापत्रयविवर्जितः । विष्णुलोकवाप्येह मोदते विष्णुसन्निधौ ॥ २ ॥

अथ आषाढमासकृत्यम्

तत्र पुलिकबन्धनविधिः—आषाढशुक्लरविवारे सर्पभय (१) विनाशार्थं पुलिकमूलं (२) बध्नीयात् । तत्र मन्त्रः–ॐ शुचिसितदिनकरवारे करमूले बद्धपुलिकमूलस्य । नागारेरिव नागाः प्रयान्ति किल दूरतस्तस्य ॥ इति ॥

अथ रथयात्रानिर्णयः—आषाढशुक्लद्वितीयायां रथयात्रोत्सवः । तदुक्तं स्कान्दे—आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता । तस्यां रथं समारोप्य रामं मां भद्रया सह ॥ यात्रोत्सवं प्रवर्त्याथ प्रीणयेत्तु द्विजान् बहून् । ऋक्षाभावे तिथौ कार्या यात्राऽसौ मम पुण्यदा ॥ अस्यामेव जगन्नाथपुर्यां महोत्सवः ।

अथ हरिशयनी एकादशी—अत्र निशि देवोत्थानैकादशीवत् षोडशोपचारैः विष्णुं पूजयेत् । तत्र प्रणाममन्त्रः—ओं सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् । विबुद्धे च विबुध्येत प्रसन्नो मे भवाच्युत ॥ अस्यामेव एकादश्यां चातुर्मास्यव्रतारम्भः ।

अथ आषाढी पूर्णिमा गुरुपूर्णिमा—अत्र श्रीगुरुव्यासयोः पूजा । तत्र प्रणाममन्त्रः—ओं गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुदेवो महेश्वरः । गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

इति आषाढमासकृत्यम् ।

---

(१) आर्द्रायाः प्रथमे पादे क्षीरमश्नाति यो नरः । अपि रोषयुतस्तस्य तक्षकः किं करिष्यति ॥ इति ॥

(२) वशिष्ठः—अकृत्वा पुलिकैर्बन्धं प्रायश्चित्तीयते नरः । चतुर्मासे व्यतीते तु मुक्तिस्तस्य करात् भवेत् ॥ इति ॥

अथ श्रावणमासकृत्यम्

श्रावणे क्षुद्रनदीस्नानविचारः

राजमार्तण्डे—सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः। तासु स्नानन्न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः (सिंहः = भाद्रः कर्कटः = श्रावणः) अत्र विशेषः—तपनस्य सुता (यमुना) गङ्गा गोमतो च सरिद्वरा। रजसा च न दुष्यन्ति ये चान्ये नदसंज्ञकाः ॥ देवलः—उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ॥

अथ मधुश्रावणीव्रतनिर्णयः

श्रावणशुक्लतृतीयायां मधुश्रावणीव्रतम्। इदञ्च परयुताया तृतीयायामेव कार्यम्। तथाहि स्मृतिः—आद्या मधुश्रावणिका कज्जली हरितालिका। चतुर्थी मिश्रिता स्त्रीभिर्दिवानक्ते विधीयते।

अथ गणेशचतुर्थीव्रतनिर्णयः

श्रावणशुक्लचतुर्थी गणेशचतुर्थी (१)। सा च पूर्वविद्धा ग्राह्या। तथाहि—तृतीयासंयुता या तु सा चतुर्थी फलप्रदा। कर्त्तव्या व्रतिभिस्तात गणनाथसुतोषिणी ॥ (माघकृत्योक्तसंकष्टचतुर्थीवत् पूजा कार्या)

---

(१) स्कान्दे श्रावणे बहुले पक्षे चतुर्थ्यान्तु विधूदये। गणेशं पूजयित्वा तु चन्द्रायार्घश्च दीयते ॥ तिथिरियं चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। विशेषस्तु माघकृत्ये द्रष्टव्यः।

अथ नागपञ्चमीनिर्णयः

श्रावणशुक्ला (१) पञ्चमी नागपञ्चमी । केचित्तु श्रावणकृष्णा (२) पञ्चमी नागपञ्चमीति प्राहुः । अत्र तु कृष्णा पञ्चमी सदसन्मान्यातिप्रशस्तेति स्मार्तमात्रसिद्धान्तः, इति म० म० महेशठक्कुराः प्राहुः । पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता । तस्यान्तु तृपिता नागा इतरासु चतुर्थिका ॥ इति स्मृतेरुभयपक्षसाधारणनागपञ्चमी परयुतैवेति सर्वनिबन्धस्वरसः । (अत्र नागपूजनं तु ३८० पृष्ठोक्तषोडशोपचारपूजनेन कार्यम्)

अथ मङ्गलागौरीव्रतपूजाविधिः

इयं पूजा (३) विवाहानन्तरं प्रथमे वत्सरे श्रावणशुक्लस्य प्रथमभौमवासरे निवृत्तभोजनादिभिः स्त्रीभिः कार्या । तत्र शुद्धासने उपविश्य, गौरीं सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽद्य श्रावणे मासि शुक्लपक्षस्य प्रथमभौमवासरे अमुकगोत्राया अमुकीदेव्या इह जन्मनि जन्मान्तरे च सकलकल्याणोत्पत्तिपूर्वकपुत्रपौत्राऽवैधव्यधनधान्यसमृद्धिसकलमनोरथसिद्ध्यर्थं यथाशक्ति गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलवस्त्रनानाविधनैवेद्यादिभिः श्रीमङ्गला-

---

(१) स्मृतिः--श्रावणे पञ्चमी शुक्ला सम्प्रोक्ता नागपञ्चमी । तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिताः स्मृताः ॥

(२) ब्रह्मवैवर्ते--पूर्वाह्णे कृष्णपक्षे तु नागतोषकरी तिथिः । पञ्चमी तु प्रकर्तव्या षष्ठीयुक्ता तु नारद ॥

तिथितत्त्वचिन्तामणौ--श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे नराधिप । द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः (सर्पाः) ॥ पूजयेद् विधिवद् वीर दधिदूर्वाङ्कुरैः कुशैः ॥ इति ।

(३) स्कान्दे--विवाहानन्तरं चाद्ये श्रावणे शुक्लपक्षके । प्रथमं भौमवारस्य व्रतमेतत्तु कारयेत् (कुर्यात्) ॥ यस्यानुष्ठानमात्रेण अवैधव्यं प्रजायते ॥ पुनश्च तत्रैव—विवाहानन्तरं पञ्च वर्षाणि व्रतमाचरेद् इति ।

गौरीव्रतपूजनमहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य पीठोपरि गौरीप्रतिमां स्थापयित्वा तदग्रे दृषदुपलादीन् निधाय महान्तं दीपं षोडशतन्तुमयवर्तिसहितं घृतप्रज्वलितं निधाय, प्रथमं यथोपचारैः गणपतिं सम्पूज्य ध्यायेत्—कुङ्कुमागरुलिप्ताङ्गां सर्वाभरणभूषिताम् । नीलकण्ठप्रियां गौरीं वन्देऽहं मङ्गलाह्वयाम् ॥ इति ध्यात्वा—अत्रागच्छ महादेवि सर्वलोकसुखप्रदे । यावद् व्रतमहं कुर्वे पुत्रपौत्रादिवृद्धये ॥ नमः श्रीमङ्गलागौरि इहागच्छ इह तिष्ठ इह सुप्रतिष्ठिता भव । इति प्राणप्रतिष्ठां विधाय—रौप्येण चासनं दिव्यं रत्नमाणिक्यशोभितम् । मयानीतं गृहाण त्वं गौरि कामारिवल्लभे ॥ इदमासनं श्रीमङ्गलागौर्यै नमः । गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तं पाद्यं सम्पादितं मया । गृहाण मङ्गले गौरि प्रसन्ना भव सर्वदा ॥ इदमर्घ्यं० । कामारिवल्लभे देवि कुर्वाचमनमम्बिके । निरन्तरमहं वन्दे चरणौ तव पार्वति ॥ इदमाचमनीयं० । कामधेनुसमुद्भूतं दुग्धं चामृतमुत्तमम् । पावनं सर्वलोकानां स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं स्नानीयं० । गोदुग्धं विकृतं देवि दधिरूपं गुणालयम् । स्नानार्थं च मया दत्तं गृह्यतां परमेश्वरि ॥ इदं दधिस्नानीयं० । गोघृतं च मयानीतं देवानां हविरुत्तमम् । पावनं सर्वलोकानां स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं घृतस्नानं० । पुष्पसारसमुद्भूतं मक्षिकाभिः कृतं मधु । स्नानार्थं च प्रयच्छामि गृहाण परमेश्वरि ॥ इदं मधुस्नानीयं० । शर्करा च सिता श्रेष्ठा इक्षुसारसमुद्भवा । मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वरि । इदं शर्करास्नानं० । जाह्नवीतोयमानीतं शुभ्रं कर्पूरसंयुतम् । स्नापयामि सुरश्रेष्ठे त्वां पुत्रादिफलप्रदाम् ॥ इदं कर्पूरादिमिश्रितस्नानं० । अभ्यङ्गार्थं मयानीतं तैलं पुष्पादिवासितम् । प्रयत्नेनार्चितं शुद्धं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदमभ्यङ्गस्नानं० । अङ्गोद्वर्तनकं देवि कस्तूर्या कुङ्कुमेन च । अन्यैः सुगन्धद्रव्यैश्च निर्मितं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदमङ्गोद्वर्तनं० । नानातीर्थादाहृतं च तोयमुष्णं मया कृतम् । स्नानार्थं च प्रयच्छामि गृह्यतां परमेश्वरि ॥ इदमुष्णोदकस्नानं० । वस्त्रं च सोमदैवत्यं लज्जायास्तु निवारणम् । मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ॥ इदं वस्त्रं० । कञ्चुकीमुपवस्त्रं च नानारत्नैः समन्वितम् । गृहाण त्वं

मया दत्तं प्रसीद जगदीश्वरि ॥ इदं कञ्चुकीमुपवस्त्रं० । भूषणानि च दिव्यानि मुक्ताहारयुतानि च । त्वदर्थंमुपक्लृप्तानि गृहाण परमेश्वरि ॥ एतानि भूषणानि० । तत एतान् षोडश तण्डुलान्० । एतान् षोडश चणकद्विदलान्० । ततः कुङ्कुमागरुकर्पूरं कस्तूरी चन्दनं तथा । विलेपनं महादेवि गन्धं दास्यामि भक्तितः ॥ इदं गन्धं० । हरिद्रां कुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलान्वितम् । सौभाग्यद्रव्यसंयुक्तं गृहाण परमेश्वरि ॥ एतानि सौभाग्यद्रव्याणि० । रञ्जिताः कुङ्कुमाद्येन अक्षताश्चातिशोभनाः । ममैषां देवि दानेन प्रसन्ना भव पार्वति ॥ एतान् अक्षतान्० । सेवन्तिकाबकुलचम्पकपाटलाब्जैः पुन्नागजातिकरवीररसालपुष्पैः । बिल्वप्रवालतुलसीदलमालतीभिस्त्वां पूजयामि जगदीश्वरि मे प्रसीद ॥ एतानि पुष्पाणि० । देवद्रुमरसोदभूतः कृष्णागरुसमन्वितः । आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष धूपः० । त्वं ज्योतिः सर्वदेवानां तेजसां तेज उत्तमम् । आत्मज्योतिः परं धाम दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष दीपः० । अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् । भक्ष्यभोग्यसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ एतानि नानाविधनैवेद्यानि० । इदमाचनीयं० । इदं फलं मया देवि स्थापितं पुरतस्तव । तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ इदं फलं० । आर्तिक्यं गिरिजे तुभ्यं मया दत्तं शिवप्रिये । तेन सन्तानवृद्धिं मे कुरु कल्याणकारिके ॥ इदं षोडशदीपं० । ततः पुष्पाञ्जलिः—नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥ पुष्पाञ्जलिमिमं देवि नानापुष्पैर्मनोहरम् । समर्पयामि देवेशि गृहाण जगदम्बिके ॥ इति पुष्पाञ्जलिं समर्प्य—पुत्रान् देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि मङ्गले । अन्यांश्च सर्वकामांश्च देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥ आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् । पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वरि ॥ इति प्रणमेत् । ततो विशेषार्घ्यः—पूजासंपूर्णतार्थं तु गन्धपुष्पाक्षतैः सह । विशेषार्घ्यं मया दत्तं मम सौभाग्यहेतवे ॥ इदं विशेषार्घ्यं श्रीमङ्गलागौर्यै नमः । यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु । न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥ अनेन पूजनेन श्रीम-

ङ्गलागौरी प्रीयताम् ॥ ततो रात्रौ कथापुराणादि श्रुत्वा जागरणं कार्यम्। प्रभाते तु पञ्चोपचारपूजां कृत्वा, यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्। इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च। नमः श्रीमङ्गलागौरि पूजितासि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ। इति विसृज्य कर्मदक्षिणां कुर्यात्—कुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमोऽद्य कृतैतच्छ्रीमङ्गलागौरीपूजनतत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। इति ब्राह्मणाय दक्षिणां दत्त्वा यथाशक्ति सुवासिनीं भोजयेत्।

अथ मङ्गलागौरीव्रतकथा

ईश्वर उवाच—सनत्कुमार वक्ष्यामि भौमव्रतमनुत्तमम्। यस्यानुष्ठानमात्रेण न वैधव्यं प्रजायते ॥ १ ॥ विवाहानन्तरं पञ्चवर्षाणि व्रतमाचरेत्। नामास्य मङ्गलागौरीव्रतं पापप्रणाशनम् ॥ २ ॥ विवाहानन्तरं चाद्ये श्रावणे शुक्लपक्षके। प्रथमं भौमवारस्य व्रतमेतत्तु कारयेत् ॥ ३ ॥ पुष्पमण्डपिका कार्या कदलीस्तम्भमंडिता। नानाविधैः फलैश्चैव पट्टकूलैश्च भूषयेत् ॥ ४ ॥ तत्र संस्थापयेद् देव्याः प्रतिमां स्वर्णनिर्मिताम्। अन्यधातुमयीं वापि स्वशक्त्या तत्र पूजयेत् ॥ ५ ॥ उपचारैः षोडशभिर्मङ्गलागौरिसंज्ञिताम्। दूर्वादलैः षोडशभिरपामार्गदलैस्तथा ॥ ६ ॥ तावत्संख्यैस्तण्डुलैश्च चणानां शकलैस्तथा। षोडशान्वितवर्तीभिस्तावद्दीपांश्च दीपयेत् ॥ ७ ॥ दध्योदनं च नैवेद्यं तत्र भक्त्या प्रकल्पयेत्। समीपं स्थापयेद् देव्या दृषदं चोपलं तथा ॥ ८ ॥ एवं कृत्वा तु पञ्चाब्दं तत उद्यापनं चरेत्। मात्रे दद्याद्वायनं तु प्रकारं शृणु तस्य च ॥ ९ ॥ प्रतिमां मङ्गलागौर्याः सुवर्णपलनिर्मिताम्। तदर्धेन तदर्धेन शक्त्या वाप्याथ कारयेत् ॥ १० ॥ तण्डुलैः पूरिते भाण्डे शक्त्या स्वर्णादिनिर्मिते। संस्थाप्य परिधानीयं रमणीयां च कञ्चुकीम् ॥ ११ ॥ तयोरुपरि देव्यास्तु प्रतिमां स्थापयेत्ततः। समीपभागे संस्थाप्य दृषदं चोपलं तथा ॥ १२ ॥ रौप्येण निर्मितं मात्रे एवं दद्यात्तु वायनम्। षोडशापि सुवासिन्यो भोजनीयाः प्रयत्नतः

॥ १३ ॥ एवं कृते व्रते विप्र सौभाग्यं सप्तजन्मसु। पुत्रपौत्रादिभिश्चैव रमते सम्पदा युता ॥ १४ ॥ सनत्कुमार उवाच—केनेदं व्रतमाचीर्णं कस्य जातं फलं पुरा। यथा स्यात् प्रत्ययः शम्भो कृपां कृत्वा तथा वद ॥ १५ ॥ ईश्वर उवाच—कुरुदेशे पुरा राजा श्रुतकीर्तिरिति श्रुतः। बभूव श्रुतसम्पन्नः कीर्तिमान् हतशत्रवः ॥ १६ ॥ चतुःषष्टिकलाभिज्ञो धनुर्विद्याविशारदः। पुत्रादन्यच्छुभं सर्वं तस्य राज्ञो बभूव ह ॥ १७ ॥ सन्तानविषयेऽथासौ बहुचिन्ताकुलोऽभवत्। देव्या आराधनं चक्रे जपध्यानपुरःसरम् ॥ १८ ॥ क्रूरेण तपसा तस्य देवी तुष्टा बभूव ह। उवाच वचनं चास्मै वरं वरय सुव्रत ॥ १९ ॥ श्रुतकीर्तिरुवाच—यदि देवि प्रसन्नासि पुत्रं मे देहि शोभनम्। अन्यद्देवि त्वत्प्रसादान्न न्यूनं किञ्चिदस्ति मे ॥ २० ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा देवी प्राह शुचिस्मिता। दुर्लभं याचितं राजन् दास्ये तुभ्यं कृपावशात् ॥ २१ ॥ परं शृणुष्व राजेन्द्र पुत्रश्चेद् गुणवत्तरः। ईप्सितश्चेत् षोडशाब्दं जीविष्यति न चाधिकम् ॥ २२ ॥ रूपविद्याविहीनश्चेच्चिरजीवो भविष्यति। इति देव्या वचः श्रुत्वा नृपश्चिन्तातुरोऽभवत् ॥ २३ ॥ भार्यया सह संमन्त्र्य ययाचे गुणभूषितम्। सर्वलक्षणसम्पन्नं षोडशाब्दायुषं सुतम् ॥ २४ ॥ आज्ञापयामास तदा देवी भक्तं नराऽधिपम्। आम्रवृक्षो मम द्वारे वर्तते नृपनन्दन ॥ २५ ॥ तस्यैकं फलमादाय पत्न्यै देहि ममाज्ञया। भक्षणार्थं च सा धत्ते गर्भं सद्यो न संशयः ॥ २६ ॥ हृष्टो राजा तथा चक्रे पत्नी गर्भं च सा दधौ। दशमे मासि सुषुवे पुत्रं देवसुतोपमम् ॥ २७ ॥ जातकर्मादिकं चक्रे हर्षशोकसमन्वितः। चिरायुरिति नामास्य पिता चक्रे शिवं भजन् ॥ २८ ॥ प्राप्ते तु षोडशे वर्षे चिन्तामाप सभार्यकः। ततश्चक्रे विचारं स कष्टलब्धो ह्ययं सुतः ॥ २९ ॥ स्वसमीपे कथं मृत्युर्द्रष्टव्यो दुःखदोऽस्य तु। काशीं प्रस्थापयामास मातुलेन समं विभुः ॥ ३० ॥ भ्रातरं प्रार्थयामास राजपत्नी यशस्विनी। धृत्वा कार्पटिकं वेषं काशीं प्रति सुतं नय ॥ ३१ ॥ मृत्युञ्जयः प्रार्थितोऽस्ति पुत्रार्थं तु मया पुरा। प्रेषयिष्यामि विश्वेशयात्रार्थं च जगत्पतेः ॥ ३२ ॥ तस्मान्नेयः सुतो मेऽद्य पालनीयश्च यत्नतः।

इति श्रुत्वा श्वशुर्वाक्यं स्वस्त्रीयेण समं ययौ ॥ ३३ ॥ दिनानि कानिचिद् गच्छन्नानन्दनगरं ययौ । तत्र राजा वीरसेनो नाम्ना सर्वसमृद्धिमान् ॥३४॥ तत्कन्या मङ्गलागौरी सर्वलक्षणसंयुता । वयोमध्यगता रम्या रूपलावण्यशालिनी ॥३५॥ उपमानानि सर्वाणि तृच्छीकृत्योदयं गता । नगरोपवने रम्ये सखीभिः परिवारिता ॥ ३६ ॥ ततस्तावपि सम्प्राप्तौ चिरायुर्मातुलश्च सः । विश्रान्ति प्रापतुस्तत्र तस्या दर्शनलालसौ ॥ ३७ ॥ क्रीडन्तीनां विनोदेन कुपिता तत्र काचन । उवाच राजतनयां सा रण्डेत्यतिदुर्वचः ॥३८॥ श्रुत्वा तदशुभं वाक्यमुवाच नृपनन्दिनी । अयोग्यं भाषते त्वं किं मत्कुले नैव तद्विधा ॥ ३९ ॥ प्रसादान्मङ्गलागौर्यास्तद्व्रतस्य प्रभावतः । मत्करादक्षता यस्य प्रपतिष्यन्ति मूर्धनि ॥ ४० ॥ विवाहे च चिरायुः स्यादल्पायुरपि चेत्सखि । ततः समस्तास्ताः कन्याः स्वं स्वं वेश्म ययुस्तदा ॥ ४१ ॥ तस्मिन्नेव दिने राजकन्यायाः पाणिपीडने । राज्ञो बाह्लीकदेशस्य दृढवर्माभिधस्य वै ॥ ४२ ॥ सुकेतुनाम्ने पुत्राय दातुं सा निश्चिताऽभवत् । स सुकेतुरविद्यश्च कुरूपो बधिरस्था ॥ ४३ ॥ ततस्ते मन्त्रयामासुर्नैयोऽन्योद्य वरोऽपरः । अथ सिद्धे विवादे च सुकेतुस्तत्र गच्छतु ॥ ४४ ॥ ततश्चिरायुषं गत्वा याचिरे मातुलं प्रति । देयोऽस्मभ्यं बालः कार्यसिद्धिर्हि नो भवेत् ॥४५॥ परोपकारतुल्यो हि धर्मो नास्त्यपरो भुवि । मातुलस्तद्वचः श्रुत्वा अन्तर्हृष्टमना अभूत् ॥४६॥ पूर्वं श्रुतं चोपवने कन्यावाक्यमनेन यत् । एकवारं तथाप्याह युष्माभिर्याच्यते कथम् ॥४७॥ वस्त्रालङ्करणादीनि याच्यं कार्यस्य साधने । न वरो याच्यते क्वापि दीयते गौरवाद्धि वः ॥ ४८ ॥ विवाहं साधयामासुर्नीत्वा तत्र चिरायुषम् । सप्तपद्यादिके जाते रात्रौ गौरीहरान्तिके ॥ ४९ ॥ सहासौ मङ्गलागौर्या सुप्तौ हर्षसमन्वितः । तदह्नि षोडशाब्दानि समाप्तानि चिरायुषः ॥ ५० ॥ निशीथे सर्परूपेण कालस्तत्र समीयिवान् । तदन्तरे भूपसुता जागृता दैवयोगतः ॥ ५१ ॥ सा ददर्श महासर्पं चकम्पे भयविह्वला । धैर्यं कृत्वा तदा बाला पूजयामास सोरगम् ॥ ५२ ॥ उपचारैः षोडशभिर्दुग्धं पातुं ददौ बहु । प्रार्थयामास तं सर्पं दीनवाण्या च तुष्टुवे ॥ ५३ ॥ ययाचे मगङ्गलागौरी करिष्ये व्रतमुत्तमम् । जीव्या

न्मे पतिरेतस्माच्चिरं जीवेत्तथा कुरु ।।५४।। एतस्मिन्नन्तरे सर्पः करके प्रविवेश ह । कञ्चुक्या स्वीयया सा तु चक्रे तन्मुखबन्धनम् ।।५५।। एतस्मिनन्तरे भर्ता अंगमोटनपूर्वकम् । जागृतश्चाऽब्रवीद्भार्यां क्षुधा मां बाधते प्रिये ।।५६।। मातुः सकाशं गत्वा सा आनयामास पायसम् । लड्डुकादि च तद्दत्तं बुभुजे प्रीतमानसः ।।५७।। हस्तक्षालनकाले तु तद्धस्तान्मुद्रिकाऽपतत् ।। ताम्बूलं भक्षयित्वा तु प्रसुप्तः पुनरेव सः ।।५८।। ततः सा कारकं त्यक्तुमगच्छत्त् विधेर्गतिः । हारकान्ति बहिर्दृष्ट्वा स्फुरन्तीं विस्मयं ययौ ।।५९।। दृष्ट्वा घटस्थं तं हारं स्वकण्ठे च दधार सा । किञ्चिन्निशावशेषे तु मातुलस्तं निनाय सः ।।६०।। ततस्ते वरपक्षीयाः सुकेतुं तत्र चानयन् । दृष्ट्वा तं मंगलागौरी उवाचायं न मे पतिः ।।६१।। तामूचुस्ते ततः सर्वे किमिदं भाषसे शुभे । परिचायकमस्तीह किञ्चित्ते तद्वदस्व नः ।।६२।। मङ्गलागौर्युवाच -मे दत्तं येन रात्रौ च नवरत्नांगुलीयकम् । अस्याऽङ्गुलौ तन्निक्षिप्य प्रेक्षध्वं परिचायकम् ।।६३।। पत्या दत्तोऽस्ति मे हारो रात्रौ तद्रत्नसञ्चयः । कीदृशोऽनेन वाच्योऽसौ प्रतिवीरपरान्वितम् ।६४। किञ्चाम्रसेचने रात्रौ तत्पदं कुङ्कुमान्वितम् । ऊरौ मे वर्तते तच्च सर्वे पश्यन्तु मा चिरम् ।।६५।। किञ्च रात्रौ भाषणादि भक्षणानि च यत्कृतम् । तदनेन च वक्तव्यं तदा स्यान्मे पतिः स्वयम् ।।६६।। एवं श्रुत्वा तु तद्वाक्यं साधु साध्विति चाब्रवीत् । एकस्यापि न योगोऽभूत्तदा सर्वैर्निवेधितः ।।६७।। तदा ते वरपक्षोया जग्मुः सर्वे यथागतम् । जनको मंगलागौर्याः श्रुतकीर्तिः कुरुद्वहः ।।६८।। अन्नपानादिकं सत्रं चकार सुमहामनाः । वरपक्षस्य वृत्तान्तः श्रुतः कर्णोपकर्णतः ।।६९।। स्वरूपस्य कुरूपत्वादानीतः कञ्चनादृतः । स्थापयामास सौधे तु कन्यां जवनिकावृताम् ।।७०।। एवं गते हायने तु यात्रां कृत्वा समातुलः । चिरायुः प्रययौ तत्र किं जातमवलोकितुम् ।।७१।। तं सा जालान्तराद् दृष्ट्वा लोकोत्तरमुदान्विता । पितरौ कथयामास मम भर्ता समागतः ।।७२।। सुहृद्गणं समाहूय पूर्वोक्तं परिचायकम् । दृष्ट्वा सर्वमपि ह्यस्मै ददौ कन्यां शुचिस्मिताम् ।।७३।। शिष्टैः परिणयोत्साहं कारयामास भूपतिः । वस्त्राण्याभरणादीनि सेनामश्वान् गजान् रथान् ।।७४।। प्रस्थापयामास

नृपो दत्त्वाऽन्यदपि भूरिशः । पत्न्या सह चिरायुः स मातुलेन समन्वितः ॥७५॥ स्वपुरं सेनया सार्धं जगाम कुलनन्दनः । श्रुत्वा जनमुखात्तस्य आगतं पितरावुभौ ॥७६॥ विश्वासं लेभतुर्नैव स्यात्कथं दैवमन्यथा । एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः पित्रोरन्तिकमेव सः ॥७७॥ पपात पादयोर्भक्त्या पित्रोः स्नेहपरिलुप्तः । मूर्ध्न्यवघ्राय तं पुत्रं परमां मुदमापतुः ॥७८॥ स्नुषापि मङ्गलागौरी श्वशुरौ प्रणनाम सा । अङ्के निवेश्य तां श्वश्रूः पप्रच्छोदन्तमञ्जसा ॥ ७९ ॥ स्नुषापि मङ्गलागौरी व्रतमाहात्म्यमुत्तमम् । कथयामास तत्सर्वं यथावृत्तं महामुने ॥ ८० ॥ इत्येतत्कथितं तुभ्यं मंगलागौरिकाव्रतम् । य एतच्छृणुयात् किश्चिद् यश्चापि परिकीर्तयेत् ॥८१॥ मनोरथास्तस्य सर्वे सिद्धयन्त्यत्र न संशयः ॥८२॥ सूत उवाच—सनत्कुमारमित्येवं कथयामास धूर्जटिः । स चानन्दं परं लेभे श्रुत्वा कार्यकरं व्रतम् ॥८३॥ इति श्रांकन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे मङ्गलागौरीव्रतकथा समाप्ता ।

अथ रक्षिकाबन्धनविधिः

श्रावणीपूर्णिमायां भद्रारहितायां रक्षार्थं रक्षिकाबन्धनं कारयेत् । तथाहि स्मृतिः—ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैश्च मानवैः । कर्तव्यो रक्षिकाबन्धो द्विजान् सम्पूज्य शक्तितः ॥ इति । भद्रायां तन्निषेधमाह स्मृतिः—भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा । श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं हन्ति च फाल्गुनी ॥ इयं तु पूर्वविद्धा ग्राह्या । तथाहि वृद्धयमः—श्रावणी दौर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशिनी । पूर्वविद्धा तु कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् ॥ अत्र मन्त्रः—ॐ येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः । तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल ॥इति॥

इति दरभङ्गामण्डलान्तर्गत 'तरौनी' ग्रामवासिशास्त्रार्थदिवाकरपण्डितराजश्रीजयदत्तझाशर्मात्मजश्रीमदनन्तलालझासूनुना झोपाह्वश्रीतेजनारायण-मोदनारायण-सूर्यनारायणमहोदयानुजेन श्रीविद्या-भारतो-प्रदीप-सरस्वती-सन्ततिचतुष्टयजनकेन श्रीरामचन्द्रझाव्याकरणाचार्येण सम्पादितं वर्षकृत्यं समाप्तम्

परिशिष्टम्

अथ शुभकर्मसाधारणी व्यवस्था

यज्ञपार्श्वे—कर्मादौ मन्त्रसंयुक्तं मङ्गलस्नानमाचरेत् । दिव्याभरणवासोभिरलङ्कृत्य ततः शुचिः ॥
विवाहादिदिने प्राप्ते तत्कर्ता भार्यया सह । कुलदेवादिसम्प्रीत्यै ब्राह्मणांश्च सुवासिनीः ॥
स्नापयित्वा सकन्येन स्नातव्यं ससुतेन च । परिधायाऽहतं वस्त्रं द्विपटीं च स्त्र्यपि द्वयम् ॥

याज्ञवल्क्यः—नीलीरक्तं च यद्वस्त्रं दूरतः परिवर्जयेत् । द्रव्यान्तरयुता नीली न दुष्यति कदाचन ॥
केवलं पट्टसूत्रे च नीलीदोषो न विद्यते । स्त्रिया वस्त्रं सदा त्याज्यमन्यवस्त्रं विवर्जयेत् ॥

गौतमः—एकवस्त्रो न भुञ्जीत श्रौते स्मार्ते च कर्मणि । न कुर्यात् देवकार्याणि दानं होमं जपं तथा ॥

विधानपारिजाते—

एकवस्त्रा तु या नारी मुक्तकेशाव्यवस्थिता । न साऽधिकारिणी ज्ञेया श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ॥

पत्नीकुमारोपवेशनप्रकारमाह प्रयोगपारिजाते—

संस्कार्यः पुरुषो वाऽपि स्त्री वा दक्षिणतः सदा । संस्कारकर्ता सर्वत्र तिष्ठेदुत्तरतः सदा ॥

धर्मप्रवृत्तौ—जातके नामके चैव ह्यन्नप्राशनकर्मणि । तथा निष्क्रमणे चैव पत्नी पुत्रश्च दक्षिणे ॥

स्मृतिसंग्रहे—व्रतबन्धे विवाहे च चतुर्थ्यां सहभोजने । व्रते दाने मखे श्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे ॥

धर्मप्रवृत्तौ—आशीर्वादेऽभिषेके च पादप्रक्षालने तथा। शयने भोजने चैव पत्नी तूत्तरतो भवेत् ॥

स्मृतिः– सर्वत्र प्राङ्मुखो दाता प्रतिग्राही ह्युदङ्मुखः। एष दानविधिः प्रोक्तो विवाहे तु विपर्ययः ॥

वृहस्पतिः—प्राङ्मुखायाभिरूपाय वराय शुचि सन्निधौ। दद्यात् प्रत्यङ्मुखः कन्यां क्षणे लक्षणसंयुताम् ॥

पुनश्च तत्रैव –चतुष्पादं गृहं कन्यां दासीं छत्रं-रथं तरुम्। तिष्ठन्नेतान् द्विजो दद्याद् भूम्यादीनुपविश्य च ॥

उदकदानपूर्वकमेव ब्राह्मणानां कन्यादानं प्रशस्तम्। तथा हि—

मनुः—अद्भिरेव द्विजाग्र्याणां कन्यादानं प्रशस्यते। इतरेषां तु वर्णानामितरेतरकाम्यया ॥

विधानपारिजाते—मासपक्षतिथीनां च निमितानां च सर्वशः। उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत् ॥

अथ मैथिलेतराणां प्रतिज्ञासंकल्पः

ओं विष्णुर्विष्णुर्हरिर्हरिः, ओं तत्सत्। इत्यात्मानमभिषिच्य, कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अद्य श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे विष्णुपदे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीते भरतखण्डे भारतवर्षे अमुकनाम्नि संवत्सरे अमुकऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकशर्मणो (मम) सपरिवारस्य स्थिरलक्ष्मीपुत्र-पौत्राद्यभिवृद्धिपूर्वकं कायिक-वाचिक-मानसिक-सांसर्गिक-जन्मजन्मान्तरीय-ज्ञाताज्ञात-सकलपापक्षयार्थम् अमुककर्म अहं करिष्ये। (अमुक····अर्थात् अमुकदेवपूजनं तत्कथाश्रवणं चाहं करिष्ये। अथवा—इमांसोपकरणशय्यां विष्णुदैवताम्। अथवा—इमां गां (सवत्सगवीम् अथवा—एतावद्द्रव्यमूल्यकगामेकाम्) रुद्रदैवतां यथानामगोत्राय ब्राह्मणायाऽहं ददे। इत्यादि योज्यम्।)

अथ सर्वपूजोपयोगी सामान्यविधिः

आत्मशुद्धिः—ओं अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ।

आसन-शुद्धि—ओं पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता। त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥

पूजोपयोगिवस्तुसेचनम्—ओं पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धिया। पुनन्तु विश्वाभूतानि जातवेदः पुनीहि माम् ॥

पवित्रीधारणम्—ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तत्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ।

अपसारणम्—ओं अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः। ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥ अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्। सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ॥

दिक्पूजनम् (गन्धपुष्पाक्षतैः)—ओं प्राच्यै नमः (पूर्वस्याम्), ओं अवाच्यै नमः (दक्षिणस्याम्), ओं प्रतीच्यै नमः (पश्चिमायाम्), ओं उदीच्यै नमः (उत्तरस्याम्) ओं ऊर्ध्वं ब्रह्मणे नमः (उपरि), ओं अधः अनन्ताय नमो नमः (अधः) ।

प्रदीपपूजनम् (गन्धपुष्पाक्षतैः)—ओं अग्निर्ज्योतिरग्निः स्वाहा। सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ।

जलपात्रे तीर्थावाहनम्—ओं गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु-कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

अथ सर्वदेवषोडशोपचारपूजनविधिः(१)

(१) आवाहनम्—देवेश भक्तिसुलभ सर्वावरणसंयुत । यावत त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरो भव ॥

(२) आसनम्—कार्तस्वरमयं दिव्यं नानागुणसमन्वितम् । अनेकशक्तिसंयुक्तमासनं प्रतिगृह्यताम् ॥

---

(१) षोडशोपचार-विधान—१-आवाहन, २-आसन, ३-पाद्य, ४-अर्घ्य, ५-आचमन, ६-स्नान, ७-वस्त्र, ८-यज्ञोपवीत, ९-गन्ध (चन्दन), १०-पुष्प, ११-धूप, १२-दीप, १३-नैवेद्य, १४-ताम्बूल, १५-प्रदक्षिणा, १६-पुष्पाञ्जलि ।

१-आवाहन—पूजनीय देवताक ध्यान । २—आसन—कुशा, दूर्वा अथवा पुष्प । ३-पाद्य—पादप्रक्षालनार्थ चन्दनमिश्रित जल । ४-अर्घ्य—चन्दन, पुष्पाक्षत, तुलसीपत्रमिश्रित सुवासित जल । ५-आचमनीय—गङ्गाजल अथवा शुद्धोदक । ६-स्नान—ताम्रपात्रस्थ शुद्धोदक (या गंगाजल) । ७-वस्त्र—पीताम्बर । ८-यज्ञोपवीत—जनेऊ अथवा शुद्ध सूत्र । ९-गन्ध—श्रीखण्ड चन्दन । १०-पुष्प—पूजन देव-प्रिय पुष्प । ११-धूप—अगरबत्ती, गुग्गुल, सड़र आदि । १२-दीप गोघृत-प्रज्वलित प्रशस्त । १३-नैवेद्य—पुजनीय-देवता-प्रिय वस्तु । १४-ताम्बूल—कर्पूरादि सुवासित खिल्ली । १५-प्रदक्षिणा—शास्त्रोक्त एक, सात, तीन, चारि तथा आधा बेर—'एकं चण्ड्यां रवौ सप्त त्रीणि दद्याद् विनायके । चत्वारि केशवे दद्यात् शिवस्यार्धं प्रदक्षिणम् ॥' १६-पुष्पाञ्जलि—पूजनीय देवोपयुक्त पुष्प, तुलसी, दूर्वा, बिल्वपत्रादि दुहू हाथ में लय करजोरि ।

षोडशोपचारक अभाव में दशोपचार—१-पाद्य, २-अर्घ्यं, ३-आचमन, ४-स्नान, ५-वस्त्र, ६-चन्दन, ७-पुष्प, ८-धूप, ९-दीप तथा १०-नैवेद्य ।

दशोपचारक अभाव में पञ्चोपचार—१-गन्ध, २-पुष्प, ३-धूप, ४-दीप तथा ५ नैवेद्य ।

पंचोपचारक अभाव में—केवल जल-पुष्प । तदभाव में केवल प्रणाम-दर्शन मात्र ।

(३) पाद्यम्—यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः । तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं देव प्रकल्पये ॥

(४) अर्घ्यम्—तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम् । तापत्रयविनिर्मुक्त्यै तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥

(५) आचमनीयम्—देव देव नमस्तुभ्यं पुराणपुरुषोत्तम । मयानीतमिदं तोयं गृहीत्वाचमनं कुरु ॥

(६) स्नानम्—गङ्गा च यमुना गोदावरी चैव सरस्वती । कृष्णा च गौतमी वेणी सिप्रा सिन्धुस्तथैव च ॥
तापी पयोष्णी रेवा च ताभ्यः स्नानार्थमाहृतम् । तोयमेतत् सुखस्पर्शं स्नानीयं प्रतिगृह्यताम् ॥

(क) पञ्चामृतस्नानम्—पयो दधि घृतं चैव मधु शर्करयाऽन्वितम् । पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

(ख) शुद्धोदकस्नानम्—नदीनां चैव सरसं मयानीतं जलं शुभम् । अनेन त्वं कुरु स्नानं मन्त्रैर्वारुणकैः शुभैः ॥

(ग) आचमनीयम्—कर्पूरवासितं तोयं मन्दाकिन्याः समाहृतम् । आचम्यतां महाभाग मया दत्तं हि भक्तितः ॥

(७) वस्त्रम्—तन्तुसन्तानसंयुक्तं कलाकौशलकल्पितम् । पीतवस्त्रयुगं देव कृपया प्रतिगृह्यताम् ॥

(८) यज्ञोपवीतम्—यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोतं सचराचरम् । यज्ञरूपाय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ॥

(९) चन्दनम्—श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् । विलेपनं सुरश्रेष्ठ प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

(क) अक्षताः—अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमाक्ताः सुशोभनाः ।
मया निवेदिता भक्त्या तान् गृहाण सुरेश्वर ॥

(१०) पुष्पाणि—सुगन्वीनि सुपुष्पाणि देशकालोद्भवानि च । मयानीतानि पूजार्थं प्रीत्या स्वीकुरु तानि मे ॥

(क) माला—नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम् । प्रयच्छामि च देवेश गृहाण सुरसत्तम ॥

(ख) तुलसी--तुलसीं हेमरूपाञ्च रत्नरूपां च मञ्जरीम् । भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥
(११) धूपः—वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः । आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥
(१२) दीपः- आज्यं सद्वर्तिसयुक्तं वह्निना योजितं मया । दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह ॥
(१३) नैवेद्यम्--अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् । मया निवेदितं देव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥
(क) फलानि--फलान्यमृतकल्पानि स्थापितानि पुरस्तव । तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥
(ख) दक्षिणाद्रव्यम्--हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ! अनन्तपुण्यफलदभतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥
(१४) ताम्बूलानि--पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् । एलादिचूर्णसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥
(१५) प्रदक्षिणा--यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च । तानि तानि प्रणश्यन्तु प्रदक्षिण ! पदे पदे ॥
(१६) पुष्पाञ्जलिः—नानासुगन्धपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च । पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर ॥

अथ सर्वकर्मोपयोगि स्वस्तिवाचनम्

ओं स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति
नो वृहस्पतिर्दधातु ॥ १ ॥ पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः । पयस्वतीः
प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ २ ॥ व्विष्णोरराटमसि व्विष्णोः श्नप्त्रेस्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि ।
वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ ३ ॥ अग्निर्द्देवता बातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता
रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता वृहस्पतिर्द्देवतेन्द्रो देवता व्वरुणो देवता ॥ ४ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष्ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्व्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व्ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ ५ ॥ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्नऽआसुव ॥ ६ ॥ इमा रुद्राय तवसे कपर्द्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहेमतीः । यथा समसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामेऽस्मिन्ननातुरम् ॥ ७ ॥ एतत्ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्ब्बृहस्पतये ब्रह्मणे । तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ॥ ८ ॥ ओं मनो जूतिर्ज्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञ्ँ समिमं दधातु । विश्वेदेवास इह मादयन्तामो३म् प्रतिष्ठ । एष वै प्रतिष्ठा नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव प्रतिष्ठितं भवति ॥ ९ ॥

ओं गणानां त्वा गणपति्ँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति्ँ हवामहे निधीनां त्वा निधिपति्ँ हवामहे व्वसोः मम आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥ १० ॥

ओं नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्विश्वेभ्यो विश्वपतिभ्यश्च वो नमो नमः ॥ ११ ॥

इति स्वस्तिवाचनम् ।

अथ विवाहादौ मण्डपस्थापनं पूजनं च

तत्र आग्नेयादिचतुर्षु मण्डपकोणेषु स्तम्भान् स्थापयेत्, एकं स्तम्भं मध्ये रोपयेत्, तदर्थम् अवटम् (खद्दा = गड्ढा) खनेत्। तत्प्रकारमाह—

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। ॐ इदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि। इति पठित्वा खनित्रेण अवटस्थाने आलिखेत्।

ॐ मा वोरिषत् खनिता असौ चाहं खनामि वः। द्विपाच्चतुष्पादस्माकꣳ सर्वमस्त्वनातुरम्। इत्यवटं खनेत्।

ॐ सिञ्चन्ति परिषिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च। सुरायैबभ्र्वैमदेकिन्त्वोव्वदति किन्त्वः। इत्यवटे जलं क्षिपेत्।

ॐ यवोसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः। इति अवटे यवान् क्षिपेत्।

ॐ काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च। इति अवटे दूर्वाङ्कुरान्। क्षिपेत्।

ॐ दधिक्राव्णोऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभिनो मुखाकरत् प्रण आयूꣳषि तारिषत्। इत्यवटे दधि क्षिपेत्।

ॐ याः फलिनीर्य्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्प्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वꣳ हसः॥ इति पूगीफलं क्षिपेत्।

ओं हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्। सदाधारपृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ इत्यवटे हिरण्यं क्षिपेत्।

ओं उच्छ्रयस्व वनस्पत ऽऊर्ध्वो मापोह्य ँ हसः आस्य यज्ञस्योदृचः । इति मन्त्रेण रक्तसूत्रादिपरिवेष्टितस्तम्भम् उत्यापयेत् ।

ओं ऊर्ध्वं उषण ऊतये तिष्ठादेवो न सविता । ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे । इत्यवटे स्तम्भमारोपयेत् । ओं स्थिरो भव विड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् । पृथुर्भव सुखदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहनः ।

इति समन्ततो मृत्तिकया स्तम्भं स्थिरीकुर्यात् । ततः स्तम्भे आग्नेयादिक्रमेण नन्दिन्यादिमण्डपमातृः पूजयेत् । तद्यथा—

ओं नन्दिन्यै नमः नन्दिनीमावाहयामि ॥ १ ॥ ओं नलिन्यै नमः नलिनीमावाहयामि ॥ २ ॥ ओं मित्रायै नमः मित्रामावाहयामि ॥ ३ ॥ ओं उमायै नमः उमामावाहयामि ॥ ४ ॥ ओं पशुवर्द्धिन्यै नमः पशुवर्द्धिनीमावाहयामि ॥ ५ ॥

ओं मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञ ँ समिमं दधातु । विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ । नन्दिन्यादिमण्डपमातरः सुप्रतिष्ठिता वरदा भवन्तु । इति प्रतिष्ठाप्य एकतन्त्रेण सम्पूजयेत् । ततः प्रार्थना—ओं प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् । स्मरणादेव तद् विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु । न्यूनं सम्पूर्णतां यातु सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

ततो दक्षिणासंकल्पः—ओमद्य कृतैतदमुककर्मनिमित्तकमण्डपस्थानपूजनकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् ।

इति मण्डपस्थापनपूजनं समाप्तम् ।

अथ सर्वकर्मोपयोगि संक्षिप्तपुण्याहवाचनम्

ओं सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः । लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः । द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा । संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः । सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥

ओं सच्चिदानन्दाय परब्रह्मणे नमः । ओं परम-ऋषिभ्यो नमः । ओं लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः । ओं उमामहेश्वराभ्यां नमः । ओं वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः । ओं शचीपुरन्दराभ्यां नमः । ओं मातृपितृचरणकमलेभ्यो नमः । ओं कुलदेवताभ्यो नमः । ओं ग्रामदेवताभ्यो नमः । ओं स्थानदेवताभ्यो नमः । ओं वास्तुदेवताभ्यो नमः । ओं सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । ओं पितृभ्यो नमः । ओं सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः । ओं पुण्याहं पुण्याहं दीर्घमायुरस्तु । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

अथ सर्वमाङ्गलिककर्मोपयोगि गणेशपूजनम् (१)

रुद्रपद्धतौ—गणेशं पूजयेत् पूर्वं निर्विघ्नार्थं स्वकर्मणः । पट्टे वा मृन्मये पीठे रक्तवस्त्रेऽरुणाक्षतैः ॥ कार्यमष्टदलं पद्मं तस्योपरि गणेश्वरम् । गणानान्त्वेति संस्थाप्य पूजयेत् तदनन्तरम् ॥

कर्ता प्रातरुत्थाय स्नात्वा अहते वाससो परिधाय नित्यकर्म समाप्य पूजास्थानमागत्य प्रथमं तमः सञ्चारिभूतादिनिवारणार्थं दीपं प्रज्वाल्य—नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे । सहस्रनाम्ने पुरुषाय

---

(१) मैथिलास्तु प्रायः मातृकापूजनसहैव गणेशपूजनं कुर्वन्तीति समाचारः ।

(१) मैथिलास्तु प्रायः मातृकापूजनसहैव गणेशपूजनं कुर्वन्तीति समाचारः ।

शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ।। इति तं प्रणम्य आचम्य गणेशाय पुष्पाञ्जलिं समर्पयेत्—

ओं विघ्नवल्लीकुठाराय गणाधिपतये नमः । वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटिसमप्रभ । अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ।। इति पुष्पाञ्जलिं समर्प्यं विष्णुं ध्यायेत्—ओं शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ।। लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः । येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः । ततः अर्घ्यस्थापनम्—चन्दनेन भूमौ त्रिकोणं वृत्तं चतुरस्रमण्डलं च लिखित्वा तत्र शंखचक्रं लिखित्वा गन्धाक्षतपुष्पैः सम्पूज्य संस्थाप्य—ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः । इति जलेनापूर्यं—ओं गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति । नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।। इत्यङ्कुशमुद्रया तस्मिन् तीर्थान्यावाह्य, गन्धाक्षतपुष्पाणि निक्षिप्य, ताम्रस्थाल्यां सूर्यं लिखित्वा प्रतिष्ठाप्य ध्यायेत्—ओं अरुणोऽरुणपङ्कजे निषण्णः कमलेऽभीतिवरौ करैर्दधानः । स्वरुचाहितमण्डलस्त्रिनेत्रो रविराकल्पशताकुलोऽवतान्नः इति ध्यात्वा पूर्वोपकल्पितमर्घ्यं दद्यादनेन—ओं एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते । अनुकम्पय मां भक्त्या गृहणार्घ्यं दिवाकर ।। इत्यर्घ्यं दत्त्वा सर्षपाक्षतैर्भूतोत्सादनं कुर्यात्—ओं अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशः । सर्वेषामविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ।। अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः । ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ।। इति चतुर्षु दिक्षु सर्षपाक्षतान् निक्षिप्य तालत्रयेण सर्वान् विघ्नान् उत्सार्य पुष्पाक्षतैः—ओं आधारशक्तये पृथिव्यै नमः, ओं कमलासनाय नमः, इत्यासनं सम्पूज्य पुनः अर्घ्यं संस्थाप्य जलेन आपूर्य गन्धाक्षतपुष्पाणि निक्षिप्य तेन जलेन आत्मानं पूजासामग्रीं च सम्प्रोक्ष्य प्राणायामं विधाय, कुशत्रयतिलजलान्यादाय पूजासङ्कल्पं कुर्यात् (१)—ओं

---

(१) मैथिलेतराणां संकल्पस्तु इत्थम्—ओं विष्णुः विष्णुः नमः परमात्मने श्रीपुराणपुरुषोत्तमाय ओं तत् सदत्र पृथिव्यां जम्बूद्वीपे भारतवर्षे कुमारिकाखण्डे आर्यावर्तैकदेशे ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे कृत

अद्य अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्माऽहं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलसमफलाप्राप्तये करिष्यमाणस्य अमुककर्मणः (१) निर्विघ्नतासिद्धये भगवतः श्रीगणेशस्य षोडशोपचारैः पूजनं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य प्रथमं पीठे नवशक्तिपूजनं कुर्यात्--

१—ओं तीव्रायै नमः, २—ओं ज्वालिन्यै नमः, ३—ओं नन्दायै नमः, ४—ॐ भोगदायै नमः, ५ - ॐ कामरूपिण्यै नमः, ६—ओं सत्यायै नमः, ७—ॐ उग्रायै नमः, ८—ॐ तेजोवत्यै नमा, ९—मध्ये, ओं विघ्नविनाशिन्यै नमः। ततः—ओं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः इत्यावाह्य प्रत्येकं यथोपचारैः सम्पूज्य गणेशं पूजयेत्—

गन्धपुष्पाक्षतैः - ॐ गणानान् त्वा पणपतिꣳ हवामहे, प्रियाणान् त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे, निधीनान् त्वा निधिपतिꣳ हवामहे व्वसो मम। आऽहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्। ॐ भूर्भुवः स्वः भगवन् श्रीगणेश इहागच्छ इह सुप्रतिष्ठितो भव। इति प्रतिष्ठाप्य, ध्यानम् - ॐ एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम्। पाशाङ्कुशधरं देवं ध्यायेत् सिद्धिविनायकम्। ओं विनायक नमस्तेऽस्तु उमामलसमुद्भव। इमां मया कृतां पूजां गृहाण सुरसत्तम॥ इदं ध्यानपुष्पम् श्रीगणेशाय नमः। पुष्पासनम्—ओं नानारत्नसमायुक्तं मुक्ताहारविभूषितम्। स्वर्णसिंहासनं चारु प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्॥ इदं पुष्पासनम्०। पाद्यम्—ओं गौरीप्रिय नमस्तेऽस्तु शङ्करप्रियसर्वदा।

त्रेताद्वापरान्ते अष्टाविंशतितमकलियुगस्य प्रथमचरणे अमुकनामसंवत्सरे अमुकायने अमुक-ऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते शेषेषु ग्रहेषु यथाराशिस्थानस्थितेषु एवं गुणगणविशिष्टायाम् अमुकपुण्यतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकगोत्रः अमुकराशिः अमुकशर्माऽहं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलसमफलप्राप्तये करिष्यमाणस्य अमुककर्मणः निर्विघ्नतासिद्धये भगवतो गणेशस्य षोडशोपचारैः पूजनं करिष्ये। (परकृतपक्षे 'करिष्यामि' इत्यप्यूह्यम्।)

(१) विवाहे तु 'अमुकशर्मणः, अमुककुमारिकायाः वा करिष्यमाणविवाहकर्मणः' इत्यूह्यम्।

भक्त्या पाद्यं मया दत्तं गृहाण प्रणतप्रिय ॥ इदं पाद्यम् । अर्घ्यम्—ओं व्रतमुद्दिश्य देवेश गन्धपुष्पाक्षतैर्युतम् । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वसिद्धप्रदो भव ॥ इदमर्घ्यम्० । आचमनीयम्—ओं गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम् । आचम्यतां गणाधीश त्रैलोक्यव्याधिनाशन ॥ इदमाचनीयम्० । पञ्चामृतम्—ओं स्नानं पञ्चामृतैर्देव गृहाण गणनायक । अनाथनाथ सर्वज्ञ गीर्वाणपरिपूजित ॥ इदं पञ्चामृतम्० । शुद्धोदकम्—ॐ गणानान्त्वा गणपति॒ँ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपति॒ँ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपति॒ँ हवामहे ठवसो मम । आऽहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥ इदं शुद्धोदकम्० । स्नानाङ्गमाचनीयं० । वस्त्रम्—ओं रक्तवस्त्रयुगंदेव देवाङ्गसदृशप्रभम् । भक्त्या दत्तं गृहाणेदं लम्बोदर हरप्रिय ॥ इमे रक्तवस्त्रे बृहस्पतिदैवते० । वस्त्रान्ते आचमनीयम्० । यज्ञोपवीतम्—राजतं ब्रह्मसूत्रं च काञ्चनस्योत्तरीयकम् । गृहाण चारु सर्वज्ञ भक्तानां सिद्धिदायक ॥ इमे यज्ञोपवीते वनस्पतिदैवते० । आचमनीयम्० । गन्धम्—ओं गन्धं कर्पूरसंयुक्तं दिव्यं चन्दनमुत्तमम् । विलेपनं सुरश्रेष्ठ प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं श्रीखण्डचन्दनम्० । सिन्दूरम्—ओं उद्यद्भास्करसंकाशं सन्ध्यावदरुणं प्रभो । श्रृङ्गारकारणं दिव्यं सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं सिन्दूराभरणम्० । रक्ताक्षताः—ओं रक्ताक्षताश्च देवेश गृहाण द्विरदानन । ललाटपटले चन्द्रस्तस्योपर्युपधार्यताम् ॥ इदं रक्ताक्षतम्० । पुष्पाणि—ओं सुगन्धीनि सुपुष्पाणि माल्यादीनि वै प्रभो । मयानीतानि पूजार्थं पुष्पाणि त्वं गृहाण मे ॥ एतानि पुष्पाणि० । माल्यम्—ओं नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम् । प्रयच्छामि गणाधीश गृहाण सुरपूजित ॥ इदं पुष्पमाल्यम्० । धूपम्—दशांगं गुग्गुलुं धूपं सुगन्धि सुमनोहरम् । उमासुत नमस्तुभ्यं गृहाण वरदो भव ॥ एष धूपः० । दीपः—ओं गृहाण मगंलं दीपं घृतवर्तिसमन्वितम् । दीपं ज्ञानप्रदं देव रुद्रप्रिय नमोस्तु ते ॥ ओं स्वप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः । सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिः दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ एष दीपः० । नैवेद्यम्-ओं नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्ति मे ह्यचलां कुरु । ईप्सितं च वरं देहि परत्र च

पराङ्गतिम् ॥ एतानि नानाविधनैवेद्यानि० । मोदकान्—(१) ओं सगुडान् सघृतांश्चैव मोदकान् घृतपाचितान् । नैवेद्यं सफलं दद्मि गृह्यतां विघ्ननाशन ॥ एतान् मोदकान्० । भूषणार्थं द्रव्यम्—ओं हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः । अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥ इदं भूषार्थं द्रव्यम्० । द्रव्याङ्गमाचमनीयम्० । नारिकेलम्—ओं इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव । तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ इदं नारिकेलं० । ताम्बूलम्—पूगीफलसमायुक्तं नागवल्लीदलैर्युतम् । कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ एतानि लाम्बूलानि० । प्रार्थना—ओं विनायक नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय । अविघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ ततः मूलमन्त्रेण ('ओं गँ गणपतये(२) नमः' इत्यनेन) अष्टोत्तरशतं दशवारं वा जपं कुर्यात् ।

अथ दूर्वाङ्कुरपूजा । गन्धादियुतान् एकविशति (२१) दुर्वाङ्कुरान् गृहीत्वा वक्ष्यमाणोक्त-प्रतिनाम दूर्वाङ्कुरयुग्मं समर्प्यं अन्ते सर्वनामभिः एकां समर्पयेत् । तद्यथा—१—ओं गणाधिप नमस्तेऽस्तु (इति द्वौ) । २—उमापुत्र नमोऽस्तु ते (द्वौ) । ३—ओं अघनाशन नमस्तेऽस्तु (द्वौ) । ४—ओं विनायक नमोऽस्तु ते (द्वौ) ॥ ५—ओं ईशपुत्र नमस्तेऽस्तु (द्वौ) । ६—ओं एकदन्त नमोऽस्तु ते (द्वौ) । ७—ओं इभवक्त्र नमस्तेऽस्तु (द्वौ) । ८—ओं मूषवाहन ते नमः (द्वौ) ॥ ९—ओं कुमारगुरवे तुभ्यं चतुर्थीश नमोऽस्तु ते (द्वौ) । १०—ओं सर्वसिद्धिप्रद श्रीमन् विनायक मनोऽस्तु ते (द्वौ) ॥ ततः एकां दूर्वाम् आदाय—ओं काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ इति समर्प्य आरार्तिकं कुर्यात्—

---

(१) 'एकं मोदकं (लड्डू) विनायकाय दद्यात्, दश वक्ष्यमाणप्रकारेण ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्, दश स्वार्थं स्थापयेत्'—इति स्कन्दपुराणे एकविंशतिमोदकदानव्यवस्था ।

(२) गारुडे—प्रणवादिनमोऽन्तं च चतुर्थ्यन्तं च सत्तम । देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः ॥

ओं अन्तस्तेजो बहिस्तेज एकीकृत्यामितप्रभम् । आरार्तिकमिदं देव गृहाण मदनुग्रहात् ॥

ओं अग्निज्ज्योतिरग्निः स्वाहा । सूर्यो ज्योतिज्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा । ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्ज्योतिः स्वाहा । ततः पुष्पाञ्जलिः—

ओं सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः । लम्बोदरश्च विकटो विन्घनाशो विनायकः ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः । द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ।
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा । संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥
अविरलमदजलनिवहं भ्रमरकुलानीकसेवितकपोलम् । अभिमतफलदातारं कामेशं गणपतिं वन्दे ॥

इति पुष्पाञ्जलिं समर्प्य त्रिः (१) प्रदक्षिणीकृत्य दक्षिणासंकल्पं कुर्यात्—

ओं अद्य कृतैतद् अमुक (शुभविवाहादि) कर्मणि निर्विघ्नतासिद्धये भगवतः श्रीगणेशस्य पूजाकर्मणः साद्गुण्यार्थम् एतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । इति दक्षिणां दद्यात् । ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् ।

अथ दक्षिणासहितदशमोदकदानसंकल्पः—ओं अद्य कृतैतद् अमुक (शुभविवाहादि) कर्मनिमित्तकश्रीगणेशपूजनकर्मणः साङ्गफलप्राप्त्यर्थं श्रीगणेशप्रीतये इमान् दशमोदकान् । दक्षिणासहितान् ब्राह्मणाय अहं दास्ये । इति संकल्प्य—ओं नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ओं विघ्नेश विप्ररूपेण गृहाण दश मोदकान् । दक्षिणाघृतताम्बूलगुडयुक्तान् ममेष्टद ॥ दाता विघ्नेश्वरो देवो ग्रहीता सर्वविघ्न-

---

(१) एकं चड्यां रवौ सप्त त्रीणि दद्यात् विनायके । चत्वारि केशवे दद्यात् शिवस्यार्धं प्रदक्षिणम् ॥

राट् । तस्मादिदं मया दत्तं परिपूर्णं तदस्तु मे ।। इति ब्राह्मणाय दद्यात् । ततः प्रतिग्रहीता—'ओं देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्ब्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्' इति पठेत् ।

अथ विसर्जनम्--ओं यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ।। ओं भगवन् श्रीगणेश पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । ततः पुरोधाः—ओं गणानान्त्वा गणपति ँ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपति ँ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपति ँ हवामहे व्वसो मम । आहमजानि गर्ब्भधमा त्वमजासि गर्ब्भधम् । इति पठित्वा देवोपभुक्तमाल्यादिकं यजमानाय दद्यात् ।

इति गणेशपूजनम् ।

अथ सर्वकर्मोपयोगि रक्षासूत्रबन्धनम्

तत्र गणेशादिपूजनोत्तरं ताम्रपात्रे रक्षासूत्रं संस्थाप्य हस्तेनाभिमृश्य पठेत्—

ओं गणाधिपं नमस्कृत्य नमस्कृत्य पितामहम् । विष्णु रुद्रं श्रियं देवीं वन्दे भक्त्या सरस्वतीम् ।। स्थानक्षेत्रं नमस्कृत्य दिननाथं निशाकरम् । धरणीगर्भसंभूतं शशिपुत्रं बृहस्पतिम् ।। दैत्याचार्यं नमस्कृत्य सूर्यपुत्रं महाग्रहम् । राहुं केतुं नमस्कृत्य यज्ञारम्भे विशेषतः ।। शक्राद्या देवताः सर्वाः नमस्कृत्य मुनीस्तथा । गर्गं मुनिं नमस्कृत्य नारदं मुनिसत्तमम् ।। वसिष्ठं मुनिशार्दूलं विश्वामित्रं महामुनिम् । व्यासं कविं नमस्कृत्य सर्वशास्त्रविशारदम् ।। विद्याधिका ये मुनय आचार्याश्च तपोधनाः । सर्वे ते मम यज्ञस्य रक्षां कुर्वन्तु विघ्नतः ।। प्राचीं रक्षतु गोविन्द आग्नेयीं गरुडध्वजः । यामीं रक्षतु वाराहो नारसिंहस्तु नैर्ऋतीम् । केशवो वारुणीं रक्षेद् वायवीं मधुसूदनः । उदीचीं श्रीधरो रक्षेदैशानीं तु गदाधरः ।। मध्ये गोवर्धनधरो ह्यधस्ताद्धरणीधरः । एवं दशदिशो रक्षेद् वासुदेवो जनार्दनः ।। यज्ञाग्रे रक्षताच्छंखः पृष्ठे पद्मं तथोत्तरम् । वामपार्श्वे गदा रक्षेद् दक्षिणे त सुदर्शनः ।। उपेन्द्रः पातु ब्रह्माणमाचार्यं

पातु वामनः। अच्युतः पातु ऋग्वेदं यजुर्वेदमधोक्षजः॥ कृष्णो रक्षतु सामानि ह्यथर्वं गाधवस्तथा। उपविष्टाश्च विप्रास्तेऽनिरुद्धेन सुरक्षिताः॥ यजमानं सपत्नीकं पुण्डरीकविलोचनः। रक्षाहीनं तु यत् स्थानं तत् सर्वं रक्षताद्धरिः॥ इति पठित्वा यजमानदक्षिणकरे रक्षासूत्रं बध्नीयात्। तत्र बन्धनमन्त्रौ—

ओं येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥

ओं त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणु धी गिरः। रक्षा रोकमुतत्मना॥ रक्षा सुरक्षा भूयात्॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

इति रक्षासूत्रबन्धनविधिः

●

अथ आभ्युदयिकश्राद्धसमीक्षा (१)

विष्णुपुराणे--कन्या-पुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेश्मनः। नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा॥
सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने। नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत् प्रयतो गृही॥
मत्स्यपुराणे—अन्नप्राशे च सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके। पुंसवे च निषेके च नववेश्मप्रवेशने॥
देवव्रते जलादीनां प्रतिष्ठायां तथैव च। तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्तितम्॥
कात्यायने—असकृद् यानि कर्माणि क्रियन्ते कर्मकारिभिः। प्रतिप्रयोगं नैताः स्युर्मातरः श्राद्धमेव च॥

---

(१) आभ्युदयिकश्राद्धविधिस्तु वर्षकृत्यद्वितीयभागे द्रष्टव्यः।

ब्रह्मपुराणे– गणेशः क्रियमाणे तु मातृभ्यः पूजनं सकृत् । सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु (१) ॥
विष्णुपुराणे –यज्ञे पुंसवने चैव सीमन्तोन्नयने तथा । एतेष्वेव प्रधानेषु श्राद्धं कर्माङ्गमिष्यते (२) ॥
सायणीये—नान्दीश्राद्धं पिता कुर्यादाद्ये पाणिग्रहे पुनः । अत ऊर्ध्वं प्रकुर्वीत स्वयमेव (३) तु नान्दिकम् ॥

"यो यो जीवति तं तं परित्यज्य सर्वं सव्येन कार्यम् ।" इति सर्वनिबन्धस्वरसः । यत्तु "पतिरि पितामहे प्रपितामहे जीवति नैव कुर्यात्तु नान्दिकम्" इति विष्णुपुराणे उक्तं तद्व्यवहारविमुखत्वान्नादरणीयम् । तथाहि मनुः– "दद्यात् त्रिभ्यः परेभ्यस्तु जीवेच्चेत् त्रितयं यदि" इति । मातृमातामहादिश्राद्धेऽपि अयमेव क्रमो बोध्यः ।

स्त्रीकर्त्रीकयागादौ आभ्युदयिकनिर्णयः

स्त्रीकर्त्रीकयागादौ प्रतिनिधिना तत्स्त्रीपितॄणामेव श्राद्धं कर्तव्यम् (४) । तथाहि शातातपः—
नानिष्ट्वा तु पितॄञ्छ्राद्धे कर्म वैदिकमारभेत् । तेभ्योऽपि मातरः पूर्वं पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥

---

(१) अत एव एकाचार्यकर्तृकेषु चूडाकरणवेदारम्भादिसंस्कारेषु युगपदुपस्थितेषु सर्वादौ सकृदेव मातृपूजनम् आभ्युदयिकश्राद्धं च भवति, न तु प्रतिसंस्कारम् आवृत्त्या । तन्त्रेणैव सर्वत्रान्वयसम्भवात् ।

(२) विवाहादौ तु तन्नैमित्तिकमेव, अत एव विवाहादौ आभ्युदयिकश्राद्धाऽकरणेपि न विवाहवैगुण्यं न वा नैमित्तिकाऽकरणात् प्रत्यवायः । इत्यवगत्यैव विवाहे कदाचिद् आभ्युदयिकं नाचरन्ति तज्ज्ञाः ।

(३) द्वितीयपाणिग्रहणे तु स्वयमेव कुर्यादिति सर्वनिबन्धसिद्धान्तः ।

(४) अत्युत्कटस्नेहसत्त्वे तु यागकर्त्र्याः पत्युः मात्रादीनां पित्रादीनां मातामहादीनां च आभ्युदयिकश्राद्धकरणेऽपि न काप्यनुपपत्तिरिति तत्त्वविदः ।

अत्र पितृपदं श्राद्धार्हपितृपरम्, न तु सम्बन्धिशब्देन स्वपितृपरम्, कर्त्रन्तरेण संस्कार्यपितामहादिश्राद्धाकरणप्रसंगात्। नच इष्टापत्तिः, सकलशिष्टाचारविरोधात्। 'तस्याभावे तु तत्क्रमात्' इति वक्ष्यमाणस्मृतिविरोधाच्च। कर्मपदमत्र यत्राभ्युदयिकं निषिद्धं तदतिरिक्तवैदिककर्मपरमिति सर्वनिबन्धकाराः।

आभ्युदयिककर्तृनिर्णयः

छन्दोगपरिशिष्टे—स्वपितृभ्यः पिता दद्यात् सुतसंस्कारकर्मणि।
पिण्डानोद्वाहनात् तेषां तस्याऽभावे सु तत्क्रमात्॥

सुतसंस्कारेत्यत्र सुतासुतपदयोः 'पुमान् स्त्रियाः' इत्येकशेषेण प्रयोगः। आ उद्वाहनात् = विवाहपर्यन्तम्। अपत्यसंस्कारजनककर्मणि = जातकर्म-नामकरण-चूडाकरणोपनयन-विवाहरूपे, पिता स्वपितृभ्यः पिण्डान् दद्यात् = आभ्युदयिकश्राद्धं कुर्यादित्यर्थः।

"तस्याभावे तु तत्क्रमात्"—इत्यस्याऽयंभावः—जीवत्पितृकस्य माणवकस्य अन्यः (आचार्यः) वरणप्राप्त्यनन्तरं माणवकस्य पितुरेव मात्रादीनां पित्रादीनां मातामहादीनां च आभ्युदयिकं कुर्यात्।

[मृतपितृकस्य माणवकस्याऽपि अन्यः (आचार्यः) माणवकस्यैव पितुः पित्रादीनां, माणवकस्य पितुरेव मात्रादीनां, माणवकस्य पितुरेव मातामहादीनां च आभ्युदयिकं कुर्याद्। इति प्राञ्चः।]

"तस्याभावे तु तत्क्रमात्" इत्यत्र मतद्वयं वर्तते, तत्र प्राञ्चः—तेषां = संस्कार्यपितुः पितृणाम्, तस्याभावे = तस्य संस्कार्यस्य पितुरभावे, तत्क्रमात् = संस्कार्यपितरमादाय क्रमः तत्क्रमः, तस्मात्। तथा च योऽन्यः संस्कारकर्ता आचार्यः स संस्कर्तव्यमाणवकादि-पितृपितामहप्रपितामहानां, तत्पितृमातामहादीनां च श्राद्धं कुर्यात्। इति समुदा-

यार्थः सम्पद्यते। पितुरधिकस्य अनुप्रवेशे वृद्धप्रपितामहस्य त्यागः इति सम्प्रदायः। अत एव "पितृहीनस्य यो नामादिकर्ता स तदीयपितरमारभ्य आभ्युदयिकं कुर्यात्" इति व्याख्यातं तज्ज्ञैः।

अत्र म० म० हर्षनाथ-परमेश्वरादिझोपाह्वमहोदयास्तु—तस्य = संस्कार्यपितुः, अभावे = अविद्यमाने, तेषां = संस्कार्यपितुः पितॄणाम् एव प्रकृततया प्रत्यवमर्शे तत्पितुः पितॄणाम् अर्घे दाने प्राप्ते संस्कार्यपितृक्रमस्यार्थत एव लाभे तत्क्रमादित्यस्य वैयर्थ्यापत्त्या तत्पदेन प्रस्तुतस्य प्रत्यवमर्शे 'तत्क्रमात्' इत्यस्य संस्कार्यक्रमादित्यर्थो लभ्यते। तेन संस्करणीयो यथा करोति तथा पितुरभावे पित्रन्यः (१) संस्कर्ता कुर्यादित्यर्थः। तथा च संस्करणीयपित्रादीनां तन्मातामहादीनां च पित्रन्यः कुर्यादिति पर्यवसितोऽर्थः, इत्याहुः।

---

(१) पितैवोपनयेत् पुत्रं तदभावे पितुः पिता।
तदभावे पितुर्भ्राता तदभावे तु सोदरः॥
इत्यत्र यथाचाराद् व्यवस्था।

स्वकुलाद् भिन्ने आचार्यत्वे यजुर्वेदीयानां यजुर्वेदीय एव। एवं सामवेदीयानां (छन्दोगानां) सामवेदीय एवेति न विस्मर्तव्यम्।

अथ सर्वकर्मोपयोगी शान्तिकलशस्थापनविधिः

तत्र प्रथमं भूमिपूजनम्—उदकेन भूमिमभ्युक्ष्य सजलकुशाक्षतैः—ओं कलशाधारशक्ते इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य—ओं कलशाधारशक्त्यै नमः। इति पञ्चोपचारैः सम्पूज्य भूमिं स्पृष्ट्वा—ओं भूरसि भूमिरस्यदितिरसि व्विश्वधाया व्विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं माहिꣳसीः॥ इति भूशुद्धिं कृत्वा – ओं मानस्तोके तनये मान आयुषिमानो गोषुमानो अश्वेषु रीरिषः। मानो व्वीरान् रुद्रभामिनो व्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे॥ इति गोमयेन भूमिमुपलिप्य– ओं धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा दीर्घामनुप्रसितिमायुषेधान् देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोसि॥ इति मन्त्रेण तदुपरि यवान् वीकीर्य—ओं आजिघ्रकलशं मह्या त्वा व्विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्ज्जानिवर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्मा व्विशताद्रयिः॥ इति मन्त्रेण यवोपरि कलशं स्थापयेत्। ततः––ओं व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनीस्थो व्वरुणस्यऽऋतसदन्यसि व्वरुणस्यऽऋतसदनमसि व्वरुणस्यऽऋतसदनमासीद॥ इति कलशे जलं दत्त्वा—ओं याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः। बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चत्वꣳहसः॥ इति कलशे नारिकेलं पूगीफलं वा दत्त्वा– ओं अम्बे अम्बिके अम्बालिके नमानयति कश्चन। ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥ इति कलशे आम्रपल्लवं दद्यात्। ततः-ओं काण्डात् काण्डात् ऽरोहन्ती परुषः परुषस्परि। एवा यो दूर्व्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च॥ इति कलशे दूर्वादलं प्रक्षिप्य—ओं प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा। इति कलशे ताम्बूलं दद्यात्। ततः—ओं हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

सदाधारपृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा व्त्रिधेम ।। इति कलशे हिरण्यादि द्रव्यं (पञ्च(१) रत्नं) प्रक्षिपेत् । ततः 'ओं धान्यमसि धिनुहि' इति पूर्वपृष्ठोक्तमन्त्रेण दीपे यवं दत्त्वा —ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा, सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा, अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा। सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा, ज्योतिः सूर्यः 'सूर्यो' ज्योतिः स्वाहा ।। इति कलशोपरि पूर्वाभिमुखं प्रज्वलितदीपं निदध्यात् । ततः प्राणप्रतिष्ठां कुर्यादनेन—ओं मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पति-र्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञँ समिमन्दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ । ओं शान्तिकलशाधिष्ठित-गणेशादिदेवता इह सुप्रतिष्ठिता भवन्तु । इति प्रतिष्ठाप्य —ओं शान्तिकलशाधिष्ठितगणेशादिदेवताभ्यो नमः । इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् ।

अथ सर्वकर्मोपयोगी संक्षिप्तहवनविधिः

कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्य साङ्गसायुधसवाहनसपरिवारश्री-अमुकदेवताप्रीतये अष्टोत्तरशतं (सहस्रं वा) आज्याहुतीरहं होष्यामि । इति सङ्कल्प्य, हस्तमात्रां भूमिं कुशैः परिसमूह्य तान् कुशान् ऐशान्यां परित्यज्य गोमयेन उपलिप्य तदुपरि प्रादेशमितां तिस्रो रेखा उल्लिख्य ताभ्यो मृदमुद्धृत्य ऐशान्यां क्षिपेत् । ततः कांस्यपात्रेण अग्नि-मुपसमाधाय स्रुवेण आज्याहुतीर्जुहुयात्—ओं भूः स्वाहा, इदं भूः । ओं भुवः स्वाहा, इदं भुवः । ओं स्वः स्वाहा, इदं स्वः । ततो वह्नौ स्वेष्टदेवतामावाह्य पञ्चोपचारैः सम्पूज्य मूलमन्त्रेण(२) अष्टोत्तरशतं सहस्रं वा आज्याहुतीर्जुहुयात् । ततः पुष्पचन्दनताम्बूलफलादिभिः पूर्णाहुतिं दद्यादनेन —ओं मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरऽमृत आजातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः स्वाहा । ततः स्रुवेण भस्मानीय त्र्यायुषं

---

(१) कनकं हीरकं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम् । पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।। पुनश्च तत्रैव-रत्नानां चाप्य-भावे तु स्वर्णं कर्षार्धमेव च । सुवर्णस्याप्यभावे तु घृतं देयं विचक्षणैः । (२) मूलमन्त्रं द्रष्टव्यं पृ० २०२ ।

कुर्यात् । तद्यथा–'ओं त्र्यायुषं जमदग्नेः' इति ललाटे । 'ओं कश्यपस्य त्र्यायुषम्' इति ग्रीवायाम् । 'ओं यद्देवेषु त्र्यायुषम्' इति दक्षिणबाहुमूले । 'ओं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्' इति हृदि ।

इति संक्षिप्तहवनविधिः

अथ सर्वकर्मोपयोगी शान्तिकलशाभिषेकविधिः

ततः शान्तिकलशमुत्थापयेदनेन—ओं उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्ते महे । उपप्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्रप्राशुर्भवासवाः ॥ इत्युत्थाय आम्रपल्लवेन कलशजलमादाय यजमानमभिषिञ्चेदनेन—

ओं सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः ॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते । आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा ॥
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः । ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः । बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः तुष्टिः कान्तिश्च मातरः ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मपत्न्यः समागताः । आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजाः ॥
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः । देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च । देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ॥
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च । औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ॥
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः । एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

अथ सर्वकर्मोपयोगी मातृकापूजाविधिः

कृतनित्यक्रियो व्रती पञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य कुड्ये फलके वा स्थापितरक्षिकासु गणपति-दुर्गासहितषोडशमातृर्मृन्मयीं श्रियं च पूजयेत् । तत्र संकल्पः । कुशत्रयतिलजलान्यादाय--ओं अद्यामुकमासीय-अमुकपक्षीय-अमुकतिथौ, अमुककर्मनिमित्तकश्रीगणपतिदुर्गाश्रीसहिताः षोडशमातृरहं पूजयिष्ये । ततः प्रथमरक्षिकामारभ्य क्रमेण—ओं गणपतिरसि । ओं दुर्गाऽसि । १. ओ गौर्यसि । २. ओं पद्मासि । ३. ओं शच्यसि । ४. ॐ मेघासि । ५. ॐ सावित्र्यसि । ६. ओं विजयासि । ७. ओं जयासि । ८. ओं देवसेनासि । ९. ओं स्वधासि । १०. ओं स्वाहासि । ११. ओं मातरः स्थ । १२. ओं लोकमातरः स्थ । १३. ॐ हृष्टिरसि । १४. ओं पुष्टिरसि । १५. ओं तुष्टिरसि । १६. ओमात्मकुलदेवतासि । ॐ श्रीरसि । इति प्रत्येकं स्पृष्ट्वा अक्षतान्यादाय—ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनो त्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु । विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ । ॐ गणपतिदुर्गाश्रीसहिताः षोडशमातर इह सुप्रतिष्ठिता भवन्तु । इति सर्वासामेकदैव प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् (छन्दोगानां प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्तु—ॐ वाङ्मनः प्राणोऽपानो व्यानश्चक्षुः श्रोत्रं शर्म वर्म भूतिः प्रतिष्ठा । इति) ततोऽक्षतान्यादाय प्रथमरक्षिकाक्रमेण—ॐ भूर्भुवःस्वः गणपते इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ॐ गणपतये नमः । इदमनुलेपनम्० । इदमक्षतम्० । इदं पुष्पम्० । एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयथाभागवासोनैवेद्यानि ॐ गणपतये नमः । ततः ॐ भूर्भुवस्वः दुर्गे इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, ॐ दुर्गायै नमः इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् । ततः ओं भूर्भुवःस्वः गौरि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य । ओं गौर्यै नमः इति पञ्चोपचारैः पूजयेत् । एवं ओं भू० पद्मे इहागच्छ० । ओं पद्मायै नमः । ओं भू० शचि इहागच्छ । ॐ शच्यै नमः । ओं भू० मेघे इहागच्छ० । ओं मेघायै नमः । ओं भू० सावित्रि इहागच्छ । ओं सावित्र्यै नमः ।

ओं भू० विजये इहागच्छ० । ओं विजयायै नमः । ओं भू० जये इहागच्छ० । ओं जयायै नमः । ओं भू० देवसेने इहागच्छ० । ओं देवसेनायै नमः । ओं भू० स्वधे इहागच्छ० । ओं स्वधायै नमः । ओं भू० स्वाहे इहागच्छ० । ओं स्वाहायै नमः । ओं भू० मातर इहागच्छत० । ओं मातृभ्यो नमः । ओं भू० लोकमातर इहागच्छत० । ओं लोकमातृभ्यो नमः । ओं भू० हृष्टे इहागच्छ० । ओं हृष्टयै नमः । ओं भू० पुष्टे इहागच्छ० । ओं पुष्टयै नमः । ओं भू० तुष्टे इहागच्छ० । ओं तुष्टयै नमः । ओं भू० आत्मकुलदेवते इहागच्छ० । ओं आत्मकुलदेवतायै नमः । ततः ओं भूर्भुवः स्वः श्रीरिहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ओं श्रियै नमः । एवं चन्दनसिन्दूरादिभिः पूजयेत् । ततो घृतेन उत्तरोत्तरक्रमेण भित्तौ तिस्रः पञ्च सप्त वा धारा देयास्ताश्च सवृन्तकदलीफलेन पूगीफलेन वा प्रतोच्छेदनेन प्रतिवारमुच्चारितेन—

ओं वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्त्वा कामधुक्षः ॥

इति प्रतिमन्त्रान्ते धारा देया । छन्दोगानां वसोर्धारामन्त्रस्तु—

ओं एतमुत्यं मदच्युतं शतधारं वृषभं दिवो दुहं विश्वावसूनि बिभ्रतम् । सहस्रधारं वृषभम्पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ऋतेन ऋतजातो विवावृधे राजा देव ऋतं बृहत् ।

(अन्यत् सर्वं समानम्) ततः ओं गणपतिदुर्गासहिताः षोडशमातरः पूजिताः स्थ क्षमध्वमित्येव दैव विसर्जयेत । ओं श्रीर्मयि रमस्वेति श्रियमपि विसर्जयेत् । ततो दक्षिणा । कुशत्रयतिलजलान्यादाय—'ओमद्य कृतैतद्गणपतिदुर्गाश्रीसहितषोडशमातृपूजनकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् । इति मातृकापूजाविधिः ।

अथ कुलदेवतास्थापनविधिः

तत्र गृहमुख्यजनः कृतपूर्वदिनैकभुक्तादिसंयमः प्रातः स्नात्वा नित्यकर्म समाप्य शुद्धनवीनवस्त्रमुत्तरीयवस्त्रं च परिधाय, पूजोपकरणञ्च सङ्गृह्य स्वासने उपविश्य सप्तमृत्तिकाभिः(१)केवलगङ्गामृत्तिकाभिर्वा देवतासंज्ञकाः पिण्डिका विधेया. । तासु पञ्चरत्नानि यथाविभवद्रव्याणि वा सम्मिश्रयेत । यदि पूर्वस्थापितदेवीपिण्डिकाऽवशिष्टमृत्तिका रक्षिता भवेयुस्तदा ता अपि तासु क्रमेण प्रक्षिप्य पुनर्वर्तुला विधेयाः । ततो गृहाग्निकोणे समचतुरस्रां सपादहस्तसम्मितां वा यथास्थानानुसारिणों वेदीं चतुरङ्गुलोच्छ्रितां विधाय तां गौरमृत्तिकायुतगोमयेनोपलिप्य गायत्रीं पठन् पंचगव्येन संशोध्य 'ओं सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ।' इति मंत्रं पठन् गङ्गाजलेन वेदों सिञ्चेत । तत आमतण्डुलपिष्टकेन सिन्दूरहरिद्रायुक्तेन संस्थाप्य देवतासंख्यकं स्वस्तिकादिचित्रं निर्माय कुशत्रयतिलजलान्यादाय सङ्कल्पं कुर्यात्—ओं अद्यामुके मास्यामुके पक्षेऽमुकतिथावमुकगोत्रस्य सपरिवारस्य मम श्री मुकशर्मणः उपस्थितशरीराविरोधेन सकलसञ्चितदुरितसमूलक्षयपूर्वकघनजनपूर्णत्वनित्याभ्युदयकल्याण-चतुर्वर्गसुखप्राप्तिकामनया साङ्गश्रो अमुककुलदेवतास्थापनमहं करिष्ये । ततो गणेशं पञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य, तद्वेदीलिखितेषु चित्रेषु यथाचारं पिण्डिकां संरक्ष्य—ओं मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य वृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञँ समिमं दधातु। विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ। इति मन्त्रेण पिण्डकां स्पृशन् प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । सामवेदिनः स्थापकस्य कृते—'ओं वाङ्मनः प्राणव्यानश्चक्षुः श्रोत्रं शर्म वर्म भूतिः प्रतिष्ठा,

---

(१) अश्वस्थानाद् गजस्थानाद् वल्मीकात् संगमाद्ध्रदात् । राजद्वाराच्च गोष्ठाच्च मृदमानीय निःक्षिपेत् ॥

इति प्राणप्रतिष्ठामन्त्रो विज्ञेयः। ततः 'ओं आँ ह्लों क्रीं यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ हौं हँ सः सोऽहम्' श्री अमुकदेवतायाः प्राणा इह प्राणाः। इति पिण्डिकां स्पृशेत्। पुनस्तेनैव मन्त्रेण 'अमुकदेवताया जीव इह स्थितः।' पुनस्तेनैव मन्त्रेण 'अमुकदेवतायाः सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि'। पुनस्तेनैव मन्त्रेण 'अमुकदेवताया वाङ् मनस्त्वक्चक्षुश्रोतघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।' इति पठन् स्पृशन् लेलिहानमुद्रया प्रतिष्ठां कृत्वा ध्यात्वा यथोपचारेण पूजयेत्। तद्यथाः—ओं एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं अमुककुलदेवतायै नमः। इदं रक्तचन्दनम्, इदं सिन्दूरम्, इदं रक्तवस्त्रम्, एतानि पुष्पाणि, एष धूपः, एष दीपः, ओं अमुककुलदेवतायै नमः। एतानि नानाविधमोदकयुक्तपायसपोलिकादिनैवेद्यानि, ओं कुलदेवतायै नमः। एष पुष्पाञ्जलिः ओं कुलदेवतायै नमः। एवं सकलाः देवताः पृथक् पृथक् सम्पूज्य तत्र वामभागे शीतला विषहरा च संस्थाप्या पूज्या च। ततः पीठासन्नवर्त्तिकुड्ये नवीनाञ्चलबन्धनम्। अञ्चलाधः कुलदेवतापिण्डिकाया उपरि तत्संख्यकाः सिन्दूरेण रेखा अङ्क्याः। ततश्चामरवीजनम्। तन्मन्त्रस्तु—ओं यन्मया भक्तियोगेन पत्रं पुष्पं फलं जलम्। निवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणानुकम्पया॥ मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि। यत् पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे॥ ततो दक्षिणा। कुशात्रयतिलजलान्यादाय—ओमद्य कृतैतत्साङ्गकुलदेवतास्थापनकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। ततः कुमारिकाः सधवास्त्रियः, बालकाः, ब्राह्मणाश्च भोजनीयाः। ततः प्रतिदिनं पूजनं विधेयम्। पुरुषजनानुपस्थितौ, उपस्थितेऽपि अन्यकार्यासक्ते स्त्री अपि तां पूजयेत्। अशौचे परगोत्रीयजनेन तां पूजयेत्। तदभावेऽपूजितदिनसंख्यकां विशेषपूजां तदन्ते कुर्यात्।

इति कुलदेवतास्थापनविधिः

अथ छागबलिदानविधिः

तत्र प्रथमं पञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य प्रधानदेवपूजां विधाय—स्वयमुदङ्मुखश्छागं पूर्वमुखं सिन्दूरादिनालंकृत्य पाद्यादिभिः सम्पूज्य मन्त्रं पठेत्—ओं छाग त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः। प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम्॥ इति प्रणम्य दक्षिणकर्णं धृत्वा—ओं यज्ञार्थे पशवः सृष्टा यज्ञार्थे पशुघातनम्। अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥ शृङ्गे पृष्ठे ललाटे च मेढ्रे च कर्णपादयोः। मुञ्चन्तु सर्वगात्राणि छागस्य पशुदेवताः॥ इति पठित्वा कर्णमत्यजन्नेव पशुगायत्रीं जपेत्—ओं पशुपाशाय विद्महे शिरश्छेदाय धीमहि, तन्नश्छागः प्रचोदयात्॥ इति। तत आचारात् ओं ऐं ह्रीं श्रीं इति बीजैर्जलपुष्पाक्षतं बलिमूर्ध्नि क्षिपेत्। ततः कुशाक्षतजलान्यादाय—ओं अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणोऽमुकदेवताप्रीतिकामः (पूर्वाङ्गीकृतं) अमुं छागपशुं वह्निदेवतं श्री अमुकदेवतायै (अमुकदेवताप्रीतये वा) तुभ्यं घातयितुमहं समुत्सृज्ये। इति सङ्कल्प्य खड्गपूजां कुर्यात्। तद्यथा—ओ खड्गाय नमः। इति खड्गं पाद्यादिभिः सम्पूज्य—ओं असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः। श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल नमोऽस्तु ते॥ इति खड्गवन्दनं कृत्वा हस्ते गृहीत्वा छागस्कन्धोपरि वारत्रयं छिन्धीत्युच्चार्य्य सम्प्रदायानुसारेण परीक्षानन्तरं तं खड्गमन्यस्मिन् ब्राह्मणदक्षिणकरे दद्यात्। स च ब्राह्मणः खड्गं गृहीत्वा देवं प्रणम्य परीक्षितं छागं छिन्द्यात्। अथ देवपूजकः स्वयं तच्छिन्नं शिरः सत्वरमुत्थाप्य गृहीत्वा देवमुखस्पर्शनं विधाय फलगन्धपुष्पधूपदीपसहितं तच्छिरो भक्त्या देवाय दद्यात्। ततो दक्षिणामुत्सृजेत्तथा हि—कुशादीन्यादाय ओं अद्य कृतैतच्छागबलिदानकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे॥ ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम्॥

इति छागबलिदानविधिः।

अथ सूर्यपूजाविधिः

सौरधर्मे—अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं विमले ताम्रभाजने। पूर्वपत्रे लिखेत् सूर्यमाग्नेय्यां तु रविं न्यसेत् ॥
दक्षिणस्यां विवस्वन्तं नैर्ऋत्यां तु भगं न्यसेत् ॥ वारुण्यां वरुणं विद्याद् वायव्यां मित्रमेव च ॥
मध्ये तु भास्करं न्यस्य क्रमेणैवं समर्चयेत् ।

अथ पूजाप्रयोगः—कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य पूर्वाभिमुख उत्थाय—जलपूर्णं ताम्रपात्रं करयोः कृत्वा—इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव । निर्विघ्नं सिद्धिमायातु भास्करस्य प्रसादतः ॥ इति सूर्याय अर्घ्यं दद्यात् । ततः पञ्चदेवतां विष्णुं च सम्पूज्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुक- गोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः शारीरिकसमस्तरोगनिरसनपूर्वकसकलपुत्रपौत्रादिचिरजीवित्वसकलसुखसौभाग्यगोधनधान्यादिसमृद्धिकामनया श्रीभास्करदेवपूजनमहं करिष्ये । ततः ताम्रपात्रस्थलिखितमूर्तिमण्डलं संस्थाप्य तदुपरि—ओं मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञ ँ समिमन्दधातु । विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ । ओं भूर्भुवः स्वः श्रीभास्करदेव साङ्गसपरिवार इहागच्छ इह तिष्ठ इति स्थापयेत् । ततः ध्यानम्—ओं तेजोरूपं सहस्रांशुं मत्ताश्वरथवाहनम् । द्विभुजं वरदं पद्मलाञ्छनं सर्वकामदम् ॥ जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम् । तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥ ओं नमो भगवते आदित्याय । आवाहनम्—ओं आगच्छ भगवन् सूर्य मण्डलेऽस्मिन् स्थिरो भव । यावत् पूजा समाप्येत तावत् त्वं सन्निधौ भव ॥ ओं नमो० । आसनम्—ओं हेमासनं महादिव्यं नानारत्नविभूषितम् । मद्दत्तं गृह्यतां देव दिवाकर नमोऽस्तु ते ॥ ओं नमो० । पाद्यम्—ओं गङ्गाजलं समानीतं परमं पावनं महत् । पाद्यं गृहाण देवेश धामरूप नमोऽस्तु ते ॥ ओं नमो० । अर्घ्यम्—ओं भो भो सूर्य महद्भूत ब्रह्मविष्णुशिवात्मक । अर्घ्यं भक्त्या मया दत्तं

गृहाण परमेश्वर ॥ ओं नमो० । आचमनीयम्—ओं गङ्गादितीर्थजं तोयं जातोष्पुपैः सुवासितम् । ताम्रपात्रे स्थितं दिव्यं गृहाणाचमनीयकम् ॥ ओं नमो० । मलापकर्षस्नानम्—ओं जाह्नवीजलमत्यन्तं पवित्रकरणं परम् । स्नानार्थं तु मयानीतं स्नानं करु जगत्पते ॥ ओं नमो० । पंचामृतस्नानम्—ओं पयोदधिघृतैश्चैव शर्करामधुसंयुतैः । कृतं मया च स्नपनं भास्करः प्रीयतां मम ॥ ओं नमो० । शुद्धोदकगन्धोदकस्नानम्—ओं गङ्गा गोदावरी चैव यमुना च सरस्वती ॥ नर्मदा सिन्धुकावेरी ताभ्यः स्नानार्थमाहृतम् ॥ तोयमेतत् सुखस्पर्शं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ ओं नमो० । मूलेन स्नानाङ्गमाचनीयम् । वस्त्रम्—ओं रक्तवस्त्रयुगं देव सूक्ष्मतन्तुविनिर्मितम् । शुद्धं चैव मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥ ओं नमो० । मूलेन वस्त्राङ्गमाचमनीयम् । यज्ञोपवीतम्—ओं नमः कमलहस्ताय विश्वरूपाय ते नमः । उपवीतं मया दत्तं तद् गृहाण दिवाकर । ओं नमो० । मूलेन यज्ञोपवीताङ्गमाचमनीयम् । गन्धः—ओं कुंकुमागुरुकस्तूरीसुगन्धैश्चन्दनादिभिः । रक्तचन्दनसंयुक्तं गन्धं गृह्ण प्रभाकर ॥ ओं नमो० । अक्षताः—ओं रचक्तन्दनसंमिश्रा अक्षताश्च सुशोभनाः । मया दत्तांस्तान् गृहाण वरदो भव भास्कर ॥ ओं नमो० । पुष्पाणि—ओं जपाकदम्बकुसुमरक्तोत्पलयुतानि च । गृहाण देव पुष्पाणि सर्वकामप्रदो भव ॥ ओं नमो० । अथ गन्धाक्षतपुष्पैः पूर्वादिदलेषु सूर्यादीन् पृथङ्नामभिः पूजयेत्—

ओं सूर्याय नमः १ । ओं रवये० २ । ओं विवस्वते० ३ । ओं भगाय० ४ । ओं वरुणाय० ५ । ओं मित्राय० ६ । ओं आदित्याय० ७ । ओं विष्णवे० ८ । मध्ये–ओं भास्कराय० ९ । ओं अरुणमाठरपिङ्गलदण्डादिसर्वपरिवारदेवताभ्यो नमः १० । सर्वावरणसहिताय ओं नमो भगवते आदित्याय ११ ।

अथाङ्गपूजा—आर्द्राक्षतान् प्रगृह्य—ओं मित्राय नमः पादौ पूजयामि । ओं रवये नमः जंघे० । ओं सूर्याय नमः जानुनी० । ओं खगाय नमः ऊरू० । ओं पूष्णे नमः गुह्यं० । ओं हिरण्यगर्भाय नमः कटिं० । ओं मरीचये नमः नाभिं० । ओं आदित्याय नमः जठरं० । ओं सवित्रे नमः कण्ठं० । ओं अर्यम्णे नमः स्कन्धौ० । ओं प्रभाकराय नमः

हस्तौ० । ओं अहस्कराय नमः मुखं० । ओं ब्रध्नाय नमः नासिकां० । ओं जगदेकचक्षुषे नमः नेत्रे० । ओं सवित्रे नमः कर्णौ० । ओं त्रिगुणात्मधारिणे नमः ललाटं० । ओं विरिञ्चिनारायणशंकरात्मने नमः शिरः० । ओं तिमिरनाशिने नमः सर्वाङ्गं० ।

ततो धूपः—ओं दशाङ्गगुग्गुलोद्भूतः कालागुरुसमन्वितः । आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ ओं नमो० । दीपः—ओं कार्पासवर्तिसंयुक्तं गोघृतेन समन्वितम् । दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह ॥ ओं नमो० । नैवेद्यम्—ओं पायसं घृतसंयुक्तं नानापक्वान्नसंयुतम् । नैवेद्यं च मया दत्तं गृहाण सुरमत्तम ॥ ओं नमो० । आचमनीयम्—ओं कर्पूरवासितं तोयं मन्दाकिन्याः समाहृतम् । आचम्यतां जगन्नाथ मया दत्तं हि भक्तितः ॥ ओं नमो० । ततः क्षणं ध्यात्वा, "ओं भास्कराय नमः" इति मूलमन्त्रेण अष्टोतरशतं दशवारं वा जपं विधाय—ओं गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ इति समर्पयेत् । करोद्वर्तनार्थे गन्धः—ओं मलयाचलसंभूतं कर्पूरेण समन्वितम् । करोद्वर्तनकं चारु गृह्यतां जगतः पते ॥ ओं नमो० । फलानि—ओं फलान्यमृतकल्पानि स्थापितानि पुरस्तव । तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ ओं नमो० । ताम्बूलम्—ओं एलालवङ्गकर्पूरखादिरैश्च सपूगकैः । नागवल्लीदलैर्युक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ ओं नमो० । दक्षिणा—ओं दक्षिणा काञ्चनी देव स्थापिता पुरतस्तव । गृहाण सुमुखो भूत्वा प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥ ओं नमो० । नीराजनम्—ओं पञ्चवर्तिसमायुक्तं सर्वमंगलदायकम् । नीराजनं गृहाणेदं सर्वसौख्यकरो भव ॥ ओं नमो० । विशेषार्घ्यः—ततः जानुभ्यामवनीं गत्वा—नमः सहस्रकिरण सर्वव्याधिविनाशन । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं संज्ञया सहितो रवे ॥ ओं नमो० । इति त्रिर्दद्यात् । सप्तवारं प्रदक्षिणाः—यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण ! पदे पदे ॥ नमस्कारः–ओं नमः पङ्कजहस्ताय नमः पङ्कजमालिने ।

नमः पङ्जनेत्राय भास्कराय नमो नमः ॥ नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे। त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरिञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥ भानो भास्कर मार्तण्ड चण्डरश्मे दिवाकर। आरोग्यमायुर्विजयं विद्यां देहि नमोऽस्तु ते ॥ नमः सर्वहितार्थाय जगदाधारहेतवे। साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रयत्नेन मया कृतः ॥ ततो दक्षिणा--रक्तवस्त्रयुगहिरण्यसहितं तण्डुलपूरितपात्रमादाय--ओं अद्य कृतैतत्—श्रीभास्करपूजायाः साद्गुण्यार्थं साङ्गफलप्राप्तये श्रीभास्करदेवप्रीतये इदं वायनं ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृज्ये। ततः प्रार्थना—ओं यस्योदये स्याज्जगतः प्रबोधो यः कर्मसाक्षी भुवनस्य गोप्ता। कुष्ठादिकव्याधिविनाशको यः। स भास्करो मे दुरितं निहन्यात् ॥ ततः— ओं मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यद्भवेत्। तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्दिवाकर। इति पठित्वा—ओं यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्। इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ ओं साङ्गसपरिवार भगवन् श्रीभास्कर पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ। इति विसर्जयेत्। ततः सूर्यं प्रणम्य लवणदुग्धोष्णोदकादिवर्ज्यवर्जितं हविष्यमेकवार दिवैवाश्नीयात्। इति सूर्यपूजाप्रयोगः।

अथ स्कन्दपुराणोक्तसूर्यसप्ततिनामार्घ्यमाहात्म्यम्

हंसो भानुः सहस्रांशुस्तपनस्तापनो रविः। विकर्तनो विवस्वाँश्च विश्वकर्मा विभावसुः ॥
विश्वरूपो विश्वकर्ता मार्तण्डो मिहिरोंऽशुमान्। आदित्यश्चोष्णगुः सूर्योऽर्यमा ब्रध्नो दिवाकरः ॥
द्वादशात्मा सप्तहयो भास्करोऽहस्करः खगः। सूरः प्रभाकरः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ॥
त्रिलोकेशो लोकसाक्षी तमोऽरिः शाश्वतः शुचिः। गभस्तिहस्तस्तीव्रांशुस्तरणिः समहोरणिः ॥
द्युमणिर्हरिदश्वोऽर्को भानुमान् भयनाशनः। छन्दोऽश्वा वेदवेद्यश्च भास्वान् पूषा वृषाकपिः ॥
एकचक्ररथो मित्रो मन्देहारिस्तमिस्रहा। दैत्यहा पापहर्ता च घर्मो घर्मप्रकाशकः ॥

हेलिकश्चित्रभानुश्च कलिघ्नस्तार्क्ष्यवाहनः । दिक्पतिः पद्मिनीनाथः कुशेशयकरो हरिः ॥
घर्मरश्मिर्दुर्निरीक्ष्यश्चण्डांशुः कश्यपात्मजः । एभिः सप्ततिसंख्याकैः पुण्यैः सूर्यस्य नामभिः ॥
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैर्नमस्कारसमन्वितैः । प्रत्येकमुच्चरन्नाम दृष्ट्वा दृष्ट्वा दिवाकरम् ॥
विगृह्य पाणियुग्मेन ताम्रपात्रं सुनिर्मलम् । जानुभ्यामवनिङ्गत्वा परिपूर्वं जलेन च ॥
करवीरादिकुसुमैः रक्तचन्दनमिश्रितैः । दूर्वाङ्कुरैरक्षतैश्च निःक्षिप्तैः पात्रमध्यतः ॥
दद्यादर्घ्यमनर्घ्याय सवित्रे ध्यानपूर्वकम् । उपमौलि समानीय तत्पात्रं नान्यदिङ्मनाः ॥
प्रतिमन्त्रन्नमस्कुर्यादुदयास्तमये रविम् । अनया नामसप्तत्या महामन्त्ररहस्यया ॥
एवं कुर्वन्नरो जातु न दरिद्रो न दुःखभाक् । व्याधिभिर्मुच्यते घोरैरपि जन्मान्तरार्जितैः ॥
विनौषधैर्विना वैद्यैर्विना पथ्यपरिग्रहैः । कालेन निधनं प्रातः सूर्यलोके महीयते ॥

अथ स्कन्धपुराणोक्तसूर्यसप्ततिनामार्घ्यदानविधिः

प्रातःस्नानादि कृत्वा बहिरेव शुचिस्थले गोमयेनोपलिप्य रक्तचन्दनमिश्रिताक्षतदूर्वांकुरकरवोरादिकुसुमान्यादाय कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अद्यामुके मास्यमुके पक्षेऽमुकतिथावमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः उपस्थितशरीराविरोधेन ऐहिकजन्मान्तरार्जितपथ्यपरिग्रहाद्यौषधरहितसकलरुग्झटितिप्रशमनपूर्वकदारिद्र्यानुत्पत्तिसकलदुःखाभावान्तःकालिकसूर्यलोकमहितत्वकामो हंसादिसप्ततिनामभिः सूर्याय सप्ततिसंख्यकार्घ्यदानमहं करिष्ये। इति संकल्प्य जानुभ्यामवनिं गत्वा ताम्रपात्रं जलेन प्रपूर्य रक्तचन्दनाक्ताक्षतदूर्वाकरवोरादिपुष्पं दत्त्वा नम्रीभूय—ओं एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते । अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥ एषोर्घ्यः ओं हंसाय नमः ॥ १ ॥ ओं भानवे नमः ॥ २ ॥ ओं सहस्रांशवे नमः ॥ ३ ॥ ओं तपनाय नमः ॥ ४ ॥ ओं तापनाय नमः

॥ ५ ॥ ओं रवये नमः ॥ ६ ॥ ओं विकर्तनाय नमः ॥ ७ ॥ ओं विवस्वते नमः ॥ ८ ॥ ओं विश्वकर्मणे नमः ॥ ९ ॥ ओं विभावसवे नमः ॥ १० ॥ ओं विश्वरूपाय नमः ॥ ११ ॥ ओं विश्वकर्त्रे नमः ॥ १२ ॥ ओं मार्तण्डाय नमः ॥ १३ ॥ ओं मिहिराय नमः ॥ १४ ॥ ओं अंशुमते नमः । १५ ॥ ओं आदित्याय नमः ॥ १६ ॥ ओं उष्णगवे नमः ॥ १७ ॥ ओं सूर्याय नमः ॥ १८ ॥ ओं अर्यम्णे नमः ॥ १९ । ओं ब्रध्नाय नमः ॥ २० ॥ ओं दिवाकराय नमः ॥ २१ ॥ ओं द्वादशात्मने नमः ॥ २२ ॥ ओं सप्तहयाय नमः ॥ २३ ॥ ओं भास्कराय नमः ॥ २४ ॥ ओं अहस्कराय नमः ॥ २५ ॥ ओ खगाय नमः ॥ २६ ॥ ओं सूराय नमः ॥ २७ ॥ ओं प्रभाकराय नमः ॥ २८ ॥ ओं श्रीमते नमः ॥ २९ ॥ ओं लोकचक्षुषे नमः ॥ ३० ॥ ओं ग्रहेश्वराय नमः । ३१ ॥ ओं त्रिलोकेशाय नमः ॥ ३२ ॥ ओं लोकसाक्षिणे नमः ॥ ३३ ॥ ओं तमोऽरये नमः ॥ ३४ ॥ ओं शाश्वताय नमः ॥ ३५ ॥ ओं शुचये नमः ॥ ३६ ॥ ओं गभस्तिहस्ताय नमः ॥ ३७ ॥ ओं तीव्रांशवे नमः ॥ ३८ ॥ ओं तरणये नमः ॥ ३९ ॥ ओं समहोरणये नमः ॥ ४० ॥ ओं द्युमणये नमः ॥ ४१ ॥ ओं हरिदश्वाय नमः ॥ ४२ ॥ ओं अर्काय नमः ॥ ४३ ॥ ओं भानुमते नमः ॥ ४४ ॥ ओं भयनाशनाय नमः ॥ ४५ ॥ ओं छन्दोश्वाय नमः ॥ ४६ ॥ ओं वेदवेद्याय नमः ॥ ४७ ॥ ओं भास्वते नमः ॥ ४८ ॥ ओं पूष्णे नमः ॥ ४९ । ओं वृषाकपये नमः ॥ ५० ॥ ओं एकचक्ररथाय नमः ॥ ५१ ॥ ओं मित्राय नमः ॥ ५२ ॥ ओं मन्देहारये नमः ॥ ५३ ॥ ओं तमिस्रघ्ने नमः । ५४ ओं दैत्यघ्ने नमः ॥ ५५ ॥ ओं पापहर्त्रे नमः ॥ ५६ ॥ ओं घर्माय नमः ॥ ५७ ॥ ओं घर्मप्रकाशकाय नमः ॥ ५८ ॥ ओं हेलिकाय नमः ॥ ५९ ॥ ओं चित्रभानवे नमः ॥ ६० ॥ ओं कलिघ्नाय नमः । ६१ ॥ ओं तार्क्ष्यवाहनाय नमः ॥ ६२ ॥ ओं दिक्पतये नमः ॥ ६३ ॥ ओं पद्मिनीनाथाय नमः ॥ ६४ ॥ ओं कुशेशयकराय नमः ॥ ६५ ॥ ओं हरये नमः ॥ ६६ ॥ ओं घर्मरश्मये नमः ॥ ६७ । ओं दुर्निरीक्ष्याय नमः ॥ ६८ ॥ ओं चण्डांशवे नमः ॥ ६९ ॥ ओं कश्यपात्मजाय नमः ॥ ७० ॥ ततः जपाकुसुमेत्यादि श्लोकं पठित्वा सूर्यं प्रणमेत् । इति।

अथ श्रीसत्यनारायणपूजाविधिः

तत्र (१) कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य शुद्धासने उदङ्मुख उपविश्य कुशहस्तः—'ओं अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥' इति देयद्रव्याण्यात्मानं चाभिषिच्य प्रथमं गणपत्यादिपञ्चदेवता विष्णुं च पूजयेत्।

पञ्चदेवतापूजा—अक्षतान्यादाय—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीगणपत्यादिपञ्चदेवताः इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं श्रीगणपत्यादिपञ्चदेवताभ्यो नमः। इदमनुलेपनम्०। इदमक्षतम्०। एतानि पुष्पाणि०। एतानि गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूलयथाभागनानाविधनैवेद्यानि०। एष पुष्पाञ्जलिः ओं गणपत्यादिपञ्चदेवताभ्यो नमः।

विष्णु (२) पूजा—यवतिलजलान्यादाय—ओं भूर्भुवः स्वः भगवन् श्रीविष्णो इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य गन्धादिपञ्चोपचारैः पूजयेत्।

---

(१) 'सत्यनारायणं देवं यजेत्तुष्टो निशामुखे।' इति कथान्तर्गतपद्यमादाय पूजेयं प्रदोषकालिकीति शिष्टाः। ये तु 'देवकार्याणि पूर्वाह्णे मनुष्याणान्तु मध्यमे। पितॄणामपराह्णे तु कार्याण्येतानि यत्नतः ॥' इति दक्षवचनात् पूर्वाह्ण एव सत्यदेवपूजा विहितेति तन्न, 'प्रातर्मध्याह्नसायाह्नमहस्त्रिष्वेकतः क्रमात्। प्रातर्वृद्धिकृतं ज्ञेयं मध्याह्ने। कामिकं तथा सायाह्ने शान्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तथैव च ॥' इतीश्वरसंहितावचनस्य जागरूकत्वात्। एवं 'रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद् देवकार्यं सदैव हि' इति न विस्मर्तव्यम्।

(२) अत्र विष्णुपूजाऽपि कार्येत्यत्राह ब्रह्मवैवर्ते—'गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। सम्पूज्य देवषट्कं तु सोऽधिकारी च पूजने। विष्णुपुराणे–'न बिल्वैरर्चयेत् सूर्यं न तुलस्या गणाधिपम्। नाक्षतैः पूजयेद् विष्णुं न शिवं शंखवारिणा ॥

॥ ५ ॥ ओं रवये नमः ॥ ६ ॥ ओं विकर्तनाय नमः ॥ ७ ॥ ओं विवस्वते नमः ॥ ८ ॥ ओं विश्वकर्मणे नमः ॥ ९ ॥ ओं विभावसवे नमः ॥ १० ॥ ओं विश्वरूपाय नमः ॥ ११ ॥ ओं विश्वकर्त्रे नमः ॥ १२ ॥ ओं मार्तण्डाय नमः ॥ १३ ॥ ओं मिहिराय नमः ॥ १४ ॥ ओं अंशुमते नमः । १५ ॥ ओं आदित्याय नमः ॥ १६ ॥ ओं उष्णगवे नमः ॥ १७ ॥ ओं सूर्याय नमः ॥ १८ ॥ ओं अर्यम्णे नमः ॥ १९ । ओं ब्रध्नाय नमः ॥ २० ॥ ओं दिवाकराय नमः ॥ २१ ॥ ओं द्वादशात्मने नमः ॥ २२ ॥ ओं सप्तहयाय नमः ॥ २३ ॥ ओं भास्कराय नमः ॥ २४ ॥ ओं अहस्कराय नमः ॥ २५ ॥ ओ खगाय नमः ॥ २६ ॥ ओं सूराय नमः ॥ २७ ॥ ओं प्रभाकराय नमः ॥ २८ ॥ ओं श्रीमते नमः ॥ २९ ॥ ओं लोकचक्षुषे नमः ॥ ३० ॥ ओं ग्रहेश्वराय नमः । ३१ ॥ ओं त्रिलोकेशाय नमः ॥ ३२ ॥ ओं लोकसाक्षिणे नमः ॥ ३३ ॥ ओं तमोऽरये नमः ॥ ३४ ॥ ओं शाश्वताय नमः ॥ ३५ ॥ ओं शुचये नमः ॥ ३६ ॥ ओं गभस्तिहस्ताय नमः ॥ ३७ ॥ ओं तीव्रांशवे नमः ॥ ३८ ॥ ओं तरणये नमः ॥ ३९ ॥ ओं समहोरणये नमः ॥ ४० ॥ ओं द्युमणये नमः ॥ ४१ ॥ ओं हरिदश्वाय नमः ॥ ४२ ॥ ओं अर्काय नमः ॥ ४३ ॥ ओं भानुमते नमः ॥ ४४ ॥ ओं भयनाशनाय नमः ॥ ४५ ॥ ओं छन्दोश्वाय नमः ॥ ४६ ॥ ओं वेदवेद्याय नमः ॥ ४७ ॥ ओं भास्वते नमः ॥ ४८ ॥ ओं पूष्णे नमः ॥ ४९ । ओं वृषाकपये नमः ॥ ५० ॥ ओं एकचक्ररथाय नमः ॥ ५१ ॥ ओं मित्राय नमः ॥ ५२ ॥ ओं मन्देहारये नमः ॥ ५३ ॥ ओं तमिस्रघ्ने नमः ॥ ५४ ओं दैत्यघ्ने नमः ॥ ५५ ॥ ओं पापहर्त्रे नमः ॥ ५६ ॥ ओं घर्माय नमः ॥ ५७ ॥ ओं घर्मप्रकाशकाय नमः ॥ ५८ ॥ ओं हेलिकाय नमः ॥ ५९ ॥ ओं चित्रभानवे नमः ॥ ६० ॥ ओं कलिघ्नाय नमः । ६१ ॥ ओं तार्क्ष्यवाहनाय नमः ॥ ६२ ॥ ओं दिक्पतये नमः ॥ ६३ ॥ ओं पद्मिनीनाथाय नमः ॥ ६४ ॥ ओं कुशेशयकराय नमः ॥ ६५ ॥ ओं हरये नमः ॥ ६६ ॥ ओं घर्मरश्मये नमः ॥ ६७ । ओं दुर्निरीक्ष्याय नमः ॥ ६८ ॥ ओं चण्डांशवे नमः ॥ ६९ ॥ ओं कश्यपात्मजाय नमः ॥ ७० ॥ ततः जपाकुसुमेत्यादि श्लोकं पठित्वा सूर्यं प्रणमेत् । इति ।

अथ श्रीसत्यनारायणपूजाविधिः

तत्र (१) कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य शुद्धासने उदङ्मुख उपविश्य कुशहस्तः—'ओं अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥' इति देयद्रव्याण्यात्मानं चाभिषिच्य प्रथमं गणपत्यादिपञ्चदेवता विष्णुं च पूजयेत्।

पञ्चदेवतापूजा—अक्षतान्यादाय—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीगणपत्यादिपञ्चदेवताः इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं श्रीगणपत्यादिपञ्चदेवताभ्यो नमः। इदमनुलेपनम्०। इदमक्षतम्०। एतानि पुष्पाणि०। एतानि गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूलयथाभागनानाविधनैवेद्यानि०। एष पुष्पाञ्जलिः ओं गणपत्यादिपञ्चदेवताभ्यो नमः।

विष्णु (२) पूजा—यवतिलजलान्यादाय—ओं भूर्भुवः स्वः भगवन् श्रीविष्णो इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य गन्धादिपञ्चोपचारैः पूजयेत्।

---

(१) 'सत्यनारायणं देवं यजेत्तुष्टो निशामुखे।' इति कथान्तर्गतपद्यमादाय पूजेयं प्रदोषकालिकीति शिष्टाः। ये तु 'देवकार्याणि पूर्वाह्णे मनुष्याणान्तु मध्यमे। पितॄणामपराह्णे तु कार्याण्येतानि यत्नतः ॥' इति दक्षवचनात् पूर्वाह्ण एव सत्यदेवपूजा विहितेति तन्न, 'प्रातर्मध्याह्नसायाह्नमहस्त्रिष्वेकतः क्रमात्। प्रातर्वृद्धिकृतं ज्ञेयं मध्याह्ने। कामिकं तथा सायाह्ने शान्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तथैव च ॥' इतीश्वरसंहितावचनस्य जागरूकत्वात्। एवं 'रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद् देवकार्यं सदैव हि' इति न विस्मर्तव्यम्।

(२) अत्र विष्णुपूजाऽपि कार्येत्यत्राह ब्रह्मवैवर्ते—'गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्। सम्पूज्य देवषट्कं तु सोऽधिकारी च पूजने। विष्णुपुराणे—'न बिल्वैरर्चयेत् सूर्यं न तुलस्या गणाधिपम्। नाक्षतैः पूजयेद् विष्णुं न शिवं शंखवारिणा ॥

अथ संकल्पः—कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अस्यां रात्रौ अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य मम श्री अमुकशर्मणः सपरिवारस्य सकलदुरितोपसर्गापच्छान्तिपूर्वकसकलमनोरथसिद्ध्यर्थं यथाशक्ति गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूल-यज्ञोपवीत-वस्त्राऽपुङ्गनैवेद्यादिभिः अङ्गदेवतापूजापूर्वकं—(पूर्वाङ्गीकृतं)—श्रीसत्यनारायणपूजनं तत्कथाश्रवणं चाऽहं करिष्ये(१)।

अथ अङ्गदेवतापूजनम्

१—लक्ष्मीपूजा—अक्षतान्यादाय—ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीलक्ष्मि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ॐ श्रीलक्ष्म्यै नमः। इदमनुलेपनम्०। इदं सिन्दूराभरणम्०। इदमक्षतम्०। इदं (२) पुष्पम्०। इदं बिल्वपत्रम्। एतानि गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूलयथाभागनानाविध-नैवेद्यानि०। इदमाचमनीयम्०। एष पुष्पाञ्जलिः ॐ श्री लक्ष्म्यै नमः।

२—सरस्वतीपूजा—अक्षतान्यादाय—ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीसरस्वति इच्छागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ॐ श्रीसरस्वत्यै नमः। एवं पूर्ववत् गन्धादिभिः पञ्चोपचारैः पूजयेत्।

---

(१) अन्योद्देश्यकपूजायां संकल्पवाक्ये तन्नामग्रहणं गोत्रग्रहणं 'करिष्ये' इत्यस्य स्थाने 'करिष्यामि' इति चोहनीयम्। एवं पूर्वाङ्गीकृते (कबुला) सत्येव 'पूर्वाङ्गीकृतम्' इति योजनीयम्। अत्र संकल्पोत्तरं क्वचित् कलशस्थापनं भवति, तत् परिशिष्टोक्तविधिना कर्तव्यम्।' वस्तुतस्तु रात्रौ कलशस्थापनं न कार्यम्। तथाहि मात्स्ये—'न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्।' केचित्तत्र अमन्त्रकमेव कलशं संस्थाप्य तदुपरि गणेशमावाह्य पूजयन्ति तद् विरुद्धं गणेशपूजनस्य तदङ्गमतत्वात्। सत्यनारायणपूजायां तु कलशाधिष्ठितगणेशपूजनस्य अनंगत्वाच्च। शुभसूचनार्थमेव तत्राम्रपल्लवादिविभूषितकलशाधानं भवत्वित्यत्र न कस्याप्यनभिरुचिः।

(२) एकस्मिन् सति 'इदम्', द्वयोः 'इमे', तदधिकेषु 'इमानि' सर्वत्र योज्यम्।

३—आदिपुरुषपूजा—अक्षतान्यादाय—ओं भूर्भुवः स्वः श्री आदिपुरुष इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं आदिपुरुषाय नमः। इदमनुलेपनम्०। इदमक्षतम्०। इदं पुष्पम्०। इदं तुलसीपत्रम्। इदं दूर्वादलम्०। एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयथाभागनानाविधनैवेद्यानि०। इदमाचमनीयम्०। एष पुष्पाञ्जलिः ओं श्री आदिपुरुषाय नमः।

४—अनादिपुरुषपूजा—अक्षतान्यादाय—ओं भूर्भुवः स्वः श्री अनादिपुरुष इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं श्री अनादिपुरुषाय नमः। एवं पूर्ववत् चन्दनादिभिः पूजयेत्।

५—इन्द्रादिदशदिक्पालपूजा (१)। अक्षतान्यादाय—ओं भूर्भुवः स्वः श्री इन्द्रादिदशदिक्पालाः इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं श्री इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो नमः एवं चन्दनादिभिः पूजयेत्।

६—नवग्रहपूजा (२)। अक्षतान्यादाय—ओं भूर्भुवः स्वः (विनायकादिपञ्चकसहित) नवग्रहाः इहागच्छत इह तिष्ठत इत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं (विनायकादिपञ्चकसहित) नवग्रहेभ्यो नमः। एवं चन्दनादिभिः पूजयेत्।

७—ससीतरामलक्ष्मणपूजा। यवतिलानादाय—ओं भूर्भुवः स्वः श्रीससीतरामलक्ष्मणौ इहागच्छतमिह तिष्ठतम् इत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं श्रीससीतरामलक्ष्मणाभ्यां नमः। एवं चन्दनादिभिः पूजयेत्।

---

(१) इन्द्रादिदशदिक्पालाः—१. इन्द्रः, २. अग्निः, ३. यमः, ४. निर्ऋतिः, ५. वरुणः, ६. वायुः, ७. सोमः, ८. ईशानः, ९. अनन्तः, १० ब्रह्मा चेति।

(२) नवग्रहाः—१. रविः, २. चन्द्रः, ३. भौमः, ४ बुधः, ५ गुरुः, ६. शुक्रः, ७. शनैश्चरः, ८. राहुः, ९. केतुश्चेति।

अथ षोडशोपचारश्रीसत्यनारायणपूजनम्

(प्राचीनसंक्षिप्तपूजाविधिः अग्रे ४१७–पृष्ठे द्रष्टव्यः)

यवतिलजलान्यादाय (१)—ओं मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनो त्वरिष्टं यज्ञ ँ समिमं दधातु विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ। ओं भूर्भुवः स्वः भगवन् श्रीसत्यनारायण इहागच्छ इह तिष्ठ। इति प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। तत आवाहनम्–ओं देवेश भक्तिसुलभ तेजोराशे जगत्पते। क्रियमाणाभिमां पूजां गृहाण परमेश्वर॥ ध्यानम्–(पुष्पमादाय)––ओं ध्यायेत् सत्यं गुणातीतं गुणत्रयसमन्वितम्। लोकनाथं त्रिलोकेशं पीताम्बरधरं हरिम्॥ इन्दीवरदलश्यामं शंखचक्रगदाधरम्। गोविन्दं गोकुलानन्दं जगतः पितरं गुरुम्॥ इदं ध्यानपुष्पं भगवते श्रीसत्यनारायणाय नमः। पुष्पासनम्—ओं नानारत्नसमायुक्तं कार्तस्वरविभूषितम्। आसनं देव देवेश गृहाण पुरुषोत्तम॥ इद पुष्पासनम्०। पाद्यम्—ओं गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम्। तोयमेतत् सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम्॥ इदं पाद्यम्०। अर्घ्यम्—ओं व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय हृषीकपतये नमः। मया निवेदितो भक्त्या अर्घ्योऽयं प्रतिगृह्यताम्। इदमर्घ्यं०। आचमनीयम्—ओं गंगाजलं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम्। आचम्यतां हृषीकेश त्रैलोक्यव्याधिनाशन॥ इदमाचमनीयम्०। पञ्चामृतम्(१)—ओं पयो दधि घृतं गव्यं माक्षिकं शर्करा तथा। पञ्चामृतेन स्नपनं गृहाण जगतः पते॥ इदं पञ्चामृतम्०। शुद्धोदकम्—ओं गंगा च यमुना चैव गोदावरी चैव सरस्वती। कृष्णा च गौतमी वेणी सिप्रा

---

(१) पूजनकर्ता श्लोकमन्त्रपठनेऽसमर्थश्चेत् पुरोहितेनैव सर्वत्र पाठनीयो मन्त्रः, "श्रुतं हरति पापानि" इति स्मरणात्।

(२) यत्र यत्र पूजोपकरणवस्त्वभावस्तत्र सर्वत्र तत्स्थानीयं जलं समर्पयेत्। 'सर्वमस्तु प्रतिष्ठितम्' इति स्मरणात्।

सिन्धुस्तथैव च। तापी पयोष्णी रेवा च ताभ्यः स्नानार्थमाहृतम्। तोयमेतत् सुखस्पर्शं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥ इदं शुद्धोदकस्नानीयम्०। (सति सम्भवे पूरुषसूक्तेन चात्राभिषेकं विधेयम्)। स्नानाङ्गमाचमनीयम्०। पीतवस्त्रम्—ओं पीताम्बरं शुभं देव सर्वकामार्थसिद्धये। मया निवेदितं भक्त्या गृहाण सुरसत्तम॥ इदं पीतवस्त्रं बृहस्पतिदैवतम्०। वस्त्राङ्गमाचमनीयम्०। यज्ञोपवीतम्—ओं दामोदर नमस्तेऽस्तु त्राहि मां भवसागरात्। ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण सुरसत्तम॥ इमे यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते०। यज्ञोपवीताङ्गमाचमनीयम्०। चन्दनम्—ओं श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्। विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम्॥ इदं श्रीखण्डचन्दनं०। इदं रक्तानुलेपनम्०। यवतिलाः—ओं तिला यवाः सुरश्रेष्ठः कम्बूजाश्च सुशोभनाः। वासुदेव जगन्नाथ प्रीत्यर्थं स्वीकुरु प्रभो॥ एते यवतिलाः०। पुष्पाणि—ओं पुष्पं तु परमं दिव्यं पुण्यं सुरभिसम्भवम्। गृहाण परया भक्त्या मया दत्तं जगत्पते॥ एतानि पुष्पाणि०। पुष्पमाल्यम्—ओं नानापुष्पविचित्राढ्यां पुष्पमालां सुशोभनाम्। प्रयच्छामि च देवेश गृहाण परमेश्वर॥ इदं पुष्पमाल्यं०। तुलसीपत्राणि—ओं तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम्। भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम्॥ एतानि तुलसीपत्राणि०। एतानि दूर्वादलानि०। इदमाचमनीयम्०। धूपः—ओं वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः। आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥ एष धूपः०। दीपः—ओं आज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया। दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह। एष दीपः०। नैवेद्यानि (१)—ओं नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलां कुरु। ईप्सितं च वरं देहि परत्र च पराङ्गतिम्॥ एतानि नानाविधनैवेद्यानि०। ततो घृतशर्करासम्मिश्रितगोधूमचूर्णं (प्रसाद)

---

(१) नैवेद्यादिस्थापनव्यवस्था, कालिकापुराणे—'नैवेद्यं दक्षिणे वामे पुरतो न च पृष्ठतः। दीपं दक्षिणतो दद्यात् पुरतो न च वामतः। वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न च दक्षिणे। निवेदयेत् पुरोभागे गन्धपुष्पञ्च भूषणपम्॥' इति।

पूर्णभाण्डं वामहस्ते नीत्वा दक्षिणहस्तेन कुशत्रयजलान्यादाय—ओं त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पितम् । गृहाण
सुमुखो भूत्वा प्रसीद पुरुषोत्तम ॥ इदमपुङ्गनैवेद्यं० भगवते श्रीसत्यनारायणाय नमः ॥ ततः पृथुकान्नानि (चौरठ)—
ओं कदलीगुडसंमिश्रमामतण्डुलसंयुतम् । शर्करादिसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ एतानि पृथुकान्नानि० । ततः
कदलीदुग्धशर्करादिसम्मिलितं दिव्यान्नम् (घोराप्रसाद)—ओं शर्कराकदलायुक्तं गोदुग्धेन समन्वितम् ॥ नैवेद्यमुत्तमं
देव गृहाण पुरुषोत्तम ॥ इदं सुस्वादु दिव्यान्नम्० । फलानि—फलान्यमृतकल्पानि स्थापितानि पुरस्तव । तेन मे
सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ एतानि फलानि० । एतानि ससितदधिचिपटान्नानि० । आचमनीयम्—ओं
सर्वपापहरं दिव्यं गांगेयं निर्मलं जलम् । दत्तमाचमनीयं ते गृहाण पुरुषोत्तम ॥ इदमाचमनीयम्० । ताम्बूलम्—
ओं पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् । कर्पूरादिसमायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं ताम्बूलम्० ।
इदमाचनीयम्० । भूषणार्थं द्रव्यम्--ओं काञ्चनं रजतोपेतं नानारत्नसमन्वितम् । भूषणार्थं च देवेश गृहाण जगती-
पते ॥ इदं भूषणार्थं द्रव्यम्० । ततः पुष्पाञ्जलिः—

ओं अमोघं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम् । हृषीकेशं जगन्नाथं वागीशं वरदायकम् ।
गुणत्रयं गुणातीतं गोविन्दं गरुडध्वजम् । जनार्दनं जनानन्दं जानकीवल्लभं जयम् ॥
प्रणमामि सदा सत्य-नारायणमतः परम् । दुर्गमे विषमे घोरे शत्रुभिः परिपीडिते ॥
विविधापत्सु दुष्टेषु तथान्येष्वपि यद् भयम् । नामान्येतानि सङ्कीर्त्य ईप्सितं फलमाप्नुयात् ।
सत्यनारायणं देवं वन्देऽहं कामदं प्रभुम् । लीलया च तत विश्वं येन तस्मै नमो नमः ॥

एष पुष्पाञ्जलिः भगवते श्रीसत्यनारायणाय नमः । ततः ओं गौरीशङ्कराविहागच्छतमिह तिष्ठतमित्यावाह्य

ओं गौरीशङ्कराभ्यां नमः। इत्यनेन पञ्चोपचारैः सम्पूज्य अन्ते ओं ब्रह्मणे नमः। इत्यनेन ब्रह्मपूजां(९) च विधाय कथां श्रृणुयात्।

अथ प्राचीनोक्त-संक्षिप्तसत्यनारायणपूजाविधिः

तिलान् गृहीत्वा—ओं भूर्भुवः स्वः भगवन् श्रीसत्यनारायण इहागच्छ, इह तिष्ठ इत्यावाह्य पुष्पं गृहीत्वा—

ओं ध्यायेत् सत्यं गुणातीतं गुणत्रयसमन्वितम्। लोकनाथं त्रिलोकेशं पीताम्बरधरं हरिम्॥
इन्दीवरदलश्यामं शंखचक्रगदाधरम्। नारायणं चतुर्बाहुं श्रीवत्सपदभूषितम्॥
गोविन्दं गोकुलानन्दं जगतः पितरं गुरुम्।

इदं ध्यानपुष्पम् ओं भगवते श्रीसत्यनारायणाय नमः। ततोऽर्घ्यम्—

ओं व्यक्ताऽव्यक्तस्वरूपाय हृषीकपतये नमः। मया निवेदितो भक्त्या अर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

एतानि पाद्यार्घाचमनीय-स्नानीय-पुनराचमनीयानि ओं भगवते श्री सत्यनारायणाय नमः। इमे यज्ञोपवीते वृहस्पतिदैवते०। इदमाचमनीयम्०। इदं पीतवस्त्रं वृहस्पतिदैवतम्०। इदमाचमनीयम्०। ततः चन्दनम्—

ओं श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्। विलेपनं सुरश्रेष्ठ प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम्।

---

(१) प्रकृतपूजायाः अनङ्गत्वात् सर्वदेवपूजोपकरणद्रव्यैः प्रतिपत्तिरूपेणैवात्र 'ॐ ब्रह्मणे नमः' इति भूमावेव ब्रह्मणः पूजा कार्या। समन्त्रकब्रह्मपूजाया निषिद्धत्वात्। तथा च स्कान्दे--'अद्यप्रभृति यः पूजां मन्त्रयुक्तां करिष्यति। तव मर्त्यो धरापृष्ठे यथाऽन्येषां दिवौकसाम्। भविष्यति च तद्वंशो दरिद्रो दुःखसंयुतः॥ इति सावित्रीकृतशापवचनम्। सर्वदेवपूजान्त एव ब्रह्मपूजनम्। तथा च ब्रह्मवैवर्ते--'तव मन्त्रं न गृह्णन्ति केऽपि वेश्याऽभिशापतः। यदन्यदेवपूजायां तव पूजा भविष्यति॥' इति। अन्यदेवपूजायां सत्यां, पूजान्ते इत्यर्थः।

इदमनुलेपनं ओं भगवते श्रीसत्यनारायणाय नमः। एते यवतिलाः ०। पुष्पम्--

ओं नमस्ते विश्वरूपाय शंखचक्रधराय च। पद्मनाभाय देवाय हृषीकपतये नमः ॥
नमोऽनन्तस्वरूपाय त्रिगुणात्मविभाजिने ॥

एतानि पुष्पाणि ॐ भगवते श्रीसत्यनारायणाय नमः। एतानि सचन्दनतुलसीपत्राणि०। इदं पुष्पमाल्यम् ०। एतानि दूर्वादलानि०। एष धूपः०। एष दीपः०। एतानि गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूल-नानाविधनैवेद्यानि भगवते श्रीसत्यनारायणाय नमः। अपुङ्गनैवेद्यम्--

ओं त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पितम्। गृहाण सुमुखो भूत्वा प्रसीद पुरुषोत्तम ॥

इदमपुङ्गनैवेद्यम्०। एतानि पृथुकान्नानि०। इदं ससितदधि-चिपिटान्नम्०। (अनेनैव क्रमेण अन्यान्यपि आसादित-वस्तूनि उत्सृज्येत्)। इदमाचमनीयम्०। ततः पुष्पाञ्जलिः—

ॐ अमोघं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम्। हृषीकेशं जगन्नाथं वागीशं वरदायकम् ॥
गुणत्रयं गुणातीतं गोविन्दं गरुडध्वजम्। जनार्दनं जनानन्दं जानकीवल्लभं जयम् ॥
प्रणमामि सदासत्य-नारायणमतः परम्। दुर्गमे विषमे घोरे शत्रुभिः परिपीडिते ॥
विविधापत्सु दुष्टेषु तथान्येष्वपि यद्भयम्। नामान्येतानि संकीर्त्यं ईप्सितं फलमाप्नुयात् ॥
सत्यनारायणं देवं वन्देऽहं कामदं प्रभुमम्। लीलया च ततं विश्वं येन तस्मै नमो नमः ॥

एष पुष्पाञ्जलिः ॐ भगवते श्रीसत्यनारायणाय नमः। इति त्रिः।

ततो गौरीशंकरपूजनम्—अक्षतान् गृहीत्वा—ॐ गौरीशङ्करौ, इहागच्छतम्, इह तिष्ठतम्। इत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीय—पुनराचमनीयानि ॐ गौरीशङ्कराभ्यां नमः। इति यथोपचारैः पूजयेत्। ततः 'ॐ ब्रह्मणे नमः' इति सर्वमेकदेव भूमौ प्रक्षिपेत्।

अथ श्रीसत्यनारायणव्रतकथा

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदोरयेत् ॥

एकदा मुनयः सर्वे सर्वलोकहिते रताः । सुरम्ये नैमिषारण्ये गोष्ठीं चक्रुर्मनोरमाम् ॥ १ ॥ तत्रान्तरे महातेजा व्यासशिष्यो महायशाः । सूतः शिष्यगणैर्युक्तः समायातो हरिं स्मरन् ॥ २ ॥ तमायान्तं समालोक्य सूतं शास्त्रार्थपारगम् । नेमुः सर्वे समुत्थाय शौनकाद्यास्तपोधनाः ॥ ३ ॥ सोऽपि तान् सहसा भक्त्या मुनीन् परमवैष्णवान् । ननाम दण्डवद् भूमौ सर्वधर्मविदां वरः ॥ ४ ॥ वरासने महाबुद्धिस्तैर्दत्ते मुनिसत्तमः । उवाच सदसो मध्ये सर्वैः शिष्यगणैर्वृतः ॥ ५ ॥ तत्रोपविष्टं तं सूतं शौनको मुनिसत्तमः । बद्धाञ्जलिरिमां वाचमुवाच विनयान्वितः ॥ ६ ॥ **शौनक उवाच**––महर्षे सूत सर्वज्ञ कलिकाले समागते । केनोपायेन भगवन् हरिभक्तिर्भवेन्नृणाम् ॥ ७ ॥ कलौ सर्वे भविष्यन्ति पापकर्मपरायणाः । वेदविद्याविहीनाश्च तेषां श्रेयः कथम्भवेत् ॥८॥ कलावन्नगतप्राणाः लोकाः स्वल्पायुषस्तथा । निर्द्धनाश्च भविष्यन्ति नानापोडाप्रपीडिताः ॥९॥ प्रयाससाध्यं सुकृतं शास्त्रेषु श्रूयते द्विज । तस्मात् केऽपि करिष्यन्ति कलौ न सुकृतं जनाः ॥ १० ॥ सुकृतेषु विनष्टेषु प्रवृत्ते पापकर्मणि । सवंशाः प्रलयं सर्वे गमिष्यन्ति दुराशयाः ॥ ११ ॥ स्वल्पश्रमैरल्पवित्तैरल्पकालैश्च सत्तम । यथा भवेन्महापुण्यं

तथा कथय सूत नः ।। १२ ।। यस्योपदेशतः पुण्यं पापं वा कुरुते जनः । स तद्भागी भवेन्मर्त्त्यं इति शास्त्रेषु निश्चितम् ।। १३ ।। पुण्योपदेशी सदयः कैतवैश्च विवर्जितः । पापायनविरोधी च चत्वारः केशवोपमाः ।। १४ ।। ज्ञानं सम्प्राप्य संसारे यः परेभ्यो न यच्छति ज्ञानरूपी हरिस्तस्मै प्रसन्न इव नेक्षते ।। १५ ।। ज्ञानरत्नैश्च रत्नैश्च परसन्तोषकृन्नरः । स ज्ञेयः सुमते नूनं नररूपधरो हरिः ।। १६ ।। व्रतेन तपसा किं वा प्राप्स्यते वाञ्छितं फलम् । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामते ।। १७ ।। त्वमेव मुनिशार्दूल वेदवेदाङ्गपारगः । त्वदृते नहि वक्ताऽन्यो यतस्त्वं व्यासशासितः ।। १८ ।। सूत उवाच--धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ त्वमेव वैष्णवाग्रणीः । यतः समस्तभूतानां हितं वाञ्छसि सर्वदा ।। १९ ।। शृणु शौनक वक्ष्यामि यत्त्वया श्रोतुमिष्यते । नारदेनैवमुक्तः सन् भगवान् कमलापतिः ।। २० ।। सुरर्षये यथैवाह तच्छृणुध्वं समाहिताः ।। २१ ।।

[इति (१) श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे श्रीसत्यनारायणव्रतकथायां प्रथमोऽध्यायः]

एकदा नारदो योगी नरानुग्रहकाङ्क्षया । पर्यटन् विविधान् लोकान् मर्त्यलोकमुपागतः ।। १२ ।। तत्र दृष्ट्वा जनाः सर्वे नानादुःखसमन्विताः । नानायोनिसमुत्पन्नाः क्लिश्यन्ते पापकर्मभिः ।। २३ ।।

---

(१) इत्यध्यायमनुरुध्य केचन प्रयुञ्जन्ते । शिष्टास्तु न तथा समाद्रियन्ते । 'इति शब्दो हरेल्लक्ष्मीमि'ति मार्कण्डेयवचनात् ।

केनोपायेन चैतेषां दुःखनाशो भवेद् ध्रुवम् । इति सिञ्चन्त्य मनसा विष्णुलोकं गतस्तदा ॥२४॥ तत्र नारायणं देवं शुक्लवर्णं चतुर्भुजम् । शङ्खचक्रधरं देवं वनमालाविभूषितम् । दृष्ट्वा तं देवदेवेशं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ २५ ॥ **नारद उवाच**—नमस्ते वाङ्मनोतीतरूपायाऽनन्तशक्तये । आदिमध्यान्तहीनाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥ २६ ॥ सर्वेषामादिभूताय भक्तानामार्त्तिनाशिने । श्रुत्वा स्तोत्रं ततो विष्णुर्नारदं प्रत्यभाषत ॥ २७ ॥ **श्रीभगवानुवाच**––किमर्थमागतोऽसि त्वं किन्ते मनसि वर्तते । कथयस्व महाभाग तत्सर्वं कथयामि ते ॥२८॥ **नारद उवाच**––मर्त्यलोके जनाः सर्वे नानाक्लेशसमन्विताः । नानायोनिसमुत्पन्नाः पच्यन्ते पापकर्मभिः ॥२९॥ तत्कथं शमयेन्नाथ ! लघूपायेन तद्वद । श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं कृपास्ति यदि ते मयि ॥ ३० ॥ **श्रीभगवानुवाच**––साधु पृष्टं त्वया वत्स लोकानुग्रहकाम्यया । यत्कृत्वा मुच्यते मोहात्तच्छृणुष्व वदामि ते ॥ ३१ ॥ व्रतमस्ति महापुण्यं स्वर्गे भुवि च दुर्लभम् । नव स्नेहान्मया विप्र प्रकाशीक्रियतेऽधुना ॥ ३२ ॥ सत्यनारायणस्येदं व्रतं सम्यग्विधानतः । कृत्वा सद्यः सुखं भुक्त्वा परत्र मोक्षमालभेत् ॥ ३३ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवद्वाक्यं नारदः पुनरब्रवीत् । **नारद उवाच**––किं फलं किं विधानं च कृतं केन व्रतोत्तमम् ॥३४॥ तत्सर्वं विस्तराद् ब्रूहि कदा कार्यं हि तद् व्रतम् ॥ ३५ ॥ **श्रीभगवानुवाच**––दुःखशोकादिशमनं धनधान्यप्रवर्द्धनम् । सौभाग्यसन्ततिकरं सर्वत्र विजयप्रदम् ॥ ३६ ॥ यस्मिन् कस्मिन् दिने मर्त्यो भक्तिश्रद्धासमन्वितः । सत्यनारायणं देवं यजेत्तुष्टो

निशामुखे ।। ब्राह्मणैर्बान्धवैश्चैव सहितो धर्मतत्परः ।। ३७ ।। नैवेद्यं भक्तितो दद्यात् सपादं भक्ष्यमुत्तमम् ।
रम्भाफलं घृतं क्षीरं गोधूमस्य च चूर्णकम् ।। ३८ ।। अभावे शालिचूर्णं वा शर्करा च गुडं तथा ।
सपादं सर्वभक्ष्याणि एकीकृत्य निवेदयेत् ।। ३९ ।। विप्राय दक्षिणां दद्यात् कथां श्रुत्वा जनैः सह ।
ततश्च बन्धुभिः सार्द्धं विप्रेभ्यः प्रतिपादयन् ।। ४० ।। प्रसादं भक्षयेद् भक्त्या नृत्यगीतादिकं चरेत् ।
ततस्तु स्वगृहं गच्छेत् सत्यनारायणं स्मरन् ।। ४१ ।। एवं कृते मनुष्याणां वाञ्छासिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
विशेषतः कलियुगे नान्योपायोऽस्ति भूतले । कथां सम्यक् प्रवक्ष्यामि कृतं येन पुरा द्विज ।। ४२ ।।
कश्चित् काशीपुरीवासी विप्र आसीच्च निर्द्धनः । क्षुधा-तृष्णाकुलो भूत्वा सततं भ्रमते महीम् ।। ४३ ।।
दुःखितं ब्राह्मणं दृष्ट्वा भगवान् ब्राह्मणप्रियः । वृद्धब्राह्मणरूपः सन् पप्रच्छ द्विजमादरात् ।। ४४ ।। किमर्थं
भ्रमसे विप्र महीं कृत्स्नां सुदुःखितः । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथ्यतां यदि रोचते ।। ४५ ।। विप्र
उवाच––ब्राह्मणोऽतिदरिद्रोऽहं भिक्षार्थं भ्रमते महीम् । उपायं यदि जानासि कृपया कथय प्रभो ।।४६।।
वृद्धब्राह्मण उवाच––सत्यनारायणो विष्णुर्वाञ्छितार्थफलप्रदः । तस्य त्वं द्विजशार्दूल कुरुष्व व्रतमुत्तमम् ।
यत् कृत्वा सर्वदुःखेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ।।४७।। विधानं च व्रतस्याऽस्य विप्रायाऽभाष्य
सङ्गतम् । सत्यनारायणो देवस्तत्रैवान्तरधीयत ।। ४८ ।। ततः प्रातः करिष्यामि व्रतं मनसि चिन्तितम् ।
इति संचिन्त्य विप्रोऽसौ रात्रौ निद्रां न चाऽलभत् ।।४९।। ततः प्रातः समुत्थाय सत्यनारायणव्रतम् ।

करिष्येऽहञ्च संकल्प्य भिक्षार्थमगद् द्विजः ॥५०॥ तस्मिन्नेव दिने विप्रः प्रचुरं द्रव्यमाप्तवान्। तेनैव बन्धुभिः साद्धं सत्यस्य व्रतमाचरत् ॥ ५१ ॥ सर्वदुःखविनिर्मुक्तः सर्वसंपत्समन्वितः । बभूव स द्विजश्रेष्ठो व्रतस्याऽस्य प्रभावतः । ततः प्रभृति कालञ्च मासि मासि व्रतं कृतम् ॥५२॥ सूत उवाच—एवं नारायणाद् देवाद् व्रतं ज्ञात्वा द्विजोत्तमः । सर्वपापविनिर्मुक्तो दुर्लभं मोक्षमाप्नुयात् ५३ ॥ व्रतं चैतद् यदा विप्र पृथिव्यां सञ्चरिष्यति । तदैव सर्वदुःखं हि नराणाञ्च विनश्यति । एवं नारायणे नोक्तं नारदाय महात्मने ॥ ५४ ॥

[इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे श्रीसत्यनारायणव्रतकथायां द्वितीयोऽध्यायः]

मयाऽपि कथितं विप्र किमन्यत् कथामि ते ॥ ५५ ॥ **शौकन उवाच**––तस्माद् विप्र व्रतं केन पृथिव्यां चरितं मुने । तत् सर्वं श्रोतुमिच्छामि श्रद्धाऽस्माकं प्रजायते ॥ ५६ ॥ **सूत उवाच**––शृणुध्वं मुनयः सर्वे तस्माद् येन कृतं भुवि ॥५७॥ एकदा स द्विजवरो यथाविभवविस्तरैः । बन्धुभिः स्वजनैः साद्धं व्रतं कर्तुं समुद्यतः ॥५८॥ एतस्मिन्नन्तरे काले काष्ठक्रेतुः समागतः । बहिष्काठञ्चा संस्थाप्य विप्रस्य मन्दिरं ययौ ॥ ५९ तृष्णया पीडितात्मा स विप्रं दृष्ट्वा तथाविधम् । प्रणिपत्य द्विज प्राह किमिदं क्रियते त्वया । कृते किं फलमाप्नोति विस्तराद् वद मे प्रभो ॥ ६० ॥ **विप्र उवाच**––सत्यनारायणस्येदं व्रतं सर्वेप्सितप्रदम् । दुःखशोकादिशमनं सर्वत्र विजयप्रदम् ॥६१॥ धनधान्यसन्ततिकरं

सर्वेषामोप्सितप्रदम् । यस्य प्रसादान्मे सर्वं धनधान्यादिकं महत् ॥६२॥ ततस्तु तद्व्रतं ज्ञात्वा काष्ठकर्ताऽतिहर्षितः। पपौ जलं प्रसादं च भुक्त्वा तन्नगरं ययौ ॥६३॥ सत्यनारायणं देवं चिन्तयन् स्थिरमानसः काष्ठं विक्रीय नगरे प्राप्स्यते चाद्य यद्धनम् । तेनैव सत्यदेवस्य व्रतं सम्यक् करोम्यहम् ॥ ६४ ॥ इति सञ्चित्य मनसा काष्ठं कृत्वा तु मस्तके । जगाम नगरे रम्ये धनिनां यत्र संस्थितिः ॥ ६५ ॥ तद्दिने काष्ठमूल्यञ्च द्विगुणं प्राप्तवानसौ । ततः प्रसन्नहृदयः सुपक्वं कदलोफलम् ॥६६॥ शर्कराघृतदुग्धं च गोधूमस्य च चूर्णकम् । प्रत्येकं तु सपादं च गृहीत्वा स्वगृहं ययौ ॥ ६७ ॥ ततो बन्धून् समाहूय चकार विधिवद् व्रतम् । तद्व्रतस्य प्रभावेण धनपुत्रान्वितोऽभवत् ॥ ६८ ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते सत्यपुरं ययौ । पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि श्रृणुध्वं मुनिसत्तमाः ॥ ६९ ॥

[इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे श्रोसत्यनारायणव्रतकथायां तृतीयोऽध्यायः]

आसीदुल्कामुखो नाम नृपतिर्बलिनां वरः। जितेन्द्रियः सत्यवादो ययौ देवालयं प्रति । दिने दिने धनं दत्त्वा द्विजान् सन्तोषयन् सुधीः ॥ ७० ॥ भार्या तस्य प्रमुग्धा च सरोजवदना सती । सत्यव्रतं भद्रशीला सिन्धुतोरेऽकरोन्मुने ॥ ७१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र साधुरेकः समागतः । वाणिज्यार्थं बहुधनैरत्नाद्यैः परिपूरिताम् ॥ ७२ ॥ नावं संस्थाप्य तत्तोरे जगाम तत्तटं प्रति । दृष्ट्वा तत्र व्रतं सम्यक् पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ ७३ ॥ **साधुरुवाच**—किमिदं कुरुषे राजन् भक्तियुक्तेन चेतसा । प्रकाशं कुरु

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ ७४ ॥ राजोवाच—पूजनं क्रियते साधो विष्णोरतुलतेजसः । व्रतं च स्वजनैः सार्द्धं पुत्रादि प्राप्स्यते मया ॥ ७५ ॥ प्रत्युवाच ततो नत्वा राजानं मधुरं वचः । साङ्गं कथय मे राजन् व्रतमेतत् करोम्यहम् ॥ ७६ ॥ ममापि सन्ततिर्नास्ति सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् । ततो विधानतो राजा कथयामास तद् व्रतम् ॥ ७७ ॥ राज्ञो मुखाद् व्रतं श्रुत्वा परं हर्षमवाप्तवान् । ततो निवर्त्य वाणिज्यात् सानन्दो गृहमागतः ॥ ७८ ॥ भार्यायै कथितं सर्वं व्रतं च सन्ततिप्रदम् । तदा व्रतं करिष्यामि यदा मे सन्ततिर्भवेत् ॥ ७९ ॥ कस्मिंश्चित् दिवसे तस्य भार्या लीलावती सती । गर्भयुक्ताऽऽनन्दचित्ताऽभवद्धर्मपरायणा ॥ ८० ॥ पूर्णे गर्भे ततो जाता बालिका चातिनिर्मला । दिने दिने वर्द्धमाना शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ८१ ॥ ततो वणिक् सुतायाश्च जातकर्मादिकं चरन् । नाम्ना कलावती चेति सन्नामकरणं कृतम् ॥ ८२ ॥ ततो लीलावती प्राह स्वामिनं मधुरं वचः । न करोषि किमर्थं वा पुरा यच्च प्रतिश्रुतम् ॥ ८३ ॥ विवाहसमयेऽप्यस्याः करिष्यामि व्रतं प्रिये । इति भार्यां समाश्वास्य जगाम नगरं प्रति ॥ ८४ ॥ ततः कलावती कन्या वर्द्धिता पितृवेश्मनि । दृष्ट्वा कन्यां ततः साधुर्नगरे बन्धुभि. सह ॥ ८५ ॥ मन्त्रयित्वा द्रुतं दूतं प्रेषयामास धर्मवित् । विवाहार्थं च कन्याया वरं श्रेष्ठं विचारयन् ॥ ८६ ॥ तेनाज्ञप्तश्च दूतोऽसौ काञ्चनं नगरं ययौ । तस्मादेकं वणिक्पुत्रं समादायागतो हि सः ॥ ८७ ॥ दृष्ट्वा तु सुन्दरं बालं वणिक्पुत्रं गुणान्वितम् । ज्ञातिभिर्बन्धुभिः सार्द्धं परितुष्टेन

चेतसा ॥ ८८ ॥ दत्तवान् साधुपुत्राय कन्यां विधिविधानतः । ततोऽभाग्यवशात् तेन विस्मृतं व्रतमुत्तमम् ॥ ८९ ॥ विवाहसमयेऽप्यस्यास्तेन रुष्टोऽभवद्विभुः ॥ ९० ॥ ततः कालेन कियता निजकर्मविशारदः ॥ ९१ ॥ (वाणिज्यार्थं गतः शीघ्रं जामात्रा सहितो वणिक् । रत्नसारपुरे रम्ये गत्वा सिन्धुसमीपतः ॥) वाणिज्यं कुरुते साधुर्जामात्रा श्रीमता सह । पुरीन्निर्माय नगरे चन्द्रकेतोर्नृपस्य च ॥ ९२ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु सत्यनारायणः प्रभुः । भ्रष्टप्रतिज्ञमालोक्य शापं तस्मै प्रदत्तवान् । श्वः प्रभृति कियत्कालं महद् दुःखं भविष्यति ।। ९३ ॥ तस्मिन्नेव दिने राज्ञो धनमादाय तस्करः । तेनैव वर्त्मना यातः पृष्ठदेशं विलोकयन् ॥ ९४ ॥ (तेन दूतान् समाहूय निजमाज्ञां च दत्तवान् ।) तत्पश्चाद्धावकान् दूतान् दृष्ट्वा भीतेन चेतसा । धनं संस्थाप्य तत्रैव गतः शीघ्रमलक्षितः ॥ ९५ ॥ ततो दूताः समायाता यत्रास्ते सज्जनो वणिक् । दृष्ट्वा नृपधनं तत्र बद्ध्वा दूता वणिक्सुतौ ॥ ९६ ॥ हर्षयुक्ता धावमाना ऊचुर्नृपसमीपतः । तस्करौ द्वौ समानीतौ विलोक्याज्ञापय प्रभो ॥ ९७ ॥ तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं दृढं बद्ध्वा तु तावुभौ । स्थापितव्यौ महादुर्गे कारागारेऽविचारयन् ॥ ९८ ॥

[इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे श्रीसत्यनारायणव्रतकथायां चतुर्थोऽध्यायः]

मायया सत्यदेवस्य न श्रुतं च तयोर्वचः । ततस्तयोर्धनं राज्ञा गृहीतं चन्द्रकेतुना ॥ ९९ ॥ तच्छापाच्च तयोर्गेहे भार्या च दुःखिताऽभवत् । चौरेणापहृतं सर्वं गृहे यच्च स्थितं धनम् ॥ १०० ॥

आधिव्याधिसमायुक्ता क्षुत्पिपासातिपीडिता । अन्नचिन्तापरा भूत्वा भ्रमते च गृहे गृहे ।। १०१ ।। तथा
कलावती कन्या भ्रमते प्रतिवासरम् । एकस्मिन् दिवसे रात्रौ क्षुधार्ता द्विजमन्दिरम् ।। १०२ ।।
गत्वाऽपश्यद् व्रतं तत्र सत्यनारायणस्य च । उपविश्य कथां श्रुत्वा वरं सम्प्रार्थ्य वाञ्छितम् ।।१०३।।
प्रसादभक्षणं कृत्वा ययौ रात्रौ गृहं प्रति । ततो लीलावती कन्यां भर्त्सयामास तां भृशम् ।। १०४ ।।
पुत्रि, रात्रौ स्थिता कुत्र किं ते मनसि वर्तते । द्विजालये व्रतं मातर्दृष्टं वाञ्छितसिद्धिदम् । तच्छ्रुत्वा
कन्यकावाक्यं व्रतं कर्तुं समुद्यता ।। १०५ ।। ससुता सा वणिग्भार्या सत्यनारायणस्य च । व्रतं हि कुरुते
साध्वी बन्धुभिः स्वजनैः सह ।। १०६ ।। भर्तृजामातरौ क्षिप्रमागच्छेतां निजाश्रमम् । इति देवं वरं
याचे सत्यदेवं पुनः पुनः ।। १०७ ।। अपराधं च भर्तुर्मे जामातुः क्षन्तुमर्हसि । व्रतेन तेन तुष्टोऽसौ
सत्यनारायणः प्रभुः ।। १०८ ।। दर्शयामास स्वप्ने हि चन्द्रकेतुं नृपोत्तमम् । बन्धनान्मोचय प्रातर्वणिजौ
नृपसत्तम ।। १०९ ।। देयं धनं च तत्सर्वं विधियुक्तं हृतं च यत् । नो चेत्त्वां नाशयिष्यामि सराज्यधनपुत्रकम्
।। ११० ।। एवमाभाष्य राजानं ध्यानगम्योऽभवत् प्रभुः । ततः प्रभातसमये राजा च स्वजनैः
सह ।। १११ ।। उपविश्य सभामध्ये प्राह पौरजनान् प्रति । बद्धौ महाजनौ शीघ्रं मोचयध्वं वणिक्सुतौ
।। ११२ ।। इति राज्ञो वचः श्रुत्वा मोचयित्वा महाजनौ । समानीय नृपस्याग्रे प्रोचुस्ते विनयान्विताः
।। ११३ ।। आनीतौ द्वौ वणिक्पुत्रौ मुक्तौ निगडबन्धनात् । ततो महाजनौ नत्वा चन्द्रकेतुं

नृपोत्तमम् ॥ ११४ ॥ स्मरन्तौ पूर्ववृत्तान्तं विस्मयाद् भयविह्वलौ । राजा वणिक्सुतौ वीक्ष्य प्रोवाच सादरं वचः ॥११५॥ दैवात् प्राप्तं महद् दुःखमिदानीं नास्ति ते भयम् । इदानीं कर्तुमुचितं क्षौरकर्मादिकं च यत् ॥ ११६ ॥ ततो नृपाज्ञया सर्वं नित्यकृत्यं समाप्य च । शुक्लाम्बरधरौ शीघ्रं सभामध्ये समागतौ ॥ ११७ ॥ ततो नृपवरः श्रीमान् स्वर्णरत्नविभूषणैः । पुरस्कृत्य वणिक्पुत्रौ वचसा प्रीणयन् भृशम् ॥ ११८ ॥ पुरानीतं च यद् द्रव्यं द्विगुणीकृत्य दत्तवान् । प्रोवाच तौ ततो राजा गच्छ साधो निजाश्रमम् । ११९ ॥ राजानं प्रणिपत्याह——गन्तव्यं त्वत्प्रसादतः ॥ १२० ॥

[इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे श्रीसत्यनारायणव्रतकथायां पञ्चमोऽध्यायः]

सूत उवाच——यात्रां कृत्वा ततः साधुर्मङ्गलाचारपूर्विकाम् ॥ ब्राह्मणाय धनं दत्त्वा सहर्षं नगरं ययौ ॥१२१॥ कियद् दूरे गते साधौ सत्यनारायणः प्रभुः । जिज्ञासां कृतवान् साधो किमस्ति तरणौ तव ॥ १२२ ॥ ततो महाजनो मत्तो हेलया च प्रहस्य च । कथं पृच्छसि भो दण्डिन् मुद्रां किं लब्धुमिच्छसि ॥ १२३ ॥ लतापत्रादिकं चैव वर्तते तरणौ मम । निष्ठुरं च वचः श्रुत्वा सत्यं भवतु त्वद्वचः ॥ १२४ ॥ एवमुक्त्वा गतः शीघ्रं दण्डी तस्य समीपतः । गते दण्डिनि साधुश्च कृतनित्यक्रियस्तदा ॥१२५॥ उत्थितान्तर्णि दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययौ । लतापत्रादिकं दृष्ट्वा मूर्च्छितो न्यपतद् भुवि ॥ १२६ ॥ लब्धसंज्ञो वणिक्पुत्रस्ततश्चिन्तान्वितोऽभवत् । जामाता दुहितुः कान्तो वचनं चेदम-

ब्रवीत् ।। १२७ ।। किमर्थं कुरुषे शोकं शापो दत्तश्च दण्डिना । शक्यते तेन सर्वं हि कर्तुं हर्तुं न संशयः ।। १२८ ।। अतस्तच्छरणं याहि वाञ्छितार्थो भविष्यति । जामातुश्च वचः श्रुत्वा तत्सकाशं गतस्तदा ।। १२९ ।। दृष्ट्वा तु दण्डिनं भक्त्यानत्वा प्रोवाच सादरम् । मया दुरात्मना देव मुग्धेन तव मायया ।। १३० ।। यदुक्तं तद्वचो नाथ दोषम्मे क्षन्तुमर्हसि । यतः परहिताः सर्वे क्षमासाराहि साधवः ।। १३१ ।। पुनः पुनस्ततो नत्वा रुरोद शोकविह्वलः । तमुवाच ततो दण्डी विलपन्तं बिलोक्य च ।। १३२ ।। मा रोदीः शृणु मे वाक्यं मम पूजाबहिर्मुखः । मामवज्ञाय दुर्बुद्धे लब्धं दुःखं मुहुर्मुहुः ।। १३३ ।। तच्छ्रुत्वा भगवद्वाक्यं स्तुतिं कर्तुं समुद्यतः ।। १३४ ।। साधुरुवाच——त्वन्मायामोहिताः सर्वे ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः । न जानन्ति गुणं रूपन्तवाश्चर्यमिदं विभो ।। १३५ ।। मूढोऽहं प्राक् कथं जाने मोहितस्तव मायया । प्रसीद पूजयिष्यामि यथाविभवविस्तरैः ।। १३६ ।। पुत्रं वित्तं च संवृत्ति पाहि मां शरणागतम् ।।१३७।। श्रुत्वा स्तवादिकं वाक्यं परितुष्टो जनार्दनः । वरञ्च वाञ्छितं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।। १३८ ।। ततोऽसौ नावमारुह्य दृष्ट्वा रत्नादिपूरिताम् । कृपया सत्यदेवस्य सफलं वाञ्छितं मम । इत्युक्त्वा स्वजनैः सार्द्धं पूजां कृत्वा यथाविधि ।। १३९ ।। हर्षेण महता साधुः प्रयाणञ्चाकरोत्तदा । नावं संवाह्य वेगेन स्वदेशमगमत्तदा ।। १४० ।। ततो जामातरं प्राह पश्य वत्स पुरीं मम । दूतञ्च प्रेषयामास निजवित्तस्य रक्षकम् ।। १४१ ।। ततोऽसौ नगरं गत्वा साधोर्भार्यां विलोक्य च ।

प्रोवाच वाञ्छितं वाक्यं नत्वा वद्धाञ्जलिस्तदा ॥ १४२ ॥ तटे तु नगरस्यैव जामात्रा साहितो वणिक् । आगतो बन्धुवर्गैश्च धनैर्बहुविधैस्तदा ॥ १४३ ॥ श्रुत्वा दूतस्य तद्वाक्यं महाहर्षयुता सती । सत्यपूजां ततः कृत्वा प्रोवाच तनुजां प्रति । व्रजामि शीघ्रमागच्छ साधुसन्दर्शनाय च ॥ १४४ ॥ इति मातृवचः श्रुत्वा व्रतं कृत्वा समाप्य च । प्रसादञ्च परित्यज्य गता सापि पतिम्प्रति ॥ १४५ ॥ तेन रुष्टः सत्यदेवो भर्तारं तरणिं तथा । संहृत्य च धनैः सार्द्धं जले तस्मिन् न्यमज्जयत् ॥ १४६ ॥ ततः कलावती कन्या नाऽवलोक्य निजं पतिम् । शोकेन महता तत्र रुदन्ती चाऽपतद् भुवि ॥ १४७ ॥ दृष्ट्वा तथाविधां कन्यां न दृष्ट्वा तत्पतिन्तरिम् । भीतेन महता साधुः किमाश्चर्यमिदन्त्विति । चिन्त्यमानाश्च ते सर्वे बभूवुस्तरिवाहकाः ॥ १४८ ॥ ततो लीलावती साध्वी दृष्ट्वा च विह्वला सती । विललापातिदुःखेन भर्तारञ्चेदमब्रीत् ॥ १४९ ॥ इदानीं नौकया सार्धमदृश्योऽभूदलक्षितः । न जाने केन देवेन हेलया चाऽपहारितः ॥ १५० ॥ सत्यदेवस्य माहात्म्यं किंवा ज्ञातुं न शक्यते । इत्युक्त्वा बिललापाथ तत्रत्यैः स्वजनैः सह । ततो लीलावती कन्यां क्रोडे कृत्वा रुरोद च ॥ १५१ ॥ ततः कलावती कन्या नष्टे स्वामिनि दुःखिता । गृहीत्वा पादुकां तस्यानुगन्तुञ्च मनोदधे ॥ १५२ ॥ कन्यायाश्चरितं दृष्ट्वा सभार्यः सज्जनो वणिक् । अतिशोकेन सन्तप्तश्चिन्तयामास धर्मवित् ॥ १५३ ॥ हृतो हि सत्यदेवेन जामाता सत्यमायया । सत्यपूजां करिष्यामि यथाविभवविस्तरैः ॥ १५४ ॥ इति सर्वान् समाहूय कथ-

यँश्च मनोरथम् । नत्वा च दण्डवद् भूमौ सत्यदेवं पुनः पुनः ॥१५५॥ ततस्तुष्टः सत्यदेवो गगनाद्वणिजम्प्रति । जगाद वचनञ्चेदं नैवेद्यञ्चावमन्य च । आगता स्वामिनं द्रष्टुमतोऽदृश्योऽभवत् पतिः ।१५६। गृहं गत्वा प्रसादञ्च भुक्त्वा चायाति चेत् पुनः । लब्धभर्त्री सुता साधो भविष्यति न संशयः ॥१५७॥ ततस्तत्प्राणदं वाक्यं श्रुत्वा गगनमण्डलात् । क्षिप्रन्तदा गृहं गत्वा प्रसादं प्रतिगृह्य च । अपश्यत् पुनरागत्य पतिं नाविजनैः सह ॥१५८॥ ततः कलावती तुष्टा जगाद पितरं प्रति । एहि तात गृहं यामो विलम्बं कुरुषे कथम् ॥१५९॥ तच्छ्रुत्वा कन्यकावाक्यं सन्तुष्टोऽभूद् वणिक्सुतः । पूजनं सत्यदेवस्य कृत्वा बहुविधानतः । धनैर्बन्धुजनैः सार्द्धं जगाम निजमन्दिरम् ॥१६०॥ मासि मासि च संक्रान्त्यां पूजां कृत्वा यथाविधि । इह लोके सुखं भुक्त्वा चाऽन्ते सत्यपुरं ययौ ॥१६१॥ अथ चान्यत् प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः ! ॥१६२॥

[इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे श्रीसत्यनारायणव्रतकथायां षष्ठोऽध्यायः]

आसीद् वंशध्वजो राजा प्रजापालनतत्परः । प्रसादं सत्यदेवस्य त्यक्त्वा दुःखमवाप सः ॥१६३॥ एकदा स वनं गत्वा हत्वा बहुविधान् मृगान् । आगत्य वटमूले च दृष्ट्वा सत्यस्य पूजनम् ॥१६४॥ गोपाः कुर्वन्ति सन्तुष्टाः नृत्य-गीतपरायणाः (राजा दृष्ट्वा तु दर्पेण नाऽऽगतो न ननाम सः) ॥१६५॥ ततो गोपगणाः सर्वे प्रसादं नृपसन्निधौ । संस्थाप्य पुनरागत्य भुक्त्वा सर्वैर्यथेप्सितम् ॥ १६६ ॥

तत्प्रसादं परित्यज्य राजा दुःखमवाप्तवान्। तस्य पुत्रशतं नष्टं धनधान्यादिकञ्च यत् ॥१६७॥ ततोऽसौ सत्यदेवस्य पूजां गोपगणैः सह। भक्ति-श्रद्धान्वितो भूत्वा चकार विधिना नृपः ॥१६८॥ तद्व्रतस्य प्रभावेण धन-पुत्रान्वितोऽभवत्। इह लोके सुखं भुक्त्वा पश्चात् सत्यपुरं ययौ ॥१७९॥

[य इदं कुरुते सत्यव्रतं परमदुर्लभम्। श्रृणोति च कथां पुण्यां भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ १ ॥ धन-धान्यादिकं तस्य भवेत् सत्यप्रसादतः। दरिद्रो लभते वित्तं बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ २ ॥ भीतो भयात् प्रमुच्येत सत्यमेव न संशयः। ईप्सितं च फलं भुक्त्वा चान्ते सत्यपुरं व्रजेत् ॥३॥ इति वः कथितं विप्राः! सत्यनारायणव्रतम्। यत्कृत्वा सर्वदुःखेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥४॥ विशेषतः कलियुगे सत्यपूजा फलप्रदा। केचित् कालं वदिष्यन्ति सत्यमीशं तमेव हि ॥५॥ सत्यनारायणं केचित् सत्यदेवं तथाऽपरे। नानारूपधरो भूत्वा सर्वेषामीप्सितप्रदम् ॥७॥ य इदं पठते नित्यं श्रृणोति मुनिसत्तमाः! । तस्य नश्यन्ति पापानि सत्यदेवप्रसादतः ॥ ८ ॥]

[इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे श्रीसत्यनारायणव्रतकथायां सप्तमोऽध्यायः]

इति श्रीस्कन्दपुराणे रेवाखण्डे श्रीसत्यनारायणव्रतकथा समाप्ता

अथ सत्यनारायणपूजाविसर्जनम्

तत्र प्रथममार्तिक्यम्—(१) ओं चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च। त्वमेव सर्वज्योतींति आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम्। इदमार्तिक्यं साङ्गाय सपरिवाराय भगवते श्रीसत्यनारायणाय नमः। ततः पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं मालतीमल्लिकापुष्पैर्नागचम्पकसंयुतैः। पुष्पाञ्जलिं गृहाणेदं पादाम्बुजयुगार्पितम्। एष पुष्पाञ्जलिः साङ्गाय सपरिवाराय भगवते श्रीसत्यनारायणाय नमः। तत प्रदक्षिणा—(२) ओं यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च। तानि तानि प्रणश्यन्तु प्रदक्षिण! पदे पदे॥ इति वारचतुष्टयं प्रदक्षिणीकृत्य प्रार्थयेदनेन—ओं विधिहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं यदर्चितम्। पूर्णं भवतु तत्सर्वं त्वत्प्रसादान्महेश्वर॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं धनं धान्यं सुतान् बहून्। कलत्रं धर्ममोक्षौ च देहि देव नमोऽस्तु ते॥ रूपं देहि यशो देहि भाग्यं केशव देहि मे। धर्मान् देहि धनं देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे॥ इति सम्प्रार्थ्य विसर्जयेदनेन—ओं यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय

---

(१) कर्पूरदीपदानफलं कालिकापुराणे—'प्रज्वाल्य देवदेवस्य कर्पूरेण सदीपकम्। अश्वमेधफलं प्राप्य कुलञ्चैव समुद्धरेत्'॥ नृसिंहपुराणे—'घृतेन वाऽपि तैलेन दीपं यो ज्वालयेन्नरः। विष्णवे विधिवद् भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु॥ विहाय सकलं पापं सहस्रादित्यसन्निभः। ज्योतिष्मता विमानेन विष्णुलोके महीयते'॥ इति॥

(२) प्रदक्षिणनियमो यथा, आह्निके—एकश्चण्ड्यां, रवौ सप्त, त्रीणि कुर्याद्विनायके। चत्वारि केशवे कुर्यात्, शिवे चार्धप्रदक्षिणम्॥ इति। प्रदक्षिणफलं स्कन्दपुराणे—अर्घं कृत्वा तु शङ्खे यः प्रकरोति प्रदक्षिणम्। प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥ एवं विष्णुधर्मोत्तरेऽपि—प्रदक्षिणं ये कुर्वन्ति भक्तियुक्तेन चेतसा। न ते यमपुरीं यान्ति यान्ति पुण्यकृताङ्गतिम्॥ तथा सनत्कुमारसंहितायाम्—प्रदक्षिणनमस्कारौ सर्वाभीष्टप्रदावुभौ। पूजान्ते च सदा कार्यौ भोगमोक्षार्थिभिर्नरैः॥ इति॥

मामकीम् । इष्टकामप्रसिद्धयर्थं पुनरागमनाय च ॥ ओं साङ्गसपरिवार भगवन् श्रीसत्यनारायण पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । अथवा प्रत्येकं विसर्जयेत् ।

तद्यथा—ओं गणपत्यादिपञ्चदेवताः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत । (ओं भगवन् विष्णो पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ) ओं लक्ष्मि पूजिताऽसि प्रसीद मयि रमस्व । ओं सरस्वति पूजिताऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । ओं आदिपुरुष पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । ओं अनादिपुरुष पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । ओं इन्द्रादिदशदिक्पालाः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत । ओं नवग्रहाः पूजिताः स्थ क्षमध्वं स्वस्थानं गच्छत । ओं ससीतरामलक्ष्मणौ पूजितौ स्थः क्षमेयाथां स्वस्थानं गच्छतम् । ओं भगवन् श्रीसत्यनारायण पूजितोऽसि प्रसीद, क्षमस्व, स्वस्थानं गच्छ । ओं गौरीशङ्करौ पूजितौ स्थः क्षमेयाथाम्, स्वस्थानं गच्छतम् । ओं ब्रह्मन् पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । ततो दक्षिणा (१) कुशत्रय-तिल-जलान्यादाय—ओमस्यां रात्रौ कृतैतत्साङ्गसायुधसवाहनसपरिवार–भगवन् श्रीसत्यनारायणपूजन–तत्कथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे । ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् । ततः पादोदकं पीत्वा यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वयमपि भुञ्जीत । इति श्रीसत्यनारायणपूजा समाप्ता ।

---

(१) दक्षिणादानोत्तरं प्रथमं पादोदकं पिबेत् । तथा च विष्णुयामले—पीत्वा पादोदकं देवि ! नैवेद्यं स्वयमुद्धरेत् । त्यजेत् पादोदकं यस्तु नैवेद्यं वा त्यजेच्च यः । षष्टिवर्षसहस्राणि रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ इति । विष्णोः पादोदकग्रहणमन्त्रः स्कन्दपुराणे—अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् । विष्णोः पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम् ॥ इति ।

विष्णोः पादोदकमाहात्म्यं तत्रैव—शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं समाचरेत् । स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥ शालग्रामशिलातोयमपीत्वा यस्तु मस्तके । प्रक्षेपणं च कुरुते ब्रह्महा स निगद्यते ॥ इति ।

अथ सोमवारीव्रतपूजाविधिः

तत्र कृत्यनित्यक्रिया नारी अश्वत्थमूले गत्वा गोमयोदकेनोपलिप्य पूजासामग्रीं सम्पाद्य कुशत्रयतिलजलान्यादाय नमोऽद्यामुकमासीय—अमुकपक्षीय सोमवारान्वितायाममावास्यायां तिथौ अमुकगोत्राया अमुकीदेव्याः (१) समस्तपरिवारपरिवृतात्मभर्तृविष्णुलोकावाप्तिकामनया श्रीविष्णु-अश्वत्थादिपूजनपूर्वकफलादियथासम्भवद्रव्यैरष्टोत्तरशतप्रदक्षिणमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य यवतिलानादाय नमो भगवन् श्रीविष्णो इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य अर्घमादाय–नमो व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय सर्गस्थित्यन्तकारिणे। आदिमध्यान्तहीनाय विष्णवे ते नमो नमः॥ एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि नमो भगवते श्रीविष्णवे नमः। इदमनुलेपनम्०। एते यवतिलाः०। एतानि पुष्पाणि०। इदं माल्यम्०। इमे यज्ञोपवीते वृहस्पतिदैवते०। इदं पीतवस्त्रं वृहस्पतिदैवतम्० एतानि दूर्वादलानि०। एतानि तुलसीपत्राणि०। एष धूपः०। एष दीपः०। एतानि गन्धपुष्पनानाविधनैवेद्यानि०। इदमाचमनीयम्०। इदं ताम्बूलम्०। एष पुष्पाञ्जलिः०। एष कर्पूरदीपः नमो भगवते श्रीविष्णवे नमः। इति विष्णुं संपूज्य, पुनरक्षतमादाय नमोऽश्वत्थ इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य, एतानि पाद्यादीनि एषोर्घः नमो ऽश्वत्थाय नमः। इदमनुलेपनम्०। इदमक्षतं नमो ऽश्वत्थाय

---

(१) सधवास्त्रीपक्षे 'अमुकीदेव्याः' इत्यस्याग्रे—'यावज्जीवसौभाग्याऽवैधव्यसमस्तभर्तृपुत्रभ्रातृजामातृगतदीर्घायुष्ट्वसर्वपापक्षयपुत्रपौत्रादिभर्तृसहितयावज्जीववहुतरसौख्यावाप्तिपूर्वक' इत्यूहनीयम्। अत्रापि पुत्रादीनां क्रमिकाऽभावे तत्र तत्रोहः कर्तव्यः।

भविष्ये—सोमवत्याममायां तु व्रतं कृत्वा सती भवेत्। पतिपुत्रधनैः पूर्णा जन्मजन्मनि निश्चितम्॥
विधवा चेत् करोतीदं न पुनर्विधवा भवेत्। तस्मात्स्त्रिया सुभगया कर्तव्यं खलु तद् व्रतम्॥ इति।

नमः। ततः पुष्पाण्यादाय—नमोऽश्वत्थ हुतभुग्भाग गोविन्दस्य सदा प्रिय। अशेषं हर मे पापं वृक्षराज नमोस्तु ते ॥ एतानि पुष्पाणि०। इदं माल्यम्०। इदं विल्वपत्रम्०। इदं दूर्वादलम्०। इदं पीतवस्त्रम्०। एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनानाविधनैवेद्यानि०। इदमाचमनीयम्०। एष पुष्पाञ्जलिः नमोऽश्वत्थाय नमः। इत्यनेन पूजयेत् ॥ पुनः नमो धनवति इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि एषोर्घः नमो धनवत्यै नमः। एवं गन्धाद्युक्तोपचारैः पूजयेत् ॥ एवं नमो गुणवति इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि एषोर्घः नमो गुणवत्यैः नमः। एव गन्धादिभिः पूजयेत्। ततः नमः सोमे इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य नमः सोमायै नमः। इति पाद्यादिभिरुक्तोपचारैः पूजयेत्। ततः शिवशर्मन्निहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि एषोर्घः नमः शिवशर्मणे नमः। एवं गन्धादिभिरुक्तोपचारैरर्चयेत्। ततो नमो देवस्वामिन् इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि नमो देवस्वामिने नमः। इत्यनेन गन्धाद्युक्तोपचारैः पूजयेत्। ततो नमः रुद्रशर्मन् इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि नमो रुद्रशर्मणे नमः। एवं गन्धादिभिः पूजयेत्। ततो नमः काञ्चीपुरि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि नमः काञ्चीपुर्यै नमः। इति गन्धादिभिरर्चयेत्। तत एतानि सदधिपृथुकान्नादीनि सपरिवाराय भगवते श्रीकृष्णाय नमः ॥ ततः—नमः अमावास्ये महाभागे तिथीनां पुण्यदायिनि। सोमेनातिविशिष्टासि त्वामहं प्रणमाम्यतः ॥ इति प्रणम्य—नानाफलादिद्रव्यैरष्टोत्तरशतं प्रदक्षिणं कुर्यात्। तद्यथा दक्षिणहस्तेन फलादिकमादाय—

नमः, अश्वत्थ हुतभुग्भाग गोविन्दस्य सदा प्रिय।
अशेषं हर मे पापं वृक्षराज नमोऽस्तु ते ॥

प्रयत्नेन (असमर्था चेत् स्वासने एव उत्तिष्ठ्य) अष्टोत्तरशतं प्रदक्षिणीकृत्य, फलादीनि समर्प्य प्रणम्य कथां शृणुयात्।

अथ सोमवारीव्रतकथा

सूत उवाच—शरतल्पगतं भीष्ममुपगम्य युधिष्ठिरः। कृतप्रणामो धर्मात्मा इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच—नष्टेषु कुरुमुख्येषु भीमसेनेन कोपिना। तथा परेषु भूतेषु हतेषु युधि जिष्णुना ॥ २ ॥ दुर्योधनापराधेन जातोऽस्माकं कुलक्षयः। न सन्ति भुवि भूपाला बालवृद्धादृते क्वचित् ॥ ३ ॥ अवशिष्टा वयं पञ्च परं भरतसत्तम। एकातपत्रमपि मे भीष्म राज्यं न रोचते ॥ ४ ॥ अश्वत्थामास्त्रदग्धोसावुत्तरागर्भसंभवः। अतो मे द्विगुणं दुःखं पिण्डविच्छेददर्शनात् ॥ ५ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि पितामह वदस्व तत्। येन संपद्यते तात सन्ततिश्चिरजीविनी ॥ ६ ॥ भीष्म उवाच—शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि व्रतराज द्विजोत्तम। यस्य स्मरणमात्रेण सन्ततिश्चिरजीविनी ॥ ७ ॥ अमावास्या यदा पार्थ सोमवारेण संयुता। तस्यामश्वत्थमूले तु पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ ८ ॥ अष्टोत्तरशतं कुर्यात् तस्मिन् वृक्षे प्रदक्षिणम्। तावत्संख्यान्युपादाय रत्नधातुफलानि च ॥ ९ ॥ व्रतराजमिदं राजन् विष्णोः प्रीतिकरं परम्। या शृणोति कथां राजन् जीवगर्भा भवेत् सदा ॥ १० ॥ भविष्यति गुणी पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः। श्रुत्वा पैतामहं वाक्यं प्रत्युवाच युधिष्ठिरः ॥ ११ ॥ युधिष्ठिर उवाच—एतत् सर्वं परं तात विस्तरेण प्रकाशय। केन प्रकाशितं लोके केनेदं विहितं पुरा ॥ १२ ॥ भीष्म उवाच—अस्ति सर्वत्र विख्याता काञ्ची नाम महापुरी। ब्राह्मणक्षत्रविट्शूद्रैः स्वकर्मनिरतैः सदा ॥ १३ ॥ सुवेशैर्नागरजनैः नारीभिस्तु विशेषतः। तस्मिन् राज्ये जनपदे न वैधव्यं न दुःखिता ॥ १४ ॥ तत्र कश्चिद् द्विजश्चाभूद् देवस्वामीति विश्रुतः। तस्य भार्याऽभवच्छुभ्रा नाम्ना धनवती तथा ॥ १५ ॥ यथार्थनामधेया सा सावित्रीप्रतिमा भुवि। तस्यां स जनयामास सप्त पुत्रान् सुखावहान् ॥ १६ ॥ एकां दुहितरं रम्यां नाम्ना गुणवतीं शुभाम्। कृतदारास्ततः पुत्रा विचिरन्त यथासुखम् ॥ १७ ॥ कन्या कुमारी सैवासीदनुरूपप्रियार्थिनी। अत्रान्तरे द्विजः कश्चिद् भिक्षार्थं

समुपागतः ॥ १८ ॥ दीप्यमानः स्वतेजोभिर्मूर्तिमानिव पावकः । पुनर्द्वारं समागत्य प्रयुक्तास्तेन चाशिषः ॥ १९ ॥ देवस्वामिस्नुषाः सद्यः समुत्थाय च सत्वराः । भिक्षां प्रत्येकमानिन्युः ददुस्तस्मै द्विजातये । अवैधव्याशिषः प्रादात् ताभ्यः सौभाग्यसंयुताः ॥ २० ॥ ततो गुणवती मात्रा प्रेषिता सा हि भिक्षवे । विप्राय भिक्षां प्रददौ कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥ २१ ॥ आशिषः प्रददौ तस्यै भव धर्मवती सदा । ता वै गुणवती श्रुत्वा पुनः प्रत्याययौ गृहम् ॥ २२ ॥ मात्रे निवेदयामास आशिषस्तन्नियोजिताः । श्रुत्वा धनवती पुत्रीं करे धृत्वा समाययौ ॥ २३ ॥ प्रणामं कारयामास पुनस्तस्मै द्विजातये । तथैवाशिषमुच्चार्य ददौ तस्यै पुनः पुनः ॥ २४ ॥ श्रुत्वाशिषं धनवती तं विप्रं प्रत्युवाच ह । धनवत्युवाच-- प्रसीद भगवन् विप्र वचनं मेऽवधारय । स्नुषायाः प्रणतायाः मे त्वया दत्ता वराशिषः ॥ २५ ॥ अवैधव्यकराः पुत्रसुखसौभाग्यदायिकाः । सुतायाः प्रणतायास्तु विपरीतवरास्त्वया ॥ २६ ॥ भद्रे धर्मवती भूयाद् इत्युदीर्य्य पुनः पुनः । आशीः प्रदत्ता विप्रर्षे कारणं वद सत्वरम् ॥ २७ ॥ विप्र उवाच--धन्यासि त्वं धनवति श्रूयतां भवितव्यता । अस्यास्तु दत्ता योग्या मे आशीर्वैं दुहितुस्तव ॥ २८ ॥ इयं सप्तपदीमध्ये वैधव्यं समवाप्स्यति । धर्माचरणमत्यर्थं कर्तव्यं परमेनया ॥ २९ ॥ मयाशिषः प्रदत्ता वै सर्वधर्मवती भव । एवं धनवती श्रुत्वा चिन्ताकुलितचेतसा ॥ ३० ॥ उवाच वचनं दीनं प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः । धनवत्युवाच—किं कारणं द्विजश्रेष्ठ यतो वैधव्यमाप्स्यति । इयं सप्तपदीमध्ये तत्र कारणमुच्यताम् ॥ ३१ ॥ द्विज उवाच—अनया पूर्वजनुषि सोमवारान्विता कुहूः । संकल्प्य सोमया सार्धमालस्यान्न पुनः कृता ॥ ३२ ॥ हेलया यत् कृतं कर्म वासुदेवस्य पूजनम् । अवाप्य सुमहद्राज्यं सर्वसन्तानवृद्धये ॥ ३३ ॥ इयन्तु मूढधीस्तेन कर्मणा यमसादनम् । कृतसंकल्पमात्रेण प्रभावेण भविष्यति ॥ ३४ ॥ सा याता पापभोगार्थं विधवात्वमवाप्स्यति । धनवत्युवाच--अपायर्मपि जानासि उपायमपि वेत्स्यसि । वैधव्यभङ्गो येन स्यात्तन्निवेदय माऽचिरम् ॥ ३५ ॥

द्विज उवाच—अस्या वैवाहिकं कर्म यदा भवति शोभने। सोमा ददाति चेत् सत्यं तदा वैधव्यभञ्जनम् ॥ ३६ ॥
धनवत्युवाच—काऽसौ सोमा त्वया प्रोक्ता का जातिः क्व च संस्थितिः। तन्मे वद महाभाग न कालो विस्तरोस्ति
मे ॥ ३७ ॥ द्विज उवाच—सोमा सा रजकीजातिः स्थितिस्तस्यास्तु सिंहले। सा चेदायाति ते वेश्म ततो वैधव्यभञ्जनम्
॥ ३८ ॥ इत्युक्त्वा ब्राह्मणोऽन्यत्र गतो भिक्षाव्रतेच्छया। धनवत्यपि पुत्रेभ्य उवाच वचनं तथा ॥ ३९ ॥ ददाति सोमा
चेत्सत्यं तदा वैधव्यभञ्जनम्। तस्मादस्ति पितुर्भक्तिर्मातुर्वचनगौरवम् ॥ ४० ॥ याहि स्वस्रा च सहितः सोमानयनहेतवे
॥ ४१ ॥ पुत्रा ऊचुः—कुत्र सा वसते सोमा का जातिः केन संगता। न जानीमो गृहं तस्या मार्गं यत्र च विद्यते
॥ ४२ ॥ कथं तत्र च गन्तव्यं मातस्तद्वेश्म कीदृशम् ॥ ४३ ॥ धनवत्युवाच—जात्या सा रजकी सोमा सर्वलक्षणसंयुता।
रमते सिंहलद्वीपे पुत्र गच्छानयस्व ताम् ॥ ४४ ॥ सोमा प्रसिद्धा रजकी निवासः सिंहले द्विपे। तां समानय शीघ्रं त्वं
संप्रसाद्य यथाबलम् ॥ ४५ ॥ पुत्रा ऊचुः—कथं तत्र गमिष्यामो ह्यन्तरोस्ति महार्णवः। पुत्रीस्नेहेन पुत्रान् नो हन्तुमिच्छसि
दुर्भगे ॥ ४६ ॥ देवस्वाम्युवाच—अपुत्रः सप्तभिः पुत्रैरहं यास्यामि सिंहलम्। सोमां तामानयिष्यामि पुत्र्या
वैधव्यभञ्जिनीम् ॥ ४७ ॥ शिवशर्मोवाच—वयं तत्र गमिष्यामो भगिन्या जीवनप्रदाम्। सोमां तामानयिष्यामः सत्यमेतद्धि
सुव्रते ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वा भगिनीयुक्तो गतः सोमान्तिकं प्रति। कालेन महता मार्गे बहून् क्लेशान् सहञ्छनैः
॥ ४९ ॥ दृष्ट्वा महार्णवं तत्र विस्मयं परमं गतः। कथं तात्र गमिष्यामि तीर्त्वा घोरं महार्णवम् ॥ ५० ॥ इति
चिन्ताकुलस्तत्र वटमूले तु तस्थिवान्। तस्मिन् दिने निराहारो ध्यायन्नासीज्जनार्दनम् ॥ ५१ ॥ ततो डिम्भार्थमादाय
सायं मांसं समागतः। शावकाय ददौ मांसं न गृह्णाति क्षुधातुरः ॥ ५२ ॥ शावक उवाच—वृक्षमूले पितः कश्चिद् ब्राह्मणोस्ति
क्षुधातुरः। कथं तस्मिन्नभुक्ते तु भोक्ष्येऽहमामिषं पितः ॥ ५३ ॥ इत्युक्तो गृध्रराजस्तु फलमादाय सत्वरम् ।

ब्राह्मणाय ददौ भुङ्क्ष्व तारयामीत्युवाच ह ॥ ५४ ॥ ततो भुक्त्वा च भगिनी-पुत्री गृध्रेण तारितः । तत्र गत्वा त्वसौ
विप्रो भगिन्या सार्धमन्वहम् ॥ ५५ ॥ निवासं मार्जितं तस्याः प्रातरुत्थाय नीचवत् । गते वहुतरे काले दृष्ट्वा सोमा
समागता ॥ ५६ ॥ केनेदं क्रियते नित्यं मम गेहस्य मार्जनम् । एकदा तत्परीक्षार्थं निभृतं सा स्थिता निशि ॥ ५७ ॥
ददर्श ब्राह्मणसुतौ मार्जयन्तौ गृहाङ्गणम् । लिम्पन्तौ प्राङ्गणं प्रातः सा भ्रात्रा सहिता किल ॥ ५८ ॥ पप्रच्छ सोमा
साश्चर्यं को युवां कथ्यतामिति । ऊचतुस्तां ततः पृष्टावावां ब्राह्मणदारकौ ॥ ५९ ॥ मासान् द्वादश युष्माकं कुर्वः
प्राङ्गणमार्जनम् । सोमोवाच—दग्धास्मि खलु नष्टास्मि ब्राह्मणौ गृहमार्जकौ ॥ ६० ॥ कां गतिं हन्त यास्यामि पापादस्मादसंशयम् ।
पापजातिरहं ख्याता रजकी सर्वतो द्विज ॥ ६१ ॥ कथं त्वं ब्राह्मणो भूत्वा विरुद्धं मे चिकीर्षसि ।
ब्राह्मण उवाच—एपा गुणवती नाम स्वसा मम सुलोचना ॥६२॥ इयं सप्तपदीमध्ये वैधव्यं समवाप्स्यति । तव सान्निध्यमात्रेण
भवेद् वैधव्यभञ्जनम् ॥ ६३ ॥ इत्युक्तं ब्राह्मणेनास्य भिक्षुणामिततेजसा । अतो नित्यं सह स्वस्रा दासकर्म करोमि
ते ॥ ६४ ॥ सोमोवाच—अतः परं न कर्तव्यमायास्यामि गृहं तव । इत्युक्त्वा गृहमागत्या स्नुषाभ्यः प्रत्युवाच ह ॥६५॥
यः कश्चित् मम राज्येऽस्मिन् म्रियते मानवः क्वचित् । तथैवाऽवेक्षणीयोऽसौ यावदागम्यते मया ॥ ६६ ॥ कस्यचिद्वनात्
कोपि न दग्धव्यः कथञ्चन । इत्युक्त्वा सा स्नुषाभ्यस्तु ययौ काञ्चीपुरीं प्रति ॥ ६७ ॥ स्वयमाकाशमार्गेण प्रततार
महार्णवम् । प्राप्ता काञ्चीपुरीं तां तु निमेषात् स्वप्रभावतः ॥ ६८ ॥ सोमां दृष्ट्वा धनवती ततः पूजामकल्पयत् ।
तत्रान्तरे शिवस्वामी मातुरादेशतत्परः ॥ ६९ ॥ स्वसुश्च सदृशं रम्यं वरञ्चावरयत्तदा । ब्राह्मणं रुद्रशर्माणं
चन्द्रवत् प्रियदर्शनम् ॥ ७० ॥ ततः सा रजकी सोमा वैवाहिकमकल्पयत् । शुभे लग्ने सुनक्षत्रे देवस्वामी तु
कन्यकाम् ॥ ७१ ॥ ददौ तस्मै गुणवती गुणिने रुद्रशर्मणे । ततो विवाहकर्मान्ते हूयमाने हुताशने ॥ ७२ ॥
ततः सप्तपदीं कुर्वन् रुद्रशर्मा मृतस्तदा । रुरुदुर्बान्धवाः सर्वे स्थिता सोमा निराकुला ॥ ७३ ॥ आक्रन्दः सुमहा-

नासील्लोकानां तत्र पश्यताम् ॥ ततो घनवती प्राह सोमां दैन्यसमन्विता ॥ ७४ ॥ सोमे किं क्रियतामत्र ब्राह्मणोऽयं
मृतः स्वयम् । ततः सोमा निजं पुण्यं द्विजमृत्युविनाशनम् ॥ ७५ ॥ संकल्प्य जीवयामास तं द्विजं राजसत्तमम् । रुद्रशर्मा
द्विजस्तत्र व्रतराजप्रभावतः ॥ ७६ ॥ उन्मील्य नेत्रे उज्जृम्भ्य सुप्तप्रायादिवोत्थितः । एवं निर्वर्त्य विधिवद् विवाहं
मुदिताऽभवत् ॥ ७७ ॥ सम्पूज्य सोमां विधिवद्धनज्ञानानुसारतः । व्रतराजं ततश्चक्रुः सर्वे तद्गृहवासिनः ॥ ७८ ॥
आमन्त्र्यातो धनवतीं सोमा सा प्रययौ गृहम् । एवमाश्वस्य रजकी जीवयित्वा द्विजोत्तमम् ॥ ७९ ॥ जगाम हर्षसम्पूर्णा
पश्याश्चर्यं युधिष्ठिर । अत्रान्तरे गृहे तस्याः प्रथमस्तनयो मृतः ॥ ८० ॥ पुनः स्वामी मृतस्तस्या जामाता तदनन्तरम् ।
तथैव रक्षिताः सर्वे स्नुपाभिस्तु प्रयत्नतः ॥ ८१ ॥ श्रीविहीनं पुनर्गेहं सर्वे च विलयं गताः । आगच्छन्त्यास्तदा तस्याः
सोमवारान्विता पथि ॥ ८२ ॥ अमावस्या बभूवाथ मृतसंजीविनी खलु । सा ददर्श ततो यान्तीं वृद्धां काञ्चित् स्त्रियं
पथि ॥ ८३ ॥ मूलभारभराक्रान्ता प्राह सातीव दुःखिता । अवतारय मे पुत्रि मूलभारं शिरःस्थितम् ॥ ८४ ॥ एतद्भारभराक्रान्ता
जीवितुं न सहाम्यहम् । सोमोवाच—अमावास्याद्य हे वृद्धे सोमवारेण संयुता । ८५ ॥ व्रतं श्रीवासुदेवस्य
नियमेन मया कृतम् । किं करोमि कृते तस्मिन् मूलकं न स्पृशाम्यहम् ॥ ८६ ॥ विहस्य वृद्धा तां प्राह किं व्रतेन कृतेन
ते । परप्राणांस्तु रक्षन्ती स्वीयं त्यक्त्वा बहिर्गता ॥ ८७ ॥ सोमोवाच—मा मैवं देवि वक्तव्यं करुणाकोमलो हरिः । यो
दुःखी परदुःखेन तस्य नूनं स दुःखहा ॥ ८८ ॥ पुनर्ददर्श यान्तीं सा तूलभारवतीं स्त्रियम् । तयाप्युक्तं तथैवाह तूलकं न
स्पृशाम्यहम् ॥ ८९ ॥ तया चैवोपहसिता सा सस्मार जनार्दनम् । ततो बिल्वदलं प्राप्य नदीतीरभवं पथि ॥ ९० ॥
स्नात्वा विष्णुं समभ्यर्च्य शर्कराभिः प्रदक्षिणम् । सा चकार महाभागा तथैवाष्टोत्तरं शतम् ॥ ९१ ॥ भीष्म उवाच—
यथा प्रदक्षिणं राजन् कृतं शर्करहस्तया । तथा ते जीविताः सर्वे पतिजामातृपुत्रकाः ॥ ९२ ॥ सततञ्च श्रिया युक्तं तद्गृहं

सुविशेषतः । अथायाता महाभागा सोमा स्वभवनं प्रति ॥ ९३ ॥ जीवितं प्रेक्ष्य भर्तारं पुत्रं जामातरं तथा । अतुलं
सुखमासाद्य जगाम कृत्यकृत्यताम् ॥ ९४ ॥ प्रणिपत्य स्नुषाः सर्वाः पप्रच्छुस्तां यशस्विनीम् । मृतास्ते निश्चितं देवि
पतिजामातृपुत्रकाः ॥ ९५ ॥ जीविताश्च पुनः कस्मादाश्चार्यं देवि तद्वद । सोमोवाच—गुणवत्यै मया दत्तं व्रतराजस्य
पुण्यकम् ॥ ९६ ॥ मृतास्तेन विपाकेन पतिजामातृपुत्रकाः । मूलकं न मया स्पृष्टं तूलकं न मया पथि ॥ ९७ ॥ व्रतं च
विहितं तेन पुण्येनैव चिरायुषः । क्रियतां भवतीभिश्च व्रतराजो विधानतः ॥ ९८ ॥ न भविष्यति वैधव्यं सौभाग्यमतुलं
तथा । यदि कश्चित् प्रमादेन विपद्येत यदा तदा ॥ ९९ ॥ सोऽपि व्रतप्रभावेण चिरायुः स्यान्न संशयः । भीष्म उवाच—
स्नुषास्तु कारयामास तदा सोमा व्रतेश्वरम् ॥ १०० ॥ भुक्त्वा भोगान् बहूंस्तत्र पुत्रपौत्रादिभिः सह । सर्वैः परिवृता
तैस्तु विष्णुलोकमवाप सा ॥ १०१ ॥ इत्येतत् कथितं राजन् विष्णुभक्ताय ते सदा । यथोक्तं व्रतमाहात्म्यं व्रतं वैधव्यनाशनम् ॥ १०२ ॥
सोमाव्रतप्रभावेण जातं वैधव्यभञ्जनम् । युधिष्ठिर उवाच—अस्य त्वं व्रतराजस्य विधिं वद सुविस्तरम् ॥ १०३ ॥
कर्तव्यं केन कौरव्य नारीभिः पुरुषेण वा । भीष्म उवाच—अमावास्या तिथिः पार्थ या स्यात् सोमसमन्विता ॥ १०४ ॥
तदा पुण्यतमः कालो देवानामपि दुर्लभः । प्रातरुत्थाय नारीभिः स्नानं कार्यं जलाशये ॥ १०५॥
स्नात्वा मौनेन कौशेयं परिधाय सितं नवम् । गत्वा चाश्वत्थवृक्षस्य समीपं कुरुनन्दन ॥ १०६ ॥ शालग्राम–शिलायां
तु पूजा कार्या प्रयत्नतः । व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥ १०७ ॥ आदिमध्यान्तहीनाय विष्णवे ते
नमो नमः । एवं सम्पूज्य देवेशं पीतवस्त्रैर्यवैः फलैः ॥ १०८ ॥ कुसुमैर्विविधैश्चैव भक्ष्यभोज्यैर्यथाविधि । अश्वत्थपूजनं
कार्यं प्रोक्तमन्त्रेण पाण्डव ॥ १०९ ॥ एवं पूजाविधिं कृत्वा मन्त्रेणानेन पाण्डव । ततः प्रदक्षिणं कार्यं यावदष्टोत्तरं शतम् ॥ ११० ॥
मौक्तिकैः काञ्चनैः रौप्यैर्हीरकैर्मणिभिस्तथा । कांस्यपात्रैस्तथा ताम्रैर्भक्ष्यभोज्यैः पृथक्
पृथक् ॥ १११ ॥ तद्वस्तु पार्थ विप्रेभ्यः पुरन्ध्रीभ्यश्च दीयताम् । विप्रेभ्यश्च यथाशक्ति दक्षिणां भोजनं तथा ॥ ११२ ॥

निरामिषं ततो भुक्त्वा सकृन्नारीगणैः सह । एवं कृत्वा व्रतं दिव्यं सर्वेषामतिदुर्लभम् ॥ ११३ ॥ भीष्म उवाच—एष ते कथितो राजन् व्रतराजविधिर्मया । द्रौपदीञ्च सुभद्राञ्च कारयस्व तथोत्तराम् ॥ ११४ ॥ उत्तरागर्भसंस्थस्तु लप्स्यते जीवितं चिरात् । युधिष्ठिर उवाच—या स्वल्पविभवा नारी काञ्चनाद्यैर्विना कथम् ॥ ११५ ॥ करिष्यति व्रतं सा वै कथं पूर्णं लभेत् फलम् । भीष्म उवाच—फलपुष्पैस्तथा भक्ष्यैर्वस्त्रैराभरणादिभिः ॥ ११६ ॥ कुर्यात् प्रदक्षिणावर्तं सापि पूर्णं लभेत् फलम् । राजन् सा रजकी जात्या शौचाचारविवर्जिता ॥ ११७ ॥ तादृक्प्रभावा संजाता नारायणप्रभावतः । किं पुनर्ब्राह्मणी राज्ञी वैश्या वा यदि जायते ॥ ११८ ॥ व्रतराजमिदं करोति या, क्रियमाणं यदि वा विलोक्यते । निखिलं परिहार्य पातकं नियतं विष्णुपुरं निवासमेति ॥ ११९ ॥

इति श्रीभविष्योत्तरे सोमवारीव्रतकथा समाप्ता ।

अथ विसर्जनम्

कथाश्रवणानन्तरं पादोदकं पत्रान्तरे धृत्वा जलमादाय—यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम् । इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च ॥ नमो विष्णो पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । नमोऽश्वत्थ पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । एवं नमो धनवति पूजितासि प्रसीद० । नमो गुणवति पूजितासि प्रसीद० । नमः सोमे पूजितासि प्रसीद० । नमः शिवशर्मन् पूजितोऽसि प्रसीद० । नमो देवस्वामिन् पूजितोऽसि प्रसीद । नमो रुद्रशर्मन् पूजितोऽसि प्रसीद० । नमः काञ्चीपुरि पूजितासि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ । ततः प्रदक्षिणे समर्पितफलादीनि ब्राह्मणेभ्यः सुवासिनीभ्यश्च दद्यात् । ततो दक्षिणा । कुशत्रयादिकमादाय–नमोऽद्य कृतैतत्सोमवारीव्रतपूजाकथाश्रवणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । इति ब्राह्मणाय प्रतिपादयेद् । ओं स्वस्तीति प्रतिवचनम् । **इति सोमवारीव्रतपूजा समाप्ता ।**

अथ हनुमद्ध्वजदानविधिः

तत्र (१) पूजास्थानं गोमयेनोपलिप्य सपादहस्तद्वयपरिमितं गर्तं खनित्वा तदासन्ने उपरितनप्रदेशे पूजां कुर्यात् । तत्र सङ्कल्पः--कुशत्रयतिलजलान्यादाय-ओं अद्येत्यादि अमुकगोत्रस्य सपरिवारस्य मम श्री अमुकशर्मणः उपस्थितशरीराविरोधेन सकलोपद्रवनिवृत्तिपूर्वकदीर्घायुष्ट्वबलपुष्टिनैरुज्यधनपरिजनसुखसौमनस्याभीष्टसिद्धिकामः (पूर्वाङ्गीकृतं) हनुमद्ध्वजदानं तदङ्गदेवतापूजनञ्चाहं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य तिलेन ओं भूर्भुवः स्वः श्रीससीतरामलक्ष्मणाविहागच्छतम्, इह तिष्ठतम्, इत्यावाह्य, एतानि पाद्यादीनि ओं ससीतरामलक्ष्मणाभ्यां नमः । एवं चन्दनाक्षतपुष्पधूपनैवेद्यानि दद्यात् । ततः ओं भूर्भुवः स्ववायो इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य,, एतानि पाद्यादीनि ओं वायवे नमः । एवं गन्धादिभिः पूजयेत् । ततः ओं नवग्रहा इहागच्छत इह तिष्ठत, एतानि पाद्यादीनि ओं नवग्रहेभ्यो नमः । एवं गन्धादिभिः पूजयेत् । ततः ओं इन्द्रादिदशदिक्पालाः इहागच्छत् इह तिष्ठत, इत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि ओं इन्द्रादिदशदिक्पालेभ्यो नमः, एवं गन्धादिभिः पूजयेत् । तत्र ततस्ताम्रपात्रे सिन्दूरेण रक्तचन्दनेन वा षट्कोणं यन्त्रं विलिख्य तदुपरि हनुमन्तं पूजयेत् । तत्र रक्तपुष्पमेकं गृहीत्वा ओं तप्तकाञ्चनसङ्काशं हृदये विहिताञ्जलिम् । किरीटिनं कुण्डलिनं ध्यायेद्वानरनायकम् ॥ इति ध्यात्वा ओं हनुमन्निहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य--ओं आञ्जनेय महाबाहो रामकार्यार्थतत्पर । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं मम कार्यं च साधय ॥ एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचमनीयानि ओं हनुमते नमः । इदमनुलेपनम्, इदं रक्तचन्दनम्, इदं सिन्दूरम्, इदमक्षतम् हनुमते नमः । ततः पुष्पाण्यादाय-ओं नानागन्धसमायुक्तं देवतानां सुखावहम् । गृहाण कुसुमं देव वायुपुत्र सुखावहम् ॥ एतानि पुष्पाणि हनुमते

---

(१) ध्वजयोग्यवंशलक्षणम्--सरलश्छिद्ररहितो निर्व्रणो मूलसंयुतः । दशहस्ताधिको ग्राह्यो वंशस्तु ध्वजहेतवे ॥ सिन्दूरपिष्टलिप्ताङ्गो रक्तवस्त्रपताककः । अनुच्छिष्टोऽनुल्लङ्घितः साग्रमूलो ध्वजो यतः ॥ कुजवारे नवम्यां वाऽन्यस्यां शुभतिथौ दिने । सार्धयामोत्तरे काले ध्वजदानविधिः शुभः ॥

ममः । इदं वस्त्रं बृहस्पतिदैवतं हनुमते नमः । इमे यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते हनुमते नमः । इदं माल्यम्, एष धूपः, एष दीपः, हनुमते नमः । एतानि लड्डुकानि, इदमाचमनीयं हनुमते नमः । इदं माल्यम्, इदं ताम्बूलं हनुमते नमः, एष पुष्पाञ्जलिः हनुमते नमः । ततो गर्तं खनित्वा तस्मिन् ओं पृथिवि इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यादीनि पृथिव्यै नमः । एवं गन्धादिभिः सम्पूज्य तत्र फल-द्रव्ये दत्त्वा ध्वजमारोप्य मृत्तिकया परितः चतुरस्रां पिण्डिकां निर्माय कुशाक्षतमादाय—ओं सपताकध्वज इहागच्छ इह तिष्ठ; एतानि पाद्यार्घाचमनीयानि ॐ सपताकध्वजाय नमः । ततश्चन्दनाक्षतपुष्पैः सम्पूज्य एतानि मोदकसहितानि लड्डुकानि सपताकध्वजाय नमः । एवं सम्पूज्य अमुं सपताकध्वजं विष्णुदैवतं हनुमतेऽहं ददे । ततः सति सम्भवे वक्ष्यमाणविधिना अग्निं संस्थाप्य ॐ हनुमते नमः स्वाहेति मन्त्रेणाष्टोत्तरशतवारं घृताक्तपवित्रप्रादेशमात्रेण इन्धनेन हवनं कृत्वा—ॐ देवासुराणां सर्वेषां मङ्गलोऽयं महाध्वजः । गृह्यतां सुखहेतोर्मे ध्वज श्रीपवनात्मज ॥ अमुं सपताकध्वजं श्रीहनुमते नमः । ततो हनुमत्प्रणाममन्त्राः——

ॐ अञ्जनीगर्भसम्भूतं वायुपुत्रं महाबलम् । सीताशोकविनाशाय सुग्रीवस्य सदा प्रियम् ॥
प्रणमामि सदा भक्त्या सर्वविघ्नविनाशनम् । रक्षोघ्नं वरदं शीघ्रं गदितं सर्वकामदम् ॥
रामेष्टफाल्गुनसखं रसिनः सुखकारकम् । समुद्रलङ्घनं देवं कार्यसिद्ध्यै नमाम्यहम् ॥

एभिर्मन्त्रैर्दण्डवत्प्रणम्य—ओं रूपं देहि जयं देहि भाग्यं वायुज! देहि मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे ॥ इति वरं सम्प्रार्थ्य पूजनक्रमेण पूजितदेवताः विसृज्य दक्षिणां कुर्यात् । कुशत्रयतिलजलान्यादाय-ओं अद्य कृतैतद्धनुमत्पूजनतद्ध्वजारोपणकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । इति दक्षिणां दत्त्वा यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत् । इति हनुमद्ध्वजदानविधिः ।

अथ द्वादशमासीयसंक्षिप्तगणेशचतुर्थीव्रतपूजाविधिः

कृतनित्यक्रियो व्रती पूजास्थानमागत्य कुशत्रयतिजलान्यादाय—ओं अद्य अमुके मासि अमुके पक्षे चतुर्थ्यां तिथौ (१) अमुकगोत्रस्याऽमुकशर्मणः सकलदुरितोपसर्गापच्छान्तिपूर्वकगणेशप्रीतिकामः श्रीगणेशपूजनमहं करिष्ये। इति सङ्कल्प्य पुष्पाक्षतैः भगवन् श्रीगणेश इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य एतानि पाद्यार्घाचमनीयस्नानीयपुनराचनीयानि ओं गणेशाय नमः। इदमनुलेपनम् ओं गणेशाय नमः। ततः सिन्दूरमादाय—ओं उद्यद्भास्करसंकाशं सन्ध्यावदरुणं प्रभो। वीरालङ्करणं दिव्यं सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥ इदं सिन्दूरम् ओं गणेशाय नमः। ततः इदमक्षतम्०, एतानि पुष्पाणि०, एतानि तुलसोपत्राणि०, एतानि गन्धपुष्पधूपदीपनानाविधनैवेद्यानि०, इदमाचमनीयम् ओं गणेशाय नमः। ततः पुष्पाञ्जलिमादाय—ओं नमः स्तुतोऽसि विघ्नेश सर्वविघ्नहरो भव। ईप्सितं मे वरं देहि नमस्ते भक्तवत्सल ॥ देव देव जगन्नाथ भक्तानां वरदायक। अविघ्नं कुरु देवेश सर्वकार्येषु सर्वदा ॥ एष पुष्पाञ्जलिः ओं गणेशाय नमः। ततो वर प्रार्थयेत्--ओं दीयते गणनाथाय प्रीयतां मे गणाधिपः। सौख्यं सौमनसं नित्यं करोतु गणनायकः ॥ विनायक नमस्तेऽस्तु विघ्नेश सुरपूजित। ईप्सितं मे वरं देहि नमस्ते करुणाकर ॥ आधारः सर्वभूतानामधिरः सर्वकामदः। व्रतेनाऽनेन देवेश सुप्रीतो भव सर्वदा ॥ ततो दण्डवत् प्रणम्य विसर्जयेत्। ओं भगवन् श्रीगणेश पूजितोऽसि प्रसीद क्षमस्व स्वस्थानं गच्छ। ततः ओं अद्य कृतैतद्गणेशपूजनकर्मप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। इति ब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात्।

इति गणेशचतुर्थीपूजा।

---

(१) स्त्रीकर्त्रीके —अमुकगोत्राया अमुकीदेव्याः,इत्यूहः कर्त्तव्यः। तथा 'ॐ' इत्यस्य स्थाने 'नम-' शब्दः प्रयोज्यः।

अथ व्यतीपातव्रतकथा

युधिष्ठिर उवाच—येन व्रतेन चीर्णेन न पश्येद्यमशासनम्। परिपृच्छाम्यहं विप्र व्रतानामुत्तमं व्रतम्॥ तद्व्रतं ब्रूहि विप्रर्षे कृत्वा जगति वै कृपाम्॥ १॥ मार्कण्डेय उवाच—शृणु राजन् व्रतमिदं हर्यश्वेन पुरा कृतम्। तेन राज्ञा तु तद्दत्तं सूकराय च दुःखिने॥ २॥ कदाचिन्मृगयां कर्तुं हर्यश्वो राजसत्तमः। वनमध्ये चरन् राजा दृष्ट्वा तत्रैव सूकरम्॥ ३॥ दग्धगादकटिं चैव दग्धकण्ठमुखादरम्। दृष्ट्वा तथाविधं तं तु कृपा चक्रे नृपोत्तमः॥ ४॥ केन कर्मविपाकेन ह्यवस्थां प्राप्तवानयम्। अहो कष्टमहो कष्टं सूकरेणोपभुज्यते॥ ५॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ इत्येवं मनसि ध्यात्वा राजा तं प्राह सूकरम्। ईदृगो किमवस्था ते तन्मे ब्रूहि च सूकर॥ ६॥ तच्छ्रुत्वा नृपतेर्वाक्यं निःश्वसन् सूकरो मुहुः। स्मृत्वा पुरा कृतं कर्म प्रत्युवाच नृपं प्रति॥ ७॥ शृणु राजन्नहं पूर्वं वैश्यो धनबलान्वितः। आशाकृद्भ्यो न दत्तं हि आश्रितेभ्यश्च किञ्चन॥ ८॥ श्रुताश्च बहवो धर्माः पुराणश्रुतिचोदिताः। तथापि पापबुद्ध्या मे न कृतं चात्मनो हितम्॥ ९॥ आशापाशमनुप्राप्तः शुभाशुभविवर्जितः। कृतवान् पापमेवाहं न किञ्चित् सुकृतं कृतम्॥ १०॥ एकदा तु द्विजः कश्चिद् व्यतीपाते गृहं मम। आगतोऽयाचयन्मां च न किञ्चिद्दत्तवानहम्॥ ११॥ मया निराकृतोऽत्यन्तं वचाभिर्ष्ठुरैस्तथा। व्यतीपातोऽद्य रे वैश्य किञ्चिद्देह्यर्थिने खल॥ १२॥ तन्मेरुरूपं भवति प्राप्स्यसे त्वन्यजन्मनि। कुपितेन मया तस्मै निष्ठुरा वाक् समीरिता॥ १३॥ ततश्च कुपितो विप्रो मम शापमथाददत्। आशाग्निर्दहते यद्वन्ममाङ्गानि पृथक् पृथक्॥ १४॥ तथैव तु तवाङ्गानि दावाग्निः पुरुषाधम। अरण्ये निर्जले देशे निर्जने द्रुवमर्जिते॥ १५॥ तत्र सूकरयोनौ त्वमुत्पन्नो दुःखमाप्नुहि। प्रसादितो मया पश्चात् पुनरप्युक्तवांस्तदा॥ १६॥ उद्धरिष्यति राजा त्वां सूकरत्वे दयापरः। इत्युक्त्वा च जगामाथ अन्यवैश्यगृहं प्रति॥ १७॥ तेन शापेन वै राजन् सूकरत्वमवाप्तवान्। अहं दुःखी च सञ्जातो विजने निर्जले

वने ॥ १८ ॥ राजोवाच--केन त्वं मुच्यसे पापान्माचक्ष्वेह सूकर। येन शक्नोम्यहं कर्तुं तव शापस्य संक्षयम् ॥ १९ ॥ वराह उवाच—श्रूयतां मम राजेन्द्र मुक्तिः स्याद्येन कर्मणा। व्यतीपातव्रतं नाम कृतं राजंस्त्वया पुरा ॥ २० ॥ यथा माता सुतस्येह सर्वत्र सुखकारिणी। तथा व्रतमिदं राजन्निह लोके परत्र च ॥ २१ ॥ यथैवाभ्युदितः सूर्यो ह्यशेषं च तमो दहेत्। व्यतीपातस्तथैवेह सर्वपापं व्यपोहति ॥ २२ ॥ शतमिन्दुक्षये दानं सहस्रं तु दिनक्षये। विषुवे शतसाहस्रं व्यतीपाते त्वनन्तकम् ॥ २३ ॥ यथाविष्णुर्ददातीह नृणां परमनिर्वृतिम्। ददात्येवं न सन्देहस्तथा व्रतमिदं शुभम् ॥ २४ ॥ द्वाविंशतिः समुत्पत्तौ भ्रमणे चैकविंशतिः। पतने दश नड्यस्तु पतिते सप्त नाडिकाः ॥ २५ ॥ यत्फलं लक्षमुत्पत्तौ भ्रमणे कोटिरुच्यते। पतने दशकोट्यस्तु पतिते दत्तमक्षयम् ॥ २६ ॥ अमा पिता च विज्ञेयो माया मन्वादयस्तथा। भगिनी द्वादशी ज्ञेया व्यतीपातस्तु सोदरः ॥ २७ ॥ पितर्युक्तं शतगुणं सहस्रं मातरि स्मृतम्। भगिन्यां दशसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥ २८ ॥ विधानं व्यतिपातस्य शृणु राजन् प्रयत्नतः। माघे वा फाल्गुने मार्गे वैशाखे श्रावणेऽथवा ॥ २९ ॥ व्यतीपातो दिने यस्मिन्नारभेद् व्रतमुत्तमम्। व्यतीपातव्रते तिष्ठञ्छुचिर्भूत्वा समाहितः ॥ ३० ॥ पञ्चगव्यतिलैर्धात्रीफलैः स्नायात् समाहितः। ततः सङ्कल्पयेदेतत् व्रतं सर्वार्थसाधकम् ॥ ३१ ॥ न वारो न च नक्षत्रं न तिथिर्न च चन्द्रमाः। यदा वै जायते भक्तिस्तदा ग्राह्यमिदं व्रतम् ॥ ३२ ॥ किं व्रतैर्बहुभिश्चीर्णैः किं दानैर्बहुभिः कृतैः। सर्वेषां फलमाप्नोति व्यतीपातव्रतेन च ॥ ३३ ॥ इति निश्चित्य मनसा व्यतीपातव्रतं चर। सर्वपापविशुद्ध्यर्थं यावत्संवत्सरो भवेत् ॥ ३४ ॥ आमन्त्र्य तद्दिने विप्रं वेदवेदाङ्गपारगम्। तिलपूर्णं शरावं तु सगुडं गुरवेऽर्पयेत् ॥ ३५ ॥ एव द्वितीये दातव्यं तृतीयेऽपि तथैव च। सघृतं पायसं चैव दातव्यं चोत्तरोत्तरम् ॥ ३६ ॥ एवं संवत्सरस्यान्ते देवस्यार्चां तु कारयेत्। शंखचक्रगदापाणिं पद्महस्तं हिरन्मयम्। वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य पूजयेद् गरुडध्वजम् ॥ ३७ ॥ हेमदानं ततः कुर्याद्यथाविभवसारतः। मन्त्रेणानेन विधिवत्करे धृत्वा सुवर्णकम् ॥ ३८ ॥ नमस्तेऽस्तु व्यतीपात सोमसूर्यसुत प्रभो। दास्यामि

दानं यत्किञ्चित्तदक्षय्यमिहास्तु मे ॥३९॥ गुञ्जामात्रमपि स्वल्पं हेम विप्रकरेऽर्पितम् । हेमाद्रिशिखराकारमनन्तफलदं भवेत् ॥ ४० ॥ इदं क्षेत्रं कुरुक्षेत्रं साक्षान्नारायणो द्विजः। सुवर्णस्य च दानेन प्रीतो भूयाज्जनार्दनः ॥४१॥ तव हस्तौ व्यतीपातो वैधृतिश्चरणौ स्मृतौ। संक्रान्तिर्हृदयस्थानममा वै नाभिरुच्यते ॥ ४२ ॥ पृष्ठं च पूर्णिमा पञ्च पर्वाण्यङ्गानि पञ्च ते। व्यतीपातदिने देव किञ्चिद्विप्रे समर्पितम् ॥ ४३ ॥ भवत्वनन्तफलदं मम जन्मनि जन्मनि । एवं प्रार्थ्य हृषीकेशं नत्वा चैवं पुनः पुनः । तत्सर्वं गुरवे दद्याच्छ्रोत्रियाय कुटुम्बिने ॥ ४४ ॥ व्रतोपदेष्ट्रे विप्राय पुराणज्ञाय भक्तितः। ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु व्रतमेतत्समापयेत् ॥ ४५ ॥ सूकर उवाच—इदं व्रतं त्वया देव गृहीतं पूर्वजन्मनि। स्वर्गापवर्गदं नृणामनन्तफलदं शुभम् ॥४६॥ तेनैवमुक्तो हर्यश्वः सूकरं वाक्यमब्रवीत् । मया कृतमिदं सर्वं तत्फलं ते ददाम्यहम् ॥ ४७ ॥ एवमुक्त्वा नृपश्रेष्ठः सूकराय फलं ददौ। तत्क्षणात्तेन पुण्येन सूकरो मुक्तकिल्बिषः ॥४८॥ मुक्तः सूकरदेहाच्च सर्वाभरणभूषितः। दिव्यं विमानं सम्प्राप्य गतः स्वर्गं च सूकरः ॥ ४९ ॥ न जानन्ति द्विजाः सर्वे व्यतीपातव्रतोत्तमम्। इह लोके च सुखदं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥ ५० ॥ मार्कण्डेय उवाच—अतस्त्वं कुरु राजेन्द्र व्यतीपातव्रतोत्तमम्। सर्वपापक्षयकरं नृणां भवति सर्वदा ॥ ५१ ॥ इदं यः कुरुते मर्त्यः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ य इदं शृणुयाद्भक्त्या विष्णुलोके महीयते। ज्ञानवान् धनवाञ्छ्रीमानिह चैव सुखी भवेत् ॥ ५३ ॥

इति श्रीनारदपुराणोक्ता व्यतीपातव्रतकथा समाप्ता।

अथ वाजसनेयिनाम् (अपात्रक) पार्वणश्राद्धविधिः

तत्र (१) कृतनित्यक्रियो दीपं प्रज्वाल्य पूर्वाभिमुखः—'ओं अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत् पुण्डरोकाक्षं स बाह्याऽभ्यन्तरः शुचिः । ओं पुण्डरीकाक्षः ॥' इति कुशत्रयोदकेन श्राद्धीयद्रव्याण्यात्मानं चाऽभिषिच्य कुशत्रयं पूर्वतस्त्यक्त्वाऽन्यकुशत्रयतिलजलान्यादाय–('ओं अद्य (२) पार्वणश्राद्धमहं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य) गायत्रीं त्रिर्जपित्वा 'ओं देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः ॥' इति त्रिर्जपेत् । ततः कुशत्रययवजलान्यादाय प्राङ्मुख उदङ्मुखो (३) वा पूर्वाग्रकुशत्रयात्मकासनद्वयं प्रत्येकं (४) उत्सृजेत्—'ओं अद्य पित्रादिसम्बन्धि- विश्वेदेवा इदमासनं वो नमः' एवं मातामहादिसम्वन्धिभ्योऽपि । ततोऽपसव्यं कृत्वा द० पातितवाम (५) जानुर्मोटकतिलजलान्यादाय पूर्वंपश्चिमक्रमेणासादितमोटकरूपाणि षडासनानि तिलजलप्रोक्षितानि दक्षिणाग्राणि प्रत्येकं पित्रादिभ्यः पश्चिमत (६) आरभ्योत्सृजेत्—'ओं अद्यामुकगोत्रपितरमुकशर्मन्निदमासन्ते स्वधा' एवं पितामहप्रपितामहयोः । 'ओं अद्यामुकगोत्रमातामहामुकशर्मन्निदमासनं ते स्वधा' एवमेव प्रमातामहवृद्धप्रमातामहयोः । ततः सव्यं कृत्वा पूर्वाऽ-

---

(१) मार्कण्डेयः–'शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्ले श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । कृष्णपक्षेऽपराह्ले च (एकोद्दिष्टे) रौहिणं न तु लङ्घयेत् ॥'

(२) मासपक्षतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः । उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग् भवेत् ॥' इति प्रयोगपारिजातोक्तवचनं तु एकोद्दिष्टश्राद्धादिपरमिति सर्वे निबन्धकाराः । व्रतपद्धतौ तु–पार्वणश्राद्धस्य नित्यत्वादत्र संकल्प एव नास्तीति प्राहुः ।

(३) देवलः–'उदङ्मुखस्तु देवानां पितॄणां दक्षिणामुखः । प्रदद्यात् पार्वणे सर्वं देवपूर्वं विधानतः ॥' (४) कात्यायनः–देवानां सयवा दर्भाः पितॄणां द्विगुणास्तिलाः ॥ (५) श्राद्धपारिजाते–'भूमौ कृत्वा तथा जानु सव्यं पितृपरायणे' इति।

(६) पश्चिमतः, तथाहि श्राद्धसूत्रे—पितॄणामासनं दद्याद् वामतः (पश्चिमपूर्वक्रमेण) कुशान् सुधीः ।

भिमुखः—'ओं विश्वान् देवानमहमावाहयिष्ये' इत्युक्त्वा 'ओं विश्वेदेवा स आगत श्रृणुताम् इम ꣳ हवम्, इदम्बर्हिर्निषीदत' इति देवानावाह्य–'ओं यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः ॥' इति देवान्नपात्रयोः यवान्विकीर्य–'ओं विश्वेदेवाः श्रृणुतेम ꣳ हवम्मे ये अन्तरिक्षे य उपद्यविष्ट। ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥ ओं आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः। ये ह्यत्र योजिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते' इति पठेत्। ततोऽपसव्यं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः 'ओं पितॄनहमावाहयिष्ये' इत्युक्त्वा–'ओं उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आवाह पितॄन् हविषे अत्तवे।' इति पितॄनावाह्य-'ओं अपहता असुरा रक्षा ꣳ सि वेदिषदः' इति पित्राद्यन्नपात्रेषु तिलान्विकीर्य्य—'ओं आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्' इति पठेत्। ततः पूर्वाभिमुखः सव्येन देवार्घपात्रद्वये पूर्वाग्रे पवित्रे धृत्वा अपसव्येन द० पित्राद्यर्घपात्रेषु प्रत्येकं दक्षिणाग्रं पवित्रं धृत्वा, पू० मुखः सव्येन देवार्घपात्रद्वये—'ओं शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः।' इति मन्त्रेण जलं प्रक्षिप्य. अपसव्येन द० पित्राद्यर्घपात्रषट्केऽनेनैव मन्त्रेण पितृतीर्थेन जलं निःक्षिपेत्। ततः पू० सव्येन 'ओं यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवया रातीः' इति मन्त्रेण देवार्घपात्रद्वये प्रत्येकं यवान् विकीर्य्य अपसव्येन द० पित्राद्यर्घपात्रेषु प्रत्येकम् 'ओं तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄँल्लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा' इति मन्त्रेण प्रक्षिपेत्। ततः पू० सव्येन देवार्घपात्रद्वये तूष्णीमेव गन्धपुष्पे प्रक्षिप्य अपसव्येन द० पित्राद्यर्घपात्रेषु षट्सु तूष्णीं गन्धपुष्पे दद्यात्। ततः पू० सव्यं कृत्वैकं देवार्घपात्रं वामहस्ते कृत्वा तत्रस्थितं पवित्रं देवान्नपात्रे पूर्वाग्रं धृत्वा तदुपरि किञ्चिदुदकान्तरं दत्त्वोत्तानपाणिना दक्षिणेन पात्रमाच्छाद्य 'ओं या दिव्या आपः पयसा सम्बभुवुर्या आन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः। हिरण्यवर्णा यज्ञियास्तान आपः शिवाः स ꣳ स्योनाः सुहवा भवन्तु' इति पठित्वा कुशत्रययवजलान्यादाय—'ओं अद्य विश्वेदेवा एष वोऽर्घो नमः'

इति देवान्नपात्रे पवित्रोपरि दक्षिणहस्तेन देवतीर्थेन अर्घ्यं दद्यात् । एवमपरत्राप्यर्घं दद्यात् । ततोऽपसव्यं कृत्वा द० पित्रर्घपात्रं वामहस्ते कृत्वा पित्रन्नपात्रे उत्तराग्रं पवित्रं धृत्वा तदुपरि किञ्चदुदकान्तरं दत्त्वाऽधोमुखदक्षिणहस्तेनार्घपात्रमाच्छाद्य—'ओं या दिव्या०' इति पूर्वोक्तमन्त्रं पठित्वा मोटकतिलजलान्यादाय–'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेषतेऽर्घः स्वधा' इति पित्रन्नपरिवेषणपात्रे पवित्रोपरि दक्षिणहस्तेन पितृतीर्थेन किञ्चिज्जलं दद्यात् । एवमेव (१) पितामहादिभ्यः पञ्चभ्यः । ततः सव्यं कृत्वा पू० पवित्रसहितमवशिष्टजलयुतं देवार्घपात्रद्वयं यथाक्रमं प्रत्येकं देवासनदक्षिणपार्श्वे—'ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्थानमसि' इत्युक्त्वोत्तानमेव धारयेत् । ततोऽपसव्यं कृत्वा द० प्रपितामहार्घपात्रस्थितपवित्रादीनि पितामहार्घपात्रे कृत्वा, तानि सर्वाणि पित्रर्घपात्रे कृत्वा पित्रर्घपात्रं पितामहार्घपात्रोरि, तदुभयं प्रपितामहार्घपात्रोपरि धृत्वा पित्राद्यासनपश्चिमे—'ओं पितृभ्यः स्थानमसि' इत्युक्त्वा तान्यर्घपात्राणि मिलितान्येव न्युब्जीकुर्यात् । ततो वृद्धप्रमातामहार्घपात्रस्थितजलादीनि प्रमातामहार्घपात्रे धृत्वा तान्यपि सर्वाणि पुनर्मातामहार्घपात्रे कृत्वा तत्पात्रं प्रमातोमहार्घपात्रोपरि धृत्वा तदुभयं वृद्धप्रमातामहार्घपात्रोपरि धृत्वा मातामहाद्यासनवामदिशि—'ओं पितृभ्यः स्थानमसि' इत्युक्त्वा मिलितान्येव तान्यर्घपात्राणि न्युब्जीकुर्यात् । तानि दक्षिणादानपर्यन्तं न चालयेत् । ततः पू० सव्यं कृत्वा कुशत्रययवजलान्यादाय—'ओं अद्य विश्वेदेवा एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयज्ञोपवीतवासांसि वो नमः' इति पित्रादिसम्बन्धिभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो यथासंभवं गन्धादिकमुत्सृज्य मातामहादिसम्बन्धिभ्योऽपि तथैव दद्यात् । ततोऽपसव्यं कृत्वा द० मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयज्ञोपवीतवासांसि ते स्वधा' इति यथासम्भवं गन्धादिकं पित्रे दद्यात् । अनेनैव क्रमेण पितामहादिभ्यः पञ्चभ्योऽपि । ततः पू० सव्येन देव-

---

(१) वृहस्पतिः—ऋजून् सव्येन कृत्वा तु दैवे दर्भान् प्रदक्षिणान् । द्विगुणानपसव्येन दद्यात् पित्र्येऽपसव्यवत् ॥

पात्रासनयोश्चतुष्कोणं मण्डलं विधाय अपसव्येन द० पित्रादिपात्रासनेषु चतुष्कोणं मण्डलं कुर्यात्। ततः पू० सव्यं कृत्वा प्राङ्मुखः क्षारव्यञ्जनवर्जितं सघृतं श्राद्धदेयान्नाग्रभागमुद्धृत्यैकस्मिन् पुटके कृत्वा तदन्नं द्विभागं कृत्वा एकत्र यवघृतमधूनि अपरत्र तिलघृतमधूनि दत्त्वा पुटकान्तरे जलं कृत्वा तज्जलेनैव पुटकं वेष्टयित्वा पातितदक्षिणजानुः पूर्वोपकल्पितपुटकान्नं गृहीत्वा तस्मिन्नेव सजलपुटके आहुतिद्वयं जुहुयात्–"ओं अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा ॥१॥ ओं सोमाय पितृमते स्वाहा ॥ २॥" ततोऽपसव्येन द० एकस्मिन् पुटके जलतिलघृतमधुसहितं व्यञ्जनयुतमन्नं कृत्वा मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं इदमन्नमेतद्भूस्वामि (१) पितृभ्यो नमः।' इति स्ववामभागे भूस्वामिनेऽन्नं दद्यात। ततः पू० हुतशेषमन्नं किञ्चिद्देवपात्रद्वये सव्येन दत्त्वा द० अपसव्येन पित्रादिपात्रेषु षट्सु दद्यात्। ततः पू० सव्येन सव्यञ्जनमुत्कृष्टमन्नं सिद्धमामं वा पुरुषाहारक्षमं (२) देवपात्रद्वये, द० अपसव्येन (३) पित्रादिपात्रषट्केषु प्रत्येकं परिविष्य यथासंभवमुपकरणन्तथाऽष्टसु पुटकेषु घृतं जलञ्च तत्रोपनीय, पू० सव्येन देवान्नोपरि यवघृतमधूनि दत्त्वा द० अपसव्येन पित्राद्यन्नोपरि तिलघृतमधूनि दत्त्वा, पू० उ० पाणिना देवान्नं स्पृष्ट्वा—'ओं मधुव्वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः। मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ँ रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥'

---

(१) यमः—'अटव्यः पर्वताः पुण्या नद्यस्तीर्थानि यानि च। सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्नहि तेषु परिग्रहः ॥ (नान्नं दद्यात्)

(२) स्कान्दे—सौवर्णं राजतं वाऽपि कांस्येनाप्यथ निर्मितम्। दत्त्वा भोजनपात्रं तु सम्राड् भवति भूतले ॥
स्मृतिसंग्रहे—कदली-चूत-पनस-जम्बूपत्रार्कचम्पकाः। अलाभे मुख्यपात्राणां ग्राह्याः स्युः पितृकर्मणि ॥

(३) नतु मात्रादि, तथाहि शातातपः—

'अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽहनि। अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥'

बृहस्पतिः—'स्वेन भर्त्रा समं श्राद्धं माता भुंक्ते सुधासमम्। पितामही च स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥' इति।

इति। एवमपरदेवान्नं स्पृशन् पठेत्। ततोऽपसव्येन द०पित्राद्यन्नं स्पृष्ट्वा प्रत्येकम्–'ओं मधुवाते'ति ऋचं पठेत्। ततः पू० सव्येनोत्तानपाणिभ्यां देवान्नं स्पृष्ट्वा 'ओं पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृतेऽअमृतञ्जुहोमि स्वाहा। 'ओं इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पा ँ सुरे॥ ओं कृष्णहव्यमिदं रक्ष मदीयम्' इति पठित्वा वामेन पाणिना पात्रमत्यजन्नेव–'ओं इदमन्नम्' इत्यन्ने 'ओं इमा आपः' इति जले 'ओं इदमाज्यम्' इति घृते 'ओं इदं हविः' इति पुनरन्ने दक्षिणकरांगुष्ठं निवेश्य—'ओं यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः।' इति देवान्नोपरि यवान्विकीर्य्यं–'ओं अद्य विश्वेदेवा इदमन्नं सोपकरणं वो नमः' इति कुशत्रययवजलैरुत्सृज्येत्। एवमेवापरविश्वेदेवान्नमप्युत्सृज्येत्। (यद्युभयत्राप्येकमेवान्नपात्रं भवेत्तदा पुनः पात्रालंभनं न कार्यं 'पृथिवी ते' इति मन्त्रश्च पुनः न पठनीयम् किन्तु—ओं इदँव्विष्णुरित्यत आरभ्य सर्वं पुनः कर्तव्यम्। एवमेवाग्रे पित्राद्यन्नपात्राणां भिन्नत्वे एव तावत्संख्यया 'पृथिवी ते' इति मन्त्र आवर्तते नत्वेकत्वे।) ततोऽपसव्यं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुः पित्रन्नपात्रं व्यस्ताऽनुत्तानपाणिभ्यामालभ्य—'ओं पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृते ऽअमृतञ्जुहोमि स्वाहा। 'ओं इदँव्विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पा ँ सुरे। ओं कृष्ण कव्यमिदं रक्ष मदीयम्' इति पठित्वा—ओं इदमन्नमित्यन्ने, ओं इमा आप इति जले, ओं इदमाज्यमिति घृते, ओं इदं हविरिति पुनरन्ने दक्षिणहस्तांगुष्ठं निवेश्य—'ओं अपहता असुरा रक्षा ँ सि वेदिषदः, इति पित्रन्नोपरि तिलान्विकीर्य्यं मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मंन्निदमन्नं सोपकरणं ते स्वधा' इति पित्रेऽन्नमुत्सृज्येत्। एवमेव पितामहादिभ्योऽपि पञ्चभ्यो दद्यात्। ततस्त्रिर्गायत्रीं जपित्वा—'ओं अधुव्वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः। मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ँ रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ ओं मधु मधु मधु' इति च जपित्वा—'ओं अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद् भवेत्। तत्सर्वंमच्छिद्रमस्तु'। इति

पठेत् । ततो गायत्रीं (१) जपित्वा कुशेषूपविश्य पुनः 'मधुवाता' इति ऋचं 'मधु मधु मध्वि'ति च जपेत् । ततः—'ओं कृणुष्वपाजः प्रसितिन्न पृथ्वीँय्याहि राजे वामवाँ२ इभेन । तृष्वीमनु प्रसितिन्द्रूणानोस्तासि विध्यरक्षसस्तपिष्ठैः ॥ तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः तपूँ ष्यग्ने जुह्वा पतङ्गा नसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ॥ प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमोभवा पायुर्विशो अस्याः अदब्धः । यो नो दूरे अघसँ सो यो अन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरा दधर्षीत् । उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्वन्यमित्राँ२ ओषतात्तिग्महेते । यो नो अरातिँ समिधानचक्रे नीचातन्धक्ष्यत सन्न शुष्कम् । ऊर्द्ध्वो भव प्रतिविध्यास्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने । अवस्थिरातनुहि यातु जूनाञ्जामिमजामिम्प्रमृणीहि शत्रून् । इति भूमौ तिलान्विकीर्य्य—'ओं उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुं य्यईयुरवृका ऋत ज्ञास्तेनोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः । तेषां वयँ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम । ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपिथँव्वसिष्ठाः । तेभिर्य्यमः सँ रराणो हवीँ ष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु 'ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् सभूमिँ सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्' (२) 'ओं आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनां सक्रन्दनो निमिष

---

(१) अपसव्येन दक्षिणाभिमुखः गायत्रीजपे मानमाह मात्स्ये—अभावे सर्वविद्यानां (केवलं) गायत्रीजपमाचरेत् ।

(२) सति सम्भवे सम्पूर्णं पुरुषसूक्तं पठनीयम्—ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । सभूमिँ सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलं पुरुष एवेदँ सर्वं य्यद् भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः पादोऽस्य व्विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ॥ त्रिपादूर्ध्वं उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः । ततो व्विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ततो व्विराडजायत व्विराजो अधिपूरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्यम् । पशूँस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः

एकवीरः शत ँ सेना अजयत्साकमिन्द्रः । ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च । ओं नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्तेऽनेकचक्षुषे । नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः ॥ ओं सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ । चक्रवाकाः सरद्वीपे हंसा सरसि मानसे । तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः । प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदथ । ओं रुचारुचो-र्चिः ।' ततः पिण्डिकापश्चिमदिशि उच्छिष्टसन्निधावास्तृतदक्षिणाग्रकुशत्रयां भूमिं प्रोक्ष्य सर्वप्रकारकमन्नं तिलघृतमधुसहितमेकस्मिन् पुटके कृत्वा सर्वमेकीकृत्य जलेनाप्लाव्य मोटकेन कुशोपरि विकिरेत्—'ओं अनग्निदग्धा ये जीवा ये प्रदग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥' ततः पू० सव्येनाचम्य हरिं स्मृत्वा, द० अपसव्येन त्रिर्गायत्रीं मधुवाता इति ऋचं मधु मधु मध्विति च जपेत् । ततः पिण्डपातनार्थं निर्मितहस्तमात्रचतुरस्रचतुरङ्गुलोच्छ्रितदक्षिणप्लवसैकतपिण्डिकां जलसिक्तां मध्ये स्थानद्वये प्रादेशमात्रं परिमाय वामेन पाणिना दर्भपिञ्जल्यादिकं गृहीत्वा दक्षिणहस्तेनादाय तन्मूलेन वामान्वारब्धदक्षिणकरेण—ओं अपहता असुरारक्षा ँ सि वेदिषदः' इति मन्त्रेण तत्र दक्षिणाग्र प्रादेशमात्रं

ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दा ँ सि जज्ञिरे तस्माद्यजुतस्मादजायत ॥ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ तं यज्ञम्बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषञ्जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधाव्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत्किम्बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ँ शूद्रोऽअजायत ॥ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत । श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत । पद्भ्याम्भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ अकल्पयन् ॥ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तो स्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः ॥ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः । देवा यद्यज्ञन्तन्वाना अबध्नन् पुरुषम्पशुम् ॥ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥

रेखाद्वयं कुर्यात् । कुशमैशान्यां क्षिपेत् । ततो रेखाद्वयोपरि 'ओं ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति । परा पुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्ठाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात्' इति मन्त्रेण ज्वलदङ्गारं प्रत्येकं भ्रामयेत् । अङ्गारं दक्षिणतो निदध्यात् । ततो रेखाद्वयोपरि प्रत्येकं छिन्नमूलकुशानास्तीर्य्यं, पू० सव्येन 'देवताभ्यः' इति त्रिर्जपेत् । ततोऽपसव्यं कृत्वा द० पुटकषट्केषु जलतिलगन्धपुष्पाणि कृत्वा एकं पात्रं वामहस्ते कृत्वा मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नत्रावने निक्ष्व ते स्वधा' इत्युत्सृज्य दक्षिणहस्तेन छिन्नमूलकुशमूलेऽवनेजनन्दत्त्वा पात्रे किञ्चिज्जलमवशेषयेत् । एवमपरपात्रमादाय पितामहाय कुशमध्ये, तृतीयपात्रमादाय प्रतितामहाय कुशाग्रे दद्यात् । पुनः मोटकतिलजलान्यादाय–ओं अद्यामुकगोत्र मातामहामुकशर्मन्नत्रावने निक्ष्व ते स्वधा' इत्युत्सृज्य अपरच्छिन्नमूलकुशमूले मातामहायाऽवनेजनन्दत्त्वा, कुशमध्ये प्रमातामहाय, कुशाग्रे वृद्धप्रमातामहाय च दद्यात् । सर्वपात्रेषु प्रत्यवनेजनार्थं किञ्चित्किञ्चिज्जलमवशेषयेच्च । ततः सव्यञ्जनतिलमध्वाज्ययुतशेषान्नेन षट्पिण्डान्निर्माय मधुघृताभ्यामभिघार्य्यं तदुपरि तिलान् दत्त्वा प्रथमं पिण्डं गृहीत्वा मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेष ते पिण्डः स्वधा' इति प्रथमावनेजनस्थाने पित्रे पिण्डं दद्यात् । एवमेव पितामहप्रपितामहाभ्यां क्रमेण तत्तदवनेजनस्थाने प्रत्येकं पिण्डं दद्यात् । ततो द्वितीयरेखाऽऽस्तृतच्छिन्नमूलकुशमूले मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र मातामहाऽमुकशर्मन्नेष ते पिण्डः स्वधा ॥' इति मातामहायावनेजनस्थाने पिण्डं दद्यात् । एवमेव प्रमातामहवृद्धप्रमातामहाभ्यां तत्तदवनेजनस्थाने प्रत्येकं पिण्डं दद्यात् । ततः प्रपितामहादूर्ध्वं त्रयाणां लेपभागभुजां तृप्तिमुद्दिश्य—'ओं लेपभागभुजस्तृप्यन्तु' इति पठित्वा पित्रादित्रिकपिण्डाधारकुशमूले करं प्रोञ्छय, मातामहादित्रिकपिण्डाधारकुशमूलेऽपि तूष्णीं करं प्रोञ्छेत् । ततः पू० सव्यं कृत्वाऽऽचम्य हरिं स्मृत्वा अपसव्यं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः—'ओं अत्र पितरो

मादयध्वँय्यथाभागमावृषायध्वम् ।' इति पठित्वा वामावर्तेनोदं मुखीभूय प्रीतमनाः क्लान्तिपर्यन्तं श्वासं नियम्य तेनैव पथा परावर्तमानः पितॄन् भास्वरमूर्त्तीन् ध्यायन्-'ओं अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥' इति जपेत् । ततः पूर्वदत्तावशिष्टजलयुतमवनेजनपात्रमादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नत्र प्रत्यवनेनिक्ष्व ते स्वधा' इति प्रथमपिण्डोपरि पित्रे प्रत्यवनेजनं दत्त्वा एवमेव तत्तदवनेजनपात्रावशिष्टजलेन पितामहप्रपितामहपिण्डोपरि प्रत्यवनेजनं दद्यात् । ततो द्वितीयभागे—'ओं अद्यामुकगोत्र मातामहामुकशर्मन्नत्र प्रत्यवनेनिक्ष्व ते स्वधा ।' इति प्रथमपिण्डोपरि मातामहाय प्रत्यवनेजनन्दत्त्वा प्रमातामहवृद्धप्रमातामहाभ्यामपि तत्तत्पिण्डोपरि तथैव प्रत्यवनेजनं दद्यात् । ततो नीवीं विस्रंस्य पू० सव्येनाचम्य हरिं स्मृत्वा, द० अपसव्यं कृत्वा वामेन पाणिना षट् सूत्राण्यादाय दक्षिणेन धृत्वा—'ओं नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्म ॥" इति पठित्वा—'ओं एतद्वः पितरो वासः' इत्युक्त्वा षटसु पित्रादिपिण्डेषु प्रत्येकं सूत्रं धृत्वा मोटकतिलजलान्यादाय- ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेतत्ते वासः स्वधा' इत्युत्सृज्येत् ॥ एवमपरपिण्डपञ्चके पितामहादिनाम्ना चोत्सृज्येत् । ततस्तूष्णीमेव पित्रादीनुद्दिश्य गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलानि प्रतिपिण्डं दद्यात् । ततस्तत्तत्पिण्डशेषान्नं तत्तत्पिण्डसमीपे विकिरेत् । ततः पू० 'ओं शिवा आपः सन्तु' इति सव्येन देवान्नपात्रयोः अपसव्येन द० पित्रादिपात्रेषु जलं, तथैव—'ओं सोमनस्यमस्तु' इति पुष्पम्, 'ओं अक्षतञ्चारिष्टमस्तु' इति तण्डुलांश्च सव्याऽपसव्येन देव-पितृपात्रेषु दद्यात् ।

ततः पू० सव्येन 'ओं विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्' इति देवान्नद्वये प्रत्येकं जलं दद्यात् । द० अपसव्येन पात्रषट्केषु तिलजलादिकं कृत्वा मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणो दत्तैतदन्न-

पानादिकमक्षय्यमस्तु' इति पित्रन्नोपरि अक्षय्योदकं दद्यात्। एवमेव पितामहादीनां षष्ठ्यन्तनाम्ना प्रत्येक-
मुत्सृजेत्। ततः पू० सव्यं कृत्वा पुटकस्थं जलमादाय दक्षिणां दिशं पश्यन् सुमनाः—'ओं अघोराः पितरः सन्तु'
इति पठन् पूर्वाग्रां वारिधारां पित्रादिपिण्डोपरि दद्यात्। एवमपरत्रापि। ततः कृताञ्जलिः आशिषः प्रार्थयेत्—
'ओं गोत्रन्नो वर्द्धतां दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदास्सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयञ्च नोऽअस्तु ॥
अन्नञ्च नो बहुभवेदतिथींश्च लभेमहि। याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कंचन ॥ एताः सत्याशिषः
सन्तु ॥' ततोऽपसव्यं कृत्वा द० सपवित्रकरेण सूत्रादिकं पिण्डेभ्योऽपसार्यं एकं सपवित्रकुशत्रयं पित्रादित्रिकपिण्डो-
परि अपरञ्च मातामहादित्रिकपिण्डोपरि दक्षिणाग्रमास्तीर्य्यं पुटकद्वये सघृतञ्जलं निधाय वामेन पाणिनोद्धृत-
मुदकपात्रं दक्षिणेनादाय—'ओं ऊर्ज्जं व्वहन्तीरमृतं घृतम्पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥'
इति पित्रादिपिण्डस्थसपवित्रकुशोपरि वामान्वारब्धदक्षिणकरेण दक्षिणाग्रां वारिधारां दद्यात्। एवं मातामहादि-
पिण्डस्थसपवित्रकुशोपरि। ततः स्वस्थानस्थितानेव पिण्डान् नम्रीभूयाघ्रायोत्थापयेत् पिण्डाधारकुशादीनि वह्नौ
क्षिपेत्। ततः पू० सव्येन देवार्घपात्रद्वयं सञ्चाल्य, द० अपसव्येन पित्राद्यर्घपात्राण्युत्तानीकृत्य सव्यं कृत्वा
प्राङ्मुखः दक्षिणं जानु नमयित्वा कुशत्रययवजलान्यादाय–'ओं अद्य विश्वेषान्देवानां कृतैतच्छ्राद्धप्रतिष्ठार्थं-
मेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे' इति दक्षिणां दद्यात्। एवमपर-
विश्वेदेवश्राद्धदक्षिणाञ्च दद्यात्। ततोऽपसव्यं (१) कृत्वा दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुः मोटकतिलजलान्या-
दाय—'ओं अद्यामुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणः कृतैतत्पार्वणश्राद्धप्रतिष्ठार्थंमेतावद्द्रव्यमूल्यकरजतं चन्द्रदैवतं
यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे।' इति दक्षिणां दद्यात्। एवं पितामहप्रपितामहयोरपि। ओं अद्यामुक-

---

(१) दक्षिणाभिमुखः अपसव्येन दक्षिणादाने मानं अग्रे ४६६ पृष्ठे टिप्पण्यां द्रष्टव्यम्।

गोत्रस्य मातामहस्यामुकशर्मणः कृतैतत्पार्वणश्राद्धप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकरजतं चन्द्रदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। इति दक्षिणां दत्त्वा प्रमातामहवृद्धप्रमातामहयोरपि पार्वणश्राद्धदक्षिणां दद्यात्। ततः सव्येन प्राङ्मुखः—'ओं देवताभ्यः पितृभ्यश्च' इत्यादि त्रिर्जपेत्। ततोऽपसव्येन द० रक्षादीपं निर्वाप्य (प्रच्छाद्य) सव्येन हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्याचम्य—

'ओं प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥'

ततः 'ओं विष्णुर्विष्णुर्हरिर्हरिः' इति विष्णुं स्मृत्वा श्राद्धीयद्रव्याणि ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत्। तदलाभेजले वा क्षिपेत्।

इति वाजसनेयिनां पार्वणश्राद्धविधिः।

अथ वाजसनेयिनाम् (अपात्रक) एकोद्दिष्टविधिः

(अमावास्यायां पितृपक्षे वा मृतानामेकोद्दिष्टविधिः वर्षकृत्य-द्वितीयभागे द्रष्टव्यः)

तत्र कृत्यनित्यक्रियो व्रती हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य (१) आचम्य शुद्धासने उपविश्य दीपं प्रज्वलय्य परकर्तृकपाकपक्षे (२) 'सिद्धम्' इति पाचिकां पृष्ट्वा पूर्वाभिमुखः 'ओं अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा । यस्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः, ओं पुण्डरीकाक्षः पुनातु' । इति कुशत्रयजलैः श्राद्धीयद्रव्याण्यात्मानञ्चाभिषिच्य कुशत्रयं पूर्वंतस्त्यक्त्वाऽन्यकुशत्रयतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुके मास्यमुके पक्षेऽमुकतिथौ अमुक गोत्रस्य पितुः (३) अमुकशर्मणः सांवत्सरिकैकोद्दिष्टश्राद्धमहं करिष्ये' । इति संकल्पं कुर्यात् । ततो गायत्रीं त्रिर्जपित्वा 'ओं देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः । इति

---

(१) देवलः—प्रथमं प्राङ्मुखः स्थित्वा पादौ प्रक्षालयेज्जलैः । उदङ्मुखो वा दैवत्ये पैतृके दक्षिणामुखः ॥

(२) जावालिः—एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पाकेनैव च सर्वदा । अभावे पाकपात्राणां तदहस्समुपोषणम् ॥
आपद्यग्नौ तीर्थे च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । आमश्राद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रेण तु सदैव हि ॥

(३) मातृपक्षे 'अमुकगोत्रायाः मातुः' इत्याद्यूह्यम् । स्त्रीश्राद्धे ऊहविचारमाह कर्कभाष्ये—आयन्तु नः पितरः, पितॄन् हविषे अत्तवे, अत्र पितर्मादयस्व अमीमदन्तपितरः, नमो वः पितरः, एतद् वः पितरः, तर्पयत मे पितॄन्—इत्यादिवाक्येषु नोहः कर्तव्यः ।

त्रिर्जपेत् । ततोऽपसव्यं (१) कृत्वा दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुर्मोटकादीन्यादाय—‘ओमद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्निदमासनन्ते स्वधा’ इति पूर्वोपकल्पितमोटकरूपमासनं तिलजलप्रोक्षितं दक्षिणाग्रं पितृतीर्थेनोत्सृजेत् । ततः ओं अपहता असुरा रक्षा ँ्सि वेदिषदः । इति भोजनपात्रे तिलान्विकीर्य ओं आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्’ इति पठित्वाऽर्घकरणपुटके दक्षिणाग्रं पवित्रं धृत्वा ‘ओं शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पितये । शंय्योरभिस्रवन्तु नः’ इत्यर्घपात्रे जलं क्षिपेत् । ततः ‘ओं तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः । प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा’ इति पुटके तिलान् क्षिप्त्वा गन्धपुष्पे तूष्णीं क्षिपेत् । ततोऽर्घपात्रं वामहस्ते कृत्वा भोजनपात्रे उत्तराग्रं पवित्रं धृत्वा उदकान्तरेण सिक्त्वा पाणिना पुटकमाच्छाद्य—ओं या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या आन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः । हिरण्यवर्णा यज्ञियास्तान आपः शिवाः स ँ्स्योना सुहवा भवन्तु’ इति पठित्वा मोटकतिलजलान्यादाय—‘ओमद्यामुकगोत्र पितः अमुकशर्मन्नेष तेऽर्घः स्वधा’ इति पवित्रोपरि किञ्चज्जलं दत्त्वा पवित्रमर्घपात्रे निधाय पित्रासनवामभागे ‘ओं पित्रे स्थानमसि’ इति न्युब्जीकुर्यात् । तच्च दक्षिणादानपर्यन्तं न चालयेत् । ततो गन्धादिदानम् । मोटकतिलजलान्यादाय ‘ओं अद्यामुकगोत्र पितः अमुकशर्मन्नेतानि गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूलयज्ञोपवीत-वासांसि ते स्वधा’ इति गन्धादीनि दद्यात् । ‘ततो जलेन भोजनपात्रासनयोश्चतुर्दिशं मण्डलं कृत्वा एकस्मिन् पुटके सव्यञ्जनतिलजलघृतमन्नं कृत्वा किञ्चिदग्रभागमुद्धृत्य मोटकादिना ओं इदमन्नमेतद्भूस्वामिपितृभ्यो नमः’ इति स्ववामभागे भूस्वामिनेऽन्नं दद्यात् । ततः सिद्धमुष्णमन्नं रजतादिपात्रस्थं करा-

---

(१) जमदग्निः—अपसव्येन कर्तव्यं सर्वं श्राद्धं यथाविधि । सूक्तस्तोत्रजपं मुक्त्वा (सपात्रकपक्षे) विप्राणां च विसर्जनम् ॥

भ्याम् आदाय पितरं ध्यायन् भोजनपात्रे पुरुषाहारक्षमं परिविष्य व्यञ्जनादीनि चोपनीय अन्नं सम्मार्ज्य तिलघृतमधूनि दत्त्वा एकस्मिन् पुटके सतिलजलघृतानि कृत्वा पाणिनाऽन्नं स्पृशन्–'ओं मधुव्वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ँ ् रजः मधुद्यौरस्तु नः पिता मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः' ओं मधुमधुमधु' इति च पठित्वा व्यस्तपाणिभ्यामधोमुखं पात्रमालभ्य 'ओं पृथिवीते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽ अमृतेऽ अमृतं जुहोमि स्वाहा। ओं इदं विष्णुर्व्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदं समूढमस्य पा ँ ् सुरे। ओं कृष्णकव्यमिदं रक्ष मदीयम्' इति पठित्वा वामेन पाणिना पात्रमत्यजन्नेव 'ओं इदमन्नम्, ओं इमा आपः, ओं इदमाज्यम्, ओं इदं हविः' इत्यन्ने जले घृते पुनरन्ने च दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठन्निवेश्य 'ओं अपहता असुरा रक्षा ँ ् सि वेदिषदः' इत्यन्नोपरि तिलान्विकीर्य्य मोटकादीन्यादाय—ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्निदमन्नं सोपकरणं ते स्वधा' इत्युत्सृजेत्। ततो वामहस्तमप्युद्धृत्य सव्येन(१)गायत्रीं त्रिर्जपित्वा अपसव्यं कृत्वा 'मधुवातेति 'ओं मधु मधु मध्विति' च जपेत्। ततः 'ओं अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद् भवेत् तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु' इति पठित्वा सव्यं कृत्वा गायत्रीं त्रिर्जपेत्। ततोऽपसव्यं कृत्वा कुशेषूपविश्य पुनर्मधुवातापाठः। 'ओं मधु मधु मध्विति' च जपेत्। ततः 'ओं कृणुष्वपाजः प्रसितिन्न पृथ्वींय्याहि राजे वामवाँ२। इभेन तृष्वी मनु प्रसितिन् द्रूणानोऽस्तासि विध्यरक्षसस्तपिष्ठैः तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृशधृषता शोशुचानः तपु ँ ् ष्यग्ने जुह्वा पतङ्गा न सन्दितो विसृज विष्वगुल्काः प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्व्विशो अस्या अदब्धः। यो नो दूरे अघश ँ ् सो योऽन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत्। उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्वन्य मित्राँ ओषतात्तिग्महेते। यो नो

---

(१) दक्षिणाभिमुखः गायत्रीजपे प्रमाणमाह मात्स्ये—अभावे सर्वविधानां गायत्रीजपमाचरेत्॥ यमदग्निः––अपसव्येन कर्तव्यं सर्वं श्राद्धं यथाविधि। सूक्तस्तोत्रजपं भुक्त्वा·····" अतः 'सव्येन' इत्युक्तम्।

अराति ँ् समिधानचक्रे नीचातं घक्ष्यत सन्नशुष्कम् । ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्या न्यग्ने । अवस्थिरा तनुहि जातु जूनां जामिम जामि प्रमृणीह शत्रून् भूमौ(१)तिलान्विकीर्य्य ओं उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुँय्यईयुरवृका ऋतज्ञास्तेनोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्व्वाणो भृगवः सोम्यासः तेषां वय ँ् सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम । ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वशिष्ठाः । तेभिर्यमः स ँ् रराणो हवी ँ् ष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकामत्तु ॥ ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् सभूमि ँ् सर्व्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् । (२) ओं आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् । संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शत ँ् सेना अजयत् साकमिन्द्रः । 'ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च । नमः शिवाय च शिवतराय च । 'ओं नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्तेऽनेकचक्षुषे । नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः ॥ ओं सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ । चक्रवाकाः सरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥ तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः । प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयन्तेभ्योऽवसीदथ ॥ ओं रुचीरुचीरुचिः' । ततः पिण्डिकापश्चिमदिशि कुशत्रयं धृत्वा जलेन सिक्त्वा एकस्मिन् पुटके तिलघृतमन्नं जलं (३) च कृत्वा 'ओं मध्वि' ति मधु दत्त्वा मोटकेन कुशोपर्यन्नं विकिरेत्—'ओं अनग्निदग्धा ये जीवा ये प्रदग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु पराङ्गतिम् ॥' ततः पूर्वाभिमुखः सव्यं कृत्वाऽऽचम्य हरिं स्मृत्वा गायत्रीं त्रिर्जप्त्वा दक्षिणाभिमुखः अपसव्येन 'मधुव्वाता' इत्यादिकं 'मधु मधु मध्विति च जपेत् । ततः हस्तमात्रचतुरस्र (४)

---

(१) 'अन्नपात्रे' इति पाठान्तरम् । (२) शक्तश्चेत् सम्पूर्णमन्त्रः पठनीयः, तत्तु ४५५ पृष्ठे द्रष्टव्यः ।

(२) वृहस्पतिः—सोदकं विकिरेदन्नं मन्त्रं चेमं समुच्चरेत् ।

(४) मनुः—उपलिप्ते शुचौ देशे स्थानं कुर्वीत सैकतम् । मण्डलं चतुरस्रं वा दक्षिणावनतं महत् (उत्कृष्टम्)

चतुरंगुलोच्छ्रितदक्षिणप्लवपिण्डिकां निर्माय सिक्त्वा दर्भपिञ्जलीं गृहीत्वा—'ओं अपहता असुरा रक्षा ँसि वेदिषदः' इति तन्मूलेन पिण्डस्थाने प्रादेशमात्रां दक्षिणाग्रां रेखामुल्लिख्य दर्भपिञ्जलीमैशान्यां त्यजेत् । ततः 'ॐ ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्ठाँल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात्' इत्यङ्गारं भ्रामयित्वा दक्षिणस्यां क्षिपेत् । ततस्तत्र च्छिन्नमूलकुशानास्तीर्य्यं सव्यं कृत्वा 'देवताभ्यः' इति त्रिर्जपेत् । ततोऽपसव्यं कृत्वा एकस्मिन् पुटके तिलजलगन्धपुष्पाणि कृत्वा पुटकं वामहस्ते धृत्वा मोटकतिलजलान्यादाय—'ॐ अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नत्रावने निक्ष्व ते स्वधा' इति च्छिन्नमूलोपर्यवनेजनं दद्यात् । किञ्चिज्जलं पुटकेऽवशेषयेत् । ततस्तिलजलघृतव्यञ्जनसहितान्नेन बिल्वमात्रं (१) पिण्डं कृत्वा पुनर्मधुघृताभ्यामभिघार्य्य मोटकतिलजलान्यादाय 'ॐ अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेष ते पिण्डः स्वधा' इति च्छिन्नमूलकुशोपरि पिण्डं दद्यात् । ततः पिण्डाधारकुशमूले करं प्रोञ्छ्य सव्यं कृत्वा पूर्वाभिमुख द्विराचम्य हरिं स्मृत्वाऽपसव्यं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः 'ओं अत्र पितर्मादयस्व यथाभाग मावृषायस्व' इति पठित्वा उत्तराभिमुखः श्वासं धृत्वा 'ॐ अमीमदत् पिता यथाभाग मा वृषायिष्ट' इति पश्चिमाभिमुखः श्वासं त्यजेत् । ततोऽवनेजनावशिष्टजलसहितं पुटकमादाय मोटकादीनि चादाय 'ॐ अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नत्र प्रत्यवने निक्ष्व ते स्वधा' इति पिण्डोपरि प्रत्यवनेजनं दद्यात् । ततो नीवीं विस्रंस्य पूर्वाभिमुखः सव्येनाचम्य अपसव्यं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः वामेन पाणिना सूत्रमादाय दक्षिणेन धृत्वा 'ओं नमस्ते पिता रसाय नमस्ते पितः शोषाय नमस्ते पितर्जीवाय नमस्ते पितः स्वधायै नमस्ते पितर्घोराय नमस्ते पितर्मन्यवे नमस्ते पितः पितर्नमस्ते गृहान्नः पितर्देहि सतस्ते पितर्देष्म' इति पठित्वा 'ॐ एतत्तो पितर्वासः' इति मन्त्रेण पिण्डोपरि सूत्रं दद्यात् । ततो मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेतद्वासस्ते स्वधा' इति सूत्रमुत्सृजेत् । ततः पितर-

---

(१) श्राद्धचिन्तामणिः—मध्वाज्यतिलसंयुक्तं सर्वव्यञ्जनसंयुतम् । उष्णमादाय पिण्डन्तु कृत्वा बिल्वफलोपमम्-।।

मुद्दिश्य पिण्डे गन्धपुष्पताम्बूलादीनि तूष्णीं दद्यात् । पिण्डशेषान्नं पिण्डसमीपे विकिरेत् । ततो भोजनपात्रे 'ओं शिवा आपः सन्तु' इति जलम्, 'ओं सौमनस्यमस्तु' इति पुष्पम्, 'ओं अक्षतञ्चारिष्टमस्तु' इत्यक्षतञ्च दद्यात् । ततो पुटके जलं कृत्वा मोटकादोन्यादाय 'ॐ अद्यामुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणो दत्तैतदन्नपानादिकमक्षय्यमुपतिष्ठताम्' इति पिण्डोपरि अक्षय्योदकं दद्यात् । ततः सव्यं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः सन् 'ॐ अघोरः पिताऽस्तु' इति पूर्वाग्रां वारिधारां पिण्डोपरि दद्यात् । ततः पूर्वाभिमुखः कृताञ्जलिः—

'ॐ गोत्रन्नो वर्द्धतां दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद् । बहुदेयञ्च नो ऽअस्तु । अन्नञ्च नो बहुभवेदतिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सन्तु । मा च याचिष्म कञ्चन । एताः सत्याशिषः सन्तु ।

ततोऽपसव्यं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः सपवित्रकरेण पिण्डस्थसूत्रादिकमपनीय दक्षिणाग्रं सपवित्रं पिण्डोपरिनिधाय तदुपरि दक्षिणाग्रां वारिधारां दद्यात्—'ॐ ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कोलालं परिस्रुतं स्वधास्थ तर्पयत मे पितरम्' इति । ततो नम्रीभूय पिण्डमाघ्रायोत्थापयेत् । छिन्नमूलाङ्गारी च वह्नौ क्षिपेत् । ततोऽर्घपात्रमुत्तानीकृत्य (१) दक्षिणां दद्यात्—

---

(१) दक्षिणादानमपि दक्षिणाऽभिमुखः अपसव्येनैव कार्यमिति श्राद्धचिन्तामणौ परिभाषाप्रकरणे म० म० घाचस्पतिः । तथाहि तत्र—'पैत्र्यं कर्म भूगतदक्षिणजानुना प्राचीनावीतिना (अपसव्येन) कार्यम् । उत्सर्गस्तु सतिलमोटकेनैव । अत एव पित्र्यजप-दक्षिणादानयोरपि प्राचीनावीतित्वमेवेति ॥"

प्राचीनावीतीलक्षणम्—

उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीतीत्युच्यते द्विजः । सव्ये प्राचोन आवीती निवीती कण्ठसज्जने ॥ (मनुः २।६३)

उपवीती = सव्य । प्राचीनावीती = अपसव्य । निवीती = कण्ठमालाधारणवत् ।

'ओं अद्यामुकगोत्रस्य पितुः अमुकशर्मण। कृतैतत् सांवत्सरिक-एकोद्दिष्टश्राद्धप्रतिष्ठार्थम् एतावद्द्रव्यमूल्यक-रजतं (१) चन्द्रदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। ततः सव्येन पूर्वाभिमुखः—ओं देवताभ्यः'' इति त्रिर्जपेत्। ततः अपसव्येन हस्ताभ्यां दीपं निर्वाप्य (२) (आच्छाद्य) सव्यं कृत्वा पूर्वाभिमुखः हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य; त्रिः आचम्य विष्णुं ध्यायेत्—

ओं प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥

ओं विष्णु-र्विष्णु-र्हरि-र्हरिः। ततः श्राद्धीयद्रव्याणि ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत्। जले वा क्षिपेत्। पिण्डां छित्वा सूर्यं प्रणमेत्।

इति वाजसनेयिनामेकोद्दिष्टविधिः।

---

(१) नागरखण्डे—उत्तानमर्घ्यपात्रं तु कृत्वा दत्त्वा च दक्षिणाम्। हिरण्यं देवतानां च पितॄणां रजतं तथा॥
वैजवापः—शिवनेत्रोद्भवं यस्माद् रजतं पितृवल्लभम्। अमङ्गलं तद् यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत्॥

(२) देवलः—दीपनिर्वापणात् पुंसः कूष्माण्डच्छेदनात् स्त्रियाः। अचिरेणैव कालेन वंशनाशो भवेद् ध्रुवम्॥
अतः निर्वाप्य=प्रकाशमात्रं पाणिभ्यामवरोधयेदित्यर्थः। तथाहि—

श्राद्धतत्त्वे—निवृत्ते पितृमेधे तु दीपं प्रच्छाद्य पाणिना। प्रक्षाल्य पाणी आचम्य ज्ञातीन् शेषेण भोजयेत्॥ इति

अथ छन्दोगानाम् (अपात्रक) पार्वणश्राद्धविधिः

तत्र (१) कृतनित्यक्रियो दीपं प्रज्वलय्य पूर्वाभिसुखः—'ओं अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याऽभ्यन्तरः शुचिः । ओं पुण्डरीकाक्षः ॥' इति कुशत्रयोदकेन श्राद्धीयद्रव्याण्यात्मानं चाऽभिषिच्य कुशत्रयं पूर्वंतस्त्यक्त्वाऽन्यकुशत्रयतिलजलान्यादाय-('ओं अद्य (२) पार्वणश्राद्धमहं करिष्ये' इति सङ्कल्प्य) गायत्रीं त्रिर्जपित्वा 'ओं देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्विति ॥' त्रिर्जपेत् । ततः कुशत्रययवजलान्यादाय प्राङ्मुख उदङ्मुखो (३) वा दक्षिणोत्तरक्रमेणासादितपूर्वाग्रकुशत्रयात्मकासनद्वयं (४) प्रत्येकमुत्सृज्येत्—'ओं अद्य पित्रादिसम्वन्धि-विश्वेदेवा इदमासनं वो नमः'। एवं मातामहादिसम्वन्धिभ्योऽपि ततोऽपसव्यं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः पातितवाम (५) जानुर्मोटकादीन्यादाय पूर्वपश्चिमक्रमेणासादितमोटकरूपाणि षडासनानि दक्षिणाग्राणि प्रत्येकं पित्रादिभ्यः पश्चिमत (६) आरभ्योत्सृज्येत्–'ओं अद्यामुकगोत्रपितरमुकशर्मन्निदमासन्ते स्वधा' एवं पितामहप्रपितामहयोरपि आसनम् उत्सृज्येत् ।

---

(१) मार्कण्डेयः—'शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः । कृष्णपक्षेऽपराह्णे च (एकोद्दिष्टे) रौहिणं न तु लङ्घयेत् ॥'

(२) मासपक्षतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः । उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग् भवेत् ॥' इति प्रयोगपारिजातोक्तवचनं तु एकोद्दिष्टश्राद्धादिपरमिति सर्वे निवन्धकाराः । व्रतपद्धतौ तु–पार्वणश्राद्धस्य नित्यत्वादत्र संकल्प एव नास्तीति प्राहुः।

(३) देवलः–'उदङ्मुखस्तु (प्राङ्मुखो वा) देवानां पितॄणां दक्षिणामुखः । प्रदद्यात् पार्वणे सर्वं देवपूर्वं विधानतः ॥'

(४) कात्यायनः–देवानां सयवा दर्भाः पितॄणां द्विगुणास्तिलाः ॥

(५) श्राद्धपारिजातः—'भूमौ कृत्वा तथा जानु सव्यं पितृपरायणे' इति ।

(६) पश्चिमत; तथाहि श्राद्धसूत्रे—पितृणामासनं दद्याद् वामपार्श्वे (पश्चिमपूर्वक्रमेण) कुशान् सुधीः ।

तद्यथाः 'ओमद्यामुकगोत्रमातामहामुकशर्मन्निदमासनं ते स्वधा' एवं प्रमातामहवृद्धप्रमातामहयोः। ततः सव्येन पूर्वाऽभिमुखः–'ओं विश्वान् देवानमहमावाहयिष्ये' इत्युक्त्वा ओं विश्वेदेवा स आगत श्रृणुताम् इमं हवम्, इदम्बर्हिर्निषीदत' इति देवानावाह्य–'ओं यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः॥' इति देवान्नपात्रयोर्यवान् विकीर्य–'ओ विश्वेदेवाः श्रृणुतेमं हवम्मे ये अन्तरिक्षे य उपद्यविष्ट। ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम्॥ ओं ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा। यस्मै कृणोति ब्रह्मणस्तं राजन् पारयामसि। ओं आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः। ये यत्र योजिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते॥' इति पठेत्। ततोऽपसव्यं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः 'ओं पितृनहमावाहयिष्ये' इत्युक्त्वा—'ओं उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे।' ओं एत पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः। दत्तास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिञ्च नः सर्ववीरं गच्छत। 'ओं आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्' इति पितॄन् आवाह्य—'ओं अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः।' इति पित्राद्यन्नपात्रेषु षट्सु तिलान् विकीर्य्य पूर्वाभिमुखः सव्येन देवार्घपात्रद्वये पूर्वाग्रे पवित्रे धृत्वा अपसव्येन द० पित्राद्यर्घपात्रेषु प्रत्येकं दक्षिणाग्रं पवित्रं धृत्वा, पू० मुखः सव्येन देवार्घपात्रद्वये—'ओं शन्नोदेवीरभिष्टये शन्नो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः।' इति मन्त्रेण जलं प्रक्षिप्य, अपसव्येन द० पित्राद्यर्घपात्रट्केऽनेनैव मन्त्रेण पितृतीर्थेन जलं निःक्षिपेत्। ततः पू० सव्येन 'ओं यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवया रातोः' इति देवार्घपात्रद्वये प्रत्येकं यवान् विकीर्य्य अपसव्येन द० पित्राद्यर्घपात्रेषु प्रत्येकम् 'ओं तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄँल्लोकान् प्रीणाहि नः स्वधा' इति तिलान् प्रक्षिपेत्। ततः पू० सव्येन देवार्घपात्रद्वये तूष्णीमेव गन्धपुष्पे प्रक्षिप्य अपसव्येन द० पित्राद्यर्घपात्रेषु षट्सु तूष्णीं गन्धपुष्पे दद्यात्। ततः पू० सव्यं कृत्वैकं देवार्घपात्रं वामहस्ते धृत्वा

तत्रस्थितं पवित्रं (१) देवान्नपात्रे पूर्वाग्रं धृत्वा तदुपरि किञ्चिदुदकान्तरं दत्त्वोत्तानपणिना पात्रमाच्छाद्य 'ओं या दिव्या आपः पयसा सम्वभूवुर्या आन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः। हिरण्यवर्णा यज्ञियास्तान आपः शिवाः शंस्योनाः सुहवा भवन्तु' इति पठित्वा कुशत्रययवजलान्यादाय—'ओं अद्य विश्वेदेवा इदमर्घ्यं वो नमः' इति देवान्नपात्रे पवित्रोपरि दक्षिणहस्तेन देवतीर्थेन अर्घ्यं दद्यात् । एवमपरत्राप्यर्घं दद्यात् । ततोऽपसव्यं कृत्वा द० पित्रर्घपात्रं वामहस्ते कृत्वा पित्रन्नपात्रे उत्तराग्रं पवित्रं धृत्वा तदुपरि किञ्चिदुदकान्तरं दत्त्वाऽधोमुखदक्षिणहस्तेनार्घपात्रमाच्छाद्य—'ओं या दिव्या०' इति पूर्वोक्तमन्त्रं पठित्वा मोटकतिलजलान्यादाय–'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मंन् इदमर्घ्यं ये चात्र त्वानुयाँश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा' इति पित्रन्नपरिवेषणपात्रे पवित्रोपरि पितृतीर्थेन किञ्चिज्जलं दद्यात् । एवमेव पितामहादिभ्यः पञ्चभ्यः । ततः सव्यं कृत्वा पू० पवित्रसहितमवशिष्टजलयुतं देवार्घपात्रद्वयं यथाक्रमं प्रत्येकं देवासनदक्षिणपार्श्वे—'ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्थानमसि' इत्युक्त्वोत्तानमेव धारयेत् ।

ततोऽपसव्यं कृत्वा द० प्रपितामहार्घपात्रादीनि पितामहार्घपात्रे कृत्वा, तानि सर्वाणि पित्रर्घपात्रे कृत्वा पित्रर्घपात्रं पितामहार्घपात्रोपरि तदुभयं प्रपितामहार्घपात्रोपरि धृत्वा पित्राद्यासनपश्चिमे—'ओं पितृभ्यः स्थानमसि' इत्युक्त्वा तान्यर्घपात्राणि मिलितान्येव न्युब्जीकुर्यात्। ततो वृद्धप्रमातामहार्घपात्रस्थितजलादीनि प्रमातामहार्घपात्रे धृत्वा तान्यपि सर्वाणि पुनर्मातामहार्घपात्रे कृत्वा तत्पात्रं प्रमातामहार्घपात्रोपरि धृत्वा तदुभयं वृद्धप्रमातामहार्घपात्रोपरि धृत्वा मातामहाद्यासनवामदिशि–'ओं पितृभ्यः स्थानमसि' इत्युक्त्वा मिलितान्येव तान्यर्घपात्राणि न्युब्जी कुर्यात्। तानि दक्षिणादानपर्यन्तं न चालयेत्। ततः पू० सव्यं कृत्वा कुशत्रय(२)यवजलान्यादाय—

---

(१) छन्दोगपरिशिष्टे—अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च । प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥

(२) वृहस्पतिः—ऋजून् सव्येन् कृत्वा तु दैवे दर्भान् प्रदक्षिणान् । द्विगुणानपसव्येन दद्यात् पित्र्येऽपसव्यवत् ॥

'ओं अद्य विश्वेदेवा एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयज्ञोपवीतवासांसि वो नमः' इति पित्रादिसम्बन्धिभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो गन्धादिकमुत्सृज्य मातामहादिसम्बन्धिभ्योऽपि तथैव दद्यात्। ततोऽपसव्यं कृत्वा द० मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयज्ञोपवीतवासांसि ये चात्र त्वानुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा' इति गन्धादिकं पित्रे दद्यात्। अनेनैव पितामहादिभ्यः पञ्चभ्योपि। ततः पू० सव्येन देवपात्रासनयोश्चतुष्कोणं मण्डलं विधाय अपसव्येन द० पित्रादिपात्रासनेषु चतुष्कोणं मण्डलं कुर्यात्। ततः पू० सव्यं कृत्वा प्राङ्मुखः क्षारव्यञ्जनवर्जितं सघृतं श्राद्धदेयान्नाग्रभागमुद्धृत्यैकस्मिन् पुटके कृत्वा तदन्नं द्विभागं कृत्वा एकत्र भागे यवघृतमधूनि अपरत्र तिलघृतमधूनि दत्त्वा पुटकान्तरे जलं कृत्वा तज्जलेनैव पुटकं वेष्टयित्वा पातितदक्षिणजानुः द्विभागकृतपुटकान्नं गृहीत्वा सजलपुटके आहुतिद्वयं जुहुयात् (१)—"ओं स्वाहा, अग्नये कव्यवाहनाय ॥ १ ॥ ओं स्वाहा सोमाय पितृमते ॥ २ ॥' ततोऽपसव्येन द० पुटके जलतिलघृतमधुसहितं व्यञ्जनयुतमन्नं कृत्वा मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं इदमन्नमेतद्भूस्वामि (२) पितृभ्यो नमः।' इति स्ववामभागे भूस्वामिनेऽन्नं दद्यात्। ततः पू० हुतशेषमन्नं किञ्चिद्देवपात्रद्वये सव्येन दत्त्वा द० अपसव्येन पित्रादिपात्रेषु षट्सु दद्यात्। ततः पू० सव्येन सव्यञ्जनमुत्कृष्टमन्नं सिद्धमामं वा पुरुषाहारक्षमं (३) देवपात्रद्वये, द० अपसव्येन पित्रादिपात्रषट्केषु प्रत्येकं परिविष्य संमार्ज्यं च

---

(१) अग्न्यभावे जलेऽपि हवनविधिमाह, मार्कण्डेयः—
आहिताग्निस्तु जुहुयाद् दक्षिणाग्नौ समाहितः। अनाहिताग्निस्त्वौपसदे अग्न्यभावे द्विजेप्सु वै ॥

(२) यमः—'अटव्यः पर्वताः पुण्या नद्यस्तीर्थानि यानि च। सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्नहि तेषु परिग्रहः (नान्नं दद्यात्।)

(३) स्कान्दे—सौवर्णं राजतं वाऽपि कांस्येनाप्यथ निर्मितम्। दत्त्वा भोजनपात्रं तु सम्राड् भवति भूतले ॥
स्मृतिसंग्रहे—कदली-चूत-पनस-जम्बूपत्रार्कचम्पकाः। अलाभे मुख्यपात्राणां ग्राह्याः स्युः पितृकर्मणि ॥

यथासंभवमुपकरणं तथाऽष्टसु पुटकेषु घृतं जलञ्च तत्रोपनीय, पू० सव्येन देवान्नोपरि यवघृतमधूनि दत्त्वा, द० अपसव्येन (१) पित्राद्यन्नोपरि तिलघृतमधूनि दत्त्वा, पू० सव्येन उत्तानपाणिना देवान्नं स्पृष्ट्वा—'ओं मधुव्वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः। मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥' इति। एवमपरदेवान्नं स्पृशन् पठेत्। ततोऽपसव्येन द० पित्राद्यन्नं स्पृष्ट्वा प्रत्येकम्–'ओं मधुवाते'ति ऋचं पठेत्। ततः पू० सव्येनोत्तानपाणिभ्यां देवान्नं स्पृष्ट्वा 'ओं पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृतेऽअमृतञ्जुहोमि स्वाहा। 'ओं इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुले ॥ ओं कृष्णहव्यमिदं रक्ष मदीयम्' इति पठित्वा वामेन पाणिना पात्रमत्यजन्नेव–'ओं इदमन्नम्' इत्यन्ने 'ओं इदमाज्यम्' इति पुटकस्थ घृते 'ओं इदं हविः' इति पुनरन्ने दक्षिणकरांगुष्ठं निवेश्य–'ओं यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातीः।' इति देवान्नोपरि यवान्विकीर्य्य—'ओं अद्य विश्वेदेवा इदमन्नं सोपकरणं वो नमः' इति कुशत्रययवजलैरुत्सृजेत्। एवमेवापरविश्वेदेवान्नमप्युत्सृजेत्।

(यद्युभयत्राप्येकमेवान्नपात्रं भवेत्तदा पुनः पात्रालंभनं न कार्यं 'पृथिवी ते' इति मन्त्रञ्च पुनः न पठनीयम् किन्तु—'ओं इदँविष्णुरित्यत आरभ्य सर्वं पुनः कर्तव्यम्। एवमेवाग्रे पित्राद्यन्नपात्राणां भिन्नत्वे एव तावत्संख्या 'पृथिवी ते' इति मन्त्र आवर्तते नत्वेकत्वे।)

---

(१) पावणे मात्रादिश्राद्धं पृथग् अविहितं, तथाहि—
शातातपः—'अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽहनि। अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥
बृहस्पतिः—'स्वेन भर्त्रा समं श्राद्धं माता भुंक्ते सुधासमम्। पितामही च स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥'
शंखः—अन्वष्टका तथा मातृ-श्राद्धं चैव मृताऽहनि। एकोद्दिष्टं तथा मुक्त्वा त्रिषुद्दिनान्यत् पृथग् भवेत् ॥
षट्त्रिंशन्मते—एकत्वं सा गता भर्तुः पिण्डे गोत्रेऽथ सूतके। न पृथक् पिण्डदानं तु तस्मात् पत्नीषु विद्यते ॥

ततोऽपसव्यं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुः पित्रन्नपात्रं व्यस्तानुत्तानपाणिभ्यामालभ्य—'ओं पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽअमृते ऽअमृतञ्जुहोमि स्वाहा। ओं इदँव्विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पांसुले। ओं कृष्ण कव्यमिदं रक्ष मदीयम्' इति पठित्वा—ओं इदमन्नमित्यन्ने, ओं इमा आप इति जले, ओं इदं हविरिति पुनरन्ने दक्षिणहस्तांगुष्ठं निवेश्य—'ओं अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः, इति पित्रन्नोपरि तिलान् विकीर्य्य मोटकतिलजलान्यादाय— ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्निदमन्नं सोपकरणं वो नमः।' इति पित्रेऽन्नमुत्सृजेत्। एवमेव पितामहादिभ्योऽपि पञ्चभ्यो दद्यात्। ततस्त्रिर्गायत्रीं जपित्वा— 'ओं मधुव्वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः। मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ ओं मधु मधु मधु' इति च जपित्वा—'ओं अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद् भवेत्। तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु' इति। पठेत्। ततो गायत्रीं (१) जपित्वा कुशेषूपविश्य पुनः 'मधुवाता' इति ऋचं 'मधु मधु मध्वि'ति च जपेत्। ततः—'ओं कृणुष्वपाजः प्रसितिन्न पृथ्वीँय्याहि राजे वामवाँ२ इभेन। तृष्वीमनु प्रसितिन्द्रूणानोस्तासि विध्यरक्षसस्तपिष्ठैः॥ तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश घृषता शोशुचानः तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गान सन्दितो विसृज विष्वगुल्काः॥ प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमोभवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः। यो नो दूरे अघसंसो यो ऽअन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरा दधर्षीत्। उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्वन्यमित्राँ२ ओषतात्तिग्महेते। यो नो अरातिं समिधानचक्रे नीचातन्धक्ष्यत सन्न शुष्कम्। ऊर्द्ध्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने। अवस्थिरा तनुहि यातु जूनाञ्जामिमजामिम्प्रमृणीहि शत्रून्' इति भूमौ तिलान्विकीर्य्य— 'ओं उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुँय्यईयुरवृका ऋतज्ञास्तेनोऽवन्तु पितरो

---

(१) अत्रापसव्येन दक्षिणाभिमुखः गायत्रीजपे मानमाह मात्स्ये—अभावे सर्वं विद्यानां (केवलं) गायत्रीजपमाचरेत्॥

हवेषु ॥ अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा ऽअथर्वाणो भृगवः सोम्यासः । तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि द्रेभ सौमनसे स्याम । ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपिथँव्वसिष्ठाः । तेभिर्य्यमः सं रराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ‘ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् सभूमिं सर्वतस्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्’ (१) ‘ओं आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनां संक्रन्दनो निमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः । ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च । नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च । ओं नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्तेऽनेकचक्षुषे । नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः । ओं सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ । चक्रवाकाः सरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे । तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः । प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदथ । ओं नमस्येहं पितॄन् स्वर्गे ये वसन्त्यधिदेवताः । देवैरपि हि तृप्यन्ते ये च श्राद्धे स्वधोत्तरे ॥ ओं रुची रुची रुचिः ।’ ततः पिण्डिकापश्चिमदिशि उच्छिष्टसन्निधौ दक्षिणाग्रकुशत्रयं धृत्वा जलेन सिक्त्वा सर्वप्रकारमन्नं तिलघृतमधुसहितमेकस्मिन् पुटके कृत्वा सर्वमेकीकृत्य जलेनाप्लाव्य मोटकेन कुशोपरि विकिरेत्––ओं अग्निदग्धाश्च ये जीवा ये प्यदग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥’

ततः पू० सव्येनाचम्य हरिं स्मृत्वा, द० अपसव्येन त्रिर्गायत्रीं मधुवाता इति ऋचं मधु मधु मध्विति च जपेत् । ततः पिण्डपातनार्थं निर्मितहस्तमात्र (२) चतुरस्रचतुरङ्गुलोच्छ्रितदक्षिणप्लवसैकतपिण्डिकां जलसिक्तां मध्ये स्थानद्वये प्रादेशमात्रं परिमाय वामेन पाणिना मोटकं गृहीत्वा दक्षिणहस्तेनादाय तन्मूलेन

---

(१) सति सम्भवे सम्पूर्णं पुरुषसूक्तं पठनीयम् । सम्पूर्णं पुरुषसूक्तं ४५५ पृष्ठे—द्रष्टव्यम् ।

(२) श्राद्धचिन्तामणिः—हस्तमात्रा तथा भूमिश्चतुरङ्गुलमुच्छ्रिता । पिण्डनिर्वपणार्थाय रमणीया विशेषतः ॥

वामान्वारब्धदक्षिणकरेण—ओं अपहता असुरारक्षांसि वेदिषदः' इति मन्त्रेण तत्र दक्षिणाग्रं प्रादेशमात्रं रेखाद्वयं कुर्यात् । कुशमैशान्यां क्षिपेत् । ततो रेखाद्वयोपरि प्रत्येकं मुष्टिपरिमितान् नवछिन्नमूलकुशानास्तीर्य्यं, सिक्त्वा पू० सव्येन 'देवताभ्यः' इति त्रिर्जपेत् । ततोऽपसव्यं कृत्वा द० 'ओं एत पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः दत्तास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिञ्च नः सर्ववीरं यच्छत । ॐ आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन् यज्ञे मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् । इति पितॄनावाह्य—पुटकषट्के जलतिलगन्धपुष्पाणि कृत्वा एकं पात्रं वामहस्ते कृत्वा मोटकतिलजलान्यादाय—

'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नत्रावने निक्ष्व ये चात्र त्वानुयाँश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा' इत्युत्सृज्य छिन्नमूलकुशमूलेऽवनेजनन्दत्त्वा जलं स्पृशेत् । एवमपरपात्रमादाय पितामहाय कुशमध्ये, तृतीयपात्रमादाय प्रपितामहाय कुशाग्रे दद्यात् । प्रत्येकं जलस्पर्शः । एवमपरच्छिन्नमूलकुशमूले मोटकादीन्यादाय—ओं अद्यामुकगोत्र मातामहाऽमुकशर्मन्नत्रावने निक्ष्व ये चात्र त्वानुयाँश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा' इत्युत्सृज्य मातामहायाऽवनेजनन्दत्त्वा, जलं स्पृष्ट्वा कुशमध्ये प्रमातामहाय दत्त्वा जलं स्पृष्ट्वा कुशाग्रे वृद्धप्रमातामहाय च दत्त्वा जलं स्पृशेत् । ततः सव्यञ्जनतिलमध्वाज्ययुतशेषान्नेन षट्पिण्डान्निर्माय मधुघृताभ्यामभिघार्य्यं तदुपरि तिलान् दत्त्वा प्रथमं पिण्डं गृहीत्वा मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेष ते पिण्डः ये चात्र त्वानुयाँश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा' इति प्रथमावनेजनस्थाने पित्रे पिण्डं दद्यात् । एवमेव पितामह-प्रपितामहाभ्यां क्रमेण तत्तदवनेजनस्थाने प्रत्येकं पिण्डं दत्त्वा प्रत्येकं जलं स्पृशेत् । ततो द्वितीयरेखाऽऽस्तृतच्छिन्नमूलकुशमूले मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र मातामहाऽमुकशर्मन्नेष ते पिण्डः ये चात्र त्वानुयाँश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा ॥' इति मातामहायावनेजनस्थाने पिण्डं दत्त्वा जलं स्पृशेत् । एवमेव प्रमातामह-वृद्धप्रमातामहाभ्यां तत्तादवनेजनस्थाने प्रत्येकं पिण्डं दत्त्वा जलं स्पृशेत् । ततः प्रपितामहादूर्ध्वं त्रयाणां लेपभागभुजां

तृप्तिमुद्दिश्य—'ओं लेपभागभुजस्तृप्यन्तु' इति पठित्वा पित्रादित्रिकपिण्डाधारकुशमूले करं प्राञ्छय, मातामहादित्रिकपिण्डाधारकुशमूलेऽपि तूष्णीं करं प्रोञ्छेत् ।

ततः पू० सव्यं कृत्वाऽऽचम्य हरिं स्मृत्वा द० अपसव्यं कृत्वा—पिण्डपात्रप्रक्षालनजलानि षट्पुटकेषु निधाय तिलचन्दनपुष्पाणि च दत्त्वा मोटकादीन्यादाय "ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नत्र प्रत्यवने निक्ष्व ये चात्र त्वानुयाँश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा"। इति पित्रे पिण्डोपरि प्रत्यवनेजनं दत्त्वा जलं स्पृष्ट्वा पितामहादिभ्यः पञ्चभ्यो दद्यात् । सर्वत्र जलं स्पृशेच्च । ततः 'ओं अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् ॥' इति पठित्वा वामावर्तेनोदंमुखीभूय प्रीतमनाः क्लान्तिपर्यन्तं श्वासं नियम्य तेनैव पथा परावर्तमानः पितॄन् भास्वरमूर्त्तीन् ध्यायन्—'ओं अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥' इति जपेत् । ततो नीवीं विस्रंस्य पू० सव्येनाचम्य हरिं स्मृत्वा, द० अपसव्यं कृत्वा वामेन पाणिना षट् सूत्राण्यादाय दक्षिणेन धृत्वा—'ओं एतद्वः पितरो वासः' इत्युक्त्वा षट्सु पित्रादिपिण्डेषु प्रत्येकं सूत्रं धृत्वा मोटकतिलजलान्यादाय–'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेतत्ते वासः ये चात्र त्वानुयाँश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा' इत्युत्सृजेत् । जलं स्पृशेच्च । एवमपरपिण्डपञ्चके पितामहादिनाम्ना चोत्सृज्य प्रत्येकं जलस्पर्शः । ततस्तूष्णीमेव पित्रादीनुद्दिश्य गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलानि प्रतिपिण्डं दद्यात् । ततस्तत्तत्पिण्डशेषान्नं तत्तत्पिण्डसमीपे (१) विकिरेत् । ततः पुष्पं गृहीत्वा 'ओं वसन्ताय नमस्तुभ्यं ग्रीष्माय च नमो नमः । वर्षाभ्यश्च शरत्संज्ञ ऋतवे च नमस्सदा । हेमन्ताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शिशिराय च । माससंवत्सरेभ्यश्च दिवसेभ्यो नमस्सदा ॥ इति पठित्वा "ओं वसन्तादि षड्-

---

(१) मा० पुराणे—"अन्नं तु विकिरेद् भक्त्वा भृत्य भागस्तु स स्मृतः ।" इति ।

ऋतुभ्यो नमः” इति पिण्डेषु पुष्पं दत्त्वा षड्ऋतुस्वरूपतया पितॄन् प्रणम्य—पू० ‘ओं शिवा आपः सन्तु’ इति सव्येन देवान्नपात्रयोः अपसव्येन द० पित्रादिपात्रेषु जलं, तथैव—‘ओं सौमनस्यमस्तु’ इति पुष्पम्, ‘ओं अक्षतञ्चारिष्टमस्तु’ इति तण्डुलांश्च सव्याऽपसव्येन देव·पितृपात्रेषु दद्यात् ।

ततः पू० सव्येन ‘ओं विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्’ इति देवान्नद्वये प्रत्येकं जलं दद्यात् । ततः द० अपसव्येन पात्रषट्केषु तिलजलादिकं कृत्वा मोटकतिलजलान्यादाय–‘ओं अद्यामुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणो दत्तैतदन्नपानादिकमक्षय्यमस्तु’ इति पित्रन्नोपरि अक्षय्योदकं दद्यात्। एवमेव पितामहादीनां षष्ठ्यन्तनाम्ना प्रत्येकमुत्सृजेत् । ततः पू० सव्यं कृत्वा पुटकस्थं जलमादाय दक्षिणां दिशं पश्यन् सुमनाः–‘ओं अघोराः पितरः सन्तु’ इति पठन् पूर्वाग्रां वारिधारां पित्रादिपिण्डत्रयोपरि दद्यात्। एवं मातामहादित्रयोपरि । ततः कृताञ्जलिः प्रार्थयेत्—ओं गोत्रं नो वर्धन्ताम् । ततोऽपसव्यं कृत्वा द० सपवित्रकरेण सूत्रादिकं पिण्डेभ्योऽपसार्य एकं सपवित्रकुशत्रयं पित्रादित्रिकपिण्डोपरि अपरञ्च मातामहादित्रिकपिण्डोपरि दक्षिणाग्रमास्तीर्य्य पुटकद्वये सघृतञ्जलं निधाय वामेन पाणिनोद्धृतमुदकपात्रं दक्षिणेनादाय–‘ओं ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतम्पयः कीलालं परिस्रुतम् । स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्॥’इति पित्रादिपिण्डसपवित्रकुशोपरि वामान्वारब्धदक्षिणकरेण दक्षिणाग्रां वारिधारां दद्यात् । एवं मातामहादिपिण्डसपवित्रकुशोपरि । ततः स्वस्थानस्थितानेव पिण्डान् नम्रीभूयाघ्रायोत्थापयेत् पिण्डाधारकुशादीनि वह्नौ क्षिपेत् । ततः पू० सव्येन देवार्घपात्रद्वयं सञ्चाल्य, द० अपसव्येन पित्राद्यर्घपात्राण्युत्तानीकृत्य सव्यं कृत्वा प्राङ्मुखः दक्षिणं जानु नमयित्वा कुशत्रययवजलान्यादाय–‘ओं अद्य पितृसम्बन्धिविश्वेषान्देवानां कृतैतच्छ्राद्धप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहन्ददे’ । इति दक्षिणां दद्यात् । एवं मातामहसम्बन्धिविश्वेदेवश्राद्धदक्षिणाञ्च दद्यात् । ततोऽपसव्यं (१) कृत्वा दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुः मोटकादिक-

---

(१) दक्षिणाभिमुखः अपसव्येन दक्षिणादाने मानं १६६ पृष्ठे टिप्पण्यां द्रष्टव्यम् ।

मादाय—ओं अद्यामुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणः कृतैतत्पार्वणश्राद्धप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकरजतं(१)चन्द्रदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे ।' इति दक्षिणां दद्यात् । एवं पितामहप्रपितामहयोः । ओं अद्यामुकगोत्रस्य मातामहस्यामुकशर्मणः कृतैतत्पार्वणश्राद्धप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकरजतं चन्द्रदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे। इति दक्षिणां दत्त्वा प्रमातामहवृद्धप्रमातामहयोरपि पार्वणश्राद्धदक्षिणां दद्यात् । ततः सव्येन प्राङ्मुखः—'ओं दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदास्सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयञ्च नो ऽअस्तु ॥ अन्नञ्च नो बहुभवेदतिथींश्च लभे महि । याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कं च न ॥ एताः सत्याशिषः सन्तु ॥ ततः 'ओं देवताभ्यः पितृभ्यश्च' इति त्रिर्जपेत् । ततो वामदेवगानम्—

कयान इति महावामदेव ऋषिर्गायत्रीछन्द इन्द्रो देवता अग्निष्टोमादौ द्वितीयपृष्ठे शान्तिकर्मणि च जपे विनियोगः । ओं कयानश्चित्र आभुव दूतो सदा वृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्घसः । दृढाचि दारुजे वसु अभीषुणः सखानामविता जरितृणां शतं भवा स्यूतये । ओं स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु । ओं स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु । ओं प्राजापत्यं वै वामदेव्यं प्रजापतावेव प्रतिष्ठायोत्तिष्ठन्ति । ओं पशवो वै वामदेव्यं पशुष्वेव प्रतिष्ठायोत्तिष्ठन्ति । ओं शान्तिर्वै वामदेव्यं शान्तावेव प्रतिष्ठायोत्तिष्ठन्ति । ओं अत एतत् कर्माछिद्रमस्तु ॥

ततोऽपसव्येन द० रक्षादीपं (२) निर्वाप्य (प्रच्छाद्य) सव्येन हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याचम्य—

'ओं प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् । स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥'

'ओं विष्णुर्विष्णुर्हारर्हरिः' इति विष्णुं स्मृत्वा श्राद्धीयद्रव्याणि ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत् । जले वा क्षिपेत् ।

इति छन्दोगानां पार्वणश्राद्धविधिः ।

---

(१) रजतदक्षिणा द्र० पृ० ४६७ । (२) रक्षादीपं निर्वाप्य=अत्रत्यविचारः द्र० पृ० ४६७ ।

अथ छन्दोगानाम् (अपात्रक) एकोद्दिष्टविधिः

(अमावास्यायां पितृपक्षे वा मृतनामेकोद्दिष्टविधिः वर्षकृत्य-द्वितीयभागे द्रष्टव्यः)

तत्र कृत्यनित्यक्रियो व्रती हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य (१) आचम्य शुद्धासने उपविश्य दीपं प्रज्वाल्य परकर्तृकपाकपक्षे (२) 'सिद्धम्' इति पाचिकां पृष्ट्वा पूर्वाभिमुखः 'ओं अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा । यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः, ओं पुण्डरीकाक्षः पुनातु' । इति कुशत्रयजलैः श्राद्धीयद्रव्याण्यात्मानञ्चाभिषिच्य कुशत्रयं पूर्वंतस्त्यक्त्वाऽन्यकुशत्रयतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुके मास्यमुके पक्षेऽमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य पितुः (३) अमुकशर्मणः सांवत्सरिकैकोद्दिष्टश्राद्धमहं करिष्ये' । इति संकल्पं कुर्यात् । ततो गायत्रीं त्रिर्जपित्वा कुशहस्तः 'ओं देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव भव-

---

(१) देवलः—प्रथमं प्राङ्मुखः स्थित्वा पादौ प्रक्षालयेज्जलैः । उदङ्मुखो वा दैवत्ये पैतृके दक्षिणामुखः ॥

(२) जावालिः—एकोद्दिष्टं तु कर्तव्यं पाकेनैव च सर्वदा । अभावे पाठपात्राणां तदहस्समुपोषणम् ॥
आपद्यग्नौ तीर्थे च ग्रहणे चन्द्र-सूर्ययोः । आमश्राद्धं द्विजैः कार्यं शूद्रेण तु सदैव हि ॥

(३) मातृपक्षे 'अमुकगोत्रायाः मातुः' इत्याद्यूह्यम् । स्त्रीश्राद्धे ऊहविचारमाह कर्कभाष्ये—आयन्तु नः पितरः पितॄन् हविषे अत्तवे, अत्र पितर्मादयस्व अमीमदन्त पितरः, नमो वः पितरः, एतद् वः पितरः, तर्पयत मे पितॄन्—इत्यादिवाक्येषु मातरः, मातॄः, इत्यादि नोहः कर्तव्यः ।

न्त्विति'। इति त्रिर्जपेत। ततोऽपसव्यं (१) कृत्वा दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुर्मोटकादीन्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्निदमासनन्ते स्वधा' इति पूर्वोपकल्पितमोटकरूपमासनं (२) तिलजलप्रोक्षितं दक्षिणाग्रं पितृतीर्थेनोत्सृजेत् । ततः 'ओं अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः' इति पितृभोजनपात्रे तिलान्विकीर्य्य अर्धंकरणपुटके दक्षिणाग्रं पवित्रं धृत्वा 'ओं शन्नोदेवीरभिष्टये शन्नो भवन्तु पीतये। शँय्योरभिस्रवन्तु नः' इत्यर्घपात्रे पितृतीर्थेन जलं दत्त्वा 'ओं तिलोऽसि पितृदेवत्यो गोसवो देवनिर्मितः। प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वधा' इति पुटके तिलान् क्षिप्त्वा गन्धपुष्पे तूष्णीं क्षिपेत। ततोऽर्घंपात्रं वामहस्ते कृत्वा भोजनपात्रे उत्तराग्रं पवित्रं धृत्वा उदकान्तरेण सिक्त्वा अधोमुखहस्तेन पुटकमाच्छाद्य—'ओं या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या आन्तरिक्षा उत पार्थिवीर्याः । हिरण्यवर्णा यज्ञियास्तान आपः शिवाः शं स्योनाः सुहवा भवन्तु' इति पठित्वा मोटकतिलजलान्यादाय—'ओमद्यामुकगोत्र पितः अमुकशर्मन्निदमर्घ्यं ये (३) चात्र त्वानुयाँश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा' इति पवित्रोपरि किञ्चिज्जलं दत्त्वा पवित्रमर्घंपात्रे निधाय पित्रासनवामभागे 'ओं (४) पित्रे स्थानमसि' इति न्युब्जोकुर्यात् । तच्च

---

(१) जमदग्निः—अपसव्येन कर्तव्यं सर्वं श्राद्धं यथाविधि । सूक्तस्त्रोत्रजपं मुक्त्वा (सपात्रके) विप्राणां च विसर्जनम् ॥

(२) "भोजनपात्रासनयोश्चतुर्दिशं मण्डलं कृत्वा" इति वक्ष्यमाणोक्तवाक्यात् मोटकरूपपित्रासनं पितृभोजनपात्रसविधे एव स्थापनीयम् । उपकरणन्तु तदासनाद् दक्षिणपार्श्वे कर्तुर्वामप्रदेशे) एव स्थाप्यः । इति प्रतिभाति ।

(३) छन्दोगपरिशिष्टे–प्रेतश्राद्धे स्त्रियाः श्राद्धे श्राश्रे स्त्रीकर्त्रीके तथा । सपिण्डानां तथा श्राद्धे 'ये चात्र त्वा' न योजयेत् ॥ इति न विस्मर्तव्यम् ।

(४) वाचस्पतिः—कर्मोपदिश्यते यत्र कर्तुरङ्गं न चोच्यते । दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ।

दक्षिणादानपर्यन्तं न (१) चालयेत् । ततो गन्धादिदानम् मोटकतिलजलान्यादाय—'ॐ अद्यामुकगोत्र पितः अमुकशर्मन्नेतानि गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूलयज्ञोपवीत-वासांसि ये चात्र त्वानुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा ।' इति गन्धादीनि दद्यात् । 'ततो जलेन भोजनपात्रासनयोश्चतुर्दिशं मण्डलं कृत्वा एकस्मिन् पुटके सव्यञ्जनतिलघृतमन्नं कृत्वा किञ्चिदग्रभागमुद्धृत्य मोटकादिना 'ओं इदमन्नमेतद्भूस्वामिपितृभ्यो नमः' इति स्ववामभागे भूस्वामिनेऽन्नं (२) दद्यात् । ततः सिद्धमुष्णमन्नं रजतादिपात्रस्थं कराभ्याम् आदाय पितरं ध्यायन् भोजनपात्रे पुरुषाहारक्षमं पितृतीर्थेन परिविष्य तत्पार्श्वे घृतं पानीयं व्यञ्जनानि च पृथक् पृथक् पात्रस्थानि स्थापयेत् । ततः अन्नं सम्मार्ज्य तदुपरि तिलघृतमधूनि दत्त्वा एकस्मिन् पुटके जलं कृत्वा पिण्डकोपरि धृत्वा अधोमुखेन पाणिना पात्रान्नं स्पृशन्—ॐ मधुव्वाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः मधुद्यौरस्तु नः पिता मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ २ । अस्तु सूर्यः माध्वीर्गावो भवन्तु नः' । ततो व्यस्तपाणिभ्यामधोमुखं पात्रमालभ्य 'ओं पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽअमृतेऽअमृतञ्जुहोमि स्वाहा । ओं इदंव्विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पांसुले । ओं कृष्ण कव्यमिदं रक्ष मदीयम्' इति पठित्वा—ओं इदमन्नमित्यन्ने, ओं इमा आपः, इति पुटकस्थजले, ओं इदं हविरिति पुनरन्ने दक्षिणहस्तांगुष्ठं निवेश्य—'ओं अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः' इति पित्रन्नोपरि तिलान् विकीर्य्य मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्निदमन्नं सोपकरणं

---

(१) गृह्यसूत्रे—नोद्धरेत् प्रथमं पात्रं पितृणामर्घ्यपातितम् । आवृतास्तत्र तिष्ठन्ति पितरः शौनकोऽब्रवीत् ॥ उद्धरेत् यदि तत्पात्रं विवृतं च यदा भवेत् । तदासुरं भवेच्छ्राद्धं क्रुद्धैः पितृगणैर्गतैः ॥

(२) यमः—अटव्यः पर्वताः पुण्या नद्यस्तीर्थानि यानि च । सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्नहि तेषु परिग्रहः ॥ (नान्नं दद्यात्)

ति स्वधा ।' इति पित्रेऽन्नमुत्सृजेत् । ततः (१) त्रिर्गायत्रिं जपित्वा 'ओं मधुव्वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्न्नः सन्त्वोषधीः । मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधुद्यौरस्तु नः पिता । मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ओं मधु मधु मधु' इति च जपेत् ।

ततः 'ओं अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद् भवेत् । तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु' । इति पठेत् । ततो गायत्रीं त्रिर्जपित्वा कुशेषूपविश्य पुनः 'मधुवाता' इति ऋचं 'मधु मधु मध्वि'ति च जपेत् । ततः—ओं कृणुष्वपाजः प्रसितिन्न पृथ्विँय्याहि राजे वामवाँ२ इभेन । तृष्वीमनु प्रसितिन्द्रूणानोस्तासि विध्यरक्षसस्तपिष्ठैः ॥ तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः तपूँ ष्यग्ने जुह्वा पतङ्गा नसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः । प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमोभवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः । यो नो दूरे अघसं सो यो ऽअन्त्यग्ने मा किष्टे व्यथिरा दधर्षीत् । उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्वन्यमित्राँ २ ओषतात्तिग्महेते । यो नो अरातिं समिधानचक्रे नीचातन्धक्ष्यत सन्न शुष्कम् । उद्ध्र्वो भव प्रतिविध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने । अवस्थिरा तनुहि यातु जूनाञ्जामिमजामिम्प्रमृणीहि शत्रून् इति भूमौ तिलान्विकीर्य्य—'ओं उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुँय्यईयुरवृका ऋतज्ञास्तेनोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा ऽअथर्वाणो भृगवः । सोम्यासः तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम । ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथँव्वसिष्ठाः । तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु 'ओं (२) सहस्रशोर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् सभूमि सर्वंतस्पृत्वात्वात्यतिष्ठद्द-

---

(१) दक्षिणाभिमुखः गायत्रीजपे प्रमाणमाह मात्स्ये—अभावे सर्वविद्यानां गायत्रीजपमाचरेत् ॥ (पितरं श्रावयेत्) जमदग्निः—अपसव्येन कर्तव्यं सर्वं श्राद्धं यथाविधि । सूक्तस्तोत्रजपं मुक्त्वा (सपात्रके) विप्राणां च विसर्जनम् ॥ अतः मूलेऽत्र क्वचित् सव्येन इत्युक्तम् क्वचित्तु गायत्रीजपस्याऽत्र पितृसम्बन्धित्वाद् 'अपसव्येन' इत्युक्तम् ।

(२) सति सम्भवे सम्पूर्णं पुरुषसूक्तं पठनीयम् सम्पूर्णं पुरुषसूक्तं ४५४—पृष्ठे—द्रष्टव्यम् ।

शांगुलम्'। ओं आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनां संक्रन्दनो निमिष एकवीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः। ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च। नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च। ओं नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्तेऽनेकचक्षुषे। नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः॥ ओं सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ। चक्रवाकाः सरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे। तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदथ॥ ॐ नमस्येहं पितॄन् स्वर्गे ये वसन्त्यधिदेवताः। देवैरपि हि तृप्यन्तु ये च श्राद्धे स्वधोत्तरे॥ ओं रुचो रुचो रुचिः।' ततः पिण्डिकापश्चिमदिशि उच्छिष्टसन्निधौ दक्षिणाग्रकुशत्रयं धृत्वा सिक्त्वा सर्वप्रकारमन्नं तिलघृतमधुसहितमेकस्मिन् पुटके कृत्वा सर्वमेकीकृत्य जलेनाप्लाव्य मोटकेन कुशोपरि विकिरेत्—'ओं अग्निदग्धाश्च ये जीवा येप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥

ततः पू० सव्येनाचम्य हरिं स्मृत्वा, गायत्रीं त्रिर्जपित्वा द० अपसव्येन मधुवाता इति ऋचं मधु मधु मध्विति च जपेत्। ततः पिण्डपातनार्थं निर्मितहस्तमात्र (१) चतुरस्रचतुरंगुलोच्छ्रितदक्षिणप्लवसैकतपिण्डिकां जलसिक्तां मध्ये प्रादेशमात्रं परिमाय वामेन पाणिना मोटकं गृहीत्वा दक्षिणहस्तेनादाय तन्मूलेन वामान्वारब्धदक्षिणकरेण—'ओं अपहता असुरारक्षांसि वेदिषदः' इति मन्त्रेण तत्र दक्षिणाग्रं प्रादेशमात्रं रेखां कुर्यात्। कुशमैशान्यां क्षिपेत्। ततो रेखोपरि मुष्टिपरिमितान् नवछिन्नमूलकुशानास्तीर्य्यं, सिक्त्वा पू० सव्येन 'देवताभ्यः' इति त्रिर्जपेत्। ततोऽपसव्यं कृत्वा द० पुटके जलतिलगन्धपुष्पाणि कृत्वा वामहस्ते निधाय दक्षिणेन मोटकतिलजलान्यादाय—ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नत्रावने निक्ष्व ये चात्र त्वानुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा'। इत्युत्सृज्य दक्षिणहस्तेन छिन्नमूलकुशमूलेऽवनेजनं दत्त्वा जलं स्पृशेत्। ततस्तिल-घृत-मधु-सहितं बिल्वप्रमाणपिण्डं

---

(१) श्राद्धचिन्तामणिः—हस्तमात्रा तथा भूमिश्चतुरंगुलमुच्छ्रिता। पिण्डनिर्वापणार्थाय रमणीया विशेषतः॥

निर्माय वामहस्ते धृत्वा, मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेष ते पिण्डः ये चात्र त्वानुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा'। इति अवनेजनस्थाने पिण्डं दत्त्वा जलं स्पृशेत्। ततः पिण्डाधारकुशमूले करं प्रोञ्छ्य पू० सव्यं कृत्वाऽऽचम्य हरिं स्मृत्वा अपसव्यं कृत्वा दक्षिणाभिमुखः—पिण्डपात्रप्रक्षालनजलं पुटके निधाय तिलचन्दनपुष्पाणि च दत्त्वा वामहस्ते कृत्वा मोटकादीन्यादाय—"ॐ अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नत्र प्रत्यवने निक्ष्व ये चात्र त्वानुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा"। इति पिण्डोपरि प्रत्यवनेजनं दत्त्वा जलं स्पृशेच्च। ततः 'ओं अत्र पितर्मादयस्व यथाभागमावृषायस्व॥' इति पठित्वा वामावर्तनैशान्याभिमुखीभूय प्रीतमनाः क्लान्तिपर्यन्तं श्वासं नियम्य तेनैव पथा परावर्तमानः पितॄन् भास्वरमूर्त्तीन् ध्यायन्—'ओं अमीमदत पिता यथाभागमावृषायिषत॥' इति पठन् श्वासं त्यजन् दक्षिणां दिशं मुखमानयेत्। ततो दक्षिणहस्तेन नीवीं विस्रंस्य पू० सव्येनाचम्य हरिं स्मृत्वा, द० अपसव्यं कृत्वा वामेन पाणिना सूत्रमादाय दक्षिणेन धृत्वा—'ओं एतत्ते पितर्वासः' इत्युक्त्वा पिण्डोपरि सूत्रं धृत्वा मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेतत्ते वासो ये चात्र त्वानुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा'। इत्युत्सृजेत्। जलं स्पृशेच्च। ततस्तूष्णीमेव गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलानि पिण्डोपरि दद्यात्। ततस्तत्पिण्डशेषान्नं पिण्डसमीपे (१) विकिरेत्। ततः पुष्पं गृहीत्वा 'ॐ वसन्ताय नमस्तुभ्यं ग्रीष्माय च नमो नमः। वर्षाभ्यश्च शरत्संज्ञ ऋतवे च नमस्सदा। हेमन्ताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शिशिराय च। माससंवत्सरेभ्यश्च दिवसेभ्यो नमस्सदा॥ इति पठित्वा "ॐ वसन्तादि षड्ऋतुभ्यो नमः" इति पिण्डे पुष्पं दत्त्वा षड्ऋतुस्वरूपतया पितॄन् प्रणम्य—पितृभोजनपात्रोपरि 'ओं शिवा आपः सन्तु' इति जलं, ओं सौमनस्यमस्तु, इति पुष्पम्, 'ओं अक्षतञ्चारिष्टमस्तु' इति तण्डुलांश्च दद्यात्।

---

(१) मा० पुराणे—'अन्नं तु विकिरेद् भक्त्या भृत्यंभागस्तु स स्मृतः।'

ततः पुटके जलं कृत्वा—मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणो दत्तैतदन्नपानादिकमुपतिष्ठताम्'। इति पिण्डोपरि जलं दद्यात्। ततः पू० सव्यं कृत्वा पुटकस्थं जलमादाय दक्षिणां दिशं पश्यन् सुमनाः—'ओं अघोरः पिताऽस्तु' इति पठन् पिण्डोपरि पूर्वाग्रां वारिधारां दद्यात्। ततः कृताञ्जलिः आशिषः प्रार्थयेत्—ॐ गोत्रं नो वर्धताम्। ततोऽपसव्यं कृत्वा द० सपवित्रकरेण सूत्रादिकं पिण्डेभ्योऽपसार्य एकं सपवित्रकुशत्रयं पिण्डोपरि धृत्वा पुटके सघृतञ्जलं निधाय वामेन पाणिनोद्धृतमुदकपात्रं दक्षिणेनादाय—'ओं ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधास्थ तर्पयत् मे पितरम् ॥' इति सपवित्रपिण्डोपरि वामान्वारब्धदक्षिणकरेण दक्षिणाग्रां वारिधारां दद्यात्। ततः स्वस्थानस्थितानेव पिण्डं नम्रीभूयाघ्रायोत्थापयेत्। पिण्डाधारकुशादीनि वह्नौ क्षिपेत्। ततः अर्घपात्रमुत्तानीकृत्य (१) अपसव्यं (२) कृत्वा दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुः मोटकतिलजलान्यादाय—'ओं अद्यामुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणः कृतैतत्सांवत्सरिकैकोद्दिष्टश्राद्धप्रतिष्ठार्थम् एतावद् द्रव्यमूल्य-

---

(१) नागरखण्डे उत्तानमर्घ्यपात्रं तु कृत्वा दत्त्वा च दक्षिणाम्। हिरण्यं देवतानां च पितॄणां रजतं तथा ॥

(२) दक्षिणादानमपि दक्षिणाऽभिमुखः अपसव्येनैव कार्यमिति श्राद्धचिन्तामणौ परिभाषाप्रकरणे म० म० वाचस्पतिः। तथाहि तत्र—"पैत्र्यं कर्म भूगतदक्षिणजानुना प्राचीनावीतिना (अपसव्येन) कार्यम्। उत्सर्गस्तु सतिलमोटकेनैव। अत एव पित्र्यजप-दक्षिणादानयोरपि प्राचीनावीतित्वमेवेति ॥"

अत्र "सर्वं कर्मापसव्येन दक्षिणादानवर्जितम्" इति यदुक्तं यमदग्निना तत् सपात्रक—श्राद्धपरम्। तथा हि तत्र देवलः—दक्षिणां पितृविप्रेभ्यो दद्यात् पूर्वं ततो द्वयोः" इति। अयं भावः—पितृविप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा पश्चाद् वैश्वदैविकब्राह्मणाभ्यां दद्यात्। अस्मिन् सपात्रकपक्षे दक्षिणादानस्य अपैतृकत्वात् पितृविप्रेभ्योऽपि दद्यादिति।

करजतं(१) चन्द्रदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे ।' इति दक्षिणां दद्यात् । ततः सव्येन प्राङ्मुखः— ओं दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदास्सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयञ्च नो अस्तु ।। अन्नञ्च नो बहुभवेदतिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कं च न । एताः सत्याशिषः सन्तु ।। ततः 'ओं देवताभ्यः पितृभ्यश्च' इति त्रिर्जपेत् । ततो वामदेव्यगानम्—

कयान इति महावामदेव ऋषिर्गायत्रीछन्द इन्द्रो देवता अग्निष्टोमादौ द्वितीयपृष्ठे शान्तिकर्मणि च जपे विनियोगः । ॐ कयानश्चित्र आभुव दूती सदा वृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढाचि दारुजे वसु । अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणां शतं भवा स्यूतये । ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु । ॐ स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु । ॐ प्राजापत्यं वै वामदेव्यं प्रजापतावेव प्रतिष्ठायोत्तिष्ठन्ति । ओं पशवो वै वामदेव्यं पशुष्वेव प्रतिष्ठायोत्तिष्ठन्ति ओं शान्तिर्वै वामदेव्यं शान्तावेव प्रतिष्ठायोत्तिष्ठन्ति । ओं अत एतत्कर्माच्छिद्रमस्तु ।।

ततोऽपसव्येन रक्षादीपं (२) निर्वाप्य (प्रच्छाद्य) सव्येन हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याचम्य--'ओं प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् । स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ।।' 'ओं विष्णुर्विष्णुर्हरिर्हरिः' इति विष्णुं स्मृत्वा श्राद्धीयद्रव्याणि ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत् । जले वा क्षिपेत् । ततः पिण्डकां छित्त्वा सूर्यं प्रणमेत् ।

इति छन्दोगामेकोद्दिष्टश्राद्धविधिः ।

---

(१) वैजवापः—शिवनेत्रोद्भवं यस्माद् रजतं पितृवल्लभम् । अमङ्गलं तद् यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत् ।।

(२) देवलः—दीपनिर्वापणात् पुंसः कुष्माण्डच्छेदनात् स्त्रियाः । अचिरेणैव कालेन वंशनाशो भवेद् ध्रुवम् ।।

श्राद्धतत्त्वे—निवृत्ते पितृमेधे तु दीपं प्रच्छाद्य पाणिना । प्रच्छाल्य पाणी आचम्य ज्ञातीन् शेषेण भोजयत् ।। इति ।।

अथ वाजसनेयिनां स्त्री-कुमारकर्तृक-एकोद्दिष्टविधिः

तत्र कृत्यनित्यक्रियो भूत्वा हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य आचम्य पूर्वाभिमुखः उपविश्य रक्षादीपं प्रज्वाल्य परकर्तृकपाकपक्षे 'सिद्धम्' इति पाचिकां पृष्ट्वा पूर्वाभिमुखः— नमः अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा । यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः । इति कुशत्रयजलैः श्राद्धीयद्रव्याण्यात्मानञ्चाभिषिच्य कुशत्रयं पूर्वंतस्त्यक्त्वाऽन्यकुशत्रयतिलजलान्यादाय—नमः अद्यामुके मास्यमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य पितुः (१) अमुकशर्मणः सांवत्सरिकैकोद्दिष्टश्रद्धमहं क्रियेरु , इति संकल्पं कुर्यात् । ततो कुशहस्तः नमः देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव भवन्त्विति । इति त्रिजंपेत् । ततो दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुर्मोटकादीन्यादाय—नमः अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्निदमासनन्ते नमः' इति पूर्वोपकल्पितमोटकरूपमासनं तिलजलप्रोक्षितं दक्षिणाग्रं पितृतीर्थेनोत्सृजेत् । ततः भोजनपात्रे तिलान् विकीर्य्य अर्धकरणपुटके दक्षिणाग्रं पवित्रं धृत्वा पितृतीर्थेन जलतिलान् क्षिप्त्वा गन्धपुष्पे तूष्णीं क्षिपेत् । ततोऽर्घपात्रं वामहस्ते कृत्वा भोजनपात्रे उत्तराग्रं पवित्रं धृत्वा उदकान्तरेण सिक्त्वा मोटकतिलजलान्यादाय—ओमद्यामुकगोत्र पितः अमुकशर्मन्निदमर्घ्यं ते नमः' इति पवित्रोपरि किञ्चज्जलं दत्त्वा पवित्रार्घपात्रे निधाय पित्रासनवामभागे 'नमः पित्रे स्थानमसि' इति न्युब्जीकुर्यात् । तच्च दक्षिणादानपर्यन्तं न चालयेत् ।

ततो गन्धादिदानम् । मोटकतिलजलान्यादाय नमः अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेतानि गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूल-यज्ञोपवीत-वासांसि ते नमः । इति गन्धादीनि दद्यात् । ततो जलेन भोजनपात्रासनयोश्चतुर्दिशं मण्डलं कृत्वा

---

१ पत्युः श्राद्धे 'पितुः' स्थाने 'पत्युः' 'पितः' स्थाने 'पते' इत्यनेन सर्वत्र ऊह्यम् ।

एकस्मिन् पुटके सव्यञ्जनतिलजलघृतमन्नं कृत्वा किञ्चिदग्रभागमुद्धृत्य मोटकादिना 'नमः इदमन्नमेतद्भूस्वामिपितृभ्यो नमः' इति स्ववामभागे भूस्वामिनेऽन्नं दद्यात्। ततः सिद्धमुष्णमन्नं रजतादिपात्रस्थं कराभ्यादाय पितरं ध्यायन् भोजनपात्रे पुरुषाहारक्षमं परिविष्य व्यञ्जनादीनि चोपनीय अन्नं सम्मार्ज्य तिलघृतमधूनि दत्त्वा एकस्मिन् पुटके सतिलजलघृतानि कृत्वा व्यस्तपाणिभ्यामधोमुखं पात्रमालभ्य—नमः कृष्णकव्यमिदं रक्ष मदीयम्' इति पठित्वा वामेन पाणिना पात्रमत्यजन्नेव 'नमः इदमन्नम्, इमा आपः, इदमाज्यम्, इदं हविः' इत्यन्ने जले घृते पुनरन्ने च दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठन्निवेश्य अन्नोपरि तिलान् विकीर्य्य मोटकादीन्यादाय—'नमः अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्निदमन्नं सोपकरणं ते नमः' इत्युत्सृजेत्। ततो वामहस्तमत्युद्धृत्य। 'नमः अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद्भवेत्। तत्सर्वंमच्छिद्रमस्तु।' इति पठित्वा भूमौ तिलान् विकीर्य्यं 'नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च। नमः शिवाय च शिवतराय च। नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्तेऽनेकचक्षुषे नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः॥ सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ। चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥ तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदथ'॥ इति पठित्वा पिण्डिकापश्चिमदिशि कुशत्रयं धृत्वा जलेन सिक्त्वा एकस्मिन् पुटके तिलघृतमन्नं जलं मधु च कृत्वा मोटकेन कुशोपर्यंन्नं विकिरेत्—'नमः अनग्निदग्धा ये जीवा ये प्रदग्धाः कुले मम। धूमौ दत्तेन तप्यन्तु तृप्ता यान्तु परांगतिम्॥'

ततः हस्तमात्रचतुरंगुलोच्छ्रितदक्षिणप्लवनिर्मितपिण्डिकां सिक्त्वा दर्भपिञ्जलीं गृहीत्वा तन्मूलेन पिण्डस्थाने प्रादेशमात्रां दक्षिणाग्रां रेखामुल्लिख्य दर्भपिञ्जलीमैशान्यां त्यजेत्। ततः रेखोपरि अङ्गारं भ्रामयित्वा दक्षिणस्यां क्षिपेत्। ततस्तत्रच्छिन्नमूलकुसानास्तीर्य्यं पूर्वाभिमुखः 'नमः 'देवताभ्यः' इति त्रिर्जपेत्। ततः एकस्मिन् पुटके तिलजलगन्धपुष्पाणि कृत्वा पुटकं वामहस्ते कृत्वा मोटकतिलजलान्यादाय—'नमः अद्यामुकगोत्र पितः अमुकशर्म-

अत्रावने निक्ष्व ते नमः।' इति च्छिन्नमूलोपर्यंवनेजनं दद्यात्। किञ्चिज्जलं पुटकेऽवशेषयेत्। ततस्तिलजलघृतव्यञ्जनसहितान्नेन विल्वमात्रं पिण्डं कृत्वा पुनर्मधुघृताभ्यामभिघार्य्यं मोटकतिलजलान्यादाय 'नमः अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मंन्नेष पिण्डस्ते नमः' इति च्छिन्नमूलकुशोपरि पिण्डं दद्यात्। ततः पिण्डाधारकुशमूले करं प्रोञ्छ्य पूर्वाभिमुखः द्विराचम्य हरिं स्मृत्वा उत्तराभिमुखः श्वासं धृत्वा पश्चिमाभिमुखः वामावर्तेन श्वासं त्यजेत्। ततोऽवनेजनावशिष्टजलसहितं पुटकमादाय मोटकादीनि चादाय 'नमः अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मंन्नत्र प्रत्यवने निक्ष्य ते नमः।। इति पिण्डोपरि प्रत्यवनेजनं दद्यात्। ततो नीवीं विस्रंस्य पूर्वाभिमुखः आचम्य दक्षिणाभिमुखः वामेन पाणिना सूत्रमादाय दक्षिणेन धृत्वा 'नमः एतत्ते पितर्वासः' इति मन्त्रेण पिण्डोपरि सूत्रं दद्यात्। ततो मोटकतिलजलान्यादाय—'नमः अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मंन्नेदद्वासस्ते नमः' इति सूत्रमुत्सृजेत्। ततः पितरमुद्दिश्य पिण्डे गन्धपुष्पताम्बूलादीनि तूष्णीं दद्यात्। पिण्डशेषान्नं पिण्डसमीपे विकिरेत्। ततो भोजनपात्रे 'नमः शिवा आपः सन्तु' इति जलम्, 'नमः सौमनस्यमस्तु' इति पुष्पम्, नमः अक्षतञ्चारिष्टमस्तु' इत्यक्षतञ्च दद्यात्। ततो पुटके जल कृत्वा मोटकादीन्यादाय--नमः अद्यामुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणो दत्तंतदन्नपानादिकमक्षय्यमुपतिष्ठताम्' इति पिण्डोपरि अक्षय्योदकं दद्यात्। ततः पूर्वाभिमुखः दक्षिणां दिशं पश्यन् 'नमः अघोरः पिताऽस्तु" (पतिरस्तु) इति पूर्वाग्रां वारिधारां पिण्डोपरि दद्यात्। ततः पूर्वाभिमुखः कृताञ्जलिः—

नमः गोत्रन्नो वर्द्धतां दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमद्। बहुदेयञ्च नोऽस्तु। अन्नञ्च नो बहुभवेदतिथींश्च लभेमहि। याचितारश्च नः सन्तु। मा च याचिष्म कञ्चन। एताः सत्याशिषः सन्तु। इति पठेत्।

तत दक्षिणाभिमुखः सपवित्रकरेण पिण्डस्थसूत्रादिकमपनीय दक्षिणाग्रं सपवित्रं पिण्डोपरि निधाय तदुपरि

तूष्णीं दक्षिणाग्रां वारिधारां दद्यात् । ततो नम्रीभूय पिण्डमाघ्रायोत्थापयेत् । छिन्नमूलाङ्गारी च वह्नौ क्षिपेत् । ततो ऽर्घपात्रमुत्तानीकृत्य दक्षिणाभिमुखः दक्षिणां दद्यात् । ‘नमः अद्यामुकगोत्रस्य पितुः अमुकशर्मणः कृतैतत् सांवत्सरिक-एकोद्दिष्टश्राद्धप्रतिष्ठार्थम् एतावद् द्रव्यमूल्यक-रजतं चन्द्रदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे । ततः पूर्वाभिमुखः—“नमः देवताभ्यः०” इति त्रिर्जपेत् । ततः हस्ताभ्यां दीपं निर्वाप्य (आच्छाद्य) पूर्वाभिमुखः हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य, त्रिः आचम्य विष्णुं ध्यायेत्–नमः प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् । स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥ नमः विष्णु-र्विष्णु-र्हरि-र्हरिः । ततः श्राद्धीयद्रव्याणि ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत् । जले वा क्षिपेत् । पिण्डकां क्षिप्त्वा सूर्यं प्रणमेत् ।

इति वाजसनेयिनां स्त्री-कुमारकर्तृक-एकोद्दिष्टविधिः ।

अथ छन्दोगानां स्त्री-कुमारकर्तृक-एकोद्दिष्टविधिः

तत्र कृतनित्यक्रियो भूत्वा परकृतपाकपक्षे ‘सिद्धम्’ इति पृच्छेत् । ततः पूर्वाभिमुखः नमः अपवित्रः पवित्रो वा सर्व्वावस्थाङ्गतोऽपि वा यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः, पुण्डरीकाक्षः पुनातु’ । इति श्राद्धीयद्रव्याण्यात्मानञ्चाभिसिञ्चेत् । ततः कुशत्रयं पूर्वतस्त्यक्त्वा अन्यकुशत्रयतिलजलान्यादाय ‘नमः अद्यामुके मास्यमुके पक्षेऽमुकतिथावमुकगोत्रस्य पितुः (१) अमुकशर्मणः सांवत्सरिकैकोद्दिष्टश्राद्धमहं करिष्ये’ । इति सङ्कल्प्य कुशहस्तः नमः देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्तु । इति त्रिर्जपेत् । ततो दक्षिणाभिमुखो भूत्वा

---

(१) पत्युः श्राद्धे पितुः स्थाने ‘पत्युः’ पितः स्थाने ‘पते’ पिता स्थाने पतिः इत्यूह्यम् ।

मोटकतिलजलान्यादाय पातितवामजानुः–'नमः अद्यामुकगोत्र-पितः अमुकशर्मन्निदमासनं (१) ते नमः'। इत्यासनमुत्सृजेत्। ततः पितृभोजनपात्रे तिलान् विकीर्य पुटके दक्षिणाग्रं पवित्रं धृत्वा पितृतीर्थेन जलं तिलान् गन्धपुष्पे च दत्त्वा अर्घपात्रं वामहस्ते कृत्वा पवित्रमुत्तराग्रं भोजनपात्रे धृत्वा जलान्तरेण सिक्त्वा मोटकतिलजलान्यादाय 'नमः अद्यामुकगोत्र पितः अमुकशर्मन्निदमर्घ्यं ते नमः।' इति पितृतीर्थेन जलं दत्त्वा पवित्रमर्घपात्रे कृत्वा दक्षिणहस्तेनादाय 'नमः पित्रे स्थानमसि' इति पित्रासनवामभागे न्युब्जीकुर्यात्। तच्च दक्षिणादानपर्यन्तं न चालयेत्। ततो गन्धादिदानम्। मोटकतिलजलान्यादाय 'नमः अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलयज्ञोपवीतवासांसि ते नमः। इति गन्धादि दत्त्वा पितृपात्रे जलेन मण्डलं कृत्वा एकस्मिन् पुटके सव्यञ्जनमन्नं कृत्वा घृततिलमधूनि दत्त्वा मोटकतिलजलान्यादाय 'नमः' इति भूस्वामिने अन्नं दद्यात्। ततः सिद्धमुष्णमन्नं रजतादिपात्रस्थं कराभ्यामादाय भास्वरमूर्ति पितरं ध्यायन् पितृपात्रे पतृतीर्थेन पुरुषतृप्तिक्षमं परिविष्य तत्पार्श्वे घृतं पानीयं व्यञ्जनानि च पृथक्-पृथक् पात्रस्थानि स्थापयेत्। ततोऽन्नसंमार्जनं कृत्वा तदुपरि घृत-तिलमधूनि कृत्वा एकस्मिन् पुटके जलं कृत्वा पिण्डकोपरि धृत्वा कुशत्रयहस्त एव व्यस्तानुत्तानपाणिभ्यां पात्रमालभ्य नमः कृष्णकव्यमिदं रक्ष मदीयम् इति पठित्वा वामेन पाणिना पात्रमत्यजन्नेव दक्षिणेन 'नमः इदमन्नम्' इत्यन्ने 'इमा आपः, इति जले 'इदं हविः' इति पुनरन्ने अंगुष्ठं संयोज्य मोटकतिलजलान्यादाय वामेन पाणिना पात्रमत्यजन्नेव 'नमः अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन् सांवत्सरिकैकोद्दिष्टश्राद्धे इदमन्नं सोपकरणं ते नमः।' इत्यन्नमुत्सृज्य वामहस्तमप्युद्धृत्य 'नमः अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद् भवेत् तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु' इति पठेत्। ततो भूमौ तिलान् विकीर्य 'नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च

---

(१) छन्दोगपरिशिष्टे—प्रेतश्राद्धे स्त्रियाः श्राद्धे श्राद्धे स्त्रीकर्त्रीके तथा। सपिण्डानां तथा श्राद्धे 'ये चात्र त्वा' न योजयेत्॥ इति न विस्मर्तव्यम्। (स्त्रीकर्त्रीके इत्यत्र कुमारकर्तृके'पि ज्ञेयमिति तत्त्वविदः।)

मयस्कराय च नमः शिवाय च। शिवतराय च नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्तेऽनेकचक्षुषे। नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः। नमः सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ। चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे। तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदथ। नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे ये वसन्त्यधिदेवताः। देवैरपि हि तृप्यन्तु ये च श्राद्धैः स्वधोत्तरैः। ततः पिण्डिकापश्चमदिशि कुशत्रयं धृत्वा सिक्त्वा पुटके तिलघृतमधुसहितमन्नं जलेनाप्लावितं कृत्वा 'नमः अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु पराङ्गतिम्' इति मोटकेन कुशोपरि दद्यात्। ततः आचम्य हरिं स्मृत्वा पिण्डपातनार्थनिमित्तपिण्डिकां सिक्त्वा मोटकेन तदुपरि प्रादेशमितां दक्षिणाग्रां रेखामुल्लिख्य नवच्छिन्नमूलकुशास्तरणं, तत्सेकश्च। ततः पूर्वाभिमुखः 'देवताभ्यः' त्रिर्जपेत्।

ततः पुटके जलतिलगन्धपुष्पाणि कृत्वा पुटकं वामहस्तेनादाय दक्षिणेन मोटकादीन्यादाय 'नमः अद्यामुकगोत्र पितः अमुकशर्मन् अत्रावने निक्ष्व ते नमः। इति पितृतीर्थेन छिन्नमूलकुशोपर्यवनेजनं दद्यात्। अत्र जलस्पर्शः। ततस्तिलघृतमधुसहितं बिल्वप्रमाणपिण्डं निर्माय दक्षिणहस्तेनादाय वामहस्ते धृत्वा दक्षिणेन मोटकादीन्यादाय 'नमः अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नेष ते पिण्डस्ते नमः। इति छिन्नमूलकुशोपरि पितृतीर्थेन पिण्डं दत्त्वा जलं स्पृशेत्। ततः पिण्डाधारकुशमूले करं प्रोञ्छ्य आचम्य हरिं स्मरेत्। ततः पिण्डपात्रप्रक्षालनजलं पुटके निधाय वामहस्ते कृत्वा दक्षिणहस्तेन मोटकादीन्यादाय नमः अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मन्नत्र प्रत्यवने निक्ष्व ते नमः। इति पिण्डोपरि प्रत्यनेजनं दत्त्वा जलस्पर्शः। ततः उत्तराभिमुखः वामहस्तेन श्वासं धृत्वा पश्चिमाभिमुखः श्वासं त्यजेत् ततो दक्षिणहस्तेन नीवीं विस्रंस्य पू० सव्येन करौ प्रक्षाल्य विष्णु स्मरेत्। ततो द० वामेन पाणिना सूत्रमादाय दक्षिणेन धृत्वा 'नमः एतत्ते पितर्वासः' इति पिण्डोपरि सूत्रं दत्त्वा मोटकतिलजलान्यादाय—नमः अद्यामुकगोत्र पितरमुकशर्मं-

न्नेतद्वासस्ते नमः । इत्युत्सृज्य जलस्पर्शः । ततः पुष्पाण्यादाय 'नमः वसन्ताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शिशिराय च । माससंवत्सरेभ्यश्च दिवसेभ्यो नमः सदा ।। वसन्तादिषड्ऋतुभ्यो नमः ।' इति पठेत् । ततोऽन्नपात्रोपरि 'नमः शिवा आपः सन्तु' इति जलम् 'सौमनस्यमस्तु' इति पुष्पम् 'अक्षतञ्चारिष्टमस्तु' इत्यक्षतञ्च दद्यात् । ततः पुटके जलन्निधाय मोटकतिलजलान्यादाय 'नमः अद्यामुकगोत्रस्य पितुरमुकशर्मणो दत्तैतदन्नपानादिकमुपतिष्ठताम्' इति जलं पिण्डोपरि दद्यात् । ततः 'नमः अघोरः पिताऽस्तु' इति पिण्डोपरि पूर्वाग्रां वारिधारां दद्यात् । ततः पूर्वाभिमुखः 'नमः गोत्रन्नो वर्द्धताम्' इति पठेत् । ततः सपवित्रकुशत्रयेण सूत्रादिकं पिण्डादपनीय पिण्डोपरि सपवित्रं कुशत्रयं धृत्वा पुटके सघृतं जलं निधाय सपवित्रपिण्डोपरि दक्षिणाग्रां वारिधारां दद्यात् । ततो नम्रीभूय पिण्डमाघ्रायोत्थाप्य पिण्डाधारकुशान् वह्नौ क्षिपेत् । ततोऽर्घपात्रमुत्तानीकृत्य मोटकतिलजलान्यादाय 'नमः अद्यामुकगोत्रस्य पितुः अमुकशर्मणः कृतैतत्सांवत्सरिकैकोद्दिष्टश्राद्धप्रतिष्ठार्थमेतावद्द्रव्यमूल्यकरजतं चन्द्रदेवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे ।' इति दक्षिणां दद्यात् । ततः 'नमः दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्राद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयञ्च नोऽस्तु । अन्नञ्च नो बहुभवेदतिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन । एताः सत्याशिषस्सन्तु' । ततः 'नमः देवताभ्यः' इति त्रिर्जपेत् । ततः दीपं निर्वाप्य हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य 'नमः प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् । स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ।। विष्णुर्विष्णुर्हरिर्हरिः ।' ततः श्राद्धीयद्रव्याणि ब्राह्मणाय प्रतिपादयेदम्भसि वा क्षिपेत् । ततः पिण्डिकां छित्त्वा सूर्यं प्रणमेत् ।

इति छन्दोगानां स्त्री-कुमारकर्तृकैकोद्दिष्टविधिः ।

अथ मुमुर्षुकृत्यम्

तत्र वैतरणीदाने कृष्णगवीदानम्[१]

तत्र क्रमः प्राङ्मुख उपविष्टः शुचिराचान्तः कुशत्रयतिलजलान्यादायः—'ॐ कृष्णगव्यै(२) नमः ।। ३ ।। ॐ ब्राह्मणाय नमः ।। ३ ।। इति गो-विप्रौ त्रिः सम्पूज्य—'ॐ इमां कृष्णां गां ददानि' इति द्विजकरे जलदानम् । 'ॐ ददस्व' इति तेनोक्ते गामभिषिच्य मन्त्रद्वयं पठेत्—

ॐ उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् । दातारं त्रायते यस्मात् तस्मात् वैतरणी स्मृता ।। १ ।।
यमद्वारे महाघोरे कृष्णा वैतरणी नदी । तां सन्तर्तुं ददाम्येनां कृष्णां वैतरणीं च गाम् ।। २ ।।

इति पठित्वा कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ॐ अद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य पितुः अमुकशर्मणः यमद्वारावस्थितवैतरणीनदीसन्तरणकाम इमां कृष्णां गां रुद्रदैवताम् यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृज्ये ।

इति दद्यात । ततो दक्षिणा 'ॐ तत् सत्' इति सिक्त्वा कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ॐ अद्य कृतैतत् कृष्ण-

---

(१) वैतरणीदाने कपिलगवीदानं न प्रशस्तं, तद्दाने तु—'कृष्णगव्यै नमः' इत्यत्र 'कपिलगव्यै नमः' इति, एवं वैतरणीनदीसन्तरणकाम' इत्यत्र 'स्वर्गप्राप्तिकाम' इति तथा 'कृष्णाम्' इत्यत्र 'कपिलाम्' इत्यूह्यम् ।

ब्रह्मवैवर्ते—'या सा वैतरणी नाम यमद्वारे महानदी । शतयोजनविस्तीर्णा पृथुत्वे सा महासरित् ।। अगाधाऽनन्तरूपा च दृष्टमात्रा भयावहा । पतन्ति तत्र वै मर्त्याः क्रन्दमानाः सुदारुणम् ।। तच्छृणूष्व नरव्याघ्र कथ्यमानं युधिष्ठिर अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये [मृत्युकाले] पाटलामथवा कृष्णां कुर्याद् वैतरणीं शुभाम् ।।

(२) सवत्सगवीसत्त्वे—'ॐ सवत्सकृष्णगव्यै नमः' इत्यूह्यम् ।

गवीदानप्रतिष्ठार्थम् एतावद् द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदेवतम् यथानामगोत्राय(१) ब्राह्मणाय दक्षिणां दातुमहमुत्सृज्ये।

ततः ब्राह्मणसत्त्वे प्रतिगृहीता—'ॐ स्वस्ति' इत्युक्त्वा गोपुच्छं गृह्णन् यथाशाखं कामस्तुतिं पठेत्। तत्र यजुर्वेदी—ॐ को दात् कस्मा अदात् कामो दात् कामायादात्। कामः प्रतिगृहीता कामैतत्ते॥

सामवेदी तु—ॐ क इदं कस्मा अदात् कामायादात्। कामो दाता कामः प्रतिगृहीता कामः समुद्रमाविशत् कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते॥ इति पठेत्।

अथ वैतरणीदाने गोमूल्यदानम्

प्राङ्मुख उपविष्टः शुचिराचान्तः कुशत्रयपुष्पाक्षतैः गोमूल्यदेयद्रव्योपरि—'ओं एतावद्द्रव्यमूल्यकसवत्सकृष्णगव्यै नमः॥ ३॥ कुशोपरि—'ॐ ब्राह्मणाय नमः॥ ३॥ इति त्रिः सम्पूज्य जलेन सिक्त्वा—'ॐ उष्णे वर्षति शीते वा०' इति पूर्वोक्तं (४९४ पृष्ठोक्तं) मन्त्रद्वयं पठित्वा कुशत्रयतिलजलान्यादाय—

ओं अद्य अमुके मासि अमुके पक्षे अमुकतिथौ अमुकगोत्रस्य पितुः अमुकशर्मणः यमद्वारावस्थितवैतरणीनदीसुखसन्तरणकाम एतावद्द्रव्यमूल्यकसवत्सकृष्णगवीं रुद्रदैवतां यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृज्ये। इत्युत्सृज्य दक्षिणां (२) दद्यात्। कुशत्रयतिलजलान्यादाय—ओं अद्य कृतैतत् सवत्सकृष्णगवीदानप्रतिष्ठार्थम् एतावद् द्रव्यमूल्यकहिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणां दातुमहमुत्सृज्ये।

---

(१) ब्राह्मणसत्वे तु—'अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे ब्राह्मणाय तुभ्यमहं सम्प्रददे' इति-दान-दक्षिणयोर्वाक्ये ऊह्यम्।

(२) गोमूल्यदानपक्षे दक्षिणादानोत्तरमत्र 'कोदादिति' कामस्तुतिर्न कर्तव्या। (सवत्सगोमूल्यं रु० २·५०, तदधिकं वा)

अथ मुमुर्षोः भूमियोगविधिः

अथ मुमुर्षुः गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो नवयज्ञोपवीत-वस्त्रमाल्यादिभिः अलङ्कृतो मुखनिःक्षिप्तकांस्यमणि-प्रवाल-हिरण्यशकलः तुलसीवृक्षनिकटे(१) कुशास्तृतभूमौ दक्षिणशिराः व्यवहाराद् उत्तरशिराः पुरुषसूक्तादिकम् उच्चैः श्रावयितव्यः। तत्र तुलसीशालग्रामसन्निधानम् । ततो धनञ्जय (प्राण) निःसरणपर्यन्तं दण्डद्वयं(२) वाससाच्छन्नः शाययितव्यः। द्विजशवं शूद्रो न स्पृशेत्(३)। ततः शवं वनं नयेत्(४)।

अथ दाहसंस्कारविधिः

शुचिः स्नातः कर्ता शुचिवस्त्रादिधरः कुशहस्तः पूर्वाऽभिमुख उपविष्टः नूतनमृन्मयभाण्डे जलं कृत्वा शवं दक्षिणशिरसं कृत्वा—

---

(१) व्यासः—तुलसीनिकटे जन्तोर्यदि मृत्युर्भवेत् क्वचित्। स निर्भर्त्स्य यमं पापी लीलयैव हरिं विशेत् ॥
प्रयाणकाले यस्यास्ये दीयते तुलसीदलम्। निर्वाणं याति पक्षीन्द्र पापकोटियुतोऽपि सः ॥

(२) अत एव वंशखण्डद्वयनिर्मितमञ्च (ठठरी) उपरि वाससाच्छन्नं शवं नयन्ति जनाः।

(३) शूद्रशवं ब्राह्मणोऽपि न स्पृशेत्। तथाहि—पञ्चत्वं तु गते शूद्रे यः काष्ठं नयते चिताम्। अनुव्रजेत् तथा विप्रास्त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्। त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम्। प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्धयति ॥ इति ग०।

(४) नारदः—शवस्तु नीयमानस्तु भूमौ निपतते यदि। कुटुम्बमरणं तत्र धन-धान्यपरिक्षयः ॥ तत्र रुद्रेति मन्त्रेण जुहुयात् सर्पिषाहुतिम्। आहुतिर्द्वे सहस्रे च होमश्च कथितो भवेत् वृषभं दक्षिणा दद्यात् ततः सम्पद्यते शुभम्।

मयूरचित्रे—मृतः श्मशानं नीतो यः प्रत्युज्जीवति मानवः। स्वस्थो वा भवति क्षिप्रं पुनरायाति मन्दिरम्। स देशः क्षीयते क्षिप्रं परचक्रेण हन्यते। यमदृष्ट्या ततः शान्तिः सक्षाराः समिधः शतम्। घृताक्ता जुहुयाद् विप्रो हुताग्नौ भूरिदक्षिणाम् ॥

ओं गयादीनि च तीर्थानि ये च पुण्याः शिलोच्चयाः । कुरुक्षेत्रं च गङ्गां च यमुनां च सरिद्वराम् ॥
कौशिकीं चन्द्रभागां च सर्वपापप्रणाशिनीम् । भद्रावकाशां सरयूं गण्डकीं तमसां तथा ॥
धैनवं च वराहं च तीर्थं पिण्डारकं तथा । पृथिव्यां यानि तीर्थानि चतुरः सागरांस्तथा ॥

एतानि तीर्थानि मनसा ध्यायन् जले आवाह्य तेन जलेन शवं संस्नाप्य नूतनवस्त्र-यज्ञोपवीतपुष्प-चन्दनैः अलंकृत्य दारुमयरचितचितायाम् आस्तृतकुशोपरि उत्तरशिरसम् अधोमुखं पुरुषं स्त्रियं च उत्तानमुखीं शाययेत् । ततोऽपसव्यं कृत्वा दक्षिणाऽभिमुखः पाणिना उल्मुकं(१) गृहीत्वा—

ॐ कृत्वा सुदुष्करं कर्म जानता वाप्यजानता । मृत्युकालवशं प्राप्तं नरं पञ्चत्वमागतम् ॥ १ ॥
धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम् । दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यान् लोकान् स गच्छतु ॥ २ ॥

इति मन्त्रद्वयं पठित्वा त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य ज्वलदुल्मुकं शिरोदेशे दद्यात् । (स्त्रीदाहेऽपि मन्त्रश्चाऽयमविकृत एव पठनीयः ।) ततः तृण-काष्ठ-घृतादिकं चितायां निःक्षिप्य कपातावशेषं (२) दहेत् ।

ततः प्रादेशमात्र-सप्तकाष्ठिकाभिः सह प्रदक्षिणसप्तकं विधाय कुठारेण उल्मुकोपरि प्रहारसप्तकं विधाय—'ॐ क्रव्यादाय नमस्तुभ्यम्' इत्युक्त्वा एकैकां काष्ठिकां क्षिपेत् ।

---

(१) पञ्चग्रन्थिसमन्वितं सप्तग्रन्थिसमन्वितं वा । (गंगातटे काश्यां वा दाहानन्तरं तत्क्षण एव अस्थिसंचयनिमित्तकम् एकोद्दिष्टश्राद्धं कर्तव्यमिति श्रेयः पन्थाः ।)

(२) आदित्यपुराणे—निश्शेषस्तु न दग्धव्यः शेषं किञ्चित् त्यजेत् ततः । अत्रावसरे कपालक्रियां कुर्यात् । तथाहि—अर्धे दग्धेऽथवा पूर्णे स्फोटयेत् तस्य मस्तकम् । गृहस्थानान्तु काष्ठेन यतीनां श्रीफलेन च ॥

ततो बालपुरःसराः वृद्धपश्चिमाः पादेन पादस्पर्शम् अकुर्वाणाः शवानुगमनकर्तारः जलाशयं गच्छेयुः (१)।

अथ उदकदानविधिः

तत्र जलाशये शवानुगमनकर्तारः सचैलस्नानं कृत्वा निमज्जनात् प्रागेव कृतापसव्याः दक्षिणाऽभिमुखाः प्रक्षालितैकवस्त्रधराः--'ॐ अपनः शोशुचदघम्' इति वामहस्ताऽनामिकया जलं दक्षिणतो नीत्वा सकृत् निमज्जयेयुः। ततो मोटक-तिल-जलान्यादाय मृतं मनसा ध्यायन्तः तिलाञ्जलिं दद्युरनेन—

ॐ अद्यामुकगोत्र (पितः) अमुकप्रेत एष तिलतोयाञ्जलिस्ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम् ।

ततः पुनः स्नात्वा बालपुरस्सराः वृद्धपश्चिमाः पादेन पादस्पर्शम् अकुर्वाणः गृहं गच्छेयुः।

तत्र प्राङ्गणद्वारे--ॐ लौहवद् दृढकायोऽस्तु, इति लौहं, ॐ अश्मेव स्थिरो भूयासम्, इत्यश्मानं, ॐ अग्निर्नः शर्म यच्छतु, इत्यग्नि स्पृशेत् । अत्र प्रत्येकं जलं स्पृशेत् । ततः यथाचारात् निम्बपत्रादिकं प्राश्य स्व-स्वगृहं गच्छेत् ।

अथ पर्णनरदाहविधिः

दाहशरीराऽभावे तदस्थि घृतेन अभ्युक्ष्य वस्त्रैराच्छाद्य पूर्ववद् दहेत् । अस्थ्नामप्यलाभे षष्ट्यधिकपलाश-

---

(१) दिवसे शवस्पर्शे दाहानन्तरं रात्रौ ग्रामप्रवेशः । रात्रौ शवस्पर्शादिकरणे सूर्योदयानन्तरं ग्रामप्रवेशः। कर्तव्यः। इत्येव सर्वनिबन्धस्वरसः।

पत्रशतत्रयेण (टिप्पण्योक्तविधिना) मनुष्याकृतिं(१) विन्यस्य शिरसः स्थाने नारिकेलफलं दत्त्वा—'ॐ असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा' इत्युक्त्वा एवं पर्णनरं पूर्ववद् दग्ध्वा तद्भस्म जले क्षिप्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ।

अथ मृतोद्देश्यकघटदानविधिः

अथाऽस्थिसञ्चयानन्तरं(२) मृतव्यक्तेर्गृहद्वारे पिप्पलादिदेववृक्षे वा आकाशाऽधिकरणकघटदानं कर्तव्यम् । तत्र प्रयोगः—दाहकर्ता कृतापसव्यः दक्षिणाऽभिमुखः मोटकतिलजलान्यादाय—

ॐ अद्यामुकगोत्रस्य पितुः अमुकप्रेतस्य सर्वपापप्रशान्त्यध्वश्रमविनाशकामः अद्यादिदशरात्रं यावदाकाशाधिकरणकजलदानमहं करिष्ये । इत्युत्सृज्य सजलघटं नागदन्तोपरि स्थापयेत् । सन्ध्याकृत्यमप्येतत्समीप एव आचारात् ।

---

(१) मनुष्याकृतिविन्यासप्रकारस्तु—

शिरस्यशीत्यर्धं दद्याद् ग्रीवायां तु दशैव तु । बाह्वोश्चैव शतं दद्यादङ्गुलीषु तथा दश ॥
उरसि त्रिशतं दद्याद् विंशतिं जठरे तथा । शिश्ने द्वादशान् दद्यात् त्रिशतं जानुजङ्घयोः ॥
पादाङ्गुलिषु दश दद्यादेतत् प्रेतस्य कल्पनम् । ऊर्णासूत्रेण बध्वा तु प्रलेपव्यस्तथा यवैः ॥
सुपिष्टैर्जलमिश्रैस्तु दग्धव्यश्च तथाऽग्निना । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा विधानतः ॥

(२) मृतकदाहदिवस एवेति प्राञ्चः । तथाहि मात्स्ये—तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयस्तथा । सर्वथा तापशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ॥ अस्थिसञ्चयानन्तरमिति नव्याः । व्यवहारोऽप्ययमेव ।

अथ मृतोद्देश्यकसन्ध्याकृत्यम्

मृतकदाहदिवसे अस्थिसञ्चयानन्तरं वा सायंकाले गोमयोपलिप्तायां भूमौ त्रिकाष्ठिकासमारोपित—(१) अपक्वमृन्मयपात्रद्वये जलं दुग्धं च निधाय तत्समीपे माल्यं दीपं च धृत्वा प्रत्येकं क्रमिकं दद्यात्तद्यथा—अपसव्येन दक्षिणाभिमुखः पातितवामजानुः मोटकतिलजलान्यादाय—

ॐ अस्यां सन्ध्यायाम् अमुकगोत्र पितः अमुकप्रेत, इदं जलं ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम्, ॐ अत्र स्नाहि ॥ १ ॥ ओं अस्यां सन्ध्यायाम् अमुकगोत्र पितः अमुकप्रेत इदं दुग्धं ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम्, ओं इदं दुग्धं पिब ॥ २ ॥ ओं अस्यां सन्ध्यायाम् अमुकगोत्र पितः अमुकप्रेत इदं माल्यं ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम्, ओं इदं माल्यं परिधेहि ॥ ३ ॥ ओं अस्यां सन्ध्यायाममुकगोत्र पितः अमुकप्रेत एष दीपस्ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम्, ओं अनेन पश्य ॥ ४ ॥

अथ मृतोद्देश्यकः अग्राशान (अर्गासन) विधिः

गारुडे—तत्र प्रेतोपकृतये दशरात्रमखण्डितम् । भोज्याद् भोजनकाले तु भक्तमुष्टिं च निर्वपेत् ॥
नामगोत्रेण सम्बुध्या घरित्र्यां पितृयज्ञवत् ।

भोजनसमये अन्नोत्सर्गवाक्यं यथा—

ॐ अद्यामुकगोत्र पित्रः अमुकप्रेत इदमन्नं सोपकरणं ते मया दीयते तवोपतिष्ठताम् ॥ इति अग्राशनान्नमुत्सृज्य स्वयमश्नीयात् ।

---

(१) गारुडे अपक्वं मृन्मये पात्रे दुग्वं दद्याद् दिनत्रयम् । सम्पूर्णाशौचे तु दशरात्रपर्यन्तमिति तज्ज्ञाः । क्वचित् पिप्पलपत्रपुटकेनाऽपि दुग्धादिदानं दृश्यते ।

अथ नवमदिने तैल-खल्लिदानविधिः

तत्र कर्ता जलाशयं गत्वा कदली-कोशपत्रे सार्षपतैलं खल्लीं च निधाय दक्षिणाभिमुखः कुशत्रय-तिलजलान्यादाय—ओं अद्यामुकगोत्र पितः अमुकप्रेत इमे तैल-खली ते मया दीयेते तवोपतिष्ठताम् । इत्युत्सृज्य जले क्षिपेत् । ततः तलदानानन्तरं (सार्षपं) स्वयं चानुलिप्य स्नायात् ।

दशगात्रपिण्डदानविधिः

(सानुवादोऽयं विधिः मिथिलाग्रन्यमालायाः छ० श्राद्धपद्धतौ द्रष्टव्यः, मूलमात्रं तु वर्षकृत्योत्तरार्धे)

इति 'दरभंगा' मण्डलान्तर्गत 'तरौनी' ग्रामवासिश्रीमदनन्तलालझाशर्मात्मजश्रीरामचन्द्रझा-व्याकरणाचार्येण सम्पादितं वर्षकृत्यप्रथमभागपरिशिष्टं समाप्तम् ।

अथ तिथिनिर्णयः[1]

महामहोपाध्याय-श्रीराजनाथ-(रजे)-मिश्रविरचितः ।

अथ सामान्यतिथिपरिभाषा

नत्वा ढुण्ढि गिरं विष्णुं निबन्धॄन् गिरिशं गुरून् । क्रियते राजनाथेन तिथिनिर्णयसंग्रहः ॥

तत्र तिथिरखण्डकालविशेषरूपा । विशेषत्वांशे चन्द्रमण्डलकलारम्भाद्यनुगुणक्रियाप्रचयत्वरूपादेरुपलक्षणतयैवोपयोगः । अत एव "आश्विनाऽपरपक्षे तु श्राद्धं देयं दिने दिने" इत्यत्र दिनपदस्य तिथिपरत्वमते वीप्सालभ्यतिथिनिरूपितव्यापकत्वं श्राद्धे न व्याहन्यते । अन्यथा तादृशक्रियाप्रचयस्य तिथित्वे सर्वासु क्रियासु श्राद्धाऽसंभवेन श्राद्धमव्यापकमेव स्यात् । अखण्डरूपत्वे तु तत्तत्तिथौ योग्यकाले सकृच्छाद्धाचरणेऽपि तत्तत्तिथिनिरूपितव्यापकत्वस्य व्याघातो न श्राद्धे । न च चतुर्दश्यां श्राद्धाऽनाचरणेनैव तद्व्याघात इति वाच्यम् । तत्रापि केषाञ्चिन्मते श्राद्धविधानात् शस्त्रादिहतश्राद्धेन विशेषविहितेन सामान्यस्य बाधाद् वा "कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम्" इति मानवनिषेधवचनैकवाक्यतया तदितरतिथिपरत्वेन व्यापकत्वाक्षतेश्च । तदाह––

विष्णुपुराणे—"कालस्वरूप रूपं तद्विष्णोर्मैत्रेय वर्तते ।"

विष्णुधर्मोत्तरे—"अनादिनिधनः कालो रुद्रः संकर्षणः स्मृतः । कलनात् सर्वभूतानां स कालः परिकीर्त्तितः ॥"

---

[1] नत्वयं [प्रतिहारषष्ठी (छठ)–जीवत्पुत्रिकाष्टमी (जितिया) आदि] 'व्रतनिर्णयः' यतः पुस्तकान्ते स्वयमेवोक्तं ग्रन्थकत्रा मिश्रमहोदयेन—"व्रतनिर्णयः, शुद्धिनिर्णयः तीर्थनिर्णयश्च यथावकाशं प्रकाशमेष्यन्ति" इति–सम्पादकः ।

फलनं = लयहेतुः ।

विष्णुपुराणे—ये समर्था जगत्यस्मिन् सृष्टिसंहारकारिणः । तेऽपि कालेन लीयन्ते कालो हि बलवत्तरः ॥

यत्तु हेमाद्रिधृतस्कन्दपुराणे—

अमाषोडशभागेन देवि प्रोक्ता महाकला । संस्थिता परमा माया देहिनां देहधारिणी ॥
अमादिपौर्णमास्यन्ता या एव शशिनः कलाः । तिथयस्ताः समाख्याताः षोडशैव वरानने ॥

गोभिलः—सूर्याचन्द्रमसोर्यः परस्सन्निकर्षः साऽमावास्येति, परः सन्निकर्षश्च उपर्यधोभावापन्नसमसूत्रपातन्यायेन राश्येकांशावच्छेदेन सहावस्थानरूपः । तथा च अमावास्याघटकतादृशसहावस्थानयुक्तार्कमण्डलाच्चन्द्रमण्डलस्य राशिद्वादशांशभोगात्मकनिर्गमरूपवियोगेन शुक्लायाः प्रतिपदादितत्तत्तिथेरुत्पत्तिः । तथा च सूर्यसिद्धान्ते—

अर्काद्विनिःसृतः प्राची यद्यात्यहरहः शशी । भागैर्द्वादशभिस्तत् स्यात् तिथिश्चान्द्रमसं दिनम् ॥

विष्णुधर्मोत्तरेऽपि—त्रिशांशकस्तथा राशेर्भाग इत्यभिधीयते । इति ।

एवं सूर्याचन्द्रमसोर्यः परो विप्रकर्षः सा पौर्णमासीति—गोभिलः । परमवियोगानन्तरमर्कमण्डलप्रवेशाय चन्द्रमण्डलस्य राशिद्वादशांशद्वादशांशभोगात्मकप्रवेशरूपसन्निकर्षेण कृष्णायास्तत्तत्तिथेश्चोत्पत्तिरिति तदपि तिथिपदशक्यतावच्छेदके उपलक्षणतयोपयुज्यमानचन्द्रमण्डलकलारम्भाद्यनुगुणक्रियाप्रचयत्वाभिप्रायेणेति बोध्यम् ।

षट्त्रिशन्मतम्—तत्र पक्षावुभौ मासे शुक्लकृष्णौ क्रमेण हि । चन्द्रवृद्धिकरः शुक्लः कृष्णश्चन्द्रक्षयात्मकः ॥
पक्षत्याद्यास्तु तिथयः क्रमात् पञ्चदशस्मृताः । दर्शान्ताः कृष्णपक्षे ताः पूर्णिमान्ताश्च शुक्लके ॥

पक्षतिः = प्रतिपत् । सा तिथिर्द्विविधा शुद्धा विद्धा चेति । शुद्धामाह सूर्यसिद्धान्ते—

"आदित्योदयवेलामारभ्य षष्टिनाडिका । या तिथिः सा तु शुद्धा स्यात् सर्वास्वेव विधिः स्मृतः ॥"

विद्धा तु त्रिविधा—'खर्वो दर्पस्तथा हिंसा त्रिविधं तिथिलक्षणम्'। विद्धा तिथिलक्षणमित्यर्थः। खर्वः साम्यम्। दर्पो वृद्धिः। हिंसा क्षयः।

पैठीनसिः—पक्षद्वयेपि तिथयस्तिथिं पूर्वां तथोत्तराम्। त्रिभिर्मुहूर्तैर्विद्धयन्ति सामान्योऽयं विधिः स्मृतः॥
चतुर्दशी पञ्चमी च तथा च दशमी तिथिः। तिथिं दूषयति तत्र त्रिभिरेव मुहूर्तकैः॥
द्वादशनाडीभिर्दिक्पञ्चदशभिस्तथा। भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम्॥
सर्वप्रकारवेधोऽयमुपवासस्य दूषकः। अरुणोदयवेधस्तु वैष्णवेषु प्रकीर्तितः॥ इति।

एवं च तिथिह्रासवृद्धिहेतुकपूर्वोत्तरतिथिवेधवशादुभयदिने तत्तिथिलाभे सन्देहात् तत्तिथिकृत्यान्निवृत्यापत्तिरावृत्यापत्तिर्वा माभूदित्यसन्दिग्धानुष्ठानसिद्ध्यर्थंनिर्णयजिज्ञासायामाह—

स्कन्दपुराणे—दिवारात्रिव्रतं यच्च एकस्यां च तिथौ स्मृतम्। तस्यामुभयगामिन्यां कुर्यादेवं व्रतं व्रती॥
कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः। तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धौ न कारणम्॥

माहेश्वरे—व्याप्नोति कर्मकालं या तिथिर्भञ्च (नक्षत्रञ्च) दिनद्वयम्। युग्मवाक्येन निर्णीय ग्राह्या पूर्वा परापि वा॥

युग्मवाक्यं यथा गृह्यपरिशिष्टे—

कात्यायनः—युग्माग्निकृतुभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः। रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्याथ पूर्णिमा।
प्रतिपदा त्वमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम्। एतद्व्यस्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥

तिथ्योर्युग्ममिति सर्वत्राभिसंबध्यते। तेन द्वितीयातृतीययोर्युग्मं मान्यम्। एवं सर्वत्र। तथा च द्वितीया तृतीयामिश्रा ग्राह्या। तृतीयाऽपि द्वितीयामिश्रा ग्राह्या। एवमग्रेपि तिथ्यन्तरसाहित्येन तत्तत्तिथिग्रहणं न तु तिथ्यतरन्कार्ये तिथ्यन्तरविधिः व्रतनिमित्ततिथिबाधे गौरवात्। न वा युग्माख्यस्यैकस्यैव मिलितस्य विधिः, तादृशकाला-

न्तरस्यासम्भवात्। न च मिलितं तिथिद्वयं कर्माङ्गम् एकतिथ्यवच्छेदेन कर्मसमाप्तौ वैगुण्यापत्तेः। एतद्व्यस्तमिति पूर्वोक्तयुग्मविपरीतं न ग्राह्यम्। तेन प्रतिपद्द्वितीययोर्युग्मं न ग्राह्यमेवमग्रेऽपि। चतुर्दशी शुक्लापूर्णिमायोगात्। कृष्णा तु त्रयोदशीयुतैव ग्राह्या युग्मवचनाऽनाघ्रातत्वात् ‘कामविद्धो हरः पूज्यः, इति स्मृत्यन्तराच्च। प्रतिपदपि शुक्लैव अमायोगसामर्थ्यात्। द्वितीयादिद्वादशीपर्यन्ताः शुक्लाः कृष्णाश्च विशेषानुपादानात्। अयं च युग्मविधिः अहोरात्रसाध्योपवासादिकर्मणि तिथिद्वैधे सति। देवपूजादावपि दिनद्वये विहितपूर्वाह्णादिगामितिथिलाभे सति च सर्वत्र बोध्यः। यदा त्वेकस्मिन्नेव दिने विहितकाले तिथिलाभस्तदा तत्रैव व्रतादिकं कार्यम्, सन्देहानुत्थानात्। न च व्यस्तनिन्दाश्रवणात् तत्रापि युग्मादरः दिनद्वयगामिनि विहितकाले सति सप्तम्यादिनिमित्तकं सकृत् कर्तव्यं कर्म पूर्वस्मिन् परस्मिन् वेत्यपेक्षायामेव युग्मविधेरवतारात्। अपेक्षितविधिबलात् नियममात्रे लाघवाच्च व्यस्तनिन्दापि तत्रैव विधिशेषत्वात्।

नन्वेवमहोरात्रव्यापिन्यां षष्ठ्यां सत्यामुत्तरदिने वर्द्धमानायाः षष्ठ्याः सप्तमीविद्धाया आदरोस्तु इति चेन्न। दिनद्वये तिथिवेधे सत्येव तद्वचनाप्रवृत्तेरिति जीर्णोद्धारः। केचित्तु उपवासमात्रे युग्मविधिमिच्छन्ति। निषेधे तु न कुत्रापि युग्मविधिः अष्टम्यादौ मांसादिभक्षणनिषेधस्य समस्तकालव्यापित्वेनापेक्षाविरहात्, एवं च निषेधे कालवर्जनमिति वचनं न्यायमूलकमेव। तदेवं युग्माग्नीत्यादि गौडीयवचनानुसारिणी दशमी त्रयोदशी कृष्णप्रतिपद्भिन्नासु तिथिषु व्यवस्था सिद्धा।

भूपालादिमते तु सप्तम्येकादश्योर्वाचनिकी व्यवस्था। तिथ्यन्तरेषु व्रते संकल्पस्य प्राधान्यात् तस्योदयकाले दुर्घटत्वेऽपि तत्कालव्यापिन्यां तिथौ प्रातरेव विधानादुदयकालसंबन्धितिथ्यादरो युक्तः। दिनद्वयेपि उदयगामितिथिलाभे कपालाधिकरणन्यायाद्व्यवस्था युक्तं चैतदोद्दृश्यास्त्रिपृशाया एव सम्भवात्। तत्र च सर्वं तिथिमलं त्याज्य-

अन्यत्र हरिवासरादिति स्मृत्यन्तरसंवादात् । अत एव उपवासव्रते तिथ्यन्तिमभागयुताहोरात्रस्यैव ग्राह्यतया सप्तमीमुपवसेदिति विधिबोधितोपवासस्य न लोपापत्तिर्न्न वा आवृत्त्यापत्तिः सप्तमीपदस्य सप्तमीचरमभागयुताहोरात्रपरत्वात् । न चाहोरात्रव्यापकोपवासव्रते अधिकव्याप्त्यैव तिथिरादर्तव्या न तु मुहूर्तादिव्याप्त्येति वाच्यम्, आरम्भमात्रे विहितकालपेक्षणात् न तूत्तरत्रापि । अत एवाभ्युदितेऽष्टौ विहितकाले प्रारब्धं कर्म कालान्तरेपि समाप्यत इत्युक्तम् । तिथेः प्रान्त्यमुपोष्यं स्यादिति नारदीयाच्च । पठन्ति च—'सा तिथिः सकला ज्ञेया यस्यामुदयते रविः ।' यथा सम्पूर्णा तिथिरुपवासादिकर्माङ्गं तथा असंपूर्णाप्युदयगामिनीति तदर्थः । एतदेवाहुः—

गौडाः—व्रतोपवासनियमे घटिकैकाऽपि या भवेत् । सा तिथिः सकला ज्ञेया पित्रर्थे चापराह्णिकी ॥
राजमार्त्तण्डेऽपि—व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैका यदा भवेत् । उदये सा तिथिर्ग्राह्या श्राद्धादावस्तगामिनी ॥
बोधायनोपि—उदये तूपवासस्य नक्तस्यास्तमने तिथिः । मध्याह्नव्यापिनो ग्राह्या एकभुक्तव्रते तिथिः ॥
गृह्यपरिशिष्टे—सा तिथिस्तदहोरात्रं यस्यामभ्युदितो रविः । तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धौ न कारणम् ॥

एतद्व्यवस्थाद्वयमप्याकूतं हरिनाथ-श्रीदत्त-वाचस्पत्यादिनिबन्धेषु ।

इति सामान्यपरिभाषा

अथ कालविभागः

अरुणोदयकालमाह ब्रह्मवैवर्त्ते--चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदय उच्यते । यतीनां स्नानकालेयं गङ्गाम्भः सदृशः स्मृतः ॥
अत्र घटिका दण्डरूपा ग्राह्या यथा—

त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाद्यन्तचतुष्टयम् । नाडीनां तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञके ॥
मत्स्यपुराणे--प्रातःकालो मुहूर्तांस्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव हि । मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्णस्ततः परः ॥

सायाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छ्राद्धं (१) तत्र न कारयेत् । राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु ॥
अह्ना मुहूर्ता विख्याता दशपञ्च च सर्वदा । अत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतुपः स्मृतः ॥
रौहिणो नवमः प्रोक्तः पितॄणामुभयं हितम् ।

अन्यत्रापि—द्वौ यामौ घटिकान्यूनौ द्वौ यामौ घटिकाधिकौ । स कालः कुतुपो ज्ञेयः पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥

श्रुतिः—पूर्वाह्णो वै देवानां मध्यन्दिनं मनुष्याणामपराह्णः पितॄणामिति । दिनमानस्य त्रिधा विभागेन सङ्गमनीया । नक्तमाह—

भविष्ये--मुहूर्तोनं दिनं केचित् प्रवदन्ति मनीषिणः । नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहं मन्ये गणाधिप ॥

नक्षत्रदर्शनादिति पूर्वावधिकथनम् । तेन नक्तपदाद्रात्रिमात्रप्राप्तौ सन्ध्याव्यावृत्तौ तात्पर्यम् । आदित्यास्तमनकालस्य तथात्वात् । एवञ्च "नक्तव्रते तु सम्प्राप्ते तत्कालव्यापिनी तिथिः" इति दक्षवाक्ये । "उदये तूपवासस्य नक्तस्यास्तमने तिथिः" इति बौधायनवाक्येऽपि नक्तपदं रात्रिपरम् । "नक्तादिव्रतयोगे तु रात्रियोगो विशिष्यते" इत्यनेन सहैकवाक्यतानुरोधात् । तथापि "प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा ।" प्रदोषो यथा तिथितत्त्वविश्वादर्शयोः—"प्रदोषोऽस्तमनादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते ।" घटिकाशब्दोऽत्र मुहूर्तपरः । त्रयोदश्यस्तगे सूर्ये चतसृष्वपि नाडिषु । भूतविद्धा तु या तत्र शिवरात्रिव्रतञ्चरेत् ॥ इति वायुपुराणेन सहैकवाक्यतानुरोधात् । चतुर्वर्गचिन्तामणौ तु—"नक्षत्रदर्शने नक्तं प्रागृयामाभ्यन्तरेऽशनम्" इत्युक्तम् । मिथिलेशशुभङ्करवर्द्धमानचरणास्तु—

---

(१) वृहन्नारदीये--दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि वै । यामिन्या प्रहरं यावत् तावत् कर्माणि कारयेत् ॥
संग्रहेऽपि--रात्रौ प्रहरपर्यन्तं दिवाकृत्यानि कारयेत् । ब्रह्मयज्ञं च क्षौरं च वर्जयित्वा विशेषतः ॥

उदयात् प्राक्तनी सन्ध्या घटिकाद्वयमिष्यते । सायं सन्ध्या त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः ॥
तथा—त्रिमुहूर्तः प्रदोषः स्याद् भानावस्तंगते सति । तत्परा रजनी प्रोक्ता तत्र कर्म परित्यजेत् ॥

प्रदोषो रजनीमुखम् इत्यभिधानवचनमप्येतत्परमेव, अन्यथा नानार्थता स्यादित्याहुः। अत एव षड्घटिकात्मके प्रदोषे पूर्वघटिकात्रयं परित्यज्योत्तरघटिकात्रये नक्तमेकभुक्तवत् कार्यमिति सिद्धवल्लिखन्ति पक्षधरमिश्राः ।

नरसिंहपुराणे--आत्मनो द्विगुणच्छायां यदा सन्तिष्ठते रविः । सौरं नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम् ॥

तेन तदूर्ध्वन्दिवैव भोजनं निशि भोजनस्य निषेधात् । मुहूर्तोनन्दिनमिति भविष्यपुराणमप्येतत्परमेव । अतः प्रातस्तनद्विगुणच्छायोत्तरभोजनशङ्का निरस्ता । सौरव्रतेतरव्रते नाक्षत्रमेव नक्तमिति व्यवस्था सामान्यविशेषन्यायादिति समयप्रदीपः । यदा दिनद्वये प्रदोषव्यापिनो तिथिर्न लभ्यते तदा नरसिंहपुराणीयं ग्राह्यम् । "प्रदोषव्यापिनी न स्याद् दिवा नक्तं विधीयते ।" इति । स्कन्दपुराणादिति चतुर्वर्गचिन्तामणिः ।

वर्द्धमानपादास्तु--नक्षत्रदर्शनान्नक्तं गृहस्थानां स्मृतं बुधैः । यतेर्दिनाष्टमे भागे तस्य रात्रौ निषिद्ध्यते ॥
इति देवलवचनाद्यतेरेव रात्रिभोजननिषेधाद् 'दिवा नक्तं विधीयते" इत्याहुः ।

नक्षत्रव्रते तु—उपोषितव्यं नक्षत्रं यस्मिन्नस्तमियाद् रविः । युज्यते यत्र वा तारा निशीथे शशिना सह ॥

निशाविभागमाह, आगमे—निशा तु परमेशानि सूर्ये चास्तमुपागते ।
प्रहरे च गते रात्रौ घटिके द्वे परे च ये । महानिशा समाख्याता ततश्चातिमहानिशा ॥

द्वितीयप्रहरान्तिमघटिकाद्वयं तृतीयप्रहरादिघटिकाद्वयञ्चेत्यर्थः । अत एव—महानिशा द्वे घटिके रात्रेर्मध्यमयामयोः, इत्याह देवलः । इति कालविभागः ।

अथ तिथिद्वैधविचारः

(१) प्रतिपद्-द्वैधः

पैठीनसिः—पञ्चमी सप्तमी चेव दशमी च त्रयोदशी। प्रतिपन्नवमी चैव कर्तव्या सम्मुखी तिथिः ॥

सम्मुखी सायाह्नव्यापिनो। आश्विनशुक्ला प्रतिपद् द्वितीयायुता ग्राह्या तथाहि—

देवीपुराणम्—यो मां पूजयते भक्त्या द्वितीयायां गुणान्युताम्। प्रतिपच्छारदीं ज्ञात्वा सोऽश्नुते सुखमक्षयम् ॥
यदि कुर्यादमायुक्तप्रतिपत्स्थापनं मम। तस्मै शापायुतं दत्त्वा भस्मशेषं करोम्यहम् ॥

मार्कण्डेयपुराणम्—पूर्वविद्धा तु या शुक्ला भवेत् प्रतिपदाश्विनी। नवरात्रव्रतं तस्यां न कार्यं शुभमिच्छता ॥

यदा तु पूर्वदिने षष्टिदण्डात्मिकापि वर्द्धमानोत्तरदिने लभ्यते, तदा द्वितीयायोगमनादृत्य पूर्वैव ग्राह्या, कपालाधिकरणन्यायात्। द्वितीयावेधस्तावकानामप्यमायोगनिषेधे तात्पर्यपर्यवसानात्। उत्तरत्र तिथिमलत्वेन निषेधाच्च। यत्र क्षयवशादमायुक्तैव लभ्यते न द्वितीयायुता तत्र अमाविद्धायामपि प्रतिपदि पूर्वाह्णे कलशस्थापनादि कार्यम्। द्वितीयायोगसम्भव एव पूर्वोक्तपूर्वविधिनिषेधानां प्रवृत्तेः। एवमग्रेपि व्यवस्थाऽनुसन्धेयेति। कार्त्तिकशुक्ला (प्रतिपत्तिथिः) गोक्रीडायाममायुक्तापि ग्राह्या, यदाह,

नारदः—या कुहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेन्नृप। पूजनात् त्रीणि वर्द्धन्ते प्रजा गावो महीपतिः ॥
देवलः—प्रतिपद्दर्शसंयोगे गवां वै क्रीडनम्भवेत्। परविद्धासु करणात् पुत्रदारधनक्षयः ॥
तथा—प्रतिपद्यग्निकरणं द्वितीयायां गवार्चनम्। छत्रच्छेदं वित्तनाशं करिष्यति कुलक्षयम् ॥
गोभिलः—महाष्टमी च गोक्रीडा पौर्णमास्यावुभे तथा। श्रावणी फाल्गुनी चैव कुर्यादग्र्यां नचोत्तराम् ॥

अग्र्यां प्रथमाम् । तथा—नन्दायां दर्शनं रक्षा बलिदानं दशासु च । भद्रायां गोकुलक्रीडा देशनाशाय जायते ।

एवमादिवचनानि परदिने चन्द्रदर्शनसम्भावनायां पूर्वविद्धास्तावकानि । यदाह—राज्योपार्जकठक्कुरानुगृहीतपुराणसमुच्चये—प्रतिपत्तु त्रियामा स्यान्मैत्रर्क्षे बुधवासरे । तद्दिने पूर्वयामे तु गोपूजा परमा शुभा ॥ मैत्रमनुराधा । बुधवारस्य सौम्यदिनमात्रोपलक्षकता । यथा—

गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः । सोमो राजा पशून् हन्ति सुरभी पूजकांस्तथा ॥

चन्द्रदर्शनसंभावनामाह, शातातपः—

द्वितीया त्रिमुहूर्ता वै प्रतिपद् या पराह्णिकी । अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतः सोमदर्शनात् ।

मुहूर्तो घटिकाद्वयमित्यभिधानात् घटिकाषट्कस्य किञ्चिन्न्यूनत्वेपि । यामोपलक्षकता पुराणसमुच्चयेन सहैकवाक्यतानुरोधात् । मिथिलेशशुभभङ्करचरणा अपि द्वितीयायास्त्रिमुहूर्तव्यापित्वे चन्द्रदर्शनसम्भावनामाहुः, यामार्द्धान्यूनव्याप्ताविति यत्र क्वचिल्लभ्यते, तदुत्कटकोटिकाशङ्कानिरासार्थमेव । तथा—

पापाहे च विशाखायां न कुर्यात् पूजनं गवाम् ।

राजमार्तण्डे—विशाखायाममावस्या विशाखाप्रतिपद्युता । आयुः पुत्रं धनं हन्ति यः कुर्यात् सुखरात्रिकाम् ॥ गोनीराजने शुक्रास्तादिदोषपरिहारं कुर्वन्ति बहवः ।

(२) द्वितीया-द्वैधः

द्वितीया तृतीयायुता ग्राह्या, युग्मनिगमात् तथाहि—

पैठीनसिः—एकादश्यष्टमी षष्ठी द्वितीया च चतुर्दशी । त्रयोदश्यप्यमावास्या उपोष्याः स्युः परान्विताः ॥

"अशून्यशयन" व्रते तु प्रतिपद्विद्धा द्वितीया ग्राह्या । तथाहि--

स्मृतिः—कृष्णाष्टमी वृहत्तल्पा सावित्री वटपैतृकी । कामत्रयोदशी रम्भा नोपोष्याः परसंयुताः ॥

सति सम्भवे पूर्वाह्णनक्तोभयव्यापिनी ग्राह्या । गोविन्दार्चनगोदानादीनां नियतपूर्वाह्णकृत्यानां क्षारलवणवर्जितनक्तभोजनस्य च मत्स्यपुराणेऽभिधानात् । कार्तिकशुक्लद्वितीयाप्रसंगे आह--

स्कन्दपुराणे—कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वितीयायां युधिष्ठिर । यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहेऽर्चितः ॥
अतो यमद्वितीया सा त्रिषु लोकेषु विश्रुता । तस्यां निजगृहे विप्र भोक्तव्यन्न ततो नरैः ॥
स्नेहेन भगिनीहस्ताद् भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम् । वस्त्रालङ्करणादीनि ताभ्यो देयानि यत्नतः ॥
ब्रह्माण्डे—या तु भोजयते नारी भ्रातरं युग्मके तिथौ । अर्चयेच्चापि ताम्बूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥
भ्रातुरायुःक्षयो राजन्न भवेत् तत्र कर्हिचित् ।

युग्मके=द्वितीयायाम् । सा च प्रतिपद्युता ग्राह्येति निर्णयामृतः । भोजनकालिकत्वेन मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्येति हेमाद्रिः । सारसंग्रहे उमापतिस्तु अर्द्धप्रहरोपरि भोजनकालस्तत्कालव्यापिनी ग्राह्या, उभयदिने तत्प्राप्तौ परैव युग्मनिगमादित्याह अनुकूलश्चात्र भूपालमतम् । एकादश्यष्टमीत्यादि पैठीनसिवचनञ्च । व्यवहारश्च यथा स्वकुलाचारमुभयथापि शिष्टानाम् ।

(३) तृतीया-द्वैधः

वैशाखशुक्ला तृतीया तु युगादित्वादुदयगामिनी ग्राह्या तथाहि—

देवीपुराणम्—युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमो पार्वतीप्रिया । सूर्योदयमपेक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता ॥

वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयारोहिणीयुता । दुर्लभा बुधवारेण सोमेन च विशेषतः ॥

नारदः—रोहिणीं बुधयुक्ताञ्च पूर्वविद्धां विवर्जयेत् । भक्त्या कृतापि मान्धातर्हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥
गौरीविनायकोपेता रोहिणी बुधसंयुता । विनापि रोहिणीयोगात् पुण्यकोटिफलप्रदा ॥
भविष्ये—भद्रे कुरु प्रयत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्तमम् । ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां स्नात्वा नियमतत्परा ॥

इति रम्भाव्रते द्वितीयायुतैव तृतीया ग्राह्या तथाहि—

स्मृतिः—रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां मुनिसत्तम । अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते ॥

यत्तु--तृतीया तु न कर्तव्या द्वितीयासहिता विभो । द्वितीयासहिता तां तु या करोति विमोहिता ॥
सा याति नरकं घोरं कालसूत्रं भयङ्करम् । द्वितीयाशेषसंयुक्तां या करोति नराधमा ।
सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

इति ब्रह्मवैवर्तवचनम् । तत्तु रम्भेतरतृतीयापरम् । तथा हि--
मुहूर्तमात्रसत्वेपि दिने गौरीव्रतं परे । शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात् ॥
चतुर्थीसहिता या तु सा तृतीया फलप्रदा । अवैधव्यकरी स्त्रीणां पुत्रपौत्रादिवर्द्धिनी ॥
आद्या मधुश्रावणिका कज्जली हरितालिका । चतुर्थीमिश्रिता स्त्रीभिर्दिवा नक्तं विधीयते ॥

दिवोदासीये--तृतीयानभसः शुक्ला मधुश्रावणिका स्मृता । भाद्रस्य कज्जली कृष्णा शुक्ला च हरितालिका ॥

एवञ्च--एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी । अमावास्या तृतीया च ता उपोष्याः परान्विताः ॥
इति विष्णुधर्मोत्तरीयं वचनं रम्भातृतीयातिरिक्ततृतीयासु योज्यम् ।

(४) चतुर्थी-द्वैधः

वृहस्पतिः—चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते । मध्याह्नव्यापिनी चेत् स्यात् परतश्च परेऽहनि ॥ मातृविद्धा तृतीयाविद्धा । तथा—

चतुर्थी च तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा । कर्तव्या व्रतिभिर्वत्स गणनाथसुतोषिणी ॥

गणनाथं सुतोषयति तच्छीलेत्यर्थः । तथा—

कृष्णाष्टमी चतुर्थी च सावित्री वटपैतृकी । शुक्लत्रयोदशी रम्भा नोपोष्याः परसंयुताः ॥

पुराणसमुच्चयेऽपि—गौरी चतुर्थी वटधेनुपूजा दुर्गार्चनं दुर्भरहोलिका च ।
वत्सस्य पूजा शिवरात्रिरेताः परान्विता घ्नन्ति नृपं च राष्ट्रम् ॥

तथा—मातृविद्धा प्रशस्ता स्याच्चतुर्थी गणनायके । मध्याह्नात् परतश्चेत् स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते ॥

तथा—भाद्रशुक्लचतुर्थी या भौमेनार्केण वा युता । महती सात्र विघ्नेशमर्चित्वेष्टं लभेन्नरः ॥

स्कन्दपुराणे—माघशुक्लचतुर्थ्यान्तु नक्तव्रतपरायणः । ये त्वां ढुण्ढेऽर्चयिष्यन्ति तेऽर्च्याः स्युरसुरद्रूहाम् ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—गणेश-गोरी-वहुलाव्यतिरिक्ताः प्रकीर्तिताः । चतुर्थ्यः पञ्चमीविद्धा देवनान्तरयोगतः ॥

तदियं व्यवस्था एतावत्कार्येषु तृतीयायुता चतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या, माघशुक्लचतुर्थ्यां नक्तसम्बन्धादरोऽधिकः । कृष्णचतुर्थ्यां सङ्कष्टचतुर्थीव्रते चन्द्रोदयकालसम्बन्धादर इति । भाद्रशुक्लचतुर्थ्यां चन्द्रादर्शने—

मार्कण्डेयपुराणम्—सिंहादित्ये शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम् । मिथ्याभिशापं कुरुते तस्मात् पश्येन्न तं तदा ॥ सिंहादित्ये इत्युपलक्षणम् ॥

ब्रह्मपुराणे—नारायणोऽभिशप्तस्तु सुधाकरमरीचिषु । स्थितश्चतुर्थ्यामद्यापि मनुष्याणां पतिश्च सः ॥
अभिशप्तः परीवादविषयो जातः ।

अतश्चतुर्थ्यां चन्द्रं तु प्रमादाद्वीक्ष्य संयतः । पठेद् धात्रेयिकावाक्यं प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥

तथा—"चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो नेक्षितव्यः कदाचने"ति । अत्र शब्दक्रमाच्चतुर्थ्युदितस्य पञ्चम्यामपि दर्शने दोषो लभ्यते । "चतुर्थ्यां नेक्षितव्यः" इति मुनिभिरुदितः = कथितः, इति व्याख्याने चतुर्थ्यामिव दर्शनं दोषायेति लभ्यते । अत्र पूर्वोक्तवचनसामञ्जस्यमधिकम् । उभयदिने तत्कालव्याप्तौ परैव त्रिसन्ध्यव्यापित्वात्, युग्मनियमाच्च । तथाहि विष्णुधर्मोत्तरेऽपि—एकादशो तथा षष्ठो अमावास्या चतुर्थिका । उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः ॥

यदि पूर्वदिने चन्द्रोदयकालमतिक्रम्य प्रवृत्ता चतुर्थी नोत्तरदिने चन्द्रोदयकालं व्याप्नुयात्तत्र पूर्वैव चतुर्थ्यधिकरणकचन्द्रदर्शनस्य दोषाधायकत्वेनाविशेषात् । यदि चतुर्थीचन्द्रयोरुभयदिने सामानाधिकरण्याभावस्तदा भूपालमतमेवानुसरणीयमित्यलम् ।

(५) अथ पञ्चमी-द्वैधः

पञ्चमी पूर्वंयुता ग्राह्या, तथाहि ब्रह्मपुराणम्— पञ्चमी च प्रकर्तव्या चतुर्थीसहिता प्रभो ।
हारीतादयोऽपि—चतुर्थीसंयुता कार्या पञ्चमी परया न तु ।
अन्यच्च—एकादशी तथा षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका । उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः ॥
नागपञ्चमी तु परैव, यदाह ब्रह्मवैवर्ते—
पूर्वाह्णे कृष्णपक्षे तु नागतोषकरी तिथिः । पञ्चमी तु प्रकर्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद ॥

एतद्वचनस्य पूर्वार्धमदृष्टवा परार्धं स्कन्दोपवासपरत्वेन व्याचख्यौ । अयुक्तेति पदच्छेदं कृत्वा पूर्वोक्तवाक्यैरेकवाक्यताञ्चाह । तत् सर्वं पूर्वार्धानवलोकनप्रयुक्तमेवेति बोध्यम् ।

समयप्रदीपे—सुप्ते जनार्दने कृष्णपञ्चम्यां भवनाङ्गणे । पूजयेन्मनसादेवीं स्नुहीविटपसंस्थिताम् ॥

स्नुही = घाञि'नाम्ना लोके प्रसिद्धा ।

तथा—पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु पुषिता नागा इतराः सचतुर्थिकाः ॥
इति स्मृतिरुभयपक्षसाधारणनागपञ्चमी परयुतामनुगृह्णाति ।

स्मृतसारे—श्रावणे पञ्चमी शुक्ला सा प्रोक्ता नागपञ्चमी । तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिता मताः ॥
भाद्रशुक्ला ऋषिपञ्चमी सापि परैव । शुक्ला परयुता ग्राह्या भाद्रे तु ऋषिञ्चमीति स्मृतेः ।

(६) अथ षष्ठी-द्वैधः

षष्ठी तु स्कन्दव्रते पूर्वयुता ग्राह्या, तथाहि—

कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिचतुर्दशी । एताः पूर्वयुता ग्राह्यास्तिथ्यन्ते पारणं चरेत् ॥
तदतिरिक्ताः परा ग्राह्याः । षण्मुन्योरिति युग्मवाक्यात् । एकादश्यष्टमीषष्ठीत्यादिपूर्वोक्तस्मृतेश्च ॥ पक्षधरीये स्मृतिसमुच्चये—षष्ठ्यष्टमी अमावास्या कृष्णपक्षे चतुर्दशी । एताः परयुता ग्राह्याः पराः पूर्वेण संयुताः ॥
नागविद्धा तु या षष्ठी रुद्रविद्धो दिवाकरः । कामविद्धो भवेद् विष्णुर्न ग्राह्यास्ते तु वासराः ॥
तथा—कलाकाष्ठानिमेषोपि यदि स्यादपरेऽहनि । षष्ठ्याः कथञ्चिद्विप्रेन्द्र सैवोपोष्या महातिथिः ॥

भाद्रशुक्लषष्ठीविषये स्कन्दपुराणम्—

षष्ठी च सप्तमी चैव वारश्चेदंशुमालिनः । योगोयं युग्मको नाम सूर्यंकोटिग्रहैः समः ॥

एतावतैव कार्त्तिकशुक्ला रविषष्ठी (प्रतिहारषष्ठी) व्याख्याता । तथाहि—

षष्ठ्यामुपोष्य विधिवत् सप्तम्यामर्कंपूजयेदिति । सद्रव्यभागरुक् चैव सम्प्राप्नोतीप्सितं फलम् ॥

अर्केत्यत्रार्षो विभक्तिलोपः । उपोष्येति क्त्वाश्रुतेरर्कंपूजयेदिति विधेश्च अर्घादिना पूजनस्यैव प्राधान्यावगमात्, तस्य चोत्तरत्र सप्तम्यां प्रातरेव विधानात् । पूर्वंदिने सायमर्घादिना पूजने षष्ठो सप्तमी वा ग्राह्येति न नियमः । प्रधानीभूतोत्तरत्रार्घदानस्य तदङ्गोपवासस्य वाऽङ्गतयैव तदाचरणात् । आश्विनशुक्ला षष्ठी बिल्वाभिमन्त्रणे सायन्तनी ग्राह्या । षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायं सन्ध्यासु कारयेत् । इति भविष्यात् । अहमप्याश्विने षष्ठ्यां सायाह्ने बोधयाम्यतः । इति बोधनमन्त्रार्थानुरोधाच्च । सन्ध्यामाह—

वराहमिहिरः—अर्घादस्तमनात् सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत् । इति ।

तिथितत्त्वेपि—बोधयेद्बिल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं फलेषु च । सप्तम्यां बिल्वशाखान्तामाहृत्य प्रतिपूजयेत् ॥

ब्रह्माण्डे—पत्रीप्रवेशात् पूर्वेद्युः सायाह्ने बिन्ध्यवासिनीम् । चण्डीमामन्त्रयेद् विद्वान्नात्र षष्ठी पुरस्क्रिया ॥

बिल्ववासिनीमिति पाठो भविष्ये । पठन्ति च—

सायं षष्ठ्यां तु कर्त्तव्यं पार्वत्या अधिवासनम् । षष्ठ्यभावेपि कर्तव्यं सप्तम्यामपि मानद ॥

देवीपुराणे—ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम् । सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्रिकायाः प्रवेशनम् ॥
पूर्वाषाढयुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम् । उत्तरेण नवम्यां तु बलिभिः पूजयेच्छिवाम् ॥
श्रवणेन दशम्यां तु प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥

अत्र तिथिनक्षत्रयोर्योगे मुख्यः कालः अतथात्वे तिथिर्ग्राह्या । तथाहि विद्यापतिधृता यमस्मृतिः—

तिथिः शरीरं देवानां तिथौ नक्षत्रमाश्रितम् । तस्मात्तिथिं प्रशंसन्ति नक्षत्रं न तिथिं विना ॥
अन्यच्च—तिथिनक्षत्रयोर्योगे द्वयोरेवानुपालनम् । योगाभावे तिथिर्ग्राह्या देव्याः पूजनकर्मणि ॥ इति

तदियं व्यवस्था । सप्तम्यामुदयगामिन्यां प्रातःकाले पत्रिकाप्रवेशस्तदव्यवहितपूर्वसायाह्ने बिल्वाभिमन्त्रणम् । तत्र षाष्ठीतिथेर्ज्येष्ठानक्षत्रस्य च सद्भावः प्रशस्तः नात्यावश्यक इति ।

(७) अथ सप्तमी-द्वैधः

सप्तमी तु षष्ठीयुता ग्राह्या । षण्मुन्योरिति युग्मात् । "सप्तमी नाष्टमीयुक्ता न सप्तम्यायुताष्टमीति" स्मृतेश्च । "षष्ठ्यष्टमी" त्यादि "नागविद्धे" त्यादि स्मृतिभ्यां पूर्वोक्ताभ्याञ्च । तथाहि—

भविष्ये—षष्ठीसमेता कर्तव्या सप्तमी नाष्टमीयुता । पतङ्गोपासनायेह षष्ठ्यामाहुरुपोषणम् ॥
एकादश्यां प्रकुर्वन्ति उपवासं मनीषिणः । आराधनाय द्वादश्यां विष्णोर्यद्वदियन्तथा ॥ इति ।

पत्रिकाप्रवेशे तु परयुता ग्राह्या । 'युगाद्या' इत्यादि तृतीयाप्रकरणोक्त देवीपुराणात् ॥ तथाहि—

ज्योतिःशास्त्रे—पूर्वाह्णे नवपत्रिका शुभकरी सर्वार्थसिद्धिप्रदा, आरोग्यं धनदा करोति विजयं चण्डीप्रवेशे शुभा ॥
मध्याह्ने जनपीडनक्षयकरी सङ्ग्रामघोरावहा, सायाह्ने वधबन्धनादिकलहं सपक्षतं सर्वदा ॥
सप्तम्यामस्तगायां यदि विशति गृहं पत्रिका श्रीफलाद्या
राज्ञः सप्ताङ्गराज्यं जनसुखमखिलं हन्ति मूलानुरोधात् ।
तस्मात् सूर्योदयस्थां नरपतिशुभदां सप्तमीं प्राप्य देवीम्
भूपालो वेशयेत्तां सकलजनहितां राक्षसर्क्षं विहाय ॥

राक्षसर्क्षं मूलम्, मूलानुरोधान्न प्रातःकालातिक्रमः किन्तु मूलमनादृत्य प्रातरेव प्रवेशयेदित्यर्थः।

(८) अथाष्टमी-द्वैधः

ब्रह्मवैवर्ते--नाष्टमी सप्तमीयुक्ता सप्तमी नाष्टमीयुता। नवम्या सह कार्या स्यादष्टमी सर्वदा बुधैः ॥
तथा--शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता ॥
उपवासेषु सर्वेषु एष धर्मः सनातनः ॥
तथा—अष्टमी नवमीविद्धा नवम्या चाष्टमी तथा। अर्धनारीश्वरप्राया उमामाहेश्वरी तिथिः ॥
तथा--कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धैव कर्तव्या परविद्धा न कुत्रचित् ॥
तथा–कृष्णपक्षे सदा कार्या अप्तम्या सहिताष्टमी ॥
विष्णुरहस्ये--कार्या विद्धापि सप्तम्या रोहिणीसहिताष्टमी। तत्रोपवासं कुर्वीत तिथिभान्ते च पारणम् ॥
तथा--जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिचतुर्दशी। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या तिथिभान्ते च पारणम् ॥
तथा—श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम् ॥

एवमादिभिर्नानामुनिवचनैरष्टमी कृष्णपक्षे सप्तमीयुता ग्राह्या। शुक्ला तु दूर्वाष्टम्यतिरिक्ता नवमीयुता ग्राह्येति। कृष्णाष्टमीव्रतं चतुर्द्धा भिद्यते इति सिद्धवल्लिखन्ति। वाचस्पत्ये द्वैतनिर्णये तदेव स पल्लवीकृत्यात्र प्रदश्यंते। तथाहि

रोहिणी च यदा कृष्णपक्षेऽष्टम्यां द्विजोत्तम। जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः ॥

इति भविष्यपुराणीयं रोहिणीयोगपुरस्कारेण द्वादशमासीयासु अष्टमीषु जयन्तीव्रतम्। तत्र विहितस्य गोविन्दार्चनस्य प्राधान्यात् पूर्वाह्णप्राप्तरोहिण्यष्टमीयोग एवेत्येकम् ॥ १ ॥

रोहिणीसहिता कृष्णा मासि भाद्रपदेऽष्टमी। अर्धरात्रे तु योगोऽयं तारापत्युदये सति ॥

इति स्मृत्यार्द्धरात्रिके भाद्रकृष्णाष्टमीरोहिणीयोग एव पूजादिकं तिथिभान्ते च पारणमिति रोहिण्यष्टमीव्रतं द्वितीयम् ॥ २ ॥

अथ भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे । अष्टाविंशतिमे जातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः ॥
तस्मात् स तत्र संपूज्यो यशोदा देवकी तथा । मुहूर्त्तेनापि संयुक्ता सम्पूर्णा साऽष्टमी भवेत् ॥
किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोटिविमुक्तिदा । तृप्त्यर्थं देवकीसूनोर्जयन्तीसम्भवं व्रतम् ॥
कर्त्तव्यं मुक्तिकामेन तथा भक्तजनैरपि । अकुर्वन्निरयं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ इति ।

अत्रापि रोहिण्यादियोगे फलाधिक्यमाह—

स्कन्दपुराणे—उदये चाष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि । भवेद्वै बुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता ।
अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न वा विभो ।

तथा—जयन्तीबुधवारेण सोमवारेण वा पुनः । लभ्यते दैवयोगेन तामुपोष्य महाफलम् ॥

सप्तम्यविद्धालाभे सप्तमीविद्धानिषेधमाह—

अग्निपुराणे—वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताऽष्टमी । सऋक्षापि न कर्तव्या सप्तम्या सहिता यदि ॥
पद्मपुराणे—पञ्चगव्यं यथा शुद्धं न ग्राह्यं मद्यदूषितम् । रविविद्धा तथा त्याज्या रोहिण्यापि युताष्टमी ॥
तथा—पुत्रान् हन्ति पशून् हन्ति हन्ति राज्यं सराजकम् । हन्ति जातानजातांश्च सप्तमीसहिताष्टमी ॥

अस्मिश्च व्रते पूजायाः प्राधान्येन श्रवणाद् उदयगामिनी पूर्वाह्णव्यापिन्यष्टम्येवापेक्ष्यते रोहिण्यादियोगस्तु फलातिशयार्थः । 'रात्रौ प्रजागरः कार्यः' इत्यादिना रात्रिकृत्यत्वेन जागरमात्रस्यैवाभिधानात् पूजाधारत्वेन रात्रेरश्रुतावौत्सर्गिकस्य पूर्वाह्णकृत्यत्वस्यानपवादादिदमेव सकलशिष्टमैथिलाचारपरिगृहीतं कृष्णजन्माष्टमीव्रतमिति तृतीयम् ॥ ३ ॥

चतुर्थन्तु हेमाद्र्यनुगृहीतं कृष्णजन्माष्टमीव्रतम् तत्र रोहिणीयोगः फलातिशयार्थं एव नात्यावश्यक इति द्वितीयस्माद्रोहिण्यष्टमीव्रताद्भेदः। निशीथे पूजाद्यभिधानान्निशीथव्यापिनी ग्राह्येति। तृतीयस्माद् भेद इति चतुर्थं कृष्णजन्माष्टमीव्रतमिति ॥ ४ ॥

पूर्वोक्तस्मृतीनां यथायथमुक्तचतुर्विधव्रतेषूद्देश्यतावच्छेदकाक्रान्ततत्तद्व्रतपरत्वेन विरोधाभावोऽनुसन्धेय इति ॥ आश्विनकृष्णाष्टमी लक्ष्मीव्रते चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। तथाहि —

स्मृतिः—पूर्वा वा परविद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदये सदा। त्रिमुहूर्तापि सा पूज्या परतश्चोर्धगामिनी ॥

तथा—लक्ष्मीव्रतञ्चाभ्युदिते शशाङ्के यत्राष्टमी चाश्विनकृष्णपक्षे।
यत्रोदयं वै कुरुते दिनेशस्तदा भवेज्जीवितपुत्रिकाख्या ॥ इति ॥

जीवितपुत्रिकाव्रते प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। यदाह—

भविष्ये—ईषे मास्यसिते पक्षे चाष्टमी या तिथिर्भवेत्। पुत्रसौभाग्यदा स्त्रीणां ख्याता सा जीवपुत्रिका ॥
शालिवाहनराजस्य पुत्रो जीमूतवाहनः। तस्यां पूज्यः स नारीभिः पुत्रसौभाग्यलिप्सया ॥
प्रदोषसमये स्त्रीभिः पूज्यो जीमूतवाहनः। पुष्करिणीं विधायाथ प्राङ्गणे चतुरस्त्रिकाम् ॥ इति ॥

उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ परा ग्राह्या, उदयव्याप्त्यनुरोधात्, तिथ्यन्ते पूर्वाह्णे पारणानुरोधाच्च, उपवासद्वयापत्यनुरोधाच्च। यत्र च नैकस्मिन्नपि वासरे प्रदोषव्याप्तिस्तत्रापि परैव। "यत्रोदयं वै कुरुते दिनेशः" इत्याद्युक्तपरमानन्दठक्कुरधृतस्मृतेः। यत्र पूर्वदिने प्रदोषव्याप्तिर्नोत्तरत्र प्रदोषव्याप्तिस्तत्र पूर्वदिने एव। तथाहि—

विष्णुधर्मोत्तरे—पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा प्रदोषे यत्र चाष्टमी। तत्र पूज्यः स नारीभी राजा जीमूतवाहनः ॥
आश्विनस्याऽसिताष्टम्यां याः स्त्रियोऽन्नञ्च भुञ्जते। मृतवत्सा भवेयुस्ता विधवा दुर्भगा ध्रुवम् ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरीयत्वेन लिखितं वचनं यदि प्रमाणं तर्हि एकादश्युपक्रमे—

भूञ्जन् गोमांसभक्षस्य पापमाप्नोति मानवः । यो भुङ्क्ते नीरुजः सोऽथ प्रेतश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥

इत्यादिभोजननिषेधार्थवादिकवचनवत् व्रतनित्यत्वावधारणार्थम् । भोजननिषेधमुखेनोपवासमेवाभिधत्ते वा, न तु पारणानिषेधार्थम् । “तिथिभान्ते च पारणम्” इति सामान्यवचनेनैवाष्टम्यान्ततदप्राप्तेरिति ।

आश्विनशुक्ला चाष्टमी निशापूजायां महानिशाव्यापिनी ग्राह्या । “कर्मणो यस्ये” त्यादिस्मृतेः । उभयदिने ‘महानिशाव्याप्तौ परा ग्राह्या नवमीयोगप्राशस्त्यबलाद् । यत्र पूर्वदिने एव महानिशाव्यापिनी नोत्तरत्र ‘तत्र’ पूर्वदिने सप्तमीयुतैव ग्राह्या, यदाह, विश्वरूपनिबन्धे—

महाष्टम्याश्विने मासि शुक्ला कल्याणकारिणी । सप्तम्या संयुता कार्या मूलेन तु विशेषतः ॥
महाष्टम्यां भगवती भद्रायामपि पूजिता । ददाति चायुरारोग्यं यतो भद्रास्वरूपिणी ॥
कुलं पुत्रं धनं धान्यं राज्यमायुस्तथैव च । प्रथमा चाष्टमीं पूज्या यः काङ्क्षति सदा शुभम् ॥

उपवासव्रते तूदयव्यापिनी ग्राह्या यदाह,

विष्णुधर्मोत्तरीये—अष्टम्या नवमीयुक्ता नवम्या चाष्टमीयुता । अर्धनारीश्वरप्राया उमामाहेश्वरी तिथिः ॥ इति । एकादश्यष्टमीत्यादिपैठीनसिस्मृतेश्च । स्मृत्यन्तरेऽपि—

सप्तम्या चाष्टमीयुक्ता नवम्या चाष्टमीयुता । सर्वेषु व्रतकल्पेषु अष्टमी परतः शुभा ॥ इति ।
तथा—शरन्महाष्टमी पूज्या नवमी संयुता सदा । सप्तमी संयुता त्याज्या शोकसन्तापकारिणी ॥
जम्भेन सप्तमीयुक्ता पूजिता च महाष्टमी । इन्द्रेण निहितो जम्भस्तस्माद् दानवपुङ्गवः ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सप्तमीसहिताष्टमी । वर्जनीया हि मनुजैरात्मनः शुभकाङ्क्षिभिः ॥

सप्तमीशल्यसंयुक्तां मोहादज्ञानतोपि वा । महाष्टमीं प्रकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥

अत एव दिनकृत्ये उभयस्मिन् दिने तत्तिथिलाभे नवमीयुताष्टमी ग्राह्या । रात्रिकृत्ये तु रात्रिद्वये तल्लाभे एवमिति वाचस्पतिचरणाः ।

(९) अथ नवमी-द्वैधः

नवमी पूर्वविद्धा ग्राह्या । यदाह,

ब्रह्मवैवर्ते—अष्टम्या नवमीविद्धा कर्तव्या फलकाङ्क्षिभिः । न कुर्यान्नवमीं तात दशम्या तु कदाचन ॥ इति ।

पाद्मेऽपि—अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता । इति ।

स्मृतिः—कन्यागते सवितरि शुक्लपक्षेऽष्टमीयुता । मूलनत्रसंयुक्ता सा महानवमी स्मृता ॥ इति ।

भविष्ये—अश्वयुक्शुक्लपक्षे तु अष्टमीमूलसंयुता । सा महानवमी नाम त्रैलोक्येपि सुदुर्लभा ॥ इति ।

दुर्गापूजासु मूलनक्षसंयुता महती कीर्तिता । तस्यां दुर्गामहिषमर्दिनीत्यादि—स्मृतेश्च । नवमी पूर्वाह्णव्यापिनी चेदष्टमीविद्धा त्रिशूलिनीपूजादौ ग्राह्या । प्रभूततरबलिदाने तु—

देवीपुराणम्—अश्वयुक् शुक्लनवमी मुहूर्तं वा कला यदि । सा तिथिः सकला ज्ञेया लक्ष्मीविद्याजयार्थिभिः ॥

सौरधर्मे—सूर्योदये परा रिक्ता पूर्णा स्यादपरा यदि । बलिदानं प्रकर्तव्यं तत्र देशे शुभं भवेत् ॥ इति ।

बलिदानं दशासु चेति निषेधो नवम्ययुक्तासु वेदितव्यम् । तथा "बलिदाने कृतेऽष्टम्यां पुत्रभ्रंशो भवेन्नृपे" ति निषेधोऽपि प्रभूततरबलिदाने एव । पूजाङ्गबलिदानमष्टम्यां भवत्येवानवकाशत्वात् ।

चैत्रशुक्ला तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि । सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ॥

नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः । उपोषणं नवम्यान्तु दशम्यामेव पारणम् ॥

इत्यादि विष्णुपरायणैरिति तु विष्णुपरायणत्वेन भवितव्यमित्युपदेशपरम्, न तु कर्तृविशेषणम्, विधिद्वयकल्पनापत्तेः । एतेन वैष्णवैर्दशमीविद्धोपोष्या तदतिरिक्तैरष्टमीविद्धेति व्यवस्था हेयैव विधिद्वयकल्पनायामति गौरवात् । एवञ्च सर्वैरेवौदयिकी ग्राह्या पारणन्तु दशम्यामेवेति सिद्धम् । मध्याह्नयोगः प्रशंसार्थः महापुण्यजनकत्वेन स्वीकृतत्वात् । पुनर्वसुयोगवद् आश्विनकृष्णनवम्यामाचारपरिप्राप्तमातृश्राद्धे सङ्गवात्मकमुहूर्तत्रयान्तर्गतपूर्वाह्णसम्बन्धिनी नवमी ग्राह्या । पूर्वाह्णे मातृकं श्राद्धमित्यादिब्रह्मपुराणात् । तत्र प्रातःपदस्य पृथगुपादानात् पूर्वाह्णपदस्य तादृशकालपरत्वं सामान्यविशेषन्यायात् ।

(१०) अथ दशमी-द्वैधः

सा च पूर्वस्मिन् परस्मिन् वा दिने विहितकालव्यापिनी ग्राह्या । तथाहि—

पक्षधरघृतस्मृतिः—संपूर्णा दशमी कार्या परया पूर्वयापि वा । युक्ता न दूषिता यस्मादिति सा सर्वतोमुखी ॥

तथा—दशम्येकादशीविद्धा कर्तव्या फलकाङ्क्षिभिः । दशमी चैव कर्तव्या सदुर्गा द्विजसत्तमा ॥ इति ॥

उभयदिने विहितकालव्याप्तौ परा ग्राह्या प्रधानप्रातःकालव्याप्त्यनुरोधात् । आश्विनशुक्ला विजयदशमी प्रातःकालिकी ग्राह्या । यदाह—

नन्दिकेश्वरः—प्रातरावाहयेद् देवीं प्रातरेव प्रवेशयेत् । प्रातः प्रातश्च सम्पूज्य प्रातरेव विसर्जयेत् ॥

तथा—भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च याः क्रियाः । पूर्वाह्णे एव कुर्वीत न तत्र तिथियुग्मता ॥

नारदः—इषस्य दशमीं शुक्लां पूर्वविद्धां न कारयेत् । श्रवणेनापि संयुक्तां राज्ञां पट्टाभिषेचने ॥

तथा—सूर्योदये यदा राजन् दृश्यते दशमीतिथिः । आश्विने मासि शुक्लान्तु विजयां तां विदुर्बुधाः ॥

तथा—स्तोकापि सा तिथिः पुण्या यस्यामभ्युदितो रविः ॥ इति ।

कालिकापुराणे—सम्यक्कल्पोदिता पूजा यदि कर्तुंन्न शक्यते । उपचारांश्च संक्षिप्य पञ्चैतान् वितरेत्तदा ॥
गन्धं पुष्पञ्च धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च । अभावे पुष्पतोयाभ्यां तदभावे तु भक्तितः ॥
संक्षेपपूजा कथिता यथाशास्त्रमथापि वा ॥

एवञ्च मुहूर्तमात्राप्युदयगामिनी दशमो देवीविर्सनापराजितापूजादौ ग्राह्या । नृपाणान्तु दशम्यामपराह्णे सोमालंघनस्यावश्यकर्तव्यतया तस्य चापराजितापूजादेवीविसर्जनोत्तरकालिकत्वनियमेन सीमालंघनात्मकप्रधानकार्यानुरोधात्तदन्तापकर्षन्यायेन नवमीयुतायामपि दशम्यां पूर्वाह्णे देवीविसर्जनमपराजितापूजनञ्च कार्यम् । तथाहि शिवरहस्यवचनम्—

कृत्यमहार्णवे—आश्विने शुक्लपक्षस्य दशम्यां पूजयेत्ततः । एकादश्यां न कुर्वीत पूजनञ्चापराजिताम् ॥
तथा—सीमालङ्घं प्रकुर्वीत दशम्यां सर्वदा नृपः । अपराह्णे प्रकुर्वीत ऐशानीं दिशमाश्रितः ॥
शाब्दले च विविक्ते च कृत्वा मूर्तिम्महीमयीम् । द्वे मूर्ती अपि कर्तव्ये तथा खड्गधनुर्द्धरे ॥
चत्वारः पर्वताः कार्याश्चतुर्दिक्षु समन्ततः ॥

यदि पूर्वदिने पूर्वाह्णे दशमी न लभ्यते तदोत्तरदिने पूर्वाह्णे अपराजितापूजा-देवीविसर्जने कृत्वाऽपराह्णे सति सम्भवे दशम्यां तदलाभे चैकादश्यामपि सीमालङ्नं कार्यम्, दशमीपदस्यागतया दशमीयुक्तैकादश्यामपि लक्षणया निराबाधात् ।

(११) अथैकादशी-द्वैधः

सा चोपवासादौ परा ग्राह्या, एकादश्यष्टमीत्यादिस्मृतेः । रुद्रेण द्वादशीयुक्तेति युग्मनिगमात् ।

एकादशी दशाविद्धा गान्धार्यां समुपोषिता । तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥

इति निन्दार्थवादानुरोधाच्च । किं चैकादशीमुपवसेदित्यत्राभिचरितैकादश्यन्तिमभागयुताहोरात्रपरत्वस्यैव-(१) युक्तत्वाद् द्वादशीयुतैवोपोष्या । अत एव त्र्यहे वर्द्धमानैकादश्युपोषणं शास्त्रार्थः । न च पूर्वदिनेप्युदयगामित्वाद् दशम्यविद्धत्वाच्च कपालाधिकरणन्यायादुपोषणमास्तामुत्तरदिने तिथिमलत्वेनाग्राह्यत्वमस्त्विति वाच्यम्, 'सर्वं तिथिमलं त्याज्यमन्यत्र हरिवासराद् इति स्मृतेः ।

षष्टिदण्डात्मिकायाश्च तिथेर्न्निष्क्रमणं परे । अकर्मण्यं तिथिमलं विद्यादेकादशीं विना(२) ॥

इति स्मृतेश्च, पूर्वोक्तयुक्त्या च परैवोपोष्या वाचनिकव्यवस्थायां न्यायविरोधस्याकिञ्चित्करत्वात् । एकादशीक्षयस्थले तु केचित् । पूर्वोक्तनिन्दार्थवादानुमितं दशमीविद्धामेकादशीं नोपवसेदिति श्रूतिवाक्यम् । तस्य च लाघवात् पर्युदासन्यायेन विधिवाक्येन सहैकवाक्यतया दशमीविद्धातिरिक्तैकादश्युपवासस्य शास्त्रार्थत्वात् । क्षयस्थले चैकादश्या दशमीविद्धाया विद्धयस्पृष्टत्वादुत्तरदिने चालाभाद् व्रतलोप एव कृतसंकल्पेनाप्योदनादिकं भोक्तव्यमिति काचित्कशिष्टाचारानुप्राणितं प्रतिजानन्ति ।

भविष्ये—एकादशीं दशायुक्तां वर्द्धमाने विवर्जयेत् । पक्षहानौ स्थिते सोमे लङ्घयेद् दशमीयुताम् ॥
लङ्घयेदित्यस्य त्यजेदित्यर्थं इति च व्याचख्युः ।

परे तु—'वृद्धौ परा तु कर्तव्या क्षये पूर्वान्तु कारयेत्' इति स्मृत्यन्तरैकवाक्यतानुरोधाल्लंघयेदित्यस्योपवसेदित्यर्थस्यैवावगमात् ।

---

(१) उपवासस्याहोरात्राभोजनरूपतयोपोष्यपदश्रुत्या अहोरात्राक्षेपस्तथा च प्रधानोदयकालनिरूपितव्यभिचाराभावस्तिथ्यन्तिमभागयुताहोरात्रे एवेति भावः ।

(२) एकादशीव्रतसमीक्षा 'अस्मत्सम्पादित' वर्षकृत्यद्वितीयभागे ८४ पृष्ठे द्रष्टव्या ।

एकादशी दशाविद्धा परतो न च वर्द्धते । गृहिभिर्यतिभिश्चैव सैवोपोष्या महातिथिः ॥

इति स्मृत्यन्तरैकवाक्यतानुरोधाच्च । एकादशीक्षयस्थले दशमीविद्धैकादश्युपोषणीशास्त्रार्थः । दशम्यविद्धैकादशीलाभे सत्येव दशमीविद्धैकादशीपरित्यागे निषेधवचनानां तात्पर्यावधारणादित्याहुः । न चेदृशस्थले 'एकादशीमुपवसेद् द्वादशीमथवा पुनः । विमिश्रां वा प्रकुर्वीत न दशम्या युतां क्वचित् ॥' इति स्मृत्या द्वादश्युपोषणमेवाऽस्त्विति चेत् सत्यम् । भवेदेवं यदीदं गौडीयवचनं प्रमाणं स्यात्तदेव न । यदाहुः—वस्तुतस्तु वचनमेवेदमनाकरं राजाद्यलिखितत्वादिति कृत्यमहार्णवे वाचस्पतिचरणाः । ननु यत्र च द्वादशीक्षयस्तत्र द्वादश्यां पारणानुरोधाद्दशमीविद्धैकादश्युपवासोऽस्तु इति चेन्न अंगे पारणादौ द्वादशीवाधस्याकिञ्चित्करत्वात् ।

कलाप्येकादशी यत्र परस्ता, द्वादशी न चेत् । पुण्यं क्रतुशतस्योक्तं त्रयोदश्यां तु पारणे ॥

इति स्मृतिकौमुदीधृतस्मृतेः ।

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी । त्रिस्पर्शात्तदहोरात्रं पुण्यं साहस्रिकं भवेत् ॥

इति स्मृत्यन्तराच्च तस्यैव बहुपुण्यजनकत्वादित्यलं बहुना ।

(१२) अथ द्वादशी-द्वैधः

सा चोपवासादिषु सति सम्भवे एकादशीयुता ग्राह्या रुद्रेण द्वादशीयुक्तेति युग्मवाक्यात् । कामविद्धो भवेद्विष्णुरिति त्रयोदशीविद्धाया निषेधश्रवणाच्च ।

आ·भा·का·सितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । द्वादशीबुधवारेण हरेर्वासर उच्यते ॥

मैत्रमनुराधा । अत्र मासनक्षत्रयोः क्रमिकान्वयः । बुधवारेणेति सर्वत्राभिसंबध्यते ।

तथा—द्वादश्यां शुक्लपक्षे तु नभस्ये श्रवणा यदि। उपोष्यैकादशीं तत्र द्वादशीमप्युपोषयेत् ॥
ब्रह्माण्डपुराणे—द्वादश्यास्तु दिने भाद्रे हृषीकेशर्क्षसंयुते। उपवासद्वयं कुर्याद्विष्णुप्रीणनतत्परः ॥
तथा—द्वादश्येकादशी सौम्यं श्रवणं च चतुष्टयम्। देवदुन्दुभियोगोऽयं शतसत्रफलप्रदः ॥
वराहपुराणे—एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीमप्युपोषयेत्। न चात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्दैवतं हरिः ॥
पारणान्तं व्रतं ज्ञेयं समाप्तौ द्विजभोजनम्। असमाप्ते व्रते पूर्वे कुर्यान्नैव व्रतान्तरम् ॥

यत्र चैकादश्यां द्वादशीक्षयस्तत्रैकेनोपवासेनोभयसिद्धिरिति बोध्यम्। अशक्तं प्रत्याह—

बोधायनः—एवमेकादशीं भुक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्। उपवासद्वयं कर्तुं न शक्नोति नरो यदि ॥
कार्मुके च यदा जीवे पुष्ये सौभाग्यसंयुते। फाल्गुनस्य सिते पक्षे द्वादशी रविवासरे ॥
गोविन्दद्वादशी नाम महापातकनाशिनी।
तथा—फाल्गुने शुक्लपक्षस्य पुष्यार्के द्वादशी यदि। गोविन्दद्वादशी नाम महापातकनाशिनी ॥इति॥

(१३) अथ त्रयोदशी-द्वैधः

सा च शुक्ला पूर्वयुता ग्राह्या। तथाहि—

बोधायनः—पञ्चमी सप्तमी चैव दशमी च त्रयोदशी। प्रतिपन्नवमी चैव कर्तव्या सम्मुखी तिथिः ॥
तथा—कृष्णाष्टमी बृहत्तल्पा सावित्री वटपैत्रकी। कामत्रयोदशी रम्भा उपोष्याः पूर्वसंयुताः ॥
तथा—शुक्लात्रयोदशी रम्भा नोपोष्याः परसंयुताः ॥ कृष्णपक्षे तु परैव तथाहि—
आपस्तम्बः—षष्ठ्यष्टमी त्वमावास्या कृष्णपक्षे त्रयोदशी। एताः परयुता ग्राह्याः पराः पूर्वेण संयुताः ॥

चैत्रकृष्णायामाह, स्कन्दपुराणे—

वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी । गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा ॥
शनिवारेण संयुक्ता सा महावारुणी स्मृता । गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा ॥
शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि । महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत् ॥

अत्राऽखण्डयोगे पूर्वाह्ण एव स्नानादिकार्यम् । तत्रैव तेषां विधानात् । खण्डयोगे तु यस्मिन् काले योगो लभ्यते तत्रैव, ग्रहणवत् । अत्राहुः महाफलश्रुते रात्रावपि योगसन्निपाते (गङ्गायां) स्नानादिकार्यमित्युमापतयः ।

(उपापतिवचनमिदं केऽपि नाद्रियन्ते । सम्पादकः । द्र० पृ० ३२२)

सारसंग्रहे—दिवा रात्रौ च सन्ध्यायां गङ्गायान्तु विशेषतः । स्नात्वाऽश्वमेधजं पुण्यं गृहेप्युद्धततज्जलैः ॥

भविष्येऽपि—सर्व एव शुभः कालः सर्वो देशस्तथा शुभः । सर्वो जनस्तथा पात्रं स्नानादौ जाह्नवीजले ॥

वारपदोपादानात् वारपदस्य सूर्योदयास्तावधिकालपरत्वौत्सर्गिकतया रात्रौ स्नानादिकं नाचरणीयम् । राहुदर्शनादिप्रसूतेतरकर्मणि सर्वत्र पर्युदस्तत्वात् । अत एव सोमारात्रौ अमावास्यालाभे न सोमवारव्रतमिति । “दिवैव योगः शस्तोयं न तु रात्रौ कदाचने”ति वचनं न्यायमूलकमेवेति बोध्यम् ।

(१४) अथ चतुर्दशी-द्वैधः

‘सा शुक्ला परा ग्राह्या चतुर्दश्याथ पूर्णिमा’ इति युग्मवचनात् । एकादश्यष्टमीत्यादि तृतीयाप्रकरणलिखितबृहस्पतिविष्णुधर्मोत्तरवचनाच्च । उदये त्रिमुहूर्तापि ग्राह्यानन्तव्रते तिथिः’ इति माधवीयाच्च ।

भविष्ये— तथा भाद्रपदस्यान्ते चतुर्दश्यां द्विजोत्तम । पौर्णमास्याः समायोगे व्रते चानन्तकं चरेत् ॥

स्कान्दे— मुहूर्तमपि चेद् भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी । संपूर्णां तां विदुस्तस्यां पूजयेद्विष्णुमव्ययम् ॥ इति ॥

स्कान्दे— मुहूर्तमपि चेद् भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी। सपूर्णा तां विदुस्तस्यां पूजयेद्विष्णुमव्ययम् ॥ इति ॥

नच—मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य सरितटे। ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससाम् ॥
चतुर्दश्यामर्चयन्तं भक्त्या देवं पृथक् पृथक् ॥

इति भविष्योत्तरीयमध्याह्नव्यापिनी तिथिर्ग्राह्येति वाच्यम्। "पूर्वाह्णो वै देवानामि"ति श्रुत्यादिभिः पूर्वाह्णे देवकृत्यविधानात्। विध्यसमभिव्याहृतार्थवादेन तद्बाधायोगात्। किंच 'मध्याह्ने' इति नाधिकरणसप्तमी, किन्तु सति सप्तमी, तथा च मध्याह्ने आगामिनि सति ततः प्रागेव स्नानसन्ध्यावन्दनाद्याह्निकं कर्मकर्तुं कौण्डिन्यः शीला च गोरथादुत्तीर्य पूर्वाह्णे स्त्रीणां समूहं सा ददर्शेत्यन्वयस्यापि सम्भवादिति न किञ्चिदेतत्।

कृष्णा तु पूर्वयुतैव। "कृष्णपक्षेऽष्टमी चैवे"त्याद्युक्तस्मृतेः। नक्तव्रते तु तद्व्यापिन्येव ग्राह्या "कर्मणो यस्य यः कालः" इत्याद्युक्तस्मृतेः। उभयदिने नक्तव्याप्तौ पूर्वस्मिन्नेव कपालाधिकरणन्यायादिति समयप्रदीपः। "कामविद्धो हरः पूज्यः" इति वचनसंवादादिति जीर्णोद्धारः।

स्कान्दे—माघमासस्य शेषे या प्रथमे फाल्गुनस्य च। कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रिः प्रकीर्तिता ॥

अत्रैकस्यास्तिथेः शुक्लादिमासरीत्या माघीयत्वम्। कृष्णादिमासरीत्या फाल्गुनीयत्वमप्यविरुद्धम्। सन्देहनिरासार्थमित्यमुक्तिः। हेमाद्रिधृतस्मृतिः—प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिचतुर्दशी। इति।

वायुपुराणे—त्रयोदश्यस्तगे सूर्ये चतसृष्वपि नाडिषु। भूतविद्धा तु या तत्र शिवरात्रिव्रतं चरेत् ॥

ईशानसंहितायाम्—माघे कृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि। शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः ॥
तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः। अर्धरात्रादधश्चोर्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी ॥
व्याप्ता सा दृश्यते यस्यां तस्यां कुर्याद् व्रतं नरः ॥

एवं च यस्मिन् दिने प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनी चतुर्दशी तस्मिन् दिने व्रतम्। उभयव्याप्त्यनुरोधात्। यदा

तु पूर्वेद्युर्निशीथमात्रव्याप्तिः परदिने प्रदोषमात्रव्याप्तिः । तदा पूर्वत्र व्रतम् । प्रधानकालानुरोधात् । तथाहि—

ईशानसंहितायां—पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा महानिशि चतुर्दशी । व्याप्ता सा दृश्यते यस्यां तस्यां कुर्याद् व्रतं नरः॥

भविष्ये—अर्धरात्रात् पुरस्तात्तु जयायोगो भवेद्यदि । पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः ॥

विष्णुधर्मोत्तरीये—जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्राजयान्विते । कृत्वोपवासं तिथ्यन्ते तदा कुर्याच्च पारणम् ॥

तिथ्यन्ते पारणं जयन्तीमात्रपरम् । अत्र चतुर्दश्यामपि पारणप्राशस्त्यात् ।

स्कान्दे—ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै । पूजितानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते ॥

गौतमः—दिनमानप्रमाणेन या तु रात्रौ चतुर्दशी । शिवरात्रिस्तु सा ज्ञेया चतुर्दश्यान्तु पारणम् ॥

यदा तु पूर्वदिने न निशीथव्याप्तिः परदिने प्रदोषमात्रव्याप्तिः तदा परा ग्राह्या । "प्रदोषव्यापिनी"त्यादि प्रागुक्तस्मृतेस्त्रिसन्ध्यव्यापित्वाच्च । एतद्विषय एव--लिंगपुराणम्—'शिवरात्रिव्रते भूतां कामविद्धां विवर्जयेत् । एकेनैवोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥' अत्रामावास्यायामेव पारणम् । तथाहि--तिथितत्त्वधृता स्मृतिः--

शिवा घोरा तथा प्रेता सावित्री च चतुर्दशी । कुहूयुक्तैव कर्त्तव्या कुह्वामेव हि पारणम् ।

(१५) अथाऽमावास्या-द्वैधः

सा त्र प्रतिपद्युता ग्राह्या युग्मनिगमात्, "एकादश्यष्टमी"त्यादि पैठीनसिस्मृतेश्च । लक्ष्मीपूजायां कार्त्तिकामावास्या प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । यदाह—भविष्योत्तरे—प्रदोषे पूजयेद् देवीं पद्महस्तां हरिप्रियाम् ॥ इति ।

तथा—प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा यथाविधि । ब्राह्मणान् भोजयित्वा च भोजयेच्च बुभुक्षितान् ॥

उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ परा ग्राह्या, उत्तरदिने प्रदोषव्याप्तौ पूर्वदिने च प्रदोषव्याप्तौ पूर्वा ग्राह्या । तथाहि,

राजमार्त्तण्डे—दण्डैकं रजनीं प्रदोषसमये दर्शो यदा संस्पृशेत् । कर्त्तव्या सुखरात्रिकात्र विधिना दर्शाद्यभावे तदा ॥

राजमार्त्तण्डे—दण्डैकं रजनौ प्रदोषसमये दर्शो यदा संस्पृशेत् । कर्त्तव्या सुखरात्रिकात्र विधिना दर्शोद्यमावे तदा ॥

पूज्या चाब्जधरा सदैव च तिथिः, सैवाह्नि प्राप्यते । कार्या भूतविमिश्रिता जगुरिति व्यासादिगर्गादयः ॥

उत्तरदिने सूर्यास्तात् परैकदण्डव्यापिन्यमावास्या ग्राह्या, तत्रारब्धा पूजा प्रतिपद्यपि सम्पादनीया यदि चोत्तरत्र दिवैव दर्शः प्राप्यते समाप्यते । पूर्वदिने च प्रदोषे लभ्यते तदा चतुर्दशीविद्धापि ग्राह्येत्यर्थः ।

ज्योतिःशास्त्रे—दण्डैकरजनीयोगे दर्शः स्याच्च परेऽहनि । तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका ॥
अमावास्या यदा रात्रौ दिवाभागे चतुर्दशी । पूजनीया तदा लक्ष्मीर्विज्ञेया सुखरात्रिका ॥

इति वचनद्वयमुभयत्र प्रमाणं वेदितव्यम् । अत्रैव निशीथे श्यामापूजा यदाह—

कामाख्यातन्त्रे—शरत्काले च देवेशि दीपयात्रादिने तथा । अमावास्यां सामासाद्य मध्यरात्रौ विचक्षणः ॥
मृन्मयीं पुत्तलीं कृत्वा दीपादिभिरलंकृताम् । बलिं नानाविधं दद्याद्वाद्यभाण्डसमन्वितम् ॥
नृत्यं गीतं कौतुकानि यावत्सूर्योदयं चरेत् । प्रातःकाले शुद्धतोये स्थापयेदर्विनाशिनीम् ॥

अत्र मध्यरात्रश्रवणात् निशीथव्यापिनी ग्राह्या । भविष्येऽपि—प्रतिसंवत्सरं कुर्यात् कालिकाया महोत्सवम् ।
कार्त्तिके तु विशेषेण अमावास्या निशार्धके ॥ तस्यां सम्पूजयेद् देवीं भोगमोक्षप्रदायिनीम् ॥

कुलसर्वस्वे—उभयदिने निशीथव्याप्तौ प्रदोषव्याप्तिर्नियामिका । प्रदोषव्यापिनी यत्र महानिशि च सा भवेत् ॥
तदेव कालिका पूज्या दक्षिणा मोक्षदायिनी ॥ यदि चोभयदिने तथा तदा चतुर्दशीयुता ग्राह्या । तथाहि—

आगमे—अर्धरात्रे महेशानि अमावास्या यदा भवेत् । चतुर्दशीयुता ग्राह्या चामुण्डापूजने सदा ॥
तथा—यत्रोभयदिने भूतयुक्तकुह्वां महानिशि । इमां यात्रां कारयित्वा चक्रवर्त्ती नृपो भवेत् ॥

शनिभौमदिनानुरोधात् प्रदोषव्यापिन्यपि निशीथव्यापिनी ग्राह्या । तथाहि—
चतुर्दशी प्रदोषे तु अमावास्या महानिशि । शनि-भौमदिने देवि निशायां सर्वथा यजेत् ॥

तदतिरिक्तदिने यदि पूर्वदिने प्रदोषव्यापिनी उत्तरदिने च प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनी तदोत्तरैव ग्राह्या, तथाहि—

कुलसर्वस्वे—महानिशादिने देवि प्रतिपच्च यदा भवेत् । कालीकैवल्ययोगोयं तद्दिने कालिकार्चनम् ॥

कालीत्युपलक्षणम् । त्रिपुरसुन्दरी-तारयोरप्यत्र महोत्सवः कार्यः । यदाह—

मत्स्यसूक्ते—पूजयेत् परया भक्त्या रात्रेर्मध्यमयामयोः । कालीं तारां सुन्दरीं च विशेषात् प्राणवल्लभे ॥

कार्त्तिकामावास्यानिशीथे चतुर्दण्डात्मके प्रथमखण्डे श्रीविद्याप्रादुर्भावः । मध्यभागे कालीप्रादुर्भावः । तृतीयभागे ताराप्रादुर्भावः इत्यागमाकरग्रन्थात् प्राणतोषिण्यादिनिबन्धाच्चानुसन्धेय इति ।

अथ महालये पार्वणश्राद्धमाहात्म्यम्

येयं दीपान्विता राजन् ख्याता पञ्चदशी भुवि । तस्यां देयं नचेद्दत्तं पितृणान्तु महालये ॥

तथा—कन्यां गते च सवितरि पितृराजानुशासनात् । तावत्प्रेतपुरी शून्या यावद्वृश्चिकदर्शनम् ॥

ततो वृश्चिक आयाते निराशाः पितरो गताः । पुनः स्वभवनं यान्ति शापं दत्त्वातिदारुणम् ॥

इत्यादिवचनैरकृतापरपक्षपार्वणे नात्र पार्वणस्यावश्यकर्तव्यतया अमावास्यात्वेनापि पार्वणश्राद्धार्हतया श्राद्धकालो निर्णीयते—

अथ श्राद्धकालः

पूर्वाह्णे मातृकं श्राद्धमपराह्णे तु पैतृकम् । एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ॥

अत्राभ्युदयिकश्राद्धस्य प्रातर्विधानेपि "सूर्ये चैवाचिरोदिते" इति निषेधसामान्येन मुहूर्त्तद्वयानन्तरं प्रातरेवारम्भणीयता सङ्गवात्मके पूर्वाह्णे मातृकमन्वष्टकाश्राद्धं मातृनवम्यादौ कार्यम् । एकोद्दिष्टश्राद्धं कुतुपादारभ्य रौहिणं

यावत् कर्तव्यम् । यदि पूर्वदिने कुतुपे न लभ्यते तिथी रौहिणे च लभ्यते । उत्तरदिने कुतुपे रौहिणेपि लभ्यते, तत्रापि पूर्वदिने रौहिणे कार्यम् । कपालाधिकरणन्यायात् । रौहिणं न तु लङ्घयेदिति विशिष्याभिधानाच्च । उभयदिने कुतुपरौहिणयोस्तिथिलाभेप्येवैव व्यवस्था । उभयदिने कुतुपरौहिणयोस्तिथ्यलाभे कुतुपात् पूर्वस्मिन् सप्तममुहूर्त्तें मध्याह्नान्तर्गते कार्यम् । तत्रापि तिथ्यलाभे पार्वणोक्तगौणकालेऽपि कार्यम् । अत एव सङ्गवादावपीति रुद्रधरः । पैतृकं पार्वणश्राद्धम्, तच्च प्रातःसायाह्नमुहूर्तातिरिक्तेषु नवसु मुहूर्तेषु कर्तव्यम् । केचित्तु--"सूर्ये चैवाचिरोदिते"ति निषेधविषयस्य मुहूर्तद्वयस्य परित्यागेन मुहूर्तदशकं श्राद्धकालमाहुः । पठन्ति च—ऊर्ध्वं मुहूर्तात् कुतुपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम् मुहूर्तपञ्चकं च कुतुपात् पूर्वं कुतुपेन सह ॥ मुहूर्तदशकं पार्वणश्राद्धकालः । उभयदिने कर्मयोग्यकाललाभे पूर्वदिने कार्यं पूर्वोक्तयुक्तेः । अत एवाहुः स्मृतिसारे हरिनाथपादाः—

दर्शं च पौर्णमासं च पितुः सांवत्सरं दिनम् । पूर्वविद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥
भूतविद्धाप्यमावास्या प्रतिपन्मिश्रितापि वा । पित्र्ये कर्मणि विद्वद्भिर्ग्राह्या पुण्या सदा तिथिः ॥
मध्याह्नव्यापिनी या तु तिथिः पूर्वा परापि वा । तदहः कर्मकुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम् ॥

अथ दीपावल्यामुल्काभ्रमणविचारः

तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः । उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितृणां मार्गदर्शनम् ॥

इत्यत्र प्रदोषश्रवणात् प्रदोषव्यापिन्यमावास्या ग्राह्या । उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ परैव । पितृविसर्जनात्मककर्मणः पार्वणोत्तरत्वौचित्यात् । "दण्डैकरजनीयोगे" इत्याद्युक्तज्योतिर्वचनात्,

भूताहे ये प्रकुर्वन्ति उल्काग्रहमचेतनाः निराशाः पितरो यान्ति शापं दत्वातिदारुणाम् ॥

इति निषेधाच्च । उत्तरत्र प्रदोषाव्याप्तौ पूर्वत्र । कर्मकालव्यापनात् । "नन्दायां दर्शनं रक्षे"त्यादिना प्रतिपदि

निषेधाच्च ॥ उभयत्र, प्रदोषाव्याप्तौ, परत्र प्रदोषे प्रतिपदि कार्यम् । 'पूर्वत्र चतुर्दश्यां भूताहे ये" इत्यादिनिषेधश्रवणात्, पार्वणोत्तरत्वानुरोधाच्च । न च "नन्दायां दर्शनं रक्षे' त्याद्युत्तरत्रापि निषेधश्रवणात् त्यज्यतां तादृशस्थले पितृविसर्जनमिति वाच्यम्, "दर्शश्राद्धं भवेद् दर्शेऽपराह्णे प्रतिपद्यपि । प्रदीपोल्कादिकं कार्यं तत्प्रदोषे न दूष्यति ॥'
इति मिथिलेशशुभंकरधृतस्मृत्या प्रतिप्रसूतत्वादित्यास्तां तावत् ।

अथ पूर्णिमा-द्वैध:

सा च स्नानदानादावौदयिकी ग्राह्या, तत्रैव तयोर्विधानात् । कार्यान्तरे चतुर्दशीयुता ग्राह्या "चतुर्दश्याथपूर्णिमे" ति युग्मवाक्यात् । फाल्गुनीपूर्णिमा तु होलिकादाहे प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या । यदाह—

सायाह्ने होलिकां कुर्यात् पूर्वाह्णे क्रीडनङ्गवाम् । दीपं दद्यात् प्रदोषे तु एष धर्मः सनातनः ॥

अत्र सायाह्नशब्देन संकेतितस्य दिनचरममुहूर्तत्रयस्य न ग्रहणं दिवातनहोलिकादीपननिषेधस्य वक्ष्यमाणत्वात् । यदि प्रदोषे भद्रादुष्टैव पूर्णा लभ्यते तदा तां विहाय निशीथादावपि भद्राविधुरपूर्णायां दीपयेत् । यदाह—

श्रावणी दुर्गनवमी दुर्वा चैव हुताशनी । पूर्वविद्धैव कर्तव्या भद्रायां न तु दीपयेत् ॥

पूर्णिमापूर्वार्द्धे भद्रा तदाह—

भविष्यपुराणे—पूर्णापूर्वदलं यावत् तावज्जीवति वत्सरः । मृते परदले नक्तं दाहस्तस्य विधीयते ॥
भद्रायां दीपिता होली राज्यभङ्गं करोति च । नगरस्य च नैवेष्टा तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥

स्मृत्यन्तरेपि—दिनार्धात् परतोपि स्यात् फाल्गुनी पूर्णिमा यदि । रात्रौ भद्रावसाने तु होलिका दीप्यते तदा ॥

सूर्यास्तसमयमारभ्य प्रवर्तमानायां परदिने च प्रदोषमस्पृशन्त्यां पूर्णायां व्यवस्थानाहुर्दाक्षिणात्याः । मुखादि पुच्छान्तं भद्राङ्गविभागं कृत्वा पूर्वस्यां निशि चतुर्थयामे भद्रापुच्छे होलिका दीपनीयेति । पठन्ति च—"भद्रामुखं

परित्यज्ये"त्यादिवचनं नाडयस्तु पञ्चवदनं गलकं तथैके इत्यादि रत्नमालीयञ्च। "भद्रापुच्छे प्रदीपयेदि"ति च। अन्ये तु भविष्योत्तरे—सार्धयामत्रयं चेत् स्यात् द्वितीयदिवसे यदि। प्रतिपद्वर्धमाना तु तदा सा होलिका स्मृता ॥

तथा—असत्यामपि पूर्णायां वृद्धित्वे होलिकार्चनम्। क्रियमाणं च नन्दायां शान्तिर्भवति नो क्षयः ॥

पूर्वरात्रे भद्रावियुक्तपूर्णाया अलाभे वर्धमानायां च तिथो नन्दायामपि होलिकां दीपयेदित्याहुः।

केचित्तु—"वरं विषं भुङ्क्ष्व मा चाण्डालगृहे" इति वत् भद्रायामत्यन्तनिषेवे तात्पर्यं न तु नन्दायां दीपने इत्याहुः। पठन्ति च—वह्नौ वह्निं परित्यजेत्, होलिकादाहे प्रतिपदं वर्जयेदिति तस्यार्थः।

विद्याविनोदे नन्दायां नरकं घोरं भद्रायां देशनाशनम्। दुर्भिक्षं च चतुर्दश्यां करोत्येव हुताशनः ॥

नारदः—प्रतिपद्भूतभद्रासु यार्चिता होलिका दिवा। संवत्सरे च तद्राष्ट्रं परं दहति साद्भुतम् ॥

परे तु पूर्वनिशि भद्रावियुक्तपूर्णिमालाभे प्रतिपदि निषेचे वचनानां तात्पर्यमित्याहुः। श्रावणीपूर्णिमोपाकर्मादावौदयिकी ग्राह्या। रक्षिकाबन्धने भद्रापरित्यागश्च कार्यः पूर्वोक्तयुक्तेः। भाद्रीपूर्णिमा ऋषितर्पणादावौदयिकी ग्राह्या—

षष्ठ्येकादश्यमावास्या पूर्वविद्धा तथाष्टमी। पूर्णिमा परविद्धा तु नोपोष्यं तिथिपञ्चकम् ॥

इत्यादिनिषेधस्तु सावित्रीव्रतविषय इति। आश्विनीपूर्णिमा तु स्नानदानादावौदयिकी ग्राह्या। लक्ष्मीपूजायान्तु सति सम्भवे निशीथप्रदोषोभयव्यापिनी ग्राह्या तदलाभे प्रदोषमात्रव्यापिनी ग्राह्या यदाह—

ब्राह्मे—दिवा तत्र न भोक्तव्यं मनुष्यैश्च विवेकिभिः। स्त्रीबालवृद्धमूर्खैश्च भोक्तव्यं पूजितैः सुरैः ॥
प्रदोषे पूजयेल्लक्ष्मीमिन्द्रमैरावतस्थिताम्। निशीथे वरदा लक्ष्मीः कोजागर्तीति भाषिणी ॥
तस्मै वित्तं प्रयच्छामि अक्षैः क्रीडां करोति यः ॥ इति शम्।

उपसंहारः

विदेहवसुधापतौ नृपतिचक्रचूडामणौ, विदेहगुणलक्षिते सकलनीतिपारङ्गते ।
विराजति रमेश्वरे विविधधर्मरत्नाकरे, मया द्विजरजेविदा तिथिषु निर्णयो निर्मितः ॥ १ ॥
पूर्वोत्तराम्नायक्रियानुरक्तः परात्मबोधेऽनुपलं प्रसक्तः ।
सिद्ध्यष्टकावाप्तिमहत्त्वनुत्यः सदाशिवः किन्तु रमेश्वरोऽभूत् ॥ २ ॥
सतीवियोगे गिरिजाविवोढा शश्वच्च ताभ्यां युगपद्विहर्तुम् ।
जातः स च श्रीलरमेश्वरस्तत् प्रासोष्ट पुत्री महिषी कनिष्ठा ॥ ३ ॥
पुरा सुरसरिद्गति-प्रबलवेगसोढा शिवः, कलावपि तदुत्पथात् पुनरपोह रोद्धुं क्षमः ।
स एव च रमेश्वरो जयति धर्मरत्नाकरो, भगीरथकथा वृथा जगति जायते सर्वथा ॥ ४ ॥
उमेश्वरः श्रीलरमेश्वरो वा, योगीश्वरो वा जगदीश्वरो वा ।
सनातनं धर्ममनामयं वै, कर्तुं पुमान् प्रादुरभूदपूर्वः ॥ ५ ॥
श्रीमद्रमेश्वरयशोऽक्षविधुं निरीक्ष्य, धाता विधुं निजकृतं मलिनं परीक्ष्य ।
पूर्णं छिनत्ति च शनैः पुनरातनोति, साम्यं न जायत इतो यतते भृशं सः ॥ ६ ॥

प्रतिष्ठितस्यापि मम प्रयासो भूयान्मुदे सज्जनपण्डितानाम् ।
मुखं पिधातुं वत दुर्जनानां नेष्टे महेशो न च वा रमेशः ॥

व्रतनिर्णयः शुद्धिनिर्णयः तीर्थनिर्णयश्च यथावकाशं प्रकाशमेष्यन्ति ॥
इति श्रीरजेऽपरनामक-राजनाथशर्मकृते निर्णयसंग्रहे तिथिनिर्णयः समाप्तः ।

●

DATE DUE

Acc. No. 10644
Class No 294.544 Book No RUD
Author रुद्रधर
Title वर्षकृत्य
Returned

294.544
RUD
दर्ता नं. 10644

महेन्द्र संस्कृत विश्वविद्यालय
वाल्मीकि विद्यापीठ
पुस्तकालय

इति

वर्षकृत्य-प्रथमभागः

समाप्तः

प्रकाशकः—
चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

मुद्रकः—श्रीजी मुद्रणालय, वाराणसी-१
ई० १९७७